गरुडमहापुराणम्



पं॰ रामतेज पाण्डेय

चौखम्बा विद्याभवन, वाराणसी

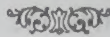
With Best Compliments From
Sri Gokuldas Prabhu (writer)
Mangaluru



॥ श्रीः ॥

विद्याभवन प्राच्यविद्या ग्रन्थमाला

३



श्रीकृष्णद्वैपायनव्यासप्रणीतं

गरुडपुराणम्

साहित्यशास्त्रिणा

पण्डित-रामतेजपाण्डेयेन सम्पादितम्



चौखम्बा विद्याभवन

चौक (बनारस स्टेट बैंक भवन के पीछे)

पो० बा० नं० १०६९, वाराणसी

प्रकाशक

चौखम्बा विद्याभवन

(भारतीय संस्कृति एवं साहित्य के प्रकाशक तथा वितरक)

चौक (बनारस स्टेट बैंक भवन के पीछे)

पो० बा० नं० १०६९, वाराणसी २२१००१

दूरभाष : ४२०४०४

पुनर्मुद्रित २००५

मूल्य १५०-००

अन्य प्राप्तिस्थान

चौखम्बा सुरभारती प्रकाशन

के० ३७/११७, गोपालमन्दिर लेन

पो० बा० नं० ११२९, वाराणसी २२१००१

*

चौखम्बा संस्कृत प्रतिष्ठान

३८ यू. ए., बंगलो रोड, जवाहरनगर

पो० बा० नं० २११३

दिल्ली ११०००७

दूरभाष : २३६३९१

मुद्रक

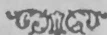
फूल प्रिण्टर्स

वाराणसी

THE

VIDYABHAWAN PRACHYAVIDYA GRANTHAMALA

3



GARUḌAPURĀṆA

OF

KṚṢṆADVAIPĀYANA VYĀSA

Edited by

Pt. Shri Ramtej Pandey



THE

CHOWKHAMBA VIDYABHAWAN

VARANASI

(*Oriental Publishers & Distributors*)
CHOWK (Behind The Benares State Bank Building)
Post Box No. 1069
VARANASI 221001
Telephone : 2420404

Reprint Edition
2005

Also can be had of
CHAUKHAMBA SURBHARATI PRAKASHAN
K. 37/117, Gopal Mandir Lane
Post Box No. 1129
VARANASI 221001

*

CHAUKHAMBA SANSKRIT PRATISHTHAN
38 U. A., Jawaharnagar, Bungalow Road
DELHI 110007
Telephone : 236391

भूमिका

पुराणं पञ्चमो वेदः

प्राचीन भारतीय वाङ्मय एवं प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति में पुराणों का वही महत्त्व है, जो ईसाई धर्म के इतिहास में 'होली' (पवित्र) बाइबिल अथवा इस्लाम धर्म के इतिहास में कुरान (पाक) का है। अन्तर इतना ही है कि हिन्दुओं के धार्मिक जीवन में पुराणों के अतिरिक्त वैदिक साहित्य (संहिताएँ, ब्राह्मण, आरण्यक एवं उपनिषद्) तथा भगवद्गीता और रामायण (वाल्मीकि) आदि बहुत से ग्रन्थ भी उसी तरह मान्य हैं। ये विविध ग्रन्थ प्राचीन भारतीय धर्म और जीवन के मूलाधार रहे हैं। जिस प्रकार वैदिक साहित्य की विविध शाखाएँ थीं (कुछ आज भी उपलब्ध हैं), उसी प्रकार वैदिक-धर्म की भी विविध धाराएँ इस पवित्र भूमि के विचार-क्षेत्र को सींचती रही हैं। इन्हीं विविध विचारधाराओं ने विविध दार्शनिक-धाराओं को भी जन्म दिया है। प्राचीन भारत के दार्शनिकों और चिन्तकों में पौराणिकों का एक अपना विशिष्ट स्थान था।

बाण के हर्षचरित में गिरि-नदी की घाटी में स्थित पुण्य विन्ध्यस्थली में दिवाकर मित्र (बौद्ध-आचार्य) के आश्रम के पास ही विविध प्रकार की धार्मिक और दार्शनिक साधनाओं में संलग्न साधकों का सुन्दर चित्र मिलता है। इन साधकों में पौराणिक चिन्तक भी थे। ये तपस्वी मुनि आश्रम-वासी थे।

इन्हीं पौराणिक चिन्तक मुनियों—व्यास आदि—की कृतियाँ पुराण हैं। हमने पुराणों को समझने में प्रमाद किया है और हम पौराणिकों के कृतित्व एवं व्यक्तित्व का सम्यक् मूल्यांकन भी नहीं कर पाये हैं। इसका मूल कारण है कि हमारी 'भारतीय दृष्टि' और विवेक का लोप-सा हो गया है।

अठारह अथवा उन्नीस पुराण (शिव-पुराण को लेकर) हमें उसी तत्त्व-दृष्टि से जीव, जगत् और ईश्वर को देखने की प्रेरणा देते हैं। गरुडपुराण का प्रथम श्लोक ही इस तत्त्व का पोषक 'सूत्र'-सदृश मंगल-श्लोक है—

"अजमजरमनन्तं ज्ञानरूपं महान्तं शिवममलमनादिं भूतदेहादिहीनम्।
सकलकरणहीनं सर्वभूतस्थितं तं हरिममलममायं सर्वगं वन्द एकम्॥"

वह ज्ञानरूप शिव (निष्कल और निरञ्जन) एवं वासुदेव (सर्वभूतस्थितं सर्वगं) एक ही हैं और एक ही मूलशक्ति के अव्यक्त रूप हैं, जिसे पुराण-पुरुष कहा गया है। वही पुराणपुरुष अथवा आद्यपुरुष जिससे 'पुराणी प्रवृत्ति' का प्रसार (यतः प्रवृत्तिः प्रसृता पुराणी) हुआ था। वही 'क्षराक्षराभ्यां परः' पुरुषोत्तम है। पुरुषोत्तम को जान लेना और उसका सर्वभावेन भजन करना मनुष्य का परम कर्तव्य एवं परम पुरुषार्थ और परमार्थ है (द्रष्टव्य—भगवद्गीता १५।२०)।

जैसा कि गरुडपुराण के अन्त में **'येषामेवं स्थिरा बुद्धिः'** कहा गया है—
(वही २।३५।४५)
'स्थिर-बुद्धि' ही गीता की स्थिर-प्रज्ञा है, जिसके अनुसार मनुष्य को स्थिर कर्म में प्रवृत्त होना चाहिये—'अस्थिरेण शरीरेण स्थिरकर्म समाचरेत्' (गरुड २।३५।३८)। यह नित्य—शाश्वत कर्म (या धर्म) और यह कर्मभूमि—भारत अपवर्ग (मोक्ष) प्राप्त करने के लिये ही पुण्यक्षेत्र माना गया है (गरुड २।१।६)।

विष्णुसहस्रनाम में विष्णु का एक नाम सार (गरुड १।१५।९५-१) भी है। सार ही पुराण (धर्म) भी है—

"धर्मदृढबद्धमूलो वेदस्कन्धः पुराणशाखाढ्यः।
क्रतुकुसुमो मोक्षफलः स जयति कल्पद्रुमो विष्णुः॥" गरुड २।१।२

इसी धर्म-वृक्ष (विष्णु-धर्म, सार-धर्म) की रक्षा करना पौराणिकों का मूल उद्देश्य था। इसीलिये धार्मिक जीवन में पुराण-श्रवण भी महत्त्वपूर्ण धर्म

था। गरुडपुराण के श्रवण का महत्त्व तो आज भी हिन्दू-समाज में प्रचलित है। पौराणिक साहित्य में भी गरुडपुराण का एक विशिष्ट स्थान है।

पहले मंगल श्लोक के बाद ही दूसरे श्लोक में प्रसिद्ध पौराणिक देवताओं विष्णु (हरि), शिव (रुद्र), गणेश (गणाधिप) और सरस्वती देवी की वन्दना की गयी है—

"नमस्यामि हरिं रुद्रं ब्रह्माणञ्च गणाधिपम्।
देवीं सरस्वतीञ्चैव मनोवाक्कर्मभिः सदा॥"

इससे स्पष्ट सिद्ध होता है कि इस पुराण में किसी भी विशेष सम्प्रदाय के प्रति द्वेष नहीं है। पौराणिक धर्म की यही विशेपता है। एक ही पुराण-पुरुष के विभिन्न नाम-रूप हैं। वह एक ही नाना रूपों से जन-मानस को अपनी ओर खींचता है।

गरुड विष्णु-वाहन हैं और गरुडध्वज भगवान् विष्णु (वासुदेव) का प्रतीक है, जिसे परम भागवत-गुप्त-सम्राटों ने अपना राज-चिह्न अपनाया था। वे नागान्तक भी हैं। नास्तिकों और म्लेच्छों के आतंक के दमन-शमन के लिये गरुड-पराक्रम की ही आवश्यकता थी। वैष्णव-धर्म के अनुसार अन्त में कहा गया है कि गरुडपुराण लोक-कल्याण के लिये ही तत्कालीन रोगों के निदान रूप में परमौषध ही है (गरुड २।३५।४३)। यह 'वैष्णवी वाक्सुधा' (भागवतं रसं) ही है जिसके पान से ऋषि लोग तृप्त हो गये (गरुड २।३५।४८)। सभी के ही कल्याण की कामना करते हुए कहा गया है—

"सर्वेषां मङ्गलं भूयात् सर्वे सन्तु निरामयाः।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत्॥" गरुड २।३५।५२

यही वैष्णव धर्म और दर्शन एवं आर्य-संस्कृति का मूलाधार है।

बौद्धदर्शन दुःख-परम्परा और दुःख-निदान (प्रतीत्यसमुत्पाद) तथा दुःख-क्षय एवं निर्वाण की प्राप्ति का मार्ग था। किन्तु इसे वेद-विरोधी होने से नास्तिक मत कहा गया है। नास्तिक (नास्तिकः क्षुद्रः, २।३५।१९) को नरकगामी कहा गया है। धर्मविहीन पुरुप को नास्तिक (नास्तिको धर्मवर्जितः, गरुड २।६।५) कहा गया है। राजा वेण ऐसा ही नास्तिक समाट् था।

गरुडपुराण का युग

गरुडपुराण के युग का स्वरूप निम्नांकित तथ्यों से स्पष्ट ज्ञात होता है–

दस्यूत्कृष्टा जनपदा वेदाः पाषण्डदूषिताः । —गरुड १।२१५।२८

नास्तिकों को ही 'पाषण्ड' भी कहा गया है । इन पाषण्ड-नास्तिकों में बौद्ध और जैन सम्प्रदाय प्रमुख थे ।

दस्यूत्कृष्टा जनपदाः

भारत-देश के जनपद दस्युओं द्वारा आक्रान्त थे और इसके अतिरिक्त सिन्ध प्रान्त में नास्तिक, म्लेच्छ तथा यवन बस गये थे—

'सैन्धवा म्लेच्छा नास्तिका यवनास्तथा ।' —गरुड १।५५।१५

पश्चिम दिशा में स्थित 'नास्तिक सैन्धव यवन' अरब आक्रमणकारी ही थे । लम्पका (लमग़ज) और गान्धार तथा वाह्लीक एवं हिमालय के अन्य क्षेत्रों में भी म्लेच्छ छा गये थे (गरुड, २।५५।१७) । राष्ट्र पराभूत हो गया था (धन्यास्ते ये न पश्यन्ति देशभङ्गम् २।११५।३) । इन दस्यु-म्लेच्छों के आतंक से ही देश-भंग (राष्ट्र-भंग) हो गया था । अत्यन्त ही दारुण दशा थी—

"धर्मः प्रव्रजितस्तपः प्रचलितं सत्यञ्च दूरं गतं,
पृथ्वी वन्ध्यफला जनाः कपटिनो लौल्ये स्थिता ब्राह्मणाः ।
मर्त्या स्त्रीवशगाः स्त्रियश्च चपला नीचा जना उन्नताः,
हा कष्टं खलु जीवितं कलियुगे धन्या जना ये मृताः ॥"

—गरुड १।११५।२

ताजिकों (अरबों) के आक्रमण की अग्नि सम्पूर्ण लोक (भारत) को कष्टप्रद रही (अशेषलोकसन्तापकलापदः ताजिकानलः, कार्पस इन्सक्रिप्शनम् इंडेकेरम् भाग ४, पृ० १०७ आदि) । ये ताजिक अरब आक्रमणकारी ही थे ।

तुरुष्क

उत्तर में (स्थित म्लेच्छ) तुरुष्क थे । गज देश (गर्जनक, गज्जणक, गाजनक या गजनी) के आक्रमणकारी (यथा महमूद गजनवी) ने सम्पूर्ण

मध्य देश (धर्मदेश) को रौंद डाला था तथा मन्दिर की अतुल सम्पत्ति लूटी थी। ये ही म्लेच्छ दस्यु तुरुष्क (तुर्क) थे।

लुम्पाधिप (लम्पाक का राजा) मुहम्मद गोरी ने पृथ्वीराज तृतीय को भी परास्त कर दिया था, तथा इसी घटना से देश-भंग हो गया था। पृथ्वीराज तृतीय की राजनीतिक भूल ही थी कि गोरी सम्राट् के साथ सन्धि करने के बाद भी वह उदासीन हो गया। वह संयुक्ता-विलास में सो गया था। जब उसका पतन हुआ, तभी पुराणकार ने राष्ट्र और धर्मरक्षकों का उद्‌बोधन किया—

"वैरिणा सह सन्धाय विश्वस्तो यदि तिष्ठति।
स वृक्षाग्रे प्रसुप्तो हि पतितः प्रतिबुद्‌ध्यते॥" गरुड १।११४।४८

ऐसी देश-दशा और समाज की स्थिति में राष्ट्र-रक्षकों का प्रबोध तथा उनमें वीरधर्म तथा सिंहव्रत का संचरण करना तथा तीर्थों और मन्दिरों के संरक्षण के लिये उनका संग्रह (तीर्थसंग्रह) एवं नष्ट होते हुए साहित्य की रक्षा के लिये गरुड तथा अग्निपुराण में भारतीय शास्त्रों और विद्याओं का संग्रह तथा संक्षिप्त विवरण पौराणिक ऋषियों का प्रमुख धर्म-कर्म हो गया था। इसीलिये गरुडपुराण एवं अग्निपुराण प्राचीन भारतीय धर्म, दर्शन, कला, साहित्य, समाजसंस्थान एवं वार्ता आदि के विश्वकोश ही है। धर्म का ही विशेष महत्त्व था (धर्म एवाराध्यः)। धर्म ही विष्णु थे और विष्णु की ही वाङ्मयी मूर्ति को शास्त्र कहा गया है। इसीलिये कहा गया है—

"इति सूतमुखोद्‌गीर्णां सर्वशास्त्रार्थमण्डनीम्।
वैष्णवीं वाक्सुधां पीत्वा ऋषयस्तुष्टिमाप्नुयुः॥" गरुड २।३५।४९

गारुडी विद्या

नागान्तक (नाग-भय एवं नाग-आतंक को नष्ट करने वाली) को ही गारुडीविद्या कहा गया है। यह गारुडी-नीति ही थी। गरुड-पराक्रम स्वाधीनता का भी प्रतीक है। गरुड ने अपनी माता को नागों की दासता से मुक्त किया

था। नाग (गज, म्लेच्छ) का दमन क्षत्रियों (वीरसिंहों) द्वारा एकता (संघ-शक्ति) से सम्भव था। कहा गया है—

"बहूनामल्पसाराणां समुदायो हि दारुणः।
तृणैरावेष्टिता रज्जुस्तया नागोऽपि बध्यते॥" गरुड १।११४।६६

बहुत से दुर्बल लोग भी यदि मिलकर संघ (समुदाय) बना लें, तो उनकी शक्ति अदम्य होती है। घास के तिनकों को मिला कर रस्सी बनती है और उस रस्सी से ही नाग (हाथी) बाँधा जाता है।

यहाँ 'नाग' शब्द पर श्लेष है। वह म्लेच्छ गज (गर्जनका म्लेच्छाः, गर्जनाद् गजः) का भी बोधक है। निरुत्साहित क्षत्रियों को धैर्य बंधाते हुए पुराणकार उत्साहित करता है—

'सिंहव्रतश्चरत गच्छत मा विषादं········ —गरुड १।११५।३४

नित्यसत्त्वमृगेन्द्रता ही सिंहव्रत है। सिंह हाथी (गज) के मस्तक का ताजा गरम खून अपने ही नखों (हाथों) से विदीर्ण कर पीता है। क्षत्रियों ! स्वाधीनता ही जीवन है और पराधीनता ही मृत्यु है—

स्वाधीनवृत्तेः साफल्यं न पराधीनवृत्तिता।
ये पराधीनकर्माणो जीवन्तोऽपि हि ते मृताः॥ गरुड १।११५।३७

गरुड-विषय-परिचय

प्रो० राघवन ने सत्य ही कहा है कि पौराणिक शोधकार्य ने यह सिद्ध कर दिया है कि बहुत से पुराणों के अस्तित्व में मूल पुराण नष्ट (या लुप्त) ही हो गये हैं······। परन्तु हम इन वर्तमान पुराणों की उपेक्षा नहीं कर सकते; क्योंकि वे ऐतिहासिक परिस्थितियों एवं सांस्कृतिक प्रक्रिया के परिणामस्वरूप में ही हमें आज उपलब्ध हैं। इन पुराणों की सामग्री का विशिष्ट महत्त्व है। इनमें हमें तत्कालीन देश-दशा एवं समाज और राजनीति आदि का ज्ञान होता है। अतः उनका साहित्यिक, सामाजिक एवं धार्मिक अध्ययन करना परमावश्यक है ('गरुडपुराण–ए स्टडी' लेखक एन० गंगाधरन में प्रो० राघवन

का 'फोरवर्ड', पृ० ५)। यह तथ्य उपरि-निर्दिष्ट संक्षिप्त संकेतों से स्पष्ट है (विशेष अध्ययन के लिये द्रष्टव्य लेखक का 'गरुडपुराण एक अध्ययन')।

"पुराणं गारुडं वक्ष्ये सारं विष्णुकथाश्रयम् ।" —गरुड १।१।११

गरुडपुराण को ऊपर 'सारं' (विष्णुं) और विष्णुकथा (विष्णु-लीला कथा) पर आधारित बताया गया है। ऊपर कहा जा चुका है कि सार विष्णु का एक नाम है। यह सार (धर्म), वेदसार भी है। एक ब्रह्म=अद्वितीय नारायण, देवदेव और ईश्वरों का भी ईश्वर=परमात्मा है जिससे ही सृष्टि का जन्म आदि (उत्पत्ति, स्थिति और संहार) होता है—

"एको नारायणोदेवो देवानामीश्वरेश्वरः ।
परमात्मा परं ब्रह्म जन्माद्यस्य यतो भवेत् ॥" —गरुड १।१।१२

वेदान्तसूत्र (जन्माद्यस्य यतः) और भागवत (१।१।१) का प्रभाव ऊपर स्पष्ट है। जिस तत्त्व को तत्त्ववेत्ता लोग 'अद्वयज्ञान' (अद्वैत-विज्ञान) कहते हैं (भागवत–वदन्ति तत्त्वविदस्तत्त्वं यज्ज्ञानमद्वयम्) वही भगवान् (नारायण), ब्रह्म और परमात्मा भी कहलाता है। किन्तु लोकरक्षा के लिये ही वह अजर-अमर वासुदेव (देखिये–१।१।१ अजमजरमनन्तम्···एकम्) एक होकर भी नाना रूपों को धारण करता है।

प्रथम अध्याय में इन्हीं विविध अवतारों का वर्णन है। इनमें देव-विरोधी असुरों को मोह में डालने वाले बुद्ध भगवान् का भी उल्लेख है (१।१।३२)। अवतार असंख्य हैं। उसी एक अद्वितीय परमात्मा से सर्गादि भी होते हैं (१।१।३५)। इसीलिये सर्गादि (पञ्च लक्षणों) वाले जगत् की रचना आदि करने वाले के गुणों और कर्मों का वर्णन पुराण-शास्त्र में किया गया है। वही पुराणपुरुष (१।१।१९) पुराण है। वही ध्येय और पूज्य है। धर्म, नियम (व्रतादि) एवं पूजा द्वारा उसे तुष्ट करना मानव-जीवन का परम लक्ष्य है। वह भक्ति द्वारा साध्य है। भागवतपुराण की भाँति ही गरुडपुराण में भी वैष्णव-(भागवत)-वेदान्त दर्शन के साथ-साथ विष्णु-पूजा के विविध रूपों का वर्णन किया गया है। शालग्रामशिला, मूर्तियों और प्रासादों (मन्दिरों) का

गरुड और अग्निपुराण में विशेष वर्णन मिलता है। विष्णु की चौबीस मूर्तियों (केशवाद्याः) का भी वर्णन करते हुए अन्य प्रमुख देवी-देवताओं के प्रतिमा लक्षणों का भी वर्णन किया गया है। इस प्रकार पद्मपुराण (जिसका उल्लेख गोपीनाथ राव ने अपने ग्रन्थ 'एलीमेन्ट्स ऑफ हिन्दू आइकनोग्राफी' में किया है) के अतिरिक्त गरुडपुराण भी मूर्तिकला और प्रासादलक्षणों का महत्त्वपूर्ण ज्ञान-स्रोत है।

रामायण, महाभारत, हरिवंश और गीतासार के कारण ही गरुडपुराण हिन्दूधर्म में प्रसिद्ध श्रोतव्यशास्त्र हैं। इसका उत्तरार्द्ध (प्रेतकल्प) भी मृत्यु और इसके बाद जीव की गति का वर्णन करता है।

इसके भुवनकोश में हमें तत्कालीन भारत के ऐतिहासिक मानचित्र का दर्शन होता है। तीर्थ-संग्रह में विविध सिद्ध-क्षेत्रों का वर्णन मिलता है। इनमें कोणगिरि (जहाँ सूर्यमन्दिर कोणार्क बना है) उल्लेखनीय है।

विष्णु-भक्ति और उपासना के अतिरिक्त सूर्य-पूजा, ग्रह-पूजा, शिव-शक्ति-उपासना आदि की भी उपेक्षा नहीं की गयी है। पूजापद्धति पर तान्त्रिक-प्रभाव स्पष्टतः परिलक्षित होता है। इसके अनुसार विविध मन्त्रों और पूजा-मंडलों तथा मुद्राओं का भी उल्लेख है। देवार्चन (देवोपासना) धर्म का प्रमुख स्वरूप था। शिवार्चन (पूर्वार्द्ध, अ० २२, २३ आदि), गण-उपासना (गणेश, विनायक आदि), दुर्गा आदि देवियों और सूर्य-उपासना का विशेष महत्त्व था। नाम-माहात्म्य के कारण ही विष्णुसहस्रनाम (पूर्वार्द्ध अ० १५) का भी वर्णन किया गया है।

सन्ध्योपासना, गायत्री-जप एवं गीता-पाठ तथा आत्मदर्शन आदि धर्म के सभी स्वरूपों का महत्त्व इस महापुराण में मिलता है।

देवी-देवताओं की मन्दिरों में स्थापना करके पूजा की जाती थी। सभी देवताओं में वासुदेव की ही प्रधानता थी—

"प्रासादेषु सुरान् स्थाप्य पूजाभिः पूजयेन्नरः।
वासुदेवः सर्वदेवः सर्वभाक् तद्गृहादिकृत् ॥" गरुड १।४७।४३

ब्रह्म, पद्म और विष्णुपुराणो में कृष्ण-चरित का वर्णन किया गया है। भागवत के दशमस्कन्ध में कृष्णचरित का विशेष विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। गरुडपुराण में भारत (महाभारत) के वर्णन के अन्तर्गत (पूर्व० अ० १४५) तथा हरिवंश (पूर्व० अ० १४४) में कृष्ण-माहात्म्य (१।१४४।१) का वर्णन किया गया है।

सामाजिक जीवन में आचारधर्म (सदाचार), वर्णाश्रम धर्मों, संस्कारों तथा स्त्री-पुरुष-लक्षणों और जीविका के विविध साधनों (वर्तनोपायों) का भी वर्णन मिलता है। विभिन्न जातियों का भी उल्लेख मिलता है। आयुर्वेद के सन्दर्भ में रोग, रोगनिदान और औषधियों का विस्तार के साथ वर्णन किया गया है। रत्न-शास्त्र (रत्न-परीक्षा) का भी वर्णन महत्त्वपूर्ण है। इस प्रकार इन विविध-विषयों और विद्याओं के वर्णन से निस्सन्देह गरुडपुराण प्राचीन भारतीय इतिहास, संस्कृति और साहित्य का विश्वकोश ही है।

पुराण-पञ्च-लक्षणों की भी उपेक्षा नहीं की गयी है। किन्तु प्रमुख रूप से युगदर्शन और देश-परिस्थिति का ही चित्रण किया गया है जिसका ऐतिहासिक दृष्टिकोण से अत्यधिक महत्त्व है। सत्य ही पौराणिक चिन्तक ने युग की चुनौती (इतिहासवेत्ता टायनबी की 'चैलेन्ज थ्योरी') को स्वीकार कर देश-चेतना एवं राष्ट्रीय-प्रबोध को ही आत्ययिक समझा तथा हिन्दू संस्कृति और साहित्य की रक्षा की। उसका एक ही लक्ष्य था—**'मा धर्मो यातु संक्षयम्।'**

अस्तु यह समीचीन ही था—

"अपारे काव्यसंसारे कविरेव प्रजापतिः।
यथा वै रोचते विश्वं तथेदं परिवर्तते॥"

—अवधबिहारीलाल अवस्थी

INTRODUCTION

The Garuda Purana is unique in the subject-matter of its text and its importance also lies in Bhuvana-kosha as depicted there-in. The Purana throws light on the event of destruction of the land, where Mlechhas, Nastikas, Yavanas and Saindhavas etc. unfortunately participated in that anihilation. These Saindhavas represent the Arab conquerors who had occupied Sindh. The Kumarika Khanda list of the countries mentioned in the Skanda Purana also places Yavanas in this region near Mulasthana desha (Multan Dist).[1] The Kurma Purana refers to as Parasikas, whom king Yashovarman of Kannauj had conquered in his digvijaya (cf. Gaudavaha of Vakpatiraja).

The Mlechchhas of the Himalaya region and the Turushkas of the Norlh mentioned in the Bhuvana Kosha section also reflect upon the Turkish conqeust of North western India by the Ghaznavids. The passage found in the Garuda Purana that the country was threatened by the Dasyus (dasyutkrishta janapadah)[2] is also very significant and it reflects upon the age of terror and turmoil caused by the Turkish invasions.

The alien invasions of such people, who destroyed the shrines and the roots of religion viz. Deities, Brahmanas and Cows and so also they carried away the ladies. They defiled the tirthas, which also caused a great terror.

The Pauranikas accepted the challenge and exhorted the Kshatriya to adhere to the **svadharma** of giving protection to country and culture. They were inspired to fight and establish unity. Thus they were asked to follow sangha-vritti. The Garuda Purana says :

1. Studies in Skanda Purana Part I, p. 52.
2. Garuda Purana, I. 215. 28 (ii)

बहूनामल्पसाराणां समुदायो हि दारुणः ।
तृणैरावेष्टिता रज्जुस्तया नागोऽपि बध्यते ।।[1]

Here, in the above verse there is pun on the word Naga which represents Guzz Turks or Gaznavids styled Dasyus.

The freedom of the country was also imperilled after the fall of Prithviraja III at the hands of Muhammad Ghori in the second battle of Terain (1192 A. D.). The Pauranika points to the political blunder of the Chahmana ruler who was succumbed in sensuous slumber in the company of his newly acquired wife Samyogita. The Pauranika observes:

वैरिणा सह सन्धाय विश्वस्तो यदि तिष्ठति ।
स वृक्षाग्रे प्रसुप्तो हि पतितः प्रतिबुद्ध्यते ।।[2]

Thus, at a time, when freedom of the country was in danger, the Pauranika muni stimulates the spirit of freedom :

स्वाधीनवृत्तेः साफल्यं न पराधीनवृत्तिता ।
ये पराधीनकर्माणो जीवन्तोऽपि हि ते मृताः ।।[3]

The success of life depends on the life of freedom, those who are subservient to others, they are the living monuments of death.

In such an era of daruna Kali it was in the fitness of things that the cultural traditions and the foundations of Dharma and culture should be preserved :

मा धर्मो यातु सङ्क्षयम् ।

Garuda Purana : An Analysis of Contents

Prof. Raghavan has rightly observed that "The Purana research has already established the fact that in the case of many Puranas the original texts were partly or fully lost and were reconstructed...... . While on one side we have, therefore,

1. Garuda Purana, I. 114. 66
2. Garuda P., I. 114. 48
3. Ibid., I. 115. 27

to regret the loss of the older texts of the Puranas, on the other, we cannot ignore the new texts, for they are products of a historical and cultural process and the material as it has its own intrinsic significance for the age it reflects. Each text purporting to be a particular Purana or a part of it, therefore, deserves its own critical study as a literary religious and cultural document."[1] In view of the age of crisis and catastrophe marked by the Turkish conquest of India in the two Puranas, Agni and Garuda, in particular were incorporated the summaries of the Ramayana, Mahabharata, Bhagavad-Gita, Harivamsha as well as some philosophical systems like Vedanta and Bhakti-sutras. Different branches of learning and sciences like Ayurveda (Medicine), Vyakarana (Grammar), Ratnashastra or Ratnapariksha etc. were dealt with.

Nitishastra (or Nitisara) associated with the school of Brihaspati is dealt with exhaustively. The political system of the Garuda Purana, as it has been pointed out above, reflects upon the Rajaputa epoch characterised by the Vira-dharma or (Shura-vrata) :

परिपाल्य स्वदेशैकपालने रतः स शूरो वीरो वा ।

The social system based on the Dharmashastras, particularly inspired by Yajnavalkya and Parashara. The latter exclaims :

वीरभोग्या वसुन्धरा ।

A Kshatriya, not adhering to his svadharma of fighting (for the protection of his country and culture) was censured.

The Garuda Purana is a Vaishnava Purana which glorifies Vishnu and Vishnu-Dharma (Bhakti). It also glorifies Vedanta :

1. Garuda Purana : A Study (AIKRT. Varanasi)—Foreword, p. 5.

एको नारायणो देवो देवानामीश्वरेश्वरः ।
परमात्मा परं ब्रह्म जन्माद्यस्य यतो भवेत् ॥[1]

Thus He is Narayana—Param Brahman or Paramatman—One sole Supreme Lord–unmanifest. But for the good of the world He assumes many forms and these incarnatory forms are the objects of worship. Different modes of Vishnu-worship viz., Chaturvyuha, Nava-vyuha, Pancha-tattva etc. are described. It requires the construction of images and temples. Shalagrama-stones were also worshipped, and in this connection we find the account of the twentyfour images of Vishnu[2] along with the fundamental features of the famous deities of Brahmanical Pantheon viz. Brahma, Maheshvara, Gauri, Chandika, Sarasvati, Mahalakshmi and Divakara (Sun).[3]

Temple-architecture based on different types of Prasadas has also due consideration there. Thus the Purana gives enough material for the study of art and iconography like the Agni and the Matsya Puranas.

In the very first verse it glorifies both Shiva and Vishnu. Thus it exhibits religious harmony which is further reflected in the second verse where salutations are offered to Vishnu, Shiva. Ganadhipa (Ganehsa) and Sarasvati—the principal deities of Pauranika religion.

The religious system and life of the age of the Garuda Purana was sufficiently influenced by the Tantric practices based on the prominence of Mantras, Muḍras, Mandalas and Nyasa etc. Sandhyopasana and Gayatrijapa as well as Atmadarshana based on the 'tenet' of the Bhagavad-Gita are also mentioned as important modes of worship.

---

1. Garuda P. I. 1.12.
2. Ibid., I. 45. 2-13.
3. Ibid., I. 45. 31-32.

Nastikas–Pashandas (hetorodox sects like Buddhists and Jains) are censured.

Vratas (vows) and Tirthas are also, as usual, mentioned there in. Among various sacred spots and Siddhakshetras, Konagiri, adorned by the great sun-temple, deserves special notice.

Similarly Ramagiryashrama also deserves special attention. There has been a great controversy about the identification of Ramagiri mentioned in the Meghaduta of the poet Kalidasa. According to the Garuda Purana, Ramagiryashrama was a celebrated tirtha. Kalidasa also mentions Ramagiryashrama (Ramagiryashrameshu...) in his Meghaduta and not Ramagiri. The Aparajita Prichchha places Ramagiryashrama in the Dandaka forest where from Sita was carried away by Ravana. Thus it must be near Panchavati—Nasika region. At Ellora—a sacred forest associated with Shivalaya and Ghushmeshvara jyotirlinga—in one of the caves we have **Sita-nahani**—a lady (Sita) standing near the tank just after taking her bath.

Thus, in short Garuda Purana is the symbol of Vishnu or Vishnu-Dharma. It also denotes Veda-sara—the essence of Veda Dharma transformed into Purana-Dharma in accordance with the 'exigence' of the age.

Though it refers to the Panchalakshanas viz. Sarga, Pratisarga, Vamsha, Vamshanucharita and Manvantaras, yet the Purana is primarily concerned with the preservation of the traditional values of Hindu culture and civilisation threatened by the Asuras and Daityas. It is a non-sectarian text stimulating political, social and religious harmony.

Dharma is identified with Vishnu (Dharmo hi Vishnuh) and Pashandas did not worship Vishnu.[1] Hence there was Vaishnava movement to suppress such Nastikata and as a

1. Garuda P., I. 215. 35.

harmonious step Buddha was recognised as an incarnation of Vasudeva.

Let us conclude with remarks that such Vishnu-dharma based on the essence of Vedas is meant for the good of all :

धर्मदृढबद्धमूलो वेदस्कन्धः पुराणशाखाढ्यः ।
क्रतुकुसुमो मोक्षफलः स जयति कल्पद्रुमो विष्णुः ॥[1]

Human life, a very rare gifty, bestowed upon a man is meant to perform his religious duties and social as well as political obligations (i. e. svadharma). Brahmanas were also exhorted to adhere to 'tapas' and 'tyaga' and not to the life of luxury :

जातीशतेन लभते किल मानुषत्वं तत्रापि दुर्लभतरं खलु भो द्विजत्वम् ।
यस्तन्न पालयति लालयतीन्द्रियाणि तस्यामृतं क्षरति हस्तगतं प्रमादात् ॥[2]

These Brahmanas were the leaders of a new movement which aimed at the happiness of all :

सर्वेषां मङ्गलं भूयात्सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ॥[3]

A. B. L. Awasthi
M. A., Ph. D., D. Litt.
Retd. Tagore Professor & Head of the Deptt. of Ancient Indian History, Culture & Archaeology
University of Saugar, Saugar

1. Garuda P., II. 1.2 2. Ibid., II. 9.22
3. Ibid., II. 36.51

श्रीगरुडमहापुराणम्

अध्यायः	विषयः	पत्राङ्कः
३८	दुर्गापूजाविधिः	५१
३९	सूर्यपूजाविधिः	५२
४०	माहेश्वरीपूजाविधिः	५४
४१	मारणादिविविधमन्त्राः	५६
४२	शिवस्य पवित्रारोहणविधिः	५६
४३	हरेः पवित्रारोहणविधिः	५८
४४	ब्रह्मध्यानम्	६०
४५	शालग्रामस्य लक्षणम्	६०
४६	वास्तुयागविधिः तन्मानलक्षणञ्च	६२
४७	प्रासादलक्षणम्	६३
४८	संक्षेपेण सर्वदेवप्रतिष्ठाकथनम्	६६
४९	अष्टाङ्गयोगकथनम्	७०
५०	नित्यक्रियाऽशौचकथनम्	७२
५१	दानधर्मकथनम्	७५
५२	प्रायश्चित्तविधिः	७७
५३	पद्माद्यनिधेः फलम्	७८
५४	सप्तद्वीपोत्पत्तिकथनं वंशवर्णनञ्च	७९
५५	वर्षवर्णनं कुलपर्वतकीर्त्तनञ्च	८०
५६	प्लक्षद्वीपादिवर्णनम्	८१
५७	पातालनरकादिकीर्त्तनम्	८२
५८	सूर्य्यव्यूहकथनम्	८२
५९	ज्योतिषशास्त्रकथनं, तत्र नक्षत्रदेवताकथनं, योगिनीस्थितिनिर्णयः, सिद्धियोगः, अमृतयोगः	८४
६०	ज्योतिषशास्त्रवर्णनं, तत्र दशाकथन, दशाफलं, यात्रायां शुभाशुभकथनम्	८६
६१	चन्द्रशुद्धिकथनम्	८७
६२	द्वादशराशीनां परिमाणं, मेषादिलग्नेषु विवाहफलं, चरादिलग्ने कर्त्तव्यानि	८८
६३	पुरुषलक्षणं स्त्रीलक्षणञ्च	८९
६४	स्त्रीलक्षणम्	९०
६५	सामुद्रिकशास्त्रम्	९१
६६	स्वरोदयशास्त्रं स्वरज्ञानञ्च	९६
६७	पवनविजयादि स्वरोदयशास्त्रम्	९७
६८	रत्नपरीक्षाकथनं तत्र वज्रपरीक्षा	९९
६९	मुक्तापरीक्षा	१०१
७०	पद्मरागपरीक्षा	१०५
७१	मरकतपरीक्षा	१०७
७२	इन्द्रनीलपरीक्षा	१०८
७३	वैदूर्य्यपरीक्षा	१०९
७४	पुष्परागपरीक्षा	१११
७५	कर्केतनपरीक्षा	१११
७६	भीष्मकपरीक्षा	११२
७७	पुलकपरीक्षा	११२
७८	रुधिराख्यरत्नपरीक्षा	११३
७९	स्फटिकपरीक्षा	११३
८०	विद्रुमपरीक्षा	११३
८१	तीर्थमाहात्म्यम्	११४
८२	गयामाहात्म्यम्	११५
८३	गयामाहात्म्यं तीर्थमाहात्म्यञ्च	११६
८४	गयामाहात्म्यं, तीर्थमाहात्म्यं तीर्थे कर्त्तव्यञ्च	१२०

अध्यायः	विषयः	पत्राङ्कः
८५	गयायां पिण्डदानफलं, तत्र स्नानफलञ्च	१२२
८६	गयामाहात्म्यं, तत्र पिण्डदानफलं, गदाधरार्च्चनफलं तीर्थमाहात्म्यञ्च	१२३
८७	मन्वन्तरकथनम्	१२४
८८	पित्राख्यानं, रुचेराख्यानं पितृस्तोत्रञ्च	१२७
८९	पित्राख्यानम्	१२९
९०	,,	१३३
९१	हरिध्यानम्	१३३
९२	विष्णुध्यानम्	१३४
९३	वर्णधर्मकथनम्	१३५
९४	,,	१३६
९५	गृहस्थधर्मनिर्णयः	१३७
९६	गृहस्थानां कर्त्तव्यकर्मकथनं सङ्करजात्युत्पत्तिवर्णनञ्च	१३९
९७	द्रव्यशुद्धिः	१४२
९८	दानधर्मकथनम्	१४२
९९	श्राद्धविधिः	१४३
१००	विनायकोपसृष्टलक्षणम्	१४५
१०१	ग्रहयागः	१४६
१०२	वानप्रस्थाश्रमकीर्तनम्	१४६
१०३	भिक्षुकाश्रमकीर्तनम्	१४७
१०४	नरकभोगान्ते पापिनां फलकथनम्	१४७
१०५	प्रायश्चित्तविवेकः	१४८
१०६	प्रेताशौचकथनम्	१५१
१०७	पराशरोक्तधर्मकीर्त्तनम्	१५२
१०८	नीतिसारकथनम्	१५४
१०९	,,	१५५
११०	,,	१५८
१११	नीतिसारः, तत्र राज्ञां भृत्यानाञ्च लक्षणकथनम्	१५९
११२	,,	१६१
११३	नीतिकथनम्	१६२
११४	,,	१६५
११५	,,	१६९
११६	तिथ्यादिव्रतकथनम्	१७२
११७	अनङ्गत्रयोदशीव्रतम्	१७३
११८	अखण्डद्वादशीव्रतम्	१७४
११९	अगस्त्यार्घ्यव्रतम्	१७५
१२०	रम्भातृतीयाव्रतम्	१७५
१२१	चातुर्मास्यव्रतम्	१७६
१२२	मासोपवासाख्यव्रतम्	१७६
१२३	भीष्मपञ्चकादिव्रतम्	१७७
१२४	शिवरात्रिव्रतम्	,,
१२५	एकादशीमाहात्म्यम्	१७८
१२६	भुक्तिमुक्तिकरपूजाविधिः	१७९
१२७	एकादशीमाहात्म्यम्	,,
१२८	विविधव्रतकथनम्	१८०
१२९	दष्टोद्धरणपञ्चमीव्रतम्	१८१
१३०	सप्तम्यादिव्रतम्	१८३
१३१	रोहिण्यष्टमीव्रतम्	१८४
१३२	बुधाष्टमीव्रतम्	१८५

श्रीगरुड़महापुराणोत्तरखण्डः (प्रेतकल्पः)

अध्यायः	विषयः	पत्राङ्कः
१	धर्मकथनम्	३४५
२	जन्मान्तरीणगतिकथनम्	३४६
३	दानादिफलकथनम्	३४७
४	दानादिफलवर्णनं, और्ध्वदैहिकीक्रियाकथनं वृषोत्सर्गश्च	३४९
५	और्ध्वदैहिककर्मादिसंस्कारः	३५१
६	यमलोकवर्णनं यममार्गकथनञ्च	३५५
७	श्रवणगणचरित्रवर्णनम्	३५७
८	प्रेतोद्देशेन विविधदानादिफलम्	३५९
९	यमस्य वैभवकीर्त्तनं, यमपुरवर्णनं, चित्रगुप्तपुरवर्णनं, यमलोकगमनकथनञ्च	३६१
१०	प्रेतपीड़ावर्णनम्	३६२
११	प्रेतानां स्वरूपचिह्नवर्णनं तेषां चरितवर्णनञ्च	३६४
१२	प्रेतत्वप्राप्तेः कारणं तेषामाहारविहारादिवर्णनञ्च	३६६
१३	मृत्योः कारणवर्णनम्	३६९
१४	अशौचकथनं, प्रेतकृत्यकथनञ्च	३७०
१५	प्रेतकृत्यवर्णनं पुत्रनिर्णयश्च	३७१
१६	सपिण्डीकरणकथनं, श्राद्धकथनं माहात्म्यञ्च	३७३
१७	प्रेतत्वप्राप्तेः प्रेतत्वमुक्तेः कारणम्	३७६
१८	प्रेतत्वमोचनार्थं घटादिदानफलम्	३७९
१९	पुत्रोत्पादनफलं, धर्मकथनं मुक्तेः कारणकथनञ्च	३७९
२०	प्रेतसौख्यकरदानम्	३८१
२१	प्रेतसौख्यकरदानं, शारीरिकस्थाननिर्णयश्चतुर्विधशरीरञ्च	३८३
२२	देहनिर्णयः उत्पत्तिकथनञ्च	३८४
२३	यमलोकविवरणम्	३८७
२४	धर्माधर्मलक्षणं, प्रेतत्वमुक्तिकथनं मृत्योरनन्तरक्रियाकथनञ्च	३८९
२५	श्राद्धकथनम्	३९३
२६	तीर्थमाहात्म्यं, अनशनव्रतमाहात्म्यं विविधदानफलञ्च	३९४
२७	जलकुम्भदान-वर्द्धनीदानफलम्	३९६
२८	कृष्णनाममाहात्म्यं, हरिनाममाहात्म्यं, तुलसीमाहात्म्यं, कन्यादानमाहात्म्यं वापीकूपतड़ागादिदानमाहात्म्यञ्च	३९७
२९	अशौचविधिकथनम्	३९९
३०	अपमृत्युफलं नारायणबलिक्रियादिकथनञ्च	४००
३१	भूमिस्वर्णगोप्रभृतिदानफलं निषिद्धवर्जनञ्च	४०२
३२	विविधश्राद्धकथनम्	४०३
३३	नित्यश्राद्धादिकथनम्	४०४
३४	मनुष्याणां कर्मविपाककथनम्	४०५
३५	वैतरणीप्रमाणकथनं, वैतरणीमाहात्म्यं, विविधपापफलकथनं विष्णुनामस्मरणफलञ्च	४०६

इति विषयानुक्रमः ।

—:*:—

श्रीहरिः

श्रीकृष्णद्वैपायनव्यासमहामुनिप्रणीतं

श्रीगरुड़महापुराणम्

पूर्वार्द्धम्

प्रथमोऽध्यायः

अजमजरमनन्तं ज्ञानरूपं महान्तं शिवममलमनादिं भूतदेहादिहीनम् ।
सकलकरणहीनं सर्वभूतस्थितं तं हरिममलममायं सर्वगं वन्द एकम् ॥१॥

नमस्यामि हरिं रुद्रं ब्रह्माणञ्च गणाधिपम् । देवीं सरस्वतीञ्चैव मनोवाक्कर्मभिः सदा ॥२॥
सूतं पौराणिकं शान्तं सर्वशास्त्रविशारदम् । विष्णुभक्तं महात्मानं नैमिषारण्यमागतम् ॥३॥
तीर्थयात्राप्रसङ्गेन उपविष्टं शुभासने । ध्यायन्तं विष्णुमनघं तमभ्यर्च्यास्तुवन् कविम् ॥४॥
शौनकाद्या महाभागा नैमिषीयास्तपोधनाः । मुनयो रविसङ्काशाः शान्ता यज्ञपरायणाः ॥५॥

ऋषय ऊचुः

सूत जानासि सर्वं त्वं पृच्छामस्त्वामतो वयम् । देवतानां हि को देव ईश्वरः पूज्य एव कः ॥६॥
को ध्येयः को जगत्स्रष्टा जगत्पाति च हन्ति कः । कस्मात् प्रवर्त्तते धर्मो दुष्टहन्ता च कः स्मृतः ॥
तस्य देवस्य किं रूपं जगत्सर्गः कथं मतः । कैर्व्रतैः स तु तुष्टः स्यात् केन योगेन वाप्यते ॥८॥
अवताराश्च के तस्य कथं वंशादिसम्भवः । वर्णाश्रमादिधर्माणां कः पाता कः प्रवर्त्तकः ॥९॥
एतत्सर्वं तथाऽन्यच्च ब्रूहि सूत महामते । नारायणकथाः सर्वाः कथयास्माकमुत्तमाः ॥१०॥

शुचिं शुचिपदं हंसं तत्पदं परमेश्वरम् । युक्त्वा सर्वात्मनात्मानं तं देवं चिन्तयाम्यहम् ॥१५॥
यस्मिन्विश्वानि भूतानि तिष्ठन्ति च विशन्ति च । गुणभूतानि भूतेशे सूत्रे मणिगणा इव ॥१६॥
सहस्राक्षं सहस्राङ्घ्रिं सहस्रोरुं वराननम् । अणीयसामणीयांसं स्थविष्ठञ्च स्थवीयसाम् ॥
गरीयसां गरिष्ठञ्च श्रेष्ठञ्च श्रेयसामपि ॥१७॥
यं वाक्येष्वनुवाक्येषु निषत्सूपनिषत्सु च । गृणन्ति सत्यकर्माणं सत्यं सत्येषु सामसु ॥१८॥
पुराणपुरुषः प्रोक्तो ब्रह्मा प्रोक्तो द्विजातिषु । क्षये सङ्कर्षणः प्रोक्तस्तमुपास्यमुपास्महे ॥१९॥
यस्मिन्लोकाः स्फुरन्तीमे जलेषु शकुलो यथा । ऋतमेकाक्षरं ब्रह्म यत्तत्सदसतः परम् ॥
अर्चयन्ति च यं देवा यक्षराक्षसपन्नगाः ॥२०॥
यस्याग्निरास्यं द्यौर्मूर्द्धा खं नाभिश्चरणौ क्षितिः । चन्द्रादित्यौ च नयने तं देवं चिन्तयाम्यहम् ॥२१॥
यस्य त्रिलोकी जठरे यस्य काष्ठाश्च बाहवः । यस्योच्छ्वासश्च पवनः तं देवं चिन्तयाम्यहम् ॥२२॥
यस्य केशेषु जीमूता नद्यः सर्वाङ्गसन्धिषु । कुक्षौ समुद्राश्चत्वारस्तं देवं चिन्तयाम्यहम् ॥२३॥
परः कालात्परो यज्ञात्परः सदसतश्च यः । अनादिरादिर्विश्वस्य तं देवं चिन्तयाम्यहम् ॥२४॥
मनसश्चन्द्रमा यस्य चक्षुषोश्च दिवाकरः । मुखादग्निश्च संजज्ञे तं देवं चिन्तयाम्यहम् ॥२५॥
पद्भ्यां यस्य क्षितिर्जाता श्रोत्राभ्याञ्च तथा दिशः । मूर्द्धभागाद्दिवं यस्य तं देवं चिन्तयाम्यहम् ॥
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च । वंशानुचरितं यस्मात्तं देवं चिन्तयाम्यहम् ॥२७॥
यं ध्यायाम्यहमेतस्माद् व्रजामः सारमीक्षितुम् ॥२८॥

ब्रह्मोवाच

इत्युक्तोऽहं पुरा रुद्र श्वेतद्वीपनिवासिनम् । स्तुत्वा प्रणम्य तं विष्णुं श्रोतुकामाः किल स्थिराः ॥२९॥
अस्माकं मध्यतो रुद्र उवाच परमेश्वरम् । सारात्सारतरं विष्णुं पृष्टवांस्तं प्रणम्य वै ॥३०॥

ब्रह्मोवाच

यथा पृच्छसि मां व्यासस्तथासौ भगवान्भवः । पप्रच्छ विष्णुं देवाद्यैः शृण्वतो मम वै सह ॥३१॥

रुद्र उवाच

हरे कथय देवेश देवदेवः क ईश्वरः । को ध्येयः कश्च वै पूज्यः कैर्व्रतैस्तुष्यते परः ॥३२॥
कैर्धर्मैः कैश्च नियमैः कया वा धर्मपूजया । केनाचारेण तुष्टः स्यात्किं तद्रूपञ्च तस्य वै ॥३३॥
कस्माद्देवाजगज्जातं जगत्पालयते च कः । कीदृशैरवतारैश्च कस्मिन्याति लयं जगत् ॥३४॥
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च । कस्माद्देवात्प्रवर्त्तन्ते कस्मिन्नेतत्प्रतिष्ठितम् ॥
एतत्सर्वं हरे ब्रूहि यच्चान्यदपि किञ्चन ॥३५॥
परमेश्वरमाहात्म्यं युक्तयोगादिकं तथा । तथाऽष्टादशविद्याश्च हरी रुद्रं ततोऽब्रवीत् ॥३६॥

हरिरुवाच

शृणु रुद्र प्रवक्ष्यामि ब्रह्मणा च सुरैः सह । अहं हि देवो देवानां सर्वलोकेश्वरेश्वरः ॥३७॥
अहं ध्येयश्च पूज्यश्च स्तुत्योऽहं स्तुतिभिः सुरैः । अहं हि पूजितो रुद्र ददामि परमां गतिम् ॥३८॥
नियमैश्च व्रतैस्तुष्ट आचारेण च मानवैः । जगत्स्थितेरहं बीजं जगत्कर्त्ता त्वहं शिव ॥३९॥
दुष्टनिग्रहकर्त्ता हि धर्मगोप्ता त्वहं हर । अवतारैश्च मत्स्याद्यैः पालयाम्यखिलं जगत् ॥४०॥
अहं मन्त्राश्च मन्त्रार्थः पूजाध्यानपरो ह्यहम् । स्वर्गादीनाञ्च कर्त्ताऽहं स्वर्गादीन्यहमेव च ॥४१॥
ज्ञाता श्रोता तथा मन्ता वक्ता वक्तव्यमेव च । सर्वः सर्वात्मको देवो भुक्तिमुक्तिकरः परः ॥४२॥
ध्यानं पूजोपहारोऽहं मण्डलान्यहमेव च । इतिहासान्यहं रुद्र सर्वदेवो ह्यहं शिव ॥४३॥
सर्वज्ञानान्यहं शम्भो ब्रह्मात्माहमहं शिव । अहं ब्रह्मा सर्वलोकः सर्वदेवात्मको ह्यहम् ॥४४॥
अहं साक्षात्सदाचारो धर्मोऽहं वैष्णवो ह्यहम् । वर्णाश्रमास्तथा चाहं तद्धर्मोऽहं पुरातनः ॥४५॥
यमोऽहं नियमो रुद्र व्रतानि विविधानि च । अहं सूर्यस्तथा चन्द्रो मङ्गलादीन्यहं तथा ॥४६॥
पुरा मां गरुड़ः पक्षी तपसाऽऽराधयद्भुवि । तुष्ट ऊचे वरं ब्रूहि मत्तो वव्रे वरं स च ॥४७॥

गरुड़उवाच

मम माता च विनता नागैर्दासीकृता हरे । यथाहं दैवतान्जित्वा चामृतं ह्यानयामि तत् ॥४८॥
दास्याद्विमोक्षयिष्यामि यथाहं वाहनस्तव । महाबलो महावीर्यः सर्वज्ञो नागदारणः ॥
पुराणसंहिताकर्त्ता यथाऽहं स्यां तथा कुरु ॥४९॥

विष्णुरुवाच

यथा त्वयोक्तं गरुड़ तथा सर्वं भविष्यति । नागदास्यान्मातरं त्वं विनतां मोक्षयिष्यसि॥५०॥
देवादीन्सकलान्जित्वा चामृतं ह्यानयिष्यसि । महाबलो वाहनस्त्वं भविष्यसि विषार्दनः ॥५१॥
पुराणं मत्प्रसादाच्च मम माहात्म्यवाचकम् । यदुक्तं मत्स्वरूपञ्च तत्र चाविर्भविष्यति ॥५२॥
गारुड़ं तव नाम्ना तल्लोके ख्यातिं गमिष्यति । यथाऽहं देवदेवानां श्रीः ख्याता विनतासुत ॥
तथा ख्यातिं पुराणेषु गारुड़ं गरुड़ेष्यति ॥५३॥
यथाहं कीर्त्तनीयोऽथ तथा त्वं गरुड़ात्मना । मां ध्यात्वा पक्षिमुख्येदं पुराणं गद गारुड़म् ॥५४॥
इत्युक्तो गरुड़ो रुद्र कश्यपायाह पृच्छते । कश्यपो गारुड़ं श्रुत्वा वृक्षं दग्धमजीवयत् ॥५५॥
स्वयञ्चान्यमना भूत्वा विद्ययाऽन्यान्यजीवयत् । यक्षि ॐ उं स्वाहा जापी विद्येयं गारुड़ी परा ॥
गरुड़ोक्तं गारुड़ं हि शृणु रुद्र महात्मकम् ॥ ५६ ॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे प्रश्नाध्यायो नाम द्वितीयोऽध्यायः ॥ २ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

हरिरुवाच ।

कृत्वेहामुत्र संस्थानं प्रजासर्गं तु मानसम् । अथासृजत् प्रजाकर्त्तॄन् मानसांस्तनयान् प्रभुः ॥
धर्मं रुद्रं मनुञ्चैव सनकं ससनातनम् । भृगुं सनत्कुमारञ्च रुचिं शुद्धं तथैव च ॥२॥
मरीचिमत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यं पुलहं क्रतुम् । वसिष्ठं नारदञ्चैव पितॄन् बर्हिषदस्तथा ॥३॥
अग्निष्वात्तांश्च कव्यादानाज्यपांश्च सुकालिनः । उपहूतांस्तथा दीप्यांस्त्रींश्च मूर्त्तिविवर्जितान् ॥४॥
चतुरो मूर्त्तियुक्तांश्च दक्षं चक्रेऽथ दक्षिणात् । वामाङ्गुष्ठात्तस्य भार्य्यामसृजत् पद्मसम्भवः ॥५॥
तस्यां तु जनयामास दक्षो दुहितरः शुभाः । ददौ ता ब्रह्मपुत्रेभ्यः सतीं रुद्राय दत्तवान् ॥
रुद्रपुत्रा बभूवुर्हि असंख्याता महाबलाः ॥ ६ ॥
भृगवे च ददौ ख्यातिं रूपेणाप्रतिमां शुभाम् । भृगोर्धाताविधातारौ जनयामास सा शुभा ॥७॥
श्रियञ्च जनयामास पत्नी नारायणस्य या । तस्यां वै जनयामास बलोन्मादौ हरिः स्वयम् ॥८॥
आयतिर्नियतिश्चैव मनोः कन्ये महात्मनः । धाताविधात्रोस्ते भार्य्ये तयोर्जातौ सुतावुभौ ॥
प्राणश्चैव मृकण्डुश्च मार्कण्डेयो मृकण्डुतः ॥ ९ ॥
पत्नी मरीचेः सम्भूतिः पौर्णमासमसूयत । विरजः सर्वगश्चैव तस्य पुत्रौ महात्मनः ॥१०॥
स्मृतेश्चाङ्गिरसः पुत्राः प्रसूताः कन्यकास्तथा । सिनीबाली कुहूश्चैव राका चानुमतिस्तथा ॥११॥
अनसूया तथैवात्रेर्जज्ञे पुत्रानकल्मषान् । सोमं दुर्वाससञ्चैव दत्तात्रेयञ्च योगिनम् ॥१२॥
प्रीत्यां पुलस्त्यभार्य्यायां दत्तोलिस्तत्सुतोऽभवत् । कर्म्मणश्चार्थवीरश्च सहिष्णुश्च सुतत्रयम् ॥
क्षमा तु सुषुवे भार्य्या पुलहस्य प्रजापतेः ॥ १३ ॥
क्रतोश्च सुमतिर्भार्य्या बालखिल्यानसूयत । षष्टिं बालसहस्राणि ऋषीणामूर्ध्वरेतसाम् ॥
अङ्गुष्ठपर्वमात्राणां ज्वलद्भास्करवर्चसाम् ॥ १४ ॥
ऊर्जायां तु वसिष्ठस्य सप्ताजायन्त वै सुताः । रजोगात्रोर्ध्वबाहुश्च शरणश्चानघस्तथा ॥
सुतपाः शुक्र इत्येते सर्वे सप्तर्षयो मताः ॥ १५ ॥
स्वाहां प्रादात् स दक्षोऽपि सशरीराय वह्नये । तस्मात् स्वाहा सुतान् लेभे त्रीनुदारौजसो हर ॥
पावकं पवमानञ्च शुचिञ्चापि जलाशिनः ॥ १६ ॥
पितृभ्यश्च स्वधा जज्ञे मेनां वैतरणीं तथा । ते उभे ब्रह्मवादिन्यौ मेनाऽगात्तु हिमाचलम् ॥१७॥
ततो ब्रह्माऽऽत्मसम्भूतं पूर्वं स्वायम्भुवं प्रभुः । आत्मानमेव कृतवान् प्रजापाल्ये मनुं हर ॥१८॥
शतरूपाञ्च तां नारीं तपोनिहतकल्मषाम् । स्वायम्भुवो मनुर्देवः पत्नीत्वे जगृहे ततः ॥१९॥

तस्माच्च पुरुषाद्देवी शतरूपा व्यजायत । प्रियव्रतोत्तानपादौ प्रसूत्याकूतिसंज्ञिते ॥२०॥
देवहूतिं मनुस्तासु आकूतिं रुचये ददौ । प्रसूतिञ्चैव दक्षाय देवहूतिञ्च कर्दमे ॥२१॥
रुचेर्यज्ञो दक्षिणाऽभूद्दक्षिणायाञ्च यज्ञतः । अभवन् द्वादश सुता यमो नाम महाबलः ॥२२॥
चतुर्विंशति कन्याश्च सृष्टवान् दक्ष उत्तमः । श्रद्धा लक्ष्मीर्धृतिस्तुष्टिः पुष्टिर्मेधा क्रिया तथा ॥२३॥
बुद्धिर्लज्जा वपुः शान्तिर्ऋद्धिः कीर्तिस्त्रयोदशी । पत्न्यर्थं प्रतिजग्राह धर्मो दाक्षायणः प्रभुः ॥२४॥
ख्यातिः सत्यथ सम्भूतिः स्मृतिः प्रीतिः क्षमा तथा । सन्नतिश्चानसूया च ऊर्जा स्वाहा स्वधा तथा ॥
भृगुर्भवो मरीचिश्च तथा चैवाङ्गिरा मुनिः । पुलस्त्यः पुलहश्चैव क्रतुश्चर्षिवरस्तथा ॥२६॥
अत्रिर्वसिष्ठो वह्निश्च पितरश्च यथाक्रमम् । ख्यात्याद्या जगृहुः कन्या मुनयो मुनिसत्तमाः ॥२७॥
श्रद्धा कामं चला दर्पं नियमं धृतिरात्मजम् । सन्तोषञ्च तथा तुष्टिर्लोभं पुष्टिरसूयत ॥२८॥
मेधा श्रुतं क्रिया दण्डं लयं विनयमेव च । बोधं बुद्धिस्तथा लज्जा विनयं वपुरात्मजम् ॥२९॥
व्यवसायं प्रजज्ञे वै क्षेमं शान्तिरसूयत । सुखमृद्धिर्यशः कीर्तिरित्येते धर्मसूनवः ॥३०॥
कामस्य च रतिर्भार्य्या तत्पुत्रो हर्ष उच्यते ॥ ३० ॥
ईजे कदाचिद् यज्ञेन हयमेधेन दक्षकः । तस्य जामातरः सर्वे यज्ञं जग्मुर्निमन्त्रिताः ॥३१॥
भार्य्याभिः सहिताः सर्वे रुद्रं देवीं सतीं विना । अनाहूता सती प्राप्ता दक्षेणैवावमानिता ॥३२॥
त्यक्त्वा देहं पुनर्जाता मेनायान्तु हिमालयात् । शम्भोर्भार्य्याऽभवद् गौरी तस्या जज्ञे विनायकः ॥
कुमारश्चैव भृङ्गीशः क्रुद्धो रुद्रः प्रतापवान् । विध्वंस्य यज्ञं दक्षं तु तं शशाप पिनाकधृक् ॥
ध्रुवस्यान्वयसम्भूतो मनुष्यस्त्वं भविष्यसि ॥ ३४ ॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

हरिरुवाच

उत्तानपादादभवत् सुरुच्यामुत्तमः सुतः । सुनीत्यां तु ध्रुवः पुत्रः स लेभे स्थानमुत्तमम् ॥१॥
मुनिप्रसादादाराध्य देवदेवं जनार्दनम् । ध्रुवस्य तनयः श्लिष्टिर्महाबलपराक्रमः ॥२॥
तस्य प्राचीनबर्हिस्तु पुत्रस्तस्याप्युदारधीः । दिवञ्जयस्तस्य सुतस्तस्य पुत्रो रिपुः स्मृतः ॥३॥
रिपोः पुत्रस्ततः श्रीमांश्चाक्षुषः कीर्त्तितो मनुः । रुरुस्तस्य सुतः श्रीमानङ्गस्तस्य तथात्मजः ॥४॥
अङ्गस्य वेणः पुत्रस्तु नास्तिको धर्मवर्जितः । अधर्मकारो वेणश्च मुनिभिश्च कुशैर्हतः ॥५॥
ऊरुं ममन्थुः पुत्रार्थे ततोऽस्य तनयोऽभवत् । ह्रस्वोऽतिमात्रः कृष्णाङ्गो निषीदेति ततोऽब्रुवन् ।
निषादस्तेन वै जातो विन्ध्यशैलनिवासकः ॥ ६ ॥

ततोऽस्य दक्षिणं पाणिं ममन्थुः सहसा द्विजाः। तस्मात्तस्य सुतो जातो विष्णोर्मानसरूपधृक् ॥७॥
पृथुरित्येव नाम्ना स वेणः पुत्राद्दिवं ययौ। दुदोह पृथिवीं राजा प्रजानां जीवनाय हि ॥ ८ ॥
अन्तर्धानः पृथोः पुत्रो हविर्धानस्तदात्मजः। प्राचीनबर्हिस्तत्पुत्रः पृथिव्यामेकराड् बभौ ॥
उपयेमे समुद्रस्य लवणस्य स वै सुताम्। तस्मात् सुषाव सामुद्री दश प्राचीनबर्हिषः ॥१०॥
सर्वे प्राचेतसो नाम धनुर्वेदस्य पारगाः। अपृथग्धर्मचरणास्तेऽतप्यन्त महत्तपः ॥ ११ ॥
दशवर्षसहस्राणि समुद्रसलिलेशयाः। प्रजापतित्वं संप्राप्ता भार्या तेषाञ्च मारिषा ॥ १२ ॥
अभवद् भवशापेन तस्यां दक्षोऽभवत्ततः। असृजन्मनसा दक्षः प्रजाः पूर्वं चतुर्विधाः ॥ १३ ॥
नावर्द्धन्त च तास्तस्य अपध्याता हरेण तु। मैथुनेन ततः सृष्टिं कर्त्तुमैच्छत् प्रजापतिः ॥ १४ ॥
असिक्नीमावहद्भार्यां वीरणस्य प्रजापतेः। तस्य पुत्रसहस्रं तु वैरण्यां समपद्यत ॥ १५ ॥
नारदोक्ता भुवश्चान्तं गता ज्ञातुञ्च नागताः। दक्षः पुत्रसहस्रञ्च तेषु नष्टेषु सृष्टवान् ॥ १६ ॥
शबलाश्वास्तेऽपि गता भ्रातॄणां पदवीं हरः। दक्षः क्रुद्धः शशापाथ नारदं जन्म चाप्स्यसि ॥
नारदो ह्यभवत् पुत्रः कश्यपस्य मुनेः पुनः। यज्ञे ध्वस्तेऽथ दक्षोऽपि शशापोग्रं महेश्वरम् ॥१८॥
दृष्ट्वा त्वामुपचारैश्च अपसव्यन्ति हि द्विजाः। जन्मान्तरेऽपि वैराणि न विनश्यन्ति शङ्कर ॥१९॥
असिक्न्यां जनयामास दक्षो दुहितरं ह्यथ। षष्टिं कन्यां रूपयुतां द्वे चैवाङ्गिरसे ददौ ॥२०॥
द्वे प्रादात् स कृशाश्वाय दश धर्म्माय चाप्यथ। त्रयोदश कश्यपाय सप्तविंश तथेन्दवे ॥२१॥
प्रददौ बहुपुत्राय सुप्रभां भामिनीं तथा। मनोरमां भानुमतीं विशालां बहुदामथ ॥२२॥
दक्षः प्रादान्महादेव चतस्रोऽरिष्टनेमिने। स कृशाश्वाय च प्रादात् सुप्रजाञ्च तथा जयाम् ॥
अरुन्धती वसुर्यामी लम्बा भानुर्मरुद्वती। सङ्कल्पा च मुहूर्त्ता च साध्या विश्वा च ता दश ॥२४॥
धर्मपत्न्यः समाख्याताः कश्यपस्य वदाम्यहम्। अदितिर्दितिर्दनुः काला ह्यनायुः सिंहिका मुनिः ॥
कद्रूः प्राधा इरा क्रोधा विनता सुरभिः खगा ॥ २५ ॥
विश्वेदेवास्तु विश्वायाः साध्या साध्यान् व्यजायत। मरुद्वत्यां मरुद्वन्तो वसोस्तु वसवस्तथा ॥
भानोस्तु भानवो रुद्र मुहूर्त्ताश्च मुहूर्त्तजाः। लम्बायाश्चैव घोषोऽथ नागवीथिस्तु यामितः ॥
पृथिवीविषयं सर्वमरुन्धत्यां व्यजायत। सङ्कल्पायास्तु सर्वात्मा जज्ञे सङ्कल्प एव हि ॥२८॥
आपो ध्रुवश्च सोमश्च धवश्चैवानिलोऽनलः। प्रत्यूषश्च प्रभासश्च वसवो नामभिः स्मृताः ॥२९॥
आपस्य पुत्रो वैतुण्ड्यः श्रमः श्रान्तो ध्वनिस्तथा। ध्रुवस्य पुत्रो भगवान् कालो लोकस्य कालनः ॥
सोमस्य भगवान् वर्चा वर्चस्वी येन जायते ॥ ३० ॥
धवस्य पुत्रो द्रुहिणो हुतहव्यवहस्तथा। मनोहरायां शिशिरः प्राणोऽथ रमणस्तथा ॥ ३१ ॥
अनिलस्य शिवा भार्या तस्याः पुत्रः पुलोमजः। अविज्ञातगतिश्चैव द्वौ पुत्रावनिलस्य तु ॥३२॥

अग्निपुत्रः कुमारस्तु शरस्तम्बे व्यजायत । तस्य शाखो विशाखश्च नैगमेयश्च पृष्ठतः ॥
अपत्यं कृत्तिकानां तु कार्तिकेय इति स्मृतः ॥ ३३ ॥
प्रत्यूषस्य विदुः पुत्रमृषिं नाम्ना तु देवलम् । विश्वकर्मा प्रभासस्य विख्यातो देववर्द्धकिः ॥३४॥
अजैकपादहिर्बुध्नस्त्वष्टा रुद्रश्च वीर्यवान् । त्वष्टुश्चाप्यात्मजः पुत्रो विश्वरूपो महातपाः ॥
हरश्च बहुरूपश्च त्र्यम्बकश्चापराजितः ॥ ३५ ॥
वृषाकपिश्च शम्भुश्च कपर्दी रैवतस्तथा । मृगव्याधश्च शर्वश्च कपाली च महामुने ॥
एकादशैते कथिता रुद्रास्त्रिभुवनेश्वराः ॥ ३६ ॥
सप्तविंशति सोमस्य पत्न्यो नक्षत्रसंज्ञिताः । अदित्यां कश्यपाच्चैव सूर्या द्वादश जज्ञिरे ॥
विष्णुः शक्रोऽर्यमा धाता त्वष्टा पूषा तथैव च ॥ ३७ ॥
विवस्वान् सविता चैव मित्रो वरुण एव च । अंशुमांश्च भगश्चैव आदित्या द्वादश स्मृताः ॥ ३८॥
हिरण्यकशिपुर्दित्यां हिरण्याक्षोऽभवत्तदा । सिंहिका चाभवत् कन्या विप्रचित्तिपरिग्रहा ॥३९॥
हिरण्यकशिपोः पुत्राश्चत्वारः प्रथुलौजसः । अनुह्लादश्च ह्लादश्च प्रह्लादश्चैव वीर्यवान् ॥
संह्लादश्चाभवत्तेषां प्रह्लादो विष्णुतत्परः ॥ ४० ॥
संह्लादपुत्र आयुष्मान् शिविर्बाष्कल एव च । विरोचनश्च प्राह्लादिर्बलिर्जज्ञे विरोचनात् ॥
बलेः पुत्रशतं त्वासीद्बाणज्येष्ठं वृषध्वज ॥ ४१ ॥
हिरण्याक्षसुताश्चासन् सर्व एव महाबलाः । उत्करः शकुनिश्चैव भूतसन्तापनस्तथा ॥
महानाभो महाबाहुः कालनाभस्तथापरः ॥ ४२ ॥
अभवन् दनुपुत्राश्च द्विमूर्धा शङ्करस्तथा । अयोमुखः शङ्कुशिराः कपिलः शम्बरस्तथा ॥४३॥
एकचक्रो महाबाहुस्तारकश्च महाबलः । स्वर्भानुर्वृषपर्वा च पुलोमा च महासुरः ॥
एते दनोः सुताः ख्याता विप्रचित्तिश्च वीर्यवान् ॥ ४४ ॥
स्वर्भानोः सुप्रभा कन्या शर्मिष्ठा वार्षपार्वणी । औपदानवी हयशिराः प्रख्याता वरकन्यकाः ४५॥
वैश्वानरसुते चोभे पुलोमा कालका तथा । उभे ते तु महाभागे मारीचेस्तु परिग्रहः ॥४६॥
ताभ्यां पुत्रसहस्राणि षष्टिर्दानवसत्तमाः । पौलोमाः कालकञ्जाश्च मारीचतनयाः स्मृताः ४७॥
सिंहिकायां समुत्पन्ना विप्रचित्तिसुतास्तथा । व्यंशः शल्यश्च बलवान् नभश्चैव महाबलः ॥४८॥
वातापिर्नमुचिश्चैव इल्वलः खसृमस्तथा । अञ्जको नरकश्चैव कालनाभस्तथैव च ॥
निवातकवचा दैत्याः प्रह्लादस्य कुलेऽभवन् ॥ ४९ ॥
षट्सुताश्चमहासत्त्वास्ताम्रायाः परिकीर्त्तिताः । शुकी श्येनी च भासी च सुग्रीवी शुचिगृध्रिका ॥
शुकी शुकानजनयदुलूकी प्रत्युलूककान । श्येनी श्येनांस्तथा भासीभासान्गृध्रांश्च गृध्र्यपि ॥

शुच्योदकान् पक्षिगणान् सुग्रीवी तु व्यजायत । अश्वानुष्ट्रान् गर्दभांश्च ताम्रावंशः प्रकीर्त्तितः ॥
विनतायास्तु पुत्रौ द्वौ विख्यातौ गरुडारुणौ । सुरसायाः सहस्रन्तु सर्पाणाममितौजसाम् ॥५३॥
काद्रवेयाश्च फणिनः सहस्रममितौजसः । तेषां प्रधानो भूतेश शेषवासुकितक्षकाः ॥५४॥
शङ्खः श्वेतो महापद्मः कम्बलाश्वतरौ तथा । एलापत्रस्तथा नागः कर्कोटकधनञ्जयौ ॥
गणं क्रोधवशं विद्धि ते च सर्वे च दंष्ट्रिणः ॥५५॥
क्रोधा तु जनयामास पिशाचांश्च महाबलान् । गास्तु वै जनयामास सुरभिर्महिषांस्तथा ॥५६॥
इरा वृक्षलतावल्लीस्तृणजातीश्च सर्वशः । खगा च यक्षरक्षांसि मुनिरप्सरसस्तथा ॥
अरिष्टा तु महासत्त्वान् गन्धर्वान्समजीजनत् ॥५७॥
देवा एकोनपञ्चाशन्मरुतो ह्यभवन्निति । एकज्योतिर्द्विज्योतिश्च त्रिचतुर्ज्योतिरेव च ॥५८॥
एकशुक्रो द्विशुक्रश्च त्रिशुक्रश्च महाबलः । ईदृक्चान्यादृक्सदृक्च ततः प्रतिसदृक्तथा ॥५९॥
मितश्च समितश्चैव सुमितश्च महाबलः । ऋतजित्सत्यजिच्चैव सुषेणः सेनजित्तथा ॥६०॥
अतिमित्रोऽप्यमित्रश्च दूरमित्रोऽजितस्तथा । ऋतश्च ऋतधर्म्मा च विहर्त्ता वरुणो ध्रुवः ॥६१॥
विधारणश्चतुर्थोऽयं गृहमेकगणः स्मृतः । ईदृक्षश्च सदृक्षश्च एतादृक्षो मिताशनः ॥६२॥
एतनः प्रसदृक्षश्च सुरतश्च महातपाः । तादृगुग्रो ध्वनिर्भासो विमुक्तो विक्षिपः सहः ॥६३॥
द्युतिर्वसुर्बलाधृष्यो लाभः कामो जयो विराट् । उद्वेषणो गणो नाम वायुस्कन्धे तु सप्तमे ॥६४॥
एतत्सर्वं हरे रूपं राजानो दानवाः सुराः । सूर्यादिपरिवारेण मन्वाद्या ईजिरे हरिम् ॥६५॥
इति श्रीगारुडे महापुराणे षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

सप्तमोऽध्यायः

रुद्र उवाच

सूर्यादिपूजनं ब्रूहि स्वायम्भुवादिभिः कृतम् । भुक्तिमुक्तिप्रदं सारं व्यास संक्षेपतः शृणु ॥१॥

हरिरुवाच ।

सूर्यादिपूजां वक्ष्यामि धर्म्मकामादिकारिकाम् ॥ २ ॥

ॐ सूर्यासनाय नमः ॐ नमः सूर्यमूर्त्तये । ॐ ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नमः । ॐ सोमाय नमः । ॐ मङ्गलाय नमः । ॐ बुधाय नमः । ॐ बृहस्पतये नमः । ॐ शुक्राय नमः । ॐ शनैश्चराय नमः । ॐ राहवे नमः । ॐ केतवे नमः । ॐ तेजश्चण्डाय नमः ॥ ३ ॥

आसनावाहनं पाद्यमर्घ्यमाचमनं तथा । स्नानं वस्त्रोपवीतञ्च गन्धं पुष्पञ्च धूपकम् ॥ ४ ॥

दीपकञ्च नमस्कारं प्रदक्षिणविसर्जने । सूर्य्यादीनां सदा कुर्य्यादिति मन्त्रैर्वृषध्वज ॥ ५ ॥

ॐ हां शिवासनाय नमः । ॐ हां शिवमूर्त्तये नमः । ॐ हां हृदयाय नमः । ॐ हीं शिरसे स्वाहा । ॐ हूं शिखायै वषट् । ॐ हैं कवचाय हुं । ॐ हौं नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ हः अस्त्राय फट् । ॐ हां सद्योजाताय नमः । ॐ हीं वामदेवाय नमः । ॐ हूं अघोराय नमः । ॐ हैं तत्पुरुषाय नमः । ॐ हौं ईशानाय नमः । ॐ हां गौर्य्यै नमः । ॐ हां गुरुभ्यो नमः । ॐ हां इन्द्राय नमः । ॐ हां चण्डाय नमः । ॐ हां अघोराय नमः । ॐ वासुदेवासनाय नमः । ॐ वासुदेवमूर्त्तये नमः । ॐ अं ॐ नमो भगवते वासुदेवाय नमः । ॐ आं ॐ नमो भगवते सङ्कर्षणाय नमः । ॐ अं ॐ नमो भगवते प्रद्युम्नाय नमः । ॐ अं ॐ नमो भगवते अनिरुद्धाय नमः । ॐ नारायणाय नमः । ॐ तत्सद्ब्रह्मणे नमः । ॐ हूं विष्णवे नमः । ॐ क्ष्रौं नमो भगवते नरसिंहाय नमः । ॐ भूः ॐ नमो भगवते वराहाय नमः । ॐ कं टं पं शं वैनतेयाय नमः । ॐ जं खं वं सुदर्शनाय नमः । ॐ खं ठं फं षं गदायै नमः । ॐ वं लं मं क्षं पाञ्चजन्याय नमः । ॐ घं ढं भं हं श्रियै नमः । ॐ गं डं वं सं पुष्टयै नमः । ॐ धं षं वं सं वनमालायै नमः । ॐ सं दं लं श्रीवत्साय नमः । ॐ ठं चं भं यं कौस्तुभाय नमः । ॐ गुरुभ्यो नमः । ॐ इन्द्रादिभ्यो नमः । ॐ विष्वक्सेनाय नमः ॥ ६ ॥

आसनादीन् हरेरेतैर्मन्त्रैर्दद्याद्वृषध्वज । विष्णुशक्त्याः सरस्वत्याः पूजां शृणु शुभप्रदाम् ॥७॥

ॐ ह्रीं सरस्वत्यै नमः । ॐ ह्रां हृदयाय नमः । ॐ ह्रीं शिरसे नमः । ॐ ह्रूं शिखायै नमः । ॐ ह्रैं कवचाय नमः । ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय नमः । ॐ ह्रः अस्त्राय नमः ॥ ८ ॥

श्रद्धा ऋद्धिः कला मेधा तुष्टिः पुष्टिः प्रभा मतिः ।
ओंकाराद्या नमोऽन्ताश्च सरस्वत्याश्च शक्तयः ॥ ९ ॥

ॐ क्षेत्रपालाय नमः । ॐ गुरुभ्यो नमः । ॐ परमगुरुभ्यो नमः ॥ १० ॥

पद्मस्थायाः सरस्वत्या आसनाद्यं प्रकल्पयेत् । सूर्य्यादीनां स्वकैर्मन्त्रैः पवित्रारोहणं तथा ॥११॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे सप्तमोऽध्यायः ॥७॥

अष्टमोऽध्यायः

हरिरुवाच

भूमिष्ठे मण्डपे स्नात्वा मण्डले विष्णुमर्चयेत् । पञ्चरङ्गिकचूर्णेन वज्रनाभं तु मण्डलम् ॥ १ ॥
षोडशैः कोष्ठकैस्तत्र सम्मितं रुद्र कारयेत् । चतुर्थपञ्चकोणेषु सूत्रपातं तु कारयेत् ॥ २ ॥

कोणसूत्रादुभयतः कोणा ये तत्र संस्थिताः। तेषु चैव प्रकुर्वीत सूत्रपातं विचक्षणः॥ ३॥
तदनन्तरकोणेषु एवमेव हि कारयेत्। प्रथमा नाभिरुद्दिष्टा मध्ये रेखाप्रसङ्गमे॥ ४॥
अन्तरेषु च सर्वेषु अष्टौ चैव तु नाभयः। पूर्वमध्यमनाभिभ्यामथ सूत्रं तु भ्रामयेत्॥ ५॥
अन्तरेषु द्विजश्रेष्ठः पादोनं भ्रामयेद्धर। अनेन नाभिसूत्रस्य कर्णिकां भ्रामयेच्छिव॥ ६॥
कर्णिकाया द्विभागेन केशराणि विचक्षणः। तदग्रेण सदा विद्वान्दलान्येव समालिखेत्॥७॥
सर्वेषु नाभिक्षेत्रेषु मानेनानेन सुव्रत। पद्मानि तानि कुर्वीत देशिकः परमार्थवित्॥८॥
आदिसूत्रविभागेन द्वाराणि परिकल्पयेत्। द्वारशोभां तथा तत्र तदर्द्धेन तु कल्पयेत्॥९॥
कर्णिकां पीतवर्णेन सितरक्तादिकेशरान्। अन्तरं नीलवर्णेन दलानि ह्यसितेन च॥१०॥
कृष्णवर्णेन रजसा चतुरस्रं प्रपूरयेत्। द्वाराणि शुक्लवर्णेन रेखाः पञ्च च मण्डले॥११॥
सिता रक्ता तथा पीता कृष्णा चैव यथाक्रमम्। कृत्वैव मण्डलञ्चादौ न्यासं तत्रार्चयेद्धरिम्॥१२॥
हृन्मध्ये तु न्यसेद्विष्णुं मध्ये सङ्कर्षणं तथा। प्रद्युम्नं शिरसि न्यस्य शिखायामनिरुद्धकम्॥१३॥
ब्रह्माणं सर्वगात्रेषु करयोः श्रीधरं तथा। अहं विष्णुरिति ध्यात्वा कर्णिकायां न्यसेद्धरिम्॥
न्यस्येत्सङ्कर्षणं पूर्वे प्रद्युम्नञ्चैव दक्षिणे। अनिरुद्धं पश्चिमे च ब्रह्माणञ्चोत्तरे न्यसेत्॥१५॥
श्रीधरं रुद्रकोणेषु इन्द्रादीन्दिक्षु विन्यसेत्। ततोऽभ्यर्च्य च गन्धाद्यैः प्राप्नुयात्परमं पदम्॥१६॥
इति श्रीगारुडे महापुराणे अष्टमोऽध्यायः॥ ८॥

नवमोऽध्यायः

हरिरुवाच

समये दीक्षितः शिष्यो बद्धनेत्रस्तु वाससा। अष्टाहुतिशतं तस्य मूलमन्त्रेण होमयेत्॥ १॥
द्विगुणं पुत्रके होमं त्रिगुणं साधके मतम्। निर्वाणदेशिके रुद्र चतुर्गुणमुदाहृतम्॥
गुरुविष्णुद्विजस्त्रीणां हन्ता वध्यस्त्वदीक्षितैः॥ २॥

अथ दीक्षां प्रवक्ष्यामि धर्माधर्मक्षयङ्करीम्। उपवेश्य बहिः शिष्यान्धारणां तेषु कारयेत्॥ ३॥
वायव्या कलया रुद्र शोष्यमानान्विचिन्तयेत्। आग्नेय्या दह्यमानांश्च प्लावितानम्भसा पुनः॥
तेजस्तेजसि तं जीवमेकीकृत्य समाक्षिपेत्। प्रणवं चिन्तयेद् व्योम्नि शरीरेऽन्यत्तु कारणम्॥५॥
एकैकं योजयेत्तत्र क्षेत्रज्ञं देहकारणात्। उत्पाद्य योजयेत्पश्चादेकैकं वृषभध्वज॥ ६॥
मण्डलादिष्वशक्तस्तु कल्पयित्वाऽर्चयेद्धरिम्। चतुर्द्वारं भवेत्तच्च ब्रह्मतीर्थादनुक्रमात्॥ ७॥

हस्तं पद्मं समाख्यातं पत्राण्यङ्गुल्यः स्मृताः । कर्णिकातलहस्तं तु नखान्यस्य तु केशराः ॥ ८ ॥
तत्रार्चयेद्धरिं ध्यात्वा सूर्य्येन्द्वग्न्यन्तरेव च । तं हस्तं पातयेन्मूर्ध्नि शिष्यस्य तु समाहितः ॥९॥
हस्ते विष्णुः स्थितो यस्माद्विष्णुहस्तस्ततस्त्वयम् । नश्यन्ति स्पर्शनात्तस्य पातकान्यखिलानि च ॥
गुरुः शिष्यं समभ्यर्च्य नेत्रे बद्धे तु वाससा । देवस्य प्रमुखं कृत्वा पुष्पाणि मोचयेत्ततः ॥
पुष्पं निपतितं यत्र मूर्धा देवस्य शार्ङ्गिणः ॥ ११ ॥
तन्नाम कारयेत्तस्य स्त्रीणां नामाङ्कितं स्वकम् । शूद्राणां दाससंयुक्तं कारयेत्तु विचक्षणः १२॥
इति श्रीगारुडे महापुराणे नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

हरिरुवाच

श्र्यादिपूजां प्रवक्ष्यामि स्थण्डिलादिषु सिद्धये । ॐ श्रीं महालक्ष्म्यै नमः । श्रां श्रीं श्रूं श्रैं श्रौं श्रः क्रमाद्धृदयञ्च शिरः शिखां कवचम् । नेत्रमन्त्रञ्च आसनं मूर्तिमर्चयेत् ॥१॥
मण्डले पद्मगर्भे च चतुर्द्वारि रजोऽन्विते । चतुःषष्ट्यन्तमष्टादि खाक्षेखान्यादि मण्डलम् ॥
खाक्षीन्दुसूर्य्यगं सर्वं खादिवेदेन्दुवर्त्तनात् ॥ २ ॥
लक्ष्मीमङ्गानि चैकस्मिन्कोणे दुर्गां गणं गुरुम् । क्षेत्रपालमथाग्न्यादौ होमाञ्जुहाव कामभाक् ॥
ॐ घं टं डं हं महालक्ष्म्यै नमः । अनेन पूजयेल्लक्ष्मीं पूर्वोक्तपरिवारकैः ॥ ३ ॥
ॐ सौं सरस्वत्यै नमः ॐ ह्रीं सौं सरस्वत्यै नमः । ॐ ह्रीं वद वद वाग्वादिनि स्वाहा । ॐ ह्रीं सरस्वत्यै नमः ॥ ४ ॥
इति श्रीगारुडे महापुराणे दशमोऽध्यायः ॥ १० ॥

एकादशोऽध्यायः

हरिरुवाच

नवव्यूहार्चनं वक्ष्ये यदुक्तं कश्यपाय हि । जीवमुत्क्षिप्य मूर्द्धन्या नाभ्यां व्योम्नि निवेशयेत् ॥
ततो रमिति बीजेन दहेद्भूतात्मकं वपुः । यमित्यनेन बीजेन तच्च सर्वं विनाशयेत् ॥ २ ॥
लमित्यनेन बीजेन प्लावयेत् सचराचरम् । वमित्यनेन बीजेन चिन्तयेदमृतं ततः ॥ ३ ॥
ततो बुद्बुदमध्ये तु पीतवासाश्चतुर्भुजः । अहं मतस्तथा स्नानं ध्यानेन परिचिन्तयेत् ॥ ४ ॥

मन्त्रन्यासं ततः कुर्य्यात् त्रिविधं करदेहयोः । द्वादशाक्षरबीजेन उक्तबीजैरनन्तरम् ॥
षडङ्गेन ततः कुर्य्यात्साक्षाद्येन हरिर्भवेत् ॥ ५ ॥
दक्षिणाङ्गुष्ठमारभ्य मध्याङ्गुष्ठं दले न्यसेत् । मध्ये बीजद्वयं न्यस्य न्यसेदङ्गे ततः पुनः ॥६॥
हृच्छिरसि शिखावर्म्मवक्त्राद्युदरपृष्ठतः । बाह्वोश्च करयोर्जान्वोः पादयोश्चापि विन्यसेत् ॥७॥
पद्माकारौ करौ कृत्वा मध्येऽङ्गुष्ठं निवेशयेत् । चिन्तयेत्तत्र सर्वेशं परं तत्त्वमनामयम् ॥८॥
क्रमाच्चैतानि बीजानि तर्जन्यादिषु विन्यसेत् । ततो मूर्द्धाक्षिवक्त्रेषु कण्ठेषु हृदये तथा ।
नाभौ गुह्ये तथा जान्वोः पादयोर्विन्यसेत् क्रमात् ॥ ९ ॥
पाण्योः षडङ्गबीजानि न्यस्य काये ततो न्यसेत् । अङ्गुष्ठादि कनिष्ठान्तं विन्यसेद् बीजपञ्चकम् ॥
करमध्ये नेत्रबीजमङ्गन्यासेऽप्ययं क्रमः । हृदये हृदयं न्यस्य शिरः शिरसि विन्यसेत् ॥११॥
शिखायां तु शिखां न्यस्य कवचं सर्वतस्तनौ । नेत्रे नेत्रे विधातव्ये अस्त्रञ्च करयोर्द्वयोः ॥१२॥
तेनैव च दिशो बद्ध्वा पूजाविधिमथारभेत् । हृदये चिन्तयेत् पूर्वं योगपीठं समाहितः ॥१३॥
धर्मं ज्ञानञ्च वैराग्यमैश्वर्य्यञ्च यथाक्रमम् । आग्नेयादौ च पूर्वादावधर्मादींश्च विन्यसेत् ॥१४॥
एभिः परिच्छिन्नतनूं पीठभूतं तदात्मकम् । अनन्तं विन्यसेत् पश्चात् पूर्वकायोन्नतं स्थितम् ॥
ततो विद्यासरोजातं दलाष्टसमदिग्दलम् । सिताब्जं शतपादाढ्यं विप्रकीर्णोर्ध्वकर्णिकम् ॥१६॥
ध्यात्वा वेदादिना पश्चात् सूर्य्यसोमानलात्मनाम् । मण्डलानि क्रमादेवमुपर्य्युपरि चिन्तयेत् ॥
ततः पूर्वादिदिक्संस्थाः शक्तीः केशवगोचराः । विमलाद्या न्यसेदष्टौ नवमीं कर्णिकागताम् ॥
एवं ध्यात्वा समभ्यर्च्य योगपीठमनन्तरम् । मनसाऽऽवाह्य तत्रेशं हरिं शार्ङ्गं न्यसेत् पुनः ॥१९॥
हृदयादीनि पूर्वादिचतुर्दिग्दलयोगतः । मध्ये नेत्रं तु कोणेषु अस्त्रमन्त्रं न्यसेत्ततः ॥२०॥
सङ्कर्षणादिबीजानि पूर्वादिक्रमयोगतः । द्वारि पूर्वे परे चैव वैनतेयं तु विन्यसेत् ॥२१॥
सुदर्शनं सहस्रारं दक्षिणे द्वारि विन्यसेत् । श्रियं दक्षिणतो न्यस्य लक्ष्मीमुत्तरतस्तथा ॥२२॥
द्वार्य्युत्तरे गदां न्यस्य शङ्खं कोणेषु विन्यसेत् । देवदक्षिणतः शार्ङ्गं वामे चैव सुधीर्न्यसेत् ॥
तद्वत् खड्गं तथा चक्रं न्यसेत् पार्श्वद्वयोर्द्वयम् । ततोऽन्तर्लोकपालांश्च स्वदिग्भेदेन विन्यसेत् ॥
वज्रादीन्यायुधांश्चैव तथैव विनिवेशयेत् । ऊर्ध्वं ब्रह्म तथाऽनन्तमधश्च परिचिन्तयेत् ॥२५॥
सर्वं धात्वेति संपूज्य मुद्राः सन्दर्शयेत्ततः । अञ्जलिः प्रथमा मुद्रा क्षिप्रं देवप्रसादनी ॥ २६ ॥
वन्दनी हृदयासक्ता सार्धं दक्षिण उन्नता । ऊर्ध्वाङ्गुष्ठा वाममुष्टिर्दक्षिणाङ्गुष्ठबन्धनः ॥२७॥
सव्यस्य तस्य चाङ्गुष्ठो यः स ऊर्ध्वः प्रकीर्त्तितः । तिस्रः साधारणा ह्येता मूर्त्तिभेदेन कल्पिताः ॥
कनिष्ठादिप्रयोगेण अष्टौ मुद्रा यथाक्रमम् । अष्टानां पूर्वबीजानां क्रमशस्त्ववधारयेत् ॥ २९ ॥
अङ्गुष्ठेन कनिष्ठान्तं नामयित्वाऽङ्गुलित्रयम् । मुद्रेयं नरसिंहस्य न्युब्जं कृत्वा करद्वयम् ॥३०॥

सव्यहस्तं तथोत्तानं कृत्वोर्ध्वं भ्रामयेत् शनैः । नवमीयं स्मृता मुद्रा वराहाभिमता सदा ॥३१॥
मुष्टिद्वयमथोत्तानमृज्वेकैकेन मोचयेत् । कुञ्चयेत् सर्वमुद्राश्च अङ्गमुद्रेयमुच्यते ॥३२॥
मुष्टिद्वयमथो बद्ध्वा एवमेवानुपूर्वशः । दशानां लोकपालानां मुद्राश्च क्रमयोगतः ॥३३॥
स्वरमाद्यं द्वितीयञ्च उपान्त्यञ्चान्तमेव च । वासुदेवो बलः कामो ह्यनिरुद्धो यथाक्रमम् । ३४॥
प्रणवस्तत्सदित्येतत् हुं क्ष्रौं भूरिति मन्त्रकाः । नारायणस्तथा ब्रह्मा विष्णुः सिंहो वराहराट् ॥
सितारुणहरिद्राभा नीलश्यामललोहिताः । मेघाग्निमधुपिङ्गाभा वर्णतो नवनामकाः ॥३६॥
कं टं जं पं शं गरुत्मान् स्यात् ज खं वं सुदर्शनम् । खं चं फं षं गदा देवी वं लं मं क्षं च शङ्खकम् ॥
घं ढं बं भं हं भवेत् श्रीश्च गं जं डं वं शं च पुष्टिका । धं वं च वनमाला स्यात् श्रीवत्सं दं सं भवेत् ॥
छं डं पं यं कौस्तुभः प्रोक्तश्चानन्तो ह्यहमेव च । इत्यङ्गानि यथायोगं देवदेवस्य वै दश ॥३९॥
गरुडोऽम्बुजसङ्काशो गदा चैवासिताकृतिः । पुष्टिः शिरीषपुष्पाभा लक्ष्मीः काञ्चनसन्निभा ॥
पूर्णचन्द्रनिभः शङ्खः कौस्तुभस्त्वरुणद्युतिः । चक्रं सूर्य्यसहस्राभं श्रीवत्सः कुन्दसन्निभः ।
पञ्चवर्णनिभा माला ह्यनन्तो मेघसन्निभः ॥४१॥
विद्युद्रूपाणि चास्त्राणि यानि नोक्तानि वर्णतः । अर्घ्यपाद्यादि वै दद्यात् पुण्डरीकाक्षविद्यया ।४२॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे एकादशोऽध्यायः ॥११॥

द्वादशोऽध्यायः

हरिरुवाच

पूजानुक्रमसिद्ध्यर्थं पूजानुक्रम उच्यते । ॐ नम इत्यादौ परमात्मनः संस्मृतिः ॥ १ ॥
यं वं लं रमिति कायशुद्धिः । ॐ नम इति चतुर्भुजात्मनिर्माणम् ॥ २ ॥
ततस्त्रिविधाकारविन्यासः । ततो हृदिस्थयोगपीठपूजा ॥ ३ ॥

ॐ अनन्ताय नमः, ॐ धर्माय नमः, ॐ ज्ञानाय नमः, ॐ वैराग्याय नमः, ॐ ऐश्वर्य्याय नमः, ॐ अधर्म्माय नमः, ॐ अज्ञानाय नमः, ॐ अवैराग्याय नमः, ॐ अनैश्वर्य्याय नमः, ॐ पद्माय नमः, ॐ आदित्यमण्डलाय नमः, ॐ चन्द्रमण्डलाय नमः, ॐ वह्निमण्डलाय नमः, ॐ विमलायै नमः, ॐ उत्कर्षिण्यै नमः, ॐ ज्ञानाय नमः, ॐ क्रियायै नमः, ॐ अज्ञानाय नमः, ॐ अक्रियायै नमः, ॐ योगायै नमः, ॐ प्रह्वयै नमः, ॐ सत्यायै नमः, ॐ ईशानायै नमः, ॐ सर्वतोमुख्यै नमः, ॐ साङ्गोपाङ्गाय हरेरासनाय नमः । ततः कर्णिकायां अं वासुदेवाय नमः, आं हृदयाय नमः, ईं शिरसे नमः, ॐ शिखायै नमः, ऐं कवचाय नमः, ॐ नेत्रत्रयाय नमः, अः फट् अस्त्राय नमः । आं सङ्कर्षणाय नमः, अं

प्रद्युम्नाय नमः, अः अनिरुद्धाय नमः, ॐ अः नारायणाय नमः । ॐ तत्सद् ब्रह्मणे नमः, ॐ हुं विष्णवे नमः क्ष्रौं नरसिंहाय भूर्वराहाय कं टं जं शं वैनतेयाय जं खं वं सुदर्शनाय खं चं फं षं गदायै वं लं मं क्षं पाञ्चजन्याय घं ढं भं हं श्रियै गं डं वं शं पुष्ट्यै धं वं वनमालायै दं शं श्रीवत्साय छं डं यं कौस्तुभाय शं शार्ङ्गाय इं इषुधिभ्यां चं चर्मणे खं खड्गाय सुराधिपतये धां धनदाय धनाधिपतये हां ईशानाय विद्याधिपतये ॐ वज्राय ॐ शच्यै ॐ दण्डाय ॐ खड्गाय ॐ पाशाय ध्वजाय गदायै त्रिशूलाय लं अनन्ताय पातालधिपतये खं ब्रह्मणे सर्वलोकाधिपतये ॐ नमो भगवते वासुदेवाय नमः । ॐ ॐ नमः ॐ नं नमः ॐ मों नमः ॐ भं नमः ॐ गं नमः ॐ वं नमः ॐ तें नमः ॐ वां नमः ॐ सुं नमः ॐ दें नमः ॐ वां नमः ॐ यं नमः । ॐ ॐ नमः ॐ नं नमः ॐ मों नमः ॐ नां नमः ॐ रां नमः ॐ यं नमः ॐ णां नमः ॐ यं नमः । ॐ नमो नारायणाय ॐ नमः पुरुषोत्तमाय नमः ॥ ४ ॥

नमस्ते पुण्डरीकाक्ष नमस्ते विश्वभावन । सुब्रह्मण्य नमस्तेऽस्तु महापुरुष पूर्वज ॥ ५ ॥
होमकर्मणि चैतेषां स्वाहान्तमुपकल्पयेत् । एवं जप्त्वा विधानेन शतमष्टोत्तरं तथा ।
अर्घं दत्त्वा जितं तेन प्रणामञ्च पुनः पुनः ॥ ६ ॥
ततोऽग्नावपि सम्पूज्य तं यजेत यथाविधि । देवदेवं स्वबीजेन अङ्गादिभिरथाच्युतम् ॥ ७ ॥
पूर्वमुद्दाप्य चाभ्युक्ष्य प्रणवेन तु मन्त्रवित् । भ्रामयित्वाऽनलं कुण्डे पूजयेच्च शुभैः फलैः ॥ ८ ॥
पूर्वं तत्सकलं ध्यात्वा मण्डले मनसा न्यसेत् । वासुदेवाख्यतत्त्वेन हुत्वा चाष्टोत्तरं शतम् ॥ ६ ॥
सङ्कर्षणादिबीजेन यजेत्षट्कं तथैव च । त्रयं त्रयं तथाङ्गानामेकैकां दिक्पतींस्तथा ॥१०॥
पूर्णाहुतिं तथैवान्ते दद्यात्सम्यगुपस्थितः । वागतीते परे तत्त्वे आत्मानञ्च लयं नयेत् ॥११॥
उपविश्य पुनर्मुद्रां दर्शयित्वा नमेत्पुनः । नित्यमेवंविधं होमं नैमित्तं द्विगुणं भवेत् ॥१२॥
गच्छ गच्छ परं स्थानं यत्र देवो निरञ्जनः । गच्छन्तु देवताः सर्वाः स्वस्थानस्थितिहेतवे ॥१३॥
सुदर्शनः श्रीहरिश्च अच्युतः स त्रिविक्रमः । चतुर्भुजो वासुदेवः षष्ठः प्रद्युम्न एव च ॥१४॥
सङ्कर्षणः पुरुषोऽथ नवव्यूहो दशात्मकः । अनिरुद्धो द्वादशात्मा अत ऊर्ध्वमनन्तकः ॥१५॥
एते एकादिभिश्चक्रैर्विज्ञेया लक्षिताः सुराः । चक्राङ्कितैः पूजितैः स्याद् गृहे राक्षसदानवैः ॥१६॥

ॐ चक्राय स्वाहा । ॐ विचक्राय स्वाहा । ॐ सुचक्राय स्वाहा । ॐ महाचक्राय स्वाहा । ॐ असुरान्तहृत् हुं फट् । ॐ हुं सहस्रार हुं फट् ।

द्वारकाचक्रपूजेयं गृहे रक्षाकरी शुभा ॥१७॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

त्रयोदशोऽध्यायः

हरिरुवाच

प्रवक्ष्याम्यधुना ह्येतद्वैष्णवं पञ्जरं शुभम् । नमो नमस्ते गोविन्द चक्रं गृह्य सुदर्शनम् ॥
प्राच्यां रक्षस्व मां विष्णो त्वामहं शरणं गतः ॥ १ ॥
गदां कौमोदकीं गृह्य पद्मनाभ नमोऽस्तु ते । याम्यां रक्षस्व मां विष्णो त्वामहं शरणं गतः ॥२॥
हलमादाय सौनन्दं नमस्ते पुरुषोत्तम । प्रतीच्यां रक्ष मां विष्णो त्वामहं शरणं गतः ॥३॥
मुसलं शातनं गृह्य पुण्डरीकाक्ष रक्ष माम् । उत्तरस्यां जगन्नाथ भवन्तं शरणं गतः ॥४॥
खड्गमादाय चर्म्माथ अस्त्रशस्त्रादिकं हरे । नमस्ते रक्ष रक्षोघ्न ऐशान्यां शरणं गतः ॥५॥
पाञ्चजन्यं महाशङ्खमनुद्बोधञ्च पङ्कजम् । प्रगृह्य रक्ष मां विष्णो आग्नेय्यां रक्ष शूकर ॥६॥
चन्द्रसूर्यं समागृह्य खड्गं चान्द्रमसं तथा । नैर्ऋत्यां माञ्च रक्षस्व दिव्यमूर्त्ते नृकेशरिन् ॥७॥
वैजयन्तीं सम्प्रगृह्य श्रीवत्सं कण्ठभूषणम् । वायव्यां रक्ष मां देव हयग्रीव नमोऽस्तु ते ॥८॥
वैनतेयं समारुह्य त्वन्तरिक्षे जनार्द्दन । माञ्च रक्षाजित सदा नमस्तेऽस्त्वपराजित ॥९॥
विशालाक्षं समारुह्य रक्ष मां त्वं रसातले । अकूपार नमस्तुभ्यं महामीन नमोऽस्तु ते ॥१०॥
करशीर्षाद्यङ्गुलेषु सत्य त्वं बाहुपञ्जरम् । कृत्वा रक्षस्व मां विष्णो नमस्ते पुरुषोत्तम ॥११॥
एवमुक्तं शङ्कराय वैष्णवं पञ्जरं महत् । पुरा रक्षार्थमीशान्याः कात्यायन्या वृषध्वज ॥१२॥
नाशयामास सा येन चामरं महिषासुरम् । दानवं रक्तबीजञ्च अन्याँश्च सुरकण्टकान् ॥
एतज्जपन्नरो भक्त्या शत्रून्विजयते सदा ॥ १३ ॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

चतुर्दशोऽध्यायः

हरिरुवाच

अथ योगं प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिकरं परम् । ध्यायिभिः प्रोच्यते ध्येयो ध्यानेन हरिरीश्वरः ॥१॥
तच्छृणुष्व महेशान सर्वपापविनाशनः । विष्णुः सर्वेश्वरोऽनन्तः षड्भूमिपरिवर्जितः ॥ २ ॥
वासुदेवो जगन्नाथो ब्रह्मात्माऽस्म्यहमेव हि । देहिदेहस्थितो नित्यः सर्वदेहविवर्जितः ॥ ३ ॥
देहधर्म्मविहीनश्च क्षराक्षरविवर्जितः । षड्विधेषु स्थितो द्रष्टा श्रोता घ्राताह्यतीन्द्रियः ॥४॥
तद्धर्म्मरहितः स्रष्टा नामगोत्रविवर्जितः । मन्ता मनःस्थितो देवो मनसा परिवर्जितः ॥ ५ ॥
मनोधर्म्मविहीनश्च विज्ञानं ज्ञानमेव च । बोद्धा बुद्धिस्थितः साक्षी सर्वज्ञो बुद्धिवर्जितः ॥ ६ ॥

बुद्धिधर्म्मविहीनश्च सर्वः सर्वगतो मतः । सर्वप्राणिविनिर्मुक्तः प्राणधर्म्मविवर्जितः ॥ ७ ॥
प्राणिप्राणो महाशान्तो भयेन परिवर्जितः । अहङ्कारादिहीनश्च तद्धर्म्मपरिवर्जितः ॥ ८ ॥
तत्साक्षी तन्नियन्ता च परमानन्दरूपकः । जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिस्थस्तत्साक्षी तद्विवर्जितः ॥ ९ ॥
तुरीयः परमो धाता दृग्रूपो गुणवर्जितः । मुक्तो बुद्धोऽजरो व्यापी सत्य आत्मास्म्यहं शिवः ॥१०॥
एवं ये मानवा विज्ञा ध्यायन्तीशं परं पदम् । प्राप्नुयुस्ते च तद्रूपं नात्र कार्य्या विचारणा ॥११॥
इति ध्यानं समाख्यातं तव शङ्कर सुव्रत । पठेद् य एतत् सततं विष्णुलोकं स गच्छति ॥१२॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

पञ्चदशोऽध्यायः

रुद्र उवाच

संसारसागराद् घोरान्मुच्यते किं जपन् प्रभो । नरस्तन्मे परं जप्यं कथय त्वं जनार्द्दन ॥ १ ॥

हरिरुवाच

ईश्वरं परमं ब्रह्म परमात्मानमव्ययम् । विष्णुं नामसहस्रेण स्तुवन् मुक्तो भवेन्नरः ॥ २ ॥
यत् पवित्रं परं जप्यं कथयामि वृषध्वज । शृणुष्वावहितो भूत्वा सर्वपापविनाशनम् ॥ ३ ॥
वासुदेवो महाविष्णुर्वामनो वासवो वसुः । बालचन्द्रनिभो बालो बलभद्रो बलाधिपः ॥ ४ ॥
बलिबन्धनकृद्वेधा वरेण्यो वेदवित् कविः । वेदकर्त्ता वेदरूपो वेद्यो वेदपरिप्लुतः ॥ ५ ॥
वेदाङ्गवेत्ता वेदेशो बलधारो बलार्दनः । अविकारो वरेशश्च वरदो वरुणाधिपः ॥ ६ ॥
वीरहा च बृहद्वीरो वन्दितः परमेश्वरः । आत्मा च परमात्मा च प्रत्यगात्मा वियत्परः ॥ ७ ॥
पद्मनाभः पद्मनिधिः पद्महस्तो गदाधरः । परमः परभूतश्च पुरुषोत्तम ईश्वरः ॥ ८ ॥
पद्मजङ्घः पुण्डरीकः पद्ममालाधरः प्रियः । पद्माक्षः पद्मगर्भश्च पर्जन्यः पद्मसंस्थितः ॥ ९ ॥
अपारः परमार्थश्च पराणाञ्च परः प्रभुः । पण्डितः पण्डितेभ्यश्च पवित्रः पापमर्दकः ॥१०॥
शुद्धः प्रकाशरूपश्च पवित्रः परिरक्षकः । पिपासावर्जितः पाद्यः पुरुषः प्रकृतिस्तथा ॥११॥
प्रधानं पृथिवीपद्मं पद्मनाभः प्रियप्रदः । सर्वेशः सर्वगः सर्वः सर्ववित्सर्वदः परः ॥१२॥
सर्वश्च जगतो धाम सर्वदर्शी च सर्वभृत् । सर्वानुग्रहकृद्देवः सर्वभूतहृदिस्थितः ॥१३॥
सर्वपः सर्वपूज्यश्च सर्वदेवनमस्कृतः । सर्वस्य जगतो मूलं सकलो निष्कलोऽनलः ॥१४॥
सर्वगोप्ता सर्वनिष्ठः सर्वकारणकारणम् । सर्वध्येयः सर्वमित्रः सर्वदेवस्वरूपधृक् ॥१५॥
सर्वाध्यायः सुराध्यक्षः सुरासुरनमस्कृतः । दुष्टानाञ्चासुराणाञ्च सर्वदा घातकोऽन्तकः ॥१६॥

सत्यपालश्च सन्नाभः सिद्धेशः सिद्धवन्दितः । सिद्धसाध्यः सिद्धसिद्धः साध्यसिद्धो हृदीश्वरः॥१७॥
शरणं जगतश्चैव श्रेयः क्षेमस्तथैव च । शुभकृच्छोभनः सौम्यः सत्यः सत्यपराक्रमः ॥१८॥
सत्यस्थः सत्यसङ्कल्पः सत्यवित्सत्यदस्तथा । धर्मो धर्म्मी च कर्म्मी च सर्वकर्म्मविवर्जितः ॥१६॥
कर्म्मकर्त्ता च कर्मैव क्रियाकार्य्यं तथैव च । श्रीपतिर्नृपतिः श्रीमान्सर्वस्य पतिरूर्जितः ॥२०॥
स देवानां पतिश्चैव वृष्णीनां पतिरीरितः । पतिर्हिरण्यगर्भस्य त्रिपुरान्तपतिस्तथा ॥२१॥
पशूनाञ्च पतिः प्रायो वसूनां पतिरेव च । पतिराखण्डलस्यैव वरुणस्य पतिस्तथा ॥२२॥
वनस्पतीनाञ्च पतिरनिलस्य पतिस्तथा । अनलस्य पतिश्चैव यमस्य पतिरेव च ॥२३॥
कुबेरस्य पतिश्चैव नक्षत्राणां पतिस्तथा । ओषधीनां पतिश्चैव वृक्षाणाञ्च पतिस्तथा ॥२४॥
नागानां पतिरर्कस्य दक्षस्य पतिरेव च । सुहृदाञ्च पतिश्चैव नृपाणाञ्च पतिस्तथा ॥२५॥
गन्धर्वाणां पतिश्चैव असूनां पतिरुत्तमः । पर्वतानां पतिश्चैव निम्नगानां पतिस्तथा ॥२६॥
सुराणाञ्च पतिः श्रेष्ठः कपिलस्य पतिस्तथा । लतानाञ्च पतिश्चैव वीरुधाञ्च पतिस्तथा ॥२७॥
मुनीनाञ्च पतिश्चैव सूर्य्यस्य पतिरुत्तमः । पतिश्चन्द्रमसः श्रेष्ठः शुक्रस्य पतिरेव च ॥२८॥
ग्रहाणाञ्च पतिश्चैव राक्षसानां पतिस्तथा । किन्नराणां पतिश्चैव द्विजानां पतिरुत्तमः ॥२६॥
सरिताञ्च पतिश्चैव समुद्राणां पतिस्तथा । सरसाञ्च पतिश्चैव भूतानाञ्च पतिस्तथा ॥३०॥
बेतालानां पतिश्चैव कूष्माण्डानां पतिस्तथा । पक्षिणाञ्च पतिः श्रेष्ठः पशूनां पतिरेव च ॥३१॥
महात्मा मङ्गलो मेयो मन्दरो मन्दरेश्वरः । मेरुर्माता प्रमाणञ्च माधवो मनुवर्जितः ॥३२॥
मालाधरो महादेवो महादेवेन पूजितः । महाशान्तो महाभागो मधुसूदन एव च ॥३३॥
महावीर्य्यो महाप्राणो मार्कण्डेयप्रवन्दितः । मायात्मा मायया बद्धो मायया तु विवर्जितः ॥३४॥
मुनिस्तुतो मुनिर्मैत्रो महानासो महाहनुः । महाबाहुर्महादन्तो मरणेन विवर्जितः ॥३५॥
महावक्त्रो महात्मा च महाकारो महोदरः । महापादो महाग्रीवो महामानी महामनाः ॥३६॥
महामतिर्महाकीर्त्तिर्महारूपो महासुरः । मधुश्च माधवश्चैव महादेवो महेश्वरः ॥३७॥
मखेष्टो मखरूपी च माननीयो मखेश्वरः । महावातो महाभागो महेशोऽतीतमानुषः ॥३८॥
मानवश्च मनुश्चैव मानवानां प्रियङ्करः । मृगश्च मृगपूज्यश्च मृगाणाञ्च पतिस्तथा ॥३९॥
बुधस्य तु पतिश्चैव पतिश्चैव बृहस्पतेः । पतिः शनैश्चरस्यैव राहोः केतोः पतिस्तथा ॥४०॥
लक्ष्मणो लक्षणश्चैव लम्बोष्ठो ललितस्तथा । नानालङ्कारसंयुक्तो नानाचन्दनचर्चितः ॥४१॥
नानारसोज्ज्वलद्वक्त्रो नानापुष्पोपशोभितः । रामो रमापतिश्चैव सभार्य्यः परमेश्वरः ॥४२॥
रत्नदो रत्नहर्त्ता च रूपी रूपविवर्जितः । महारूपोग्ररूपश्च सौम्यरूपस्तथैव च ॥४३॥
नीलमेघनिभः शुद्धः कालमेघनिभस्तथा । धूमवर्णः पीतवर्णो नानारूपो ह्यवर्णकः ॥४४॥
विरूपो रूपदश्चैव शुक्लवर्णस्तथैव च । सर्ववर्णो महायोगी यज्ञो यज्ञकृदेव च ॥४५॥

सुवर्णो वर्णवांश्चैव सुवर्णाख्यस्तथैव च । सुवर्णावयवश्चैव सुवर्णः स्वर्णमेखलः ॥४६॥
सुवर्णस्य प्रदाता च सुवर्णांशस्तथैव च । सुवर्णस्य प्रियश्चैव सुवर्णाढ्यस्तथैव च ॥४७॥
सुपर्णी च महापर्णः सुपर्णस्य च कारणम् । वैनतेयस्तथादित्य आदिरादिकरः शिवः ॥४८॥
कारणं महतश्चैव पुराणस्य च कारणम् । बुद्धीनां कारणञ्चैव कारणं मनसस्तथा ॥४९॥
कारणं चेतसश्चैव अहङ्कारस्य कारणम् । भूतानां कारणं तद्वत् कारणञ्च विभावसोः ॥५०॥
आकाशकारणं तद्वत् पृथिव्याः कारणं परम् । अण्डस्य कारणञ्चैव प्रकृतेः कारणं तथा ॥५१॥
देहस्य कारणञ्चैव चक्षुषश्चैव कारणम् । श्रोत्रस्य कारणं तद्वत् कारणञ्च त्वचस्तथा ॥५२॥
जिह्वायाः कारणञ्चैव प्राणस्यैव च कारणम् । हस्तयोः कारणं तद्वत् पादयोः कारणं तथा ॥५३॥
वाचश्च कारणं तद्वत्पायोश्चैव तु कारणम् । इन्द्रस्य कारणञ्चैव कुबेरस्य च कारणम् ॥५४॥
यमस्य कारणञ्चैव ईशानस्य च कारणम् । यक्षाणां कारणञ्चैव रक्षसां कारणं परम् ॥५५॥
भूषाणां कारणं श्रेष्ठं धर्मस्यैव तु कारणम् । जन्तूनां कारणञ्चैव वसूनां कारणं परम् ॥५६॥
मनूनां कारणञ्चैव पक्षिणां कारणं परम् । मुनीनां कारणं श्रेष्ठं योगिनां कारणं परम् ॥५७॥
सिद्धानां कारणञ्चैव यक्षाणां कारणं परम् । कारणं किन्नराणाञ्च गन्धर्वाणाञ्च कारणम् ॥५८॥
नदानां कारणञ्चैव नदीनां कारणं परम् । कारणञ्च समुद्राणां वृक्षाणां कारणं तथा ॥५९॥
कारणं वीरुधाञ्चैव लोकानां कारणं तथा । पातालकारणञ्चैव देवानां कारणं तथा ॥६०॥
सर्पाणां कारणञ्चैव श्रेयसां कारणं तथा । पशूनां कारणञ्चैव सर्वेषां कारणं तथा ॥६१॥
देहात्मा चेन्द्रियात्मा च आत्मा बुद्धिस्तथैव च । मनसश्च तथैवात्मा चात्माहङ्कारचेतसः ॥६२॥
जाग्रतः स्वपतश्चात्मा महदात्मा परस्तथा । प्रधानस्य परात्मा च आकाशात्मा ह्यपां तथा ॥६३॥
पृथिव्याः परमात्मा च वयस्यात्मा तथैव च । गन्धस्य परमात्मा च रूपस्यात्मा परस्तथा ॥६४॥
शब्दात्मा चैव वागात्मा स्पर्शात्मा पुरुषस्तथा । श्रोत्रात्मा च त्वगात्मा च जिह्वायाः परमस्तथा ॥
घ्राणात्मा चैव हस्तात्मा पादात्मा परमस्तथा । उपस्थस्य तथैवात्मा पाय्वात्मा परमस्तथा ॥६६॥
इन्द्रात्मा चैव ब्रह्मात्मा रुद्रात्मा च मनोस्तथा । दक्षप्रजापतेरात्मा सत्यात्मा परमस्तथा ॥६७॥
ईशात्मा परमात्मा च रौद्रात्मा मोक्षविद्यतिः । यत्नवांश्च तथा यत्नश्चर्म्मी खड्गयसुरान्तकः ॥६८॥
ह्रीप्रवर्त्तनशीलश्च यतीनाञ्च हिते रतः । यतिरूपी च योगी च योगिध्येयो हरिः शितिः ॥६९॥
संविन्मेधा च कालश्च उष्मा वर्षा मतिस्तथा । संवत्सरो मोक्षकरो मोहप्रध्वंसकस्तथा ॥७०॥
मोहकर्त्ता च दुष्टानां माण्डव्यो वड़वामुखः । संवर्त्तकः कालकर्त्ता गौतमो भृगुरङ्गिराः ॥७१॥
अत्रिर्वसिष्ठः पुलहः पुलस्त्यः कुत्स एव च । याज्ञवल्क्यो देवलश्च व्यासश्चैव पराशरः ॥७२॥
शर्म्मदश्चैव गाङ्गेयो हृषीकेशो बृहच्छ्रवाः । केशवः क्लेशहन्ता च सुकर्णः कर्णवर्जितः ॥७३॥

नारायणो महाभागः प्राणस्य पतिरेव च । अपानस्य पतिश्चैव व्यानस्य पतिरेव च ॥७४॥
उदानस्य पतिः श्रेष्ठः समानस्य पतिस्तथा । शब्दस्य च पतिः श्रेष्ठः स्पर्शस्य पतिरेव च ॥७५॥
रूपाणां नृपतिश्चाद्यः खड्गपाणिर्हलायुधः । चक्रपाणिः कुण्डली च श्रीवत्साङ्कस्तथैव च ॥७६॥
प्रकृतिः कौस्तुभग्रीवः पीताम्बरधरस्तथा । सुमुखो दुर्मुखश्चैव मुखेन तु विवर्जितः ॥ ७७ ॥
अनन्तोऽनन्तरूपश्च सुनखः सुरसुन्दरः । सुकलापो विभुर्जिष्णुर्भ्राजिष्णुश्चेषुधीस्तथा ॥७८॥
हिरण्यकशिपोर्हन्ता हिरण्याक्षविमर्दकः । निहन्ता पूतनायाश्च भास्करान्तविनाशनः ॥७९॥
केशिनो दलनश्चैव मुष्टिकस्य विमर्दकः । कंसदानवभेत्ता च चाणूरस्य प्रमर्दकः ॥८०॥
अरिष्टस्य निहन्ता च अक्रूरप्रिय एव च । अक्रूरः क्रूररूपश्च ह्यक्रूरप्रियवन्दितः ॥८१॥
भगहा भगवान् भानुस्तथा भागवतः स्वयम् । उद्धवश्चोद्धवस्येशो ह्युद्धवेन विचिन्तितः ॥८२॥
चक्रधृक् चञ्चलश्चैव चलाचलविवर्जितः । अहङ्कारो मतिश्चित्तं गगनं पृथिवी जलम् ॥८३॥
वायुश्चक्षुस्तथा श्रोत्रं जिह्वा च घ्राणमेव च । वाक्पाणिपादौ जवनः पायूपस्थस्तथैव च ॥८४॥
शङ्करश्चैव खर्वश्च क्षान्तिदः क्षान्तिकृन्नरः । भक्तप्रियस्तथा भर्त्ता भक्तिमान् भक्तिवर्द्धनः ॥८५॥
भक्तस्तुतो भक्तपरः कीर्त्तिदः कीर्त्तिवर्द्धनः । कीर्त्तिर्दीप्तिः क्षमा कान्तिर्भक्तिश्चैव दया परा ॥८६॥
दानं दाता च कर्त्ता च देवदेवप्रियः शुचिः । शुचिमान् सुखदो मोक्षः कामश्चार्थः सहस्रपात् ॥८७॥
सहस्रशीर्षा वैद्यश्च मोक्षद्वारस्तथैव च । प्रजाद्वारं सहस्रान्तः सहस्रकर एव च ॥८८॥
शुक्रश्च सुकिरीटी च सुग्रीवः कौस्तुभस्तथा । प्रद्युम्नश्चानिरुद्धश्च हयग्रीवश्च शूकरः ॥८९॥
मत्स्यः परशुरामश्च प्रह्लादो बलिरेव च । शरण्यश्चैव नित्यश्च बुद्धो मुक्तः शरीरभृत् ॥९०॥
खरदूषणहन्ता च रावणस्य प्रमर्दनः । सीतापतिश्च वर्द्धिष्णुर्भरतश्च तथैव च ॥९१॥
कुम्भेन्द्रजिन्निहन्ता च कुम्भकर्णप्रमर्दनः । नरान्तकान्तकश्चैव देवान्तकविनाशनः ॥९२॥
दुष्टासुरनिहन्ता च शम्बरारिस्तथैव च । नरकस्य निहन्ता च त्रिशीर्षस्य विनाशनः ॥९३॥
यमलार्जुनभेत्ता च तपोहितकरस्तथा । वादित्रश्चैव वाद्यश्च बुद्धश्च वै वरप्रदः ॥९४॥
सारः सारप्रियः सौरः कालहन्ता निकृन्तनः । अगस्त्यो देवलश्चैव नारदो नारदप्रियः ॥९५॥
प्राणोऽपानस्तथा व्यानो रजः सत्त्वं तमः शरत् । उदानश्च समानश्च भेषजश्च भिषक्तथा ॥
कूटस्थः स्वच्छरूपश्च सर्वदेहविवर्जितः । चक्षुरिन्द्रियहीनश्च वागिन्द्रियविवर्जितः ॥९७॥
हस्तेन्द्रियविहीनश्च पादाभ्याञ्च विवर्जितः । पायूपस्थविहीनश्च महातपोविसर्जितः ॥९८॥
प्रबोधेन विहीनश्च बुद्ध्या चैव विवर्जितः । चेतसा विगतश्चैव प्राणेन च विवर्जितः ॥९९॥
अपानेन विहीनश्च व्यानेन च विवर्जितः । उदानेन विहीनश्च समानेन विवर्जितः ॥१००॥
आकाशेन विहीनश्च वायुना परिवर्जितः । अग्निना च विहीनश्च उदकेन विवर्जितः ॥१०१॥

पृथिव्या च विहीनश्च शब्देन च विवर्जितः । स्पर्शेन च विहीनश्च सर्वरूपविवर्जितः ॥१०२॥
रागेण विगतश्चैव अघेन परिवर्जितः । शोकेन रहितश्चैव वचसा परिवर्जितः ॥१०३॥
रजोविवर्जितश्चैव विकारैः षड्भिरेव च । कामेन वर्जितश्चैव क्रोधेन परिवर्जितः ॥१०४॥
लोभेन विगतश्चैव दम्भेन च विवर्जितः । सूक्ष्मश्चैव सुसूक्ष्मश्च स्थूलात्स्थूलतरस्तथा ॥१०५॥
विशारदो बलाध्यक्षः सर्वस्य क्षोभकस्तथा । प्रकृतेः क्षोभकश्चैव महतः क्षोभकस्तथा ॥१०६॥
भूतानां क्षोभकश्चैव बुद्धेश्च क्षोभकस्तथा । इन्द्रियाणां क्षोभकश्च विषयक्षोभकस्तथा ॥१०७॥
ब्रह्मणः क्षोभकश्चैव रुद्रस्य क्षोभकस्तथा । अगम्यश्चक्षुरादेश्च श्रोत्रागम्यस्तथैव च ॥१०८॥
त्वचा न गम्यः कूर्म्मश्च जिह्वाग्राह्यस्तथैव च । घ्राणेन्द्रियागम्य एव वाचाऽग्राह्यस्तथैव च ॥१०९॥
अगम्यश्चैव पाणिभ्यां पादागम्यस्तथैव च । अग्राह्यो मनसश्चैव बुद्धया ग्राह्यो हरिस्तथा ॥११०॥
अहं बुद्धया तथा ग्राह्यश्चेतसा ग्राह्य एव च । शङ्खपाणिरव्ययश्च गदापाणिस्तथैव च ॥१११॥
शार्ङ्गपाणिश्च कृष्णश्च ज्ञानमूर्त्तिः परन्तपः । तपस्वी ज्ञानगम्यो हि ज्ञानी ज्ञानविदेव च ॥११२॥
ज्ञेयश्च ज्ञेयहीनश्च ज्ञप्तिश्चैतन्यरूपकः । भावो भाव्यो भवकरो भावनो भवनाशनः ॥११३॥
गोविन्दो गोपतिर्गोपः सर्वगोपीसुखप्रदः । गोपालो गोपतिश्चैव गोमतिर्गोधरस्तथा ॥११४॥
उपेन्द्रश्च नृसिंहश्च शौरिश्चैव जनार्दनः । आरणेयो बृहद्भानुर्बृहद्दीप्तस्तथैव च ॥११५॥
दामोदरस्त्रिकालश्च कालज्ञः कालवर्जितः । त्रिसन्ध्यो द्वापरं त्रेता प्रजाद्वारं त्रिविक्रमः ॥११६॥
विक्रमो दण्डहस्तश्च ह्येकदण्डी त्रिदण्डधृक् । सामभेदस्तथोपायः सामरूपी च सामगः ॥११७॥
सामवेदो ह्यथर्वश्च सुकृतः सुखरूपकः । अथर्ववेदविच्चैव ह्यथर्वाचार्य्य एव च ॥११८॥
ऋग्रूपी चैव ऋग्वेद ऋग्वेदेषु प्रतिष्ठितः । यजुर्वेत्ता यजुर्वेदो यजुर्वेदविदेकपात् ॥११९॥
बहुपाच्च सुपाच्चैव तथा चैव सहस्रपात् । चतुष्पाच्चैव द्विपाच्चैव स्मृतिर्न्यायोपमो बली ॥१२०॥
सन्यासी चैव सन्यासश्चतुराश्रम एव च । ब्रह्मचारी गृहस्थश्च वाणप्रस्थश्च भिक्षुकः ॥१२१॥
ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः शूद्रो वर्णस्तथैव च । शीलदः शीलसम्पन्नो दुःशीलपरिवर्जितः ॥१२२॥
मोक्षोऽध्यात्मसमाविष्टः स्तुतिः स्तोता च पूजकः । पूज्यो वाक्करणञ्चैव वाच्यश्चैव तु वाचकः ॥
वेत्ता व्याकरणश्चैव वाक्यञ्चैव च वाक्यवित् । वाक्यगम्यस्तीर्थवासी तीर्थस्तीर्थी च तीर्थवित् ॥
तीर्थादिभूतः साङ्ख्यश्च निरुक्तं त्वधिदैवतम् । प्रणवः प्रणवेशश्च प्रणवेण प्रवन्दितः ॥१२५॥
प्रणवेन च लक्ष्यो वै गायत्री च गदाधरः । शालग्रामनिवासी च शालग्रामस्तथैव च ॥
जलशायी योगशायी शेषशायी कुशेशयः । महाभर्त्ता च कार्य्यञ्च कारणं पृथिवीधरः ॥१२७॥
प्रजापतिः शाश्वतश्च काम्यः कामयिता विराट् । सम्राट् पूषा तथा स्वर्गो रथस्थः सारथिर्बलम् ॥
धनी धनप्रदो धन्यो यादवानां हिते रतः । अर्जुनस्य प्रियश्चैव ह्यर्जुनो भीम एव च ॥१२९॥

पराक्रमो दुर्विसहः सर्वशास्त्रविशारदः । सारस्वतो महाभीष्मः पारिजातहरस्तथा ॥१३०॥
अमृतस्य प्रदाता च क्षीरोदः क्षीर एव च । इन्द्रात्मजस्तस्य गोप्ता गोवर्द्धनधरस्तथा ॥१३१॥
कंसस्य नाशनस्तद्वद्धस्तिपो हस्तिनाशनः । शिपिविष्टः प्रसन्नश्च सर्वलोकार्त्तिनाशनः ॥१३२॥
मुद्रो मुद्राकरश्चैव सर्वमुद्राविवर्जितः । देही देहस्थितश्चैव देहस्य च नियामकः ॥१३३॥
श्रोता श्रोत्रनियन्ता च श्रोतव्यः श्रवणस्तथा । त्वक्स्थितश्च स्पर्शयिता स्पृश्यञ्च स्पर्शनं तथा ॥
चक्षुःस्थो रूपद्रष्टा च नियन्ता चक्षुषस्तथा । दृश्यञ्चैव तु जिह्वास्थो रसज्ञश्च नियामकः ॥१३५॥
घ्राणस्थो घ्राणकृद्घ्राता घ्राणेन्द्रियनियामकः । वाक्स्थो वक्ता च वक्तव्यो वचनं वाङ्नियामकः ॥
प्राणिस्थः शिल्पकृच्छिल्पो हस्तयोश्च नियामकः । पदव्यश्चैव गन्ता च गन्तव्यं गमन तथा १३७ ॥
नियन्ता पादयोश्चैव पाद्यभाक् च विसर्गकृत् । विसर्गस्य नियन्ता च ह्युपस्थस्थः सुखस्तथा १३८ ॥
उपस्थस्य नियन्ता च तदानन्दकरश्च ह । शत्रुघ्नः कार्त्तवीर्यश्च दत्तात्रेयस्तथैव च ॥१३९॥
अलर्कस्य हितश्चैव कार्त्तवीर्य्यनिकृन्तनः । कालनेमिर्महानेमिर्मेघो मेघपतिस्तथा ॥१४०॥
अन्नप्रदोऽन्नरूपी च ह्यन्नादोऽन्नप्रवर्त्तकः । धूमकृद्धूमरूपश्च देवकीपुत्र उत्तमः ॥१४१॥
देवक्यानन्दनो नन्दो रोहिण्याः प्रिय एव च । वसुदेवप्रियश्चैव वसुदेवसुतस्तथा ॥१४२॥
दुन्दुभिर्हासरूपश्च पुष्पहासस्तथैव च । अट्टहासप्रियश्चैव सर्वाध्यक्षः क्षरोऽक्षरः ॥१४३॥
अच्युतश्चैव सत्येशः सत्यायाश्च प्रियो वरः । रुक्मिण्याश्च पतिश्चैव रुक्मिण्या वल्लभस्तथा ॥
गोपीनां वल्लभश्चैव पुण्यश्लोकश्च विश्रुतः । वृषाकपिर्यमो गुह्यो मङ्गलश्च बुधस्तथा ॥१४५॥
राहुः केतुर्ग्रहो ग्राहो गजेन्द्रमुखमेलकः । ग्राहस्य विनिहन्ता च ग्रामणी रक्षकस्तथा ॥१४६॥
किन्नरश्चैव सिद्धश्च छन्दः स्वच्छन्द एव च । विश्वरूपो विशालाक्षो दैत्यसूदन एव च ॥१४७॥
अनन्तरूपो भूतस्थो देवदानवसंस्थितः । सुषुप्तिस्थः सुषुप्तिश्च स्थानं स्थानान्त एव च १४८॥
जगत्स्थश्चैव जागर्त्ता स्थानं जागरितं तथा । स्वप्नस्थः स्वप्नवित्स्वप्नं स्थानस्थः सुस्थ एव च १४९॥
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तेश्च विहीनो वै चतुर्थकः । विज्ञानं चैवरूपश्च जीवो जीवयिता तथा ॥१५०॥
भुवनाधिपतिश्चैव भुवनानां नियामकः । पातालवासी पातालं सर्वज्वरविनाशनः ॥१५१॥
परमानन्दरूपी च धर्माणाञ्च प्रवर्त्तकः । सुलभो दुर्लभश्चैव प्राणायामपरस्तथा ॥१५२॥
प्रत्याहारो धारकश्च प्रत्याहारकरस्तथा । प्रभा कान्तिस्तथा ह्यर्चिः शुद्धः स्फटिकसन्निभः ॥१५३॥
अग्राह्यश्चैव गौरश्च सर्वः शुचिरभिष्टुतः । वषट्कारो वषड्वौषट् स्वधा स्वाहा रतिस्तथा ॥१५४॥
पक्ता नन्दयिता भोक्ता बोद्धा भावयिता तथा । ज्ञानात्मा चैव ऊहात्मा भूमा सर्वेश्वरेश्वरः।१५५॥
नदी नन्दी च नन्दीशो भारतस्तरुनाशनः । चक्रपः श्रीपतिश्चैव नृपश्च चक्रवर्त्तिनाम् ॥१५६॥
ईशश्च सर्वदेवानां स्वावकाशं स्थितस्तथा । पुष्करः पुष्कराध्यक्षः पुष्करद्वीप एव च ॥१५७॥

भरतो जनको जन्यः सर्वाकारविवर्जितः । निराकारो निर्निमित्तो निरातङ्को निराश्रयः ॥१५८॥
इति नामसहस्रं ते वृषभध्वज कीर्त्तितम् । देवस्य विष्णोरीशस्य सर्वपापविनाशनम् ॥१५९॥
पठन् द्विजश्च विष्णुत्वं क्षत्रियो जयमाप्नुयात् । वैश्यो धनं सुखं शूद्रो विष्णुभक्तिसमन्वितः ॥

इति गारुड़े महापुराणे श्रीविष्णोः सहस्रनामस्तोत्रं नाम
पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

षोडशोऽध्यायः

रुद्र उवाच

पुनर्ध्यानं समाचक्ष्व शङ्खचक्रगदाधर । विष्णोरीशस्य देवस्य शुद्धस्य परमात्मनः ॥ १ ॥

हरिरुवाच

शृणु रुद्र हरेर्ध्यानं संसारतरुनाशनम् । अदृष्टरूपञ्चान्तञ्च सर्वव्याप्यजमव्ययम् ॥ २ ॥
अक्षयं सर्वगं नित्यं महद्ब्रह्मास्ति केवलम् । सर्वस्य जगतो मूलं सर्वेशं परमेश्वरम् ॥ ३ ॥
सर्वभूतहृदिस्थं वै सर्वभूतमहेश्वरम् । सर्वाधारं निराधारं सर्वकारणकारणम् ॥ ४ ॥
अलेपकं तथा मुक्तं मुक्तयोगिविचिन्तितम् । स्थूलदेहविहीनञ्च चक्षुषा परिवर्जितम् ॥ ५ ॥
घ्राणेन्द्रियविहीनञ्च प्राणिधर्मविवर्जितम् । पायूपस्थविहीनञ्च सर्वेन्द्रियविवर्जितम् ॥ ६ ॥
मनोविरहितं तद्वन्मनोधर्म्मविवर्जितम् । बुद्धया विहीनं देवेशं चेतसा परिवर्जितम् ॥ ७ ॥
अहङ्कारविहीनं वै बुद्धिधर्म्मविवर्जितम् । प्राणेन रहितञ्चैव ह्यपानेन विवर्जितम् ॥
प्राणाख्यवायुहीनं वै प्राणधर्मविवर्जितम् ॥ ८ ॥

हरिरुवाच

पुनः सूर्य्यार्चनं वक्ष्ये यदुक्तं भृगवे पुरा । ॐ खखोल्काय नमः ।
सूर्य्यस्य मूलमन्त्रोऽयं भुक्तिमुक्तिप्रदायकः ॥ ९ ॥

ॐ खखोल्काय त्रिदशाय नमः । ॐ विचि ठठ शिरसे नमः । ॐ ज्ञानिने ठठ शिखायै नमः । ॐ सहस्ररश्मये ठठ कवचाय नमः ॥ १० ॥

ॐ सर्वतेजोऽधिपतये ठठ अस्त्राय नमः । ॐ ज्वल ज्वल प्रज्वल प्रज्वल ठठ नमः ॥
अग्निप्रकारमन्त्रोऽयं सूर्य्यस्याघविनाशनः ॥११॥

ॐ आदित्याय विद्महे विश्वभावाय धीमहि तन्नः सूर्य्यः प्रचोदयात् ॥१२॥

सकलीकरणं कुर्य्याद्गायत्र्या भास्करस्य च । धर्म्मात्मने च पूर्वस्मिन् यमायेति च दक्षिणे ॥१३॥
दण्डनायकाय ततो वैवर्णायेति चोत्तरे । श्यामपिङ्गलमैशान्यामाग्नेय्यां दीक्षितं यजेत् ॥१४॥

वज्रपाणिश्च नैर्ऋत्यां भूर्भुवः स्वश्च वायवे ॥ १५ ॥

ॐ चन्द्राय नक्षत्राधिपतते नमः। ॐ अङ्गारकाय क्षितिसुताय नमः। ॐ बुधाय सोमपुत्राय नमः। ॐ वागीश्वराय सर्वविद्याधिपतये नमः। ॐ शुक्राय महर्षये भृगुसुताय नमः। ॐ शनैश्चराय सूर्यात्मजाय नमः। ॐ राहवे नमः। ॐ केतवे नमः।

पूर्वादीशानपर्यन्ता एते पूज्या वृषध्वज ॥ १६ ॥

ॐ अनूरुकाय नमः। ॐ प्रथमनाथाय नमः। ॐ बुद्धाय नमः ॥ १७ ॥

ॐ भगवन्! परिमितमयूखमालिन्! सकलजगत्पते! सप्ताश्ववाहन! चतुर्भुज! परमसिद्धिप्रद! विस्फुलिङ्गपिङ्गल! भद्र! एह्येहि इदमर्घ्यं नमः शिरसि गतं गृह्ण गृह्ण तेज उग्ररूपम् अनग्न! ज्वल ज्वल ठठ नमः ॥ १८ ॥

अनेनावाह्य मन्त्रेण ततः सूर्यं विसर्जयेत्।

ॐ नमो भगवते आदित्याय सहस्रकिरणाय गच्छ सुखं पुनरागमनायेति ॥१९॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे षोडशोऽध्यायः ॥ १६ ॥

सप्तदशोऽध्यायः

हरिरुवाच

पुनः सूर्यार्चनं वक्ष्ये यदुक्तं धनदाय हि। अष्टपत्रं लिखेत् पद्मं शुचौ देशे सकर्णिकम् ॥१॥
आवाहनीं ततो बद्ध्वा मुद्रामावाहयेद्धरिम्। खखोल्कं स्थापयेन्मध्ये स्नापयेद् यन्त्ररूपिणम् ॥२॥
आग्नेय्यां दिशि देवस्य हृदयं स्थापयेच्छिव। ऐशान्यां तु शिरः स्थाप्यं नैर्ऋत्यां विन्यसेच्छिखाम्॥
पौरन्दर्यां न्यसेद्वर्ममेकाग्रस्थितमानसः। वायव्याञ्चैव नेत्रन्तु वारुण्यामस्त्रमेव च ॥४॥
ऐशान्यां स्थापयेत् सोमं पौरन्दर्यान्तु लोहितम्। आग्नेय्यां सोमतनयं याम्याञ्चैव बृहस्पतिम् ॥५॥
नैर्ऋत्यां दानवगुरुं वारुण्यां तु शनैश्चरम्। वायव्याञ्च तथा केतुं कौबेर्यां राहुमेव च ॥६॥
द्वितीयायान्तु कक्षायां सूर्यान् द्वादश पूजयेन्। भगः सूर्योऽर्यमा चैव मित्रो वै वरुणस्तथा ॥७॥
सविता चैव धाता च विवस्वांश्च महाबलः। त्वष्टा पूषा तथा चेन्द्रो द्वादशो विष्णुरुच्यते ॥८॥
पूर्वादावर्चयेद्देवानिन्द्राहीन् श्रद्धया नरः। जया च विजया चैव जयन्ती चापराजिता ॥
शेषश्च वासुकिश्चैव नागानित्यादि पूजयेत् ॥ ९ ॥

इति श्री गारुडे महापुराणे पूर्वार्द्धे सप्तदशोऽध्यायः ॥ १७ ॥

अष्टादशोऽध्यायः

सूत उवाच

गरुड़ोक्तं कश्यपाय वक्ष्ये मृत्युञ्जयार्चनम्। उद्धारपूर्वकं पुण्यं सर्वदेवमयं मतम् ॥१॥
ओङ्कारं पूर्वमुद्धृत्य जुङ्कारं तदनन्तरम्। सविसर्गं तृतीयं स्यान्मृत्युदारिद्र्यमर्दनम् ॥२॥
अमृतेशं महामन्त्रं त्र्यक्षरं पूजनं समम्। जपनान् मृत्युहीनाः स्युः सर्वपापविवर्जिताः ॥३॥
शतजप्याद् वेदफलं यज्ञतीर्थफलं लभेत्। अष्टोत्तरशतं जप्यं त्रिसन्ध्यं मृत्युशत्रुजित् ॥४॥
ध्यायेच्च सितपद्मस्थं वरदञ्चाभयं करे। द्वाभ्याञ्चामृतकुम्भं तु चिन्तयेदमृतेश्वरम् ॥५॥
तस्यैवाङ्कगतां देवीममृतामृतभाषिणीम्। कलशं दक्षिणे हस्ते वामहस्ते सरोरुहम् ॥६॥
जपेदष्टसहस्रं वै त्रिसन्ध्यं मासमेकतः। जरामृत्युमहाव्याधिशत्रुजिज्जीवशान्तिदः ॥७॥
आस्थानं स्थापनं रोधं सन्निधानं निवेशनम। पाद्यमाचमनं स्नानमर्घ्यं चागुरुलेपनम् ॥

दीपाम्बरं भूषणञ्च नैवेद्यं पानजीवनम् ॥८॥

मात्रा मुद्रा जपं ध्यानं दक्षिणाञ्चाहुतिः स्तुतिः। वाद्यं गीतञ्च नृत्यञ्च न्यासं योगं प्रदक्षिणम् ॥

प्रणतिं मन्त्र इज्या च वन्दनञ्च विसर्जनम् ॥९॥

षडङ्गादिप्रकारेण पूजनन्तु क्रमोदितम्। परमेशमुखोद्गीर्णं यो जानाति स पूजकः ॥१०॥
अर्घ्यपाशार्चनञ्चादौ वस्त्रेणैव तु ताड़नम्। शोधनं कवचेनैव अमृतीकरणं ततः ॥११॥
पूजा चाधारशक्त्यादेः प्राणायामं तथासने। पिण्डशुद्धिं ततः कुर्य्याच्छोषणाद्यैस्ततः स्मरेत् ॥१२॥
आत्मानं देवरूपञ्च कराङ्गन्यासकञ्चरेत्। आत्मानं पूजयेत्पश्चाज्ज्योतीरूपं हृदब्जतः ॥१३॥
मूर्त्तौ वा स्थण्डिले वापि क्षिपेत्पुष्पं तु भास्वरम्। आत्मानं द्वारपूजार्थं पूजा चाधारशक्तिजा ॥१४॥
सान्निध्यकरणं देवे परिवारस्य पूजनम्। अङ्गषट्कस्य पूजार्थं कर्त्तव्या दिग्विभागतः ॥१५॥
धर्मादयश्च शक्राद्याः सायुधाः परिवारकाः। युगवेदमुहूर्त्ताश्च पूजेयं भुक्तिमुक्तिकृत् ॥१६॥
मातृकाद्या गणञ्चादौ नन्दिगङ्गे च पूजयेत्। महाकालञ्च यमुनां देहल्यां पूजयेत् पुरा ॥१७॥

ॐ अमृतेश्वरभैरवाय नमः। एवं ॐ जुं सः सूर्य्याय नमः।

एवं शिवाय कृष्णाय ब्रह्मणे च गणाय च। चण्डिकायै सरस्वत्यै महालक्ष्म्यादि पूजयेत् ॥१८॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे अमृतेशपूजनं नाम अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

———

ऊनविंशोऽध्यायः

सूत उवाच

प्राणेश्वरं गारुडञ्च शिवोक्तं प्रवदाम्यहम् । स्थानान्यादौ प्रवक्ष्यामि नागदष्टो न जीवति ॥१॥
चितावल्मीकशैलादौ कूपे च विवरे तरोः । दंशे रेखात्रयं यस्य प्रच्छन्नं स न जीवति ॥२॥
षष्ठ्याञ्च कर्कटे मेषे मूलाश्लेषामघादिषु । कक्षाश्रोणिगले सन्धौ शङ्खकर्णोदरादिषु ॥३॥
दण्डी शस्त्रधरो भिक्षुर्नग्नादिः कालदूतकः । वक्त्रे बाहौ च ग्रीवायां पृष्ठे च न हि जीवति ॥४॥
पूर्वं दिनपतिर्भुङ्क्ते अर्द्धयामं ततोऽपरे । शेषा ग्रहाः प्रतिदिनं षट्संख्यापरिवर्त्तनैः ॥५॥
नागभोगः क्रमाज्ज्ञेयो रात्रौ बाणविवर्त्तनैः । शेषोऽर्कः फणिपश्चन्द्रस्तक्षको भौम ईरितः ॥६॥
कर्कोटो ज्ञो गुरुः पद्मो महापद्मश्च भार्गवः । शङ्खः शनैश्चरो राहुः कुलिकश्चाहगो ग्रहाः ॥७॥
रात्रौ दिवा सुरगुरोर्भागे स्यादमरान्तकः । पङ्गोः कालो दिवा राहुः कुलिकेन सह स्थितः ॥
यामार्द्धार्द्धसन्धिसंस्थः वेलां कालवतीञ्चरेत् ॥८॥
बाणद्विषड्वह्निवाजियुगभूरेकभागतः । दिवा षड्वेदनेत्राद्रिपञ्चत्रिमानुषांशकैः ॥९॥
पादाङ्गुष्ठे पादपृष्ठे गुल्फे जानुनि लिङ्गके । नाभौ हृदि स्तनपुटे कण्ठे नासापुटेऽक्षिणि ॥
कर्णयोश्च भ्रुवोः शङ्खे मस्तके प्रतिपत्क्रमात् ॥ १० ॥
तिष्ठेच्चन्द्रश्च जीवेन्न पुंसो दक्षिणभागके । कायस्य वामभागे तु स्त्रिया वायुवहात्करात् ॥
अमवस्त्वत्कृतो मोहो निवर्त्तेत च मर्दनात् ॥ ११ ॥
आत्मनः परमं बीजं हंसाख्यं स्फटिकामलम् । ज्ञातव्यं विषपापघ्नं बीजं तस्य चतुर्विधम् ॥१२॥
बिन्दुपञ्चस्वरयुतमाद्यमुक्तं द्वितीयकम् । षष्ठारूढं तृतीयं स्यात्सविसर्गं चतुर्थकम् ॥१३॥
ॐ कुरु कुन्दे स्वाहा । विद्या त्रैलोक्यरक्षार्थं गरुडेन धृता पुरा ॥१४॥
बधेप्सुर्नागनागानां मुखेऽथ प्रणवं न्यसेत् । गले कुरु न्यसेद्धीमान् कुन्दे च गुल्फयोः स्मृतः ॥
स्वाहा पादयुगे चैव युगहा न्यास ईरितः ॥ १५ ॥
गृहेऽपि लिखितो यत्र तन्नागाः सन्त्यजन्ति च । सहस्रमन्त्रं जप्त्वा तु कर्णे सूत्रं धृतं तथा ॥१६॥
यद्गृहे शर्करा जप्ता क्षिप्ता नागास्त्यजन्ति तम् । जप्तलक्षस्य जप्याद्धि सिद्धिःप्राप्ता सुरासुरैः ॥१७॥
ॐ सुवर्णरेखे कुक्कुटविग्रहरूपिणि स्वाहा ।
एवञ्चाष्टदले पद्मे दले वर्णयुगं लिखेत् । नामैतद्वारिधाराभिः स्नातो दष्टो विषं त्यजेत् ॥१८॥
ॐ पक्षि स्वाहा ।
अङ्गुष्ठादि कनिष्ठान्तं करे न्यस्याथ देहके । के वक्त्रे हृदि लिङ्गे च पादयोर्गरुडः स हि ॥१९॥
नाक्रामन्ति च तच्छायां स्वप्नेऽपि विषपन्नगाः । यस्तु लक्षं जपेच्चास्याः स दृष्ट्वा नाशयेद्विषम् ॥२०॥

ॐ ह्रीं ह्रौं ह्रीं भिरुण्डायै स्वाहा । कर्णे जप्ता त्वियं विद्या दष्टकस्य विषं हरेत् ॥२१॥
अ आ न्यसेत्तु पादाग्रे इ ई गुल्फेऽथ जानुनि । उ ऊ ए ऐं कटितटे ओ नाभौ हृदि औ न्यसेत् ॥२२॥
वक्त्रे अमुत्तमाङ्गे अः न्यसेच्च हंससंयुताः । हंसो विषादि च हरेज्जप्तो ध्यातोऽथ पूजितः ॥२३॥
गरुड़ोऽहमिति ध्यात्वा कुर्य्याद्विषहरीं क्रियाम् । हं मन्त्रं गात्रविन्यस्तं विषादिहरमीरितम् ॥२४॥
न्यस्य हंसं वामकरे नासामुखनिरोधकृत् । मन्त्रो हरेद्दष्टकस्य त्वङ्मांसादिगतं विषम् ॥२५॥
स वायुना समाकृष्य दष्टानां गरलं हरेत् । तनौ न्यसेद्दष्टकस्य नीलकण्ठादि संस्मरेत् ॥२६॥
पीतं प्रत्यङ्गिरामूलं तण्डुलाद्भिर्विषापहम् । पुनर्नवाफलिनीनां मूलं चक्रजमीदृशम् ॥ २७ ॥
मूलं शुक्लबृहत्यास्तु कर्कोट्या गैरिकर्णिकम् । अद्भिर्घृष्टं घृतोपेतं लेपोऽयं विषमर्दनः ॥२८॥
विषवृद्धिं न व्रजेच्च उष्णं पिबति यो घृतम् । पञ्चाङ्गन्तु शिरीषस्य मूलं गृञ्जनजं तथा ॥२९॥
सर्वाङ्गलेपतश्चापि पानाद्वा विषहृद्भवेत् । ॐ ह्रीं गोनसादिविषहृत् ॥३०॥
ह्मललाटविसर्गान्तं ध्यातं वश्यादिकृद्भवेत् । न्यस्तं योनौ वशेत् कन्यां कुर्य्यान्मदजलाविलाम् ॥
जप्त्वा सप्ताष्टसाहस्रं गरुत्मानिव सर्वगः । कविः स्याच्छ्रुतिधारी च वश्यांस्त्रीं च समाप्नुयात् ॥
विषहृत्स्यात् कथातत्त्वं मुनेर्व्यासस्य ते ध्रुवम् ॥ ३२ ॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे प्राणेश्वरं समाप्तमूनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

विंशोऽध्यायः

सूत उवाच

वक्ष्ये तत्परमं गुह्यं शिवोक्तं मन्त्रवृन्दकम् । पाशं धनुश्च चक्रञ्च मुद्‌गरं शूलपट्टिशम् ।
एतैरेवायुधैर्युद्धे मन्त्रैः शत्रुं जयेन्नृपः ॥ १ ॥
मन्त्रोद्धारं पद्मपत्रे आदि पूर्वादिके लिखेत् । अष्टवर्गञ्चाष्टमञ्च स्यातमीशानपत्रके ॥ २ ॥
ओङ्कारो ब्रह्मबीजं स्यात् ह्रीङ्कारो विष्णुरेव च । ह्रीङ्कारश्च शिरःशूलिन्त्रिलिखेत्तत्क्रमान्न्यसेत् ॥
ॐ ह्रीं ह्रीं ॥ ३ ॥
शूलं गृहीत्वा हस्तेन भ्राम्य चाकाशसम्मुखम् । तद्दर्शनाद्ग्रहा नागा दुष्टा वा नाशमाप्नुयुः ॥
धूम्रं धनुः करमध्ये धृत्वा खे चिन्तयेन्नरः । दुष्टा नागा ग्रहा मेघा विनश्यन्ति च राक्षसाः ॥
त्रिलोकान् रक्षयेन्मन्त्रो मर्त्यलोकस्य का कथा ॥ ५ ॥
ॐ जूं सूं हुं फट् । खादिरान् कीलकानष्टौ क्षेत्रे संमन्त्र्य विन्यसेत् ।
न तत्र वज्रपातस्य स्फुर्जध्वादेरुपद्रवः ॥ ६ ॥
गरुड़ोक्तं महामन्त्रं कीलकानष्ट मन्त्रयेत् । एकविंशतिवाराणि क्षेत्रे तु निखनेन्निशि ।
विद्युन्मूषिकवज्रादिसमुपद्रव एव च ॥ ७ ॥

हरक्षरमलवषड् बिन्दुयुक्तः सदाशिवः । ॐ ह्रां सदाशिवाय नमः ।

तर्जन्या विन्यसेत् पिण्डं दाड़िमीकुसुमप्रभम् ॥ ८ ॥

तस्यैव दर्शनाद्दुष्टा मेघविद्युद्विषादयः । राक्षसा भूतडाकिन्यः प्रद्रवन्ति दिशो दश ॥ ९ ॥

ॐ ह्रीं गणेशाय गमः । ॐ ह्रीं स्तम्भनादिचक्राय नमः । ॐ ऐं यौं त्रैलोक्यडामराय नमः ।

भैरवं पिण्डमाख्यातं विषपापग्रहापहम् । क्षेत्रस्य रक्षणं भूतराक्षसादेः प्रमर्दनम् ॥१०॥

ॐ नमः । इन्द्रवज्रं करे ध्यात्वा दुष्टमेघादिवारणम् । विषशत्रुगणा भूता नश्यन्ति वज्रमुद्रया ॥

ॐ क्षुं नमः । स्मरेत्पाशं वामहस्ते विषभूतादि नश्यति ॥१२॥

ॐ ह्रां नमः ।

हरेदुच्चारणान्मन्त्रो विषमेघग्रहादिकान् । ध्यात्वा कृतान्तञ्च दहेच्छेदकास्त्रेण वै जगत् ॥१३॥

ॐ क्षणं नमः । ध्यात्वा तु भैरवं कुर्याद् ग्रहभूतविषापहम् ॥१४॥

ॐ लसद्द्विजिह्वाक्ष स्वाहा । क्षेत्रादि ग्रहभूतादिविषपक्षिनिवारणम् ॥१५॥

ॐ क्षां नमः । रक्तेन पटहे लिख्य शब्दस्तेषु ग्रहादयः ॥१६॥

ॐ मर मर मारय मारय स्वाहा । ॐ हुं फट् स्वाहा ॥

शूलञ्चाष्टशतैर्मन्त्रय मनसा शत्रुवृन्दहृन् ॥१७॥

ऊर्ध्वशक्तिनिपातेन अधःशक्तिं निकुञ्चयेत् । पूरके पूरिता मन्त्राः कुम्भकेन सुमन्त्रिताः ॥१८॥

प्रणवेनाप्यायितस्तेन अनेन तत्तदीरिताः । एवमाप्यायिता मन्त्रा भृत्यवत् फलदायकाः ॥१९॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे पूर्वार्द्धे विंशोऽध्यायः ॥२०॥

एकविंशोऽध्यायः

सूत उवाच

पञ्चवक्त्रार्च्चनं वक्ष्ये पृथग्यद्भुक्तिमुक्तिदम् । ॐ भूर्विष्णवे आदिभूताय सर्वाधाराय मूर्त्तये स्वाहा ।

सद्योजातस्य चाह्वानमनेन प्रथमञ्चरेत् ॥ १ ॥

ॐ ह्रां सद्योजातायैव कला ह्यष्टौ प्रकीर्त्तिताः । सिद्धिर्ऋद्धिर्धृतिर्लक्ष्मीर्मेधा कान्तिः स्वधा स्थितिः ॥

ॐ ह्रां वामदेवायैव कला ह्यस्य त्रयोदश । राजा रक्षा रतिः पाल्या कान्तिस्तृष्णा मतिः क्रिया ॥

कामा बुद्धिश्च रात्रिश्च चासनी मोहिनी तथा ॥ ३ ॥

मनोन्मनी अघोरा च तथा मोहा क्षुधा कला । निद्रा मृत्युश्च माया च अष्टसंख्या भयङ्करा ॥४॥

ॐ ह्रैं तत्पुरुषायैव । निवृत्तिश्च प्रतिष्ठा च विद्याशान्तिर्न केवला ॥५॥

ॐ ह्रौं ईशानाय तमो निश्चला च निरञ्जना । शशिनी चाञ्जना चैव मरीचिर्ज्वालिनी तथा ॥६॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे पञ्चवक्त्रपूजनं नाम एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

द्वाविंशोऽध्यायः

सूत उवाच

शिवार्चनं प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिकरं परम् । शान्तं सर्वगत शून्यं मात्रा द्वादशके स्थितम् ॥
पञ्चवक्त्राणि ह्रस्वानि दीर्घाण्यङ्गानि बिन्दुना ॥ १ ॥
सविसर्गं वदेदस्त्रं शिव ऊर्ध्वं तथा पुनः । षष्ठेनाधो महामन्त्रो हौमित्येवाखिलार्थदः ॥२॥
हस्ताभ्यां संस्पृशेत् पादावूर्ध्वं पादान्तमस्तकम् । महामुद्रा हि सर्वेषां कराङ्गन्यासमाचरेत् ॥३॥
तालहस्तेन पृष्ठञ्च अस्त्रमन्त्रेण शोधयेत् । कनिष्ठामादितः कृत्वा तर्जन्यङ्गानि विन्यसेत्॥४॥
पूजनं संप्रवक्ष्यामि कर्णिकायां हृदम्बुजे । धर्मं ज्ञानञ्च वैराग्यमैश्वर्यादि हृदाऽर्चयेत् ॥५॥
आवाहनं स्थापनञ्च पाद्यमर्घ्यं हृदार्पयेत् । आचामं स्नपनं पूजामेकाधारणतुल्यकाम् ॥६॥
अग्निकार्यविधिं वक्ष्ये शस्त्रेणोल्लेखनं चरेत् । वर्मणाभ्युक्षणं कार्यं शक्तिन्यासं हृदाचरेत् ॥७॥
हृदि वा शक्तिगर्त्ते च प्रक्षिपेज्जातवेदसम् । गर्भाधानादिकं कृत्वा निष्कृतिञ्चास्य पश्चिमाम्॥
हृदा कृत्वा सर्वकर्म शिवं साङ्गं तु होमयेत् । पूजयेन्मण्डले शम्भुं पद्मगर्भे गवाङ्कितम् ॥९॥
चतुःषष्ट्यन्तमष्टादि स्वाक्षिस्वाध्यादिमण्डलम् । खार्क्षान्द्रसूर्यगं सर्वंस्वादिवेदेन्दुवर्त्तनात् ॥१०॥
आग्नेय्यां कारयेत् कुण्डमर्द्धचन्द्रनिभं शुभम् । अग्निशास्त्रपरा शस्त्रहृदयादिगणोच्यते ॥
अस्त्रं दिशामुपान्तेषु कर्णिकायां सदाशिवम् ॥ ११ ॥
दीक्षां वक्ष्ये पञ्चतत्त्वे स्थितां भूम्यादिकां परे । निवृत्तिर्भूः प्रतिष्ठा च विद्याग्निः शान्तिरश्मिनः ॥
शान्त्यतीतं भवेद्धोमे तत्परं शान्तमव्ययम् । एकैकस्य शतं होममित्येवं पञ्च होमयेत् ॥
पश्चात् पूर्णाहुतिं दत्त्वा प्रसादेन शिवं स्मरेत् ॥ १३ ॥
प्रायश्चित्तविशुद्ध्यर्थमेकैकमाहुतिं क्रमात् । होमयेदस्त्रबीजेन एवं दीक्षा समाप्यते ॥१४॥
यजनव्यतिरेकेण गोप्यं संस्कारमुत्तमम् । एवं संस्कारशुद्धस्य शिवत्वं जायते ध्रुवम् ॥१५॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे पूर्वार्द्धे द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

सूत उवाच

शिवार्चनं प्रवक्ष्यामि धर्मकामादिसाधनम् । त्रिभिर्मन्त्रैराचामेत्स्वाहान्तैः प्रणवादिकैः ॥१॥
ॐ हां आत्मतत्त्वाय विद्यातत्त्वाय हीं तथा। ॐ हूं शिवतत्त्वाय स्वाहा हृदा स्यात् श्रोत्रवन्दनम् ॥
भस्मस्नानं तर्पणञ्च ॐ हां यां स्वाहा सर्वमन्त्रकाः । सर्वे देवाः सर्वमुनिर्नमोऽन्तो वौषडन्तकः ॥
स्वधान्ताः सर्वपितरः स्वधान्ताश्च पितामहाः ॥३॥
ॐ हां प्रपितामहेभ्यस्तथा मातामहादयः । हां नमः सर्वमातृभ्यस्ततः स्यात्प्राणसंयमः ॥४॥
आचामं मार्जनञ्चाथो गायत्रीञ्च जपेत्ततः । ॐ हां तन्महेशाय विद्महे वाग्विशुद्धाय धीमहि तन्नो रुद्रः प्रचोदयात् ॥ ५ ॥

सूर्य्योपस्थापनं कृत्वा सूर्य्यमन्त्रैः प्रपूजयेत् ।

ॐ हां हीं हूं हैं हौं हः शिवसूर्य्याय नमः । ॐ हं खखोल्काय सूर्य्यमूर्त्तये नमः । ॐ हां हीं सः सूर्य्याय नमः ।

दण्डिने पिङ्गले त्वतिभूतानि नियमं स्मरेत् । अग्न्यादौ विमलेशानमाराध्य परमं सुखम् ॥६॥
यजेत्पद्माञ्च रां दीप्तां रीं सूक्ष्मां रूं जयाञ्च रें । भद्राञ्च रैं विभूतिं रों विमलां रौममोघिकाम् ॥७॥
रं विद्युताञ्च पूर्वाद्रौ रो मध्ये रं सर्वतोमुखीम् । अर्कासनं सूर्य्यमूर्त्तिं हां हूं सः सूर्य्यमर्च्चयेत् ॥८॥
ॐ आं हृदयार्काय च शिरःशिखाय च भूर्भुवः स्वरोम् ॥९॥
ज्वालिनीं हूं कवचस्य चास्त्रं राज्ञीञ्च दीप्तिताम् । यजेत्सूर्य्यहृदा सर्वान्सों सोम मञ्च मङ्गलम् ॥
बं बुधं बृं बृहस्पतिं भं भार्गवं शं शनैश्चरम् । रं राहुं कं यजेत् केतुं ॐ तेजश्चण्डमर्च्चयेत् ॥
सूर्य्यमभ्यर्च्य चाचम्य कनिष्ठातोऽङ्गकान्न्यसेत् । हां हीं शिरो हूं शिखा हैं वर्म्म हौं च नेत्रकम् ॥
होऽस्त्रं शक्तिस्थितिं कृत्वा भूतशुद्धिं पुनर्न्यसेत् ॥१२॥
अर्घ्यपात्रं ततः कृत्वा तदद्भिः प्रोक्षयेद् यजेत् । आत्मानं पद्मसंस्थञ्च हौं शिवाय ततो बहिः ॥
द्वारे नन्दिमहाकालौ गङ्गा च यमुनाऽथ गीः । श्रीवत्सं वास्त्वधिपतिं ब्रह्माणञ्च गणं गुरुम् ॥
शक्त्यनन्तौ यजेन्मध्ये पूर्वादौ धर्मकादिकम् । अधर्माद्यञ्च वह्न्यादौ मध्ये पद्मस्य कर्णिके ॥
वामा ज्येष्ठा च पूर्वादौ रौद्री काली शिवा सिता ॥ १५ ॥
ॐ हौं कलविकरिण्यै बलविकरिणी ततः । बलप्रमथिनी सर्वभूतानां दमनी ततः ॥१६॥
मनोन्मनी यजेदेताः पीठमध्ये शिवाग्रतः । शिवासनमहामूर्तिं मूर्तिमध्ये शिवाय च ॥१७॥
आवाहनं स्थापनञ्च सन्निधानं निरोधनम् । सकलीकरणं मुद्रादर्शनं चार्घ्यपाद्यकम् ॥१८॥

आचामाभ्यङ्गमुद्वर्त्तं स्नानं निर्मञ्छनं चरेत् । वस्त्रं विलेपनं पुष्पं धूपं दीपं चरुं ददेत् ॥१६॥
आचामं मुखवासञ्च ताम्बूलं हस्तशोधनम् । छत्रचामरोपवीतं परमीकरणं चरेत् ॥२०॥
रूपकल्पनकैकत्वे जपो जपसमर्पणम् । स्तुतिर्नतिर्हृदाद्यैश्च ज्ञेयं नामाङ्गपूजनम् ॥२१॥
अग्नीश रक्षो वायव्ये मध्ये पूर्वादितन्त्रकम् । इन्द्राद्यांश्च यजेच्चण्डं तस्मै निर्माल्यमर्पयेत् ॥२२॥
गुह्यातिगुह्यगोप्ता त्वं गृहाणास्मत्कृतं जपम् । सिद्धिर्भवतु मे देव तत्प्रसादात्त्वयि स्थिते ॥
यत्किञ्चित् कर्म हे देव सदा दुष्कृतदुष्कृतम् । तन्मे शिवपदस्थस्य ह्रयं कुरु यशस्कर ॥२४॥
शिवो दाता शिवो भोक्ता शिवः सर्वमिदं जगत् । शिवो जयति सर्वत्र यः शिवः सोऽहमेव च ॥२५॥
यत् कृतं यत् करिष्यामि तत् सर्वं सुकृत तव । त्वं त्राता विश्वनेता च नान्यो नाथोऽस्ति मे शिव
अथान्येन प्रकारेण शिवपूजां वदाम्यहम् । गणः सरस्वती नन्दी महाकालोऽथ गङ्गया ॥२७॥
यमुना तु वास्त्वधिपो द्वारि पूर्वादितस्त्विमे । इन्द्राद्याः पूजनीयाश्च तत्त्वानि पृथिवी जलम् ॥
तेजो वायुर्व्योमगन्धो रसरूपे च शब्दकः । स्पर्शो वाक् पाणिपादौ चपायूपस्थं श्रुतित्वचौ ॥
चक्षुर्जिह्वा घ्राणमनोबुद्धिश्चाहं प्रकृत्यपि । पुमान् रागो द्वेषविद्ये कालाकालो नियत्यपि ३०
माया च शुद्धविद्या च ईश्वरश्च सदाशिव । शक्तिः शिवश्च तान् ज्ञात्वा मुक्तो ज्ञानी शिवो भवेत्
यः शिवः स हरिर्ब्रह्मा सोऽहं ब्रह्मास्मि मुक्तितः ॥ ३२ ॥

भूतशुद्धिं प्रवक्ष्यामि यया शुद्धः शिवो भवेत् । हृत्पद्म सद्यो मन्त्रः स्यान्निवृत्तिश्च कला इड़ा ॥३३
पिङ्गला द्वे च नाड्यौ च प्राणोऽपानश्च मारुतौ । इन्द्रदेहो ब्रह्मदेहश्चतुरस्रञ्च मण्डलम् ॥३४॥
वज्रेण लाञ्छितं दीप्तमेकोद्घातगुणाः शराः । हृत्स्थानसातूणहनं शतकोष्ठप्रविस्तरम् ॥३५॥
ॐ ह्रीं प्रतिष्ठायै हुं हः फट् ॐ हं विद्यायै हं हः फट् । चतुरशीतिकोटीनामुच्छ्रयं भूमितन्त्रकम् ॥
तन्मध्ये भववृक्षञ्च आत्मानञ्च विचिन्तयेत् ॥ ३६ ॥
अधोमुखीं ततः पृथ्वीं तत्तत् शुद्धं भवेद् ध्रुवम् । वामादेवी प्रतिष्ठा च सुषुम्ना धारिका तथा ॥
समानोदानवरुणौ देवता विष्णुकारणम् । उद्घाताश्च गुणं वेदाः श्वेता ध्यानं तथैव च ॥३८॥
एवं कुर्यात्कण्ठपद्ममर्द्धचन्द्राख्यमण्डलम् । पद्माङ्कितं द्विशतकं कोटिविस्तीर्णवान्स्मरेत् ॥३९
चतुर्नवत्युच्छ्रयञ्च आत्मानञ्च ह्यधोमुखम् । तासु स्थानञ्च पद्मञ्च अघोरो विद्ययान्वितः ॥४०॥
नाभ्योष्ट्या हस्तिजिह्वा ध्यानो नागोऽग्निदेवता । रुद्रहेतुस्त्रिरुद्घातास्त्रिगुणा रक्तवर्णकम् ॥४१॥
ज्वालाकृते त्रिकोणञ्च चतुःकोटिशतानि च । विस्तीर्णञ्च समुत्सेधं रुद्रतत्त्वं विचिन्तयेत् ॥४२॥
ललाटे तु तत्पुरुषः शक्तिर्यः शाद्वलं बुधाः । कूर्मञ्च कृकरो वायुर्देव ईश्वरकारणम् ॥४३॥
द्विरुद्घातगुणौ द्वौ च वृषं षट्कोणमण्डलम् । बिन्द्वङ्कितञ्चाष्टकोटिविस्तीर्णञ्चोच्छ्रयस्तथा ॥

चतुर्दशाधिकं कोटि वायुतत्त्वं विचिन्तयेत् ॥ ४४ ॥
द्वादशान्ते सरसिजे शान्त्यतीतास्तथेश्वराः । कुहुश्च शङ्खिनो नाड्यो देवदत्तो धनञ्जयः ॥४५॥
शिखेशानकारणञ्च सदाशिव इति स्मृताः । गुणे एकस्तथाद्धातं शुद्धस्फटिकवत् स्मरेत् ॥४६॥
षोडशं कोटिविस्तीर्णं पञ्चविंशति चोच्छ्रयम् । वर्तुलं चिन्तयेद्धाम भूतशुद्धिरुदाहृता ॥४७॥
गणगुरुर्बीजगुरुः शक्त्यनन्तो च धर्मकः । ज्ञानवैराग्यमैश्वर्यैस्ततः पूर्वादिपत्रके ॥४८॥
अधोर्द्धवदने द्वे च पद्मकर्णिककेशरम् । वामाद्या आत्मविद्या च सदा ध्यायेत् शिवाख्यकम् ॥
तत्त्वं शिवासने मूर्तिर्हौं हौं विद्यादेहाय नमः ॥ ४६ ॥
बद्धपद्मासनासीनः सितः षोडशवर्षकः । पञ्चवक्त्रः कराग्रैः स्वैर्दशभिश्चैव धारयन् ॥५०॥
अभयप्रसादशक्तिं शूलं खट्वाङ्गमीश्वरः । दक्षैः करैर्वामकैश्च भुजगञ्चाक्षसूत्रकम् ॥
डमरुकं नीलोत्पलं बीजपूरकमुत्तमम् ॥ ५१ ॥
इच्छाज्ञानक्रियाशक्तिस्त्रिनेत्रो हि सदाशिवः । एवं शिवार्चनध्यानी सर्वदा कालवर्जितः ॥५२॥
इहाहोरात्रिचारेण वर्षाणि जीवति । दिनद्वयस्य चारेण जीवेद्वर्षद्वयं नरः ॥५३॥
दिनत्रयस्य चारेण वर्षमेकं स जीवति । नाकाले शीतले मृत्युरुष्णे चैव तु कारके ॥५४॥
इति श्रीगारुड़े महापुराणे शिवादिपूजा नाम त्रयोविंशोऽध्यायः ॥ २३ ॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

सूत उवाच

वक्ष्ये गणादिकाः पूजाः सर्वदाः स्वर्गदाः पराः । गणासनं गणमूर्तिं गणाधिपतिमर्चयेत् ॥ १ ॥
गामादिहृदयाद्यङ्गं दुर्गाया गुरुपादुकाः । दुर्गासनञ्च तन्मूर्त्तिं ह्रीं दुर्गे रक्षणीति च ॥ २ ॥
हृदादिकं अष्टशक्त्या रुद्रचण्डा प्रचण्डया । चण्डोग्रा चण्डनायिका चण्डा चण्डवती क्रमात् ॥
चण्डरूपा चण्डिकाख्या दुर्गे दुर्गेऽथ रक्षिणि ॥ ३ ॥
वज्रखङ्गादिका मुद्रा शिवाद्या वह्निरीशनः । सदाशिवमहाप्रेतपद्मासनमथापि वा ॥ ४ ॥
ऐं क्लीं सौस्त्रिपुरायै नमः । ॐ ह्रां ह्रीं क्लें क्षैं स्त्रौं स्कौं रों स्कें स्कौं शां पद्मासनञ्च त्रिपुराहृदयादिकम् ॥ ५ ॥
पीठाम्बुजे तु ब्राह्मयादाव्रजा गौ च महेश्वरी । कौमारी वैष्णवी पूज्या वाराही चेन्द्रदेवता ॥
चामुण्डा चण्डिका पूज्या भैरवाख्यास्ततो यजेत् ॥ ६ ॥

असिताङ्गो रुरुश्चण्डः क्रोध उन्मत्तभैरवः । कपाली भीषणश्चैव संहाराश्चाष्टभैरवाः ॥ ७ ॥
रतिः प्रीतिः कामदेवः पञ्चबाणश्च योगिनी । वटुकं दुर्गया विघ्नराजो गुरुश्च क्षेत्रपः ॥ ८ ॥
पद्मगर्भे मण्डले च त्रिकोणे चिन्तयेद्धृदि । शुक्लां वराक्षसूत्रपुस्तकाभयसमन्विताम् ॥
लक्षजप्याच्च होमाच्च त्रिपुरा सिद्धिदा भवेत् ॥ ९ ॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे त्रिपुरादिपूजा नाम चतुर्विंशोऽध्यायः ॥ २४ ॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

सूत उवाच ।

ऐं क्रीं श्रीं स्फें क्षौं अनन्तशक्तिपादुकां पूजयामि नमः ॥ १ ॥
ऐं ह्रीं श्रीं फ्रौं क्षौं आधारशक्तिपादुकां पूजयामि नमः ॥ २ ॥
ॐ हूं कालाग्निरुद्रपादुकां पूजयामि नमः ॥ ३ ॥
ॐ ह्रीं हुं हाटकेश्वरदेवपादुकां पूजयामि नमः ॥ ४ ॥
ॐ ह्रीं शेषभट्टारकपादुकां पूजयामि नमः ॥ ५ ॥

ॐ ह्रीं श्रीं पृथिवी तद्वर्णभुवनद्वीपससुद्रदिशामनन्ताख्यमासनं पूजयामि नमः ॥ ६ ॥
ह्रीं श्रीं निवृत्त्यादिकला पृथिव्यादितत्त्वमनन्तादिभुवनमोङ्कारादिवर्णं हकारादि-नवात्मकः पदः सद्योजातादिमन्त्रः ॥ ७ ॥

हां हृदयाद्यङ्गः ।

एवं माहेश्वरो मन्त्रः सिद्धविद्यात्मकः परामृतार्णवः ॥ ८ ॥
सर्वतो दिक्समस्तेषु षडङ्गं सदाशिवार्णवपयः पूर्णोदधिपद्मं श्रीमानास्पदात्मकः ॥ ९ ॥
विद्योमा पूर्णज्ञत्वकर्तृकत्वलक्षणज्येष्ठारूपचक्ररुद्रशक्त्यात्मककर्णिको नवशक्तिशिवादि-त्रिशूलमण्डलत्रयः ॥ १० ॥

पङ्कजात्मको न्यस्तपद्मासनपादुकां पूजयामि नमः ॥११॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे आसनपूजा नाम पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

षड्विंशोऽध्यायः

सूत उवाच

अनन्तरं करन्यासः वियाकरी शुद्धिः कार्य्या पद्ममुद्रां बद्ध्वा मन्त्रन्यासं कुर्य्यात् । कौं कनिष्ठायै नमः । नौं अनामिकायै नमः । मौं मध्यमायै नमः । तौं तर्जन्यै नमः । अं अङ्गुष्ठायै नमः । लां करतलायै नमः । वां करपृष्ठायै नमः ॥१॥

अथ देहन्यासः । कं मणिबन्धाय नमः । ऐं ह्रीं श्रीं कारस्कराय नमः । महातेजो-रूपं हुंहुंकारेण करक्षालनं कुर्य्यात् ॥२॥

ऐं ह्रीं ह्रीं श्रीं ह्रैं स्फैं नमो भगवते स्फैं कुब्जिकायै नमः । ह्रूं ह्रीं क्रौं ङञणनमे अघोरामुखि हां ह्रीं किलि किलि विच्चेस्थौ व्यङ्गस्थौ ह्रीं ह्रीं श्रीं ऐं नमो भगवते ऊर्ध्ववक्त्राय नमः । स्फौं कुब्जिकायै पूर्ववक्त्राय नमः । ह्रीं श्रीं ह्रीं ङञगनमेति दक्षिणवक्त्राय नमः । ॐ ह्रीं श्रीं किलि किलि पश्चिमवक्त्राय नमः । ॐ अघोरमुखि उत्तरवक्त्राय नमः । ॐ नमो भगवते हृदयाय नमः । च्वें ऐं कुब्जिकायै शिरसे स्वाहा । ह्रीं क्रीं ह्रीं प्रां ङ ञ ण नमे शिखायै अघोरमुखि कवचाय हुं । हैं हैं ह्रं नेत्रत्रयाय वौषट् । किलि किलि विंच्वे अस्त्राय फट् ॥३॥

ऐं ह्रीं श्रीं अखण्डमण्डलाकारमहाशून्यमण्डलाय नमः । ऐं ह्रीं श्रीं वायुमण्डलाय नमः । ऐं ह्रीं श्रीं सोममण्डलाय नमः । ऐं ह्रीं श्रीं महाकुलबोधावलिमण्डलाय नमः । ऐं ह्रीं श्रीं कौलमण्डलाय नमः । ऐं ह्रीं श्रीं गुरुमण्डलाय नमः । ऐं ह्रीं ह्रीं साममण्डलाय नमः । ऐं ह्रीं श्रीं समग्रसिद्धयोगिनीपीठोपपीठक्षेत्रोपक्षेत्रसन्तानमण्डलाय नमः । एवं मण्डलानां द्वादशकं क्रमेण पूज्यम् ॥४॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे कुब्जिकापूजा नाम षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

सप्तविंशोऽध्यायः

सूत उवाच

ॐ कालविकालकङ्कालि ! चर्विणि ! भूनहारिणि ! फणिविषिणि ! विरथनारायणि ! उमे ! दहदह हस्ते ! चण्डे ! रौद्रि ! माहेश्वरि ! महामुखि ! ज्वालामुखि ! शङ्कुकर्णि ! शकमुण्डे ! शत्रुं हन हन सर्वनाशिनि ! खख सर्वाङ्गशोणितं नन्निरीक्षसि ! मनसादेवि ! सम्मोहय सम्मोहय रुद्रस्य हृदये जाता रुद्रस्य हृदये स्थिता रुद्रो रौद्रेण रूपेण त्वं देवि !

रक्षरक्ष मां हूं मां फफ ठठ स्कन्दमेखलावान् ग्रहशत्रुविषहारि ! शाले ! माले ! हर हर विशोक ! हां हां शवरि ! हुं शवरि ! प्रकोणविशरे ! सर्वे ! विश्वमेघ मिले ! सर्वनागादि-विषहरणम् ॥१॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

सूत उवाच

गोपालपूजां वक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम् । द्वारे धाता विधाता च गङ्गा यमुनया सह ॥१॥
शङ्खपद्मनिधी चैव शारङ्गः शरभः श्रिया । पूर्वे भद्रः सुभद्रो द्वौ दक्षौ चण्डप्रचण्डकौ ॥२॥
पश्चिमे बलप्रबलौ जयश्च विजयो यजेत् । उत्तरे श्रीश्चतुर्द्वारे गणो दुर्गा सरस्वती ॥३॥
क्षेत्रस्याग्न्यादिकोणेषु दिक्षु नारदपूर्वकम् । सिद्धो गुरुर्नलकूबरं कोणे भागवतं यजेत् ॥ ४ ॥
पूर्वं विष्णुं विष्णुतपो विष्णुशक्तिं समर्चयेत् । ततो विष्णुपरीवारं मध्ये शक्तिञ्च कूर्मकम् ॥ ५ ॥
अनन्तं पृथिवीधर्मं ज्ञानं वैराग्यमग्नितः । ऐश्वर्य्यं वायुपूर्वञ्च प्रकाशात्मानमुत्तरे ॥ ६ ॥
सत्त्वाय प्रकृतात्मने रजसे मोहरूपिणे । तमसे पद्माय यजेदहङ्कारकतत्त्वकम् ॥ ७ ॥
विद्यातत्त्वं परं तत्त्वं सूर्य्येन्दुवह्निमण्डलम् । विमलाद्या आसनञ्च प्राच्यां श्रीं ह्रीं संपूजयेत् ॥
गोपीजनवल्लभाय स्वाहान्तो मनुरुच्यते ॥ ८ ॥

अङ्गानि यथा—

आचक्रञ्च सुचक्रञ्च विचक्रञ्च तथैव च । त्रैलोक्यरक्षणं चक्रमसुरारिसुदर्शनम् ॥ ९ ॥
हृदादिपूर्वकोणेषु अस्त्रं शक्तिञ्च पूर्वतः । रुक्मिणी सत्यभामा च सुनन्दा नाग्नजित्यपि ॥
लक्ष्मणा मित्रवृन्दा च जाम्बवत्या सुशीलया । शङ्खचक्रगदापद्मं मुसलं शार्ङ्गमर्च्चयेत् ॥११॥
खड्गं पाशाङ्कुशं प्राच्यां श्रीवत्सं कौस्तुभं यजेत् । मुकुटं वनमालाञ्च इन्द्राद्यान ध्वजमुख्यकान् ॥
कुमुदाद्यान्विष्वक्सेनं कृष्णं श्रिया सहार्चयेत् । जप्याद्ध्यानात्पूजनाच्च सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे श्रीकृष्णपूजनं नामाष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

एकोनत्रिंशोऽध्यायः

हरिरुवाच

त्रैलोक्यमोहिनीं वक्ष्ये पुरुषोत्तममुख्यकाम् । पूजामन्त्रान्श्रीधराद्यान्धर्मकामादिदायकान् ॥१॥

ॐ ह्रीं श्रीं क्लीं हूं ॐ नमः । पुरुषोत्तम ! अप्रतिरूप ! लक्ष्मीनिवास ! सकलजगत्क्षोभन ! सर्वस्त्रीहृदयविदारण ! त्रिभुवनमदोन्मादनकर ! सुरासुरसुन्दरीजनमनांसि तापय तापय शोषय शोषय मारय मारय स्तम्भय स्तम्भय द्रावय द्रावय आकर्षय आकर्षय । परमसुभग ! सौभाग्यकर ! सर्वकामप्रद ! अमुकं हन हन चक्रेण गदया खड्गेन सर्वबाणैर्भिन्धि भिन्धि पाशेन कट्ट कट्ट अङ्कुशेन ताडय ताडय तुरु तुरु किं तिष्ठसि ? तारय तारय यावत् समीहितं मे सिद्धं भवति हूं फट् नमः ॥ २ ॥

श्रीं श्रीधराय त्रैलोक्यमोहनाय नमः । क्लीं पुरुषोत्तमाय त्रैलोक्यमोहनाय नमः ॥ ३ ॥
हूं विष्णवे त्रैलोक्यमोहनाय नमः । ॐ श्रीं ह्रीं क्लीं त्रैलोक्यमोहनाय विष्णवे नमः ॥ ४ ॥
त्रैलोक्यमोहना मन्त्राः सर्वे सर्वार्थसाधकाः । सर्वे चिन्त्याः पृथग्वापि व्यास संक्षेपतोऽथ वा ॥५॥
आसनं मूर्त्तिमस्त्रञ्च होमाद्यङ्गषडङ्गकम् । चक्रं गदाञ्च खड्गञ्च मुसलं शङ्खशार्ङ्गकम् ॥ ६ ॥
शरं पाशमङ्कुशञ्च लक्ष्मीगरुडसंयुतम् । विष्वक्सेनं विस्तराद्धा नरः सर्वमवाप्नुयात् ॥ ७ ॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे मोहिनीपूजनं नामैकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

त्रिंशोऽध्यायः

सूत उवाच

विस्तरेण प्रवक्ष्यामि श्रीधरस्यार्च्चनं शुभम् । परिवारश्च सर्वेषां समो ज्ञेयो हि पण्डितैः ॥ १ ॥

ॐ श्रां हृदयाय नमः । ॐ श्रीं शिरसे स्वाहा । ॐ श्रं शिखायै वषट् । ॐ श्रैं कवचाय हुं । ॐ श्रौं नेत्रत्रयाय वौषट् । ॐ श्रः अस्त्राय फट् ॥ २ ॥

इति दर्शयेदात्मनो मुद्रां शङ्खचक्रगदादिकाम् । ध्यात्वात्मानं श्रीधराख्यं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥३॥
ततस्तं पूजयेद्देवं मण्डले स्वस्तिकादिके । आसनं पूजयेदादौ देवदेवस्य शार्ङ्गिणः ॥
एभिर्मन्त्रैर्महादेव तान् मन्त्रान् शृणु शङ्कर ॥४॥

ॐ श्रीधरासनदेवता आगच्छत । ॐ समस्तपरिवारायाच्युतासनाय नमः ॥५॥

ॐ धात्रे नमः । ॐ विधात्रे नमः । ॐ गङ्गायै नमः । ॐ यमुनायै नमः । ॐ आधारशक्तयै नमः । ॐ कूर्माय नमः । ॐ अनन्ताय नमः । ॐ पृथिव्यै नमः । ॐ धर्माय नमः । ॐ ज्ञानाय नमः । ॐ वैराग्याय नमः । ॐ ऐश्वर्याय नमः । ॐ अधर्माय नमः । ॐ अज्ञानाय नमः । ॐ वैराग्याय नमः । ॐ अनैश्वर्याय नमः । ॐ स्कन्दाय नमः । ॐ नीलाय नमः । ॐ पद्माय नमः । ॐ विमलायै नमः । ॐ उत्कर्षिण्यै नमः । ॐ

ज्ञानायै नमः। ॐ क्रियायै नमः। ॐ योगायै नमः। ॐ पुत्र्यै नमः। ॐ प्रह्व्यै नमः। ॐ सत्यायै नमः। ॐ ईशानायै नमः। ॐ अनुग्रहायै नमः ॥६॥

अर्चयित्वा समं रुद्र हरिमावाह्य संयजेत्। मन्त्रैरेभिर्महाप्राज्ञः सर्वपापप्रणाशनैः ॥
ॐ ह्रीं श्रीधराय त्रैलोक्यमोहनाय विष्णवे नमः ॥७॥

ॐ श्रियै नमः। ॐ श्रां हृदयाय नमः। ॐ श्रीं शिरसे नमः। ॐ श्रूं शिखायै नमः। ॐ श्रैं कवचाय नमः। ॐ श्रौं नेत्रत्रयाय नमः। ॐ श्रः अस्त्राय नमः। ॐ शङ्खाय नमः। ॐ पद्माय नमः। ॐ चक्राय नमः। ॐ गदायै नमः। ॐ श्रीवत्साय नमः। ॐ कौस्तुभाय नमः। ॐ वनमालायै नमः। ॐ पीताम्बराय नमः। ॐ ब्रह्मणे नमः। ॐ नारदाय नमः। ॐ गुरुभ्यो नमः। ॐ इन्द्राय नमः। ॐ अग्नये नमः। ॐ यमाय नमः। ॐ निर्ऋतये नमः। ॐ वरुणाय नमः। ॐ वायवे नमः। ॐ सोमाय नमः। ॐ ईशानाय नमः। ॐ अनन्ताय नमः। ॐ ब्रह्मणे नमः। ॐ सत्त्वाय नमः। ॐ रजसे नमः। ओं तमसे नमः। ओं विष्वक्सेनाय नमः ॥८॥

अभिषेकं तथा वस्त्रं ततो यज्ञोपवीतकम्। गन्धं पुष्पं तथा धूपं दीपमन्नं प्रदक्षिणम् ॥९॥
दद्यादेभिर्महामन्त्रैः समभ्याथ जपन्मनुम्। गतमष्टाक्षरञ्चापि जप्त्वा ह्यथ समर्पयेत् ॥१०॥
ततो मुहूर्त्तमेकं तु ध्यायेद्देवं हृदिस्थितम्। शुद्धस्फटिकसङ्काशं सूर्यकोटिसमप्रभम् ॥११॥
प्रसन्नवदनं सौम्यं स्फुरन्मकरकुण्डलम्। किरीटिनमुदाराङ्गं वनमालासमन्वितम् ॥
परब्रह्मस्वरूपञ्च श्रीधरं चिन्तयेत् सुधीः ॥१२॥

अनेन चैव स्तोत्रेण स्तुवीत परमेश्वरम्। श्रीनिवासाय देवाय नमः श्रीपतये नमः ॥१३॥
श्रीधराय सशार्ङ्गाय श्रीप्रदाय नमो नमः। श्रीवल्लभाय शान्ताय श्रीमते च नमो नमः ॥१४॥
श्रीपर्वतनिवासाय नमः श्रेयस्कराय च। श्रेयसाम्पतये चैव ह्याश्रमाय नमो नमः ॥१५॥
नमः श्रेयःस्वरूपाय श्रीकराय नमो नमः। शरण्याय वरेण्याय नमो भूयो नमो नमः ॥१६॥
स्तोत्रं कृत्वा नमस्कृत्य देवदेवं विसर्जयेत्। इति रुद्र समाख्याता पूजा विष्णोर्महात्मनः ॥१७॥
यः करोति महाभक्त्या स याति परमं पदम्। इमं यः पठतेऽध्यायं विष्णुपूजाप्रकाशकम् ॥
स विधूयेत पापानि याति विष्णोः परं पदम् ॥१८॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

एकत्रिंशोऽध्यायः

रुद्र उवाच

भूय एव जगन्नाथ पूजां कथय मे प्रभो। यया तरेयं संसारसागरं ह्यतिदुष्करम् ॥१॥

हरिरुवाच

अर्चनं विष्णुदेवस्य वदामि वृषभध्वज। तच्छृणुष्व महाभाग भुक्तिमुक्तिप्रदं शुभम् ॥२॥
कृत्वा स्नानं ततः सन्ध्यां ततो यागगृहं व्रजेत्। प्रक्षाल्य पाणी पादौ च आचम्य च विशेषतः ॥३॥
मूलमन्त्रं समस्तं तु हस्तयोर्व्यापकं न्यसेत्। मूलमन्त्रश्च देवस्य शृणु रुद्र वदामि ते ॥४॥
ॐ श्रीं ह्रीं श्रीधराय विष्णवे नमः। अयं मन्त्रः सुरेशस्य विष्णोराशस्य वाचकः ॥५॥
सर्वव्याधिहरश्चैव सर्वग्रहहरस्तथा। सर्वपापहरश्चैव भुक्तिमुक्तिप्रदायकः ॥६॥
अङ्गन्यासं ततः कुर्य्यादेभिर्मन्त्रैर्विचक्षण।

ॐ हां हृदयाय नमः, ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहा, ॐ हूं शिखायै वषट्, ॐ हैं कवचाय हुम्, ॐ हौं नेत्रत्रयाय वौषट्, ॐ हः अस्त्राय फट् ॥७॥

इति मन्त्रः समाख्यातो मया ते प्रभविष्णुना। न्यासं कृत्वात्मनो मुद्रां दर्शयेद्विजितात्मवान् ॥
ततो ध्यायेत् परं विष्णुं हृत्काटरसमाश्रितम्। शङ्खचक्रसमायुक्तं कुन्देन्दुधवलं हरिम् ॥९॥
श्रीवत्सकौस्तुभयुतं वनमालासमन्वितम्। रत्नहारकिरीटेन संयुक्तं परमेश्वरम् ॥
अहं विष्णुरिति ध्यात्वा कृत्वा वै शोधनादिकम् ॥१०॥
यं क्षं रमिति बीजैश्च कठिनीकृत्य नामभिः। अण्डमुत्पाद्य च ततः प्रणवेनैव भेदयेत् ॥११॥
तत्र पूर्वोक्तरूपं तु भावयित्वा वृषध्वज। आत्मपूजां ततः कुर्य्याद् गन्धपुष्पादिभिः शुभैः॥
आवाह्य पूजयेत् सर्वा देवता आसनस्य याः। मन्त्रैरेभिर्महादेव तन्मत्रं शृणु शङ्कर ॥१३॥

विष्णवासनदेवता आगच्छत। ॐ समस्तपरिवारायाच्युताय नमः। ॐ धात्रे नमः। ॐ विधात्रे नमः। ॐ गङ्गायै नमः। ॐ यमुनायै नमः। ॐ शङ्खनिधये नमः। ॐ पद्मनिधये नमः। ॐ चण्डाय नमः। ॐ प्रचण्डाय नमः। ॐ द्वारश्रियै नमः। ॐ आधारशक्त्यै नमः। ॐ कूर्म्माय नमः। ॐ अनन्ताय नमः। ॐ श्रिये नमः। ॐ धर्म्माय नमः। ॐ ज्ञानाय नमः। ॐ वैराग्याय नमः। ॐ ऐश्वर्य्याय नमः। ॐ अधर्म्माय नमः। ॐ अज्ञानाय नमः। ॐ अवैराग्याय नमः। ॐ अनैश्वर्य्याय नमः। ॐ सं सत्त्वाय नमः। ॐ रं रजसे नमः। ॐ तं तमसे नमः। ॐ कं स्कन्दाय नमः। ॐ नं नालाय नमः। ॐ लं पद्माय नमः। ॐ अं अर्कमण्डलाय नमः। ॐ सं सोममण्डलाय नमः। ॐ ां वह्निमण्ड-

लाय नमः । ॐ विमलायै नमः । ॐ उत्कर्षिण्यै नमः । ॐ ज्ञानायै नमः । ॐ क्रियायै नमः । ॐ योगायै नमः । ॐ प्रह्व्यै नमः । ॐ सत्यै नमः । ॐ ईशानायै नमः । ॐ अनुग्रहायै नमः ॥१४॥

गन्धपुष्पादिभिस्त्वेतैर्मन्त्रैरेतास्तु पूजयेत् । पूजयित्वा ततो विष्णुं सृष्टिसंहारकारिणम् ॥१५॥
आवाह्य मण्डले रुद्र पूजयेत् परमेश्वरम् । अनेन विधिना रुद्र सर्वपापहरं हरिम् ॥१६॥
यथात्मनि तथा देवे न्यासं कुर्वीत चादितः । मुद्रां प्रदर्शयेत् पश्चादर्घ्यादि दर्शयेत्ततः ॥१७॥
स्नानं कुर्य्यात्ततो वस्त्रं दद्यादाचमनं ततः । गन्धपुष्पं तथा धूपं दीपं दद्याच्चरुं ततः ॥१८॥
प्रदक्षिणं ततो जप्यं ततस्तस्मिन् समर्पयेत् । अङ्गादीनां स्वमन्त्रैश्च पूजां कुर्वीत साधकः ॥१९॥
देवस्य मूलमन्त्रेण ह्रीति विद्धि वृषध्वज । मन्त्रान् शृणु त्रिनेत्र त्वं कथ्यमानान् मयाऽधुना ॥

ॐ ह्रां हृदयाय नमः । ॐ ह्रीं शिरसे नमः । ॐ ह्रूं शिखायै नमः । ॐ ह्रैं कवचाय नमः । ॐ ह्रौं नेत्रत्रयाय नमः । ॐ ह्रः अस्त्राय नमः । ॐ श्रियै नमः । ॐ शङ्खाय नमः । ॐ पद्माय नमः । ॐ चक्राय नमः । ॐ गदायै नमः । ॐ श्रीवत्साय नमः । ॐ कौस्तुभाय नमः । ॐ वनमालायै नमः । ॐ पीताम्बराय नमः । ॐ खड्गाय नमः । ॐ मुसलाय नमः । ॐ पाशाय नमः । ॐ अङ्कुशाय नमः । ॐ शार्ङ्गाय नमः । ॐ शराय नमः । ॐ ब्रह्मणे नमः । ॐ नारदाय नमः । ॐ सर्वसिद्धेभ्यो नमः । ॐ भागवतेभ्यो नमः । ॐ गुरुभ्यो नमः । ॐ परमगुरुभ्यो नमः । ॐ इन्द्राय सुराधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः । ॐ अग्नये तेजोऽधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः । ॐ यमाय प्रेताधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः । ॐ निर्ऋतये रक्षोऽधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः । ॐ वरुणाय जलाधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः । ॐ वायवे प्राणाधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः । ॐ सोमाय नक्षत्राधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः । ॐ ईशानाय विद्याधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः । ॐ अनन्ताय नागाधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः । ॐ ब्रह्मणे लोकाधिपतये सवाहनपरिवाराय नमः । ॐ वज्राय हुं फट् नमः । ॐ शक्त्यै हुं फट् नमः । ॐ दण्डाय हुं फट् नमः । ॐ खड्गाय हुं फट् नमः । ॐ पाशाय हुं फट् नमः । ॐ ध्वजाय हुं फट् नमः । ॐ गदायै हुं फट् नमः । ॐ त्रिशूलाय हुं फट् नमः । ॐ चक्राय हुं फट् नमः । ॐ पद्माय हुं फट् नमः । ॐ वौं विश्वक्सेनाय नमः ॥२१॥

एभिर्मन्त्रैर्महादेव पूज्या अङ्गादयो नरैः । पूजयित्वा महात्मानं विष्णुं ब्रह्मस्वरूपिणम् ॥
स्तुवीत चानया स्तुत्या परमात्मानमव्ययम् ॥२२॥

विष्णवे देवदेवाय नमो वै प्रभविष्णवे । विष्णवे वासुदेवाय नमः स्थितिकराय च ॥२३॥
ग्रसिष्णवे नमश्चैव नमः प्रलयशायिने । देवानां प्रभवे चैव यज्ञानां प्रभवे नमः ॥२४॥
मुनीनां प्रभवे नित्यं यक्षाणां प्रभविष्णवे । जिष्णवे सर्वदेवानां सर्वगाय महात्मने ॥२५॥
ब्रह्मेन्द्ररुद्रवन्द्याय सर्वेशाय नमो नमः । सर्वलोकहितार्थाय लोकाध्यक्षाय वै नमः ॥२६॥
सर्वगोप्त्रे सर्वकर्त्रे सर्वदुष्टविनाशिने । वरप्रदाय शान्ताय वरेण्याय नमो नमः ॥
शरण्याय स्वरूपाय धर्मकामार्थदायिने ॥२७॥
स्तुत्वा ध्यायेत्स्वहृदये ब्रह्मरूपिणमव्ययम् । एवं तु पूजयेद्विष्णुं मूलमन्त्रेण शङ्कर ॥२८॥
मूलमन्त्रं जपेद्वापि यः स याति नरो हरिम् । एतत्ते कथितं रुद्र विष्णोरर्च्चनमुत्तमम् ॥२९॥
रहस्यं परमं गुह्यं भुक्तिमुक्तिप्रदं परम् । एतद्यश्च पठेद्विद्वान्विष्णुभक्तः पुमान्हर ॥
शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि विष्णुलोकं स गच्छति ॥३०॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३१ ॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

महेश्वर उवाच

पञ्चतत्त्वार्च्चनं ब्रूहि शङ्खचक्रगदाधर । येन विज्ञानमात्रेण नरो याति परं पदम् ॥ १ ॥

हरिरुवाच

पञ्चतत्त्वार्च्चनं वक्ष्ये तव शङ्कर सुव्रत । मङ्गल्यं मङ्गलं दिव्यं रहस्यं कामदं परम् ॥
तच्छृणुष्व महादेव पवित्रं कलिनाशनम् ॥ २ ॥
एक एवाव्ययः शान्तः परमात्मा सनातनः । वासुदेवो ध्रुवः शुद्धः सर्वव्यापी निरञ्जनः ॥ ३ ॥
स एव मायया देव पञ्चधा संस्थितो हरिः । लोकानुग्रहकृद्विष्णुः सर्वदुष्टविनाशनः ॥ ४ ॥
वासुदेवस्वरूपेण तथा सङ्कर्षणेन च । तथा प्रद्युम्नरूपेणानिरुद्धाख्येन च स्थितः ॥
नारायणस्वरूपेण पञ्चधा च ह्ययं स्थितः ॥ ५ ॥
एतेषां वाचका मन्त्रा एतान्शृणु वृषध्वज । ॐ अं वासुदेवाय नमः । ॐ आं सङ्कर्षणाय
नमः । ॐ अं प्रद्युम्नाय नमः । ॐ अनिरुद्धाय नमः । ॐ नारायणाय नमः ॥ ६ ॥
पञ्चमन्त्राः समाख्याता देवानां वाचकास्तव । सर्वपापहराः पुण्याः सर्वरोगविनाशनाः ॥ ७ ॥
अधुना संप्रवक्ष्यामि पञ्चतत्त्वार्च्चनं शुभम् । विधिना येन कर्त्तव्यं यैर्वा मन्त्रैश्च शङ्कर ॥ ८ ॥

आदौ स्नानं प्रकुर्वीत स्नात्वा सन्ध्यां समाचरेत् । अर्चनागारमासाद्य प्रक्षाल्याङ्घ्र्यादिकं तथा ॥
आचम्योपविशेत्प्राज्ञो बद्धासनमभीप्सितम् । शोषणादि ततः कुर्य्यादं क्षौं रमिति मन्त्रकैः ॥
सामान्यकठिनीकृत्य चाण्डमुत्पादयेत्ततः । विभिद्याण्डं ततो ह्यण्डे भावयेत्परमेश्वरम् ॥११॥
वासुदेवं जगन्नाथं पीतकौशेयवाससम् । सहस्रादित्यसङ्काशं स्फुरन्मकरकुण्डलम् ॥१२॥
आत्मनो हृदि पद्मे च ध्यायेत्तु परमेश्वरम् । ततः सङ्कर्षणं देवमात्मानं चिन्तयेत्प्रभुम् ॥
प्रद्युम्नमनिरुद्धञ्च श्रीमन्नारायणं ततः ॥१३॥
इन्द्रादींश्च सुरांस्तस्माद्देवदेवात्समुत्थितान् । चिन्तयेच्च ततो न्यासं कुर्य्याद्वै करयोर्द्वयोः ॥
व्यापकं मूलमन्त्रेण चाङ्गन्यासं ततः परम् । अङ्गमन्त्रैर्महादेव तन्मन्त्रान् शृणु सुव्रत ॥१५॥

ॐ आं हृदयाय नमः। ॐ ईं शिरसे नमः। ॐ ऊं शिखायै नमः। ॐ ऐं कवचाय नमः। ॐ औं नेत्रत्रताय नमः। ॐ अः अस्त्राय फट् ॥१६॥

ॐ समस्तपरिवारायाच्युताय नमः। ॐ धात्रे नमः। ॐ विधात्रे नमः। ॐ आधारशक्त्यै नमः। ॐ कूर्माय नमः। ॐ अनन्ताय नमः। ॐ पृथिव्यै नमः। ॐ धर्माय नमः। ॐ ज्ञानाय नमः। ॐ वैराग्याय नमः। ॐ ऐश्वर्य्याय नमः। ॐ अधर्माय नमः। अज्ञानाय नमः। ॐ अनैश्वर्य्याय नमः। ॐ अर्कमण्डलाय नमः। ॐ सोममण्डलाय नमः। ॐ मं वह्निमण्डलाय नमः। ॐ वं वासुदेवाय परमब्रह्मणे शिवाय तेजोरूपाय व्यापिने सर्वदेवाधिदेवाय नमः। ॐ पाञ्चजन्याय नमः। ॐ सुदर्शनाय नमः। ॐ गदायै नमः। ॐ पद्माय नमः। ॐ श्रियै नमः। ॐ क्रियायै नमः। ॐ पुष्टयै नमः। ॐ शक्त्यै नमः। ॐ प्रीत्यै नमः। ॐ इन्द्राय नमः। ॐ अग्नये नमः। ॐ यमाय नमः। ॐ नैर्ऋताय नमः। ॐ वरुणाय नमः। ॐ वायवे नमः। ॐ सोमाम नमः। ॐ ईशनाय नमः। ॐ अनन्ताय नमः। ॐ ब्रह्मणे नमः। ॐ विष्वक्सेनाय नमः। ओं पद्माय नमः ॥१७॥

एते मन्त्राः समाख्यातास्तव रुद्र समासतः। पूजा चैव प्रकर्त्तव्या मण्डले स्वस्तिकादिके॥१८॥
अङ्गन्यासञ्च कृत्वा तु मुद्राःसर्वाः प्रदर्शयेत्। आत्मानं वासुदेवञ्च ध्यात्वा चैव परेश्वरम् ॥१९॥
आसन पूजयेत्पश्चादावाह्य विधिवन्नरः। द्वारे धातुर्विधातुश्च पूजा कार्य्या वृषध्वज ॥२०॥
गरुड़ं पूजयेदग्रे वासु वस्य शङ्कर। शङ्खादिपद्मपर्य्यन्तं मध्यदेशे प्रपूजयेत् ॥२१॥
धर्मं ज्ञानञ्च वैराग्यमैश्वर्य्यं पूर्वदेशतः। आग्नेयादिष्वर्चयेद्वै अधर्मादि चतुष्टयम् ॥२२॥
मण्डलद्वयमध्ये तु कीर्त्तिता ह्यासनस्थितिः। पूर्वादिपद्मपत्रेषु पूज्याः सङ्कर्षणादयः ॥२३॥
कर्णिकायां वासुदेवं पूजयेत्परमेश्वरम्। पाञ्चजन्यादयः पूज्याः ऐशान्यादिषु संस्थिताः ॥२४॥

शक्तयश्चैव पूर्वादौ देवदेवस्य शङ्कर । इन्द्रादयो लोकपालाः पूज्याः पूर्वादिषु स्थिताः ॥२५॥
अधोनागं तदूर्ध्वन्तु ब्रह्माणं पूजयेत्सुधीः । इति स्थानक्रमो ज्ञेयो मण्डले शङ्कर त्वया ॥२६॥
आवाह्य मण्डले देवं कृत्वा न्यासं तु तस्य च । मुद्रां प्रदर्श्य पाद्यादीन्दद्यान्मूलेन शङ्कर ॥२७॥
स्नानं वस्त्रं तथाचामं नमस्कारं प्रदक्षिणम् । कुर्य्याच्छङ्कर मूलेन जपञ्चापि समर्पयेत् ॥२८॥
इदं स्तोत्रं जपेत्पश्चाद्वासुदेवमनुस्मरन् । ॐ नमो वासुदेवाय नमः शङ्कर्षणाय च ॥२९॥
प्रद्युम्नायादिदेवायानिरुद्धाय नमो नमः । नमो नारायणायैव नराणां पतये नमः ॥३०॥
नरपूज्याय कीर्त्याय स्तुत्याय वरदाय च । अनादिनिधनायैव पुराणाय नमो नमः ॥३१॥
सृष्टिसंहारकर्त्रे च ब्रह्मणः पतये नमः । नमो वै वेदवेद्याय शङ्खचक्रधराय च ॥३२॥
कलिकल्मषनाशाय सुरेशाय नमो नमः । संसारवृक्षच्छेत्रे च मायाभेत्रे नमो नमः ॥३३॥
बहुरूपाय तीर्थाय त्रिगुणाय नमो नमः । ब्रह्मविष्ण्वीशरूपाय मोक्षदाय नमो नमः ॥३४॥
मोक्षद्वाराय धर्माय निर्वाणाय नमो नमः । सर्वकामप्रदायैव परब्रह्मस्वरूपिणे ॥ ३५ ॥
संसारसागरे घोरे निमग्नं मां समुद्धर । त्वदन्यो नास्ति देवेश नास्ति त्राता जगत्प्रभो ॥३६॥
त्वामेव सर्वगं विष्णुं गतोऽहं शरणं ततः । ज्ञानदीपप्रदानेन तमोमुक्तं प्रकाशय ॥३७॥
एवं स्तुवीत देवेशं सर्वक्लेशविनाशनम् । अन्यैश्च वैदिकैः स्तोत्रैः स्तुत्वा च नीललोहित ॥३८॥
पञ्चतत्त्वसमायुक्तं ध्यायेद्विष्णुं नरो हृदि । विसर्जयेत्ततो देवमिति पूजा प्रकीर्त्तिता ॥३९॥
सर्वकामप्रदा श्रेष्ठा वासुदेवस्य शङ्कर । एतत्पूजनमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥४०॥
इदञ्च यः पठेद्रुद्र पञ्चतत्त्वार्चनं नरः । शृणुयाच्छ्रावयेद्वापि विष्णुलोकं स गच्छति ॥४१॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

रुद्र उवाच

सुदर्शनस्य पूजां मे वद शङ्खगदाधर । ग्रहरोगादिकं सर्वं यत्कृत्वा नाशमेति वै ॥ १ ॥

हरिरुवाच

सुदर्शनस्य चक्रस्य शृणु पूजां वृषध्वज । स्नानमादौ प्रकुर्वीत पूजयेच्च हरिं ततः ॥ २ ॥
मूलमन्त्रेण वै न्यासं मूलमन्त्रं शृणुष्व च । सहस्रारं हुं फट् नमो मन्त्रः प्रणवपूर्वकः ॥
कथितः सर्वदुष्टानां नाशको मन्त्रभेदकः ॥३॥

ध्यायेत् सुदर्शनं देवं हृदि पद्मेऽमले शुभे । शङ्खचक्रगदापद्मधरं सौम्यं किरीटिनम् ॥ ४ ॥
आवाह्य मण्डले देवं पूर्वोक्तविधिना हर । पूजयेत् गन्धपुष्पाद्यैरुपचारैर्महेश्वर ॥ ५ ॥
पूजयित्वा जपेन्मन्त्रं शतमष्टोत्तरं नरः । एवं यः कुरुते रुद्र चक्रस्यार्चनमुत्तमम् ॥ ६ ॥
सर्वरोगविनिर्मुक्तो विष्णुलोकं समाप्नुयात् । एतत्स्तोत्रं जपेत्पश्चात् सर्वव्याधिविनाशनम् ॥७॥
नमः सुदर्शनायैव सहस्रादित्यवर्चसे । ज्वालमालाप्रदीप्ताय सहस्राराय चक्षुषे ॥ ८ ॥
सर्वदुष्टविनाशाय सर्वपातकमर्दिने । सुचक्राय विचक्राय सर्वमन्त्रविभेदिने ॥ ९ ॥
प्रसवित्रे जगद्धात्रे जगद्विध्वंसिने नमः । पालनार्थाय लोकानां दुष्टासुरविनाशिने ॥१०॥
उग्राय चैव सौम्याय चण्डाय च नमो नमः । नमश्चक्षुःस्वरूपाय संसारभयभेदिने ॥११॥
मायापञ्जरभेत्रे च शिवाय च न नमो नमः । ग्रहातिग्रहरूपाय ग्रहाणां पतये नमः ॥१२॥
कालाय मृत्यवे चैव भीमाय च नमो नमः । भक्तानुग्रहदात्रे च भक्तगोप्त्रे नमो नमः ॥१३॥
विष्णुरूपाय शान्ताय चायुधानां धराय च । विष्णुशस्त्राय चक्राय नमो भूयो नमो नमः ॥१४॥
इति स्तोत्रं महापुण्यं चक्रस्य तव कीर्त्तितम् । यः पठेत्परया भक्त्या विष्णुलोकं स गच्छति ॥१५॥
चक्रपूजाविधिं यश्च पठेद्रुद्र जितेन्द्रियः । स पापं भस्मसात्कृत्वा विष्णुलोकाय कल्पते ॥१६॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

रुद्र उवाच

पुनर्देवार्चनं ब्रूहि हृषीकेश गदाधर । शृण्वतो नास्ति तृप्तिर्मे गदतस्तव पूजनम् ॥१॥

हरिरुवाच

हयग्रीवस्य देवस्य पूजनं कथयामि ते । तच्छृणुष्व जगन्नाथो येन विष्णुः प्रतुष्यति ॥२॥
मूलमन्त्रं महादेव हयग्रीवस्य वाचकम् । प्रवक्ष्यामि परं पुण्यं तदादौ शृणु शङ्कर ॥३॥
ॐ हौ क्ष्रौं शिरसे नमः इति प्रणवसंयुतः । अयं नवाक्षरो मन्त्रः सर्वविद्याप्रदायकः ॥४॥
अस्याङ्गानि महादेव तान् शृणुष्व वृषध्वज । ॐ क्ष्रां हृदयाय नमः । ॐ ह्रीं शिरसे स्वाहायुक्तं शिरः प्रोक्तं क्ष्रू वषट् तथा ॥५॥
ओंकारयुक्ता देवस्य शिखा ज्ञेया वृषध्वज । ॐ क्ष्रैं कवचाय हुं वै कवचं परिकीर्त्तितम् ॥६॥
ॐ क्षौं नेत्रत्रयाय वौषट् नेत्रं देवस्य कीर्त्तितम् । ॐ हः अस्त्राय फट् अस्त्रं देवस्य कीर्त्तितम् ॥७॥

पूजाविधिं प्रवक्ष्यामि तन्मे निगदतः शृणु । आदौ स्नात्वा तथाचम्य ततो यागगृहं व्रजेत् ॥८॥
ततः प्रविश्य विधिवत् कुर्याद्वै शोषणादिकम् । यं क्षौं रमिति बीजैश्च कठिनीकृत्य लमिति ॥९॥
अण्डमुत्पाद्य च ततः ओंकारेणैव भेदयेत् । अण्डमध्ये हयग्रीवमात्मानं परिचिन्तयेत् ॥१०॥
शङ्खकुन्देन्दुधवलं मृणालरजतप्रभम् । शङ्खं चक्रं गदां पद्मं धारयन्तं चतुर्भुजम् ॥११॥
किरीटिनं कुण्डलिनं वनमालासमन्वितम् । सुरक्तं सुकपोलञ्च पीताम्बरधरं विभुम् ॥१२॥
भावयित्वा महात्मानं सर्वदेवैः समन्वितम् । अङ्गमन्त्रैस्ततो न्यासं मूलमन्त्रेण वै तथा ॥१३॥
ततश्च दर्शयेन्मुद्रां शङ्खपद्मादिकां शुभाम् । ध्यायेद् ध्यात्वाऽर्चयेद्विष्णुं मूलमन्त्रेण शङ्कर ॥१४॥
ततश्चावाहयेद्रुद्र देवता आसनस्य याः । ॐ हयग्रीवासनस्य आगच्छत च देवताः ॥१५॥
आवाह्य मण्डले तास्तु पूजयेत्स्वस्तिकादिके । द्वारे धातुर्विधातुश्च पूजा कार्या वृषध्वज ॥१६॥
समस्तपरिवाराय अच्युताय नम इति । अस्य मध्येऽर्चनं कार्यं द्वारे गङ्गाञ्च पूजयेत् ॥१७॥
यमुनाञ्च महादेवीं शङ्खपद्मनिधी तथा । गरुडं पूजयेदग्रे मध्ये शक्तिञ्च पूजयेत् ॥१८॥
आधाराख्यां महादेव ततः कूर्मं समर्चयेत् । अनन्तं पृथिवीं पश्चाद् धर्मज्ञानौ ततोऽर्चयेत् ॥
वैराग्यमथ चैश्वर्यमाग्नेयादिषु पूजयेत् ॥१९॥
अधर्माज्ञानावैराग्यानैश्वर्यादींस्तु पूर्वतः । सत्त्वं रजस्तमश्चैव मध्यदेशेऽथ पूजयेत् ॥२०॥
नन्दं नालञ्च पद्मञ्च मध्ये चैव प्रपूजयेत् । अर्कसोमाग्निसंज्ञानां मण्डलानां हि पूजनम् ॥
मध्यदेशे प्रकर्त्तव्यमिति रुद्र प्रकीर्त्तितम् ॥२१॥
विमलोत्कर्षिणी ज्ञाना क्रियायोगे वृषध्वज । प्रह्वी सत्या तथेशानानुग्रहाः शक्तयो ह्यमूः ॥२२॥
पूर्वादिषु च पत्रेषु पूज्याश्च विमलादयः । अनुग्रहा कर्णिकायां पूज्या श्रेयोऽर्थिभिर्नरैः ॥२३॥
प्रणवाद्यैर्नमोऽन्तैश्च चतुर्थ्यन्तैश्च नामभिः । मन्त्रैरेतैर्महादेव आसनं परिपूजयेत् ॥२४॥
स्नानगन्धप्रदाऽनेन पुष्पधूपप्रदानतः । दीपनैवेद्यदानेन आसनस्यार्चनं शुभम् ॥२५॥
कर्त्तव्यं विधिनाऽनेन इति हर प्रकीर्त्तितम् । ततश्चावाहयेत् देवं हयग्रीवं सुरेश्वरम् ॥२६॥
वामनासापुटेनैव आगच्छन्तं विचिन्तयेत् । आगच्छतः प्रयोगेण मूलमन्त्रेण शङ्कर ॥२७॥
आवाहनं प्रकर्त्तव्यं देवदेवस्य शङ्खिनः । आवाह्य मण्डले तस्य न्यासं कुर्यादतन्द्रितः ॥२८॥
न्यासं कृत्वा च तत्रस्थं चिन्तयेत्परमेश्वरम् । हयग्रीवं महादेवं सुरासुरनमस्कृतम् ॥२९॥
इन्द्रादिलोकपालैश्च संयुतं विष्णुमव्ययम् । ध्यात्वा प्रदर्शयेन्मुद्राः शङ्खचक्रादिकाः शुभाः ॥३०॥
पाद्यार्घाचमनीयानि ततो दद्याच्च विष्णवे । स्नापयेच्च ततो देवं पद्मनाभमनामयम् ॥३१॥
देवं संस्थाप्य विधिवद्वस्त्रं दद्याद् वृषध्वज । ततो ह्याचमनं दद्यादुपवीतं ततः शुभम् ॥३२॥

ततश्च मण्डले रुद्रं ध्यायेद्देवं परमेश्वरम् । ध्यात्वा पाद्यादिकं भूयो दद्याद्देवाय शङ्कर ॥
दद्याद् भैरवदेवाय मूलमन्त्रेण शङ्कर । ॐ क्षां हृदयाय नमः अनेन हृदयं यजेत् ॥३४॥
ॐ क्षीं शिरसे नमश्च शिरसः पूजनं भवेत् । ॐ क्षूं शिखायै नमश्च शिखामनेन पूजयेत् ॥३५॥
ॐ क्षैं कवचाय नमः कवचं परिपूजयेत् । ॐ क्षौं नेत्राय नमश्च नेत्रञ्चानेन पूजयेत् ॥३६॥
ॐ क्षः अस्त्राय नमः इति अस्त्रञ्चानेन पूजयेत् । हृदयञ्च शिरश्चैव शिखाञ्च कवचं तथा ॥३७॥
पूर्वादिषु प्रदेशेषु ह्येतास्तु परिपूजयेत् । कोणेष्वस्त्रं यजेद्रुद्र नेत्रं मध्ये प्रपूजयेत् ॥३८॥
पूजयेत्परमां देवीं लक्ष्मीं लक्ष्मीप्रदां शुभाम् । शङ्खं पद्मं तथा चक्रं गदां पूर्वादितोऽर्चयेत् ॥३९॥
खड्गञ्च मुशलं पाशमङ्कुशं सशरं धनुः । पूजयेत् पूर्वतो रुद्र एभिर्मन्त्रैः स्वनामकैः ॥४०॥
श्रीवत्सं कौस्तुभं मालां तथा पीताम्बरं शुभम् । पूजयेत्पूर्वतो रुद्र शङ्खचक्रगदाधरम् ॥४१॥
ब्रह्माणं नारदं सिद्धं गुरुं परगुरुं तथा । गुरोश्च पादुके तद्वत्परमस्य गुरोस्तथा ॥४२॥
इन्द्रं सवाहनं वाथ परिवारयुतं तथा । अग्निं यमं निर्ऋतिञ्च वरुणं वायुमेव च ॥४३॥
सोममीशाननागञ्च ब्रह्माणं परिपूजयेत् । पूर्वादि चोर्ध्वपर्य्यन्तं पूजयेद् वृषभध्वज ॥४४॥
वज्रं शक्तिं तथा दण्डं खड्गं पाशं ध्वजं गदाम् । त्रिशूलञ्चक्रपद्मे च आयुधान्यथ पूजयेत् ॥४५॥
विष्वक्सेनं ततो देवमैशान्यां दिशि पूजयेत् । एभिर्मन्त्रैर्नमोऽन्तैश्च प्रणवाद्यैर्वृषध्वज ॥४६॥
पूजा कार्या महादेव ह्यनन्तस्य वृषध्वज । देवस्य मूलमन्त्रेण पूजा कार्या वृषध्वज ॥
गन्धं पुष्पं तथा धूपं दीपं नैवेद्यमेव च ॥४७॥
प्रदक्षिणं नमस्कारं जप्यं तस्मै समर्पयेत् । स्तुवीत चानया स्तुत्या प्रणवाद्यैर्वृषध्वज ॥४८॥
ॐ नमो हयशिरसे विद्याध्यक्षाय वै नमः । नमो विद्यास्वरूपाय विद्यादात्रे नमो नमः ॥४९॥
नमः शान्ताय देवाय त्रिगुणायात्मने नमः । सुरासुरनिहन्त्रे च सर्वदुष्टविनाशिने ॥५०॥
सर्वलोकाधिपतये ब्रह्मरूपाय वै नमः । नमश्चेश्वरवन्द्याय शङ्खचक्रधराय च ॥५१॥
नम आद्याय दान्ताय सर्वसत्त्वहिताय च । त्रिगुणायागुणायैव ब्रह्मविष्णुस्वरूपिणे ॥
कर्त्रे हर्त्रे सुरेशाय सर्वगाय नमो नमः ॥५२॥
इत्येवं संस्तवं कृत्वा देवदेवं विचिन्तयेत् । हृत्पद्मे विमले रुद्र शङ्खचक्रगदाधरम् ॥५३॥
सूर्यकोटिप्रतीकाशं सर्वावयवसुन्दरम् । हयग्रीवं महेशेश परमात्मानमव्ययम् ॥५४॥
इति ते कथिता पूजा हयग्रीवस्य शङ्कर । यः पठेत् परया भक्त्या स गच्छेत् परमं पदम् ॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

हरिरुवाच

न्यासादिकं प्रवक्ष्यामि गायत्र्याश्छन्द एव च । विश्वामित्र ऋषिश्चैव सविता चाथ देवता ॥१॥
ब्रह्मशीर्षा रुद्रशिखा विष्णोर्हृदयसंश्रिता । विनियोगैकनयना कात्यायनसगोत्रजा ॥२॥
त्रैलोक्यचरणा ज्ञेया पृथिवीकुक्षिसंस्थिता । एवं ज्ञात्वा तु गायत्रीं जपेद् द्वादशलक्षकम् ॥३॥
त्रिपदाऽष्टाऽक्षरा ज्ञेया चतुष्पादा षडक्षरा । जपेच्च त्रिपदा प्रोक्ता अर्चने च चतुष्पदा ॥४॥
न्यासे जपे तथा ध्याने अग्निकार्ये तथार्चने । गायत्रीं विन्यसेन्नित्यं सर्वपापप्रणाशिनीम् ॥५॥
पादाङ्गुष्ठे गुल्फमध्ये जङ्घयोर्विद्धि जानुनोः । ऊर्वोर्गुह्ये च वृषणे नाड्यां नाभौ तनूदरे ॥६॥
स्तनयोर्हृदि कण्ठौष्ठमुखे तालुनि वांशयोः । नेत्रे भ्रुवोर्ललाटे च पूर्वस्यां दक्षिणोत्तरे ॥
पश्चिमे मूर्ध्नि चाकारं न्यसेद्वर्णान् वदाम्यहम् ॥७॥
इन्द्रनीलञ्च वाह्निञ्च पीतं श्यामञ्च कापिलम् । श्वेतं विद्युत्प्रभं तारं कृष्णं रक्तं क्रमेण तत् ॥८॥
श्यामं शुक्लं तथा पीतं श्वेतं वै पद्मरागवत् । शङ्खवर्णं पाण्डरञ्च रक्तञ्चासवसन्निभम् ॥
अर्कवर्णं समं सौम्यं शङ्खभं श्वेतमेव च ॥९॥
यद्यत्स्पृश्यति हस्तेन यच्च पश्यति चक्षुषा । पूतं भवति तत् सर्वं गायत्र्या न परं विदुः ॥१०॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे आचारखण्डे पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥३५॥

षट्त्रिंशोऽध्यायः

हरिरुवाच

सन्ध्याविधिं प्रवक्ष्यामि शृणु रुद्राघनाशनम् । प्राणायामत्रयं कृत्वा सन्ध्यास्नानमुपक्रमेत् ॥१॥
सप्रणवां सव्याहृतिं गायत्रीं शिरसा सह । त्रिः पठेदायतप्राणः प्राणायामः स उच्यते ॥२॥
मनोवाक्कायजं दोषं प्राणायामैर्दहेद् द्विजः । तस्मात् सर्वेषु कालेषु प्राणायामपरो भवेत् ॥३॥
सायमग्निश्च मेत्युक्त्वा प्रातः सूर्येत्यपः पिबेत् । आपः पुनन्तु मध्याह्ने उपस्पृश्य यथाविधि ॥४॥
आपोहिष्ठेत्यृचा कुर्यान्मार्जनं तु कुशोदकैः । प्रणवेन तु संयुक्तं क्षिपेद्वारि पदे पदे ॥५॥
रजस्तमःस्वमोहोत्थान् जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तिजान् । वाङ्मनःकर्मजान् दोषान् नवैतान्नवभिर्दहेत् ॥६॥
समुद्धृत्योदकं पाणौ जप्त्वा च द्रुपदाक्षिपेत् । त्रिषडष्टौ द्वादशधा वर्त्तयेदघमर्षणम् ॥७॥
उदुत्यं चित्रमित्याभ्यामुपतिष्ठेद् दिवाकरम् । दिवारात्रौ च यत् पापं सर्वं नश्यति तत्क्षणात् ॥

पूर्वसन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत् पश्चिमामुपविश्य च । महाव्याहृतिसंयुक्तां गायत्रीं प्रणवान्विताम् ॥९॥
दशभिर्जन्मजनितं शतेन तु पुराकृतम् । त्रियुगं तु सहस्रेण गायत्री हन्ति दुष्कृतम् ॥१०॥
रक्ता भवति गायत्री सावित्री शुक्लवर्णिका । कृष्णा सरस्वती ज्ञेया सन्ध्यात्रयमुदाहृतम् ॥११॥
ॐ भूर्विन्यस्य हृदये ॐ भुवः सिरसि न्यसेत् । ॐ स्वरिति शिखायाञ्च गायत्र्याः प्रथमं पदम् ॥
विन्यसेत्कवचे विद्वान् द्वितीयं नेत्रयोर्न्यसेत् । तृतीयेनाङ्गविन्यासं चतुर्थं सर्वतो न्यसेत् ॥१३॥
सन्ध्याकाले तु विन्यस्य जपेद्वै वेदमातरम् । शिवस्तस्यास्तु सर्वाङ्गे प्राणायामपरं न्यसेत् ॥१४॥
त्रिपदा या तु गायत्री ब्रह्मविष्णुमहेश्वरी । विनियोगमृषिच्छन्दो ज्ञात्वा तु जपमारभेत् ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ॥ १५ ॥
परोरजसि सारं तं तुरीयपदमीरितम् । तं हन्ति सूर्य्यः सन्ध्यायां नोपास्तिं कुरुते तु यः ॥१६॥
तुरीयस्य पदस्यापि ऋषिर्निर्मल एव च । छन्दस्तु देवी गायत्री परमात्मा च देवता ॥१७॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे सन्ध्याविधिर्नाम षट्त्रिंशोऽध्यायः ॥३६॥

सप्तत्रिंशोऽध्यायः

हरिरुवाच

गायत्री परमा देवी भुक्तिमुक्तिप्रदा च ताम् । यो जपेत्तस्य पापानि विनश्यन्ति महान्त्यपि ॥१॥
गायत्रीकल्पमाख्यास्ये भुक्तिमुक्तिप्रदञ्च तत् । अष्टोत्तरं सहस्रं वा अथवाऽष्टशतं जपेत् ॥
त्रिसन्ध्यं ब्रह्मलोकी स्याच्छतजप्तं जलं पिबेत् ॥ २ ॥
सन्ध्यायां सर्वपापघ्नीं देवीमावाह्य पूजयेत् । भूर्भुवः स्वः स्वमन्त्रेण युतां द्वादशनामभिः ॥३॥
गायत्र्यै नमः सावित्र्यै सरस्वत्यै नमो नमः । वेदमात्रे च सांकृत्यै ब्रह्माणी कौशिकी क्रमात् ॥४॥
साध्व्यै सर्वार्थसाधिन्यै सहस्राक्ष्यै च भूर्भुवः । स्वरेव जुहुयादग्नौ समिधाऽऽज्यं हविष्यकम् ॥५॥
अष्टोत्तरसहस्रं वाप्यथवाष्टशतं घृतम् । धर्मकामादिसिद्ध्यर्थं जुहुयात् सर्वकर्मसु ॥६॥
प्रतिमां चन्दनस्वर्णनिर्मितां प्रतिपूज्य च । यथा लक्षं तु जप्तव्यं पयोमूलफलाशनैः ॥
अयुतद्वयहोमेन सर्वान् कामानवाप्नयात् ॥ ७ ॥
उत्तरे शिखरे जाता भूम्यां पर्वतवासिनि । ब्रह्मणा समनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखम् ॥८॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे गायत्रीमाहात्म्यं नाम सप्तत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३७ ॥

अष्टत्रिंशोऽध्यायः

हरिरुवाच

नवम्यादौ यजेद्दुर्गां ह्रीं दुर्गे रक्षिणीति च । मातर्मातर्वरे दुर्गे सर्वकामार्थसाधने ॥
अनेन बलिदानेन सर्वान् कामान् प्रयच्छ मे ॥ १ ॥
गौरी काली उमा दुर्गा भद्रा कान्तिः सरस्वती । मङ्गला विजया लक्ष्मीः शिवा नारायणी क्रमात् ॥
मार्गे तृतीयामारभ्य पूजयेन्न वियोगभाक् ॥ २ ॥
अष्टादशभुजां खेटकं घण्टां दर्पणं तर्जनीम् । धनुर्ध्वजं डमरुकं परशुं पाशमेव च ॥ ३ ॥
शक्तिर्मुशलशूलानि कपालवज्रकाङ्कुशान् । शरं चक्रं शलाकाञ्च अष्टादशभुजां स्मरेत् ॥ ४ ॥
मन्त्रैः श्रीभगवत्याश्च प्रवक्ष्यामि जपादिकम् ॥

ॐ नमो भगवति चामुण्डे श्मशानवासिनि कपालहस्ते महाप्रेतसमारूढे महाविमानमालाकुले कालरात्रि बहुगणपरिवृते महामुखे बहुभुजे घण्टाडमरुकिङ्किणीके अट्टाट्टहासे किलि किलि हुं सर्वनादशब्दबहुले गजचर्मप्रावृतशरीरे रुधिरमांसदिग्धे लोलोग्रजिह्वे महाराक्षसि रौद्रदंष्ट्राकराले भीमाट्टहासे स्फुरितविद्युत्समप्रभे चल चल करालनेत्रे हिलि हिलि नलं प्रवेशय हुं जिह्वे त्रि भृकुटिमुखि ओंकारभद्रासने कपालमालावेष्टिते जटामुकुटशशाङ्कधारिणि अट्टाट्टहासे किलि किलि हुं हुं दंष्ट्राघोरान्धकारिणि सर्वविघ्नविनाशिनि इदं कर्म साधय साधय शीघ्रं कुरु कुरु कह कह अङ्कुशेन समनुप्रवेशय वङ्ग वङ्ग कम्पय कम्पय चल चल चालय चालय रुधिरमांसमद्यप्रिये हन हन कुट्ट कुट्ट छिन्द छिन्द मारय मारय अनुक्रम वज्रशरीरं साधय साधय त्रैलोक्यगतमपि दुष्टं वा गृहीतमगृहीतमावेशय आवेशय क्रामय क्रामय नृत्य नृत्य बन्ध बन्ध वल्ग वल्ग कोटराक्षि ऊर्ध्वकेशि उलूकवदने करकिङ्किणि करङ्कमालाधारिणि दह दह पच पच गृह्ण गृह्ण मण्डलमध्ये प्रवेशय प्रवेशय किं विलम्बसि ब्रह्मसत्येन विष्णुसत्येन ऋषिसत्येन रुद्रसत्येन आवेशय आवेशय किलि किलि खिलि खिलि मिलि मिलि चिलि चिलि विकृतरूपधारिणि कृष्णभुजङ्गवेष्टितशरीरे सर्वग्रहावेशिनि प्रलम्बोष्ठि भ्रूभग्ननासिके विकटमुखि कपिलजटे ब्राह्मि भञ्ज भञ्ज ज्वल ज्वल कालमुखि खल खल पातय पातय रक्ताक्षि घूर्णय घूर्णापय भूमिं पातय पातय शिरो गृह्ण गृह्ण चक्षुर्मीलय मीलय भञ्ज भञ्ज पादौ गृह्ण गृह्ण मुद्रां स्फोटय स्फोटय हुं हूं फट् विदारय विदारय त्रिशूलेन भेदय भेदय वज्रेण हन हन दण्डेन ताडय ताडय चक्रेण छेदय छेदय शक्तिना भेदय भेदय दंष्ट्रया दष्टय दष्टय कीलकेन कीलय कीलय कर्त्तृकया पाटय पाटय अङ्कुशेन गृह्ण गृह्ण शिरोऽर्त्तिज्वरमैकाहिकं द्व्याहिकं त्र्याहिकं

चातुर्थिकं डाकिनीस्कन्दग्रहान् मुञ्चापय मुञ्चापय लन लन उत्थापय उत्थापय भूमिं पातय पातय गृह्ण गृह्ण ब्रह्माणि एहि एहि माहेश्वरि एहि एहि कौमारि एहि एहि वाराहि एहि एहि ऐन्द्रि एहि एहि चामुण्डे एहि एहि वैष्णवि एहि एहि नारसिंहि एहि एहि शिवदूति एहि एहि कपालिनि एहि एहि महाकालि एहि एहि रेवति एहि एहि शुष्करेवति एहि एहि आकाशरेवति एहि एहि हिमवन्तचारिणि एहि एहि कैलासचारिणि एहि एहि परमन्त्रं छिन्धि छिन्धि किलि किलि विम्बे अघोरे घोररूपिणि चामुण्डे रुरुक्रोधान्धविनिःसृते असुरक्षयंकरि आकाशगामिनि पाशेन बन्ध बन्ध समयं तिष्ठ तिष्ठ मण्डलं प्रवेशय प्रवेशय पातय पातय गृह्ण गृह्ण मुखं बन्ध बन्ध चक्षुर्बन्धय बन्धय हृदयं बन्ध बन्ध हस्तपादौ बन्ध बन्ध दुष्टग्रहान् सर्वान् बन्ध बन्ध दिशां बन्ध बन्ध विदिशां बन्ध बन्ध ऊर्ध्वं बन्ध बन्ध अधस्ताद् बन्ध बन्ध भस्मना पानीयेन मृत्तिकया सर्षपैर्वा आवेशय आवेशय पातय पातय चामुण्डे किलि किलि विच्छे हुं फट् स्वाहा ।

अष्टोत्तरपदानां हि मालामन्त्रमही जपा ॥ ५ ॥

एकैकपदमष्टसहस्रधा त्रिमधुराक्त तिलाष्टसहस्रहोमः । महामांसेन त्रिमधुराक्तेन अष्टोत्तर-सहस्रञ्च एकैकञ्च पदं जपेत् ।

तिलांस्त्रिमधुराक्तांश्च सहस्राष्टञ्च होमयेत् । महामांसं त्रिमधुरादथवा सर्वकर्मकृत् ॥
वारिसर्षपभस्मादिक्षेपाद् युद्धादिके जयः ॥ ६ ॥

अष्टाविंशभुजा ध्येया अष्टादशभुजाऽथवा । द्वादशाष्टभुजा वापि ध्येया वापि चतुर्भुजा ॥७॥
असिखेटान्वितौ हस्तौ गदादण्डयुतौ परौ । शरचापयुतौ चान्यौ खड्गमुद्गरसंयुतौ ॥८॥
शङ्खघण्टान्वितौ चान्यौ ध्वजदण्डयुतौ परौ । अन्यौ परशुचक्राढ्यौ डमरूदर्पणान्वितौ ॥९॥
शक्तिहस्ताश्रितौ नटन्ती चान्यौ मूषलान्वितौ । पाशतोमरसंयुक्तौ ढक्कापणवसंयुतौ ॥१०॥
तर्जयन्ती परेणैव ह्यन्यत् कलकलध्वनिम् । अभयस्वस्तिकाद्यौ च महपघ्नी च सिंहगा ॥११॥
जय त्वं कलभूतेशे सर्वभूतसमावृते । रक्ष मां निजभूतेभ्यो बलिं गृह्ण नमोऽस्तु ते ॥१२॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे आचारखण्डे अष्टत्रिंशोऽध्यायः ॥३८॥

ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः

रुद्र उवाच

पुनर्वाचनं ब्रूहि संक्षेपेण जनार्दन । सूर्यस्य विष्णुरूपस्य भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् ॥ १ ॥

वासुदेव उवाच

शृणु सूर्य्यस्य रुद्र त्वं पुनर्वक्ष्यामि पूजनम् । ॐ उच्चैःश्रवसे नमः ॐ अरुणाय नमः ॐ दण्डिने नमः ॐ पिङ्गलाय नमः । एते द्वारे प्रपूज्या वै एभिर्मन्त्रैर्वृषध्वज ॥ २ ॥

ॐ अं भूताय नमः । इमं तु पूजयेन्मध्ये प्रभूतामलसंज्ञकम् । ॐ अं विमलाय नमः । ॐ अं साराय नमः । ॐ अं आधाराय नमः । ॐ अं परमसुखायै नमः । इत्याग्नेयादिकोणेषु पूज्या वै विमलादयः ॥ ३ ॥

ॐ पद्माय नमः । ॐ कर्णिकायै नमः । मध्ये तु पूजयेद्रुद्र पूर्वादिषु तथैव च । दीप्ताद्याः पूजयेन्मध्ये पूजयेत्सर्वतोमुखीम् । ॐ वां दीप्तायै नमः । ॐ वीं सूक्ष्मायै नमः । ॐ वूं भद्रायै नमः । ॐ वैं जयायै नमः । ॐ वौं विभूत्यै नमः । ॐ वं अघोरायै नमः । ॐ वं विद्युतायै नमः । ॐ वः विजयायै नमः । ॐ सर्वतोमुख्यै नमः ॥ ४ ॥

ॐ अर्कासनाय नमः । ॐ ह्रां सूर्य्यमूर्त्तये नमः । एतास्तु पूजयेन्मध्ये ह्रन्मन्त्राञ्शृणु शङ्कर । ॐ हं सं खं खखोल्काय क्रां क्रीं सः स्वाहा । सूर्य्यमूर्त्तये नमः । अनेनावाहनं कुर्य्यात्स्थापनं सन्निधानकम् । सन्निरोधनमन्त्रेण सकलीकरणं तथा ॥ ५ ॥

मुद्राया दर्शनं रुद्र मूलमन्त्रेण पूजयेत् । तेजोरूपं रक्तवर्णं सितपद्मोपरि स्थितम् ॥
एकचक्ररथारूढं द्विबाहुं धृतपङ्कजम् ॥ ६ ॥

एवं ध्यायेत्सदा सूर्यं मूलमन्त्रं शृणुष्व च । ॐ ह्रां ह्रीं सः सूर्याय नमः ॥ ७ ॥

वारत्रयं पद्ममुद्रां बिम्बमुद्राञ्च दर्शयेत् । ॐ आं हृदयाय नमः । ॐ अर्काय शिरसे स्वाहा । ॐ अः भूर्भुवः स्वः ज्वालिनि शिखायै वषट् । ॐ हुं कवचाय हुं । ॐ भां नेत्राभ्यां वौषट् । ॐ वः अस्त्राय फट् इति ॥ ८ ॥

आग्नेय्यामथवैशान्यां नैर्ऋत्यामर्चयेद्धर । हृदयादि हि वायव्यान्नेत्रञ्चान्तः प्रपूजयेत् ॥ ९ ॥
दिक्ष्वस्त्रं पूजयेद्रुद्र सोमं तु श्वेतवर्णकम् । दले पूर्वेऽर्चयेद्रुद्र बुधं चामीकरप्रभम् ॥१०॥
दक्षिणे पूजयेद्रुद्र पीतवर्णं गुरुं यजेत् । पश्चिमे चैव भूतेशं उत्तरे भार्गवं सितम् ॥११॥
रक्तमङ्गारकञ्चैव आग्नेये पूजयेद्धर । शनैश्चरं कृष्णवर्णं नैर्ऋत्यां दिशि पूजयेत् ॥१२॥
राहुं वायव्यदेशे तु नन्द्यावर्त्तनिभं हर । ऐशान्यां धूमवर्णन्तु केतुं संपरिपूजयेत् ॥१३॥
एभिर्मन्त्रैर्महादेव तच्छृणुष्व च शङ्कर ।

ॐ सों सोमाय नमः । ॐ बुं बुधाय नमः । ॐ बृं बृहस्पतये नमः । ॐ भं भार्गवाय नमः । ॐ अं अङ्गारकाय नमः । ॐ शं शनैश्चराय नमः । ॐ रं राहवे नमः । ॐ कं केतवे नमः इति ॥१४॥

पाद्यादीन् मूलमन्त्रेण दत्त्वा सूर्य्याय शङ्कर । नैवेद्यान्ते धेनुमुद्रां दर्शयेत्साधकोत्तमः ॥१५॥
जप्त्वा चाष्टसहस्रन्तु तच्च तस्मै समर्पयेत् । ऐशान्यादिषु भूतेश तेजश्चण्डन्तु पूजयेत् ॥१६॥
ॐ तेजश्चण्डाय हुं फट् स्वधा स्वाहा वौषट् । निर्माल्यञ्चार्पयेत्तस्मै ह्यर्घ्यं दद्यात्ततो हर ॥१७॥
तिलतण्डुलसंयुक्तं रक्तचन्दनचर्च्चितम् । गन्धोदकेन संमिश्रं पुष्पधूपसमन्वितम् ॥१८॥
कृत्वा शिरसि तत्पात्रं जानुभ्यामवलिङ्गितः । दद्यादर्घ्यन्तु सूर्य्याय हृन्मन्त्रेण वृषध्वज ॥१९॥
गणं गुरून्प्रपूज्याथ सर्वान्देवान्प्रपूजयेत् । ॐ गं गणपतये नमः । ॐ अं गुरुभ्यो नमः ॥
सूर्य्यस्य कथिता पूजा कृत्वैतां विष्णुलोकभाक् ॥२०॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे आचारखण्डे ऊनचत्वारिंशोऽध्यायः ॥३९॥

चत्वारिंशोऽध्यायः

शङ्कर उवाच

माहेश्वरीञ्च मे पूजां वद शङ्खगदाधर । यां ज्ञात्वा मानवाः सिद्धिं गच्छन्ति परमेश्वर ॥ १ ॥

हरिरुवाच

शृणु माहेश्वरीं पूजां कथ्यमानां वृषध्वज । आदौ स्नात्वा तथाचम्य ह्यासने चोपविश्य च ॥
न्यासं कृत्वा मण्डले वै पूजयेच्च महेश्वरम् ॥ २ ॥

मन्त्रैरेतैर्महेशानं परिवारयुतं हरम् । ॐ हां शिवासनदेवता आगच्छत इति ॥
अनेनावाहयेद्रुद्र देवता आसनस्य याः ॥ ३ ॥

ॐ हां गणपतये नमः । ॐ हां सरस्वत्यै नमः । ॐ हां नन्दिने नमः । ॐ हां महाकालाय नमः । ॐ हां गङ्गायै नमः । ॐ हां लक्ष्म्यै नमः । ॐ हां अस्त्राय नमः । इति ।
एते द्वारे प्रपूज्या वै स्नानगन्धादिभिर्हर ॥ ४ ॥

ॐ हां ब्रह्मणे वास्त्वधिपतये नमः । ॐ हां गुरुभ्यो नमः । ॐ हां आधारशक्त्यै नमः । ॐ हां अनन्ताय नमः । ॐ हां ज्ञानाय नमः । ॐ हां वैराग्याय नमः । ॐ हां ऐश्वर्य्याय नमः । ॐ हां अधर्माय नमः । ॐ हां अज्ञानाय नमः । ॐ हां अवैराग्याय नमः । ॐ हां अनैश्वर्य्याय नमः । ॐ हां ऊर्ध्वच्छन्दाय नमः । ॐ हां अधश्छन्दाय नमः । ॐ हां पद्माय नमः । ॐ हां कर्णिकायै नमः । ॐ हां वामायै नमः । ॐ हां ज्येष्ठायै नमः । ॐ हा रौद्रयै नमः । ॐ हां काल्यै नमः । ॐ हां कलविकरिण्यै नमः । ॐ हां बलप्रमथिन्यै

नमः । ॐ हां सर्वभूतदमन्यै नमः । ॐ हां मनोन्मन्यै नमः । ॐ हां मण्डलत्रितयाय नमः । ॐ हां हौं हं शिवमूर्त्तये नमः । ॐ हां विद्याधिपतये नमः । ॐ हां हीं हौं शिवाय नमः । ॐ हां हृदयाय नमः । ॐ हीं शिरसे नमः । ॐ हूं शिखायै नमः । ॐ हैं कवचाय नमः । ॐ हौं नेत्रद्वयाय नमः । ॐ हः अस्त्राय नमः । ॐ सद्योजाताय नमः ॥ ५ ॥

ॐ हां सिद्ध्यै नमः । ॐ हां ऋद्ध्यै नमः । ॐ हां द्युतायै नमः । ॐ हां लक्ष्म्यै नम. । ॐ हां बोधायै नमः । ॐ हां काल्यै नमः । ॐ हां स्वधायै नमः । ॐ हां प्रभायै नमः ।

सत्यस्याष्टौ कला ज्ञेयाः पूर्वपूर्वादिषु स्थिताः ॥ ६ ॥

ॐ हां वामदेवाय नमः । ॐ हां रजसे नमः । ॐ हां रक्षायै नमः । ॐ हां रत्यै नमः । ॐ हां कन्यायै नमः । ॐ हां कामायै नमः । ॐ हां सजन्यै नमः । ॐ हां क्रियायै नमः । ॐ हां वृद्ध्यै नमः । ॐ हां कार्य्यायै नमः । ॐ हां रात्र्यै नमः । ॐ हां भ्राम्यै नमः । ॐ हा मोहिन्यै नमः । ॐ हां त्वरायै नमः ।

वामदेवकला ज्ञेयास्त्रयोदश वृषध्वज ॥ ७ ॥

ॐ हां तत्पुरुषाय नमः । ॐ हां वृत्त्यै नमः । ॐ हां प्रतिष्ठायै नमः । ॐ हां विद्यायै नमः । ॐ हां शान्त्यै नमः । ज्ञेयास्तत्पुरुषस्यैव चतस्रो वृषभध्वज ॥ ८ ॥

ॐ हां अघोराय नमः । ॐ हां उमायै नमः । ॐ हां क्षमायै नमः । ॐ हां निद्रायै नमः । ॐ हां व्याध्यै नमः । ॐ हां क्षुधायै नमः । ॐ हां तृष्णायै नमः । कलाषट्कं ह्यघोरस्य विज्ञेयं भैरवं हर ॥ ९ ॥

ॐ हां ईशानाय नमः । ॐ हां समित्यै नमः । ॐ हां अङ्गदायै नमः । ॐ हां कृष्णायै नमः । ॐ हां मरीच्यै नमः । ॐ हां ज्वालायै नमः । ईशानस्य कलाः पञ्च जानीहि वृषभध्वज ॥ १० ॥

ॐ हां शिवपरिवारेभ्यो नमः । ॐ हां इन्द्राय सुराधिपतये नमः । ॐ हां अग्नये तेजोऽधिपतये नमः । ॐ हां यमाय प्रेताधिपतये नमः । ॐ हां नैर्ऋताय रक्षोऽधिपतये नमः । ॐ हां वरुणाय जलाधिपतये नमः । ॐ हां वायवे प्राणाधिपतये नमः । ॐ हां सोमाय नेत्राधिपतये नमः । ॐ हां ईशानाय सर्वविद्याधिपतये नमः । ॐ हां अनन्ताय नागाधिपतये नमः । ॐ हां ब्रह्मणे सर्वलोकाधिपतये नमः ॥ ११ ॥

ॐ हां धूलिचण्डेश्वराय नमः । इति ।

अवाहनं स्थापनञ्च सन्निधानञ्च शङ्कर । सन्निरोधं तथा कुर्य्यात्सकलीकरणं तथा ॥

तत्त्वन्यासञ्च मुद्राया दर्शनं ध्यानमेव च ॥ १२ ॥

पाद्यमाचमनं ह्यर्घ्यं पुष्पाण्यभ्यङ्गदानकम् । तत उद्वर्त्तनं स्नानं सुगन्धश्चानुलेपनम् ॥
वस्त्रालङ्कारभोगांश्च ह्यङ्गन्यासञ्च धूपकम् । दीपं नैवेद्यदानञ्च हस्तोद्वर्त्तनमेव च ॥
पाद्यार्घ्याचमनं गन्धं ताम्बूलं गीतवादनम् ॥१३॥

नृत्यं छत्रादिकरणं मुद्राणां दर्शनं तथा । रूपं ध्यानं जपश्चाथ एकवद्भाव एव च ॥
मूलमन्त्रेण वै कुर्याज्जपपूजासमर्पणम् । माहेशो कथिता पूजा रुद्र पापविनाशिनी ॥१४॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे आचारखण्डे चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४०॥

एकचत्वारिंशोऽध्यायः

वासुदेव उवाच

ॐ विश्वावसुर्नाम गन्धर्वः कन्यानामधिपतिर्लभामि ते । कन्यां समुत्पाद्य तस्मै विश्वावसवे स्वाहा । स्त्रीलाभो मन्त्रजप्याच्च कालरात्रिं वदाम्यहम् ॥१॥

ॐ नमो भगवति शूलकर्णि चतुर्भुजे ऊर्ध्वकेशि त्रिनयने कालरात्रि मानुषाणां वसारुधिरभोजने अमुकस्य प्रातकालस्य मृत्युप्रदे हुं फट् हन हन दह दह मांसरुधिरं पच पच शूलपत्नि स्वाहा । न तिथिर्न च नक्षत्रं नोपवासो विधीयते ॥२॥

क्रुद्धो रक्तेन संमार्ज्य करौ ताभ्यां प्रगृह्य च । प्रदोषे संजपेत् लिङ्गमामपात्रञ्च मारयेत् । ॐ नमः सर्वतो यन्त्राण्येतद् यथा जम्भनि मोहनि सर्वशत्रुविदारिणि रक्ष रक्ष माममुकं सर्वभयोपद्रवेभ्यः स्वाहा । शुक्रे नष्टे महादेव वक्ष्येऽहं द्विजपादिह ॥३॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे आचारखण्डे नानाविद्या नाम
एकचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४१॥

द्विचत्वारिंशोऽध्यायः

हरिरुवाच

पवित्रारोहणं वक्ष्ये शिवस्याशिवनाशनम् । आचार्य्यः साधकः कुर्य्यात्पुत्रकः समयो हर ॥१॥
संवत्सरकृतां पूजां विघ्नेशो हरतेऽन्यथा । आषाढ़े श्रावणे माघे कुर्य्याद्भाद्रपदेऽपि वा ॥२॥
सौवर्णरौप्यताम्रञ्च सूत्रं कार्पासिकं क्रमात् । ज्ञेयं कृतादौ संगृह्य कन्यया कर्त्तितञ्च यत् ॥३॥

त्रिगुणं त्रिगुणीकृत्य ततः कुर्यात्पवित्रकम् । ग्रन्थयो वामदेवेन सत्येन क्षालयेच्छिव ॥४॥
अघोरेण तु संशोध्य बद्धस्तत्पुरुषाद्भवेत् । धूपयेदीशमन्त्रेण तन्तुदेवा इति स्मृताः ॥५॥
ओंकारश्चन्द्रमा वह्निर्ब्रह्मा नागः शिखिध्वजः। रविर्विष्णुः शिवः प्रोक्तः क्रमात्तन्तुषु देवताः ॥६॥
अष्टोत्तरशतं कुर्यात्पञ्चाशत्पञ्चविंशतिम् । रुद्रोऽहन्तमादि विज्ञेयं मानञ्च ग्रन्थयो दश ॥७॥
चतुरङ्गुलान्तरालाः स्युर्ग्रन्थिनामानि च क्रमात्। प्रकृतिः पौरुषी वीरा चतुर्थी चापराजिता ॥८॥
जया च विजया रुद्रा अजिता च सदाशिव । मनोन्मनी सर्वमुखी द्व्यङ्गुलाङ्गुलतोऽथवा ॥९॥
रञ्जयेत् कुङ्कुमाद्यैस्तु कुर्याद्गन्धैः पवित्रकम् । सप्तम्यां वा त्रयोदश्यां शुक्लपक्षे तथेतरे ॥१०॥
क्षीरादिभिश्च संस्नाप्य लिङ्गं गन्धादिभिर्यजेत् । दद्याद्गन्धपवित्रन्तु आत्मने ब्रह्मणे हर ॥११॥
पुष्पं गन्धयुतं दद्यान्मूलेनेशानगोचरे । पूर्वे च दण्डकाष्ठन्तु उत्तरे चामलकीफलम् ॥१२॥
मृत्तिकां पश्चिमे दद्याद्दक्षिणे भस्मभूतयः । नैर्ऋते ह्यगुरुं दद्याच्छिखामन्त्रेण मन्त्रवित् ॥
वायव्यां सर्षपं दद्यात्कवचेन वृषध्वज ॥१३॥

गृहं संवेष्ट्य सूत्रेण दद्याद्गन्धपवित्रकम् । होमं कृत्वाऽग्नये दत्त्वा दद्याद्भूतबलिं तथा ॥१४॥
आमन्त्रितोऽसि देवेश गणैः सार्द्धं महेश्वर । प्रातस्त्वां पूजयिष्यामि ह्यत्र सन्निहितो भव ॥१५॥
निमन्त्रयानेन तिष्ठेत्तु कुर्वन्गीतादिकं निशि । मन्त्रितानि पवित्राणि स्थापयेद्देवपार्श्वतः ॥१६॥
स्नात्वादित्यं चतुर्दश्यां प्राग्रुद्रञ्च प्रपूजयेत् । ललाटस्थं विश्वरूपं ध्यात्वात्मानं प्रपूजयेत् ॥१७॥
अस्त्रेण प्रोक्षितान्येवं हृदयेनार्चितान्यथ । संहितामन्त्रितान्येव धूपितानि समर्पयेत् ॥१८॥
शिवतत्त्वात्मकं चादौ विद्यातत्त्वात्मकं ततः । आत्मतत्त्वात्मकं पश्चाद्देवकाख्यं ततोऽर्चयेत् ॥
ॐ हौं शिवतत्त्वाय नमः । ॐ हीं विद्यातत्त्वाय नमः । ॐ हां आत्मतत्त्वाय नमः ॥१९॥
ॐ हां हीं हूं क्षौं सर्वतत्त्वाय नमः । ॐ कालात्मना त्वया देव यद् दृष्टं मामके विधौ ॥
कृतं क्लिष्टं समुत्सृष्टं हुतं गुप्तञ्च यत्कृतम् । सर्वात्मनाऽऽत्मना शम्भो पवित्रेण त्वदिच्छया ॥
ॐ पूरय पूरय मखव्रतं तन्नियमेश्वराय सर्वतत्त्वात्मकाय सर्वकारणपालिताय ॐ हां हीं हूं हैं हौं शिवाय नमः ॥२०॥
पूर्वैरनेन यो दद्यात्पवित्राणां चतुष्टयम् । दत्त्वा वह्नेः पवित्रञ्च गुरवे दक्षिणां दिशेत् ॥
बलिं दत्त्वा द्विजान्भोज्य चण्डं प्रार्च्य विसर्जयेत् ॥ २१ ॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे आचारखण्डे द्विचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४२॥

त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः

हरिरुवाच

पवित्रारोपणं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदं हरेः। पुरा देवासुरे युद्धे ब्रह्माद्याः शरणं ययुः ॥
विष्णुश्च तेषां देवानां ध्वजं ग्रैवेयकं ददौ ॥ १ ॥
एतौ दृष्ट्वा विलङ्घन्ति दानवानब्रवीद्धरिः। विष्णूक्ते ह्यब्रवीन्नागो वासुकेरनुजस्तदा ॥ २ ॥
वृणीत च पवित्राख्यं वरञ्चेदं वृषध्वज। ग्रैवेयं हरिदत्तं तु तन्नाम्ना ख्यातिमेष्यति ॥
इत्युक्ते तेन देवांस्तान्नाम्ना च तद्वरं ददौ ॥ ३ ॥
प्रावृट्काले तु ये मर्त्या नार्चिष्यन्ति पवित्रकैः। तेषां सांवत्सरी पूजा विफला च भविष्यति ॥
तस्मात् सर्वेषु देवेषु पवित्रारोहणं क्रमात् ॥ ४ ॥
प्रतिपत्पौर्णमास्यान्ता यस्य या तिथिरुच्यते। द्वादश्यां विष्णवे कार्यं शुक्ले कृष्णेऽथवा हर ॥५॥
व्यतीपातेऽयने चैव चन्द्रसूर्यग्रहे शिव। विष्णवे वृद्धिकार्ये च गुरोरागमने तथा ॥
नित्यं पवित्रमुद्दिष्टं प्रावृट्काले त्ववश्यकम् ॥ ६ ॥
कौषेयं पट्टसूत्रं वा कार्पासं क्षौममेव वा। कुशसूत्रं द्विजानां स्याद्राज्ञां कौषेयपट्टकम् ॥ ७ ॥
वैश्यानाञ्चौर्णकं क्षौमं शूद्राणां नवबल्कजम्। कार्पासं पद्मजञ्चैव सर्वेषां शस्तमीश्वर ॥ ८ ॥
ब्राह्मण्या कर्त्तितं सूत्रं त्रिगुणं त्रिगुणीकृतम्। ओंकारोऽथ शिवः सोमो ह्यग्निर्ब्रह्मा फणी रविः ॥
विघ्नेशो विष्णुरित्येते स्थितास्तन्तुषु देवताः। ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च त्रिसूत्रे देवताः स्मृताः ॥१०॥
सौवर्णे राजते तन्त्रे वैणवे मृण्मये न्यसेत्। अङ्गुष्ठेन चतुःषष्टिः श्रेष्ठं मध्यं तदर्द्धतः ॥११॥
तदर्द्धा तु कनिष्ठा स्यात् सूत्रमष्टोत्तरं शतम्। उत्तमं मध्यमञ्चैव कन्यसं पूर्ववत् क्रमात् ॥१२॥
उत्तमोऽङ्गुष्ठमानेन मध्यमो मध्यमेन तु। कन्यसे च कनिष्ठेन अङ्गुल्या ग्रन्थयः स्मृताः ॥
विमाने स्थण्डिले चैव एतत्सामान्यलक्षणम् ॥१३॥
शिवोद्धृतं पवित्रन्तु प्रतिमायाञ्च कारयेत्। ह्वन्नाभिरूरुमानेन जानुभ्यामवलम्बिनी ॥१४॥
अष्टोत्तरसहस्रेण चत्वारो ग्रन्थयः स्मृताः। षट्त्रिंशच्च चतुर्विंश द्वादश ग्रन्थयोऽथवा ॥१५॥
उत्तमादिषु विज्ञेयाः पर्वभिर्वा पवित्रकम्। चर्चितं कुङ्कुमेनैव हरिद्राचन्दनेन वा ॥१६॥
सोपवासः पवित्रन्तु पात्रस्थमधिवासयेत्। अश्वत्थपत्रपुटके अष्टदिक्षु निवेशितम् ॥१७॥
दण्डकाष्ठं कुशाग्रञ्च पूर्वे सङ्कर्षणेन तु। रोचनाकुङ्कुमेनैव प्रद्युम्नेन तु दक्षिणे ॥१८॥
शुद्धार्थी फलसिद्ध्यर्थमनिरुद्धेन पश्चिमे। चन्दनं नीलयुक्तञ्च तिलभस्माक्षतं तथा ॥
आग्नेयादिषु कोणेषु श्रियादीनां क्रमान्न्यसेत् ॥१९॥

पवित्रं वासुदेवेन अभिमन्त्र्य सकृत् सकृत् । दृष्ट्वा पुनः प्रपूज्याथ वस्त्रेणाच्छाद्य यत्नतः ॥२०॥
देवस्य पुरतः स्थाप्य प्रतिमामण्डलस्य वा । पश्चिमे दक्षिणे चैव उत्तरे पूर्ववत् क्रमात् ॥२१॥
ब्राह्मणादींश्च संस्थाप्य कलशञ्चाथ पूजयेत् । अस्त्रेण मण्डलं कृत्वा नैवेद्यञ्च समर्पयेत् ॥२२॥
अधिवास्य पवित्रन्तु त्रिसूत्रेण नवेन वा । वेदिकां वेष्टयित्वा तु आत्मानं कलशं युतम् ॥२३॥
अग्निकुण्डं विमानञ्च मण्डपं गृहमेव च । सूत्रमेकन्तु संगृह्य दद्याद्देवस्य मूर्धनि ॥२४॥
दत्त्वा पठेदिमं मन्त्रं पूजयित्वा महेश्वरम् । आवाहितोऽसि देवेश पूजार्थं परमेश्वर ॥
तत्प्रभातेऽर्चयिष्यामि सामग्रयाः सन्निधो भव ॥२५॥
एकरात्रं त्रिरात्रं वा अधिवास्य पवित्रकम् । रात्रौ जागरणं कृत्वा प्रातः संपूज्य केशवम् ॥२६॥
आरोपयेत्क्रमेणैव ज्येष्ठमध्यकनीयसम् । धूपयित्वा पवित्रन्तु मन्त्रेणैवाभिमन्त्रयेत् ॥२७॥
प्रजप्तग्रन्थिकञ्चैव पूजयेत्कुसुमादिभिः । गायत्र्या चार्च्चितं तेन देवं संपूज्य दापयेत् ॥२८॥
मम पुत्रकलत्राद्यैः सूत्रपुच्छन्तु धारयेत् । विशुद्धग्रन्थिकं रम्यं महापातकनाशनम् ॥
सर्वपापक्षयं देव तवाग्रे धारयाम्यहम् ॥२९॥
एवं धूपादिनाभ्यर्च्य मध्यमादीन् समर्पयेत् । पवित्रं वैष्णवं तेजः सर्वपातकनाशनम् ॥
धर्मकामार्थसिद्ध्यर्थं स्वकण्ठे धारयाम्यहम् ॥३०॥
वनमालां समभ्यर्च्य स्वेन मन्त्रेण दापयेत् । नैवेद्यं विविधं दत्त्वा कुसुमादेर्बलिं हरेत् ॥३१॥
अग्निं सन्तर्प्य तत्रापि द्वादशाङ्गुलमानतः । अष्टोत्तरशतेनैव दद्यादेकपवित्रकम् ॥३२॥
आदौ दत्त्वार्घ्यमादित्ये तत्र चैकं पवित्रकम् । विष्वक्सेनं ततः प्राच्र्य गुरुमर्घ्यादिभिर्हर ॥
देवस्याग्रे पठेन्मन्त्रं कृताञ्जलिपुटस्थितः ॥३३॥
ज्ञानतोऽज्ञानतो वापि पूजनादि कृतं मया । तत्सर्वं पूर्णमेवास्तु त्वत्प्रसादात्सुरेश्वर ॥३४॥
मणिविद्रुममालाभिर्मन्दारकुसुमादिभिः । इयं सांवत्सरी पूजा तवास्तु गरुडध्वजः ॥३५॥
वनमाला यथा देव कौस्तुभं सततं हृदि । तद्वत्पवित्रं तन्तूनां मालां त्वं हृदये धर ॥३६॥
एवं प्रार्थ्य द्विजान्भोज्य दत्त्वा तेभ्यश्च दक्षिणाम् । विसर्जयेत्तु तेनैव सायाह्ने त्वपरेऽहनि ॥३७॥
सांवत्सरीमिमां पूजां सम्पाद्य विधिवन्मया । व्रज पवित्रकेदानीं विष्णुलोकं विसर्जितः ॥३८॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे त्रिचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४३॥

चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः

हरिरुवाच

पूजयित्वा पवित्राद्यैर्ब्रह्म ध्यात्वा हरिर्भवेत् । ब्रह्मध्यानं प्रवक्ष्यामि मायायन्त्रप्रमर्दकम् ॥ १ ॥
यच्छेद्वाङ्मनसा प्राज्ञस्तं यजेद्ज्ञानमात्मनि । ज्ञानं महति संयच्छेद्य इच्छेज्ज्ञानमात्मनि ॥ २ ॥
देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्राणाहङ्कारवर्जितम् । वर्जितं भूततन्मात्रैर्गुणजन्माशनादिभिः ॥ ३ ॥
स्वप्रकाशं निराकारं सदानन्दमनादि यत् । नित्यं शुद्धं बुद्धमृद्धं सत्यमानन्दमद्वयम् ॥ ४ ॥
तुरीयमक्षरं ब्रह्म अहमस्मि परं पदम् । अहं ब्रह्मेत्यवस्थानं समाधिरपि गीयते ॥ ५ ॥
आत्मानं रथिनं विद्धि शरीरं रथमेव तु । इन्द्रियाणि हयानाहुर्विषयास्तेषु गोचराः ॥ ६ ॥
आत्मेन्द्रियमनोयुक्तो भोक्तेत्याहुर्मनीषिणः । यस्तु विज्ञानवाह्येन युक्तेन मनसा सदा ॥
स तु तत्पदमाप्नोति स हि भूयो न जायते ॥ ७ ॥
विज्ञानसारथिर्यस्य मनःप्रग्रहवान्नरः । स्वह्निन्याः पारमाप्नोति तद्विष्णोः परमं पदम् ॥८॥
अहिंसादि यमः प्रोक्तः शौचादि नियमः स्मृतः । पद्माद्युक्तं आसनञ्च प्राणायामो मरुज्जयः ॥
प्रत्याहारो जयः प्रोक्तो ध्यानमीश्वरचिन्तनम् । मनोधृतिर्धारणा स्यात्समाधिर्ब्रह्मणि स्थितिः ॥१०॥
अमूर्त्तौ चेद्दणी स्यातु ततो मूर्त्तिं विचिन्तयेत् । हृत्पद्मकर्णिकामध्ये शङ्खचक्रगदाधरः ॥११॥
श्रीवत्सकौस्तुभयुतो वनमालाश्रिया युतः । नित्यः शुद्धो बुद्धियुक्तः सत्यानन्दाद्वयः परः ॥१२॥
आत्माऽहं परमं ब्रह्म परमज्योतिरेव तु । चतुर्विंशतिमूर्त्तिः स शालग्रामशिलास्थितः ॥१३॥
द्वारकादिशिलासंस्थो ध्येयः पूज्योऽपि वा हरिः । मनसोऽभीप्सितं प्राप्य देवो वैमानिको भवेत् ॥
निष्कामो मुक्तिमाप्नोति मूर्त्तिं ध्यायन्स्तुवन् जपन् ॥१४॥
इति श्रीगारुड़े महापुराणे चतुश्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४४॥

पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः

हरिरुवाच

प्रसङ्गात्कथयिष्यामि शालग्रामस्य लक्षणम् । शालग्रामशिलास्पर्शात्कोटिजन्माघनाशनम् ॥ १ ॥
शङ्खचक्रगापद्मी केशवाख्यो गदाधरः । साब्जकौमोदकीचक्रशङ्खी नारायणो विभुः ॥ २ ॥
सचक्रशङ्खाब्जगदो माधवः श्रीगदाधरः । गदाब्जशङ्खचक्री वा गोविन्दोऽर्च्यो गदाधरः ॥ ३ ॥
पद्मशङ्खारिगदिने विष्णुरूपाय ते नमः । सशङ्खाब्जगदाचक्रमधुसूदनमूर्त्तये ॥ ४ ॥
नमो गदारिशङ्खाब्जमूर्त्तित्रैविक्रमाय च । सारिकौमोदकीपद्मशङ्खवामनमूर्त्तये ॥ ५ ॥

चक्राब्जशङ्खगदिने नमः श्रीधरमूर्त्तये । हृषीकेशायाब्जगदाशङ्खिने चक्रिणे नमः ॥ ६ ॥
साब्जचक्रगदाशङ्खपद्मनाभस्वरूपिणे । दामोदरशङ्खचक्रगदापद्मिन्नमोनमः ॥ ७ ॥
सारिशङ्खगदाब्जाय वासुदेवाय वै नमः । शङ्खाब्जचक्रगदिने नमः सङ्कर्षणाय च ॥ ८ ॥
सुशङ्खसुगदाब्जारिधृते प्रद्युम्नमूर्त्तये । नमोऽनिरुद्धाय गदाशङ्खाब्जारिविधारिणे ॥ ९ ॥
साब्जशङ्खगदाचक्रपुरुषोत्तममूर्त्तये । नमोऽधोऽक्षजरूपाय गदाशङ्खारिपद्मिने ॥१०॥
नृसिंहमूर्त्तये पद्मगदाशङ्खारिधारिणे । पद्मारिशङ्खगदिने नमोऽस्त्वच्युतमूर्त्तये ॥११॥
सशङ्खचक्राब्जगदं जनार्दनमिहानये । उपेन्द्रं सगदं सारिं पद्मशङ्खिन्नमो नमः ॥१२॥
सुचक्राब्जगदाशङ्खयुक्ताय हरिमूर्त्तये । सगदाब्जारिशङ्खाय नमः श्रीकृष्णमूर्त्तये ॥१३॥
शालग्रामशिलाद्वारगतलग्नद्विचक्रधृक् । शुक्लाभो वासुदेवाख्यः सोऽव्याद्वः श्रीगदाधरः १४॥
लग्नद्विचक्रो रक्ताभः पूर्वभागन्तु पद्मभृत् । सङ्कर्षणोऽथ प्रद्युम्नः सूक्ष्मचक्रस्तु पीतकः ॥१५॥
सदीर्घः सशिरश्छिद्रो योऽनिरुद्धस्तु वर्तुलः । नीलो द्वारि त्रिरेखश्च अथ नारायणोऽसितः॥१६॥
मध्ये गदाकृती रेखा नाभिचक्रो महोन्नतः । पृथुवक्षो नृसिंहो वः कपिलोऽव्यात्त्रिबिन्दुकः ॥१७॥
अथवा पञ्चबिन्दुस्तत्पूजनं ब्रह्मचारिणः । वराहशक्तिलिङ्गोऽव्याद्विषमद्वयचक्रकः ॥१८॥
नीलस्त्रिरेखः स्थूलोऽथ कूर्ममूर्त्तिः स विन्दुमान् । कृष्णः स वर्त्तुलावर्त्तः पातु वो नतपृष्ठकः ॥१९॥
श्रीधरः पञ्चरेखोऽव्याद्वनमाली गदाङ्कितः । वामनो वर्त्तुलो ह्रस्वो वामचक्रः सुरेश्वरः ॥२०॥
नानावर्णोऽनेकमूर्त्तिर्नागभोगी त्वनन्तकः । स्थूलो दामोदरो नीलो मध्ये चक्रः सुनीलकः ॥२१॥
सङ्कीर्णद्वारको वाव्यादथ ब्रह्मा सुलोहितः । सदीर्घरेखः शुषिर एकचक्राम्बुजः पृथुः ॥२२॥
पृथुच्छिद्रः स्थूलचक्रः कृष्णो बिन्दुश्च बिन्दुमत् । हयग्रीवोऽङ्कुशाकारः पञ्चरेखः सकौस्तुभः ॥२३॥
वैकुण्ठो मणिरत्नाभ एकचक्राम्बुजोऽसितः । मत्स्यो दीर्घोऽम्बुजाकारो द्वाररेखश्च पातु वः ॥२४॥
रामचक्रो दक्षरेखः श्यामो वोऽव्यात्त्रिविक्रमः । शालग्रामे द्वारकायां स्थिताय गदिने नमः ॥२५॥
एकद्वारे चतुश्चक्रं वनमालाविभूषितम् । स्वर्णरेखासमायुक्तं गोष्पदेन विराजितम् ॥
कदम्बकुसुमाकारं लक्ष्मीनारायणोऽवतु ॥२६॥
एकेन लक्षितो योऽव्याद्गदाधारी सुदर्शनः। लक्ष्मीनारायणो द्वाभ्यां त्रिभिर्मूर्त्तेस्त्रिविक्रमः ॥२७॥
चतुर्भिश्च चतुर्व्यूहो वासुदेवश्च पञ्चभिः । प्रद्युम्नः षड्भिरेव स्यात्सङ्कर्षण इतस्ततः ॥२८॥
पुरुषोत्तमोऽष्टाभिः स्यान्नवव्यूहो नवाङ्कितः। दशावतारो दशभिरनिरुद्धोऽवतादथ ॥२९॥
द्वादशात्मा द्वादशभिरत ऊर्ध्वमनन्तकः । विष्णोर्मूर्त्तिमयं स्तोत्रं यः पठेत्स दिवं व्रजेत् ॥३०॥
ब्रह्मा चतुर्मुखो दण्डी कमण्डलुयुगान्वितः । महेश्वरः पञ्चवक्त्रो दशबाहुर्वृषध्वजः ॥३१॥
यथायुधस्तथा गौरी चण्डिका च सरस्वती । महालक्ष्मीर्मातरञ्च पद्महस्तो दिवाकरः ॥३२॥

गजास्यश्च गणः स्कन्दः षण्मुखोऽनेकधागुणाः । एतेऽर्चिताः स्थापिताश्च प्रासादे वास्तुपूजिते ॥
धर्मार्थकाममोक्षाद्याः प्राप्यन्ते पुरुषेण च ॥२३॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे वासुदेवमूर्त्तयो नाम पञ्चचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४५ ॥

षट्चत्वारिंशोऽध्यायः

हरिरुवाच

वास्तुं संक्षेपतो वक्ष्ये गृहादौ विघ्ननाशनम् । ईशानकोणादारभ्य ह्येकाशीतिपदे यजेत् ॥ १ ॥
ईशाने च शिरः पादौ नैर्ऋतेऽग्न्यनिले करौ । आवासवासवेश्मादौ पुरे ग्रामे वणिक्पथे ॥ २ ॥
प्रासादारामदुर्गेषु देवालयमठेषु च । द्वात्रिंशत्तु सुरान्बाह्ये तदन्तश्च त्रयोदश ॥ ३ ॥
ईशश्चैवाथ पर्जन्यो जयन्तः कुलिशायुधः । सूर्य्यः सत्यो भृगुश्चैव आकाशो वायुरेव च ॥ ४ ॥
पूषा च वितथश्चैव ग्रहक्षेत्रयमावुभौ । गन्धर्वो भृगुराजस्तु मृगः पितृगणस्तथा ॥ ५ ॥
द्वौवारिकोऽथ सुग्रीवः पुष्पदन्तो गणाधिपः । असुरः शेषपादौ च रोगोऽहिमुख्य एव च ॥ ६ ॥
भल्लाटः सोमसर्पौ च अदितिश्च दितिस्तथा । बहिर्द्वात्रिंशद्देवे तु तदन्तश्चतुरः शृणु ॥ ७ ॥
ईशानादिचतुष्कोणसंस्थितान्पूजयेद्बुधः । आपश्चैवाथ सावित्रो जयो रुद्रस्तथैव च ॥ ८ ॥
मध्ये नवपदे ब्रह्मा तस्याष्टौ च समीपगान् । देवानेकोत्तरानेतान्पूर्वादौ नामतः शृणु ॥ ९ ॥
अर्यमा सविता चैव विवस्वान्विबुधाधिपः । मित्रोऽथ राजयक्ष्मा च तथा पृथ्वीधरः क्रमात् ॥
अष्टमश्चापवत्सश्च परितो ब्रह्मणः स्मृताः ॥१०॥
ईशानकोणादारभ्य दुर्गे च वंश उच्यते । आग्नेयकोणादारभ्य वंशो भवति दुर्द्धरः ॥११॥
अदितिं हिमवन्तञ्च जयन्तञ्च इदं त्रयम् । नायिका कलिका नाम शक्राद्गन्धर्वगाः पुनः ॥
वास्तुदेवान्पूजयित्वा गृहप्रासादकृद्भवेत् ॥१२॥
सुरेज्यः पुरतः कार्यो दिश्याग्नेय्यां महानसम् । कपिनिर्गमने येन पूर्वतः सत्रमण्डपम् ॥१३॥
गन्धपुष्पगृहं कार्यमैशान्यां पट्टसंयुतम् । भाण्डागारञ्च कौवेर्यां गोष्ठागारञ्च वायवे ॥१४॥
उदगाश्रयं वारुण्यां वातायनसमन्वितम् । समित्कुशेन्धनस्थानमायुधानाञ्च नैर्ऋते ॥१५॥
अभ्यागतालयं रम्यं सशयासनपादुकम् । तोयाग्निदीपसद्भृत्यैर्युक्तं दक्षिणतो भवेत् ॥१६॥
गृहान्तराणि सर्वाणि सजलैः कदलीगृहैः । पञ्चवर्णैश्च कुसुमैः शोभितानि प्रकल्पयेत् ॥१७॥
प्राकारं तद्बहिर्दद्यात् पञ्चहस्तप्रमाणतः । एवं विष्ण्वाश्रमं कुर्याद्वनैश्चोपवनैर्युतम् ॥ १८॥

चतुःषष्टिपदो वास्तुः प्रासादादौ प्रपूजितः । मध्ये चतुष्पदो ब्रह्मा द्विपदास्त्वर्यमादयः ॥१६॥
कर्णे चैवाथ शिख्याद्यास्तथा देवाः प्रकीर्त्तिताः । तेभ्यो ह्युभयतः सार्द्धादन्येऽपि द्विपदाः सुराः ॥
चतुःषष्टिपदा देवा इत्येव परिकीर्त्तिताः ॥ २० ॥
चरकी च विदारी च पूतना पापराक्षसी । ईशानाद्यास्ततो बाह्ये देवाद्या हेतुकादयः ॥२१॥
हेतुकस्त्रिपुरान्तश्च अग्निवेतालकौ यमः । अग्निजिह्वः कालकश्च करालो ह्येकपादकः ॥२२॥
ऐशान्यां भीमरूपस्तु पाताले प्रेतनायकः । आकाशे गन्धमाली स्यात्क्षेत्रपालांस्ततो यजेत् ॥
विस्ताराभिहतं दैर्घ्यं राशिं वास्तोस्तु कारयेत् । कृत्वा च वसुभिर्भागं शेषञ्चैवायमादिशेत् ॥२४॥
पुनर्गुणितमष्टाभिर्ऋक्षभागन्तु भाजयेत् । यच्छेषं तद्भवेद्दत्तं भागैर्ह्रत्वा व्ययं भवेत् ॥२५॥
ऋृत्तं चतुर्गुणं कृत्वा नवभिर्भागहारितम् । शेषमंशं विजानीयाद्देवलस्य मतं यथा ॥२६॥
अष्टाभिर्गुणितं पिण्डं षष्टिभिर्भागहारितम् । यच्छेषं तद्भवेज्जीवं मरणं भूतहारितम् ॥२७॥
वास्तुक्रोडे गृहं कुर्यान्न पृष्ठे मानवः सदा । वामपार्श्वेन स्वपिति नात्र कार्या विचारणा ॥२८॥
सिंहकन्यातुलायाञ्च द्वारं शुद्धेदथोत्तरम् । एवञ्च वृश्चिकादौ स्यात्पूर्वं दक्षिणपश्चिमम् ॥२६॥
द्वारं दीर्घार्द्धविस्तारं द्वाराण्यष्टौ स्मृतानि च ॥३०॥
स्वतल्पे ह्रवनीचत्वं सर्पेण सूत्रभाजनम् । पुत्रहीनन्तु रौद्रेण वीर्यघ्नं दक्षिणे तथा ॥३१॥
वह्नौ बन्धश्च वायौ च पुत्रलाभः सुतृप्तिदः । धनदे नृपपीडादं बन्धनं रोगदं जले ॥३२॥
नृपभीतिर्मृतापत्यं ह्यनपत्यञ्च वैरिदम् । अर्थदे चार्थहानिश्च दोषदं पुत्रमृत्युदम् ॥
द्वाराण्युत्तरसंज्ञानि पूर्वहाराणि वच्म्यहम् ॥३३॥
अग्निभीतिर्बहुकन्या धनसम्मानकं पदम् । राजघ्नं रोगदं पूर्वे फलतो द्वारमीरितम् ॥३४॥
ईशानादौ भवेत्पूर्वमाग्नेयादौ तु दक्षिणम् । नैर्ऋत्यादौ पश्चिमं स्याद्वायव्यादौ तु चोत्तरम् ॥
अष्टभागे कृते भागे द्वाराणाञ्च फलाफलम् ॥३५॥
अश्वत्थप्लक्षन्यग्रोधाः पूर्वादौ स्यादुदुम्बरः । गृहस्य शोभलः प्रोक्त ईशाने चैत्र शाल्मलिः ॥
पूजितो विघ्नहारी स्यात्प्रासादस्य गृहस्य च ॥३६॥
इति श्रीगारुडे महापुराणे वास्तुमानलक्षणं नाम षट्चत्वारिंशोऽध्यायः ॥४६॥

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः

सूत उवाच

प्रासादानां लक्षणञ्च वक्ष्ये शौनक तच्छृणु । चतुःषष्टिपदं कृत्वा दिग्विदिक्षूपलक्षितम् ॥ १ ॥

चतुष्कोणं चतुर्भिश्च द्वाराणि सूर्य्यसंख्यया । चत्वारिंशाष्टभिश्चैव भित्तीनां कल्पना भवेत् ॥ २ ॥
ऊर्ध्वक्षेत्रसमा जङ्घा तदूर्ध्वे द्विगुणं भवेत् । गर्भविस्तारविस्तीर्णा शुकाङ्घ्रिश्च विधीयते ॥ ३ ॥
तत्त्रिभागेन कर्त्तव्यः पञ्चभागेन वा पुनः । निर्गमस्तु शुकाङ्घ्रेश्च उच्छ्रायः शिखरार्द्धगः ॥४॥
चतुर्द्धा शिखरं कृत्वा त्रिभागे वेदिबन्धनम् । चतुर्थे पुनरस्यैव कण्ठमामूलसाधनम् ॥ ५ ॥
अथवापि समं वास्तु कृत्वा षोडशभागिकम् । तस्य मध्ये चतुर्भागमादौ गर्भन्तु कारयेत् ॥६॥
भागद्वादशिकां भित्तिं ततश्च परिकल्पयेत् । चतुर्भागेन भित्तीनामुच्छ्रायः स्यात्प्रमाणतः ॥७॥
द्विगुणः शिखरोच्छ्रायो भित्त्युच्छ्रायाच्च मानतः । शिखरार्द्धस्य चार्द्धेन विधेयास्तु प्रदक्षिणाः ॥
चतुर्दिक्षु तथा ज्ञेयो निर्गमस्तु तथा बुधैः । पञ्चभागेन संभज्य गर्भमानं विचक्षणः ॥६॥
भागमेकं गृहीत्वा तु निर्गमं कल्पयेत् पुनः । गर्भसूत्रसमो भागादग्रतो मुखमण्डपः ॥
एतत्सामान्यमुद्दिष्टं प्रासादस्य हि लक्षणम् ॥१०॥
लिङ्गमानमथो वक्ष्ये पीठो लिङ्गसमो भवेत् । द्विगुणेन भवेद् गर्भः समन्ताच्छौनक ध्रुवम् ।
तद्विधा च भवेद् भित्तिर्जङ्घा तद्विस्तरार्धगा ॥११॥
द्विगुणं शिखरं प्रोक्तं जङ्घायाश्चैव शौनक । पीठगर्भावरं कर्म तन्मानेन शुकाङ्घ्रिकाम् ॥१२॥
निर्गमस्तु समाख्यातः शेषं पूर्ववदेव तु । लिङ्गमानः स्मृतो ह्येष द्वारमानथोच्यते ॥१३॥
कराग्रं वेदवत्कृत्वा द्वारं भागाष्टमं भवेत् । विस्तरेण समाख्यातं द्विगुणं स्वेच्छया भवेत् ॥१४॥
द्वारवत्पीठमध्ये तु शेषं शुषिरकं भवेत् । पादिकं शेषिकं भित्तिर्द्वारार्द्धेन परिग्रहात् ॥१५॥
तद्विस्तारसमा जङ्घा शिखरं द्विगुणं भवेत् । शुकाङ्घ्रिः पूर्ववज्ज्ञेया निर्गमोच्छ्रायकं भवेत् ॥
उक्तं मण्डपमानन्तु स्वरूपं चापरं वद ॥१६॥
त्रैवेदं कारयेत् क्षेत्रं यत्र तिष्ठन्ति देवताः । इत्थं कृतेन मानेन बाह्यभागविनिर्गतम् ॥१७॥
नेमिः पादेन विस्तीर्णा प्रासादस्य समन्ततः । गर्भन्तु द्विगुणं कुर्य्यान्नेम्या मानं भवेदिह ।
स एव भित्तेरुत्सेधो शिखरो द्विगुणो मतः ॥१८॥
प्रासादानाञ्च वक्ष्यामि मानं योनिञ्च मानतः । वैराजः पुष्पकाख्यश्च कैलासो मालिकाह्वयः ।
त्रिपिष्टपञ्च पञ्चैते प्रासादाः सर्वयोनयः ॥१६॥
प्रथमश्चतुरस्रो हि द्वितीयस्तु तदायतः । वृत्तो वृत्तायतश्चान्योऽष्टास्रश्चेह च पञ्चमः ॥२०॥
एतेभ्य एव सम्भूताः प्रासादाः सुमनोहराः । सर्वप्रकृतिभूतेभ्यश्चत्वारिंशच्च एव च ॥२१॥
मेरुश्च मन्दरश्चैव विमानश्च तथापरः । भद्रकः सर्वतोभद्रो रुचको नन्दनस्तथा ॥२२॥
नन्दिवर्द्धनसंज्ञश्च श्रीवत्सश्च नवेत्यमी । चतुरस्राः समुद्भूता वैराजादिति गम्यताम् ॥२३॥
वलभी गृहराजश्च शालागृहञ्च मन्दिरम् । विमानञ्च तथा ब्रह्ममन्दिरं भवनं तथा ॥

उत्तम्भं शिविकावेश्म नवैते पुष्पकोद्भवाः ॥२४॥

वलयो दुन्दुभिः पद्मो महापद्मस्तथापरः । मुकुली चास्य उष्णीषी शङ्खश्च कलशस्तथा ॥
गुवावृक्षस्तथान्यश्च वृत्ताः कैलाससम्भवाः ॥२५॥

गजोऽथ वृषभो हंसो गरुड़ः सिंहनामकः । भूमुखो भूधरश्चैव श्रीजयः पृथिवीधरः ॥
वृत्तायताः समुद्भूता नवैते मालकाह्वयात् ॥२६॥

वज्रं चक्रं तथान्यच्च मुष्टिकं बभ्रुसंज्ञितम् । वक्रः स्वस्तिकभङ्गौ च गदा श्रीवृक्ष एव च ॥
विजयो नामतः श्वेतस्त्रिविष्टिपसमुद्भवाः ॥२७॥

त्रिकोणं पद्ममर्द्धेन्दुश्चतुष्कोणं द्विरष्टकम् । यत्र यत्र विधातव्यं संस्थानं मण्डपस्य तु ॥२८॥
राज्यञ्च विभवश्चैव ह्यायुर्वर्द्धनमेव च । पुत्रलाभः स्त्रियः पुष्टिस्त्रिकोणादिक्रमाद्भवेत् ॥२९॥
कुर्याद् ध्वजादिकं ख्याता द्वारि गर्भगृहं तथा । मण्डपः समसंख्याभिर्गुणितः सूत्रतस्तथा ॥३०॥
मण्डपस्य चतुर्थांशाद्भद्रः कार्यो विजानता । सार्द्ध गवाक्षकोपेतो निर्गवाक्षोऽथवा भवेत्॥३१॥
सार्द्धभित्तिप्रमाणेन भित्तिमानेन वा पुनः । भित्तेर्द्वैगुण्यतो वापि कर्त्तव्या मण्डपाः क्वचित् ॥
प्रासादे मञ्जरी कार्या चित्रा विषमभूमिका । परिमाणविरोधेन रेखा वैषम्यभूषिता ॥३३॥
आधारस्तु चतुर्द्वारश्चतुर्मण्डपशोभितः । शतशृङ्गसमायुक्तो मेरुः प्रासाद उत्तमः ॥३४॥
मण्डपास्तस्य कर्त्तव्या भद्रैस्त्रिभिरलंकृताः । गठनाकारमानानां भिन्नाद्भिन्ना भवन्ति ते ॥३५॥
कियन्तो येषु चाधारा निराधाराश्च केचन । प्रतिच्छन्दकभेदेन प्रासादाः सम्भवन्ति ते ॥३६॥
अन्यान्यसंस्कारात्तेषां गठनानामभेदतः । देवतानां विशेषाय प्रासादा बहवः स्मृताः ॥३७॥
प्रासादे नियमो नास्ति देवतानां स्वयम्भुवाम् । तानेव देवतानाञ्च पूर्वमानेन कारयेत् ॥३८॥
चतुरस्रायतास्तत्र चतुष्कोणसमन्विताः । चन्द्रशालान्विता कार्या भेरीशिखरसंयुताः ॥३९॥
पुरतो वाहनानाञ्च कर्त्तव्या लघुमण्डपाः । नाट्यशाला च कर्त्तव्या द्वारदेशसमाश्रया ॥४०॥
प्रासादे देवतानाञ्च कार्या दिक्षु विदिक्ष्वपि । द्वारपालाश्च कर्त्तव्या मुख्या गत्वा पृथक् पृथक् ॥
किञ्चिददूरतः कार्या मठास्तत्रोपजीविनाम् । प्रावृता जगती कार्या फलपुष्पजलान्विता ॥४२॥
प्रासादेषु सुरान् स्थाप्यान् पूजाभिः पूजयेन्नरः । वासुदेवः सर्वदेवः सर्वभाक् तद्गृहादिकृत् ॥४३॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे प्रासादकीर्त्तनं नाम

सप्तचत्वारिंशोऽध्यायः ॥ ४७ ॥

अष्टचत्वारिंशोऽध्यायः

सूत उवाच

प्रतिष्ठां सर्वदेवानां संक्षेपेण वदाम्यहम् । सुतिथ्यादौ सुरम्याञ्च प्रतिष्ठां कारयेद् गुरुः ॥१॥
ऋत्विग्भिः सह चाचार्यं वरयेन्मध्यदेशगम् । स्वशाखोक्तविधानेन अथवा प्रणवेन तु ॥२॥
पञ्चभिर्बहुभिर्वाथ कुर्यात् पाद्यार्घमेव च । मुद्रिकाभिस्तथा वस्त्रैर्गन्धमाल्यानुलेपनैः ॥
मन्त्रन्यासं गुरुः कृत्वा ततः कर्म समारभेत् ॥३॥
प्रासादस्याग्रतः कुर्यान्मण्डपं दशहस्तकम् । कुर्याद्द्वादशहस्तं वा स्तम्भैः षोडशभिर्युतम् ॥
ध्वजाष्टकैश्चतुर्हस्तां मध्ये वेदीञ्च कारयेत् ॥४॥
नदीसङ्गमतीरोत्थां बालुकां तत्र दापयेत् । चतुरस्रं कार्मुकाभं वर्त्तुलं कमलाकृति ॥५॥
पूर्वादितः समारभ्य कर्त्तव्यं कुण्डपञ्चकम् । अथवा चतुरस्राणि सर्वाण्येतानि कारयेत् ॥६॥
शान्तिकर्मविधानेन सर्वकामार्थसिद्धये । शिरःस्थाने तु देवस्य आचार्यो होममाचरेत् ॥
ऐशान्यां केचिदिच्छन्ति उपलिप्यावनिं शुभाम् ॥७॥
द्वाराणि चैव चत्वारि कृत्वा वै तोरणान्तिके । न्यग्रोधोदुम्बराश्वत्थबैल्वपालाशखादिराः ॥८॥
तोरणाः पञ्चहस्ताश्च वस्त्रपुष्पाद्यलंकृताः । निखनेद्धस्तमेकैकं चत्वारश्चतुरो दिशः ॥९॥
पूर्वद्वारे मृगेन्द्रन्तु हयराजन्तु दक्षिणे । पश्चिमे गोपतिर्नाम सुरशार्दूलमुत्तरे ॥१०॥
अग्निमीलेति मन्त्रेण प्रथमं पूर्वतो न्यसेत् । इषेत्वेति च मन्त्रेण दक्षिणस्यां द्वितीयकम् ॥११॥
अग्नआयाहि मन्त्रेण पश्चिमस्यां तृतीयकम् । शन्नोदेवीति मन्त्रेण उत्तरस्यां चतुर्थकम् ॥१२॥
पूर्वे अम्बुदवत् कार्या आग्नेय्यां धूमरूपिणी । याम्यां वै कृष्णरूपा तु नैर्ऋत्यां श्यामला भवेत् ॥
वारुण्यां पाण्डरा ज्ञेया वायव्यां पीतवर्णिका । उत्तरे रक्तवर्णा तु शुक्लैशी च पताकिका ॥
बहुरूपा तथा मध्ये इन्द्रविद्येति पूर्विका ॥१४॥
अग्निं संसुप्तिमन्त्रेण यमोनागेति दक्षिणे । पूज्या रक्षोहनावेति पश्चिमे उत्तरेऽपि च ॥१५॥
वात इत्यभिषिच्याथ आप्यायस्वेति चोत्तरे । तमीशानमतश्चैव विष्णुर्लोकेति मध्यमे ॥१६॥
कलशौ तु ततो द्वौ द्वौ निवेश्यौ तोरणान्तिके । वस्त्रयुग्मसमायुक्ताश्चन्दनाद्यैः स्वलंकृताः ॥१७॥
पुष्पैर्वितानैर्बहुलैरादिवर्णाभिमन्त्रिताः । दिक्पालाश्च ततः पूज्याः शास्त्रदृष्टेन कर्मणा ॥१८॥
त्रातारमिन्द्रमन्त्रेण अग्निर्मूर्द्धेति चापरे । अस्मिन् वृक्ष इतश्चैव प्रचारीति परा स्मृता ॥१९॥
किञ्चेदधातु आचात्वा भिन्नादेवीति सप्तमी । इमारुद्रेति दिक्पालान्पूजयित्वा विचक्षणः ॥
होमद्रव्याणि वायव्ये कुर्य्यात्सोपस्कराणि च ॥ २० ॥

शङ्खान्शास्त्रोदितान्श्वेतान्नेत्राभ्यां विन्यसेद्गुरुः। आलोकनेन द्रव्याणि शुद्धिंयान्ति न संशयः॥२१॥
हृदयादीनि चाङ्गानि व्याहृतिप्रणवेन च । अस्त्रञ्चैव समस्तानां न्यासोऽयं सार्वकामिकः ॥२२॥
अक्षतान्विष्टरञ्चैव अस्त्रेणैवाभिमन्त्रितान् । विष्टरेण स्पृशेद्द्रव्यान्यागमण्डपसंयुतान् ॥
अक्षतान्विकिरेत्पश्चादस्त्रपूतान्समन्ततः ॥ २३ ॥
शाक्रीं दिशमथारभ्य यावदीशानगोचरम् । अवकीर्य्याक्षतान्सर्वान्लेपयेन्मण्डपं ततः ॥२४॥
गन्धाद्यैरर्घ्यपात्रे च मन्त्रग्रामं न्यसेद्गुरुः । तेनार्घ्यपात्रतोयेन प्रोक्षयेद्यागमण्डपम् ॥२५॥
प्रतिष्ठा यस्य देवस्य तदाख्यं कलशं न्यसेत् । ऐशान्यां पूजयेद्याम्ये अस्त्रेणैव च वर्द्धनीम् ॥
कलशं वर्द्धनीञ्चैव ग्रहान्वास्तोष्पतिं तथा ॥ २६ ॥
आसने तानि सर्वाणि प्रणवाख्यं जपेद्गुरुः । सूत्रग्रीवं रत्नगर्भं वस्त्रमुख्येन वेष्टितम् ॥
सर्वौषधि गन्धलिप्तं पूजयेत्कलशं गुरुः ॥ २७ ॥
देवस्तु कलशे पूज्यो वर्द्धन्या वस्त्रमुत्तमम् । वर्द्धन्या तु समायुक्तं कलशं भ्रामयेदनु ॥२८॥
वर्द्धनीधारया सिञ्चन्नग्रतो धारयेत्ततः । अभ्यर्च्य वर्द्धनीं कुम्भं स्थण्डिले देवमर्चयेत् ॥२९॥
घटञ्चावाह्य वायव्यां गणानान्त्वेति सद्गणम् । देवमीशानकोणे तु जपेद्वास्तुपतिं बुधः ॥
वास्तोष्पतीति मन्त्रेण वास्तुदोषोपशान्तये ॥ ३० ॥
कुम्भस्य पूर्वतो भूतं गणदेवं बलिं हरेत् । पठेदिति च विद्याश्च कुर्य्यादालम्भनं बुधः ॥३१॥
योगे योगेति मन्त्रेण संस्तरन् ज्वलनैः कुशैः । आचार्य्य ऋत्विजैः सार्द्धं स्नानपीठे हरस्तथा॥३२॥
विविधैर्ब्रह्मघोषैश्च पुण्याहजयमङ्गलैः । कृत्वा ब्रह्मरथे देवं प्रतिष्ठन्ति ततो द्विजाः ॥३३॥
ऐशान्यामानयेत्पीठं मण्डपे विन्यसेद् गुरुः । भद्रं कर्णेत्यथ स्नात्वा सूत्रबन्धनजेन तु ॥
संस्नाप्य लक्षणे द्वारं कुर्य्याद्दूराभिवादनैः ॥ ३४ ॥
मधुसर्पिःसमायुक्तं कांस्ये वा ताम्रभाजने । अक्षिणी चाञ्जयेच्चास्य सुवर्णस्य शलाकया ॥३५॥
अग्निर्ज्योतीति मन्त्रेण नेत्रोद्घाटन्तु कारयेत् । लक्षणे क्रियमाणे तु नाम्नैकं स्थापको वदेत् ॥३६॥
इमम्मे गाङ्गमन्त्रेण नेत्रयोः शीतलक्रिया । अग्निर्मूर्द्धेति मन्त्रेण दद्याद्वल्मीकमृत्तिकाम् ॥३७॥
बिल्वोदुम्बरमश्वत्थं वटं पालाशमेव च । यज्ञायज्ञेति मन्त्रेण दद्यात्पञ्चकषायकम् ॥३८॥
पञ्चगव्यैः स्नापयेच्च सहदेव्यादिभिस्ततः । सहदेवी बला चैव शतमूली शतावरी ॥३९॥
कुमारी च गुडूची च सिंही व्याघ्री तथैव च । याओषधीति मन्त्रेण स्नानमोषधिमज्जलैः ॥
याः फलिनीति मन्त्रेण फलस्नानं विधीयते ॥ ४० ॥
द्रुपदादिवेति मन्त्रेण कार्य्यमुद्वर्त्तनं बुधैः । कलशेषु च विन्यस्य उत्तरादिष्वनुक्रमात् ॥

रत्नानि चैव धान्यानि ओषधिं शतपुष्पिकाम् ॥४१॥
समुद्रांश्चैव विन्यस्य चतुरश्चतुरो दिशः । क्षीरं दधि क्षीरोदस्य घृतोदस्येति वा पुनः ॥४२॥
आप्यायस्व दधिक्राव्णो या औषधीरितीति च । तेजोऽसीति च मन्त्रैश्च कुम्भञ्चैवाभिमन्त्रयेत् ॥
समुद्राख्यैश्चतुर्भिश्च स्नापयेत् कलशैः पुनः ॥४३॥
स्नातश्चैव सुवेशश्च धूपो देयश्च गुग्गुलुः । अभिषेकाय कुम्भेषु तत्तत्तीर्थानि विन्यसेत् ॥४४॥
पृथिव्यां यानि तीर्थानि सरितः सागरास्तथा । या ओषधीति मन्त्रेण कुम्भेञ्चैवाभिमन्त्रयेत् ॥
तेन तोयेन यः स्नायात् स मुच्येत् सर्वपातकैः ॥४५॥
अभिषिच्य समुद्रैश्च चार्घ्यं दद्यात्ततः पुनः । गन्धद्वारेति गन्धञ्च न्यासं वै वेदमन्त्रकैः ॥४६॥
स्वशास्त्रविहितैः प्राप्तैरिमं मन्त्रेति वस्त्रकम् । कविहाविति मन्त्रेण आनयेन्मण्डपं शुभम् ॥४७॥
शम्भवायेति मन्त्रेण शय्यायां विनिवेशयेत् । विश्वतश्चक्षुमन्त्रेण कुर्य्यात् सकलनिष्कलम् ॥४८॥
स्थित्वा चैव परे तत्त्वे मन्त्रन्यासन्तु कारयेत् । स्वशास्त्रविहितो मन्त्री न्यासस्तस्मिंस्तथोदितः ॥४९॥
वस्त्रेणाच्छादयित्वा तु पूजनीयः स्वभावतः । यथाशास्त्रं निवेद्यानि पादमूले तु दापयेत् ॥५०॥
अथ प्रणवसंयुक्तं वस्त्रयुग्मेन वेष्टितम् । कलशं सहिरण्यञ्च शिरःस्थाने निवेदयेत् ॥५१॥
स्थित्वा कुण्डसमीपेऽथ अग्नेः स्थापनमाचरेत् । स्वशास्त्रविहितैर्मन्त्रैर्वेदोक्तैर्वाथवा गुरुः ॥५२॥
श्रीसूक्तं पावमानञ्च वासं दास्यं सहाजिनम् । वृषाकपिञ्च मित्रञ्च बह्वृचः पूर्वतो जपेत् ॥५३॥
रुद्रं पुरुषसूक्तञ्च श्लोकाध्यायञ्च सुक्रियः । ब्रह्माणं पितृमैत्रञ्च अध्वर्य्युर्दक्षिणे जपेत् ५४॥
वेदव्रतं वामदेव्यं ज्येष्ठसामरथन्तम् । भेरुण्डानि च सामानि छन्दोगः पश्चिमे जपेत् ॥५५॥
अथर्वशिरसश्चैव कुम्भसूक्तमथर्वणः । नीलरुद्रांश्च मैत्रञ्च अथर्वश्चोत्तरे जपेत् ॥५६॥
कुण्डं चास्त्रेण संप्रोक्ष्य आचार्य्यस्य विशेषतः । ताम्रपात्रे शरावे वा यथाविभवतोऽपि वा ॥
जातवेदं समानीय अग्रतस्तन्निवेशयेत् ॥५७॥
अस्त्रेण ज्वालयेद्वह्निं कवचेन तु वेष्टयेत् । अमृतीकृत्य तं पश्चान्मन्त्रैः सर्वैश्च देशिकः ॥५८॥
पात्रं गृह्य कराभ्याञ्च कुण्डं भ्राम्य ततः पुनः । वैष्णवेन तु योगेन परं तेजस्तु निक्षिपेत् ॥५९॥
दक्षिणे स्थापयेद् ब्रह्म प्रणीताञ्चोत्तरेण तु । साधारणेन मन्त्रेण स्वशास्त्रविहितेन वा ॥
दिक्षु दिक्षु ततो दद्यात्परिधिं विष्टरैः सह ॥६०॥
ब्रह्मविष्णुहरेशानाः पूज्याः साधारणेन तु । दर्भेषु स्थापयेद्वह्निं दर्भैश्च परिवेष्टितम् ॥
दर्भतोयेन संस्पृष्टो मन्त्रहीनोऽपि शुद्धयति ॥६१॥
प्रागग्रैरुदगग्रैश्च प्रत्यगग्रैरखण्डितैः । विततैर्वेष्टितो वह्निः स्वयं सान्निध्यतां व्रजेत् ॥६२॥

अग्नेस्तु रक्षणार्थाय यदुक्तं कर्म मन्त्रवित् । आचार्य्याः केचिदिच्छन्ति जातकर्मादनन्तरम् ॥६३॥
पवित्रन्तु ततः कृत्वा कुर्य्यादाज्यस्य संस्कृतिम् । आचार्योऽथ निरीक्ष्यापि नीराजमभिमन्त्रितम् ॥
आज्यभागाभिघारान्तमवेक्षेताज्यसिद्धये । पञ्च पञ्चाहुतीर्हुत्वा आज्येन तदनन्तरम् ॥६५॥
गर्भाधानादितस्तावद्यावद्गोदानिकं भवेत् । स्वशास्त्रविहितैर्मन्त्रैः प्रणवेनाथ होमयेत् ॥६६॥
ततः पूर्णाहुतिं दत्त्वा पूर्णात्पूर्णमनोरथः । एवमुत्पादितो वह्निः सर्वकर्मसु सिद्धिदः ॥६७॥
पूजयित्वा ततो वह्निं कुण्डेषु विहरेत्तथा । इन्द्रादीनां स्वमन्त्रैश्च तथाहुतिशतं शतम् ॥६८॥
पूर्णाहुतिं शतस्यान्ते सर्वेषाञ्चैव होमयेत् । स्वामाहुतिमथाज्येषु होता तत्कलशे न्यसेत् ॥६९॥
देवताश्चैव मन्त्रांश्च तथैव जातवेदसम् । आत्मानमेकतः कृत्वा ततः पूर्णां प्रदापयेत् ॥७०॥
निष्कृष्य बहिराचार्य्यो दिक्पालानां बलिं हरेत् । भूतानाञ्चैव देवानां नागानाञ्च प्रयोगतः ॥
तिलाश्च समिधश्चैव होमद्रव्यं द्वयं स्मृतम् । आज्यं तयोः सहकारि तत्प्रदानं यदङ्कयोः ॥७२॥
पुरुषसूक्तं पूर्वेणैव रुद्रञ्चैव तु दक्षिणे । ज्येष्ठसाम च भीरुण्डं तन्नयामीति पश्चिमे ॥७३॥
नीलरुद्रो महामन्त्रः कुम्भसूक्तमथर्वणः । हुत्वा सहस्रमेकैकं देवं शिरसि कल्पयेत् ॥७४॥
एवं मध्ये तथा पादे पूर्णाहुत्या तथा पुनः । शिरःस्थानेषु जुहुयादाविशेच्च अनुक्रमात् ॥७५॥
देवानामादिमन्त्रैर्वा मन्त्रैर्वा अथवा पुनः । स्वशास्त्रविहितैर्वापि गायत्र्या वाथ ते द्विजाः ॥
गायत्र्या वाथवाऽऽचार्य्यो व्याहृतिप्रणवेन तु ॥७६॥

एवं होमविधिं कृत्वा न्यसेन्मन्त्रांस्तु देशिकः । चरणावग्निमीले तु ईषेत्वो गुल्फयोः स्थिताः ॥
अग्नआयाहि जङ्घे द्वे शन्नोदेवीति जानुनी । बृहद्रथन्तरे ऊरू उदरेष्वातिलो न्यसेत् ॥७८॥
दीर्घायुष्ट्वाय हृदये श्रीश्च ते गलके न्यसेत् । त्रातारमिन्द्रं वक्षे च नेत्राभ्यान्तु त्रियुग्मकम् ॥
मूर्द्धा भव तथा मूर्ध्नि ह्यालम्बाद्धोममाचरेत् ॥७९॥
उत्थापयेत्ततो देवमुत्तिष्ठ ब्रह्मणः पते । वेदपुण्याहशब्देन प्रासादानां प्रदक्षिणम् ॥८०॥
पिण्डिकालभनं कृत्वा देवस्यत्वेति मन्त्रवित् । दिक्पालान्सह रत्नैश्च धातूनौषधयस्तथा ॥
लौहबीजानि सिद्धानि पश्चाद्देवन्तु विन्यसेत् ॥८१॥
न गर्भे स्थापयेद्देवं न गर्भन्तु परित्यजेत् । ईषन्मध्यं परित्यज्य ततो दोषापनं तु तत् ॥८२॥
तिलस्य तु समात्रन्तु उत्तरं किञ्चिदानयेत् । ॐ स्थिरो भव शिवो भव प्रजाभ्यश्च नमो नमः ॥
देवस्य त्वा सवितुर्वः षड्भ्यो वै विन्यसेद्गुरुः । तत्त्ववर्णकलामात्रं प्रजानि भुवनात्मजे ॥८४॥
षड्भ्यो विन्यस्य सिद्धार्थं ध्रुवार्थैरभिमन्त्रयेत् । सम्पातकलशेनैव स्नापयेत्सुप्रतिष्ठितम् ॥८५॥
दीपधूपसुगन्धैश्च नैवेद्यैश्च प्रपूजयेत् । अर्घ्यं दत्त्वा नमस्कृत्य ततो देवं क्षमापयेत् ॥८६॥

पात्रं वस्त्रयुगं छत्रं तथा दिव्याङ्गुरीयकम् । ऋत्विग्भ्यश्च प्रदातव्या दक्षिणा चैव शक्तितः ॥८७॥
चतुर्थीं जुहुयात्पश्चाद्यजमानः समाहितः । आहुतीनां शतं हुत्वा ततः पूर्णां प्रदापयेत् ॥८८॥
निष्क्रम्य बहिराचार्य्यो दिक्पालानां बलिं हरेत् । आचार्य्यः पुष्पहस्तस्तु क्षमस्वेति विसर्जयेत् ॥
यागान्ते कपिलां दद्यादाचार्य्याय च चामरम् । मुकुटं कुण्डलं छत्रं केयूरं कटिसूत्रकम् ॥
व्यजनं ग्रामवस्त्रादीन्सोपस्कारं समण्डलम् ॥९०॥
भोजनञ्च महत् कुर्य्यात् कृतकृत्यश्च जायते । यजमानो विमुक्तः स्यात्स्थापकस्य प्रसादतः ॥९१॥
इति श्रीगारुड़े महापुराणे प्रतिष्ठाप्रकरणं नामाष्टचत्वारिंशोऽध्यायः ॥४८॥

ऊनपञ्चाशदध्यायः

ब्रह्मोवाच

सर्गादिकृद्धरिश्चैव पूज्यः स्वायम्भुवादिभिः । विप्राद्यैः स्वेन धर्मेण तद्धर्मं व्यास वै शृणु ॥ १ ॥
यजनं याजनं दानं ब्राह्मणस्य प्रतिग्रहः । अध्यापनञ्चाध्ययनं षट्कर्माणि द्विजोत्तमे ॥ २ ॥
दानमध्ययनं यज्ञो धर्मः क्षत्रियवैश्ययोः । दण्डस्तथा क्षत्रियस्य कृषिर्वैश्यस्य शस्यते ॥ ३ ॥
शुश्रूषैव द्विजातीनां शूद्राणां धर्मसाधनम् । कारुकर्म तथा जीवोऽपाकयज्ञोऽपि धर्मतः ॥ ४ ॥
भिक्षाचर्य्याथ शुश्रूषा गुरोः स्वाध्याय एव च । संन्यासकर्माग्निकार्यञ्च धर्मोऽयं ब्रह्मचारिणः ॥
सर्वेषामाश्रमाणाञ्च द्वैविध्यन्तु चतुर्विधम् । ब्रह्मचार्य्युपकुर्वाणो नैष्ठिको ब्रह्मतत्परः ॥६॥
योऽधीत्य विधिवद्वेदान्गृहस्थाश्रममाव्रजेत् । उपकुर्वाणको ज्ञेयो नैष्ठिको मरणान्तिकः ॥ ७ ॥
अग्नयोऽतिथिशुश्रूषा यज्ञो दानं सुरार्चनम् । गृहस्थस्य समासेन धर्मोऽयं द्विजसत्तम ॥ ८ ॥
उदासीनः साधकश्च गृहस्थो द्विविधो भवेत् । कुटुम्बभरणे युक्तः साधकोऽसौ गृही भवेत् ॥ ९ ॥
ऋणानि त्रीण्यपाकृत्य त्यक्त्वा भार्य्याधनादिकम् । एकाकी यस्तु विचरेदुदासीनः स मौक्षिकः ॥
भूमौ मूलफलाशित्वं स्वाध्यायस्तप एव च । संविभागो यथान्यायं धर्मोऽयं वनवासिनः ॥११॥
तपस्तप्यति योऽरण्ये यजेद्देवान्जुहोति च । स्वाध्याये चैव निरतो वनस्थस्तापसोत्तमः ॥१२॥
तपसा कर्षितोऽत्यर्थं यस्तु ध्यानपरो भवेत् । संन्यासी स हि विज्ञेयो वानप्रस्थाश्रमे स्थितः ॥
योगाभ्यासरतो नित्यमारुरुक्षुर्जितेन्द्रियः । ज्ञानाय वर्त्तते भिक्षुः प्रोच्यते पारमेष्ठिकः ॥१४॥
यस्त्वात्मरतिरेव स्यान्नित्यतृप्तो महामुनिः । सम्यक् चन्दनसम्पन्नः स योगी भिक्षुरुच्यते ॥१५॥
भैक्ष्यं श्रुतञ्च मौनित्वं तपो ध्यानं विशेषतः । सम्यक्च ज्ञानवैराग्यं धर्मोऽयं भिक्षुके मतः ॥१६॥

ज्ञानसंन्यासिनः केचिद्वेदसंन्यासिनोऽपरे। कर्मसंन्यासिनः केचित्त्रिविधः पारमेष्ठिकः ॥१७॥
योगी च त्रिविधो ज्ञेयो भौतिकः क्षत्र एव च। तृतीयोऽन्त्याश्रमी प्रोक्तो योगमूर्त्तिसमाश्रितः ॥
प्रथमा भावना पूर्वे मोक्षे दुष्करभावना। तृतीये चान्तिमा प्रोक्ता भावना पारमेश्वरी ॥१९॥
धर्मात्संजायते मोक्षो ह्यर्थात् कामोऽभिजायते। प्रवृत्तिश्च निवृत्तिश्च द्विविधं कर्म वैदिकम् ॥
ज्ञानपूर्वं निवृत्तं स्यात्प्रवृत्तश्चाग्निदेवकृत् ॥२०॥
क्षमा दमो दया दानमलोभाभ्यास एव च। आर्जवञ्चानसूया च तीर्थानुसरणं तथा ॥२१॥
सत्यं सन्तोष आस्तिक्यं तथा चेन्द्रियनिग्रहः। देवताभ्यर्चनं पूजा ब्राह्मणानां विशेषतः ॥२२॥
अहिंसा प्रियवादित्वमपैशुन्यमरूक्षता। एते आश्रमिका धर्माश्चातुर्वर्ण्यं ब्रवीम्यतः ॥२३॥
प्राजापत्यं ब्राह्मणानां स्मृतं स्थानं क्रियावताम्। स्थानमैन्द्रं क्षत्रियाणां संग्रामेष्वपलायिनाम् ॥
वैश्यानां मारुतं स्थानं स्वधर्ममनुवर्त्तताम्। गन्धर्वं शूद्रजातीनां परिचारे च वर्त्तताम् ॥२५॥
अष्टाशीतिसहस्राणामृषीणामूर्ध्वरेतसाम्। स्मृतं तेषान्तु यत् स्थानं तदेव गुरुवासिनाम् ॥२६॥
सप्तर्षीणान्तु यत्स्थानं स्थानं तद्वै वनौकसाम्। यतीनां यतचित्तानां न्यासिनामूर्ध्वरेतसाम् ॥
आनन्दं ब्रह्म तत् स्थानं यस्मान्नावर्त्तते मुनिः ॥२७॥
योगिनाममृतस्थानं व्योमाख्यं परमाक्षरम्। आनन्दमैश्वरं यस्मान्मुक्तो नावर्त्तते नरः ॥२८॥
मुक्तिरष्टाङ्गविज्ञानात् संक्षेपात्तद्वदे शृणु। यमाः पञ्चत्वहिंसाद्या अहिंसा प्राण्यहिंसनम् ॥२९॥
सत्यं भूतहितं वाक्यमस्तेयं स्वग्रहं परम्। अमैथुनं ब्रह्मचर्यं सर्वत्यागोऽपरिग्रहः ॥३०॥
नियमाः पञ्च सत्याद्या बाह्यमाभ्यन्तरं द्विधा। शौचं सत्यञ्च सन्तोषस्तपश्चेन्द्रियनिग्रहः ॥३१॥
स्वाध्यायः स्यान्मन्त्रजपः प्रणिधानं हरेर्यजिः। आसनं पद्मकाद्युक्तं प्राणायामो मरुज्जयः ॥३२॥
मन्त्रध्यानयुतो गर्भो विपरीतो ह्यगर्भकः। एवं द्विधा त्रिधाप्युक्तं पूरणात् पूरकः स च ॥
कुम्भको निश्चलत्वाच्च रेचनाद्रेचकस्त्रिधा ॥३३॥
लघुर्द्वादशमात्रः स्याच्चतुर्विंशतिकः परः। षट्त्रिंशन्मात्रिकः श्रेष्ठः प्रत्याहारश्च रोधनम् ॥३४॥
ब्रह्मात्मचिन्ता ध्यानं स्याद्धारणा मनसो धृतिः। अहं ब्रह्मेत्यवस्थानं समाधिर्ब्रह्मणः स्थितिः ॥
अहमात्मा परं ब्रह्म सत्यं ज्ञानमनन्तकम्। ब्रह्मविज्ञानमानन्दः स तत्त्वमसि केवलम् ॥३६॥
अहं ब्रह्मास्म्यहं ब्रह्म अशरीरमनिन्द्रियम्। अहं मनोबुद्धिमहदहङ्कारादिवर्जितम् ॥३७॥
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादियुक्तज्योतिस्तदीयकम्। नित्यं शुद्धं बुद्धियुक्तं सत्यमानन्दमद्वयम् ॥३८॥
योऽसावादित्यपुरुषः सोऽसावहमखण्डितम्। इति ध्यायन् विमुच्येत ब्राह्मणो भवबन्धनात् ॥
इति श्रीगारुडे महापुराणे अष्टाङ्गयोगो नाम ऊनपञ्चाशदध्यायः ॥४९॥

पञ्चाशदध्यायः

ब्रह्मोवाच

अहन्यहनि यः कुर्यात् क्रियां स ज्ञानमाप्नुयात् । ब्राह्मे मुहूर्त्ते चोत्थाय धर्ममर्थञ्च चिन्तयेत् ॥१॥
चिन्तयेद्धृदि पद्मस्थमानन्दमजरं हरिम् । ऊषःकाले तु संप्राप्ते कृत्वा चावश्यकं बुधः ॥
स्नायान्नदीषु शुद्धासु शौचं कृत्वा यथाविधि ॥२॥
प्रातःस्नानेन पूयन्ते येऽपि पापकृतो जनाः । तस्मात् सर्वप्रयत्नेन प्रातःस्नानं समाचरेत् ॥३॥
प्रातःस्नानं प्रशंसन्ति दृष्टादृष्टकरं हि तत् । सुखात् सुप्तस्य सततं लालाद्याः संस्रवन्ति हि ॥
अतो नैवाचरेत् कर्माण्यकृत्वा स्नानमादितः ॥४॥
अलक्ष्मीः कालकर्णी च दुःस्वप्नं दुर्विचिन्तितम् । प्रातःस्नानेन पापानि धूयन्ते नात्र संशयः ॥५॥
न च स्नानं विना पुंसां प्राशस्त्यं कर्म संस्मृतम् । होमे जप्ये विशेषेण तस्मात् स्नानं समाचरेत् ॥६॥
अशक्तावशिरस्कं तु स्नानमस्य विधीयते । आर्द्रेण वाससा वापि मार्जनं कायिकं स्मृतम् ॥७॥
ब्राह्ममाग्नेयमुद्दिष्टं वायव्यं दिव्यमेव च । वारुणं यौगिकं तद्वत्षडङ्गं स्नानमाचरेत् ॥८॥
ब्राह्मन्तु मार्जनं मन्त्रैः कुशैः सोदकबिन्दुभिः । आग्नेयं भस्मना पादमस्तकाद् देहधूननम् ॥९॥
गवां हि रजसा प्रोक्तं वायव्यं स्नानमुत्तमम् । यत् तु सातपवर्षेण स्नानं तद्दिव्यमुच्यते ॥१०॥
वारुणञ्चावगाहश्च मानसं त्वात्मवेदनम् । यौगिकं स्नानमाख्यातं योगेन परिचिन्तनम् ॥
आत्मतीर्थमिति ख्यातं सेवितं ब्रह्मवादिभिः ॥११॥
क्षीरवृक्षसमुद्भूतं मालतीसम्भवं शुभम् । अपामार्गञ्च बिल्वञ्च करवीरञ्च धारणम् ॥१२॥
उदङ्मुखः प्राङ्मुखो वा कुर्य्यात्तु दन्तधावनम् । प्रक्षाल्य भुक्त्वा तज्जह्याच्छुचौ देशे समाहितः ॥
स्नात्वा सन्तर्पयेद्देवानृषीन्पितृगणांस्तथा । आचम्य विधिवन्नित्यं पुनराचम्य वाग्यतः ॥१४॥
संमार्ज्य मन्त्रैरात्मानं कुशैः सोदकबिन्दुभिः । आपोहिष्ठाव्याहृतिभिः सावित्र्या वारुणैः शुभैः ॥
ॐकारव्याहृतियुतां गायत्रीं वेदमातरम् । जप्त्वा जलाञ्जलिं दद्याद्भास्करं प्रति तन्मनाः ॥१६॥
प्रातःकाले ततः स्थित्वा दर्भेषु सुसमाहितः । प्राणायामं ततः कृत्वा ध्यायेत्सन्ध्यामिति श्रुतिः ॥
या सन्ध्या सा जगत्सूतिर्मायातीता हि निष्कला । ऐश्वरी केवला शक्तिस्तत्त्वत्रयसमुद्भवा ॥१८॥
ध्यात्वा रक्तां सितां कृष्णां गायत्रीं वै जपेद्बुधः । प्राङ्मुखः सततं विप्रः सन्ध्योपासनमाचरेत् ॥
सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु । यदन्यत्कुरुते किञ्चिन्न तस्य फलभाग्भवेत् ॥२०॥
अनन्यचेतसः सन्तो ब्राह्मणा वेदपारगाः । उपास्य विधिवत्सन्ध्यां प्राप्ताः पूर्वपरां गतिम् ॥
योऽन्यत्र कुरुते यत्नं धर्मकार्य्ये द्विजोत्तमः । विहाय सन्ध्याप्रणतिं स याति नरकायुतम् ॥२२॥

तस्मात्सर्वप्रयत्नेन सन्ध्योपासनमाचरेत् । उपासितो भवेत्तेन देवो योगतनुः परः ॥२३॥
सहस्रपरमां नित्यां शतमध्यां दशापराम् । गायत्रीं वै जपेद्विद्वान् प्राङ्मुखः प्रयतः शुचिः २४॥
अथोपतिष्ठेदादित्यमुदयस्थं समाहितः । मन्त्रैस्तु विविधैः सारैः ऋग्यजुःसामसंज्ञितैः ॥२५॥
उपस्थाय महायोगं देवदेवं दिवाकरम् । कुर्वीत प्रणतिं भूमौ मूर्द्धानमभिमन्त्रितः ॥२६॥
ॐ खखोल्काय शान्ताय कारणत्रयहेतवे । निवेदयामि चात्मानं नमस्ते ज्ञानरूपिणे ॥२७॥
त्वमेव ब्रह्म परममापोज्योतीरसोऽमृतम् । भूर्भुवःस्वस्त्वमोङ्कारः सर्वो रुद्रः सनातनः ॥२८॥
एतद्वै सूर्य्यं हृदये जप्त्वा स्तवनमुत्तमम् । प्रातःकाले च मध्याह्ने नमस्कुर्य्याद्दिवाकरम् ॥२९॥
अथागम्य गृहं विप्रः समाचम्य यथाविधि । प्रज्वाल्य वह्निं विधिवज्जुहुयाज्जातवेदसम् ॥३०॥
ऋत्विक्पुत्रोऽथ पत्नी वा शिष्यो वापि सहोदरः। प्राप्यानुज्ञां विशेषेण जुहुयाद्वा यथाविधि ॥
विना मन्त्रेण यत्कर्म नामुत्रेह फलप्रदम् ॥ ३१ ॥

दैवतानि नमस्कुर्य्यादुपहारान्निवेदयेत् । गुरुञ्चैवाप्युपासीत हितञ्चास्य समाचरेत् ॥३२॥
वेदाभ्यासं ततः कुर्य्यात् प्रयत्नाच्छक्तितो द्विजः । जपेदध्यापयेच्छिष्यान्धारयेद्वै विचारयेत् ॥३३॥
अवेक्षेत च शास्त्राणि धर्मादीनि द्विजोत्तम । वैदिकांश्चैव निगमान्वेदाङ्गानि च सर्वशः ॥३४॥
उपेयादीश्वरञ्चैव योगक्षेमप्रसिद्धये । साधयेद्विविधानर्थान्कुटुम्बार्थं ततो द्विजः ॥३५॥
ततो मध्याह्नसमये स्नानार्थं मृदमाहरेत् । पुष्पाक्षतान्तिलकुशान् गोमयं शुद्धमेव च ॥३६॥
नदीषु देवखातेषु तडागेषु सरःसु च । स्नानं समाचरेन्नैव परकीये कदाचन ॥
पञ्च पिण्डाननुद्धृत्य स्नानं दुष्यन्ति नित्यशः ॥ ३७ ॥

मृदैकया शिरः क्षाल्यं द्वाभ्यां नाभेस्तथोपरि । अधश्च तिसृभिः क्षाल्यं पादौ षड्भिस्तथैव च ॥३८॥
मृत्तिका च समुद्दिष्टा वृद्धामलकमात्रिका । गोमयस्य प्रमाणन्तु तेनाङ्गं लेपयेत्ततः ॥
प्रक्षाल्याचम्य विधिवत्ततः स्नायात्समाहितः ॥ ३९ ॥

लेपयित्वा तु तीरस्थस्तल्लिङ्गैरेव मन्त्रतः । अभिमन्त्र्य जलं मन्त्रैरालिङ्गैर्वारुणैः शुभैः ॥
स्नानकाले स्मरेद्विष्णुमापो नारायणो यतः ॥ ४० ॥

प्रेक्ष्य ओंकारमादित्यं त्रिर्निमज्जेज्जलाशये । आचान्तः पुनराचामेन्मन्त्रेणानेन मन्त्रवित् ॥४१॥
अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखम् । त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार आपो ज्योतीरसोऽमृतम्॥४२॥
द्रुपदां वा त्रिरभ्यस्येद्व्याहृतिप्रणवान्विताम् । सावित्रीं वा जपेद्विद्वांस्तथा चैवाघमर्षणम् ॥४३॥
ततः संमार्जनं कुर्य्यादापोहिष्ठामयो भुवः । इदमापः प्रवहत व्याहृतिभिस्तथैव च ॥
ततोऽभिमन्त्रितं तोयमापोहिष्ठादिमन्त्रकैः ॥ ४४ ॥

अन्तर्जलमवागग्नौ जपेत्त्रिरघमर्षणम् । द्रुपदां वाथ सावित्रीं तद्विष्णोः परमं पदम् ॥
आवर्त्तयेद्वा प्रणवं देवदेवं स्मरेद्धरिम् ॥ ४५ ॥
आपः पाणौ समादाय जप्त्वा वै मार्जने कृते । विन्यस्य मूर्ध्नि तत्तोयं मुच्यते सर्वपातकैः ॥४६॥
सन्ध्यामुपास्य चाचम्य संस्मरेन्नित्यमीश्वरीम् । अथोपतिष्ठेदादित्यमूर्ध्वंपुष्पान्विताञ्जलिः ॥४७॥
प्रक्षिप्यालोकयेद्देवमुदयस्थं न शक्यते । उदुत्यं चित्रमित्येव तच्चक्षुरिति मन्त्रतः ॥४८॥
हंसः शुचिः सदेतेन सावित्र्या च विशेषतः । अन्यैः सौरैर्वैदिकैश्च गायत्रीञ्च ततो जपेत् ॥४९॥
मन्त्रांश्च विविधान् पश्चात् प्राक्कूले च कुशासने । तिष्ठंश्च वीक्ष्यमाणोऽर्कं जपं कुर्यात्समाहितः ५०॥
स्फटिकाब्जाक्षरुद्राक्षैः पुत्रञ्जीवसमुद्भवैः । कर्त्तव्या त्वक्षमाला स्यादन्तरा तत्र सा स्मृता ५१॥
यदि स्याक्लिन्नवासा वै वारिमध्यगतश्चरेत् । अन्यथा च शुचौ भूम्यां दर्भेषु च समाहितः ॥५२॥
प्रदक्षिणं समावृत्य नमस्कुर्य्यात्ततः क्षितौ । आचम्य च यथाशास्त्रं शक्त्या स्वाध्यायमाचरेत् ॥
ततः सन्तर्पयेद् देवानृषीन् पितृगणांस्तथा । आदावोङ्कारमुच्चार्य नमोऽन्ते तर्पयामि च ॥५४॥
देवान् ब्रह्मऋषींश्चैव तर्पयेदक्षतोदकैः । पितॄन् देवान् मुनीन् भक्त्या स्वसूत्रोक्तविधानतः ॥
देवर्षींस्तर्पयेद्धीमानुदकाञ्जलिभिः पितॄन् ॥५५॥
यज्ञोपवीती देवानां निवीती ऋषितर्पणे । प्राचीनावीती पित्र्ये तु तेन तीर्थेन भारत ॥५६॥
निष्पीड्य स्नानवस्त्रं वै समाचम्य च वाग्यतः । स्वैर्मन्त्रैरर्चयेद् देवान् पुष्पैः पत्रैस्तथाम्बुभिः ॥
ब्रह्माणं शङ्करं सूर्यं तथैव मधुसूदनम् । अन्यांश्चाभिमतान् देवान् भक्त्या चाक्रोधनो हरः ॥५८॥
प्रदद्याद्वाथ पुष्पादि सूक्तेन पुरुषेण तु । आपो वा देवताः सर्वास्तेन सम्यक् समर्चिताः ॥५९॥
ध्यात्वा प्रणवपूर्वं वै देवं परिसमाहितः । नमस्कारेण पुष्पाणि विन्यसेद्वै पृथक् पृथक् ॥६०॥
नर्ते ह्याराधनां पुण्यं विद्यते कर्म वैदिकम् । तस्मात्तादिमध्यान्ते चेतसा धारयेद्धरिम् ॥६१॥
तद्विष्णोरिति मन्त्रेण सूक्तेन पुरुषेण तु । निवेदयेच्च आत्मानं विष्णवेऽमलतेजसे ॥६२॥
तदध्यात्ममनाः शान्तस्तद्विष्णोरिति मन्त्रितः । देवयज्ञं भूतयज्ञं पितृयज्ञं तथैव च ॥
मानुषं ब्रह्मयज्ञञ्च पञ्च यज्ञान् समाचरेत् ॥६३॥
यदि स्यात्तर्पणादर्वाग् ब्रह्मयज्ञं कृतो भवेत् । कृत्वा मनुष्ययज्ञं वै ततः स्वाध्यायमाचरेत् ॥
वैश्वदेवस्तु कर्त्तव्यो देवयज्ञः स तु स्मृतः । भूतयज्ञः स वै ज्ञेयो भूतेभ्यो यस्त्वयं बलिः ॥६५॥
श्वभ्यश्च श्वपचेभ्यश्च पतितादिभ्य एव च । दद्याद् भूमौ बहिस्त्वन्नं पक्षिभ्यश्च द्विजोत्तमः ॥
एकं तु भोजयेद्विप्रं पितॄनुद्दिश्य सत्तमः । नित्यश्राद्धं तदुद्दिश्य पितृयज्ञो गतिप्रदः ॥६७॥
उद्धृत्य वा यथाशक्ति किञ्चिदन्नं समाहितः । वेदतत्त्वार्थविदुषे द्विजायैवोपपादयेत् ॥६८॥

पूजयदातय [illegible] स्वगृहं ततः ॥६९॥
भिक्षामाहुर्ग्रासमात्रमन्नं तस्य चतुर्गुणम् । पुष्कलं हस्तमात्रन्तु तच्चतुगुणमुच्यते ॥७०॥
गोदोहमात्रकालो वै प्रतीक्षेदतिथिः स्वयम् । अभ्यागतान् यथाशक्ति पूजयेदतिथिं तथा ॥७१॥
भिक्षां वै भिक्षवे दद्याद्विधिवद् ब्रह्मचारिणे । दद्यादन्नं यथाशक्ति अर्थिभ्यो लोभवर्जितः ॥
भुञ्जीत बन्धुभिः सार्द्धं वाग्यतोऽन्नमकुत्सयन् ॥७२॥
अकृत्वा तु द्विजः पञ्च महायज्ञान् द्विजोत्तमः । भुञ्जते चेत् स मूढ़ात्मा तिर्यग्योनिञ्च गच्छति ॥
वेदाभ्यासोऽन्वहं शक्त्या महायज्ञक्रियाक्षमाः । नाशयन्त्याशु पापानि देवानामर्च्चनं तथा॥७४॥
यो मोहादथवाऽऽलस्यादकृत्वा देवतार्चनम् । भुङ्क्ते स याति नरकान् शूकरादेव जायते ॥७५॥
अशौचं संप्रवक्ष्यामि अशुचिः पातकी सदा । अशौचं चैव संसर्गाच्छुचिः संसर्गवर्जनात् ॥७६॥
दशाहं प्राहुराशौचं सर्वे विप्रा विपश्चितः । मृतेषु वाथ जातेषु ब्राह्मणानां द्विजोत्तम ॥७७॥
आदन्तजननात्सद्य आचूड़ादेकरात्रकम् । त्रिरात्रमौपनयनाद्दशरात्रमतः परम् ॥७८॥
क्षत्रियो द्वादशाहेन दशभिः पञ्चभिर्विशः । शुद्ध्येन्मासेन वै शूद्रो यतीनां नास्ति पातकम् ।
रात्रिभिर्मासतुल्याभिर्गर्भस्रावेषु शौचकम् ॥७९॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे आचारखण्डे पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५०॥

एकपञ्चाशदध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथातः संप्रवक्ष्यामि दानधर्ममनुत्तमम् । अर्थानामुचिते पात्रे श्रद्धया प्रतिपादनम् ॥ १ ॥
दानन्तु कथितं तज्ज्ञैर्भुक्तिमुक्तिफलप्रदम् । न्यायेनोपार्जयेद्वित्तं दानभोगफलञ्च तत् ॥ २ ॥
अध्यापनं याजनञ्च वृत्तमाहुः प्रतिग्रहम् । कुषीदं कृषिवाणिज्यं क्षत्रवृत्तोऽथवार्जयेत् ॥ ३ ॥
यद्दीयते तु पात्रेभ्यस्तद्दानं सात्त्विकं विदुः । नित्यं नैमित्तिकं काम्यं विमलं दानमीरितम् ॥ ४ ॥
अहन्यहनि यत्किञ्चिद्दीयतेऽनुपकारिणे । अनुद्दिश्य फलं तस्माद् ब्राह्मणाय तु नित्यशः ॥५॥
यत्तु पापोपशान्त्यै च दीयते विदुषां करे । नैमित्तिकं तदुद्दिष्टं दानं सद्भिरनुष्ठितम् ॥६॥
अपत्यविजयैश्वर्य्यस्वर्गार्थं यत्प्रदीयते । दानं तत्काम्यमाख्यातमृषिभिर्धर्मचिन्तकैः ॥७॥
ईश्वरप्रीणनार्थाय ब्रह्मवित्सु प्रदीयते । चेतसा सत्त्वयुक्तेन दानं तद्विमलं शिवम् ॥८॥
इक्षुभिः सन्ततां भूमिं यवगोधूमशालिनीम् । ददाति वेदविदुषे स न भूयोऽभिजायते ॥

भूमिदानात्परं दानं न भूतं न भविष्यति ॥९॥
।वध। दत्त्वा ब्राह्मणाय ब्रह्मलोके महीयते । दद्यादहरहस्तास्तु श्रद्धया ब्रह्मचारिणे ॥
सर्वपापविनिर्मुक्तो ब्रह्मस्थानमवाप्नुयात् ॥१०॥
वैशाख्यां पौर्णमास्यान्तु ब्राह्मणान्सप्त पञ्च च । उपोष्याभ्यर्च्चयेद्विद्वान्मधुना तिलपिष्टकैः ॥
गन्धादिभिः समभ्यर्च्य वाचयेद्वा स्वयं वदेत् ॥११॥
प्रीयतां धर्मवाचाभिस्तथा मनसि वर्त्तते । यावज्जीवं कृतं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥१२॥
कृष्णाजिने तिलान्कृत्वा हिरण्यमधुसर्पिषा । ददाति यस्तु विप्राय सर्वं तरति दुष्कृतम् ॥१३॥
घृतान्नमुदकञ्चैव वैशाख्याञ्च विशेषतः । निर्दिश्य धर्मराजाय विप्रेभ्यो मुच्यते भयात् ॥१४॥
द्वादश्यामर्च्चयेद्विष्णुमुपोष्याघप्रणाशनम् । सर्वपापविनिर्मुक्तो नरो भवति निश्चितम् ॥१५॥
यो हि यां देवतामिच्छेत्समाराधयितुं नरः । ब्राह्मणान्पूजयेद्यत्नाद्भोजयेद्योषितः सुरान् ॥१६॥
सन्तानकामः सततं पूजयेद् वै पुरन्दरम् । ब्रह्मवर्चसकामस्तु ब्राह्मणान् ब्रह्मनिश्चयात् ॥१७॥
आरोग्यकामोऽथ रविं धनकामो हुताशनम् । कर्मणां सिद्धिकामस्तु पूजयेद् वै विनायकम् ॥१८॥
भोगकामो हि शशिनं बलकामः समीरणम् । मुमुक्षुः सर्वसंसारात् प्रयत्नेनार्च्चयेद्धरिम् ॥
अकामः सर्वकामो वा पूजयेत्तु गदाधरम् ॥१९॥
वारिदस्तृप्तिमाप्नोति सुखमक्षय्यमन्नदः । तिलप्रदः प्रजामिष्टां दीपदश्चक्षुरुत्तमम् ॥२०॥
भूमिदः सर्वमाप्नोति दीर्घमायुर्हिरण्यदः । गृहदोऽग्र्याणि विश्वानि रूप्यदो रूपमुत्तमम् ॥२१॥
वासोदश्चन्द्रसालोक्यमश्विसालोक्यमश्वदः । अनडुहः श्रियं पुष्टां गोदो ब्रध्नस्य पिष्टपम् ॥२२॥
यानशय्याप्रदो भार्य्यामैश्वर्य्यमभयप्रदः । धान्यदः शाश्वतं सौख्यं ब्रह्मदो ब्रह्म शाश्वतम् ॥२३॥
वेदवित्सु ददज्ज्ञानं स्वर्गलोके महीयते । गवां घासप्रदानेन सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
इन्धनानां प्रदानेन दीप्ताग्निर्जायते नरः ॥ २४ ॥
औषधं स्नेहमाहारं रोगिरोगप्रशान्तये । ददानो रोगरहितः सुखी दीर्घायुरेव च ॥२५॥
असिपत्रवनं मार्गं क्षुरधारसमन्वितम् । तीक्ष्णातपञ्च तरति छत्रोपानत्प्रदानतः ॥२६॥
यद्यदिष्टतमं लोके यच्चास्य दयितं गृहे । तत्तद् गुणवते देयं तदेवाक्षयमिच्छता ॥२७॥
अयने विषुवे चैव ग्रहणे चन्द्रसूर्य्ययोः । संक्रान्त्यादिषु कालेषु दत्तं भवति चाक्षयम् ॥२८॥
प्रयागादिषु तीर्थेषु गयायाञ्च विशेषतः । दानधर्मात्परो धर्मो भूतानां नेह विद्यते ॥२९॥
स्वर्गादच्युतिकामेन दानं पापोपशान्तये । दीयमानन्तु यो मोहाद्विप्राग्निष्वध्वरेषु च ॥
निवारयति पापात्मा तिर्य्यग्योनिं व्रजेन्नरः ॥ ३० ॥

यस्तु दुर्भिक्षवेलायामन्नाद्यं न प्रयच्छति। म्रियमाणेषु विप्रेषु ब्रह्महा स तु गर्हितः ॥३१॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे दानधर्मो नाम एकपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५१॥

द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अतः परं प्रवक्ष्यामि प्रायश्चित्तविधिं द्विजाः। ब्रह्महा च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः ॥ १ ॥
पञ्च पातकिनस्त्वेते तत्संयोगी च पञ्चमः। उपपापानि गोहत्याप्रभृतीनि सुरा जगुः ॥ २ ॥
ब्रह्महा द्वादशाब्दानि कुटीं कृत्वा वने वसेत्। कुर्य्यादनशनं वाथ भृगोः पत्तनमेव च ॥
ज्वलन्तं वा विशेदग्निं जलं वा प्रविशेत्स्वयम् ॥ ३ ॥
ब्राह्मणार्थे गवार्थे वा सम्यक् प्राणान्परित्यजेत्। दत्त्वा चान्नञ्च विदुषे ब्रह्महत्यां व्यपोहति ॥ ४ ॥
अश्वमेधावभृथके स्नात्वा वा मुच्यते द्विजः। सर्वस्वं वा वेदविदे ब्राह्मणाय प्रदापयेत् ॥ ५ ॥
सरस्वत्यास्तरङ्गिण्याः सङ्गमे लोकविश्रुते। शुद्ध्येत्त्रिसवनस्नातस्त्रिरात्रोपोषितो द्विजः ॥ ६ ॥
सेतुबन्धे नरः स्नात्वा मुच्यते ब्रह्महत्यया। कपालमोचने स्नात्वा वाराणस्यां तथैव च ॥ ७ ॥
सुरापस्तु सुरां पीत्वा अग्निवर्णो द्विजोत्तमः। पयो घृतं वा गोमूत्रं तस्मात्पापात्प्रमुच्यते ॥ ८ ॥
सुवर्णस्तेयी मुक्तः स्यान्मुषलेन हतो नृपैः। चीरवासा द्विजोऽरण्ये चरेद्ब्रह्महनव्रतम् ॥ ९ ॥
गुरुभार्य्यां समारुह्य ब्राह्मणः काममोहितः। अवग्रहेत्स्त्रियं तप्तां दीप्तां कार्ष्णायसीं कृताम् ॥१०॥
गुर्वङ्गनागामिनश्च चरेयुर्ब्रह्महा व्रतम्। चान्द्रायणानि वा कुर्य्यात्पञ्च चत्वारि वा पुनः ॥
पतितेन च संसर्गं कुरुते यस्तु वै द्विजः। स तत्पापापनोदार्थं तस्यैव व्रतमाचरेत् ॥ १२ ॥
तप्तकृच्छ्रं चरेद्वाथ संवत्सरमतन्द्रितः। सर्वस्वदानं विधिवत्सर्वपापविशोधनम् ॥१३॥
चान्द्रायणञ्च विधिना कृतं चैवातिकृच्छ्रकम्। पुण्यक्षेत्रे गयादौ च गमनं पापनाशनम् ॥१४॥
अमावस्यां तिथिं प्राप्य यः समाराधयेद्भवम्। ब्राह्मणान् भोजयित्वा तु सर्वपापैः प्रमुच्यते ॥
उपोषितश्चतुर्दश्यां कृष्णपक्षे समाहितः। यमाय धर्मराजाय मृत्यवे चान्तकाय च।
वैवस्वताय कालाय सर्वभूतक्षयाय च ॥१६॥
प्रत्येकं तिलसंयुक्तान्दद्यात्सप्त जलाञ्जलीन्। स्नात्वा नद्यां तु पूर्वाह्णे मुच्यते सर्वपातकैः ॥१७॥
ब्रह्मचर्य्यमधः शय्यामुपवासद्विजार्चनम्। व्रतेष्वेतेषु कुर्वीत शान्तः संयतमानसः ॥१८॥
षष्ठ्यामुपोषितो देवं शुक्लपक्षे समाहितः। सप्तम्यामर्चयेद्भानुं मुच्यते सर्वपातकैः ॥१९॥

एकादश्यां निराहारः समभ्यर्च्य जनार्दनम् । द्वादश्यां शुक्लपक्षस्य महापापैः प्रमुच्यते ॥२०॥
ततो जपस्तीर्थसेवा देवब्राह्मणपूजनम् । ग्रहणादिषु कालेषु महापातकनाशनम् ॥२१॥
यः सर्वपापयुक्तोऽपि पुण्यतीर्थेषु मानवः । नियमेन त्यजेत्प्राणान्मुच्यते सर्वपातकैः ॥२२॥
ब्रह्मघ्नं वा कृतघ्नं वा महापातकदूषितम् । भर्त्तारमुद्धरेन्नारी प्रविष्टा सह पावकम् ॥२३॥
पतिव्रता तु या नारी भर्तुः शुश्रूषणोत्सुका । न तस्या विद्यते पापमिह लोके परत्र च ॥२४॥
यथा रामस्य सुभगा सीता त्रैलोक्यविश्रुता । पत्नी दाशरथेर्देवी विजिग्ये राक्षसेश्वरम् ॥२५॥
फल्गुतीर्थादिषु स्नातः सर्वाचारफलं लभेत् । इत्याह भगवान्विष्णुः पुरा मम यतव्रता ॥२६॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे प्रायश्चित्तं नाम द्विपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५२॥

त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

सूत उवाच

एवं ब्रह्माऽब्रवीच्छ्रुत्वा हरेरष्टनिधींस्तथा ॥ १ ॥
तत्र पद्ममहापद्मौ तथा मकरकच्छपौ । मुकुन्दनन्दौ नीलश्च शङ्खश्चैवापरो निधिः ॥
सत्याद्वृद्धौ भवन्त्येते स्वरूपं कथयाम्यहम् ॥ २ ॥
पद्मेन लक्षितश्चैव सात्त्विको जायते नरः । दाक्षिण्यसारः पुरुषः सुवर्णादिकसंग्रहम् ।
रूप्यादि कुर्य्याद्दद्यात्तु यतिदेवादियज्वनाम् ॥ ३ ॥
महापद्माङ्कितो दद्याद्धनाद्यं धार्मिकाय च । निधी पद्ममहापद्मौ सात्त्विकौ पुरुषौ स्मृतौ ॥ ४ ॥
मकरेणाङ्कितः खड्गबाणकुन्तादिसंग्रही । दद्याच्छ्रुताय मैत्रीञ्च याति नित्यञ्च राजभिः ॥ ५ ॥
द्रव्याणां शत्रूणां च नाशं संग्रामे चापि संव्रजेत् । मकरः कच्छपश्चैव तामसौ तु निधी स्मृतौ ॥६॥
कच्छपी विश्वसेन्नैव न भुङ्क्ते न ददाति च । निधानमूर्व्यां कुरुते निधिः सोऽप्येकपूरुषः ॥७॥
राजसेन मुकुन्देन लक्षितो राज्यसंग्रही । मुक्तभोगो गायनेभ्यो दद्याद्वेश्यादिकासु च ॥ ८ ॥
रजस्तमो महानन्दी आधारः स्यात्कुलस्य च ।
स्तुतः प्रीतो भवति वै बहुभार्य्या भवन्ति च । पूर्वमित्रेषु शैथिल्यं प्रीतिमन्यैः करोति च ॥ ९ ॥
नीलेन चाङ्कितः सत्त्वतेजसा संयुतो भवेत् । वस्त्रधान्यादिसंग्राही तडागादि करोति च ॥
त्रिपौरुषो निधिश्चैव आम्रारामादि कारयेत् ॥१०॥
एकस्य स्यान्निधिः शङ्खः स्वयं भुङ्क्ते धनान्तकम् । कदन्नभुक्परिजनो न च शोभनवस्त्रधृक् ॥

स्वपोषणपरः शङ्खी दद्यात्परनरे वृथा । मिश्रावलोकनान्मिश्रे स्वभावफलदायिनः ॥१२॥
निधीनां रूपमुक्तं तु हरिणापि हरादिके । हरिर्भुवनकोषादि यथोवाच तथा वदे ॥१३॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे त्रिपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५३॥

चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

हरिरुवाच

अग्निध्रश्चाग्निबाहुश्च वपुष्मान्द्युतिमांस्तथा । मेधा मेधातिथिर्भव्यः शबलः पुत्र एव च ॥
ज्योतिष्मान्दशमो जातः पुत्रा ह्येते प्रियव्रतात् ॥ १ ॥
मेधाग्निबाहुपुत्रास्तु त्रयो योगपरायणाः । जातिस्मरा महाभागा न राज्याय मनो दधुः ॥
विभज्य सप्त द्वीपानि सप्तानां प्रददौ नृपः ॥ २ ॥
योजनानां प्रमाणेन पञ्चाशत्कोटिराप्लुता । जलोपरि मही याता नौरिवास्ते सरिज्जले ॥ ३ ॥
जम्बुप्लक्षाह्वयौ द्वीपौ शाल्मलश्चापरो हर । कुशः क्रौञ्चस्तथा शाकः पुष्करश्चैव सप्तमः ॥४॥
एते द्वीपाः समुद्रैस्तु सप्त सप्तभिरावृताः । लवणेक्षुसुरासर्पिर्दधिदुग्धजलान्तकाः ॥ ५ ॥
द्वीपात्तु द्विगुणो द्वीपः समुद्रश्च वृषध्वज । जम्बुद्वीपे स्थितो मेरुर्लक्षयोजनविस्तृतः ॥ ६ ॥
चतुरशीतिसाहस्रैर्योजनैरस्य चोच्छ्रयः । प्रविष्टः षोडशाधस्ताद्द्वात्रिंशन्मूर्ध्नि विस्तृतः ॥ ७ ॥
अधः षोडशसाहस्रः कर्णिकाकारसंस्थितः । हिमवान्हेमकूटश्च निषधश्चास्य दक्षिणे ॥
नीलः श्वेतश्च शृङ्गी च उत्तरे वर्षपर्वताः ॥ ८ ॥
प्लक्षादिषु नरा रुद्र ये वसन्ति सनातनाः । शङ्कर हि न तेष्वस्ति युगावस्था कथञ्चन ॥ ९ ॥
जम्बुद्वीपेश्वरात्पुत्रा ह्यग्निध्रादभवन्नव । नाभिः किंपुरुषश्चैव हरिवर्ष इलावृतः ॥१०॥
रम्यो हिरण्वान्षष्ठश्च कुरुर्भद्राश्व एव च । केतुमालो नृपस्तेभ्यस्तत्संज्ञान्खण्डकान्ददौ ॥११॥
नाभेस्तु मेरुदेव्यान्तु पुत्रोऽभूदृषभो हर । तत्पुत्रो भरतो नाम शालग्रामे स्थितो व्रती ॥१२॥
सुमतिर्भरतस्याभूत्तत्पुत्रस्तेजसोऽभवत् । इन्द्रद्युम्नश्च तत्पुत्रः परमेष्ठी ततः स्मृतः ॥१३॥
प्रतीहारश्च तत्पुत्रः प्रतिहर्त्ता तदात्मजः । सुतस्तस्मादथो जातः प्रस्तारस्तत्सुतो विभुः ॥१४॥
पृथुश्च तत्सुतो नक्तो नक्तस्यापि गयः स्मृतः । नरो गयस्य तनयस्तत्पुत्रो बुद्धिराट् ततः ॥१५॥
ततो धीमान्महातेजा भौवनस्तस्य चात्मजः । त्वष्टा त्वष्टुश्च विरजा रजस्तस्याप्यभूत्सुतः ॥
शतजिद्रजसस्तस्य विष्वग्ज्योतिः सुतः स्मृतः ॥१६॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे चतुःपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५४॥

पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

हरिरुवाच

मध्ये त्विलावृतो वर्षो भद्राश्वः पूर्वतो भवेत् । पूर्वदक्षिणतो वर्षो हिरण्वान्वृषभध्वज ॥ १ ॥
ततः किम्पुरुषो वर्षो मेरोर्दक्षिणतः स्मृतः । भारतो दक्षिणे प्रोक्तो हरिर्दक्षिणपश्चिमे ॥
पश्चिमे केतुमालश्च रम्यकः पश्चिमोत्तरे ॥ २ ॥
उत्तरे च कुरोर्वर्षः कल्पवृक्षसमावृतः । सिद्धिः स्वाभाविकी रुद्र वर्जयित्वा तु भारतम् ॥३॥
इन्द्रद्वीपः कशेरुमांस्ताम्रवर्णो गभस्तिमान् । नागद्वीपः कटाहश्च सिंहलो वारुणस्तथा ॥
अयन्तु नवमस्तेषां द्वीपः सागरसंवृतः ॥ ४ ॥
पूर्वे किरातास्तस्यास्ते पश्चिमे यवनाः स्थिताः । आन्ध्रा दक्षिणतो रुद्र तुरुष्कास्त्वपि चोत्तरे ॥
ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्राश्चान्तरवासिनः ॥ ५ ॥
महेन्द्रो मलयः सह्यः शुक्तिमानृक्षपर्वतः । विन्ध्यश्च पारिभद्रश्च सप्तात्र कुलपर्वताः ॥ ६ ॥
वेदस्मृतिर्नर्मदा च वरदा सुरसा शिवा । तापी पयोष्णी सरयू कावेरी गोमती तथा ॥ ७ ॥
गोदावरी भीमरथी कृष्णवर्णा महानदी । केतुमाला ताम्रपर्णी चन्द्रभागा सरस्वती ॥ ८ ॥
ऋषिकुल्या च कावेरी मृतगङ्गा पयस्विनी । विदर्भा च शतद्रुश्च नद्यः पापहराः शुभाः ॥
आसां पिबन्ति सलिलं मध्यदेशादयो जनाः ॥ ९ ॥
पाञ्चालाः कुरवो मत्स्या यौधेयाः सपटच्चराः । कुन्तयः शूरसेनाश्च मध्यदेशजनाः स्मृताः ॥१०॥
वृषध्वज जनाः पाद्माः सूतमागधचेदयः । काषायाश्च विदेहाश्च पूर्वस्यां कोशलास्तथा ॥११॥
कलिङ्गवङ्गपुण्ड्राङ्गा वैदर्भा मूलकास्तथा । विन्ध्यान्तर्निलया देशाः पूर्वदक्षिणतः स्मृताः ॥१२॥
पुलिन्दाश्मकजीमूतनयराष्ट्रनिवासिनः । कार्णाटाः काम्बोजा घाटा दक्षिणापथवासिनः ॥१३॥
अम्बष्ठद्रविड़ा लाटाः कम्बोजा स्त्रीमुखाः शकाः । आनर्त्तवासिनश्चैव ज्ञेया दक्षिणपश्चिमे ॥१४॥
स्त्रीराज्याः सैन्धवा म्लेच्छा नास्तिका यवनास्तथा । पश्चिमेन च विज्ञेया माथुरा नैषधैः सह ॥१५॥
माण्डव्याश्च तुषाराश्च मूलिकाश्च मसाः खशाः । महाकेशा महानादा देशास्तूत्तरपश्चिमे ॥१६॥
लम्बकास्तननागाश्च माद्रगान्धारवाह्लिकाः । हिमाचलालया म्लेच्छा उदीचीं दिशमाश्रिताः ॥
त्रिगर्त्तनीलकोलाभब्रह्मपुत्राः सटङ्कणाः । अभीषाहाः सकाश्मीरा उदक्पूर्वेण कीर्त्तिताः ॥१८॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे पञ्चपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥ ५५ ॥

षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः

हरिरुवाच

सप्त मेधातिथेः पुत्राः प्लक्षद्वीपेश्वरस्य च । ज्येष्ठः शान्तभवो नाम शिशिरस्तदनन्तरः ॥ १ ॥
सुखोदयस्तथा नन्दः शिवः क्षेमक एव च । ध्रुवश्च सप्तमस्तेषां प्लक्षद्वीपेश्वरा हि ते ॥ २ ॥
गोमेदश्चैव चन्द्रश्च नारदो दुन्दुभिस्तथा । सोमकः सुमनाः शैलो वैभ्राजश्चात्र सप्तमः ॥ ३ ॥
अनुतप्ता शिखी चैव विपाशा त्रिदिवा क्रमुः । अमृता सुकृता चैव सप्तैतास्तत्र निम्नगाः ॥ ४ ॥
वपुष्मान्शाल्मलस्येशस्तत्सुता वर्षनामकाः । श्वेतोऽथ हरितश्चैव जीमूतो रोहितस्तथा ॥
वैद्युतो मानसश्चैव सप्रभश्चापि सप्तमः ॥ ५ ॥
कुमुदश्चोन्नतो द्रोणो महिषोऽथ बलाहकः । क्रौञ्चः ककुद्मान्ह्येते वै गिरयः सरितस्त्विमाः ॥ ६ ॥
योनिस्तोया वितृष्णा च चन्द्रा शुक्ला विमोचनी । विधृतिः सप्तमी तासां स्मृताःपापप्रशान्तिदाः ॥
ज्योतिष्मतः कुशद्वीपे सप्त पुत्राः शृणुष्व तान् । उद्भिदो वेणुमांश्चैव द्वैरथो लम्बनो धृतिः ॥
प्रभाकरोऽथ कपिलस्तन्नामा वर्षपद्धतिः ॥ ८ ॥
विद्रुमो हेमशैलश्च द्युतिमान्पुष्पवांस्तथा । कुशेशयो हरिश्चैव सप्तमो मन्दराचलः ॥ ९ ॥
धूतपापा शिवा चैव पवित्रा सम्मतिस्तथा । विद्युदम्भा मही काशा सर्वपापहरास्त्विमाः ॥१०॥
क्रौञ्चद्वीपे द्युतिमतः पुत्राः सप्त महात्मनः । कुशलो मन्दगश्चोष्णः पीवरोऽथान्धकारकः ॥
मुनिश्च दुन्दुभिश्चैव सप्तैते तत्सुतां हर ॥११॥
क्रौञ्चश्च वामनश्चैव तृतीयश्चान्धकारकः । देवावृच्च महाशैलो दुन्दुभिः पुण्डरीकवान् ॥१२॥
गौरी कुमुद्वती चैव सन्ध्या रात्रिर्मनोजवा । ख्यातिश्च पुण्डरीका च सप्तैता वर्षनिम्नगाः ॥१३॥
शाकद्वीपेश्वराद्भव्यात्सप्त पुत्राः प्रजज्ञिरे । जलदश्च कुमारश्च सुकुमारो मणीवकः ॥
कुसुमोदः समोदार्किः सप्तमश्च महाद्रुमः ॥१४॥
सुकुमारी कुमारी च नलिनी धेनुका च या । इक्षुश्च वेणुका चैव गभस्ती सप्तमी तथा ॥१५॥
शबलात्पुष्करेशाच्च महावीरश्च धातकिः । अभूद्वर्षद्वयञ्चैव मानसोत्तरपूर्वतः ॥१६॥
योजनानां सहस्राणि ऊर्ध्वं पञ्चाशदुच्छ्रितः । तावच्चैव च विस्तीर्णः सर्वतः परिमण्डलः ॥१७॥
स्यादूदकेनोदधिना पुष्करः परिवेष्टितः । स्वादूदकस्य पुरतो दृश्यते लोकसंस्थितिः ॥१८॥
द्विगुणा काञ्चनी भूमिः सर्वजन्तुविवर्जिता ॥१९॥
लोकालोकस्ततः शैलो योजनायुतविस्तृतः । तमसा पर्वतो व्याप्तस्तमोऽप्यण्डकटाहतः ॥२०॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे षट्पञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५६॥

सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

हरिरुवाच

सप्ततिस्तु सहस्राणि भूम्युच्छ्रायोऽपि कथ्यते । दशसाहस्रमेकैकं पातालं वृषभध्वज ॥ १ ॥
अतलं वितलञ्चैव नितलञ्च गभस्तिमत् । महाख्यं सुतलञ्चाग्र्यं पातालञ्चापि सप्तमम् ॥ २ ॥
कृष्णा शुक्लारुणा पीता शर्करा शैलकाञ्चना । भूमयस्तत्र दैतेया वसन्ति च भुजङ्गमाः ॥ ३ ॥
रौद्रे तु पुष्करद्वीपे नरकाः सन्ति तान् शृणु । रौरवः शूकरो रोधस्तालो विशसनस्तथा ॥ ४ ॥
महाज्वालस्तप्तकुम्भो लवणोऽथ विमोहितः । रुधिरोऽथ वैतरणी कृमिशः कृमिभोजनः ॥ ५ ॥
असिपत्रवनः कृष्णो नानाभक्षश्च दारुणः । तथा पूयवहः पापो वह्निज्वालोद्भवोऽशिवः ॥ ६ ॥
सदंशः कृष्णसूत्रश्च तमश्चावीचिरेव च । श्वभोजनोऽथाप्रतिष्ठोष्णवीचिर्नरकाः स्मृताः ॥
पापिनस्तेषु पच्यन्ते विषशस्त्राग्निदायिनः ॥ ७ ॥
उपर्य्युपरि वै लोका रुद्र भूतादयः स्थिताः ॥ ८ ॥
वारिवह्न्यनिलाकाशे वृतं भूतादिना च तत् । तदण्डं महता रुद्र प्रधानेन च वेष्टितम् ॥
अण्डं दशगुणं व्याप्तं व्याप्य नारायणः स्थितः ॥ ९ ॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे सप्तपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५७॥

अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः

हरिरुवाच

वक्ष्ये प्रमाणसंस्थाने सूर्य्यादीनां शृणुष्व मे । योजनानां सहस्राणि भास्करस्य रथो नवः ॥ १ ॥
ईशादण्डस्तथैवास्य द्विगुणो वृषभध्वज । सार्द्धकोटिस्तथा सप्त नियुतान्यधिकानि च ॥
योजनानान्तु तस्याक्षस्तत्र चक्रं प्रतिष्ठितम् ॥ २ ॥
त्रिनाभिमतिपञ्चारे षण्नेमिन्यक्षयात्मके । संवत्सरमये कृत्स्नं कालचक्रं प्रतिष्ठितम् ॥ ३ ॥
चत्वारिंशत्सहस्राणि द्वितीयोऽक्षो विवस्वतः । पञ्चान्यानि तु सार्द्धानि स्यन्दनस्य वृषध्वज ॥ ४ ॥
अक्षप्रमाणमुभयोः प्रमाणन्तु युगार्द्धयोः । ह्रस्वोऽक्षस्तद्युगार्द्धेन ध्रुवाधारे रथस्य वै ॥
द्वितीयेऽक्षे तु तच्चक्रं संस्थितं मानसाचले ॥ ५ ॥
गायत्री सबृहत्युष्णिग्जगती त्रिष्टुबेव च । अनुष्टुप्पङ्क्तिरित्युक्ताश्छन्दांसि हरयो रवेः ॥ ६ ॥
धाता क्रतुस्थला चैव पुलस्त्ये वासुकिस्तथा । रथकृद्ग्रामणीर्हेतिस्तुम्बुरुश्चैत्रमासके ॥ ७ ॥

अर्य्यमा पुलहश्चैव रथौजाः पुञ्जिकास्थला । प्रहेतिः कच्छनीरश्च नारदश्चैव माधवे ॥ ८ ॥
मित्रोऽत्रिस्तक्षको रक्षः पौरुषेयोऽथ मेनका । हाहा रथस्वनश्चैव ज्येष्ठे भानो रथे स्थितः ॥ ९ ॥
वरुणो वशिष्ठो रम्भा सहजन्या कुहुर्बुधः । रथचित्रस्तथा शुक्रो वसन्त्याषाढ़संज्ञिते ॥१०॥
इन्द्रो विश्वावसुः स्रोत एलापत्रस्तथाङ्गिराः । प्रम्लोचा च नभस्येते सर्पाश्चार्के तु सन्ति वै ॥११॥
विवस्वानुग्रसेनश्च भृगुरापूरणस्तथा । अनुम्लोचा शङ्खपालो व्याघ्रो भाद्रपदे तथा ॥१२॥
पूषा च सुरुचिर्धाता गौतमोऽथ धनञ्जयः । सुषेणोऽन्यो घृताची च वसन्त्याश्वयुजे रवौ ॥१३॥
विश्वावसुर्भरद्वाजः पर्जन्यैरावतौ तदा । विश्वाची सेनजिच्चापः कार्त्तिके चाधिकारिणः ॥१४॥
अंशुः काश्यपस्तार्क्ष्यश्च महापद्मस्तथोर्वशी । चित्रसेनस्तथा विद्युन्मार्गशीर्षाधिकारिणः ॥१५॥
क्रतुर्भर्गस्तथोर्णायुः स्फूर्जः कर्कोटकस्तथा । अरिष्टनेमिश्चैवान्या पूर्वचित्तिर्वराप्सराः ॥
पौषमासे वसन्त्येते सप्त भास्करमण्डले ॥१६॥
त्वष्टाऽथ जमदग्निश्च कम्बलोऽथ तिलोत्तमा । ब्रह्मापेतोऽथ ऋतजिद्धृतराष्ट्रश्च सप्तमः ॥१७॥
माघमासे वसन्त्येते सप्त भास्करमण्डले ॥१८॥
विष्णुरश्वतरो रम्भा सूर्य्यवर्चाथ सत्यजित् । विश्वामित्रस्तथा रक्षो यज्ञापेतो हि फाल्गुने ॥१९॥
सवितुर्मण्डले ब्रह्मन्विष्णुशक्त्युपबृंहिताः । स्तुवन्ति मुनयः सूर्य्यं गन्धर्वैर्गीयते पुरः ॥२०॥
नृत्यन्तोऽप्सरसो यान्ति सूर्य्यस्यानु निशाचराः । वहन्ति पन्नगा यक्षैः क्रियतेऽभीषुसंग्रहः ॥
वालिखिल्यास्तथैवैनं परिवार्य्य समासते ॥२१॥
रथस्त्रिचक्रः सोमस्य कुन्दाभास्तस्य वाजिनः । वामदक्षिणतो युक्ता दश तेन चरत्यसौ ॥२२॥
वाय्वग्निद्रव्यसम्भूतो रथश्चन्द्रसुतस्य च । पिशङ्गैस्तुरगैर्युक्तः सोऽष्टाभिर्वायुवेगिभिः ॥२३॥
सवरूथः सानुकर्षो युक्तो भूमिभवैर्हयैः । सोपासङ्गपताकस्तु शुक्रस्यापि रथो महान् ॥२४॥
रथो भूमिसुतस्यापि तप्तकाञ्चनसन्निभः । अष्टाश्वः काञ्चनः श्रीमान्भौमस्यापि रथो महान् ॥
पद्मरागारुणैरश्वैः संयुक्तो वह्निसम्भवैः ॥२५॥
अष्टाभिः पाण्डरैर्युक्तैर्वाजिभिः काञ्चने रथे । तिष्ठंस्तिष्ठति वर्षं वै राशौ राशौ बृहस्पतिः ॥२६॥
आकाशसम्भवैरश्वैः शबलैः स्यन्दनं युतम् । समारुह्य शनैर्याति मन्दगामी शनैश्चरः ॥२७॥
स्वर्भानोस्तुरगा ह्यष्टौ भृङ्गाभा धूसरं रथम् । सकृद्युक्तास्तु भूतेश वहन्त्यविरतं सदा ॥२८॥
तथा केतुरथस्याश्वा अष्टौ ते वातरंहसः । पलालधूमवर्णाभा लाक्षारसनिभारुणाः ॥२९॥
द्वीपनद्यद्रुयदन्वन्तो भुवनानि हरेस्तनुः ॥३०॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे भुवनकोषो नाम अष्टपञ्चाशत्तमोऽध्यायः ॥५८॥

ऊनषष्टितमोऽध्यायः

सूत उवाच

ज्योतिश्चक्रं भुवो मानमुक्त्वा प्रोवाच केशवः । चतुर्लक्षं ज्योतिषस्य सारं रुद्राय सर्वदः ॥१॥

हरिरुवाच

कृत्तिकास्त्वग्निदैवत्या रोहिण्यो ब्रह्मणः स्मृताः । इल्वलाः सोमदैवत्या रौद्रं चार्द्रमुदाहृतम् ॥२॥
पुनर्वसुस्तथादित्यस्तिष्यश्च गुरुदैवतः । अश्लेषाः सर्पदैवत्या मघाश्च पितृदेवताः ॥३॥
भाग्याश्च पूर्वफल्गुन्यः अर्य्यमा च तथोत्तरः । सावित्रश्च तथा हस्तश्चित्रा त्वष्टा प्रकीर्त्तितः ॥
स्वाती च वायुदैवत्या नक्षत्रं परिकीर्त्तितम् । इन्द्राग्निदेवता प्रोक्ता विशाखा वृषभध्वज ॥५॥
मैत्रमृक्षमनुराधा ज्येष्ठा शाक्रं प्रकीर्त्तितम् । तथा निर्ऋतिदैवत्यो मूलस्तज्ज्ञैरुदाहृतः ॥ ६ ॥
आप्यास्त्वाषाढ़पूर्वास्तु उत्तरा वैश्वदेवताः । ब्राह्मश्चैवाभिजित्प्रोक्तः श्रवणा वैष्णवः स्मृतः ॥
वासवस्तु तथा ऋक्षं धनिष्ठा प्रोच्यते बुधैः । तथा शतभिषा प्रोक्तं नक्षत्रं वारुणं शिव ॥ ८ ॥
आज्यम्भाद्रपदा पूर्वा अहिर्बुध्न्या तथोत्तरा । पौष्णञ्च रेवती ऋक्षमश्वयुक्चाश्वदैवतम् ॥
भरण्यश्च तथा याम्यं प्रोक्तास्ते ऋक्षदेवताः ॥ ९ ॥

ब्रह्माणी संस्थिता पूर्वे प्रतिपन्नवमीतिथौ । माहेश्वरी चोत्तरे च द्वितीयादशमीतिथौ ॥१०॥
पञ्चम्याञ्च त्रयोदश्यां वाराही दक्षिणे स्थिता । षष्ठयाञ्चैव चतुर्दश्यामिन्द्राणी पश्चिमे स्थिता ॥
सप्तम्यां पौर्णमास्याञ्च चामुण्डा वायुगोचरे । अष्टम्यमावास्ययोगे महालक्ष्मीशगोचरे ॥१२॥
एकादश्यां तृतीयायामग्निकोणे तु वैष्णवी । द्वादश्याञ्च चतुर्थ्यान्तु कौमारी नैर्ऋते तथा ॥
योगिनीसम्मुखे नैव गमनादि प्रकारयेत् ॥१३॥

अश्विनीमत्र रेवत्यो मृगमूला पुनर्वसुः । पुष्या हस्ता तथा ज्येष्ठा प्रस्थानश्रेष्ठमुच्यते ॥१४॥
हस्तादि पञ्च ऋक्षाणि उत्तरात्रयमेव च । अश्विनी रोहिणी पुष्या धनिष्ठा च पुनर्वसुः ॥
वस्त्रप्रावरणे श्रेष्ठो नक्षत्राणां गणः स्मृतः ॥ १५ ॥

कृत्तिका भरणयश्लेषा मघा मूलविशाखयोः । त्रीणि पूर्वा तथा चैव अधोवक्त्राः प्रकीर्त्तिताः ॥१६॥
एषु वापीतड़ागादिकूपभूमितृणानि च । देवागारस्य खननं निधानखननं तथा ॥१७॥
गणितं ज्योतिषारम्भं खनेर्बिलप्रवेशनम् । कुर्य्यादधोगतान्येव अन्यानि च वृषध्वज ॥१८॥
रेवती चाश्विनी चित्रा स्वाती हस्ता पुनर्वसुः । अनुराधा मृगो ज्येष्ठा एते पार्श्वमुखाः स्मृताः॥१९॥
गजोष्ट्राश्वबलीवर्ददमनं महिषस्य च । बीजानां वपनं कुर्य्याद्गमनागमनादिकम् ॥२०॥
चक्रयन्त्ररथानाञ्च नावादीनां प्रवाहणम् । गवां दमनकर्माणि कुर्य्यादेतेषु तान्यपि ॥२१॥

[illegible] धनिष्ठा चोत्तरात्रयम् । वारुणं श्रवणश्चैव नव चोर्ध्वमुखाः स्मृताः ॥२२॥
एषु राज्याभिषेकश्च पट्टबन्धश्च कारयेत् । ऊर्ध्वमुख्यान्युच्छ्रितानि सर्वाण्येतेषु कारयेत् ॥२३॥
चतुर्थी चाशुभा षष्ठी अष्टमी नवमी तथा । अमावास्या पूर्णिमा च द्वादशी च चतुर्दशी ॥२४॥
अशुक्ला प्रतिपत् श्रेष्ठा द्वितीया चन्द्रसूनुना । तृतीया भूमिपुत्रेण चतुर्थी च शनैश्चरे ॥२५॥
गुरौ शुभा पञ्चमी स्यात् षष्ठी मङ्गलशुक्रयोः । सप्तमी सोमपुत्रेण अष्टमी कुजभास्करौ ॥२६॥
नवमी चन्द्रवारेण दशमी तु गुरौ शुभा । एकादश्यां गुरुः शुद्धो द्वादश्याञ्च पुनर्बुधः ॥२७॥
त्रयोदशी शुक्रभौमौ शनौ श्रेष्ठा चतुर्दशी । पौर्णमास्यप्यमावास्या श्रेष्ठा स्याच्च बृहस्पतौ ॥२८॥
द्वादशीं दहते भानुः शशी चैकादशीं दहेत् । कुजो दहेच्च दशमीं नवमीञ्च बुधो दहेत् ॥२९॥
अष्टमीं दहते जीवः सप्तमीं भार्गवो दहेत् । सूर्य्यपुत्रो दहेत् षष्ठीं गमनाद्यासु नास्ति वै ॥३०॥
प्रतिपन्नवमीष्वेव चतुर्दश्यष्टमीषु च । बुधवारे च प्रस्थानं दूरतः परिवर्जयेत् ॥३१॥
मेषे कर्कटके षष्ठी कन्यायां मिथुनेऽष्टमी । वृषे कुम्भे चतुर्थी च द्वादशी मकरे तुले ॥३२॥
दशमी वृश्चिके सिंहे धनुर्मीने चतुर्दशी । एता दग्धा न गन्तव्यं किल जीवादिमानवैः ॥३३॥
विशाखात्रयमादित्ये पूर्वाषाढात्रये शशी । धनिष्ठात्रितयं भौमे बुधे वै रेवतीत्रयम् ॥३४॥
रोहिण्यादित्रयं जीवे शुक्रे पुष्यात्रयं शिव । शनिवारे वर्जयेच्च उत्तराफल्गुनीत्रयम् ॥
एष औत्पातिको योगो मृत्युरोगादिकं भवेत् ॥ ३५ ॥
मूलेऽर्कः श्रवणे चन्द्रः प्रोष्ठपद्युत्तरे कुजः । कृत्तिकासु बुधश्चैव गुरौ रुद्र पुनर्वसुः ॥३६॥
पूर्वफल्गुनी शुक्रे च स्वातिश्चैव शनैश्चरे । एते चामृतयोगाः स्युः सर्वकार्य्यप्रसाधकाः ॥३७॥
विष्कम्भे घटिकाः पञ्च शूले सप्त प्रकीर्त्तिताः । षड्गण्डे चातिगण्डे च नव व्याघातवज्रयोः ॥३८॥
व्यतीपाते परीघे च वैधृते च दिने दिने । एते मृत्युयुता ह्येषु सर्वकर्माणि वर्जयेत् ॥३९॥
हस्तेऽर्कश्च गुरुः पुष्ये अनुराधा बुधे शुभा । रोहिणी च शनौ श्रेष्ठा सौमं सोमेन वै शुभम् ॥४०॥
शुक्रे च रेवती श्रेष्ठा अश्विनी मङ्गले शुभा । एतेषु सिद्धियोगा वै सर्वदोषविनाशनाः ॥४१॥
भार्गवे भरणी चैव सोमे चित्रा वृषध्वज । भौमे चैवोत्तराषाढा धनिष्ठा च बुधे हर ॥४२॥
गुरौ शतभिषा रुद्र शुक्रे वै रोहिणी तथा । शनौ च रेवती शम्भो विषयोगाः प्रकीर्त्तिताः ॥४३॥
पुष्यः पुनर्वसुश्चैव रेवती चित्रया सह । श्रवणा च धनिष्ठा च हस्ताश्विनी मृगस्तथा ॥
कुर्य्याच्छतभिषायाञ्च जातकर्मादि मानवः ॥ ४४ ॥
विशाखा चोत्तरा त्रीणि मघार्द्रा भरणी तथा । अश्लेषा कृत्तिका रुद्र प्रस्थाने मरणप्रदाः ॥४५॥
इति श्रीगारुड़े महापुराणे ऊनषष्टितमोऽध्यायः ॥ ५९ ॥

———

षष्टितमोऽध्यायः

हरिरुवाच

षडादित्ये दशा ज्ञेया सोमे पञ्चदश स्मृताः । अष्टावङ्गारके चैव बुधे सप्तदश स्मृताः ॥ १ ॥
शनैश्चरे दश ज्ञेया गुरोरेकोनविंशतिः । राहोर्द्वादशवर्षाणि एकविंशति भार्गवे ॥ २ ॥
रवेर्दशा दुःखदा स्यादुद्वेगनृपनाशकृत् । विभूतिदा सोमदशा सुखमिष्टान्नदा तथा ॥ ३ ॥
दुःखप्रदा कुजदशा राज्यादेः स्याद्विनाशिनी । दिव्यस्त्रीदा बुधदशा राज्यदा कोषवृद्धिदा ॥ ४ ॥
शनेर्दशा राज्यनाशबन्धुदुःखकरी भवेत् । गुरोर्दशा राज्यदा स्यात् सुखधर्मादिदायिनी ॥
राहोर्दशा राज्यनाशव्याधिदा दुःखदा भवेत् ॥ ५ ॥
हस्त्यश्वदा शुक्रदशा राज्यस्त्रीलाभदा भवेत् ॥ ६ ॥

मेषमङ्गारकक्षेत्रं वृषं शुक्रस्य कीर्त्तितम् । मिथुनस्य बुधो ज्ञेयः सोमः कर्कटकस्य च ॥ ७ ॥
सूर्य्यक्षेत्रं भवेत् सिंहः कन्याक्षेत्रं बुधस्य च । भार्गवस्य तुलाक्षेत्रं वृश्चिकोऽङ्गारकस्य च ॥ ८ ॥
धनुः सुरगुरोश्चैव शनेर्मकरकुम्भकौ । मीनः सुरगुरोश्चैव ग्रहक्षेत्रं प्रकीर्तितम् ॥ ९ ॥
पौर्णमास्या द्वयं यत्र पूर्वाषाढाद्वयं भवेत् । द्विराषाढः स विज्ञेयो विष्णुः स्वपिति कर्कटे ॥१०॥
अश्विनी रेवती चित्रा धनिष्ठा स्यादलङ्कृतौ ॥ ११ ॥
मृगाहिकपिमार्जारश्वानः शूकरपक्षिणः । नकुलो मूषिकश्चैव यात्रायां दक्षिणे शुभः ॥१२॥
विप्रकन्या शवो रुद्र शङ्खभेरीवसुन्धराः । वेणुस्त्रीपूर्णकुम्भानां यात्रायां दर्शनं शुभम् ॥
जम्बूकोष्ट्रखराद्याश्च यात्रायां वामके शुभाः ॥ १३ ॥

कार्पासौषधितैलञ्च पङ्काङ्गारभुजङ्गमाः । मुक्तकेशीं रक्तमाल्यं नग्नाद्यशुभमीक्षितम् ॥१४॥
हिक्काया लक्षणं वक्ष्ये लभेत्पूर्वे महाफलम् । आग्नेये शोकसन्तापौ दक्षिणे हानिमाप्नुयात् ॥१५॥
नैर्ऋत्ये शोकसन्तापौ मिष्टान्नञ्चैव पश्चिमे । अर्थं प्राप्नोति वायव्ये उत्तरे कलहो भवेत् ॥
ईशाने मरणं प्रोक्तं हिक्कायाश्च फलाफलम् ॥ १६ ॥

विलिख्य रविचक्रन्तु भास्करो नरसन्निभः । यस्मिनृक्षे वसेद्भानुस्तदादि त्रीणि मस्तके ॥१७॥
त्रयं वक्त्रे प्रदातव्यमेकैकं स्कन्धयोर्न्यसेत् । एकैकं बाहुयुग्मे तु एकैकं हस्तयोर्द्वयोः ॥१८॥
हृदये पञ्च ऋक्षाणि एकं नाभौ प्रदापयेत् । ऋक्षमेकं न्यसेद्गुह्ये एकैकं जानुके न्यसेत् ॥१९॥
नक्षत्राणि च शेषाणि रविपादे नियोजयेत् । चरणस्थेन ऋक्षेण अल्पायुर्जायते नरः ॥२०॥
विदेशगमनं जानौ गुह्यस्थे परदारवान् । नाभिस्थेनाल्पसन्तुष्टो हृत्स्थेन स्यान्महेश्वरः ॥२१॥

पाणिस्थेन भवेच्चौरः स्थानभ्रष्टो भवेद्भुजे । स्कन्धस्थिते धनपतिर्मुखे मिष्टान्नमाप्नुयात् ॥
मस्तके पट्टवस्त्रन्तु नक्षत्रं स्याद्यदि स्थितम् ॥ २२ ॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे षष्टितमोऽध्यायः ॥ ६० ॥

एकषष्टितमोऽध्यायः

हरिरुवाच

सप्तमोपचयाद्यस्थश्चन्द्रः सर्वत्र शोभनः । शुक्लपक्षे द्वितीयस्तु पञ्चमो नवमस्तथा ॥
संपूज्यमानो लोकैस्तु गुरुवद्दृश्यते शशी ॥ १ ॥
चन्द्रस्य द्वादशावस्था भवन्ति शृणु ता अपि । त्रिषु त्रिषु च ऋक्षेषु अश्विन्यादि वदाम्यहम् ॥२॥
प्रवासस्थं पुनर्नष्टं मृतावस्थं जयावहम् । हास्यावस्थं क्रीडावस्थं प्रमोदावस्थमेव च ॥३॥
विषादावस्थभोगस्थे ज्वरावस्थं व्यवस्थितम् । कम्पावस्थं स्वस्थावस्थं द्वादशावस्थगं भवेत् ॥४॥
प्रवासो हानिर्मृत्युश्च जयो हासो रतिः सुखम् । शोको भोगो ज्वरः कम्पः सुस्थावस्था क्रमात् फलम् ॥
जन्मस्थः कुरुते तुष्टिं द्वितीये नास्ति निर्वृतिः । तृतीये राजसम्मानं चतुर्थे कलहागमः ॥ ६ ॥
पञ्चमेन मृगाङ्केण स्त्रीलाभो वै तथा भवेत् । धनधान्यागमः षष्ठे रतिः पूजा च सप्तमे ॥
अष्टमे प्राणसन्देहो नवमे कोषसञ्चयः ॥ ७ ॥
दशमे कार्य्यनिष्पत्तिर्ध्रुवमेकादशे जयः । द्वादशेन शशाङ्केन मृत्युरेव न संशयः ॥ ८ ॥
कृत्तिकादौ च पूर्वेण सप्तर्क्षाणि च वै व्रजेत् । मघादौ दक्षिणे गच्छेदनुराधादि पश्चिमे ॥ ९ ॥
प्रशस्ता चोत्तरे यात्रा धनिष्ठादि च सप्तसु ॥१०॥
अश्विनी रेवती चित्रा धनिष्ठा समलङ्कृतौ । मृगाश्विचित्रापुष्याश्च मूला हस्ता शुभाः सदा ॥
कन्याप्रदाने यात्रायां प्रतिष्ठादिषु कर्मसु ॥ ११ ॥
शुक्रचन्द्रौ जन्मस्थौ शुभदौ च द्वितीयके । शशिज्ञशुक्रजीवाश्च राशौ चाथ तृतीयके ॥ १२ ॥
भौममन्दशशाङ्कार्का बुधः श्रेष्ठश्चतुर्थके । शुक्रजीवौ पञ्चमौ च चन्द्रकेतुसमाहितौ ॥ १३ ॥
मन्दार्कौ च कुजः षष्ठे गुरुचन्द्रौ च सप्तमे । ज्ञशुक्रावष्टमे श्रेष्ठौ नवमस्थो गुरुः शुभः ॥ १४ ॥
अर्कार्किचन्द्रा दशम एकादशेऽखिला ग्रहाः । बुधोऽथ द्वादशे चैव भार्गवः सुखदो भवेत् ॥१५॥
सिंहेन मकरः श्रेष्ठः कन्यया मेष उत्तमः । तुलया स मीनस्तु कुम्भेन सह कर्कटः ॥ १६ ॥

धनुषा वृषभः श्रेष्ठो मिथुनेन च वृश्चिकः। एतत्षडष्टकं प्रीत्यै भवत्येव न संशयः ॥ १७ ॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे एकषष्टितमोऽध्यायः ॥६१॥

द्विषष्टितमोऽध्यायः

हरिरुवाच

उदयात्तु समारभ्य राशौ भानुः स्थितो हर।
स्वराश्याद्यैर्व्रजेदह्नि षड्भिः षड्भिस्तथा निशाम् ॥ १ ॥

मीने मेषे च पञ्च स्युश्चतस्रो वृषकुम्भयोः। मकरे मिथुने तिस्रः पञ्च चापे च कर्कटे ॥ २ ॥
सिंहे च वृश्चिके षट् च सप्त कन्यातुले तथा। एता लग्नप्रमाणेन घटिकाः परिकीर्त्तिताः ॥ ३ ॥
रसपूर्वावसानेषु रसाब्धिष्वरिसागराः। लङ्कोदया हि तद्वत्तु तु लग्ना मेषादयोऽथवा ॥ ४ ॥
मेषलग्ने भवेद् बन्ध्या वृषे भवति कामिनी। मिथुने सुभगा कन्या वेश्या भवति कर्कटे ॥ ५ ॥
सिंहे चैवाल्पपुत्रा च कन्यायां रूपसंयुता। तुलायां रूपमैश्वर्यं वृश्चिके कर्कशा भवेत् ॥ ६ ॥
सौभाग्यं धनुषि स्याच्च मकरे नीचगामिनी। कुम्भे चैवाल्पपुत्रा स्यान्मीने वैराग्यसंयुता ॥ ७ ॥
तुलाकर्कटको मेषो मकरश्चैव राशयः। चरकार्य्याणि कुर्य्याच्च स्थिरकार्य्याणि चैव हि ॥८॥
पञ्चाननो वृषः कुम्भो वृश्चिकः स्युः स्थिराणि हि। कन्या धनुश्च मीनश्च मिथुनं द्विस्वभावतः ॥९॥
द्विस्वभावानि कर्माणि कुर्य्यादेषु विचक्षणः। यात्रा चरेण कर्त्तव्या प्रवेष्टव्यं स्थिरेण तु ॥
देवस्थापनवैवाह्यं द्विस्वभावेन कारयेत् ॥१०॥
प्रतिपच्चाथ षष्ठी च नन्दा चैकादशी स्मृता। द्वितीया सप्तमी भद्रा द्वादशी वृषभध्वज ॥११॥
जयाष्टमी तृतीया च स्मृता रुद्र त्रयोदशी। चतुर्थी नवमी रिक्ता सा वर्ज्याऽथ चतुर्दशी ॥
पञ्चमी दशमी पूर्णा पूर्णिमा च शुभाः स्मृताः ॥१२॥
चरः सौम्यो गुरुः क्षिप्रो मृदुः शुक्रो रविर्ध्रुवः। शनिश्च दारुणो ज्ञेयो भौम उग्रः शशी समः ॥१३॥
चरक्षिप्रैः प्रयातव्यं प्रवेष्टव्यं मृदुध्रुवैः। दारुणोग्रैश्च योद्धव्यं क्षत्रियैर्जयकाङ्क्षिभिः ॥
नृपाभिषेकोऽग्निकार्य्यञ्च सोमवारे प्रशस्यते ॥१४॥
सोमे तुले प्रमाणञ्च कुर्य्याच्चैव गृहादिकम्। सैनापत्यं शौर्य्ययुद्धं शस्त्राभ्यासः कुजे स्मृतः ॥
सिद्धिकार्य्यञ्च मन्त्रश्च यात्रा चैव बुधे स्मृता। पठनं देवपूजा च वस्त्राद्याभरणं गुरौ ॥१६॥

कन्यादानं गजारोहः शुक्रे स्यात्समयः स्त्रियाः । स्थाप्यं गृहप्रवेशश्च गजबन्धः शनौ शुभः ॥१७॥
इति श्रीगारुडे महापुराणे आचारखण्डे द्विषष्टितमोऽध्यायः ॥६२॥

त्रिषष्टितमोऽध्यायः

हरिरुवाच

नरस्त्रीलक्षणं वक्ष्ये संक्षेपाच्छृणु शङ्कर । अस्वेदिनौ मृदुतलौ कमलोदरसन्निभौ ॥ १ ॥
श्लिष्टाङ्गुली ताम्रनखौ सुगुल्फौ शिरयोज्झितौ । कूर्मोन्नतौ च चरणौ स्यातां नृपवरस्य हि ॥ २ ॥
विरूक्षापाण्डरनखौ वक्रश्चैव शिरोन्नतम् । शूर्पाकारौ च चरणौ संशुष्कौ चरणाङ्गुली ॥
दुःखदारिद्र्यदौ स्यातां नात्र कार्य्या विचारणा ॥ ३ ॥
अल्परोमयुता श्रेष्ठा जङ्घा हस्तिकरोपमा । रोमैकैकं कूपके स्याद्भूपानान्तु महात्मनाम् ॥ ४ ॥
द्वे द्वे रोमे पण्डितानां श्रोत्रियाणां तथैव च । रोमत्रयं दरिद्राणां रोगी निर्मांसजानुकः ॥ ५ ॥
अल्पलिङ्गे च धनवान् स्याच्च पुत्रादिवर्जितः । स्थूललिङ्गी दरिद्रः स्याद्दुःख्येकवृषणो भवेत् ॥६॥
विषमे स्त्रीचञ्चलो वै नृपः स्याद्वृषणे समे । प्रलम्बवृषणोऽल्पायुर्निर्द्रव्यः कुमणिर्भवेत् ॥
पाण्डरैर्मलिनैश्चैव मणिभिश्च सुखी नरः ॥ ७ ॥
निःस्वस्य शब्दमूत्राः स्युर्नृपा निःशब्दधारयः । भोगाढ्याः समजठरा निःस्वाः स्युर्घटसन्निभाः ॥
सर्पोदरा दरिद्राः स्यू रेखाभिश्चायुरुच्यते । ललाटे यस्य दृश्यन्ते तिस्रो रेखाः समाहिताः ॥
सुखी पुत्रसमायुक्तः स षष्टिं जीवते नरः ॥ ९ ॥
चत्वारिंशच्च वर्षाणि द्विरेखादर्शनान्नरः । विंशत्यब्दमेकरेखा आकर्णान्ता गतायुषः ॥
आकर्णान्तरिता रेखास्तिस्रश्च स्युः शतायुषः ॥१०॥
सप्तत्यायुर्द्विरेखा तु षष्ट्यायुस्तिसृभिर्भवेत् । व्यक्ताव्यक्ताभी रेखाभिर्विंशत्यायुर्भवेन्नरः ॥११॥
चत्वारिंशच्च वर्षाणि हीनरेखस्तु जीवति । भिन्नाभिश्चैव रेखाभिरपमृत्युर्नरस्य हि ॥१२॥
त्रिशूलं पट्टिशं वापि ललाटे यस्य दृश्यते । धनपुत्रसमायुक्तः स जीवेच्छरदः शतम् ॥१३॥
तर्जन्या मध्यमाङ्गुल्या आयुरेखा तु मध्यतः । संप्राप्ता या भवेद्रुद्र स जीवेच्छरदः शतम् ॥१४॥
प्रथमा ज्ञानरेखा तु ह्यङ्गुष्ठादनुवर्त्तते । मध्यमा मूलगा रेखा आयूरेखा अतःपरम् ॥१५॥
कनिष्ठायां समाश्रित्य आयुरेखा समाविशेत् । अच्छिन्ना वा विभक्ता वा स जीवेच्छरदः शतम् ॥
यस्य पाणितले रेखा आयुस्तस्य प्रकाशयेत् । शतवर्षाणि जीवेच्च भोगी रुद्र न संशयः ॥१७॥

कनिष्ठिकां समाश्रित्य मध्यमायामुपागता । षष्टिवर्षायुषं कुर्य्यादायूरेखा तु मानवः ॥१८॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे त्रिषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६३ ॥

चतुःषष्टितमोऽध्यायः

हरिरुवाच

यस्यास्तु कुञ्चिताः केशा मुखञ्च परिमण्डलम् । नाभिश्च दक्षिणावर्त्ता सा कन्या कुलवर्द्धिनी ॥१॥
या च काञ्चनवर्णाभा रक्तहस्तसरोरुहा । सहस्राणान्तु नारीणां भवेत्सापि पतिव्रता ॥२॥
वक्रकेशा च या कन्या मण्डलाक्षी च या भवेत् । भर्त्ता च म्रियते तस्या नियतं दुःखभागिनी ॥
पूर्णचन्द्रमुखी कन्या बालसूर्य्यसमप्रभा । विशालनेत्रा बिम्बोष्ठी सा कन्या लभते सुखम् ॥
रेखाभिर्बहुभिः क्लेशं स्वल्पाभिर्धनहीनता । रक्ताभिः सुखमाप्नोति कृष्णाभिः प्रेष्यतां व्रजेत् ॥
कार्य्येपि मन्त्रीपत्नी स्यात्सखी स्यात्करणेषु च । स्नेहेषु भार्य्या माता स्याद्वेश्या च शयने शुभा ॥
अङ्कुशं मण्डलं चक्रं यस्याः पाणितले भवेत् । पुत्रं प्रसूयते नारी नरेन्द्रं लभते पतिम् ॥७॥
यस्यास्तु रोमशौ पार्श्वौ रोमशौ च पयोधरौ । उन्नतौ चाधरोष्ठौ च क्षिप्रं मारयते पतिम् ॥८॥
यस्याः पाणितले रेखा प्राकारं तोरणं भवेत् । अपि दासकुले जाता राज्ञीत्वमुपगच्छति ॥९॥
उद्धृत्ता कपिला यस्या रोमराजी निरन्तरम् । अपि राजकुले जाता दासीत्वमुपगच्छति ॥१०॥
यस्या अनामिकाङ्गुष्ठौ पृथिव्यां नैव तिष्ठतः । पतिं मारयते क्षिप्रं स्वेच्छाचारेण वर्त्तते ॥११॥
यस्या गमनमात्रेण भूमिकम्पः प्रजायते । पतिं मारयते क्षिप्रं म्लेच्छाचारेण वर्त्तते ॥१२॥
चक्षुःस्नेहेन सौभाग्यं दन्तस्नेहेन भोजनम् । त्वचः स्नेहेन शय्याञ्च पादस्नेहेन वाहनम् ॥१३॥
स्निग्धोन्नतौ ताम्रनखौ नार्य्याश्च चरणौ शुभौ । मत्स्याङ्कुशाब्जचिह्नौ च चक्रलाङ्गललक्षितौ ॥
अस्वेदिनौ मृदुतलौ प्रशस्तौ चरणौ स्त्रियाः ॥१४॥
शुभे जङ्घे विरोमे च ऊरू हस्तिकरोपमौ । अश्वत्थपत्रसदृशं विपुलं गुह्यमुत्तमम् ॥१५॥
नाभिः प्रशस्ता गम्भीरा दक्षिणावर्त्तिका शुभा । अरोमा त्रिवली भार्य्या हृत्स्तनौ रोमवर्जितौ ॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे चतुःषष्टितमोऽध्यायः ॥६४॥

पञ्चषष्टितमोऽध्यायः

हरिरुवाच

समुद्रोक्तं प्रवक्ष्यामि नरस्त्रीलक्षणं शुभम् । येन विज्ञातमात्रेण अतीतानागताश्रमाः ॥ १ ॥
अस्वेदिनौ मृदुतलौ कमलोदरसन्निभौ । श्लिष्टाङ्गुली ताम्रनखौ पादावुष्णौ शिरोज्झितौ ।
कूर्मोन्नतौ गूढ़गुल्फौ सुपार्ष्णी नृपतेः स्मृतौ ॥ २ ॥
शूर्पाकारौ विरूक्षौ च वक्रौ पादौ शिरालकौ । संशुष्कौ पाण्डरनखौ निःस्वस्य विरलाङ्गुली ॥३॥
मार्गायोत्कटकौ पादौ कषायसदृशौ तथा । विच्छिद्यौ चैव वंशस्य ब्रह्मघ्नौ शङ्कुसन्निभौ ॥४॥
युगस्यायतने तुल्या जङ्घा विरलरोमिका । मृदुरोमा समा जङ्घा तथा करिकरप्रभा ।
ऊरवो जानवस्तुल्या नृपस्योपचिताः स्मृताः ॥ ५ ॥
निःस्वस्य शृगालजङ्घा रोमैकैकञ्च कूपके । नृपाणां श्रोत्रियाणाञ्च द्वे द्वे श्रिये च धीमताम् ।
त्र्याद्यैर्निःस्वा मानवाः स्युर्दुःखभाजश्च निन्दिताः ॥ ६ ॥
केशाश्चैव कुञ्चिताश्च प्रवासे म्रियते नरः । निर्मांसजानुः सौभाग्यमल्पैर्निम्नैरतः स्त्रियाः ।
विकटैश्च दरिद्राः स्युः समांसै राज्यमेव च ॥ ७ ॥
महद्भिरायुराख्यातं ह्यल्पलिङ्गो धनी नरः । अपत्यरहितश्चैव स्थूललिङ्गो धनोज्झितः ॥ ८ ॥
मेढ्रे वामनते चैव सुतार्थरहितो भवेत् । वक्रेऽन्यथा पुत्रवान्स्याद्दारिद्र्यं विनते त्वधः ।
अल्पे तु तनयो लिङ्गे शिरालेऽथ सुखी नरः । स्थूलग्रन्थियुते लिङ्गे भवेत्पुत्रादिसंयुतः ॥१०॥
कोषगूढ़े नृपो दीर्घैर्भुग्नैश्च धनवर्जितः । बलवान्युद्धशीलश्च लघुशेफः स एव च ॥११॥
दुर्बलस्त्वेकवृषणो विषमाभ्याञ्चलस्त्रियः । समाभ्यां क्षितिपः प्रोक्तः प्रलम्बेन शत[illegible]द्वान् ।
ऊर्ध्वं द्वाभ्यां बहुष्वायू रूक्षैर्मणिभिरीश्वरः । पाण्डरैर्मणिभिर्निःस्वा मलिनैः सुखभागिनः ॥१३॥
सशब्दनिःशब्दमूत्राः स्युर्दरिद्राश्च मानवाः । एकद्वित्रिचतुःपञ्चषड्भिर्धाराभिरेव च ॥१४॥
दक्षिणावर्त्तचलितमूत्राभिश्च नृपाः स्मृताः । विकीर्णमूत्रा निःस्वाश्च प्रधानसुखदायिकाः ॥१५॥
एकधाराश्च वनिताः स्निग्धैर्मणिभिरुन्नतैः । समैः स्त्रीरत्नधनिनो मध्ये निम्नैश्च कन्यकाः ॥१६॥
शुक्रैर्निःस्वा विशुष्कैश्च दुर्भगाश्च प्रकीर्त्तिताः । पुष्पगन्धे नृपाः शुक्रे मधुगन्धे धनं बहु ॥१७॥
पुत्राः शुक्रे मत्स्यगन्धे तन्न शुक्रे च कन्यकाः । महाभोगी मांसगन्धे यज्वा स्यान्मदगन्धिनि ॥१८॥
दरिद्रः क्षारगन्धे च दीर्घायुः शीघ्रमैथुनी । अशीघ्रमैथुन्यल्पायुः स्थूलस्फिक्स्याद्धनोज्झितः१९॥
मांसलस्फिक्सुखी स्याच्च सिंहस्फिग्भूपतिः स्मृतः । भवेत्सिंहकटी राजा निःस्वः कपिकटिर्नरः २०॥
सर्पोदरा दरिद्राः स्युः पिठरैश्च घटैः समाः । धनिनो विपुलैः पार्श्वैर्निःस्वा रक्तैश्च निम्नगैः २१॥

समकक्षाश्च भोगाढ्या निम्नकक्षा धनोज्झिताः। नृपाश्चोन्नतकक्षाः स्युर्जिह्मा विषमकक्षकाः ॥२२॥
मत्स्योदरा बहुधना नाभिभिः सुखिनः स्मृताः। विस्तीर्णाभिर्बहुलाभिर्निम्नाभिः क्लेशभागिनः २३॥
बलिमध्यगतो नाभिः शूलबाधां करोति हि । वामावर्त्तश्च साध्यं वै मेधां दक्षिणतस्तथा ॥२४॥
पार्श्वायता चिरायुः स्यादूपरिष्टाद्धनेश्वरः । अधो गवाढ्यं कुर्य्याच्च नृपत्वं पद्मकर्णिका ॥२५॥
एकबलिः शतायुः स्याच्छ्रीभोगी द्विबलिः स्मृतः । त्रिबलिः क्ष्माप आचार्य्य ऋजुभिर्बलिभिः सुखी॥
अगम्यागामी जिह्मबलिः भूपाः पार्श्वैश्च मांसलैः ॥ २६ ॥

मृदुभिः सुसमैश्चैव दक्षिणावर्त्तरोमभिः । विपरीतैः परप्रेष्या निर्द्रव्याः सुखवर्जिताः ॥२७॥
अनुद्धतैश्चुकैश्च भवन्ति सुभगा नराः। निर्धना विषमैर्दीर्घैः पीतोपचितकैर्नरैः ॥२८॥
समोन्नतञ्च हृदयमकम्पं मांसलं पृथु । नृपाणामधमानाञ्च खररोमशिरालकम् ॥२९॥
अर्थवान्समवक्षाः स्यात्पीनैर्वक्षोभिरूर्जितः । वक्षोभिर्विषमैर्निस्वाः शस्त्रेण निर्धनास्तथा ॥३०॥
विषमैर्जत्रुभिर्निस्वा अस्थिनद्धैश्च मानवाः । उन्नतैर्भोगिनो निम्नैर्निःस्वाः पीनैर्धनान्विताः ३१॥
निःस्वश्चिपिटकण्ठः स्याच्छिराशुष्कगलः सुखी । शूरः स्यान्महिषग्रीवः शास्त्रान्तो मृगकण्ठकः ॥
कम्बुग्रीवश्च नृपतिर्लम्बकण्ठोऽतिभक्षकः । अरोमशाभुग्नपृष्ठं शुभञ्चाशुभमन्यथा ॥३३॥
कक्षाऽश्वत्थदला श्रेष्ठा सुगन्धिर्मृगरोमिका । अन्यथा त्वर्थहीनानां दारिद्र्यस्य च कारणम् ॥३४॥
समांसौ चैव भुग्नाल्पौ श्लिष्टौ च विपुलौ शुभौ । आजानुलम्बितौ बाहू वृत्तौ पीनौ नृपेश्वरे ॥
निःस्वानां रोमशौ ह्रस्वौ श्रेष्ठौ करिकरप्रभौ ॥ ३५ ॥

हस्ताङ्गुल्य एव स्युर्वायुद्वारनिभाः शुभाः । मेधाविनाञ्च सूक्ष्माः स्युर्भृत्यानां चिपिटाः स्मृताः ॥
स्थूलाङ्गुलीभिर्निःस्वाः स्युर्नताः स्युः सुकृशैस्तदा ॥ ३६ ॥

कपितुल्यकरा निःस्वा व्याघ्रतुल्यकरैर्बलम् । पितृवित्तविनाशश्च निम्नात्करतलान्नराः ॥३७॥
मणिबन्धैर्निगूढैश्च सुश्लिष्टैः शुभगन्धिभिः । नृपा हीनाः करच्छेदैः सशब्दैर्धनवर्जिताः ॥३८॥
संवृतैश्चैव निम्नैश्च धनिनः परिकीर्त्तिताः । प्रोत्तानकरदातारो विषमैर्विषमा नराः ॥३९॥
करैः करतलैश्चैव लाक्षाभैरीश्वरस्तनैः । परदाररताः पीतै रूक्षैर्निःस्वा नरा मताः ॥४०॥
तुषतुल्यनखाः क्लीबाः कुटिलैः स्फुटितैर्नराः । निःस्वाश्च कुनखैस्तद्वद्विवर्णैः परतर्ककाः ॥४१॥
ताम्रैर्भूपा धनाढ्याश्च अङ्गुष्ठैः सयवैस्तथा । अङ्गुष्ठमूलजैः पुत्री स्याद्दीर्घाङ्गुलिपर्वकः ॥४२॥
दीर्घायुः सुभगश्चैव निर्धनो विरलाङ्गुलिः । घनाङ्गुलिश्च सधनस्तिस्रो रेखाश्च यस्य वै ॥
नृपतेः करतलगा मणिबन्धात्समुत्थिताः ॥ ४३ ॥

युगमीनाङ्कितनरो भवेत्सत्रप्रदो नरः । वज्राकाराश्च धनिनां मत्स्यपुच्छनिभा बुधे ॥४४॥

शङ्खातपत्रशिबिकागजपद्मोपमा नृपे । कुम्भाङ्कुशपताकाभा मृणालाभा निधीश्वर ॥४५॥
दामाभाश्च गवाढ्यानां स्वस्तिकाभा नृपेश्वरे। चक्रासितोमरधनुर्दन्ताभा नृपतेः करे ॥४६॥
उदूखलाभा यज्ञाढ्या वेदीभाचाग्निहोत्रिणि । वापीदेवकुल्याभाश्च त्रिकोणाभाश्च धार्मिके ४७॥
अङ्गुष्ठमूलगा रेखाः पुत्राश्च सुखदायकाः । प्रदेशिनीगता रेखा कनिष्ठामूलगामिनी ॥
शतायुषञ्च कुरुते छिन्नया तरते भयम् ॥ ४८ ॥
निःस्वाश्च बहुरेखाः स्युर्निर्द्रव्याश्चिबुकैः कृशैः । मांसलैश्च धनोपेता आरक्तैरधरैर्नृपाः ॥४९॥
विम्बोपमैश्च स्फुटितैरोष्ठैरूक्षैश्च खण्डितैः । विषमैर्धनहीनाश्च दन्ताः स्निग्धा घनाः शुभाः ॥५०॥
तीक्ष्णा दन्ताः समाश्रेष्ठा जिह्वा रक्ता समाः शुभाः । श्लक्ष्णा दीर्घा च विज्ञेया तालुः श्वेतो धनक्षये ॥
कृष्णा च परुषा वक्त्रं समं सौम्यञ्च संवृतम् । भूपानाममलं श्लक्ष्णं विपरीतञ्च दुःखिनाम् ॥५२॥
महादुःखं दुर्भगाणां स्त्रीमुखं पुत्रमाप्नुयात् । आढ्यानां वर्त्तुलं वक्त्रं निर्द्रव्याणाञ्च दीर्घकम् ॥५३॥
भीरुवक्त्रः पापकर्मा धूर्त्तानाञ्चतुरस्रकम् । निम्नं वक्रमपुत्राणां कृपणानाञ्च ह्रस्वकम् ॥५४॥
सम्पूर्णं भोगिनां कान्तं श्मश्रु स्निग्धं शुभं मृदु । संहतञ्चास्फुटिताग्रं रक्तश्मश्रुश्च चौरकः ॥
रक्ताल्पपरुषश्मश्रुः कर्णाः स्युः पापमृत्यवः ॥ ५५ ॥
निर्मांसैश्चिपिटैर्भोगाः कृपणा ह्रस्वकर्णकाः । शङ्कुकर्णाश्च राजानो रोमकर्णा गतायुषः ॥५६॥
बृहत्कर्णाश्च धनिनो राजानः परिकीर्त्तिताः । कर्णैः स्निग्धैरनद्धैश्च व्यालम्बैर्मांसलैर्नृपाः ॥५७॥
भोगी वै निम्नगण्डः स्यान्मन्त्री सम्पूर्णगण्डकः । शुकनासः सुखी स्याच्च शुष्कनासोऽतिजीवनः ॥
छिन्नाग्रकूपनासः स्यादगम्यागमने रतः । दीर्घनासे च सौभाग्यं चौरश्चाकुञ्चितेन्द्रियः ५९॥
मृत्युश्चिपिटनासः स्याद्धीनभाग्यवतां भवेत् । स्वल्पच्छिद्रा सुपुटा च अवक्रा च नृपेश्वरे॥६०॥
क्रूरे दक्षिणवक्रा स्याद्बलिनाञ्च क्षुतं सकृत् । स्याद्विनिष्पिण्डितं ह्लादी सानुनादञ्च जीवकृत्॥
वक्रान्तैः पद्मपत्राभैर्लोचनैः सुखभागिनः । मार्जारलोचनैः पाप्मा दुरात्मा मधुपिङ्गलैः ॥६२॥
क्रूराः केकरनेत्राश्च हरिताक्षाः सकल्मषाः । जिह्मैश्च लोचनैः शूराः सेनान्यो गजलोचनाः ॥६३॥
गम्भीराक्षा ईश्वराः स्युर्मन्त्रिणः स्थूलचक्षुषः । नीलोत्पलाक्षा विद्वांसः सौभाग्यं श्यामचक्षुषाम् ॥
स्यात्कृष्णतारकाक्षाणामक्ष्णामुत्पाटनं किल । मण्डलाक्षाश्चपापाः स्युर्निःस्वाःस्युर्दीनलोचनाः ॥
त्वक् स्निग्धा विपुला भोगा अल्पायुर्नाभिरुन्नता ॥६५॥६६॥
विशालोन्नताः सुखिनो दरिद्रा विषमभ्रुवः । धनी दीर्घासंसक्तभ्रूर्बालेन्दून्नतसुभ्रुवः ॥६७॥
आढ्योनिःस्वश्च खण्डभ्रुर्मध्ये च विनतभ्रुवः। स्त्रीष्वगम्यास्वासक्ताः स्युः सुतार्थे परिवर्जिताः ॥
उन्नतैर्विपुलैः शङ्खैर्ललाटैर्विषमैस्तथा । निर्धना धनवन्तश्च अर्द्धेन्दुसदृशैर्नराः ॥६९॥

आचार्य्याः शुक्तिविशालैः शिरालैःपापकारिणः। ऊन्नताभिः शिराभिश्च स्वस्तिकाभिर्धनेश्वराः ॥
निम्नैर्ललाटैर्बंधार्हाः क्रूरकर्मरतास्तथा । संवृतैश्च ललाटैश्च कृपणा उन्नतैर्नृपाः ॥७१॥
अनश्रुस्निग्धरुदितमदीनमशुभं नृणाम् । प्रचुरस्वेदिनं रूक्षं रुदितञ्च सुखावहम् ॥७२॥
अकम्पं हसितं श्रेष्ठं निमीलितमघावहम् । असकृद्धसितं दुष्टं सोन्मादस्य ह्यनेकधा ॥७३॥
ललाटोपसृतास्तिस्रो रेखाः स्युः शतवर्षिणाम् । नृपत्वं स्याच्चतसृभिरायुः पञ्चनवत्यथ ॥७४॥
अरेखेनायुर्नवतिर्विच्छिन्नाभिश्च पुंश्चलाः । केशान्तोपगताभिश्च अशीत्यायुर्नरो भवेत् ॥७५॥
पञ्चभिः सप्तभिः षड्भिः पञ्चाशद्बहुभिस्तथा । चत्वारिंशच्च रक्ताभिस्त्रिंशद्भ्रूलग्नगामिभिः ॥
विंशतिर्वामवक्राभिरायुः क्षुद्राभिरल्पकम् ॥७६॥

छत्राकारैः शिरोभिस्तु नृपः शिवमयो धनी । चिपिटैश्च पितुर्मृत्युर्धनाढ्यः परिमण्डलैः ॥
घटमूर्द्धा पापरुचिर्धनाद्यैः परिवर्जितः ॥ ७७ ॥

कृष्णैराकुञ्चितैः केशैः स्निग्धैरेकैकसम्भवैः । अभिन्नाग्रैश्च मृदुभिर्न चातिबहुभिर्नृपाः ॥७८॥
बहुमूलैश्च विषमैः स्थूलाग्रैः कपिलैस्तथा । निम्नैश्चैवातिकुटिलैर्घनैरसितमूर्द्धजैः ॥७९॥
यद्यद्गात्रं महारूक्षं शिरालं मांसवर्जितम् । तत्तत्स्यादशुभं सर्वं शुभं सर्वं ततोऽन्यथा ॥८०॥
विपुलस्त्रिषु गम्भीरो दीर्घः सूक्ष्मश्च पञ्चसु । षडुन्नतश्चतुर्ह्रस्वो रक्तः सप्तः समो नृपः ॥८१॥
नाभिः स्वरश्च बुद्धिश्च त्रयं गम्भीरमीरितम् । पुंसः स्याददतिविस्तीर्णं ललाटं वदनमुरः ॥८२॥
चक्षुःकक्षदन्तनासाः षट्स्युर्मुखकृकाटिकाः । उन्नतानि च ह्रस्वानि जङ्घाः ग्रीवा च लिङ्गकम् ॥
पृष्ठञ्चत्वारि रक्तानि करताल्वधरा नखाः । नेत्रान्तपादजिह्वोष्ठाः पञ्च सूक्ष्माणि सन्ति वै ॥८४॥
दशनाङ्गुलिपर्वाणि नखकेशत्वचः शुभाः । दीर्घाः स्तनान्तरं बाहुदन्तलोचननासिकाः ॥८५॥
नराणां लक्षणं प्रोक्तं वदामि स्त्रीषु लक्षणम् । राज्ञ्याः स्निग्धौ समौ पादौ तलौ ताम्रौ नखौ तथा॥
श्लिष्टाङ्गुली चोन्नताग्रौ तां प्राप्य नृपतिर्भवेत् ॥८६॥

निगूढगुल्फोपचितौ पद्मकान्तितलौ शुभौ । अस्वेदिनौ मृदुतलौ मत्स्याङ्कुशध्वजाञ्चितौ ॥
वज्राब्जहलचिह्नौ च राज्ञ्याः पादौ ततोऽन्यथा ॥८७॥

जङ्घे च रोमरहिते सुवृत्ते विशिरे शुभे । अनुल्बणं सन्धिदेशं समं जानुद्वयं शुभम् ॥८८॥
ऊरू करिकराकारावरोमौ च समौ शुभौ । अश्वत्थपत्रसदृशं विपुलं गुह्यमुत्तमम् ॥८९॥
श्रोणीललाटकं स्त्रीणां उरः कूर्मोन्नतं शुभम् । गूढो मणिश्च शुभदो नितम्बश्च गुरुः शुभः ॥९०॥
विस्तीर्णा मांसोपचिता गम्भीरा विपुला शुभा । नाभिः प्रदक्षिणावर्त्ता मध्यं त्रिबलिशोभितम् ॥
अरोमशौ स्तनौ पीनौ घनावविषमौ शुभौ । कठिना रोमशा शस्ता मृदुग्रीवा च कम्बुभा ९२॥

आरक्तावधरौ श्रेष्ठौ मांसलं वर्त्तुलं मुखम् । कुन्दपुष्पसमा दन्ता भाषितं कोकिलासमम् ॥९३॥
दाक्षिण्ययुक्तमशठं हंसशब्दसुखावहम् । नासा समा समपुटा स्त्रीणान्तु रुचिरा शुभा ॥९४॥
नीलोत्पलनिभं चक्षुर्नासलग्नं शुभावहम् । न पृथू बालेन्दुनिभे भ्रुवौ चाथ ललाटकम् ॥
शुभमर्द्धेन्दुसंस्थानमतुङ्गं स्यादलोमकम् ॥९५॥
अमांसलं कर्णयुग्मं समं मृदु समाहितम् । स्निग्धनीलाश्च मृदवो मूर्द्धजाः कुञ्चिताः शुभाः ॥
स्त्रीणां समं शिरः श्रेष्ठं पादे पाणितलेऽथवा । वाजिकुञ्जरश्रीवृक्षयूपेषुयवतोमरैः ॥९७॥
ध्वजचामरमालाभिः शैलकुण्डलवेदिभिः । शङ्खातपत्रपद्मैश्च मत्स्यस्वस्तिकसद्रथैः ॥
लक्षणैरङ्कुशाद्यैश्च स्त्रियः स्यू राजवल्लभाः ॥९८॥
निगूढ़मणिबन्धौ च पद्मगर्भोपमौ करौ । न निम्नं नोन्नतं स्त्रीणां भवेत्करतलं शुभम् ॥
रेखान्वितां त्वविधवां कुर्य्यात्संभोगिनीं स्त्रियम् ॥९९॥
रेखा या मणिबन्धोत्था गता मध्याङ्गुलीकरे । गता पाणितले या च योर्ध्वपादतले स्थिता ॥
स्त्रीणां पुंसां तथा सा स्याद्राज्याय च सुखाय च ॥१००॥
कनिष्ठिकामूलभवा रेखा कुर्याच्छतायुषम् । प्रदेशिनीमध्यमाभ्यामन्तरालगता सती ॥१०१॥
ऊना ऊनायुषं कुर्य्याद्रेखा चाङ्गुष्ठमूलगा । बृहत्यः पुत्रास्ताः क्षीणाः प्रमदाः परिकीर्त्तिताः ॥
स्वल्पायुषो बहुच्छिन्ना दीर्घाच्छिन्ना महायुषः । शुभन्तु लक्षणं स्त्रीणां प्रोक्तन्त्वशुभमन्यथा ॥
कनिष्ठिकाऽनामिका वा यस्या न स्पृशते महीम् । अङ्गुष्ठं वा गतातीत्य तर्जनी कुलटा च सा ॥
ऊर्ध्वं द्वाभ्यां पिण्डितकाभ्यां जङ्घे चातिशिरालके। रोमशे चातिमांसे च कुम्भाकारं तथोदरम् ॥
वामावर्त्तं निम्नमल्पं दुःखितानाञ्च गुह्यकम् ॥१०५॥
ग्रीवया ह्रस्वया निःस्वा दीर्घया च कुलक्षयः । पृथुलया प्रचण्डाश्च स्त्रियः स्युर्नात्र संशयः१०६॥
केकरे पिङ्गले नेत्रे श्यामे लोलेक्षणाऽसती । स्मिते कूपं गण्डयोश्च सा ध्रुवं व्यभिचारिणी ॥
प्रलम्बिनी ललाटे तु देवरं हन्ति चाङ्गना । उदरे श्वशुरं हन्ति पतिं हन्ति स्फिचोर्द्वयोः १०८॥
या तु रोमोत्तरौष्ठी स्यान्न शुभा भर्त्तुरेव हि । स्तनौ सरोमावशुभौ कर्णौ च विषमौ तथा ॥
कराला विषमा दन्ताः क्लेशाय च भवन्ति ते । चौर्य्याय कृष्णमांसाश्च दीर्घा भर्त्तुश्च मृत्यवे ॥
क्रव्यादरूपैर्हस्तैश्च वृककाकादिसन्निभैः । शिरालैर्विषमैः शुष्कैर्वित्तहीना भवन्ति हि ॥
समुन्नतोत्तरौष्ठी या कलहै रूक्षभाषिणी ॥१११॥
स्त्रीषु दोषा विरूपासु यत्राकारो गुणास्ततः । नरस्त्रीलक्षणं प्रोक्तं वक्ष्ये तु ज्ञानदायकम् ११२॥
इति श्रीगारुड़े महापुराणे नरस्त्रीलक्षणं नाम पञ्चषष्टितमोऽध्यायः ॥ ६५ ॥

षट्षष्टितमोऽध्यायः

हरिरुवाच

निर्लक्षणा शुभा स्याच्चचक्रान्वितशिलार्चनात्। आदौ सुदर्शनो मूर्त्तिर्लक्ष्मीनारायणः परः ॥ १ ॥
त्रिचक्रोऽसावच्युतः स्याच्चतुश्चक्रश्चतुर्भुजः । वासुदेवश्च प्रद्युम्नस्ततः सङ्कर्षणः स्मृतः ॥ २ ॥
पुरुषोत्तमश्चाष्टमः स्यान्नवव्यूहो दशात्मकः । एकादशोऽनिरुद्धः स्याद्द्वादशो द्वादशात्मकः ३॥
अत ऊर्ध्वमनन्तः स्याच्चक्रे रेखादिकैः क्रमात् । सुदर्शना लक्षिताश्च पूजिताः सर्वकामदाः ॥ ४ ॥
शालग्रामशिला यत्र देवो द्वारवतीभवः । उभयोः सङ्गमो यत्र तत्र मुक्तिर्न संशयः ॥ ५ ॥
शालग्रामो द्वारका च नैमिषं पुष्करं गया। वाराणसी प्रयागञ्च कुरुक्षेत्रञ्च शूकरम् ॥ ६ ॥
गङ्गा च नर्मदा चैव चन्द्रभागा सरस्वती । पुरुषोत्तमो महाकालस्तीर्थान्येतानि शङ्कर ॥
सर्वपापहराण्येव भुक्तिमुक्तिप्रदानि वै ॥ ७ ॥

प्रभवो विभवः शुक्रः प्रमोदोऽथ प्रजापतिः । अङ्गिराः श्रीमुखो भावः यूवा धाता तथैव च ॥ ८ ॥
ईश्वरो बहुधान्यश्च प्रमाथी विक्रमो विधुः । चित्रभानुः स्वर्भानुश्च दारुणः पार्थिवो व्ययः ॥ ९ ॥
सर्वजित्सर्वधारी च विरोधी विकृतः स्वरः । नन्दनो विजयश्चैव जयो मन्मथदुर्मुखौ ॥१०॥
हेमलम्बो विलम्बश्च विकारः शर्वरी प्लवः । शुभकृच्छोभनः क्रोधो विश्वावसुः पराभवः ॥११॥
प्लवङ्गः कीलकः सौम्यः साधारणविरोधकृत् । परिधारी प्रमादी च आनन्दी राक्षसो नलः ॥१२॥
पिङ्गलः कालसिद्धार्थौ दुर्मतिः सुमतिस्तथा । दुन्दुभी रुधिरोद्गारी रक्ताक्षः क्रोधनोऽक्षयः ॥
शोभनाऽशोभना ज्ञेया नाम्नैवैते हि वत्सराः ॥ १३ ॥

कालं वक्ष्यामि संसिद्ध्यै रुद्र पञ्चस्वरोदयात् । राजा साजा उदासा च पीडा मृत्युस्तथैव च ॥
आ ई ऊ ऐ औ स्वराणि च लिखेत्पञ्चाग्निकोष्ठके । ऊर्ध्वतिर्यग्गतै रेखैः षड्वह्निक्रममागतैः ॥
तिथी एकाग्निकोष्ठेषु त्रयो राजाथ साजया । उदासपीडामृत्युश्च कुजः सोमसुतः क्रमात् ॥१६॥
गुरुशुक्रशनैश्चरा रविचन्द्रौ यथोदितम् । रेवत्यादिशिवान्ताश्च ऋक्षे च प्रथमा कला ॥१७॥
पञ्च पञ्चान्यत्र भानि चैत्राद्य उदयस्तथा । द्वादशाहो द्विमासैश्च नाम्न आद्यक्षरं तथा ॥१८॥
कलालिङ्गा च या तिष्ठेत् पञ्चमस्तस्य वै मृतिः । कला तिथिस्तथा वारो नक्षत्रं मासमेव च ॥
नामोदयस्य पूर्वञ्च तथा भवति नान्यथा ॥ १९ ॥

ॐ क्षौं शिवाय नमः । दामाद्यङ्गशिवामीक्षा विषग्रहमतेर्हर ।
त्रैलोक्यमोहनं बीजं नृसिंहस्य तु पन्नगम् ॥ २० ॥

मृत्युञ्जयो गणो लक्ष्मीं रोचनाद्यैस्तु लेखिता। भूर्जे तु धारिताः कण्ठे बाहौ चेति जयादिदाः ॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे ज्योतिःशास्त्रं नाम पटषष्टितमोऽध्यायः ॥६६॥

सप्तषष्टितमोऽध्यायः

सूत उवाच

हरेः श्रुत्वा हरो गौरीं देहस्थं ज्ञानमब्रवीत् ॥ १ ॥
कुजो वह्नी रविः पृथ्वी शौरिरापः प्रकीर्त्तितः। वायुसंस्थः स्थितो राहुर्दक्षरन्ध्रावभासकः ॥ २ ॥
गुरुः शुक्रस्तथा सौम्यश्चन्द्रश्चैव चतुर्थकः । वामनाड्यान्तु मध्यस्थान् कारयेदात्मनस्तथा ॥३॥
यदा चार इडायुक्तस्तथा कर्म समाचरेत् । स्थानसेवां तथा ध्यानं वाणिज्यं राजदर्शनम् ॥
अन्यानि शुभकर्माणि कारयेत प्रयत्नतः ॥ ४ ॥
दक्षनाड़ीप्रवाहे तु शनिर्भौमश्च सैंहिकः । इनश्चैव तथाप्येत्र पापानामुदयो भवेत् ॥ ५ ॥
शुभाशुभविवेको हि ज्ञायते तु स्वरोदयात् । देहमध्ये स्थिता नाड्यो बहुरूपाः सुविस्तराः ॥६॥
नाभेरधस्ताद्यः स्कन्द अङ्कुरास्तत्र निर्गताः । द्विसप्ततिसहस्राणि नाभिमध्ये व्यवस्थिताः ॥
चक्रवच्च स्थितास्तास्तु सर्वाः प्राणहराः स्मृताः ॥ ७ ॥
तासां मध्ये त्रयः श्रेष्ठा वामदक्षिणमध्यमाः ॥ ८ ॥
वामा सोमात्मिका प्रोक्ता दक्षिणा रविसन्निभा । मध्यमा च भवेदग्निः फलतां कालरूपिणी ॥
वामा ह्यमृतरूपा च जगदाप्यायने स्थिता ॥ ९ ॥
दक्षिणा रौद्रभागेन जगच्छोषयते सदा । द्वयोर्वाहे तु मृत्युः स्यात् सर्वकार्य्यविनाशिनी ॥
निर्गमे तु भवेद्वामा प्रवेशे दक्षिणा स्मृता ॥ १० ॥
इडाचारे तथा सौम्यं चन्द्रसूर्य्यगतस्तथा । कारयेत्क्रूरकर्माणि प्राणे पिङ्गलसंस्थिते ॥११॥
यात्रायां सर्वकार्य्येषु विषापहरणे इड़ा । भोजने मैथुने युद्धे पिङ्गला सिद्धिदायिका ॥१२॥
उच्चाटमारणाद्येषु कर्मस्वेतेषु पिङ्गला । मैथुने चैव संग्रामे भोजने सिद्धिदायिका ॥१३॥
शोभनेषु च कार्य्येषु यात्रायां विषकर्मणि । शान्तिमुक्त्यर्थसिद्ध्यै च इड़ा योज्या नराधिपैः ॥
द्वाभ्याञ्चैव प्रवाहे च क्रूरसौम्यविवर्जने । विषुवं तं तु जानीयात् संस्मरेत्तु विचक्षणः ॥१५॥
सौम्यादिशुभकार्य्येषु लाभादिजयजीविते । गमनागमने चैव वामा सर्वत्र पूजिता ॥१६॥
युद्धादौ भोजने घाते स्त्रीणाञ्चैव तु सङ्गमे । प्रशस्ता दक्षिणा नाड़ी प्रवेशे क्षुद्रकर्मणि ॥१७॥

शुभाशुभानि कार्य्याणि लाभालाभौ जयाजयौ। जीवो जीवायत्पृच्छेन्न सिध्यति च मध्यमा॥
वामाचारेऽथवा दक्षे प्रत्यये यत्र नायकः ॥ १८ ॥
तनुस्थः पृच्छते यस्तु तत्र सिद्धिर्न संशयः। वैच्छन्दो वामदेवस्तु यदा वहति चात्मनि ॥
तत्र भागे स्थितः पृच्छेत् सिद्धिर्भवति निष्फला ॥ १९ ॥
वामे वा दक्षिणे वापि यत्र संक्रमते शिवा। घोरे घोराणि कार्य्याणि सौम्ये वै मध्यमानि च ॥
प्रस्थिते भागतो हंसे द्वाभ्यां वै सर्वबाहिनी ॥ २० ॥
तदा मृत्युं विजानीयाद्योगी योगविशारदः। यत्र यत्र स्थितः पृच्छेद्वामदक्षिणसंमुखः ॥२१॥
तत्र तत्र समं दिश्याद्वातस्योदयनं सदा। अग्रतो वामिका श्रेष्ठा पृष्ठतो दक्षिणा शुभा ॥
वामेन वामिका प्रोक्ता दक्षिणे दक्षिणा शुभा ॥ २२ ॥
जीवो जीवति जीवेन यच्छून्यं तत् स्वरो भवेत्। यत्किञ्चित्कार्य्यमुद्दिष्टं जयादिशुभलक्षणम्२३॥
तत्सर्वं पूर्णनाड्यान्तु जायते निर्विकल्पतः। अन्यनाड्यादिपर्य्यन्तं पक्षत्रयमुदाहृतम् ॥ २४ ॥
यावत्षष्ठीन्तु पृच्छायां पूर्णायां प्रथमो जयेत्। रिक्तायान्तु द्वितीयस्तु कथयेत्तदशङ्कितः ॥ २५ ॥
वामाचारसमो वायुर्जायते कर्मसिद्धिदः। प्रवृत्ते दक्षिणे मार्गे विषमे विषमाक्षरम् ॥ २६ ॥
अन्यत्र वामवाहे तु नाम वै विषमाक्षरम्। तदासौ जयमाप्नोति योधः संग्राममध्यतः ॥ २७ ॥
दक्षवातप्रवाहे तु यदि नाम समाक्षरम्। जायते नात्र संदेहो नाड़ीमध्ये तु लक्षयेत् ॥ २८ ॥
पिङ्गलान्तर्गते प्राणे शमनीयाहवञ्जयेत्। यावन्नाड्योदयं चारस्तां दिशं यावदापयेत् ॥२९॥
न दातुं जायते सोऽपि नात्र कार्य्या विचारणा। अथ संग्राममध्ये तु यत्र नाड़ी सदा वहेत्॥३०॥
सा दिशा जयमाप्नोति शून्ये भङ्गं विनिर्दिशेत्। जातचारे जयं विद्यान्मृतके मृतमादिशेत् ॥
जयं पराजयं चैव यो जानाति स पण्डितः ॥ ३१ ॥
वामे वा दक्षिणे वापि यत्र सञ्चरते शिवम्। कृत्वा तत्पादमाप्नोति यात्रा सन्ततशोभना ॥३२॥
शशिसूर्य्यप्रवाहे तु सति युद्धं समाचरेत्। तत्रस्थः पृच्छते यस्तु स साधुर्जयते ध्रुवम् ॥३३॥
यां दिशं वहते वायुस्तां दिशं यावदाजयेत्। जायते नात्र सन्देह इन्द्रो यद्यग्रतः स्थितः ॥३४॥
मेष्याद्या दश या नाड्यो दक्षिणा वामसंस्थिताः। चरस्थिरद्विमार्गे तास्तादृशे तादृशः क्रमात् ॥
निर्गमे निर्गमं याति संग्रहे संग्रहं विदुः। पृच्छकस्य वचः श्रुत्वा घण्टाकारेण लक्षयेत् ॥३६॥
वामे वा दक्षिणे वापि पञ्चतत्त्वस्थितः शिवे। ऊर्ध्वेऽग्निरध आपश्च तिर्य्यक्संस्थः प्रभञ्जनः ॥
मध्ये तु पृथिवी ज्ञेया नभः सर्वत्र सर्वदा ॥ ३७ ॥
ऊर्द्ध्वे मृत्युरधः शान्तिस्तिर्य्यक् चोच्चाटयेत्सुधीः। मध्ये स्तम्भं विजानीयान्मोक्षः सर्वत्र सर्वगे ॥
इति श्रीगारुड़े महापुराणे पवनविजयादिर्नाम सप्तषष्टितमोऽध्यायः ॥६७॥

अष्टषष्टितमोऽध्यायः

सूत उवाच

परीक्षां वच्मि रत्नाना बलो नामासुरोऽभवत् । इन्द्राद्या निर्जितास्तेन निर्जेतुं तैर्न शक्यते ॥१॥
वरव्याजेन पशुतां याचितः स सुरैर्मखे । बलो ददौ स्वपशुतामतिसत्त्वो मखे हतः ॥२॥
पशुवत्प्रविशेत्स्तम्भे स्ववाक्याशनियन्त्रितः । बलो लोकोपकाराय देवानां हितकाम्यया ॥३॥
तस्य सत्त्वविशुद्धस्य विशुद्धेन च कर्मणा । कायस्यावयवाः सर्वे रत्नबीजत्वमाययुः ॥४॥
देवानामथ यक्षाणां सिद्धानां पवनाशिनाम् । रत्नबीजमयं ग्राहः सुमहानभवत्तदा ॥५॥
तेषां तु पततां वेगाद्विमानेन विहायसा । यद्यत्पपात रत्नानां बीजं क्वचन किञ्चन ॥६॥
महोदधौ सरिति वा पर्वते काननेऽपि वा । तत्तदाकरतां यातं स्थानमाधेयगौरवात् ॥७॥
तेषु रक्षो विषव्यालव्याधिघ्नान्यघहानि च । प्रादुर्भवन्ति रत्नानि तथैव विगुणानि च ॥ ८ ॥
वज्रमुक्ता तु मणयः सपद्मरागाः समरकताः प्रोक्ताः । अपि चेन्द्रनीलमणिवरवैदूर्याश्च पुष्परागाश्च ॥
कर्केतनं सपुलकं रुधिराख्यसमन्वितं तथा स्फटिकम् । विद्रुममणिश्च यत्नादुद्दिष्टं संग्रहे तज्ज्ञैः ॥
आकारवर्णौ प्रथमं गुणदोषौ तत्फलं परीक्ष्य च । मूल्यञ्च रत्नकुशलैर्विज्ञेयं सर्वशास्त्राणाम् ॥
कुलग्नेषूपजायन्ते यानि चोपहतेऽहनि । दोषैस्तानुपयुज्यन्ते हीयन्ते गुणसम्पदा ॥१२॥
परीक्षापरिशुद्धानां रत्नानां पृथिवीभुजा । धारणं संग्रहो वापि कार्य्यः श्रियमभीप्सता ॥१३॥
शास्त्रज्ञाः कुशलाश्चापि रत्नभाजः परीक्षकाः । त एव मूल्यमात्राया वेत्तारः परिकीर्त्तिताः ॥१४॥
महाप्रभावं विबुधैर्यस्माद्वज्रमुदाहृतम् । वज्रपूर्वा परीक्षेयं ततोऽस्माभिः प्रकीर्त्यते ॥१५॥

तस्यास्थिलेशो निपपात येषु भुवः प्रदेशेषु कथञ्चिदेव ।
वज्राणि वज्रायुधनिर्जिगीषोर्भवन्ति नानाकृतिमन्ति तेषु ॥१६॥

हैममातङ्गसौराष्ट्राः पौण्ड्रकालिङ्गकोशलाः । वेण्वातटाः ससौवीरा वज्रस्याष्टविहारकाः ॥१७॥

आताम्रा हिमशैलजाश्च शशिभा वेण्वातटीयाः स्मृताः
सौवीरे त्वसिताब्जमेघसदृशास्ताम्राश्च सौराष्ट्रजाः ।
कालिङ्गाः कनकावदातरुचिराः पीतप्रभाः कोशले
श्यामाः पुण्ड्रभवा मतङ्गविषये नात्यन्तपीतप्रभाः ॥१८॥

अत्यर्थं लघुवर्णतश्च गुणवत्पार्श्वेषु सम्यक्समं रेखाबिन्दुकलङ्ककाकपदकत्रासादिभिर्वर्जितम् ।
लोकेऽस्मिन्परमाणुमात्रमपि यद्वज्रं क्वचिद्दृश्यते तस्मिन्देवसमाश्रयो ह्यवितथंतीक्ष्णाग्रधारं यदि ॥

वज्रेषु वर्णयुक्त्या देवानामपि विग्रहः प्रोक्तः। वर्णेभ्यश्च विभागः कार्य्यो वर्णाश्रयादेव ॥२०॥

हरितश्वेतपीतपिङ्गश्यामताम्राः स्वभावतो रुचिराः।
हरिवरुणशक्रहुतवहपितृपतिमरुतां स्वका वर्णाः ॥२१॥

विप्रस्य शङ्खकुमुदस्फटिकावदातः स्यात्क्षत्रियस्य शशबभ्रुविलोचनाभः॥
वैश्यस्य कान्तकदलीदलसन्निकाशः शूद्रस्य धौतकरबालसमानदीप्तिः ॥२२॥

द्वौ वज्रवर्णौ पृथिवीपतीनां सद्भिः प्रदिष्टौ न तु सार्वजन्यौ।
यः स्याज्जवाविद्रुमभङ्गशोणो यो वा हरिद्रारससन्निकाशः ॥२३॥

ईशत्वात्सर्ववर्णानां गुणवत्सार्ववर्णिकम्। कामतो धारयेद्राजा न त्वन्योऽन्यः कथञ्चन ॥२४॥
अधरोत्तरवृत्त्या हि याहक्स्याद्वर्णसङ्करः। ततः कष्टतरो वज्री वर्णानां सङ्करो मतः ॥२५॥

न च मार्गविभागमात्रवृत्त्या विदुषा वज्रपरिग्रहो विधेयः।
गुणवद्गुणसम्पदां विभूतिर्विपरीतो व्यसनोदयस्य हेतुः ॥२६॥

एकमपि यस्य शृङ्गं विदलितमवलोक्यते विशीर्णं वा। गुणवदपि तन्न धार्य्यं श्रेयोऽर्थिभिर्भवने॥

स्फुटिताग्निविशीर्णशृङ्गदेशं मलवर्णैः पृषतैर्व्यपेतमध्यम्।
न हि वज्रभृतोऽपि वज्रमाशु श्रियमन्याश्रयलालसां न कुर्यात् ॥२८॥
यस्यैकदेशः क्षतजावभासो यद्वा भवेल्लोहितवर्णचित्रम्।
न तत्र कुर्य्याद् ह्रियमाणमाशु स्वच्छन्दमृत्योरपि जीवितान्तम् ॥२९॥

कोट्यः पार्श्वानि धाराश्च षडष्टौ द्वादशेति च। उत्तुङ्गसमतीक्ष्णाग्रा वज्रस्याकरजा गुणाः॥

षट्कोटिशुद्धममलं स्फुटतीक्ष्णधारं वर्णान्वितं लघु सुपार्श्वमपेतदोषम्।
इन्द्रायुधांशुविसृतिच्छुरितान्तरिक्षमेवंविधं भुवि भवेत्सुलभं न वज्रम् ॥३१॥

तीक्ष्णाग्रं विमलमपेतसर्वदोषं धत्ते यः प्रयततनुः सदैव वज्रम्।
वृद्धिस्तं प्रतिदिनमेति यावदायुः स्त्रीसम्पत्सुतधनधान्यगोपशूनाम् ॥३२॥

व्यालवह्निविषव्याघ्रतस्कराम्बुभयानि च। दूरात्तस्य निवर्त्तन्ते कर्माण्याथर्वणानि च ॥३३॥

यदि वज्रमपेतसर्वदोषं बिभृयात्तण्डुलविंशतिं गुरुत्वे।
मणिशास्त्रविदो वदन्ति तस्य द्विगुणं रूपलक्षणमग्रमूल्यम् ॥३४॥
त्रिभागहीनार्द्धतदर्द्धशेषं त्रयोदशं त्रिंशदतोऽर्द्धभागाः।
अशीतिभागोऽथ शतांशभागः सहस्रभागोऽल्पसमानयोगः ॥३५॥
यत्तण्डुलैर्द्वादशभिः कृतस्य वज्रस्य मूल्यं प्रथमं प्रदिष्टम्।
द्वाभ्यां क्रमाद्धानिमुपागतस्य त्वेकावसानस्य विनिश्चयोऽयम् ॥३६॥

न चापि तण्डुलैरेव वज्राणां धारणक्रमः। अष्टाभिः सर्षपैर्गौरैस्तण्डुलं परिकल्पयेत् ॥३७॥
यत्तु सर्वगुणैर्युक्तं वज्रं तरति वारिणि। रत्नवर्गे समस्तेऽपि तस्य धारणमिष्यते ॥३८॥
अल्पेनापि हि दोषेण लक्ष्यालक्ष्येण दूषितम्। स्वमूल्याद्दशमं भागं वज्र लभति मानवः ॥३९॥
प्रकटानेकदोषस्य स्वल्पस्य महतोऽपि वा। स्वमूल्याच्छतशो भागो वज्रस्य न विधीयते ॥४०॥
स्पृष्टदोषमलङ्कारे वज्रं यद्यपि दृश्यते। रत्नानां परिकल्पार्थं मूल्यं तस्य भवेल्लघु ॥४१॥

प्रथमं गुणसम्पदाभ्युपेतं प्रतिबद्धं समुपैति यच्च दोषम्।
अलमाभरणेन तस्य राज्ञो गुणहीनोऽपि मणिर्न भूषणाय ॥४२॥

नार्य्या वज्रमधार्य्यं गुणवदपि सुतप्रसूतिमिच्छन्त्या।अन्यत्र दीर्घचिपिटह्रस्वाद्गुणैर्विमुक्ताच्च ॥
अयसा पुष्परागेण तथा गोमेदकेन च। वैदूर्य्यस्फटिकाभ्याञ्च काचैश्चापि पृथग्विधैः ॥४४॥
प्रतिरूपाणि कुर्वन्ति वज्रस्य कुशला जनाः। परीक्षा तेषु कर्त्तव्या विद्वद्भिः सुपरीक्षकैः ॥
क्षारोल्लेखनशालाभिस्तेषां कार्य्यं परीक्षणम् ॥४५॥
पृथिव्यां यानि रत्नानि ये चान्ये लोहधातवः। सर्वाणि विलिखेद्वज्रं तच्च तैर्न विलिख्यते ॥४६॥
गुरुता सर्वरत्नानां गौरवाधारकारणम्। वज्रे तां वैपरीत्येन सूरयः परिचक्षते ॥४७॥
जातिरजातिं विलिखन्ति वज्रकुरुविन्दाः। वज्रैर्वज्रं विलिखति नान्येन विलिख्यते वज्रम् ॥४८॥
वज्राणि मुक्तामणयो ये च केचन जातयः। न तेषां प्रतिबद्धानां भा भवत्यूर्ध्वगामिनी ॥४९॥
तिर्य्यक्क्षतत्वात्केषाञ्चित्कथञ्चिद्यदि दृश्यते। तिर्य्यगालिख्यमानानां स पार्श्वेषु विहन्यते ॥५०॥

यद्यपि विशीर्णकोटिः स विन्दुरेखान्वितो विवर्णो वा।
तदपि धनधान्यं पुत्रान्करोति सेन्द्रायुधो वज्रः ॥५१॥
सौदामिनीविस्फुरिताभिरामं राजा यथोक्तं कुलिशं दधानः।
पराक्रमाक्रान्तपरप्रतापः समस्तसामन्तभुवं भुनक्ति ॥५२॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे वज्रपरीक्षानाम अष्टषष्टितमोऽध्यायः ॥६८॥

ऊनसप्ततितमोऽध्यायः

सूत उवाच

द्विपेन्द्रजीमूतवराहशङ्खमत्स्याहिशुक्त्युद्भववेणुजानि।
मुक्ताफलानि प्रथितानि लोके तेषाञ्च शुक्त्युद्भवमेव भूरि ॥ १ ॥

तत्रैव चैकस्य हि मूलमात्रा निविश्यते रत्नपरस्य जातु ।
वेध्यन्तु शुक्त्युद्भवमेव तेषां शेषाण्यवेध्यानि वदन्ति तज्ज्ञाः ॥ २ ॥
त्वक्सारनागेन्द्रतिमिप्रसूतं यच्छङ्खजं यच्च वराहजातम् ।
प्रायोविमुक्तानि भवन्ति भासा शस्तानि माङ्गल्यतया तथापि ॥ ३ ॥
या मौक्तिकानामिह जातयोऽष्टौ प्रकीर्त्तिता रत्नविनिश्चयज्ञैः ।
कम्बूद्भवं तेष्वधमं प्रदिष्टमुत्पद्यते यच्च गजेन्द्रकुम्भात् ॥ ४ ॥
स्वयो निमध्यच्छवितुल्यवर्णं शाङ्खं बृहत्कोणपलप्रमाणम् ।
उत्पद्यते वारणकुम्भमध्यादापीतवर्णं प्रभया विहीनम् ॥ ५ ॥
ये कम्बवः शार्ङ्गमुखावमर्षपीतस्य शङ्खप्रवरस्य गोत्रे ।
मतङ्गजाश्चापि विशुद्धवंश्यास्ते मौक्तिकानां प्रभवाः प्रदिष्टाः ॥
उत्पद्यते मौक्तिकमेषु वृत्तमापीतवर्णं प्रभया विहीनम् ॥ ६ ॥
पाठीनपृष्ठस्य समानवर्णं मीनात् सुवृत्तं लघु चातिसूक्ष्मम् ।
उत्पद्यते वारिचराननेषु मत्स्याश्च ते मध्यचराः पयोधेः ॥ ७ ॥
वराहदंष्ट्राग्रभवं प्रदिष्टं तस्यैव दंष्ट्राङ्कुरतुल्यवर्णम् ।
क्वचित् कथञ्चित् स भुवः प्रदेशे प्रजायते शूकरवद्विशिष्टः ॥ ८ ॥
वर्षोपलानां समवर्णशोभं त्वक्सारपर्वप्रभवं प्रदिष्टम् ।
ते वेणवो भव्यजनोपभोग्ये स्थाने प्ररोहन्ति न सार्वजन्ये ॥ ९ ॥
भौजङ्गमं मीनविशुद्धवृत्तं संस्थानतोऽत्युज्ज्वलवर्णशोभम् ।
नितान्तधौतप्रविकल्पमाननिस्त्रिंशधारासमवर्णकान्ति ॥१०॥
प्राप्यातिरत्नानि महाप्रभाणि राज्यं श्रियं वा महतीं दुरापाम् ।
तेजोऽन्विताः पुण्यकृतो भवन्ति मुक्ताफलस्याहिशिरोभवस्य ॥११॥
जिज्ञासया रत्नधनं विधिज्ञैः शुभे मुहूर्त्ते प्रयतैः प्रयत्नात् ।
रक्षाविधानं सुमहद्विधाय हर्म्योपरिष्टं क्रियते यदा तत् ॥१२॥
तदा महादुन्दुभिमन्द्रघोषैर्विद्युल्लताविस्फुरितान्तरालैः ।
पयोधराक्रान्तिविलम्बिनम्रैर्घनैर्घनैराव्रियतेऽन्तरिक्षम् ॥१३॥
न तं भुजङ्गा न तु यातुधाना न व्याधयो नाप्युपसर्गदोषाः ।
हिंसन्ति यस्या हि शिरःसमुत्थं मुक्ताफलं तिष्ठति कोषमध्ये ॥१४॥

नाभ्येति मेघप्रभवं धरित्रीं वियद्गतं तद्विबुधा हरन्ति ।
अर्चिःप्रभानावृतदिग्विभागमादित्यवद्दुःखविभाव्यबिम्बम् ॥१५॥
तेजस्तिरस्कृत्य हुताशनेन्दुनक्षत्रताराप्रभवं समग्रम् ।
दिवा यथा दीप्तिकरं तथैव तमोऽपगाढ़ास्वपि तन्निशासु ॥१६॥
विचित्ररत्नद्युतिचारुतोया चतुःसमुद्रा भवनाभिरामा ।
मूल्यं न वा स्यादिति निश्चयो मे कृत्स्ना मही तस्य सुवर्णपूर्णा ॥१७॥
हीनोऽपि यस्तल्लभते कदाचिद्विपाकयोगान्महतः शुभस्य ।
सापत्न्यहीनां स महीं समग्रां भुनक्ति तत्तिष्ठति यावदेव ॥१८॥
न केवलं तच्छुभकृन्नृपस्य भाग्यैः प्रजानामपि तस्य जन्म ।
तद्योजनानां परितः सहस्रं सर्वाननर्थान् विमुखीकरोति ॥१९॥
नक्षत्रमालेव दिवो विशीर्णा दन्तावली तस्य महासुरस्य ।
विचित्रवर्णेषु विशुद्धवर्णा पयःसु पत्युः पयसां पपात ॥२०॥
सम्पूर्णचन्द्रांशुकलापकान्तेर्मणिप्रवेकस्य महागुणस्य ।
तच्छुक्तिमत्सु स्थितिमाप बीजमासन् पुराऽप्यन्यभवानि यानि ॥२१॥
यस्मिन्प्रदेशेऽम्बुनिधौ पपात सुचारुमुक्तामणिरत्नबीजम् ।
तस्मिन्पयस्तोयधरावकीर्णं शुक्तौ स्थितं मौक्तिकतामवाप ॥२२॥

सैंहलिकपारलौकिकसौराष्ट्रिकताम्रपर्णपारशवाः। कौबेरपाण्ड्यहाटकहेमका इत्याकरास्त्वष्टौ ॥

शुक्त्युद्भवं नाति निकृष्टवर्णं प्रमाणसंस्थानगुणप्रभाभिः ।
उत्पद्यते वर्द्धनपारसीकपाताललोकान्तरसिंहलेषु ॥२४॥
चिन्त्या न तस्याकरजा विशेषा रूपे प्रमाणे च यतेत विद्वान् ।
न च व्यवस्थास्ति गुणागुणेषु सर्वत्र सर्वाकृतयो भवन्ति ॥२५॥
एकस्य शुक्तिप्रभवस्य मुक्ताफलस्य शाणेन समुन्मितस्य ।
मूल्यं सहस्राणि तु रूपकाणां त्रिभिः शतैरप्यधिकानि पञ्च ॥२६॥
यन्माषकार्द्धेन ततो विहीनं तत्पञ्चभागद्वयहीनमूल्यम् ।
यन्माषकांस्त्रीन् बिभृयात्सहस्रे द्वे तस्य मूल्यं परमं प्रदिष्टम् ॥२७॥
अर्द्धाधिकौ द्वौ वहतोऽस्य मूल्यं त्रिभिः शतैरप्यधिकं सहस्रम् ।
द्विमाषकोन्मापितगौरवस्य शतानि चाष्टौ कथितानि मूल्यम् ॥२८॥

अर्द्धाधिकं माषकमुन्मितस्य सपञ्चविंशत्त्रितयं शतानाम् ।
गुञ्जाश्च षड् धारयतः शते द्वे मूल्यं परं तस्य वदन्ति तज्ज्ञाः ।
अध्यर्द्धमुन्मापकृतं शतं स्यान्मूल्यं गुणैस्तस्य समन्वितस्य ॥२६॥
यदि षोडशभिर्भवेदनूनं धरणं तत्प्रवदन्ति दार्विकाख्यम् ।
अधिकं दशभिः शतञ्च मूल्यं समाप्नोत्यपि वालिशस्य हस्तात् ॥३०॥
द्विगुणैर्दशभिर्भवेदनूनं धरणं तद्भवकं वदन्ति तज्ज्ञाः ।
नवसप्ततिमाप्नुयात्स्वमूल्यं यदि न स्याद्गुणसम्पदा विहीनम् ॥३१॥
त्रिशतां धरणं पूर्णं शिक्यन्तस्येति कीर्त्यते । चत्वारिंशद्भवेत्तस्याः परो मूल्यो विनिश्चयः ॥३२॥
चत्वारिंशद्भवेच्छिक्थो त्रिंशन्मूल्यं लभेत सा । षष्टिर्निकरशीर्षं स्यात्तस्य मूल्यं चतुर्दश ॥३३॥
अशीतिर्नवतिश्चैव कूप्येति परिकीर्त्तिता । एकादश स्यान्नव च तयोर्मूल्यमनुक्रमात् ॥३४॥
आदाय तत्सकलमेव ततोऽन्नभाण्डं जम्बीरजातरसयोजनया विपक्कम् ।
घृष्टं ततो मृदुतनूकृतपिण्डमूलैः कुर्य्याद्यथेष्टमनुमौक्तिकमाशुविद्धम् ॥३५॥
मृल्लिप्तमत्स्यपुटमध्यगतन्तु कृत्वा पश्चात्पचेत्तनु ततश्च वितानपत्या ।
दुग्धे ततः पयसि तं विपचेत्सुधायां पक्कं ततोऽपि पयसा शुचिचिक्कणेन ॥३६॥
शुद्धं ततो विमलवस्त्रनिघर्षणेन स्यान्मौक्तिकं विपुलसद्गुणकान्तियुक्तम् ।
व्याडिर्जगाद जगतां हि महाप्रभावसिद्धो विदग्धहिततत्परया दयालुः ॥३७॥
श्वेतकाचसमं तारं हेमांशशतयोजितम् । रसमध्ये प्रधार्य्येत मौक्तिकं देहभूषणम् ॥
एवं हि सिंहले देशे कुर्वन्ति कुशला जनाः ॥३८॥

यस्मिन्कृत्रिमसन्देहः क्वचिद्भवति मौक्तिके । उष्णे सलवणे स्नेहे निशां तद्वासयेज्जले ॥३९॥
व्रीहिभिर्मर्दनीयं वा शुष्कवस्त्रोपवेष्टितम् । यत्तु नायाति वैवर्ण्यं विज्ञेयं तदकृत्रिमम् ॥४०॥
सितं प्रमाणवत् स्निग्धं गुरु स्वच्छं सुनिर्मलम् । तेजोऽधिकं सुवृत्तञ्च मौक्तिकं गुणवत्स्मृतम् ॥
प्रमाणवद्गौरवरश्मियुक्तं सितं सवृत्तं समसूक्ष्मवेधम् ।
अक्रेतुरप्यावहति प्रमोदं यन्मौक्तिकं तद्गुणवत् प्रदिष्टम् ॥४२॥
एवं समस्तेन गुणोदयेन यन्मौक्तिकं योगमुपागतं स्यात् ।
न तस्य भर्त्तारमनर्थजात एकोऽपि कश्चित्समुपैति दोषः ॥४३॥
इति श्रीगारुडे महापुराणे मुक्ताफलपरीक्षा नाम ऊनसप्ततितमोऽध्यायः ॥६९॥

———

सप्ततितमोऽध्यायः

सूत उवाच

दिवाकरस्तस्य महामहिम्नो महासुरस्योत्तमरत्नबीजम् ।
असृग् गृहीत्वा चरितुं प्रतस्थे निस्त्रिंशनीलेन नभःस्थलेन ॥ १ ॥
जेत्रा सुराणां समरेष्वजस्रं वीर्य्यावलेपोद्धतमानसेन ।
लङ्काधिपेनार्द्धपथे समेत्य स्वर्भानुनेव प्रसभं निरुद्धः ॥ २ ॥
तस्मिंहलीचारुनितम्बबिम्बविक्षोभितागाधमहाह्रदायाम् ।
पूगद्रुमाबद्धतटद्वयायां मुमोच सूर्य्यः सरिदुत्तमायाम् ॥ ३ ॥
ततःप्रभृति सा गङ्गा तुल्यपुण्यफलोदया । नाम्ना रावणगङ्गेति प्रथिमानमुपागता ॥ ४ ॥
ततः प्रभृत्येव च शर्वरीषु कूलानि रत्नैर्निचितानि तस्याः ।
सुवर्णनाराचशतैरिवान्तर्बहिःप्रदीप्तैर्निशितानि भान्ति ॥ ५ ॥
तस्यास्तटेषूज्ज्वलचारुरागा भवन्ति तोयेषु च पद्मरागाः ।
सौगन्धिकोत्थाः कुरुविन्दजाश्च महागुणाः स्फाटिकसंप्रसूताः ॥ ६ ॥
बन्धूकगुञ्जासकलेन्द्रगोपजवासमासृक्समवर्णशोभाः ।
भ्राजिष्णवो दाड़िमबीजवर्णास्तथापरे किंशुकपुष्पभासः ॥ ७ ॥
सिन्दूरपद्मोत्पलकुङ्कुमानां लाक्षारसस्यापि समानवर्णाः ।
सान्द्रेऽपि रागे प्रभया स्वयैव भान्ति स्वलक्ष्याः स्फुटमध्यशोभाः ॥ ८ ॥
भानोश्च भासामनुवेधयोगमासाद्य रश्मिप्रकरेण दूरम् ।
पार्श्वानि सर्वाण्यनुरञ्जयन्ति गुणोपपन्नाः स्फटिकप्रसूताः ॥ ९ ॥
कुसुम्भनीलव्यतिमिश्ररागप्रत्युग्ररक्ताम्बुजतुल्यभासः ।
तथापरेऽरुष्करकण्टकारीपुष्पत्विषो हिङ्गुलवत्त्विषोऽन्ये ॥१०॥
चकोरपुंस्कोकिलसारसानां नेत्रावभासश्च भवन्ति केचित् ।
अन्ये पुनः सन्ति च पुष्पितानां तुल्यत्विषः कोकनदोत्तमानाम् ॥११॥
प्रभावकाठिन्यगुरुत्वयोगैः प्रायः समानाः स्फटिकोद्भवानाम् ।
आनीलरक्तोत्पलचारुभासः सौगन्धिकोत्था मणयो भवन्ति ॥१२॥
कामं तु रागः कुरुविन्दजेषु स नैव यादृक्स्फटिकोद्भवेषु ।
निरर्चिषोऽन्तर्बहला भवन्ति प्रभाववन्तोऽपि न तैः समस्तैः ॥ १३ ॥

ये तु रावणगङ्गायां जायन्ते कुरुविन्दकाः । पद्मरागघनं रागं बिभ्राणाः स्फटिकार्चिषः ॥१४॥
वर्णानुयायिनस्तेषां अन्ध्रदेशे तथा परे । न जायन्ते हि ये केचिन्मूल्यलेशमवाप्नुयुः ॥१५॥
तथैव स्फाटिकोत्थानां देशे तुम्बुरुसंज्ञके । सधर्माणः प्रजायन्ते स्वल्पमूल्या हि ते स्मृताः ॥
वर्णाधिक्यं गुरुत्वञ्च स्निग्धता समताच्छता । अर्चिष्मत्ता महत्ता च मणीनां गुणसंग्रहः ॥१७॥

ये कर्कराच्छिद्रमलोपदिग्धाः प्रभाविमुक्ताः परुषा विवर्णाः ।
न ते प्रशस्ता मणयो भवन्ति समानतो जातिगुणैः समस्तैः ॥१८॥
दोषोपसृष्टं मणिमप्रबोधाद्बिभर्ति यः कश्चन कश्चिदेव ।
तं शोकचिन्तामयमृत्युवित्तनाशादयो दोषगणा हरन्ति ॥१६॥

कामं चारुतराः पञ्च जातीनां प्रतिरूपकाः । विजातयः प्रयत्नेन विद्वांस्तानुपलक्षयेत् ॥२०॥
कलसपुरोद्भवसिंहलतुम्बुरुदेशोत्थमुक्तपाणीयाः । श्रीपूर्णकाश्च सदृशा विजातयः पद्मरागाणाम् ॥

तुषोपसर्गात्कलसाभिधानमाताम्रभावादपि तुम्बुरुत्थम् ।
कार्ष्ण्यात्तथा सिंहलदेशजातं मुक्ताभिधानं नभसः स्वभावात् ॥२२॥
श्रीपूर्णकं दीप्तिविनाकृतत्वाद्विजातिलिङ्गाश्रय एव भेदः ।
यस्ताम्रिकां पुष्यति पद्मरागो योगात्तुषाणामिव पूर्णमध्यः ॥२३॥
स्नेहप्रदिग्धः प्रतिभाति यश्च यो वा प्रघृष्टः प्रजहाति दीप्तिम् ।
आक्रान्तमूर्द्धा च तथाङ्गुलिभ्यां यः कालिकां पार्श्वगतां बिभर्ति ॥२४॥
संप्राप्य चोत्क्षिप्य यथानुवृत्तिं बिभर्त्ति यः सर्वगुणानतीव ।
तुल्यप्रमाणस्य च तुल्यजातेर्यो वा गुरुत्वेन भवेत्तु तुल्यः ।
प्राप्यापि रत्नाकरजां स्वजातिं लक्षेद्गुरुत्वेन गुणेन विद्वान् ॥२५॥

अप्रणश्यति सन्देहे शाणे तु परिलेखयेत् । स्वजातकसमुत्थेन लिखित्वापि परस्परम् ॥२६॥
वज्रं वा कुरुविन्दं वा विमुच्यानेन केनचित् । नाशक्यं लेखनं कर्तुं पद्मरागेन्द्रनीलयोः ॥२७॥

जात्यस्य सर्वेऽपि मणेस्तु यादृग् विजातयः सन्ति समानवर्णाः ।
तथापि नामाकरणार्थमेव भेदप्रकारः परमः प्रदिष्टः ॥२८॥
गुणोपपन्नेन सहावबद्धो मणिर्न धार्य्यो विगुणो हि जात्यः ।
न कौस्तुभेनापि सहावबद्धं विद्वान विजातिं बिभृयात्कदाचित् ॥ २९ ॥
चण्डाल एकोऽपि यथा द्विजातीन्समेत्य भूरीनपि हन्त्ययत्नात् ।
अथो मणीन्भूरिगुणोपपन्नान्शक्नोति विप्लावयितुं विजात्यः ॥ ३० ॥

सपत्नमध्येऽपि कृताधिवासं प्रमादवृत्तावपि वर्त्तमानम् ।
न पद्मरागस्य महागुणस्य भर्त्तारमापत्स्पृशतीह काचित् ॥३१॥
दोषोपसर्गप्रभवाश्च ये ते नोपद्रवास्तं समभिद्रवन्ति ।
गुणैः समुत्तेजितचारुरागं यः पद्मरागं प्रयतो बिभर्त्ति ॥३३॥
वज्रस्य यत्तण्डुलसंख्ययोक्तं मूल्यं समुत्पादितगौरवस्य ।
तत्पद्मरागस्य महागुणस्य तन्माषकस्याकलितस्य मूल्यम् ॥३२॥
वर्णदीप्त्युपपन्नं हि मणिरत्नं प्रशस्यते । ताभ्यामीषदपि भ्रष्टं मणिमूल्यात्प्रहीयते ॥३४॥
इति श्रीगारुड़े महापुराणे पद्मरागपरीक्षा नाम सप्ततितमोऽध्यायः ॥७०॥

एकसप्ततितमोऽध्यायः

सूत उवाच

दानवाधिपतेः पित्तमादाय भुजगाधिपः । द्विधा कुर्वन्निव व्योम सत्वरं वासुकिर्ययौ ॥ १ ॥
स तदा स्वशिरोरत्नप्रभादीप्ते नभोऽम्बुधौ । राजतः स महानेकः खण्डसेतुरिवाबभौ ॥ २ ॥
ततः पक्षनिपातेन संहरन्निव रोदसी । गरुत्मान्पन्नगेन्द्रस्य प्रहर्त्तमुपचक्रमे ॥ ३ ॥
सहसैव मुमोच तत्फणीन्द्रः सुरसाद्युक्ततुरुस्कपादपायाम् ।
नलिकावनगन्धवासितायां वरमाणिक्यगिरेरुपत्यकायाम् ॥ ४ ॥
तस्य प्रपातसमनन्तरकालमेव तद्वद्वरालयमतीत्य रमासमीपे ।
स्थानं क्षितेरुपपयोनिधितीरलेखं तत्प्रत्ययान्मरकताकरतां जगाम ॥ ५ ॥
तत्रैव किञ्चित्पततस्तु पित्तादुपेत्य जग्राह ततो गरुत्मान् ।
मूर्च्छापरीतः सहसैव घोणारन्ध्रद्वयेन प्रमुमोच सर्वम् ॥ ६ ॥
तत्राकठोरशुककण्ठशिरीषपुष्पखद्योतपृष्ठचरशाद्वलशैवलानाम् ।
कह्लारशष्पकभुजङ्गभुजाश्च पत्रप्राप्तत्विषो मरकताः शुभदा भवन्ति ॥ ७ ॥
तद्यत्र भोगीन्द्रभुजाभियुक्तं पपात पित्तं दितिजाधिपस्य ।
तस्याकरस्यातितरां स देशो दुःखोपलभ्यश्च गुणैश्च युक्तः ॥ ८ ॥
तस्मिन्मरकतस्थाने यत्किञ्चिदुपजायते । तत्सर्वं विषरोगाणां प्रशमाय प्रकीर्त्यते ॥ ९ ॥
सर्वमन्त्रौषधिगणैर्यन्न शक्यं चिकित्सितुम् । महाहिदंष्ट्राप्रभवं विषं तत् तेन शाम्यति ॥१०॥

अन्यदप्याकरे तत्र यद्दोषैरुपवर्जितम् । जायते तत्पवित्राणामुत्तमं परिकीर्त्तितम् ॥११॥
अत्यन्तहरितवर्णं कोमलमर्चिर्विभेदजटिलञ्च। काञ्चनचूर्णस्यान्तः पूर्णमिव लक्ष्यते यच्च ॥१२॥
युक्तं संस्थानगुणैः समरागं गौरवेण । सवितुः करसंस्पर्शाच्छुरयति सर्वाश्रमं दीप्तया ॥१३॥
हित्वा च हरितभावं यस्यान्तर्विनिहिता भवेद्दीप्तिः। अचिरप्रभाप्रभाहतशाद्वलसमन्विता भाति॥

यच्च मनसः प्रसादं विदधाति निरीक्षितमतिमात्रम् ।
तन्मरकतं महागुणमिति रत्नविदां मनोवृत्तिः ॥ १५ ॥
वर्णस्यातिबहुलत्वाद्यस्यान्तः स्वच्छकिरणपरिधानम् ।
सान्द्रस्निग्धविशुद्धं कोमलबर्हिप्रभादिसमकान्ति ॥ १६ ॥
वर्णोज्ज्वलया कान्त्या सान्द्राकारो विभासया भाति ।
तदपि न गुणवत् संज्ञामाप्नोति यादृशीं पूर्वम् ॥ १७ ॥

शबलकठोरमलिनं रूक्षं पाषाणकर्करोपेतम् । दिग्धञ्च शिलाजतुना मरकतमेवंविधं विगुणम् ॥
यत्सन्धिशेषितं रत्नमन्यं मरकताद्भवेत् । श्रेयस्कामैर्न तद्धार्य्यं क्रेतव्यं वा कथञ्चन ॥१९॥
भल्लातकीपुत्रिका च तद्वर्णसमयोगतः । मणेर्मरकतस्यैते लक्षणीया विजातयः ॥२०॥
क्षौमेण वाससा मृष्टा दीप्तिं त्यजति पुत्रिका । लाघवेनैव काचस्य शक्या कर्त्तुं विभावना ॥२१॥
कस्यचिदनेकरूपैर्मरकतमनुगच्छतोऽपि गुणवर्णैः । भल्लातकस्यानिलैर्वैप्रम्यमुपैति वर्णस्य ॥२२॥
वज्राणि मुक्ताः सन्त्यन्ये ये च केचिद्द्विजातयः । तेषां नाप्रतिबद्धानां भा भवत्यूर्ध्वगामिनी २३॥
ऋजुत्वाच्चैव केषाञ्चित् कथञ्चिदुपजायते । तिर्य्यगालोच्यमानानां सद्यश्चैव प्रणश्यति ॥२४॥
स्नानाचमनजप्येषु रक्षामन्त्रक्रियाविधौ । ददद्भिर्गोहिरण्यानि कुर्वद्भिः साधनानि च ॥२५॥
दैवपैत्रातिथेयेषु गुरुसंपूजनेषु च । बाध्यमानेषु विविधैर्दोषजातैर्विषोद्भवैः ॥२६॥
दोषैर्हीनं गुणैर्युक्तं काञ्चनप्रतियोजितम् । संग्रामे विचरद्भिश्च धार्य्यं मरकतं बुधैः ॥२७॥
तुलया पद्मरागस्य यन्मूल्यमुपजायते । लभतेऽत्यधिकं तस्माद्गुणैर्मरकतं युतम् ॥२८॥
तथा च पद्मरागाणां दोषैर्मूल्यं प्रहीयते । ततोऽस्याप्यधिका हानिर्दोषैर्मरकते भवेत् ॥२९॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे मरकतपरीक्षा नाम एकसप्ततितमोऽध्यायः ॥७१॥

द्विसप्ततितमोऽध्यायः

सूत उवाच

तत्रैव सिंहलवधूकरपल्लवाग्रव्यालूनबालवलीकुसुमप्रवाले ।
देशे पपात दितिजस्य नितान्तकान्तं प्रोत्फुल्लनीरजसमद्युति नेत्रयुग्मम् ॥ १ ॥

तत्प्रत्ययादुभयशोभनवीचिभासा विस्तारिणी जलनिधेरुपकच्छभूमिः ।
प्रोद्भिन्नकेतकबलप्रतिबद्धलेखा सान्द्रेन्द्रनीलमणिरत्नवती विभाति ॥ २ ॥
तत्रासिताब्जहलभृङ्गसमानि भृङ्गशार्ङ्गायुधाङ्गहरकण्ठकषायपुष्पैः ।
शुभ्रेतरैश्च कुसुमैर्गिरिकर्णिकायास्तस्माद्भवन्ति मणयः सदृशावभासाः ॥ ३ ॥
अन्ये प्रसन्नपयसः पयसां निधातुरम्बुत्विषः शिखिगणप्रतिमास्तथान्ये ।
नीलीरसप्रभवबुद्बुदभाश्च केचित्केचित्तथा समदकोकिलकण्ठभासः ॥ ४ ॥
एकप्रकारा विस्पष्टवर्णशोभावभासिनः । जायन्ते मणयस्तस्मिन्निन्द्रनीला महागुणाः ॥ ५ ॥
मृत्पाषाणशिलारन्ध्रकर्करात्राससंयुताः । अभ्रिकापटलच्छायावर्णदोषैश्च दूषिताः ॥ ६ ॥
तत एव हि जायन्ते मणयस्तत्र भूरयः । शास्त्रसम्बोधितधियस्तान्प्रशंसन्ति सूरयः ॥ ७ ॥
धार्य्यमाणस्य ये दृष्टाः पद्मरागमणेर्गुणाः । धारणादिन्द्रनीलस्य तानेवाप्नोति मानवः ॥ ८ ॥
यथा च पद्मरागाणां जातकत्रितयं भवेत् । इन्द्रनीलेष्वपि तथा द्रष्टव्यमविशेषतः ॥ ९ ॥
परीक्षा प्रत्ययैर्यैश्च पद्मरागः परीक्ष्यते । तवैव प्रत्यया दृष्टा इन्द्रनीलमणेरपि ॥१०॥
यावन्तं चंक्रमेदग्निं पद्मरागोपयोगतः । इन्द्रनीलमणिस्तस्मात्क्रमेत सुमहत्तरम् ॥११॥
तथापि न परीक्षार्थं गुणानामभिवृद्धये । मणिरग्नौ समाधेयः कथञ्चिदपि कश्चन ॥१२॥
अग्निमात्रापरिज्ञाने दाहदोषैश्च दूषितः । सोऽनर्थाय भवेद्भर्त्तुः कर्तुः कारयितुस्तथा ॥१३॥
काचोत्पलकरवीरसस्फटिकाद्या इह बुधैः सवैदूर्य्याः ।
कथिता विजातय इमे सदृशा मणिनेन्द्रनीलेन ॥ १४ ॥
गुरुभावकठिनभावावेतेषां नित्यमेव विज्ञेयौ । काचाद्यथावदुत्तरविवर्द्धमानौ विशेषेण ॥१५॥
इन्द्रनीलो यथा कश्चिद्बिभर्त्याताम्रवर्णताम् । रक्षणीयौ तथा ताम्रौ करवीरोत्पलावुभौ ॥१६॥
यस्य मध्यगता भाति नीलस्येन्द्रायुधप्रभा । तमिन्द्रनीलमित्याहुर्महार्हं भुवि दुर्लभम् ॥१७॥
यस्य वर्णस्य भूयस्त्वात्क्षीरे शतगुणे स्थितः । नीलतां तन्नयेत्सर्वं महानीलः स उच्यते ॥१८॥
यत्पद्मरागस्य महागुणस्य मूल्यं भवेन्माषसमन्वितस्य ।
तदिन्द्रनीलस्य महागुणस्य वर्णस्य संख्याकुलितस्य मूल्यम् ॥१९॥
इति श्रीगारुडे महापुराणे इन्द्रनीलपरीक्षा नाम द्विसप्ततिमोऽध्यायः ॥७२॥

त्रिसप्ततितमोऽध्यायः

सूत उवाच

वैदूर्य्यपुष्परागाणां कर्केतनभीष्मकयोः । परीक्षा ब्रह्मणा प्रोक्ता व्यासेन कथिता द्विज ॥ १ ॥

कल्पान्तकालक्षुभिताम्बुराशेर्निर्ह्रादकल्पाद्दितिजस्य नादात् ।
वैदूर्य्यमुत्पन्नमनेकवर्णं शोभाभिरामद्युतिवर्णबीजम् ॥ २ ॥

अविदूरे विदूरस्य गिरेरुत्तुङ्गरोधसः । कामभूतिकसीमानमनु तस्याकरो भवेत् ॥ ३ ॥
तस्य नादसमुत्थत्वादाकरः सुमहागुणः । अभूदुत्तरितो लोके लोकत्रयविभूषणः ॥ ४ ॥

तस्यैव दानवपतेर्निनदानुरूपाः प्रावृट्पयोदवरदर्शितचारुरूपाः ।
वैदूर्य्यरत्नमणयो विविधावभासास्तस्मात्स्फुलिङ्गनिवहा इव संबभूवुः ॥ ५ ॥

पद्मरागमुपादाय मणिवर्णा हि ये क्षितौ । सर्वांस्तान्वर्णशोभाभिर्वैदूर्य्यमनुगच्छति ॥ ६ ॥

तेषां प्रधानं शिखिकण्ठनीलं यद्वा भवेद्वेणुदलप्रकाशम् ।
चाषाग्रपत्त्रप्रतिमश्रियो ये न ते प्रशस्ता मणिशास्त्रविद्भिः ॥ ७ ॥

गुणवान्वैदूर्य्यमणिर्योजयति स्वामिनं वरभाग्यैः । दोषैर्युक्तो दोषैस्तस्माद्यत्नात्परीक्षेत ॥ ८ ॥
गिरिकाचशिशुपालौ काचस्फटिकाश्च धूमनिर्भिन्नाः । वैदूर्य्यमणेरेते विजातयः सन्निभाः सन्ति ॥
लिख्याभावात्काचं लघुभावाच्छैशुपालकं विद्यात् । गिरिकाचमदीप्तित्वात्स्फटिकं वर्णोज्ज्वलत्वेन ॥

यदिन्द्रनीलस्य महागुणस्य सुवर्णसंख्याकलितस्य मूल्यम् ।
तदेव वैदूर्य्यमणेः प्रदिष्टं पलद्वयोन्मापितगौरवस्य ॥११॥
जात्यस्य सर्वेऽपि मणेस्तु यादृग्विजातयः सन्ति समानवर्णाः ।
तथापि नामाकरणानुमेयभेदप्रकारः परमः प्रदिष्टः ॥१२॥
सुखोपलक्ष्यश्च सदा विचार्य्यो ह्ययं प्रभेदो विदुषा नरेण ।
स्नेहप्रभेदो लघुता मृदुत्वं विजातिलिङ्गं खलु सार्वजन्यम् ॥१३॥
कुशलाकुशलैः प्रपूर्य्यमाणाः प्रतिबद्धाः प्रतिसत्क्रियाप्रयोगैः ।
गुणदोषसमुद्भवं लभन्ते मणयोऽर्थान्तरमूल्यमेव भिन्नाः ॥१४॥
क्रमशः समतीतवर्त्तमानाः प्रतिबद्धा मणिबन्धकेन यत्नात् ।
यदि नाम भवन्ति दोषहीना मणयः षड्गुणमाप्नुवन्ति मूल्यम् ॥१५॥

आकरान्समतीतानामुदधेस्तीरसन्निधौ । मूल्यमेतन्मणीनान्तु न सर्वत्र महीतले ॥१६॥
सुवर्णो मनुना यस्तु प्रोक्तः षोडशमाषकः । तस्य सप्ततमो भागः संज्ञारूपं करिष्यति ॥१७॥
शाणश्चतुर्माषमानो माषकः पञ्चकृष्णलः । पलस्य दशमो भागो धरणः परिकीर्त्तितः ॥१८॥

इति मणिविधिः प्रोक्तो रत्नानां मूल्यनिश्चये ॥१९॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे वैदूर्य्यपरीक्षा नाम त्रिसप्ततितमोऽध्यायः ॥७३॥

चतुःसप्ततितमोऽध्यायः

सूत उवाच

पतिताया हिमाद्रौ तु त्वचस्तस्य सुरद्विषः । प्रादुर्भवन्ति ताभ्यस्तु पुष्परागा महागुणाः ॥ १ ॥
आपीतपाण्डुरुचिरः पाषाणः पद्मरागसंज्ञकः । कौरुण्डकनामा स्यात्स एव यदि लोहितस्तु पीतः ॥
आलोहितस्तु पीतः स्वच्छः काषायकः स एवोक्तः । आनीलशुक्लवर्णः स्निग्धः सोमानकः सगुणः ३
अत्यन्तलोहितो यः स एव खलु पद्मरागसंज्ञः स्यात् । अपि चेन्द्रनीलसंज्ञः स एव कथितः सुनीलः सन् ॥
मूल्यं वैदूर्य्यमणेरिव गदितं ह्यस्य रत्नशास्त्रविदा । धारणफलञ्च तद्वत्किन्तु स्त्रीणां सुतप्रदो भवति ५

इति श्रीगारुड़े महापुराणे पुष्परागपरीक्षा नाम चतुःसप्ततितमोऽध्यायः ॥७४॥

पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः

सूत उवाच

वायुर्नखान्दैत्यपतेर्गृहीत्वा चिक्षेप सत्पद्मवनेषु हृष्टः ।
ततः प्रसूतं पवनोपपन्नं कर्केतनं पूज्यतमं पृथिव्याम् ॥ १ ॥
वर्णेन तद्रुधिरसोममधुप्रकाशमाताम्रपीतदहनोज्ज्वलितं विभाति ।
नीलं पुनः खलु सितं परुषं विभिन्नं व्याध्यादिदोषकरणे न च तद्विभाति ॥ २ ॥
स्निग्धा विशुद्धाः समरागिणश्च आपीतवर्णा गुरवो विचित्राः ।
त्रासव्रणव्यालविवर्जिताश्च कर्केतनास्ते परमं पवित्राः ॥ ३ ॥
पात्रेण काञ्चनमयेन तु वेष्टयित्वा तप्तं यदा हुतवहैर्भवति प्रकाशम् ।
रोगप्रणाशनकरं कलिनाशनं तदायुष्करं कुलकरञ्च सुखप्रदञ्च ॥ ४ ॥
एवंविधं बहुगुणं मणिमावहन्ति कर्केतनं शुभमलङ्कृतये नरा ये ।
ते पूजिता बहुधना बहुबान्धवाश्च नित्योज्ज्वलाः प्रमुदिता अपि ते भवन्ति ॥ ५ ॥
एकेऽपनह्य विकृताकुलनीलभासः प्रम्लानरागलुलिताः कलुषा विरूपाः ।
तेजोऽतिदीप्तिकुलपुष्टिविहीनवर्णाः कर्केतनस्य सदृशं वपुरुद्वहन्ति ॥ ६ ॥
कर्केतनं यदि परीक्षितवर्णरूपं प्रत्यग्रभास्वरदिवाकरसुप्रकाशम् ।
तस्योत्तमस्य मणिशास्त्रविदा महिम्ना तुल्यन्तु मूल्यमुदितं तुलितस्य कार्य्यम् ॥ ७ ॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे कर्केतनपरीक्षा नाम पञ्चसप्ततितमोऽध्यायः ॥७५॥

षट्सप्ततितमोऽध्यायः

सूत उवाच

हिमवत्युत्तरे देशे वीर्यं पतितं सुरद्विषस्तस्य ।
संप्राप्तमुत्तमानामाकरतां भीष्मरत्नानाम् ॥ १ ॥
शुक्लाः शङ्खाब्जनिभाः स्योनाकसन्निभाः प्रभावन्तः ।
प्रभवन्ति ततस्तरुणा वज्रनिभा भीष्मपाषाणाः ॥ २ ॥
हेमादिप्रतिबद्धाः शुद्धमपि शुद्धया विधत्ते यः ।
भीष्ममणिं ग्रीवादिषु सम्पदं सर्वदा लभते ॥ ३ ॥
निरीक्ष्य पलायन्ते ये तमरण्यनिवासिनः समीपेऽपि ।
द्वीपिवृकशरभकुञ्जरसिंहव्याघ्रादयो हिंस्राः ॥ ४ ॥
तस्योत्कलभकृतिनोर्भयं नचास्तीशमुपहसन्ति ।
भीष्ममणिर्गुणयुक्तो सम्यक्प्राप्ताङ्गुलीयकत्वम् ॥ ५ ॥
पितृतर्पणापि पितॄणां तृप्तिर्बहुवार्षिकी भवति ।
शाम्यन्त्युद्भूतान्यपि सर्पाण्डजाखुवृश्चिकविषाणि ।
सलिलाग्निवैरितस्करभयानि भीमानि नश्यन्ति ॥ ६ ॥
शैवलबलाहकाभं परुषं पीतप्रभं प्रभाहीनम् ।
मलिनद्युति च विवर्णं दूरात्परिवर्जयेत्प्राज्ञः ॥ ७ ॥
मूल्यं प्रकल्प्यमेषां विबुधवरैर्देशकालविज्ञानात् ।
दूरे भूतानां बहु किञ्चिन्निकटप्रसूतानाम् ॥ ८ ॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे वैदूर्यपरीक्षा नाम षट्सप्ततितमोऽध्यायः ॥७६॥

सप्तसप्ततितमोऽध्यायः

सूत उवाच

पुण्येषु पर्वतवरेषु च निम्नगासु स्थानान्तरेषु च तथोत्तरदेशगासु ।
संस्थापिताश्च नखरा भुजगैः प्रकाशं संपूज्य दानवपतिं प्रथिते प्रदेशे ॥ १ ॥
दाशार्णवागदवमेकलकालगादौ गुञ्जाञ्जनक्षौद्रमृणालवर्णाः ।
गन्धर्ववह्निकदलीसदृशावभासा एते प्रशस्ताः पुलकाः प्रसूताः ॥ २ ॥

शङ्खाब्जभृङ्गार्कविचित्रभङ्गाः सूत्रैर्व्यपेताः परमाः पवित्राः ।
माङ्गल्ययुक्ता बहुभक्तिचित्रा वृद्धिप्रदास्ते पुलका भवन्ति ॥ ३ ॥
काकश्वरासभशृगालवृकोग्ररूपैर्गृध्रैः समांसरुधिरार्द्रमुखैरुपेताः ।
मृत्युप्रदाश्च विदुषा परिवर्जनीया मूल्यं पलस्य कथितञ्च शतानि पञ्च ॥ ४ ॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे पुलकपरीक्षा नाम सप्तसप्ततितमोऽध्यायः ॥७७॥

अष्टसप्ततितमोऽध्यायः

सूत उवाच

हुतभुग्रूपमादाय दानवस्य यथेप्सितम् । नर्मदायां निचिक्षेप किञ्चिद्धीनादिभूमिषु ॥ १ ॥
तत्रेन्द्रगोपकलितं शुकवक्त्रवर्णं संस्थानतः प्रकटपीनसमानमात्रम् ।
नानाप्रकारविहितं रुधिराख्यरत्नमुद्धृत्य तस्य खलु सर्वसमानमेव ॥ २ ॥
मध्येन्दुपाण्डरमतीव विशुद्धवर्णं तच्चेन्द्रनीलसदृशं पटलं तुले स्यात् ।
सैश्वर्य्यभृत्यजननं कथितं तदैव पक्वञ्च तत्किल भवेत्सुरवज्रवर्णम् ॥ ३ ॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे रुधिराख्यरत्नपरीक्षा नाम अष्टसप्ततितमोऽध्यायः ॥७८॥

ऊनाशीतितमोऽध्यायः

सूत उवाच

कावेरविन्ध्ययवनचीननपालभूमिषु । लाङ्गली व्यकिरन्मेदो दानवस्य प्रयत्नतः ॥ १ ॥
आकाशयुद्धं तैलाख्यमुत्पन्नं स्फटिकं ततः । मृणालशङ्खधवलं किञ्चिद्वर्णान्तरान्वितम् ॥ २ ॥
न तत्तुल्यं हि रत्नञ्च सर्वथा पापनाशनम् । संस्कृतं शिल्पिना सद्यो मूल्यं किञ्चिल्लभेत्ततः ॥३॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे स्फटिकपरीक्षा नाम ऊनाशीतितमोऽध्यायः ॥७९॥

अशीतितमोऽध्यायः

सूत उवाच

आदाय शेषस्तस्यान्त्रं बलस्य केरलादिषु । चिक्षेप तत्र जायन्ते विद्रुमाः सुमहागुणाः ॥ १ ॥

तत्र प्रधानं शशलोहिताभं गुञ्जाजवापुष्पनिभं प्रदिष्टम् ।
सुनीलकं देवकरोमकञ्च स्थानानि तेषु प्रभवं सुरागम् ।
अन्यत्र जातञ्च न तत्प्रधानं मूल्यं भवेच्छिल्पिविशेषयोगात् ॥ २ ॥
प्रसन्नं कोमलं स्निग्धं सुरागं विद्रुमं हि तत् । धनधान्यकरं लोके विषार्त्तिभयनाशनम् ॥
स्फटिकस्य विद्रुमस्य रत्नज्ञानाय शौनक ॥ ३ ॥
इति श्रीगारुडे महापुराणे विद्रुमरत्नपरीक्षा नाम अशीतितमोऽध्यायः ॥८०॥

एकाशीतितमोऽध्यायः

सूत उवाच

सर्वतीर्थानि वक्ष्यामि गङ्गा तीर्थोत्तमोत्तमा । सर्वत्र सुलभा गङ्गा त्रिषु स्थानेषु दुर्लभा ॥ १ ॥
हरिद्वारे प्रयागे च गङ्गासागरसङ्गमे । प्रयागं परमं तीर्थं मृतानां भुक्तिमुक्तिदम् ॥ २ ॥
सेवनात्कृतपिण्डानां पापजित्कामदं नृणाम् । वाराणसी परं तीर्थं विश्वेशो यत्र केशवः ॥ ३ ॥
कुरुक्षेत्रं परं तीर्थं दानाद्यैर्भुक्तिमुक्तिदम् । प्रभासं परमं तीर्थं सोमनाथो हि तत्र च ॥ ४ ॥
द्वारका च पुरी रम्या भुक्तिमुक्तिप्रदायिका । प्राची सरस्वती पुण्या सप्तसारस्वतं परम् ॥ ५ ॥
केदारं सर्वपापघ्नं शम्भलग्राम उत्तमम् । नारायणं महातीर्थं मुक्त्यै बदरिकाश्रमम् ॥ ६ ॥
श्वेतद्वीपं पुरी माया नैमिषं पुष्करं परम् । अयोध्या चार्य्यतीर्थन्तु चित्रकूटञ्च गोमती ॥ ७ ॥
वैनायकं महातीर्थं रामगिर्य्याश्रमं परम् । काञ्चीपुरी तुङ्गभद्रा श्रीशैलं सेतुबन्धनम् ॥८॥
रामेश्वरं परं तीर्थं कार्त्तिकेयं तथोत्तमम् । भृगुतुङ्गं कामतीर्थं कामरं कटकं तथा ॥९॥
उज्जयिन्यां महाकालः कुब्जके श्रीधरो हरिः । कुब्जाम्रकं महातीर्थं कालसर्पिश्च कामदः ॥१०॥
महाकेशी च कावेरी चन्द्रभागा विपाशया । एकाम्रञ्च तथा तीर्थं ब्रह्माणं देवकोटकम् ॥
मथुरा च पुरी रम्या शोणश्चैव महानदः ॥११॥
जम्बूसरो महातीर्थं तानि तीर्थानि विद्धि च । सूर्य्यः शिवो गणो देवी हरिर्यत्र च तिष्ठति ॥१२॥
एतेषु च तथान्येषु स्नानं दानं जपस्तपः । पूजा श्राद्धं पिण्डदानं सर्वं भवति चाक्षयम् ॥१३॥
शालग्रामं सर्वदं स्यात् तीर्थं पशुपतेः परम् । गोकामुखञ्च वाराहं भाण्डीरं स्वामिसंज्ञकम् १४॥
मोहदण्डे महाविष्णुर्मन्दारे मधुसूदनः । कामरूपं महातीर्थं कामाख्या यत्र तिष्ठति ॥
पुण्ड्रवर्द्धनकं तीर्थं कार्त्तिकेयश्च यत्र च ॥१५॥

विरजस्तु महातीर्थं तीर्थं श्रीपुरुषोत्तमम् । महेन्द्रपर्वतस्तीर्थं काबेरी च नदी परा ॥१६॥
गोदावरी महातीर्थं पयोष्णी वरदा नदी । विन्ध्यः पापहरं तीर्थं नर्मदाभेद उत्तमः ॥१७॥
गोकर्णं परमं तीर्थं तीर्थं माहिष्मती पुरी । कालञ्जरं महातीर्थं शुक्रतीर्थमनुत्तमम् ॥१८॥
कृते शौचे मुक्तिदश्च शार्ङ्गधारी तदन्तिके । विरजं सर्वदं तीर्थं स्वर्णाख्यं तीर्थमुत्तमम् ॥१६॥
नन्दितीर्थं मुक्तिदञ्च कोटितीर्थफलप्रदम् । नासिक्यञ्च महातीर्थं गोवर्द्धनमतः परम् ॥२०॥
कृष्णा वेणी भीमरथा गण्डकी या त्विरावती । तीर्थं बिन्दुसरः पुण्यं विष्णुपादोदकं परम् ॥२१॥
ब्रह्मध्यानं परं तीर्थं तीर्थमिन्द्रियनिग्रहः । दमस्तीर्थं तु परमं भावशुद्धिः सरस्तथा ॥२२॥
ज्ञानह्रदे ध्यानजले रागद्वेषमलापहे । यः स्नाति मानसे तीर्थे स याति परमां गतिम् ॥२३॥
इदं तीर्थमिदं नेति ये नरा भेददर्शिनः । तेषां विधीयते तीर्थगमनं तत्फलञ्च यत् ॥
सर्वं ब्रह्मेति योऽवैति नातीर्थं तस्य किञ्चन ॥२४॥

एतेषु स्नानदानानि श्राद्धं पिण्डमथाक्षयम् । सर्वा नद्यः सर्वशैलाः तीर्थं देवादिसेवितम् ॥२५॥
श्रीरङ्गञ्च हरेस्तीर्थं तापी श्रेष्ठा महानदी । सप्तगोदावरं तीर्थं तीर्थं कोणगिरिः परम् ॥२६॥
महालक्ष्मीर्यत्र देवी प्रणीता परमा नदी । सह्याद्रौ देवदेवेश एकवीरः सुरेश्वरी ॥२७॥
गङ्गाद्वारे कुशावर्त्ते विन्ध्यके नीलपर्वते । स्नानं कनखले तीर्थे स भवेन्न पुनर्भवे ॥२८॥

सूत उवाच

एतान्यन्यानि तीर्थानि स्नानाद्यैः सर्वदानि हि । श्रुत्वाऽब्रवीद्धरेर्ब्रह्मा व्यासं दक्षादिसंयुतम् २६॥
एतान्युक्त्वा च तीर्थानि पुनस्तीर्थोत्तमोत्तमम् । गयाख्यं प्राह सर्वेषामक्षयं ब्रह्मलोकदम् ॥३०॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे सर्वतीर्थमाहात्म्यं नाम एकाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८१ ॥

द्व्यशीतितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

सारात्सारतरं व्यास गयामाहात्म्यमुत्तमम् । प्रवक्ष्यामि समासेन भुक्तिमुक्तिप्रदं शृणु ॥ १ ॥
गयासुरोऽभवत् पूर्वं वीर्य्यवान् परमः स च । तपस्तप्यन्महाघोरं सर्वभूतोपतापनम् ॥ २ ॥
तत्तपस्तापिता देवास्तद्वधार्थं हरिं गताः । शरणं हरिरूचे तान्भवितव्यं शिवात्मभिः ॥ ३ ॥
पातितेऽस्य महादेहे तथेत्यूचुः सुरा हरिम् । कदाचिच्छिवपूजार्थं क्षीराब्धेः कमलानि च ॥४॥
आनीय कीकटे देशे शयनं चाकरोद्बली । विष्णुमायाविमूढोऽसौ गदया विष्णुना हतः ॥५॥

अतो गदाधरो विष्णुर्गयायां मुक्तिदः स्थितः । तस्य देहो लिङ्गरूपी स्थितः शुद्धे पितामहः ॥६॥
जनार्दनश्च कालेशस्तथाऽन्यः प्रपितामहः । विष्णुराहाथ मर्य्यादां पुण्यक्षेत्रं भविष्यति ॥७॥
यत्रं श्राद्धं पिण्डदानं स्नानादि कुरुते नरः । स स्वर्गं ब्रह्मलोकञ्च गच्छेन्न नरकं नरः ॥ ८ ॥
गयातीर्थं परं ज्ञात्वा यागं चक्रे पितामहः । ब्राह्मणान्पूजयामास ऋत्विगर्थमुपागतान् ॥ ९ ॥
महानदीं रसवहां सृष्ट्वा वाप्यादिकं तथा । भक्ष्यभोज्यफलादींश्च कामधेनुं तथाऽसृजत् ॥
पञ्चक्रोशं गयाक्षेत्रं ब्राह्मणेभ्यो ददौ प्रभुः ॥१०॥
धर्मयोगेषु लोभात्तु प्रतिगृह्य धनादिकम् । स्थिता विप्रास्तदा शप्ता गयायां ब्राह्मणास्ततः ॥
माभूत्त्रैपुरुषी विद्या माभूत्त्रैपुरुषं धनम् । युष्माकं स्याद्वारिवहा नदी पाषाणपर्वतः ॥१२॥
शप्तैस्तु प्रार्थितो ब्रह्माऽनुग्रहं कृतवान् प्रभुः । लोकाः पुण्या गयायां हि श्राद्धिनो ब्रह्मलोकगाः ॥
युष्मान् वै पूजयिष्यन्ति तैरहं पूजितः सदा ॥ १३ ॥
ब्रह्मज्ञानं गयाश्राद्धं गोगृहे मरणं तथा । वासः पुंसां कुरुक्षेत्रे मुक्तिरेषा चतुर्विधा ॥१४॥
समुद्राः सरितः सर्वा वापीकूपह्रदानि च । स्नातुकामा गयातीर्थं व्यास यान्ति न संशयः १५॥
ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः । पापं तत्सङ्गजं सर्वं गयाश्राद्धाद्विनश्यति ॥१६॥
असंस्कृता मृता ये च पशुचौरहताश्च ये । सर्पदष्टा गयाश्राद्धान्मुक्ताः स्वर्गं व्रजन्ति ते ॥१७॥
गयाया पिण्डदानेन यत्फलं लभते नरः । न तच्छक्यं मया वक्तुं वर्षकोटिशतैरपि ॥१८॥
इति श्रीगारुडे महापुराणे गयामहात्म्ये द्व्यशीतितमोऽध्यायः ॥८२॥

त्र्यशीतितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

कीकटेषु गया पुण्या पुण्यं राजगृहं वनम् । विषयश्चारणः पुण्यो नदीनाञ्चैव पुनपुनः ॥ १ ॥
मुण्डपृष्ठं तु पूर्वस्मिन्पश्चिमे दक्षिणोत्तरे । सार्द्धक्रोशद्वयं मानं गयायां परिकीर्त्तितम् ॥ २ ॥
पञ्चक्रोशं गयाक्षेत्रं क्रोशमेकं गयाशिरः । तत्र पिण्डप्रदानेन पितृणां परमा गतिः ॥
गयागमनमात्रेण पितृणामनृणो भवेत् ॥ ३ ॥
गयायां पितृरूपेण देवदेवो जनार्दनः । तं दृष्ट्वा पुण्डरीकाक्षं मुच्यते वै ऋणत्रयात् ॥ ४ ॥
रथमार्गं गयातीर्थे दृष्ट्वा रुद्रं पदाधिके । कालेश्वरञ्च केदारं पितृणामनृणो भवेत् ॥ ५ ॥
दृष्ट्वा पितामहं देवं सर्वपापैः प्रमुच्यते । लोकं त्वनामयं याति दृष्ट्वा च प्रपितामहम् ॥ ६ ॥

तथा गदाधरं देवं माधवं पुरुषोत्तमम् । तं प्रणम्य प्रयत्नेन न भूयो जायते नरः ॥ ७ ॥
मौनादित्यं महात्मानं कनकार्कं विशेषतः । दृष्ट्वा मौनेन विप्रर्षे पितॄणामनृणो भवेत् ॥
ब्रह्माणं पूजयित्वा च ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ॥ ८ ॥

गायत्रीं प्रातरुत्थाय यस्तु पश्यति मानवः । सन्ध्यां कृत्वा प्रयत्नेन सर्वदेवफलं लभेत् ॥ ९ ॥
सावित्रीञ्चैव मध्याह्ने दृष्ट्वा यज्ञफलं लभेत् । सरस्वतीञ्च सायाह्ने दृष्ट्वा दानफलं लभेत् ॥१०॥
नगस्थमीश्वरं दृष्ट्वा पितॄणामनृणो भवेत् । धर्मारण्यं धर्ममीशं दृष्ट्वा स्यादृणनाशनम् ॥११॥
देवं गृध्रेश्वरं दृष्ट्वा को न मुच्येत बन्धनात् । धेनुं दृष्ट्वा धेनुवने ब्रह्मलोकं नयेत् पितॄन् ॥१२॥
प्रभासेशं प्रभासे च दृष्ट्वा याति परां गतिम् । कोटीश्वरं चाश्वमेधं दृष्ट्वा स्यादृणनाशनम् ॥१३॥
स्वर्गद्वारेश्वरं दृष्ट्वा मुच्यते भवबन्धनात् । रामेश्वरं गदालोलं दृष्ट्वा स्वर्गमवाप्नुयात् ॥१४॥
ब्रह्मेश्वरं तथा दृष्ट्वा मुच्यते ब्रह्महत्यया । मुण्डपृष्ठे महाचण्डीं दृष्ट्वा कामानवाप्नुयात् ॥१५॥
फल्ग्वीशं फल्गुचण्डीञ्च गौरीं दृष्ट्वा च मङ्गलाम् । गोमकं गोपतिं देवं पितॄणामनृणो भवेत् ॥१६॥
अङ्गारेशञ्च सिद्धेशं गयादित्यं गजं तथा । मार्कण्डेयेश्वरं दृष्ट्वा पितॄणामनृणो भवेत् ॥१७॥
फल्गुतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवं गदाधरम् । एतेन किं न पर्याप्तं नॄणां सुकृतिकारिणाम् ॥
ब्रह्मलोकं प्रयान्तीह पुरुषानेकविंशतिम् ॥ १८ ॥

पृथिव्यां यानि तीर्थानि ये समुद्राः सरांसि च । फल्गुतीर्थं गमिष्यन्ति वारमेकं दिने दिने १९॥
पृथिव्याञ्च गया पुण्या गयायाञ्च गयाशिरः । श्रेष्ठं तथा फल्गुतीर्थं तन्मुखञ्च सुरस्य हि ॥२०॥
उदीचि कनकानद्यो नाभितीर्थन्तु मध्यतः । पुण्यं ब्रह्मसदस्तीर्थं स्नानात्स्याद्ब्रह्मलोकदः॥२१॥
कूपे पिण्डादिकं कृत्वा पितॄणामनृणो भवेत् । तथा त्त्वयवटे श्राद्धं ब्रह्मलोकं नयेत् पितॄन् ॥२२॥
हंसतीर्थे नरः स्नात्वा सर्वपापैः प्रमुच्यते । कोटितीर्थे गयालोके वैतरण्याञ्च गोमके ॥
ब्रह्मलोकं नयेत् श्राद्धी पुरुषानेकविंशतिम् ॥ २३ ॥

ब्रह्मतीर्थे रामतीर्थे आग्नेये सोमतीर्थके । श्राद्धी रामह्रदे ब्रह्मलोकं पितृकुलं नयेत् ॥२४॥
उत्तरे मानसे श्राद्धी न भूयो जायते नरः । दक्षिणे मानसे श्राद्धी ब्रह्मलोकं पितॄन् नयेत् २५॥
भीष्मतर्पणकृत्तस्य कूटे तारयते पितॄन् । गृध्रेश्वरे तथा श्राद्धी पितॄणामनृणो भवेत् ॥२६॥
श्राद्धी च धेनुकारण्ये ब्रह्मलोकं पितॄन्नयेत् । तिलधेनुप्रदः स्नात्वा दृष्ट्वा धेनुं न संशयः ॥२७॥
ऐन्द्रे वा नरतीर्थेषु वासवे वैष्णवे तथा । महानद्यां कृतश्राद्धो ब्रह्मलोकं नयेत्पितॄन् ॥२८॥
गायत्रे चैव सावित्रे तीर्थे सारस्वते तथा । स्नानसन्ध्यातर्पणकृत् श्राद्धी चैकोत्तरं शतम् ॥
पितॄणा तु कुलं ब्रह्मलोकं नयति मानवः ॥२९॥

ब्रह्मयोनिं विनिर्गच्छेत्प्रयतः पितृमानसः । तर्पयित्वा पितॄन् देवान्न विशेद्योनिसङ्कटे ॥३०॥
तर्पणे काकजङ्घायां पितॄणां तृप्तिरक्षया । धर्मारण्ये मतङ्गस्य वाप्यां श्राद्धी दिवं व्रजेत् ॥३१॥
धर्मयूपे च कूपे च पितॄणामनृणो भवेत् । प्रमाणं देवताः सन्तु लोकपालाश्च साक्षिणः ॥
मयाऽऽगत्य मतङ्गेऽस्मिन्पितॄणां निष्कृतिः कृता ॥३२॥
रामतीर्थे नरः स्नात्वा श्राद्धं कृत्वा प्रभासके । शिलायां प्रेतभावाः स्युर्मुक्ताः पितृगणाः किल ॥
श्राद्धकृच्च स्वपुष्टायां त्रिःसप्तकुलमुद्धरेत् । श्राद्धकृन्मुण्डपृष्ठादौ ब्रह्मलोकं नयेत्पितॄन् ॥३४॥
गयायां न हि तत्स्थानं यत्र तीर्थं न विद्यते । पञ्चक्रोशे गयाक्षेत्रे यत्र तत्र तु पिण्डदः ॥
अक्षयं फलमाप्नोति ब्रह्मलोकं नयेत्पितॄन् ॥३५॥
जनार्दनस्य हस्ते तु पिण्डं दद्यात्स्वकं नरः । एष पिण्डो मया दत्तस्तव हस्ते जनार्दन ॥३६॥
परलोकं गते मोक्षमक्षय्यमुपतिष्ठताम् । ब्रह्मलोकमवाप्नोति पितृभिः सह निश्चितम् ॥३७॥
गयायां धर्मपृष्ठे च सरसि ब्रह्मणस्तथा । गयशीर्षेऽक्षयवटे पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥३८॥
धर्मारण्यं धर्मपृष्ठं धेनुकारण्यमेव च । दृष्ट्वैतानि पितुश्चार्घ्यं वंशान्विंशतिमुद्धरेत् ॥३९॥
ब्रह्मारण्यं मयनद्याः पश्चिमे भाग उच्यते । पूर्वे ब्रह्मसदो भागो नागाद्रिर्भरताश्रमः ॥४०॥
भरतस्याश्रमे श्राद्धी मतङ्गस्य पदे भवेत् । गयाशीर्षाद्दक्षिणतो महानद्याश्च पश्चिमः ॥४१॥
तत्स्मृतश्चम्पकवनं तत्र पाण्डुशिलास्ति हि । श्राद्धी तत्र तृतीयायां निश्चिरायाश्च मण्डले ॥
महाह्रदे च कौशिक्यामक्षयं फलमाप्नुयात् ॥४२॥
वैतरण्याश्चोत्तरतस्तृतीयाख्यो जलाशयः । पदानि तत्र क्रौञ्चस्य श्राद्धी स्वर्गं नयेत्पितॄन् ॥४३॥
क्रौञ्चपादादुत्तरतो निश्चिराख्यो जलाशयः । सकृद् गयाभिगमनं सकृत्पिण्डप्रपातनम् ॥
दुर्लभं किं पुनर्नित्यमस्मिन्नेव व्यवस्थितः ॥४४॥
महानद्यामपः स्पृश्य तर्पयेत्पितृदेवताः । अक्षयान्प्राप्नुयाल्लोकान्कुलञ्चापि समुद्धरेत् ॥
सावित्रे पठ्यते सन्ध्या कृता स्याद्द्वादशाब्दिकी ॥४५॥
शुक्लकृष्णावुभौ पक्षौ गयायां यो वसेन्नरः । पुनात्यासप्तमञ्चैव कुलं नास्त्यत्र संशयः ॥४६॥
गयायां मुण्डपृष्ठञ्च अरविन्दञ्च पर्वतम् । तृतीयं क्रौञ्चपादञ्च दृष्ट्वा पापैः प्रमुच्यते ॥४७॥
मकरे वर्त्तमाने च ग्रहणे चन्द्रसूर्य्ययोः । दुर्लभं त्रिषु लोकेषु गयायां पिण्डपातनम् ॥४८॥
महाह्रदे च कौशिक्यां मूलक्षेत्रे विशेषतः । गुहायां गृध्रकूटस्य श्राद्धं सप्त महाफलम् ॥४९॥
यत्र माहेश्वरी धारा श्राद्धी तत्रानृणो भवेत् । पुण्यां विशालामासाद्य नदीं त्रैलोक्यविश्रुताम् ॥
अग्निष्टोममवाप्नोति श्राद्धी प्रायाद्दिवं नरः ॥५०॥

श्राद्धी सोमपदे स्नात्वा वाजपेयफलं लभेत् । रविपादे पिण्डदानात्पतितोद्धारणं भवेत् ॥५१॥
यो गयास्थो ददात्यन्नं पितरस्तेन पुत्रिणः । कांक्षंते पितरः पुत्रान् नरकादुभयभीरवः ॥५२॥
गयां यास्यति यः कश्चित्सोऽस्मान् सन्तारयिष्यति । गयाप्राप्तं सुतं दृष्ट्वा पितॄणामुत्सवो भवेत् ॥५३॥
पद्भ्यामपि जलं स्पृष्ट्वा अस्मभ्यं किल दास्यति । आत्मजो वा तथान्यो वा गयाकूपे यदा तदा ॥५४॥
यन्नाम्ना पातयेत् पिण्डं तं नयेद् ब्रह्म शाश्वतम् । पुण्डरीकं विष्णुलोकं प्राप्नु यात्कोटितीर्थगः ॥५५॥
या सा वैतरणी नाम त्रिषु लोकेषु विश्रुता । साऽवतीर्णा गयाक्षेत्रे पितॄणां तारणाय हि ॥५६॥
श्राद्धदः पिण्डदस्तत्र गोप्रदानं करोति यः । एकविंशतिवंशान् स तारयेन्नात्र संशयः ॥५७॥
यदि पुत्रो गयां गच्छेत्कदाचित् कालपर्य्यये । तानेव भोजयेद्विप्रान् ब्रह्मणा ये प्रकल्पिताः ॥५८॥
तेषां ब्रह्मसदः स्थानं विप्रा ब्रह्मप्रकल्पिताः । ब्रह्मप्रकल्पितं स्थानं विप्रा ब्रह्मप्रकल्पिताः ।
पूजितैः पूजिताः सर्वे पितृभिः सह देवताः ॥५९॥

तर्पयेत्तु गयाविप्रान् हव्यकव्यैर्विधानतः । स्थानं देहपरित्यागे गयायान्तु विधीयते ॥ ६० ॥
यः करोति वृषोत्सर्गं गयाक्षेत्रे ह्यनुत्तमे । अग्निष्टोमशतं पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥ ६१ ॥
आत्मनोऽपि महाबुद्धिर्गयायां तु तिलैर्विना । पिण्डनिर्वपनं कुर्य्यादन्येषामपि मानवः ॥६२॥
यावन्तो ज्ञातयः पित्र्या बान्धवाः सुहृदस्तथा । तेभ्यो व्यास गयाभूमौ पिण्डो देयो विधानतः ॥६३॥
रामतीर्थे नरः स्नात्वा गोशतस्याप्नुयात्फलम् । मतङ्गवाप्यां स्नात्वा च गोसहस्रफलं लभेत् ॥६४॥
निश्चिरासङ्गमे स्नात्वा ब्रह्मलोकं नयेत् पितॄन् । वसिष्ठस्याश्रमे स्नात्वा वाजपेयञ्च विन्दति ।।
महाकोश्यां समावासादश्वमेधफलं लभेत् ॥६५॥

पितामहस्य सरसः प्रसृता लोकपावनी । समीपे त्वग्निधारेति विश्रुता कपिला हि सा ॥
अग्निष्टोमफलं श्राद्धी स्नात्वाऽत्र कृतकृत्यता ॥६६॥
श्राद्धी कुमारधारायामश्वमेधफलं लभेत् । कुमारमभिगम्याथ महामुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ६७ ॥
सोमकुण्डे नरः स्नात्वा सोमलोकञ्च गच्छति । संवर्त्तस्य नरो वाप्यां सुभगः स्यात्तु पिण्डदः ॥६८॥
धौतपापो नरो याति प्रेतकुण्डे च पिण्डदः । देवनद्यां लेलिहाने मथने जानुगर्त्तके ॥ ६९ ॥
एवमादिषु तीर्थेषु पिण्डदस्तारयेत् पितॄन् । नत्वा देवं वसिष्ठेशं प्रभूतमृणसंक्षयम् ॥ ७० ॥
इति गारुडे महापुराणे गयामाहात्म्ये त्र्यशीतितमोऽध्यायः ॥ ८३ ॥

———

चतुरशीतितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

उद्यतस्तु गयां गन्तुं श्राद्धं कृत्वा विधानतः । विधाय कापटं वेशं ग्रामस्यापि प्रदक्षिणम् ॥ १ ॥
ततो ग्रामान्तरं गत्वा श्राद्धशेषस्य भोजनम् । कृत्वा प्रदक्षिणं गच्छेत्प्रतिग्रहविवर्जितः ॥ २ ॥
गृहाच्चलितमात्रस्य गयाया गमनं प्रति । स्वर्गारोहणसोपानं पितॄणां तु पदे पदे ॥
मुण्डनञ्चोपवासश्च सर्वतीर्थेष्वयं विधिः ॥ ३ ॥
वर्जयित्वा कुरुक्षेत्रं विशालां विरजां गयाम् । दिवा च सर्वदा रात्रौ गयायां श्राद्धकृद्भवेत् ॥४॥
वाराणस्यां कृतं श्राद्धं तीर्थे शोणनदे तथा । पुनः पुनर्महानद्यां श्राद्धी स्वर्गं पितॄन्नयेत् ॥ ५ ॥
उत्तरं मानसं गत्वा सिद्धिं प्राप्नोत्यनुत्तमाम् । तस्मिन्निवर्त्तयेत्श्राद्धं स्नानञ्चैव निवर्त्तयेत् ॥
कामान्स लभते दिव्यान्मोक्षोपायञ्च सर्वशः ॥ ६ ॥
दक्षिणं मानसं गत्वा मौनी पिण्डादि कारयेत् । ऋणत्रयापाकरणं लभेद्दक्षिणमानसे ॥ ७ ॥
सिद्धानां प्रीतिजननैः पापानाञ्च भयङ्करैः । लेलिहानैर्महाघोरैरक्षतैः पन्नगोत्तमैः ॥ ८ ॥
नाम्ना कनखलं तीर्थं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् । उदीच्यां मुण्डपृष्ठस्य देवर्षिगणसेवितम् ॥ ९ ॥
तत्र स्नात्वा दिवं याति श्राद्धं दत्तमथाक्षयम् । सूर्य्यं नत्वा त्विदं कुर्य्यात्कृतपिण्डादिसत्क्रियः ॥
कव्यवाहास्तथा सोमो यमश्चैवार्य्यमा तथा । अग्निष्वात्ता बर्हिषदः सोमपाः पितृदेवताः ॥
आगच्छन्तु महाभागा युष्माभी रक्षितस्त्विह ॥११॥
मदीयाः पितरो ये च कुले जाताः सनाभयः । तेषां पिण्डप्रदाताहमागतोऽस्मि गयामिह ॥१२॥
कृतपिण्डः फल्गुतीर्थे पश्येद्देवं पितामहम् । गदाधरं ततः पश्येत्पितॄणामनृणो भवेत् ॥१३॥
फल्गुतीर्थे नरः स्नात्वा दृष्ट्वा देवं गदाधरम् । आत्मानं तारयेत्सद्यो दशपूर्वान्दशापरान् ॥१४॥
प्रथमे हि विधिः प्रोक्तो द्वितीयदिवसे व्रजेत् । धर्मारण्यं मतङ्गस्य वाप्यां पिण्डादिकृद्भवेत् ॥
धर्मारण्यं समासाद्य वाजपेयफलं लभेत् । राजसूयाश्वमेधाभ्यां फलं स्याद्ब्रह्मतीर्थके ॥१६॥
श्राद्धं पिण्डोदकं कार्य्यं मध्ये वै कूपयूपयोः । कूपोदकेन तत्कार्य्यं पितॄणां दत्तमक्षयम् ॥१७॥
तृतीयेऽह्नि ब्रह्मसदो गत्वा स्नात्वाऽथ तर्पणम् । कृत्वा श्राद्धादिकं पिण्डं मध्ये वै यूपकूपयोः ॥
गोप्रचारसमीपस्था आब्रह्म ब्रह्मकल्पिताः । तेषां सेवनमात्रेण पितरो मोक्षगामिनः ॥
यूपं प्रदक्षिणीकृत्य वाजपेयफलं लभेत् ॥१९॥
फल्गुतीर्थे चतुर्थेऽह्नि स्नात्वा देवादितर्पणम् । कृत्वा श्राद्धं गयाशीर्षे देवरुद्रपदादिषु ॥२०॥
पिण्डान्देहि मुखे व्यास पञ्चाग्नौ च पदत्रये । सूर्य्येन्दुकार्त्तिकेयेषु कृतं श्राद्धं तथाऽक्षयम् ॥

श्राद्धं तु नवदैवत्यं कुर्य्याद्द्वादशदैवतम् ॥२१॥
अन्वष्टकासु वृद्धौ च गयायां मृतवासरे । अत्र मातुः पृथक्श्राद्धमन्यत्र पतिना सह ॥२२॥
स्नात्वा दशाश्वमेधे तु दृष्ट्वा देवं पितामहम् । रुद्रपादं नरः स्पृष्ट्वा न चेहावर्त्तते पुनः ॥२३॥
त्रिवित्तपूर्णां पृथिवीं दत्त्वा यत्फलमाप्नुयात् । स तत्फलमवाप्नोति कृत्वा श्राद्धं गयाशिरे ॥२४॥
शमीपत्रप्रमाणेन पिण्डं दद्याद्गयाशिरे । पितरो यान्ति देवत्वं नात्र कार्य्या विचारणा ॥२५॥
मुण्डपृष्ठे पदं व्यस्तं महादेवेन धीमता । अल्पेन तपसा तत्र महापुण्यमवाप्नुयात् ॥२६॥
गयाशीर्षे तु यः पिण्डान्नाम्ना येषां तु निर्वपेत् । नरकस्था दिवं यान्ति स्वर्गस्था मोक्षमाप्नुयुः ॥
पञ्चमेऽह्नि गदालोले स्नात्वा वटतले ततः । पिण्डं दद्यात्पितॄणाञ्च सकलं तारयेत्कुलम् ॥२८॥
वटमूलं समासाद्य शाकेनोष्णोदकेन च । एकस्मिन्भोजिते विप्रे कोटिर्भवति भोजिता ॥२९॥
कृते श्राद्धेऽक्षयवटे दृष्ट्वा च प्रपितामहम् । अक्षयाल्लभते लोकान्कुलानामुद्धरेच्छतम् ॥३०॥
एष्टव्या बहवः पुत्रा यद्येकोऽपि गयां व्रजेत् । यजेद्वा अश्वमेधेन नीलं वा वृषमुत्सृजेत् ॥३१॥
प्रेतः कश्चित्समुद्दिश्य वणिजं कञ्चिदब्रवीत् । मम नाम्ना गयाशीर्षे पिण्डनिर्वपनं कुरु ॥
प्रेतभावाद्विमुक्तः स्यात्स्वर्गदो दातुरेव च ॥३२॥

श्रुत्वा वणिग्गयाशीर्षे प्रेतराजाय पिण्डकम् । प्रददावनुजैः सार्द्धं स्वपितृभ्यस्ततो ददौ ॥३३॥
सर्वे मुक्ता विशालोऽपि सपुत्रोऽभूच्च पिण्डदः । विशालायां विशालोऽभूद्राजपुत्रोऽब्रवीद्द्विजान् ॥
कथं पुत्रादयः स्युर्मे विप्राश्चोचुर्विशालकम् । गयायां पिण्डदानेन तव सर्वं भविष्यति ॥
विशालोऽयं गयाशीर्षे पिण्डदोऽभूच्च पुत्रवान् ॥३५॥
दृष्ट्वाकाशे सितं रक्तं कृष्णं पुरुषमब्रवीत् । के यूयं तेषु चैवैकः सितः प्रोचे विशालकम् ॥३६॥
अहं सितस्ते जनकं इन्द्रलोकं गतः शुभात् । मम पुत्र पिता रक्तो ब्रह्महा पापकृ..ः ॥३७॥
अयं पितामहः कृष्ण ऋषयोऽनेन घातिताः । अवीचिं नरकं प्राप्तौ मुक्तौ जातौ च पिण्डद ॥३८॥
मुक्तीकृतास्ततः सर्वे व्रजामः स्वर्गमुत्तमम् । कृतकृत्यो विशालोऽपि राज्यं कृत्वा दिवं ययौ ॥
येऽस्मत्कुले तु पितरो लुप्तपिण्डोदकक्रियाः । ये चाप्यकृतचूडास्तु ये च गर्भाद्विनिःसृताः ४०॥
येषां दाहो न क्रियते येऽग्निदग्धास्तथापरे । भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु परां गतिम्॥४१॥
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः । माता पितामही चैव तथैव प्रपितामही ॥४२॥
तथा मातामहश्चैव प्रमातामह एव च । वृद्धप्रमातामहश्चाथ मातामही ततः परम् ॥४३॥
प्रमातामही च तथा वृद्धप्रमातामहीति वै । अन्येषाञ्चैव पिण्डोऽयमक्षय्यमुपतिष्ठताम् ॥४४॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे गयामाहात्म्ये चतुरशीतितमोऽध्यायः ॥८४॥

पञ्चाशीतितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

स्नात्वा प्रेतशिलादौ तु वरुणस्थामृतेन च । पिण्डं दद्यादिमैर्मन्त्रैरावाह्य च पितॄन्परान् ॥१॥
अस्मत्कुले मृता ये च गतिर्येषां न विद्यते । तेषामावाहयिष्यामि दर्भपृष्ठे तिलोदकैः ॥ २ ॥
पितृवंशे मृता ये च मातृवंशे च ये मृताः । तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥ ३ ॥
मातामहकुले ये च गतिर्येषां न विद्यते । तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥ ४ ॥
अजातदन्ता ये केचिद्ये च गर्भे प्रपीडिताः । तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥ ५ ॥
बन्धुवर्गाश्च ये केचिन्नामगोत्रविवर्जिताः । स्वगोत्रे परगोत्रे वा तेषां पिण्डः प्रकल्पितः ॥ ६ ॥
उद्बन्धनमृता ये च विषशस्त्रहताश्च ये । आत्मोपघातिनो ये च तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम् ॥
अग्निदाहे मृता ये च सिंहव्याघ्रहताश्च ये । दंष्ट्रिभिः शृङ्गिभिर्वापि तेषां पिण्डं ददाम्यहम् ८ ॥
अग्निदग्धाश्च ये केचिन्नाग्निदग्धास्तथापरे । विद्युच्चौरहता ये च तेषां पिण्डं ददाम्यहम् ॥९॥
रौरवे चान्धतामिस्रे कामसूत्रे च ये मृताः । तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥१०॥
असिपत्रवने घोरे कुम्भीपाके च ये मृताः । तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥११॥
अन्येषां यातनास्थानां प्रेतलोकनिवासिनाम् । तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥१२॥
पशुयोनिं गता ये च पक्षिकीटसरीसृपाः । अथवा वृक्षयोनिस्थास्तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम् ॥१३॥
असंख्ययातनासंस्था ये नीता यमशासनैः । तेषामुद्धरणार्थाय इमं पिण्डं ददाम्यहम् ॥१४॥
जात्यन्तरसहस्रेषु भ्रमन्ते स्वेन कर्मणा । मानुष्यं दुर्लभं येषां तेभ्यः पिण्डं ददाम्यहम् ॥१५॥
ये बान्धवाऽबान्धवा वा येऽन्यजन्मनि बान्धवाः । ते सर्वे तृप्तिमायान्तु पिण्डदानेन सर्वदा १६॥
ये केचित्प्रेतरूपेण वर्त्तन्ते पितरो मम । ते सर्वे तृप्तिमायान्तु पिण्डदानेन सर्वदा ॥१७॥
ये मे पितृकुले जाताः कुले मातुस्तथैव च । गुरुश्वशुरबन्धूनां ये चान्ये बान्धवा मृताः ॥१८॥
ये मे कुले लुप्तपिण्डाः पुत्रदारविवर्जिताः । क्रियालोपगता ये च जातान्धाः पङ्गवस्तथा ॥१९॥
विरूपा आमगर्भा ये ज्ञाताज्ञाताः कुले मम । तेषां पिण्डं मया दत्तमक्षय्यमुपतिष्ठताम् ॥२०॥
साक्षिणः सन्तु मे देवा ब्रह्मेशानादयस्तथा । मया गयां समासाद्य पितॄणां निष्कृतिः कृता २१॥
आगतोऽहं गयां देव पितृकार्य्ये गदाधर । तन्मे साक्षी भवस्वाद्य अनृणोऽहमृणत्रयात् ॥२२॥

महानदी ब्रह्मसरोऽक्षयो वटः प्रभासमुद्यन्तमहो गयाशिरः ।
सरस्वतीधर्मकधेनुपृष्ठा एते कुरुक्षेत्रगता गयायाम् ॥ २३ ॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे गयामाहात्म्ये पञ्चाशीतितमोऽध्यायः ॥८५॥

षडशीतितमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

येयं प्रेतशिला ख्याता गयायां सा त्रिधा स्थिता । प्रभासे प्रेतकुण्डे च गयासुरशिरस्यपि ॥ १ ॥
धर्मेण धारिता भूत्यै सर्वदेवमयी शिला । प्रेतत्वं ये गता नृणां मित्राद्या बान्धवादयः ॥
तेषामुद्धरणार्थाय यतः प्रेतशिला ततः ॥ २ ॥
अतोऽत्र मुनयो भूपा राजपत्न्यादयः सदा । तस्यां शिलायां श्राद्धादिकर्त्तारो ब्रह्मलोकगाः ॥३॥
गयासुरस्य यन्मुण्डं तस्य पृष्ठे शिला यतः । मुण्डपृष्ठो गिरिस्तस्मात् सर्वदेवमयो ह्ययम् ॥४॥
मुण्डपृष्ठस्य पादेषु यतो ब्रह्मसरोमुखाः । अरविन्दवनं तेषु तेन चौरोपलक्षितः ॥ ५ ॥
अरविन्दो गिरिर्नाम क्रौञ्चपादाङ्कितो यतः । तस्माद् गिरिः क्रौञ्चपादः पितृणां ब्रह्मलोकदः॥
गदाधरादयो देवा आद्या आदौ व्यवस्थिताः । शिलारूपेण चाव्यक्तास्तस्माद्देवमयी शिला ॥७॥
गयाशिरश्छादयित्वा गुरुत्वादास्थिता शिला। कालान्तरेण व्यक्तश्च स्थित आदिर्गदाधरः ॥८॥
महारुद्रादिदेवैस्तु अनादिनिधनो हरिः । धर्मसंरक्षणार्थाय अधर्मादिविनष्टये ॥९॥
दैत्यराक्षसनाशार्थं मत्स्यपूर्वं यथाऽभवत् । कूर्मो वराहो नृहरिर्वामनो राम ऊर्जितः ॥१०॥
यथा दाशरथीरामः कृष्णो बुद्धोऽथ कल्क्यपि । तथा व्यक्तोऽव्यक्तरूपी आसीदादिर्गदाधरः ॥११॥
आदिरादौ पूजितोऽत्र देवैर्ब्रह्मादिभिर्यतः । पाद्याद्यैर्गन्धपुष्पाद्यैरत आदिर्गदाधरः ॥१२॥
गदाधरं सुरैः सार्द्धं आद्यं गत्वा ददाति यः । अर्घ्यपात्रञ्च पाद्यञ्च गन्धपुष्पञ्च धूपकम् ॥१३॥
दीपं नैवेद्यमुत्कृष्टं माल्यानि विविधानि च । वस्त्राणि मुकुटं घण्टां चामरं प्रेक्षणीयकम् ॥१४॥
अलङ्कारादिकं पिण्डमन्नदानादिकं तथा । तेषां तावद्धनं धान्यमायुरारोग्यसम्पदः ॥१५॥
पुत्रादिसन्ततिः श्रेयोविद्यार्थं काम ईप्सितः । भार्य्यास्वर्गादिवासश्च स्वर्गादागत्य राज्यकम् ॥
कुलीनः सत्त्वसम्पन्नो रणे मर्दितशात्रवः । वधबन्धविनिर्मुक्तश्चान्ते मोक्षमवाप्नुयात् ॥
श्राद्धपिण्डादिकर्त्तारः पितृभिर्ब्रह्मलोकगाः ॥१७॥
बलभद्रं येऽर्चयन्ति सुभद्रां बलभद्रकम् । ज्ञानं प्राप्य श्रियं पुत्रान्व्रजन्ति पुरुषोत्तमम् ॥१८॥
पुरुषोत्तमराजस्य सूर्य्यस्य च गणस्य च । पुरतस्तत्र पिण्डादि पितृणां ब्रह्मलोकदः ॥१९॥
नत्वा कपर्द्दिविघ्नेशं सर्वविघ्नैः प्रमुच्यते । कार्त्तिकेयं पूजयित्वा ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ॥२०॥
द्वादशादित्यमभ्यर्च्य सर्वरोगैः प्रमुच्यते । वैश्वानरं समभ्यर्च्य उत्तमां दीप्तिमाप्नुयात् ॥२१॥
रेवन्तं पूजयित्वाथ अश्वानाप्नोत्यनुत्तमान्। अभ्यर्च्येन्द्रं महैश्वर्य्यं गौरं सौभाग्यमाप्नुयात्॥२२॥
विद्यां सरस्वतीं प्रार्च्य लक्ष्मीं संपूज्य च श्रियम् । गरुडञ्च समभ्यर्च्य विघ्नवृन्दात्प्रमुच्यते ॥२३॥

क्षेत्रपालं समभ्यर्च्य ग्रहवृन्दैः प्रमुच्यते । मुण्डपृष्ठं समभ्यर्च्य सर्वकाममवाप्नुयात् ॥२४॥
नागाष्टकं समभ्यर्च्य नागदष्टो विमुच्यते । ब्रह्माणं पूजयित्वा च ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ॥२५॥
बलभद्रं समभ्यर्च्य बलारोग्यमवाप्नुयात् । सुभद्रां पूजयित्वा तु सौभाग्यं परमाप्नुयात् ॥२६॥
सर्वान्कामानवाप्नोति संपूज्य पुरुषोत्तमम् । नारायणं तु संपूज्य नराणामधिपो भवेत् ॥२७॥
स्पृष्ट्वा नत्वा नारसिंहं संग्रामे विजयी भवेत् । वराहं पूजयित्वा तु भूमिराज्यमवाप्नुयात् ॥२८॥
यो वा विद्याधरौ स्पृष्ट्वा विद्याधरपदं लभेत् । सर्वान्कामानवाप्नोति संपूज्यादिगदाधरम् ॥२९॥
सोमनाथं समभ्यर्च्य शिवलोकमवाप्नुयात् । रुद्रेश्वरं नमस्कृत्य रुद्रलोके महीयते ॥३०॥
रामेश्वरं नरो नत्वा रामवत्सुप्रियो भवेत् । ब्रह्मेश्वरं नरः स्तुत्वा ब्रह्मलोकाय कल्प्यते ॥३१॥
कालेश्वरं समभ्यर्च्य नरः कालञ्जयो भवेत् । केदारं पूजयित्वा तु शिवलोके महीयते ।
सिद्धेश्वरञ्च संपूज्य सिद्धो ब्रह्मपुरं व्रजेत् ॥३२॥
आद्यं रुद्रादिभिः सार्द्धं दृष्ट्वा ह्यादिगदाधरम् । कुलानां शतमुद्धृत्य नयेद्ब्रह्मपुरं नरः ॥३३॥
धर्मार्थी प्राप्नुयाद्धर्ममर्थार्थी चार्थमाप्नुयात् । कामान्संप्राप्नुयात्कामी मोक्षार्थी मोक्षमाप्नुयात् ॥
राज्यार्थी राज्यमाप्नोति शान्त्यर्थी शान्तिमाप्नुयात् । सर्वार्थी सर्वमाप्नोति संपूज्यादिगदाधरम् ॥
पुत्रान्पुत्रार्थिनी स्त्री च सौभाग्यञ्च तदर्थिनी । वंशार्थिनी च वंशान्वै प्राप्यार्च्यादिगदाधरम् ॥
श्राद्धेन पिण्डदानेन अन्नदानेन वारिदः । ब्रह्मलोकमवाप्नोति संपूज्यादिगदाधरम् ॥३७॥
पृथिव्यां सर्वतीर्थेभ्यो यथा श्रेष्ठा गयापुरी । तथा शिलादिरूपश्च श्रेष्ठश्चैव गदाधरः ॥
तस्मिन्दृष्टे शिला दृष्टा यतः सर्वं गदाधरः ॥३८॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे गयामाहात्म्ये षडशीतितमोऽध्यायः ॥८६॥

सप्ताशीतितमोऽध्यायः

हरिरुवाच

चतुर्दश मनून्वक्ष्ये तत्सुतांश्च शुकादिकान् । मनुः स्वायम्भुवः पूर्वमग्निध्राद्याश्च तत्सुताः ॥१॥
मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः । वसिष्ठश्च महातेजा ऋषयः सप्त कीर्तिताः ॥ २ ॥
जयाख्याश्चामिताख्याश्च शुक्रो यामास्तथैव च । गणा द्वादशकाश्चेति चत्वारः सोमपायिनः॥३॥
विश्वभुग्वामदेवेन्द्रो बाष्कलिस्तदरिर्ह्यभूत् । स हतो विष्णुना दैत्यश्चक्रेण सुमहात्मना ॥ ४ ॥
मनुः स्वारोचिषश्चास्य तत्पुत्रो मण्डलेश्वरः । चैत्रको विनतश्चैव कर्णान्तो विद्युतो रविः ॥ ५ ॥

बृहद्गुणो नभश्चैव महाबलपराक्रमः । ऊर्जस्तम्बस्तथा प्राण ऋषभो निचुलस्तथा ॥६॥
दम्भोलिश्चार्ववीरश्च ऋषयः सप्त कीर्त्तिताः । तुषिता द्वादश प्रोक्तास्तथा पारावताश्च ये ॥७॥
इन्द्रो विपश्चिद्देवानां तद्रिपुः पुरुकृत्सरः । जघान हस्तिरूपेण भगवान्मधुसूदनः ॥ ८ ॥
औत्तमस्य मनोः पुत्रा आजश्च परशुस्तथा । विनीतश्च सुकेतुश्च सुमित्रः सुबलः शुचिः ॥
देवो देवावृधो रुद्र महोत्साहाजितस्तथा ॥ ९ ॥
रथौजा ऊर्ध्वबाहुश्च शरणश्चानघो मुनिः । सुतपाः शङ्कुरित्येते ऋषयः सप्त कीर्त्तिताः ॥१०॥
वशवर्त्तिः स्वधामानः शिवाः सत्याः प्रतर्दनाः । पञ्च देवगणाः प्रोक्ताः सर्वे द्वादशकास्तु ते ॥
इन्द्रः स्वशान्तिस्तच्छत्रुः प्रलम्बो नाम दानवः । मत्स्यरूपी हरिर्विष्णुस्तं जघान च दानवम् ॥
तामसस्य मनोः पुत्रा जानुजङ्घोऽथ निर्भयः । नवख्यातिर्नयश्चैव प्रियभृत्यो विविक्षिपः ॥१३॥
हवुष्कधिः प्रस्तलाक्षः कृतबन्धुः कृतस्तथा । ज्योतिर्धामा धृष्टकाव्यश्चैत्रश्चेताग्निहेमकौ ॥१४॥
मुनयः कीर्त्तिताः सप्त सुरागाः स्वधियस्तथा । हरयो देवतानाञ्च चत्वारः पञ्चविंशकाः ॥१५॥
गण इन्द्रः शिबिस्तस्य शत्रुर्भीमरथाः स्मृताः । हरिणा कूर्मरूपेण हतो भीमरथोऽसुरः ॥१६॥
रैवतस्य मनोः पुत्रा महाप्राणश्च साधकः । वनबन्धुर्निरमित्रः प्रत्यङ्गः परहा शुचिः ॥१७॥
दृढव्रतः केतुशृङ्ग ऋषयस्तस्य वर्ण्यते । देवश्रीर्वेदबाहुश्च ऊर्ध्वबाहुस्तथैव च ॥
हिरण्यरोमा पर्जन्यः सत्यनामा स्वधाम च ॥१८॥
अभूतरजसश्चैव तथा देवाश्वमेधसः । वैकुण्ठश्चामृतश्चैव चत्वारो देवतागणाः ॥१९॥
गणे चतुर्दश सुरा विभुरिन्द्रः प्रतापवान् । शान्तशत्रुर्हतो दैत्यो हंसरूपेण विष्णुना ॥२०॥
चाक्षुषस्य मनोः पुत्रा ऊरुः पूरुर्महाबलः । शतद्युम्नस्तपस्वी च सत्यबाहुः कृतिस्तथा ॥२१॥
अग्निष्णुरतिरात्रश्च सुद्युम्नश्च तथा नरः । हविष्मान्सुतनुः श्रीमान्स्वधामा विरजस्तथा ॥
अभिमानः सहिष्णुश्च मधुश्री ऋषयः स्मृताः ॥२२॥
आर्य्या प्रसूता भाव्यश्च लेखाश्च पृथुकास्तथा । अष्टकस्य गणाः पञ्च तथा प्रोक्ता दिवौकसाम् ॥
इन्द्रो मनोजवः शत्रुर्महाकालो महाभुजः । अश्वरूपेण स हतो हरिणा लोकधारिणा ॥२४॥
मनोर्वैवस्वतस्यैते पुत्रा विष्णुपरायणाः । इक्ष्वाकुरथ नाभाख्यो विष्टिः सर्जातिरेव च ॥२५॥
हविष्यन्तस्तथा पांशुर्नभो नेदिष्ठ एव च । करूषश्च पृषध्रश्च सुद्युम्नश्च मनोः सुताः ॥२६॥
अत्रिर्वसिष्ठो भगवान्जामदग्निश्च कश्यपः । गौतमश्च भरद्वाजो विश्वामित्रोऽथ सप्तमः ॥२७॥
तथा ह्येकोनपञ्चाशन्मरुतः परिकीर्त्तिताः । आदित्या वसवः साध्या गणा द्वादशकास्त्रयः ॥
एकादश तथा रुद्रा वसवोऽष्टौ प्रकीर्त्तित्ताः । द्वावश्विनौ विनिर्दिष्टौ विश्वेदेवास्तथा दश ॥

दशैवाङ्गिरसो देवा नव देवगणास्तथा ॥२९॥
तेजस्वी नाम वै शक्रो हिरण्याक्षो रिपुः स्मृतः । हतो वराहरूपेण हिरण्याख्योऽथ विष्णुना ॥
वक्ष्ये मनोर्भविष्यस्य सावर्ण्याख्यस्य वै सुतान् । विजयश्चार्ववीरश्च निर्देहः सत्यवाक्कृतिः ॥
वरिष्ठश्च गरिष्ठश्च वाचः संगतिरेव च ॥३१॥
अश्वत्थामा कृपो व्यासो गालवो दीप्तिमानथ । ऋष्यशृङ्गस्तथा राम ऋषयः सप्त कीर्त्तिताः ॥
सुतपा अमृताभाश्च मुख्याश्चापि तथा सुराः । तेषां गणस्तु देवानां एकैको विंशकः स्मृतः ॥
विरोचनसुतस्तेषां बलिरिन्द्रो भविष्यति । दत्त्वेमां याचमानाय विष्णवे यः पदत्रयम् ॥
ऋद्धमिन्द्रपदं हित्वा ततः सिद्धिमवाप्स्यति ॥३४॥
चारुणोर्दक्षसावर्णेर्नवमस्य सुतान् शृणु । धृष्टिकेतुर्दीप्तिकेतुः पञ्चहस्तो निराकृतिः ॥
पृथुश्रवा बृहद्द्युम्न ऋचीको बृहतो गुणः ॥३५॥
मेधातिथिर्द्युतिश्चैव सबलो वसुरेव च । ज्योतिष्मान्हव्यकव्यौ च ऋषयो विभुरीश्वरः ॥३६॥
परो मरीचिगर्भश्च स्वधर्माणश्च ते त्रयः । देवशत्रुः कालकाक्षस्तद्धन्ता पद्मनाभकः ॥३७॥
धर्मपुत्रस्य पुत्रांस्तु दशमस्य मनोः शृणु । सुक्षेत्रश्चोत्तमौजाश्च भूरिश्रेण्यश्च वीर्य्यवान् ॥३८॥
शतानीको निरमित्रो वृषसेनो जयद्रथः । भूरिद्युम्नः सुवर्चाश्च शान्तिरिन्द्रः प्रतापवान् ॥
अयोमूर्त्तिर्हविष्मांश्च सुकृतश्चाव्ययस्तथा । लाभगोऽप्रतिमश्चैव सौरभा ऋषयस्तथा ॥ ४० ॥
प्राणाख्याः शतसंख्यास्तु देवतानां गणास्तदा । बलिशत्रुस्तं हरिश्च गदया घातयिष्यति ॥ ४१ ॥
रुद्रपुत्रस्य ते पुत्रान् वक्ष्याम्येकादशस्य तु । सर्वत्रगः सुशर्मा च देवानीकः पुरुर्गुरुः ॥ ४२ ॥
क्षेत्रवर्णो दृढ़ेषुश्च आर्द्रकः पुत्रकस्तथा । हविष्मांश्च हविष्यश्च वरुणो विश्वविस्तरौ ॥ ४३ ॥
विष्णुश्चैवाग्नितेजाश्च ऋषयः सप्त कीर्त्तिताः । विहङ्गमाः कामगमा निर्माणरुचयस्तथा ॥ ४४ ॥
एकैकरुचयस्तेषां गणश्चेन्द्रश्च वै वृषः । दशग्रीवो रिपुस्तस्य श्रीरूपी घातयिष्यति ॥ ४५ ॥
मनोस्तु दक्षपुत्रस्य द्वादशस्यात्मजान् शृणु । देववानुपदेवश्च देवश्रेष्ठो विदूरथः ॥ ४६ ॥
मित्रवान् मित्रदेवश्च मित्रबिन्दुश्च वीर्य्यवान् । मित्रवाहः प्रवाहश्च दक्षपुत्रमनोः सुताः ॥४७॥
तपस्वी सुतपाश्चैव तपोमूर्त्तिस्तपोरतिः । तपोधृतिर्द्युतिश्चान्यः सप्तर्षयस्तपोधनाः ॥ ४८ ॥
स्वधर्माणः सुतपसो हरितो रोहितस्तथा । सुरारयो गणाश्चैते प्रत्येकं दशको गणः ॥ ४९ ॥
ऋतधामा च भद्रेन्द्रस्तारको नाम तद्रिपुः । हरिर्नपुंसको भूत्वा घातयिष्यति शङ्कर ॥ ५० ॥
त्रयोदशस्य रौच्यस्य मनोः पुत्रान्निबोध मे । चित्रसेनो विचित्रश्च तपोधर्मरतो धृतिः ॥ ५१ ॥
सुनेत्रः क्षेत्रवृत्तिश्च मुनयो धर्मपो दृढः । धृतिमानव्ययश्चैव निशारूपो निरुत्सुकः ॥ ५२ ॥

निर्माणस्तत्त्वदर्शी च ऋषयः सप्त कीर्त्तिताः । स्वरोमाणः स्वधर्माणः स्वकर्माणस्तथामराः ॥
त्रयस्त्रिंशद्विभेदास्ते देवानां तत्र वै गणाः । इन्द्रो दिवस्पतिः शत्रुस्त्विष्टिमो नाम दानवः ५४॥
मायूरेण च रूपेण घातयिष्यति माधवः । चतुर्दशस्य भौत्यस्य शृणु पुत्रान्मनोर्मम ॥ ५५ ॥
ऊरुर्गभीरो धृष्टश्च तरस्वी ग्राह एव च । अभिमानी प्रवीरश्च जिष्णुः संक्रन्दनस्तथा-॥
तेजस्वी दुर्लभश्चैव भौत्यस्यैते मनोः सुताः ॥ ५६ ॥
आग्नीध्रश्चाग्निबाहुश्च मागधश्च तथा शुचिः । अजितो मुक्तशुक्रौ च ऋषयः सप्त कीर्तिताः ५७ ॥
चाक्षुषाः कर्मनिष्ठाश्च पवित्रा भ्राजिनस्तथा । वाचावृथा देवगणाः पञ्च प्रोक्तास्तु सप्तकाः ५८॥
शुचिरिन्द्रो महादैत्यो रिपुहन्ता हरिः स्वयम् । एको देवश्चतुर्द्धा तु व्यासरूपेण विष्णुना ॥५९॥
कृतस्ततः पुराणानि विद्याश्चाष्टादशैव तु । अङ्गानि चतुरो वेदा मीमांसा न्यायविस्तरः॥६०॥
पुराणं धर्मशास्त्रञ्च आयुर्वेदार्थशास्त्रकम् । धनुर्वेदश्च गान्धर्वो विद्या ह्यष्टादशैव ताः ॥६१॥
इति श्रीगारुडे महापुराणे मन्वन्तरनिर्णये सप्ताशीतितमोऽध्यायः ॥८७॥

अष्टाशीतितमोऽध्यायः

सूत उवाच

हरिर्मन्वन्तराण्याह ब्रह्मादिभ्यो हराय च । मार्कण्डेयः पितृस्तोत्रं क्रौञ्चुकिं प्राह तच्छृणु ॥१॥

मार्कण्डेय उवाच

रुचिः प्रजापतिः पूर्वं निर्ममो निरहंकृतिः । यत्रास्तमितमायी च चचार पृथिवीमिमाम् ॥ २ ॥
अनग्निमनिकेतं तमेकाहाग्रनाश्रमम् । विमुक्तसङ्गं तं दृष्ट्वा प्रोचुः स्वपितरो मुनिम् ॥ ३ ॥

पितर ऊचुः

वत्स कस्मात्त्वया पुण्यो न कृतो दारसंग्रहः । स्वर्गापवर्गसेतुत्वाद्बन्धस्तेनामिषं बिना ॥ ४ ॥
गृही समस्तदेवानां पितृणाञ्च तथार्हणम् । ऋषीणामर्थिनाञ्चैव कुर्वन्लोकानवाप्नुयात् ॥५॥
स्वाहोच्चारणतो देवान्स्वधोच्चारणतः पितृन् । विभजत्यन्नदानेन भृत्याद्यानतिथीनपि ॥ ६ ॥
सत्त्वं दैवादृणाद्बन्धमिममस्मदृणादपि । अवाप्तोऽसि मनुष्यर्षे भूतेभ्यश्च दिने दिने ॥७॥
अनुत्पाद्य सुतान्देवान्सन्तर्प्य च पितृंस्तथा । अकृत्वा च कथं मौण्ड्यं स्वर्गतिं गन्तुमिच्छसि ॥
क्लेशबोधैककं पुत्र अन्यायेन भवेत्तव । मृतस्य नरकं त्यक्त्वा क्लेश एवान्यजन्मनि ॥९॥

रुचिरुवाच

परिग्रहोऽतिदुःखाय पापायाधोगतेस्तथा । भवत्यतो मया पूर्वं न कृतो दारसंग्रहः ॥१०॥

आत्मनः संशयोपायः क्रियते क्षणमन्त्रणात् । स्वमुक्तिहेतुर्न भवत्यसावपि परिग्रहात् ॥११॥
प्रक्षाल्यतेऽनुदिवसं य आत्मा निष्परिग्रहः । ममत्वपङ्कदिग्धोऽपि विद्याम्भोभिर्वरं हि तत् ॥
अनेकभवसंभूतकर्मपङ्काङ्कितो बुधैः । आत्मा तत्त्वज्ञानतोयैः प्रक्षाल्य नियतेन्द्रियैः ॥१३॥

पितर ऊचुः

युक्तं प्रक्षालनं कर्त्तुमात्मनोऽपि यतेन्द्रियैः । किन्तु नोपायमार्गोऽयं यतस्त्वं पुत्र वर्त्तसे ॥१४॥
पञ्चयज्ञैस्तपोदानैरशुभं नुदतस्तव । फलाभिसन्धिरहितैः पूर्वकर्म शुभाशुभैः ॥१५॥
एवं न बाधा भवति कुर्वतः करणात्मकम् । न च बन्धाय तत्कर्म भयत्यनतिसन्निभम् ॥१६॥
पूर्वकर्म कृतं भोगैः क्षीयते ह्यनिशं तथा । सुखदुःखात्मकैर्वत्स पुण्यापुण्यात्मकं नृणाम् ॥
एवं प्रक्षाल्यते प्राज्ञैरात्मा बन्धाच्च रक्ष्यते । रक्ष्यश्च स्वविवेकैर्न पापपङ्केन दह्यते ॥१८॥

रुचिरुवाच

अविद्या पच्यते वेदे कर्ममार्गाः पितामहाः । तत्कथं कर्मणो मार्गे भवन्तो योजयन्ति माम् ॥

पितर ऊचुः

अविद्या सर्वमेवैतत्कर्मणैतन्मृषा वचः । किन्तु विद्यापरिव्याप्तौ हेतुः कर्म न संशयः ॥२०॥
विहिताकरणानर्थो न सद्भिः क्रियते तु यः । संयमो मुक्तये योऽन्यः प्रत्युताधोगतिप्रदः ॥२१॥
प्रक्षालयामीति भावान्यदेतन्मन्यते वरम् । विहिताकरणोद्भूतैः पापैस्त्वमसि दह्यसे ॥२२॥
अविद्याऽप्युपकाराय विषवज्जायते नृणाम् । अनुष्ठानाभ्युपायेन बन्धयोग्यापि नो हि सा ॥२३॥
तस्माद्वत्स कुरुष्व त्वं विधिवद्दारसंग्रहम् । आजन्म विफलं तेऽस्तु असम्प्राप्यान्यलौकिकम् २४॥

रुचिरुवाच

वृद्धोऽहं साम्प्रतं को मे पितरः सम्प्रदास्यति । भर्य्यान्तथा दरिद्रस्य दुष्करो दारसंग्रहः ॥२५॥

पितर ऊचुः

अस्माकं पतनं वत्स भवतश्चाप्यधोगतिः । नूनं भावि भवित्री च नाभिनन्दसि नो वचः ॥२६॥
इत्युक्त्वा पितरस्तस्य पश्यतो मुनिसत्तम । बभूवुः सहसाऽदृश्या दीपा वातहता इव ॥२७॥
मुनिः क्रौञ्चुकये प्राह मार्कण्डेयो महातपाः । रुचिवृत्तान्तमखिलं पितृसंवादलक्षणम् ॥ २८ ॥

इति गारुडे महापुराणे रुचिस्तोत्रं नाम अष्टाशीतितमोऽध्यायः ॥ ८८ ॥

ऊननवतितमोऽध्यायः

सूत उवाच

पृष्टः क्रौञ्चुकिनोवाच मार्कण्डेयः पुनश्च तम् । स तेन पितृवाक्येन भृशमुद्विग्नमानसः ॥ १ ॥
कन्याभिलाषी विप्रर्षिः परिबभ्राम मेदिनीम् । कन्यामलभमानोऽसौ पितृवाक्येन दीपितः ॥
चिन्तामवाप महतीमतीवोद्विग्नमानसः ॥ २ ॥
किं करोमि क्व गच्छामि कथं मे दारसंग्रहः । क्षिप्रं भवेन्मत्पितॄणां ममाभ्युदयकारकम् ॥ ३ ॥
इति चिन्तयतस्तस्य मतिर्जाता महात्मनः । तपसाऽऽराधयाम्येनं ब्रह्माणं कमलोद्भवम् ॥ ४ ॥
ततो वर्षशतं दिव्यं तपस्तेपे महामनाः । तत्र स्थितश्चिरं कालं वनेषु नियमस्थितः ॥
आराधनाय स तदा परं नियममास्थितः ॥ ५ ॥
ततः प्रदर्शयामास ब्रह्मा लोकपितामहः । उवाचाथ प्रसन्नोऽस्मीत्युच्यतामभिवाञ्छितम् ॥६॥
ततोऽसौ प्रणिपत्याह ब्रह्माणं जगतो गतिम् । पितॄणां वचनात्तेन यत्कर्तुमभिवाञ्छितम् ॥७॥

ब्रह्मोवाच

प्रजापतिस्त्वं भविता स्रष्टव्या भवता प्रजाः । सृष्ट्वा प्रजाः सुतान्विप्रः समुत्पाद्य क्रियास्तथा ॥८॥
कृत्वा कृताधिकारस्त्वं ततः सिद्धिमवाप्स्यसि । स त्वं यथोक्तं पितृभिः कुरु दारपरिग्रहम् ॥९॥
कामञ्चेममभिध्याय क्रियतां पितृपूजनम् । त एव तुष्टाः पितरः प्रदास्यन्ति तवेप्सितम् ॥
पत्नीं सुतांश्च सन्तुष्टाः किं न दद्युः पितामहाः ॥१०॥

मार्कण्डेय उवाच

इत्यर्षिर्वचनं श्रुत्वा ब्रह्मणोऽव्यक्तजन्मनः । नद्या विविक्ते पुलिने चकार पितृतर्पणम् ॥११॥
तुष्टाव च पितॄन्विप्रः स्तवैरेभिरथादृतः । एकाग्रप्रयतो भूत्वा भक्तिनम्रात्मकन्धरः ॥१२॥

रुचिरुवाच

नमस्येऽहं पितॄन्भक्त्या ये वसन्त्यधिदेवताः । देवैरपि हि तर्प्यन्ते ये श्राद्धेषु स्वधोत्तरैः ॥१३॥
नमस्येऽहं पितॄन्स्वर्गे ये तर्प्यन्ते महर्षिभिः । श्राद्धैर्मनोमयैर्भक्त्या भक्तिमुक्तिमभीप्सुभिः ॥१४॥
नमस्येऽहं पितॄन्स्वर्गे सिद्धाः सन्तर्पयन्ति यान् । श्राद्धेषु दिव्यैः सकलैरुपहारैरनुत्तमैः ॥१५॥
नमस्येऽहं पितॄन्भक्त्या येऽर्च्यन्ते गुह्यकैर्दिवि । तन्मयत्वेन वाञ्छद्भिर्ऋद्धिं यांत्यन्तिकीं पराम् ॥
नमस्येऽहं पितॄन्मर्त्यैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा । श्राद्धेषु श्रद्धयाभीष्टलोकपुष्टिप्रदायिनः ॥१७॥
नमस्येऽहं पितॄन्विप्रैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा । वाञ्छिताभीष्टलाभाय प्राजापत्यप्रदायिनः ॥१८॥

नमस्येऽहं पितॄन्ये वै तर्प्यन्तेऽरण्यवासिभिः । वन्यैः श्राद्धैर्यताहारैस्तपोनिर्धूतकल्मषैः ॥१९॥
नमस्येऽहं पितॄन्विप्रैर्नैष्ठिकैर्धर्मचारिभिः । ये संयतात्मभिर्नित्यं सन्तर्प्यन्ते समाधिभिः ॥२०॥
नमस्येऽहं पितॄन्श्राद्धै राजन्यास्तर्पयन्ति यान् । कव्यैरशेषैर्विधिवल्लोकद्वयफलप्रदान् ॥२१॥
नमस्येऽहं पितॄन्वैश्यैरर्च्यन्ते भुवि ये सदा । स्वकर्माभिरतैर्नित्यं पुष्पधूपान्नवारिभिः ॥२२॥
नमस्येऽहं पितॄन्श्राद्धे शूद्रैरपि च भक्तितः । सन्त्यर्प्यन्ते जगत्कृत्स्नं नाम्ना ख्याताः सुकालिनः ॥
नमस्येऽहं पितॄन्श्राद्धे पाताले ये महासुरैः । सन्त्यर्प्यन्ते सुधाहारास्त्यक्तदम्भमदैः सदा ॥२४॥
नमस्येऽहं पितॄन्श्राद्धैरर्च्यन्ते ये रसातले । भोगैरशेषैर्विधिवन्नागैः कामानभीप्सुभिः ॥२५॥
नमस्येऽहं पितॄन्श्राद्धैः सर्पैः सन्तर्पितान्सदा । तत्रैव विधिवन्मन्त्रभोगसम्पत्समन्वितैः ॥२६॥

पितॄन्नमस्ये निवसन्ति साक्षाद्ये देवलोकेऽथ महीतले वा ।
तथाऽन्तरिक्षे च सुरारिपूज्यास्ते मे प्रतीच्छन्तु मनोपनीतम् ॥२७॥
पितॄन्नमस्ये परमार्थभूता ये वै विमाने निवसन्त्यमूर्त्ताः ।
यजन्ति यानस्तमलैर्मनोभिर्योगीश्वराः क्लेशविमुक्तिहेतून् ॥२८॥

पितॄन्नमस्ये दिवि ये च मूर्त्ताः स्वधाभुजः काम्यफलाभिसन्धौ ।
प्रदानशक्ताः सकलेप्सितानां विमुक्तिदा येऽनभिसंहितेषु ॥२९॥
तृप्यन्तु तेऽस्मिन्पितरः समस्ता इच्छावतां ये प्रदिशन्ति कामान् ।
सुरत्वमिन्द्रत्वमितोऽधिकं वा गजाश्वरत्नानि महागृहाणि ॥३०॥
सोमस्य ये रश्मिषु येऽर्कबिम्बे शुक्ले विमाने च सदा वसन्ति ।
तृप्यन्तु तेऽस्मिन्पितरोऽन्नतोयैर्गन्धादिना पुष्टिमितो व्रजन्तु ॥३१॥
येषां हुतेऽग्नौ हविषा च तृप्तिर्ये भुञ्जते विप्रशरीरसंस्थाः ।
ये पिण्डदानेन मुदं प्रयान्ति तृप्यन्तु तेऽस्मिन्पितरोऽन्नतोयैः ॥३२॥
ये खड्गमांसेन सुरैरभीष्टैः कृष्णैस्तिलैर्दिव्यमनोहरैश्च ।
कालेन शाकेन महर्षिवर्य्यैः सम्प्रीणितास्ते मुदमत्र यान्तु ॥३३॥
कथान्यशेषाणि च यान्यभीष्टान्यतीव तेषां मम पूजितानाम् ।
तेषाञ्च सान्निध्यमिहास्तु पुष्पगन्धाम्बुभोज्येषु मया कृतेषु ॥३४॥
दिने दिने ये प्रतिगृह्णतेऽर्चां मासान्तपूज्या भुवि येऽष्टकासु ।
ये वत्सरान्तेऽभ्युदये च पूज्याः प्रयान्तु ते मे पितरोऽत्र तुष्टिम् ॥३५॥
पूज्या द्विजानां कुमुदेन्दुभासो ये क्षत्रियाणां ज्वलनार्कवर्णाः ।

तथा विशां ये कनकावदाता नीलीप्रभाः शूद्रजनस्य ये च ॥३६॥
तेऽस्मिन्समस्ता मम पुष्पगन्धधूपाम्बुभोज्यादिनिवेदनेन ।
तथाऽग्निहोमेन च यान्ति तृप्तिं सदा पितृभ्यः प्रणतोऽस्मि तेभ्यः ॥३७॥
ये देवपूर्वाण्यभितृप्तिहेतोरश्नन्ति कव्यानि शुभाहृतानि ।
तृप्ताश्च ये भूतिसृजो भवन्ति तृप्यन्तु तेऽस्मिन्प्रणतोऽस्मि तेभ्यः ॥३८॥
रक्षांसि भूतान्यसुरांस्तथोग्रान्निर्नाशयन्तु त्वशिवं प्रजानाम् ।
आद्याः सुराणाममरेशपूज्यास्तृप्यन्तु तेऽस्मिन् प्रणतोऽस्मि तेभ्यः ॥३९॥
अग्निष्वात्ता बर्हिषद आज्यपाः सोमपास्तथा । व्रजन्तु तृप्तिं श्राद्धेऽस्मिन्पितरस्तर्पिता मया ४०॥
अग्निष्वात्ताः पितृगणाः प्राचीं रक्षन्तु मे दिशम् । तथा बर्हिषदः पान्तु याम्यां मे पितरः सदा ॥
प्रतीचीमाज्यपास्तद्वदुदीचीमपि सोमपाः ॥४१॥
रक्षोभूतपिशाचेभ्यस्तथैवासुरदोषतः । सर्वतः पितरो रक्षां कुर्वन्तु मम नित्यशः ॥४२॥
विश्वो विश्वभुगाराध्यो धर्मो धन्यः शुभाननः । भूतिदो भूतिकृद्भूतिः पितॄणां ये गणा नव ४३॥
कल्याणः कल्यदः कर्त्ता कल्यः कल्यतराश्रयः । कल्यताहेतुरनघः षडिमे ते गणाः स्मृताः ४४॥
वरो वरेण्यो वरदस्तुष्टिदः पुष्टिदस्तथा । विश्वपाता तथा धाता सप्तैते च गणाः स्मृताः ४५॥
महान्महात्मा महितो महिमावान्महाबलः । गणाः पञ्च तथैवैते पितॄणां पापनाशनाः ॥४६॥
सुखदो धनदश्चान्यो धर्मदोऽन्यश्च भूतिदः । पितॄणां कथ्यते चैव तथा गणचतुष्टयम् ॥४७॥
एकत्रिंशत्पितृगणा यैर्व्याप्तमखिलं जगत् । त एवात्र पितृगणास्तुष्यन्तु च मदाहितम् ॥४८॥

मार्कण्डेय उवाच

एवन्तु स्तुवतस्तस्य तेजसो राशिरुच्छ्रितः । प्रादुर्बभूव सहसा गगनव्याप्तिकारकः ॥४९॥
तद्दृष्ट्वा सुमहत्तेजः समाच्छाद्य स्थितं जगत् । जानुभ्यामवनीं गत्वा रुचिः स्तोत्रमिदं जगौ ॥

रुचिरुवाच

अर्चितानाममूर्त्तानां पितॄणां दीप्ततेजसाम् । नमस्यामि सदा तेषां ध्यानिनां दिव्यचक्षुषाम् ॥
इन्द्रादीनाञ्च नेतारो दक्षमारीचयोस्तथा । सप्तर्षीणां तथान्येषां तान्नमस्यामि कामदान् ५२॥
मन्वादीनाञ्च नेतारः सूर्य्याचन्द्रमसोस्तथा । तान्नमस्याम्यहं सर्वान्पितॄनप्युदधौ स: ॥५३॥
नक्षत्राणां ग्रहाणाञ्च वाय्वग्न्योर्नभसस्तथा । द्यावापृथिव्योश्च तथा नमस्यामि कृताञ्जलिः ॥५४॥
प्रजापतेः कश्यपाय सोमाय वरुणाय च । योगेश्वरेभ्यश्च सदा नमस्यामि कृताञ्जलिः ॥५५॥
नमो गणेभ्यः सप्तभ्यस्तथा लोकेषु सप्तसु । स्वायम्भुवे नमस्यामि ब्रह्मणे योगचक्षुषे ॥५६॥

सोमाधारान्पितृगणान्योगमूर्त्तिधरांस्तथा । नमस्यामि तथा सोमं पितरं जगतामहम् ॥५७॥
अग्निरूपांस्तथैवान्यान्नमस्यामि पितॄनहम् । अग्निसोममयं विश्वं यत एतदशेषतः ॥५८॥
ये च तेजसि ये चैते सोमसूर्य्याग्निमूर्त्तयः । जगत्स्वरूपिणश्चैव तथा ब्रह्मस्वरूपिणः ॥५९॥
तेभ्योऽखिलेभ्यो योगिभ्यः पितृभ्यो यतमानसः । नमो नमो नमस्तेऽस्तु प्रसीदन्तु स्वधाभुजः ॥

मार्कण्डेय उवाच

एवंस्तुतास्ततस्तेन तेजसो मुनिसत्तमाः । निश्चक्रमुस्ते पितरो भासयन्तो दिशो दश ॥६१॥
निवेदनञ्च यत्तेन पुष्पगन्धानुलेपनम् । तद्भूषितानथ स तान्ददृशे पुरतः स्थितान् ॥६२॥
प्रणिपत्य रुचिर्भक्त्या पुनरेव कृताञ्जलिः । नमस्तुभ्यं नमस्तुभ्यमित्याह पृथगादृतः ॥६३॥
ततः प्रसन्नाः पितरस्तमूचुर्मुनिसत्तमम् । वरं वृणीष्वेति स तानुवाचानतकन्धरः ॥६४॥

रुचिरुवाच

प्रजानां सर्गकर्तृत्वमादिष्टं ब्रह्मणा मम । सोऽहं पत्नीमभीप्सामि धन्यां दिव्यां प्रजावतीम् ॥

पितर ऊचुः

अत्रैव सद्यः पत्नी ते भवत्वतिमनोरमा । तस्याञ्च पुत्रो भविता भवतो मुनिसत्तम ॥६६॥
मन्वन्तराधिपो धीमांस्तन्नाम्नैवोपलक्षितः । रुचे रौच्य इति ख्यातिं प्रयास्यति जगत्त्रये ॥६७॥
तस्यापि बहवः पुत्रा महाबलपराक्रमाः । भविष्यन्ति महात्मानः पृथिवीपरिपालकाः ॥६८॥
त्वञ्च प्रजापतिर्भूत्वा प्रजाः सृष्ट्वा चतुर्विधाः । क्षीणाधिकारो धर्मज्ञस्ततः सिद्धिमवाप्स्यसि ॥६९॥
स्तोत्रेणानेन च नरो योऽस्मांस्तोष्यति भक्तितः । तस्य तुष्टा वयं भोगानात्मजं ध्यानमुत्तमम् ॥
आयुरारोग्यमर्थञ्च पुत्र पौत्रादिकं तथा । वाञ्छद्भिः सततं स्तव्याः स्तोत्रेणानेन वै यतः ॥७१॥
श्राद्धेषु य इमं भक्त्या अस्मत्प्रीतिकरं स्तवम् । पठिष्यति द्विजाग्र्याणां भुञ्जतां पुरतः स्थितः ॥
स्तोत्रश्रवणसंप्रीत्या सन्निधाने परे कृते । अस्माभिरक्षयं श्राद्धं तद्भविष्यत्यसंशयः ॥७३॥
यद्यप्यश्रोत्रियं श्राद्धं यद्यप्युपहतं भवेत् । अन्यायोपात्तवित्तेन यदि वा कृतमन्यथा ॥७४॥
अश्राद्धार्हैरुपहतैरुपहारैस्तथा कृतैः । अकालेऽप्यथवा देशे विधिहीनमथापि वा ॥७५॥
अश्रद्धया वा पुरुषैर्दम्भमाश्रित्य यत्कृतम् । अस्माकं तृप्तये श्राद्धं तथाप्येतदुदीरणात् ॥७६॥
यत्रैतत्पठ्यते श्राद्धे स्तोत्रमस्मत्सुखावहम् । अस्माकं जायते तृप्तिस्तत्र द्वादशवार्षिकी ॥७७॥
हेमन्ते द्वादशाब्दानि तृप्तिमेतत्प्रयच्छति । शिशिरे द्विगुणाब्दानि तृप्तिं स्तोत्रमिदं शुभम् ॥
वसन्ते षोडशसमास्तृप्तये श्राद्धकर्मणि । ग्रीष्मे च षोडशैवैतत्पठितं तृप्तिकारकम् ॥७९॥
विकलेऽपि कृते श्राद्धे स्तोत्रेणानेन साधिते । वर्षासु तृप्तिरस्माकमक्षया जायते रुचे ॥८०॥

शरत्कालेऽपि पठितं श्राद्धकाले प्रयच्छति । अस्माकमेतत्पुरुषैस्तृप्तिं पञ्चदशाब्दिकीम् ॥८१॥
यस्मिन्गेहे च लिखितमेतत्तिष्ठति नित्यदा । सन्निधानं कृते श्राद्धे तत्रास्माकं भविष्यति ॥८२॥
तस्मादेतत्त्वया श्राद्धे विप्राणां भुञ्जतां पुरः । श्रावणीयं महाभाग अस्माकं पुष्टिकारकम् ॥८३॥
इति श्रीगारुड़े महापुराणे पितृस्तोत्रे रुचिस्तोत्रं नाम ऊननवतितमोऽध्यायः ॥८९॥

नवतितमोऽध्यायः

मार्कण्डेय उवाच

ततस्तस्मान्नदीमध्यात्समुत्तस्थौ मनोरमा । प्रम्लोचा नाम तन्वङ्गी तत्समीपे वराप्सराः ॥ १ ॥
सा चोवाच महात्मानं रुचिं सुमधुराक्षरम् । प्रसादयामास भूयः प्रम्लोचा च वराप्सराः ॥ २ ॥
अतीवरूपिणी कन्या मत्प्रसादाद्वराङ्गना । जाता वरुणपुत्रेण पुष्करेण महात्मना ॥ ३ ॥
तां गृहाण मया दत्तां भार्य्यार्थे वरवर्णिनीम् । मनुर्महामतिस्तस्यां समुत्पत्स्यति ते सुतः ॥ ४ ॥

माकण्डेय उवाच

तथेति तेन साप्युक्ता तस्मात्तोयाद्वपुष्मतीम् । उद्धार ततः कन्यां मानिनीं नाम नामतः ॥५॥
नद्याश्च पुलिने तस्मिन्स मुनिर्मुनिसत्तमाः । जग्राह पाणिं विधिवत्समानीय महामुनिः ॥ ६ ॥
तस्यां तस्य सुतो जज्ञे महावीर्य्यो महाद्युतिः । रुचे रौच्य इति ख्यातो यो मया पूर्वमीरितः ७॥
इति श्रीगारुड़े महापुराणे पितृस्तोत्रं नाम नवतितमोऽध्यायः ॥९०॥

एकनवतितमोऽध्यायः

सूत उवाच

स्वायम्भुवाद्या मुनयो हरिं ध्यायन्ति कर्मगा । व्रताचारार्चनाध्यानस्तुतिजप्यपरायणाः ॥ १ ॥
देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्राणाहङ्कारवर्जितम् । आकाशेन विहीनं वै तेजसा परिवर्जितम् ॥ २ ॥
उदकेन विहीनं वै तद्धर्मपरिवर्जितम् । पृथिवीरहितञ्चैव सर्वभूतविवर्जितम् ॥ ३ ॥
भूताध्यक्षं तथा बुद्धं नियन्तारं प्रभुं विभुम् । चैतन्यरूपतारूपं सर्वाध्यक्षं निरञ्जनम् ॥ ४ ॥
मुक्तसङ्ग महेशानं सर्वदेवप्रपूजितम् । तेजोरूपमसत्त्वञ्च तपसा परिवर्जितम् ॥ ५ ॥
रहितं रजसा नित्यं व्यतिरिक्तं गुणैस्त्रिभिः । सर्वरूपविहीनं वै कर्तृत्वादिविवर्जितम् ॥ ६ ॥
वासनारहितं शुद्धं सर्वदोषविवर्जितम् । पिपासावर्जितं तत्तच्छोकमोहविवर्जितम् ॥ ७ ॥

जरामरणहीनं वै कूटस्थं मोहवर्जितम् । उत्पत्तिरहितञ्चैव प्रलयेन विवर्जितम् ॥ ८ ॥
सर्वाचारहीनं सत्यं निष्कलं परमेश्वरम् । जाग्रत्स्वप्नसुषुप्त्यादिवर्जितं नामवर्जितम् ॥ ९ ॥
अध्यक्षं जाग्रदादीनां शान्तरूपं सुरेश्वरम् । जाग्रदादिस्थितं नित्यं कार्य्यकारणवर्जितम् ॥१०॥
सर्वद्रष्टं तथा मूर्त्तं सूक्ष्मं सूक्ष्मतरं परम् । ज्ञानदृक्श्रोत्रविज्ञानं परमानन्दरूपकम् ॥११॥
विश्वेन रहितं तद्वत्तैजसेन विवर्जितम् । प्राज्ञेन रहितञ्चैव तुरीयं परमाक्षरम् ॥१२॥
सर्वगोप्तृ सर्वहन्तृ सर्वभूतात्मरूपि च । बुद्धिधर्मविहीनं वै निराधारं शिवं हरिम् ॥१३॥
विक्रियारहितञ्चैव वेदान्तैर्वेद्यमेव च । वेदरूपं परं भूतमिन्द्रियेभ्यः परं शुभम् ॥१४॥
शब्देन वर्जितञ्चैव रसेन च विवर्जितम् । स्पर्शेन रहितं देवं रूपमात्रविवर्जितम् ॥१५॥
रूपेण रहितञ्चैव गन्धेन परिवर्जितम् । अनादि ब्रह्मरन्ध्रान्तमहं ब्रह्मास्मि केवलम् ॥१६॥
एवं ज्ञात्वा महादेव ध्यानं कुर्य्याज्जितेन्द्रियः । ध्यानं यः कुरुते ह्येवं स भवेद्ब्रह्म मानवः १७॥
इति ध्यानं समाख्यातमीश्वरस्य मया तव । अधुना कथयाम्यन्यत्किं तद्ब्रूहि वृषध्वज ॥१८॥
इति श्रीगारुड़े महापुराणे हरिध्यानं नाम एकनवतितमोऽध्यायः ॥९१॥

द्विनवतितमोऽध्यायः

रुद्र उवाच

विष्णोर्ध्यानं पुनर्ब्रूहि शङ्खचक्रगदाधर । येन विज्ञानमात्रेण कृतकृत्यो भवेन्नरः ॥ १ ॥

हरिरुवाच

प्रवक्ष्यामि हरेर्ध्यानं मायातन्त्रविमर्दकम् । मूर्त्तामूर्त्तादिभेदेन तद्ध्यानं द्विविधं हर ॥ २ ॥
अमूर्त्तं रुद्र कथितं हन्त मूर्त्तं ब्रवीम्यहम् । सूर्य्यकोटिप्रतीकाशो जिष्णुर्भ्राजिष्णुरेकतः ॥ ३ ॥
कुन्दगोक्षीरधवलो हरिर्ध्येयो मुमुक्षुभिः । विशालेन सुसौम्येन शङ्खेन च समन्वितः ॥ ४ ॥
सहस्रादित्यतुल्येन ज्वालामालोग्ररूपिणा । चक्रेण चान्वितः शान्तो गदाहस्तः शुभाननः ॥५॥
किरीटेन महार्हेण रत्नप्रज्वलितेन च । सायुधः सर्वगो देवः सरोरुहधरस्तथा ॥ ६ ॥
वनमालाधरः शुभ्रः समांसो हेमभूषणः । सुवस्त्रः शुद्धदेहश्च सुकर्णः पद्मसंस्थितः ॥ ७ ॥
हिरण्मयशरीरश्च चारुहारी शुभाङ्गदः । केयूरेण समायुक्तो वनमालासमन्वितः ॥ ८ ॥
श्रीवत्सकौस्तुभयुतो लक्ष्मीवन्द्येक्षणान्वितः । अणिमादिगुणैर्युक्तः सृष्टिसंहारकारकः ॥ ९ ॥
मुनिध्येयोऽसुरध्येयो देवध्येयोऽतिसुन्दरः । ब्रह्मादिस्तम्बपर्य्यन्तभूतजातहृदि स्थितः ॥१०॥
सनातनोऽव्ययो मेध्यः सर्वानुग्रहकृत्प्रभुः । नारायणो महादेवः स्फुरन्मकरकुण्डलः ॥११॥

सन्तापनाशनोऽभ्यर्च्यो मङ्गल्यो दुष्टनाशनः । सर्वात्मा सर्वरूपश्च सर्वगो ग्रहनाशनः ॥१२॥
चार्वङ्गुरीयसंयुक्तः सुदीप्तनख एव च । शरण्यः सुखकारी च सौम्यरूपो महेश्वरः ॥१३॥
सर्वालङ्कारसंयुक्तश्चारुचन्दनचर्चितः । सर्वदेवसमायुक्तः सर्वदेवप्रियङ्करः ॥१४॥
सर्वलोकहितैषी च सर्वेशः सर्वभावनः । आदित्यमण्डले संस्थो अग्निस्थो वारिसंस्थितः ॥१५॥
वासुदेवो जगद्ध्याता ध्येयो विष्णुर्मुमुक्षिभिः । वासुदेवोऽहमस्मीति आत्मा ध्येयो हरिर्हरिः ॥
ध्यायन्त्येवञ्च ये विष्णुं ते यान्ति परमां गतिम् । याज्ञवल्क्यः पुरा ह्येवं ध्यात्वा विष्णुं सुरेश्वरम् ॥
धर्मोपदेशकर्तृत्वं संप्राप्यागात्परं पदम् ॥१७॥
तस्मात्त्वमपि देवेश विष्णुं चिन्तय शङ्कर । विष्णुध्यानं पठेद्यस्तु प्राप्नोति परमां गतिम् ॥१८॥
इति श्रीगारुडे महापुराणे विष्णुध्यानं नाम द्विनवतितमोऽध्यायः ॥९२॥

त्रिनवतितमोऽध्यायः

महेश्वर उवाच

याज्ञवल्क्येन वै पूर्वं धर्मः प्रोक्तः कथं हरे । तन्मे कथय केशिघ्न यथातत्त्वेन माधव ॥ १ ॥

हरिरुवाच

याज्ञवल्क्यं नमस्कृत्य मिथिलायां समास्थितम् । अपृच्छन्नृषयो गत्वा वर्णधर्मानशेषतः ॥
तेभ्यः स कथयामास विष्णुं ध्यात्वा जितेन्द्रियः ॥ २ ॥

याज्ञवल्क्य उवाच

यस्मिन्देशे मृगः कृष्णस्तस्मिन्धर्मं निबोधत । पुराणन्यायमीमांसा धर्मशास्त्रार्थमिश्रिताः ॥ ३ ॥
वेदाः स्थानानि विद्यानां धर्मस्य च चतुर्दश । वक्तारो धर्मशास्त्राणां मनुर्विष्णुर्यमोऽङ्गिराः ॥
वसिष्ठदक्षसंवर्त्ताः शातातपपराशराः । आपस्तम्बोशनसौ व्यासः कात्यायनबृहस्पती ॥ ५ ॥
गौतमः शङ्खलिखितौ हारीतोऽत्रिर्ऋषिस्तथा । एते विष्णुसमाराध्या जाता धर्मोपदेशकाः ॥६॥
देशकाल उपायेन द्रव्यं श्रद्धासमन्वितम् । पात्रे प्रदीयते यत्तत्सकलं धर्मलक्षणम् ॥ ७ ॥
इष्टाचारो दमोऽहिंसा दानं स्वाध्यायकर्म च । अयञ्च परमो धर्मो यद्योगेनात्मदर्शनम् ॥ ८ ॥
चत्वारो वेदधर्मज्ञाः पराखैविद्यमेव वा । सब्रते यत्स्वधर्मः स्याद्देवाराध्यात्मवित्तमः ॥ ९ ॥
ब्रह्मक्षत्रियविट्शूद्रा वर्णास्त्वाद्यास्त्रयो द्विजाः । निषेकाद्या श्मशानान्तास्तेषां वै मन्त्रतः क्रिया ॥

गर्भाधानमृतौ पुंसः सवनं स्पन्दनात्पुरा । षष्ठेऽष्टमे वा सीमन्तः प्रसवो जातकर्म च ॥११॥
अहन्येकादशे नाम चतुर्थे मासि निष्क्रमः । षष्ठेऽन्नप्राशनं मासि चूड़ां कुर्याद्यथाकुलम् ॥
एवमेनः शमं याति बीजगर्भसमुद्भवम् । तूष्णीमेताः क्रियाः स्त्रीणां विवाहश्च समन्त्रकः ॥१३॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे वर्णधर्मो नाम त्रिनवतितमोऽध्यायः ॥९३॥

चतुर्नवतितमोऽध्यायः

याज्ञवल्क्य उवाच

गर्भाष्टमाष्टमे वाब्दे ब्राह्मणस्योपनायनम् । राज्ञामेकादशे सैके बिशामेके यथाकुलम् ॥ १ ॥
उपनीय गुरुः शिष्यं महाव्याहृतिपूर्वकम् । वेदमध्यापयेदेनं शौचाचारांश्च शिक्षयेत् ॥ २ ॥
दिवा सन्ध्यासु कर्णस्थब्रह्मसूत्र उदङ्मुखः । कुर्य्यान्मूत्रपुरीषे तु रात्रौ चेद्दक्षिणामुखः ॥ ३ ॥
गृहीतशिश्नश्चोत्थाय मृद्भिरभ्युद्धृतैर्जलैः । गन्धलेपक्षयकरं शौचं कुर्य्यान्महाव्रतः ॥ ४ ॥
अन्तर्जानुः शुचौ देश उपविष्ट उदङ्मुखः । प्राग्वा ब्राह्मेण तीर्थेन द्विजो नित्यमुपस्पृशेत् ॥५॥
कनिष्ठादेशिन्यङ्गुष्ठमूलान्यग्रं करस्य च । प्रजापतिपितृब्रह्मदैवतीर्थाननुक्रमात् ॥ ६ ॥
त्रिः प्राश्यापो द्विरुन्मृज्य मुखान्यद्भिश्च संस्पृशेत् । अद्भिस्तु प्रकृतिस्थाभिः हीनाभिः फेनबुद्बुदैः ॥
हृत्कण्ठतालुनाभिस्तु यथासंख्यं द्विजातयः । शुध्येरन्स्त्री च शूद्रश्च सकृत्स्पृष्टाभिरन्ततः ॥ ८ ॥
स्नानं तद्दैवतैर्मन्त्रैर्मार्जनं प्राणसंयमः । सूर्य्यस्य चाप्युपस्थानं गायत्र्याः प्रत्यहं जपः ॥
गायत्रीं शिरसा सार्द्धं जपेद् व्याहृतिपूर्विकाम् । प्रतिप्रणवसंयुक्तां त्रिवारं प्राणसंयमः ॥१०॥
प्राणायामस्य संशुद्धिस्त्र्यृचा तद्दैवतेन तु । जपन्नासीत सावित्रीं प्रत्यगातारकोदयात् ॥११॥
सन्ध्यां प्राक्प्रातरेवं हि तिष्ठन्नासूर्य्यदर्शनात् । अग्निकार्य्यं ततः कुर्यात्सन्ध्ययोरुभयोरपि ॥१२॥
ततोऽभिवादयेद्वृद्धानसावहमिति ब्रुवन् । गुरुश्चैवाप्युपासीत स्वाध्यायार्थं समाहितः ॥१३॥
आहूतश्चाप्यधीयीत सर्वञ्चास्मै निवेदयेत् । हितञ्चास्यापरान्नित्यं मनोवाक्कायकर्मभिः ॥१४॥
दण्डाजिनोपवीतानि मेखलाञ्चैव धारयेत् । द्विजेषु चारयेद्भैक्ष्यमनिन्द्येष्वात्मवृत्तये ॥१५॥
आदिमध्यावसानेषु भवेच्छन्दोपलक्षितः । ब्राह्मणः क्षत्रियविशां भैक्ष्यं चर्य्याद्यथाक्रमम् १६॥
कृताग्निकार्य्यो भुञ्जीत विनीतो गुर्वनुज्ञया । आपोशानक्रियापूर्वं सत्कृत्वाऽन्नमकुत्सयन् ॥१७॥
ब्रह्मचर्य्यास्थितोऽनेकमन्नमद्यादनापदि । ब्राह्मणः काममश्नीयात् श्राद्धे व्रतमपीड़यन् ॥१८॥
मधुमांसं तथा स्विन्नमित्यादि परिवर्जयेत् । स गुरुर्यः क्रियाः कृत्वा वेदमस्मै प्रयच्छति ॥१६॥

उपनीय ददात्येनमाचार्य्यः स प्रकीर्त्तितः। एकदेश उपाध्याय ऋत्विग्यज्ञकृदुच्यते ॥२०॥
एते मान्या यथापूर्वमेभ्यो माता गरीयसी। प्रतिवेदं ब्रह्मचर्य्यं द्वादशाब्दानि पञ्च वा ॥२१॥
ग्रहणान्तिकमित्येके केशान्तश्चैव षोडशः। आषोडशाद्द्विविंशाच्च चतुर्विंशाच्च वत्सरात् ॥२२॥
ब्रह्मक्षत्रविशां काल उपनायनिकः परः। अत ऊर्ध्वं पतन्त्येते सर्वधर्मविवर्जिताः ॥
सावित्रीपतिता व्रात्या व्रात्यस्तोमादृते क्रतोः ॥ २३ ॥
मातुर्यदग्रे जायन्ते द्वितीयं मौञ्जिबन्धनम्। ब्राह्मणक्षत्रियविशस्तस्मादेते द्विजातयः ॥२४॥
यज्ञानां तपसाञ्चैव शुभानाञ्चैव कर्मणाम्। वेद एव द्विजातीनां निःश्रेयसकरः परः ॥२५॥
मधुना पयसा चैव स देवांस्तर्पयेद्द्विजः। पितॄन्मधुघृताभ्याञ्च ऋचोऽधीते हि सोऽन्वहम् ॥२६॥
यजुः साम पठेत्तद्वदथर्वाङ्गिरसं द्विजः। सन्तर्पयेत् पितॄन्देवान्सोऽन्वहं हि घृतामृतैः ॥२७॥
वेदवाक्यं पुराणञ्च नावाशंसीश्च गाथिकाः। इतिहासांस्तथा वेदान्योऽधीते शक्तितोऽन्वहम् ॥
सन्तर्पयेत्पितॄन्देवान्मांसक्षीरौदनादिभिः । ते तृप्तास्तर्पयन्त्येनं सर्वकामफलैः शुभैः ॥२९॥
यं यं क्रतुमधीते च तस्य तस्याप्नुयात्फलम्। भूमिदानस्य तपसः स्वाध्यायफलभाग्द्विजः ३०॥
नैष्ठिको ब्रह्मचारी तु वसेदाचार्य्यसन्निधौ। तद्भावेऽस्य तनये पत्न्यां वैश्वानरेऽपि वा ॥३१॥
अनेन विधिना देहं साधयेद्विजितेन्द्रियः। ब्रह्मलोकमवाप्नोति न चेह जायते पुनः ॥३२॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे वर्णधर्मो नाम चतुर्नवतितमोऽध्यायः ॥९४॥

पञ्चनवतितमोऽध्यायः

याज्ञवल्क्य उवाच

शृण्वन्तु मुनयो धर्मान्गृहस्थस्य यतव्रताः। गुरवे च धनं दत्त्वा स्नात्वा च तदनुज्ञया ॥१॥
समापितब्रह्मचर्य्यो लक्षण्यां स्त्रियमुद्वहेत्। अनन्यपूर्विकां कान्तामसपिण्डां यवीयसीम् ॥२॥
अरोगिणीं भ्रातृमतीमसमानार्षगोत्रजाम्। पञ्चमात्सप्तमादूर्ध्वं मातृतः पितृतस्तथा ॥३॥
द्विपञ्चनवविख्यातात् श्रोत्रियाणां महाकुलात्। सवर्णः श्रोत्रियो विद्वान्वरो दोषान्वितो न च ॥
यदुच्यते द्विजातीनां शूद्राद्दारोपसंग्रहः। न तन्मम मतं यस्मात्तत्रायं जायते स्वयम् ॥५॥
तिस्रो वर्णानुपूर्व्येण द्वे तथैका यथाक्रमम्। ब्राह्मणक्षत्रियविशाद्भार्या वा शूद्रजन्मनः ॥६॥
ब्राह्मो विवाह आहूय दीयते शक्त्यलंकृता। तज्जः पुनात्युभयतः पुरुषानेकविंशतिम् ॥७॥
यज्ञस्थायर्त्विजे दैवमादायार्षस्तु गोयुगम्। चतुर्दशप्रथमजः पुनात्युत्तरजश्च षट् ॥८॥
इत्युक्त्वा चरतां धर्मं सह या दीयतेऽर्थिने। सकायः पावयेत्तज्जं षड्वंश्यानात्मना सह ॥९॥

आसुरो द्रविणादानाद्गान्धर्वः समयान्मिथः । राक्षसो युद्धहरणात् पैशाचः कन्यकाच्छलात् ॥
चत्वारो ब्राह्मणस्याद्यास्तथा गान्धर्वराक्षसौ । राज्ञस्तथासुरो वैश्ये शूद्रे चान्त्यस्तु गर्हितः ॥११॥
पाणिर्ग्राह्यः सवर्णासु गृह्णीत क्षत्रिया शरम् । वैश्या प्रतोदमादद्याद्वेदने चाग्रजन्मनः ॥१२॥
पिता पितामहो भ्राता सकुल्यो जननी तथा । कन्याप्रदः पूर्वनाशे प्रकृतिस्थः परः परः ॥१३॥
अप्रयच्छन्समाप्नोति भ्रूणहत्या मृतावृतौ । एषामभावे दातॄणां कन्या कुर्य्यात्स्वयंवरम् ॥१४॥
सकृत्प्रदीयते कन्या हरंस्तां चौरदण्डभाक् । अदुष्टां हि त्यजन्दण्ड्यः सुदुष्टां तु परित्यजेत् १५॥
अपुत्रीं गुर्वनुज्ञातो देवरः पुत्रकाम्यया । सपिण्डो वा सगोत्रो वा घृताभ्यक्तो ऋतावियात् ॥
आगर्भसम्भवं गच्छेत्पतितस्त्वन्यथा भवेत् । अनेन विधिना जातः क्षेत्रपस्य भवेत्सुतः ॥१७॥
कृताधिकारां मलिनां पिण्डमात्रोपसेविनीम् । परिभूतामधःशय्यां वासयेद् व्यभिचारिणीम् ॥
सोमः शौचं ददौ तासां गन्धर्वश्च शुभां गिरम् । पावकः सर्वदा मेध्यो मेध्यो वै योषितो ह्यतः ॥
व्यभिचाराद्दृतेऽशुद्धेर्गर्भत्यागं करोति या । गर्भभर्त्तृवधे तासां तथा महति पातके ॥२०॥
सुरापी व्याधिता द्वेष्ट्री विहर्त्तव्या प्रियंवदा । भर्त्तव्या चान्यथा ह्येन ऋषयो हि भवेन्महत् ॥
यत्राविरोधो दम्पत्योस्त्रिवर्गस्तत्र वर्द्धते । मृते जीवति या पत्यौ या नान्यमुपगच्छति २२॥
सेह कीर्त्तिमवाप्नोति मोदते चोमया सह । शुद्धां त्यजंस्तृतीयांशं दद्यादाभरणं स्त्रियाः ॥२३॥
स्त्रीभिर्भर्त्तृवचः कार्य्यमेष धर्मः परः स्त्रियाः । षोडशर्त्तुनिशाः स्त्रीणां तासु युग्मासु संविशेत् ॥
ब्रह्मचारी च पर्वण्याद्याश्चतस्रस्तु वर्जयेत् । एवं गच्छन्स्त्रियं कामान्मघां मूलञ्च वर्जयेत् २५॥
लक्षण्यं जनयेदेवं पुत्रं रोगविवर्जितम् । यथाकामी भवेद्वापि स्त्रीणां स्मरमनुस्मरन् ॥
स्वदारनिरतश्चैव स्त्रियो रक्ष्या यतस्ततः । भर्त्तृभ्रातृपितृज्ञातिश्वश्रूश्वशुरदेवरैः ॥२७॥
बन्धुभिश्च स्त्रियः पूज्या भूषणाच्छादनाशनैः । संयतोपस्करा दक्षा हृष्टा व्ययपराङ्मुखी ॥२८॥
श्वश्रूश्वशुरयोः कुर्य्यात्पादयोर्वन्दनं सदा । क्रीड़ाशरीरसंस्कारसमाजोत्सवदर्शनम् ॥२९॥
हास्यं परगृहे यानं त्यजेत्प्रोषितभर्त्तृका । रक्षेत्कन्यां पिता बाल्ये यौवने पतिरेव ताम् ॥३०॥
वार्द्धक्ये रक्षते पुत्रो ह्यन्यथा ज्ञातयस्तथा । पतिं विना न तिष्ठेत दिवा वा यदि वा निशि ॥
ज्येष्ठां धर्मविधौ कुर्य्यान्न कनिष्ठां कदाचन । दाहयेदग्निहोत्रेण स्त्रियं वृत्तव्रतीं पतिः ॥३२॥
आहरेद्विधिवद्दारानग्निश्चैवाविलम्बितः । हिता भर्त्तुर्दिवं गच्छेदिह कीर्त्तीरवाप्य च ॥३३॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे गृहस्थधर्मनिर्णयो नाम
पञ्चनवतितमोऽध्यायः ॥९५॥

षण्णवतितमोऽध्यायः

याज्ञवल्क्य उवाच

वक्ष्ये सङ्करजात्यादि गृहस्थादिविधिं परम् । विप्रान्मूर्द्धाभिषिक्तो हि क्षत्रियायां विशः स्त्रियाम् ॥
जातोऽम्बष्ठस्तु शूद्रायां निषादः पर्वतोऽपि वा । माहिष्यः क्षत्रियाज्जातो वैश्यायां म्लेच्छसंज्ञितः ॥
शूद्रायां करणो वैश्याद्विद्वानेष विधिः स्मृतः । ब्राह्मण्यां क्षत्रियात्सूतो वैश्याद्वैदेहकस्तथा ॥३॥
शूद्राज्जातस्तु चाण्डालः सर्ववर्णविगर्हितः । क्षत्रियायां मागधो वैश्याच्छूद्रा क्षेत्रावमेव च ४॥
शूद्रयामयोगवं वैश्या जनयामास वै सुतम् । माहिष्येण करण्यां तु रथकारः प्रजायते ॥५॥
असंस्तुतास्तु वै ज्ञेयाः प्रतिलोमानुलोमजाः । जात्युत्कर्षाद्द्विजो ज्ञेयः सप्तमे पञ्चमेऽपि वा ॥६॥
व्यत्यये कर्मणां साम्ये पूर्ववच्चोत्तरावरम् । कर्म स्मार्त्तं विवाहाग्नौ कुर्वीत प्रत्यहं गृही ॥७॥
दानकालाहृते वापि श्रौतं वैवाहिकाग्निषु । शरीरचिन्तां निर्वर्त्त्य कृतशौचविधिर्द्विजः ॥८॥
प्रातः सन्ध्यामुपासीत दन्तधावनपूर्वकम् । हुत्वाग्नौ सूर्य्यदैवत्याञ्जपेन्मन्त्रान्समाहितः ॥९॥
वेदार्थानधिगच्छेच्च शास्त्राणि विविधानि च । योगक्षेमादिसिद्ध्यर्थमुपेयादीश्वरं गृही ॥१०॥
स्नात्वा देवान्पितॄंश्चैव तर्पयेदर्चयेत्तथा । वेदानथ पुराणानि सेतिहासानि शक्तितः ॥११॥
जपयज्ञानुसिद्ध्यर्थं विद्याञ्चाध्यात्मिकीं जपेत् । बलिकर्मस्वधाहोमस्वाध्यायातिथिसत्क्रियाः ॥१२॥
भूतपित्रमरब्रह्ममनुष्याणां महामखाः । देवेभ्यस्तु हुतं चाग्नौ क्षिपेद्भूतबलिं हरेत् ॥१३॥
अन्नं भूमौ च चाण्डालवायसेभ्यश्च निक्षिपेत् । अन्नं पितृमनुष्येभ्यो देयमप्यन्वहं जलम् ॥१४॥
स्वाध्यायमन्वहं कुर्य्यान्न पचेच्चान्नमात्मने । बालस्वधासिनीवृद्धगर्भिण्यातुरकन्यकाः ॥१५॥
संभोज्यातिथिकृत्यांश्च दम्पत्योः शेषभोजनम् । प्राणाग्निहोमविधिनाऽश्नीयादन्नमकुत्सयन् ॥१६॥
मितं विपाकञ्च हितं भक्ष्यं बालादिपूर्वकम् । आपोशानेनोपरिष्टादधस्ताच्चैव भुज्यते ॥१७॥
अनग्नममृतञ्चैव कार्य्यमन्नं द्विजन्मना । अतिथिभ्यस्तु वर्णेभ्यो देयं शक्त्यनुपूर्वशः ॥१८॥
अप्रणम्योऽतिथिः सोऽयमपि नात्र विचारणा । संहृत्य भिक्षवे भिक्षा दातव्या सुव्रताय च १९॥
आगतान्भोजयेत्सर्वान्महोक्षं श्रोत्रियाय च । प्रतिसंवत्सरं त्वर्च्याः स्नातकाचार्य्यपार्थिवाः २०॥
प्रियो विवाह्यश्च तथा यः प्रत्युद्विग्नजः पुनः । अध्वनीनोऽतिथिः प्रोक्तः श्रोत्रियो वेदपारगः २१॥
मान्यावेतौ गृहस्थस्य ब्रह्मलोकमभीप्सतः । परपाकरुचिर्न स्यादनिन्द्यामन्त्रणाहृते ॥२२॥
वाक्पाणिपादचापल्यं वर्जयेच्चातिभोजनम् । श्रोत्रियं वातिथिं तृप्तमासीमान्तादनुव्रजेत् ॥२३॥
अहःशेषं सहासीत शिष्टैरिष्टैश्च बन्धुभिः । उपास्य पश्चिमां सन्ध्यां हुत्वाग्नौ भोजनं ततः ॥२४॥
कुर्य्याद्भृत्यैः समायुक्तैश्चिन्तयेदात्मनो हितम् । ब्राह्मे मुहूर्त्ते चोत्थाय मान्यो विप्रो धनादिभिः ॥

वृद्धार्त्तानां समादेयः पन्था वै भारवाहिनाम् । इज्याध्ययनदानादि वैश्यस्य क्षत्रियस्य च २६॥
प्रतिग्रहोऽधिको विप्रे याजनाध्यापने तथा । प्रधानं क्षत्रिये धर्मः प्रजानां प्रतिपालनम् ॥२७॥
कुसीदकृषिवाणिज्यं पशुपाल्यं विशः स्मृतम् । शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा द्विजो यज्ञं न हापयेत् २८॥
अहिंसा सत्यमस्तेयं शौचमिन्द्रियसंयमः । दमः क्षमाऽऽर्जवं दानं सर्वेषां धर्मसाधनम् ॥
आचरेत्सदृशीं वृत्तिमजिह्मामशठां तथा ॥ २९ ॥

त्रैवार्षिकाधिकान्नो यः स सोमं पातुमर्हति । स्यादन्नं वार्षिकं यस्य कुर्य्यात् प्राक् सौमिकीं क्रियाम् ॥
प्रतिसंवत्सरं सोमः पशुप्रत्ययनं तथा । कर्त्तव्या ग्रहणेष्टिश्च चातुर्मास्यानि यत्नतः ॥ ३१ ॥
एषामसम्भवे कुर्य्यादिष्टिं वैश्वानरीं द्विजः । हीनद्रव्यं न कुर्वीत सति द्रव्ये फलप्रदम् ॥ ३२ ॥
चाण्डालो जायते यज्ञकरणाच्छूद्रभिक्षितात् । यज्ञार्थलब्धं नादद्याद्भासः काकोऽपि वा भवेत् ॥३३॥
कुसूलकुम्भो धान्यो वा त्रैहिको ह्यस्तनोऽपि वा । जीवेद्वापि शिलोञ्छेन न श्रेयानेषां परः परः ॥३४॥
न स्वाधार्यविरोध्यर्थमीहते न यतस्ततः । राजान्तेवासिगोत्रेभ्यः सीदन्निच्छेद्धनं क्षुधा ॥
दम्भहेतुकपाषण्डिवकवृत्तीश्च वर्जयेत् ॥ ३५ ॥

शुक्लाम्बरधरो नित्यं केशश्मश्रुनखैः शुचिः । न भार्य्यादर्शनेऽश्नीयान्नैकवासा न संस्थितः ॥
अप्रियं न वदेज्जातु ब्रह्मसूत्री विनीतवान् । देवप्रदक्षिणान् कुर्य्याद् यष्टिमान् सकमण्डलुः ॥
न तु मेहेन्नदीच्छायाभस्मगोष्ठाम्बुवर्त्मसु । न प्रत्यग्न्यर्कगोसोमसन्ध्याम्बुस्त्रीद्विजन्मनाम् ॥३८॥
नेक्षेताग्न्यर्कनग्नां स्त्रीं न च संसृष्टमैथुनाम् । न मूत्रं पुरीषं वा न स्वपेत् प्रत्यक्शिरा न च ॥३९॥
ष्ठीवनासृक्शकृन्मूत्रविषाण्यप्सु न संक्षिपेत् । पादौ प्रतापयेन्नाग्नौ न चैनमभिलङ्घयेत् ॥४०॥
पिबेन्नाञ्जलिना तोयं न शयानं प्रबोधयेत् । नाक्षैः क्रीडेच्च कितवैर्व्याधितैश्च न संविशेत् ॥४१॥
विरुद्ध वर्जयेत् कर्म प्रेतधूमं नदीतटम् । केशभस्मतुषाङ्गारं कपालेषु च संस्थितिम् ॥४२॥
नाचक्षीत धयन्तीं गां नाद्वारेणाविशेत्क्वचित् । न राज्ञः प्रतिगृह्णीयाल्लुब्धस्योच्छास्त्रवर्त्तिनः ॥४३॥
अध्यायानामुपाकर्म श्रावण्यां श्रवणेन च । हस्ते चौषधिभावे वा पञ्चम्यां श्रावणस्य च ॥४४॥
पौषमासस्य रोहिण्यामष्टकायामथापि वा । जलान्ते छन्दसां कुर्य्यादुत्सर्गं विधिवद्बहिः ॥४५॥
अनध्यायस्त्र्यहं प्रेते शिष्यर्त्विग्गुरुबन्धुषु । उपाकर्मणि चोत्सर्गे स्वशाखश्रोत्रिये मृते ॥४६॥
सन्ध्यागर्जितनिर्घातभूकम्पोल्कानिपातनात् । समाप्य वेदं त्वनिशमारण्यकमधीत्य च ॥ ४७ ॥
पञ्चदश्यां चतुर्दश्यामष्टम्यां राहुसूतके । ऋतुसन्धिषु भुक्त्वा वा श्राद्धिकं प्रतिगृह्य च ॥ ४८ ॥
पशुमण्डूकनकुलश्वाहिमार्जारशूकरैः । कृतेऽन्तरे त्वहोरात्रं शक्रपाते तथोच्छ्रये ॥ ४९ ॥
श्वक्रोष्टुगर्दभोलूकसामबालार्त्तनिस्वने । अमेध्यशवशूद्रान्ते श्मशानपतितान्तिके ॥ ५० ॥

देशेऽशुचौ वर्त्मनि च विद्युत्स्तनितसंप्लवे । भुक्तार्द्रपाणिरम्भोऽन्तरर्द्धरात्रेऽतिमारुते ॥ ५१ ॥
दिग्दाहे पांशुवर्षे च सन्ध्यानीहारभीतिषु । धावतः पूतिगन्धे च शिष्टे च गृहमागते ॥ ५२ ॥
खरोष्ट्रयानहस्त्यश्वनौवृक्षगिरिरोहणे । सप्तत्रिंशदनध्यायानेतांस्तात्कालिकान् विदुः ॥ ५३ ॥
वेदद्विष्टं तथाचार्य्यं राजच्छायां परस्त्रियम् । नाक्रामेद्रक्तविण्मूत्रष्ठीवनोद्वर्त्तनानि च ॥ ५४॥
विप्राहिक्षत्रियात्मानो नावज्ञेयाः कदाचन । दूरादुच्छिष्टविण्मूत्रपादान्तानां समुत्सृजेत् ॥५५॥
श्रुतिस्मृत्युक्तमाचारं कुर्य्यान्मर्मणि न स्पृशेत् । न निन्दाताड़ने कुर्य्यात्सुतं शिष्यञ्च ताडयेत् ॥
आचरेत्सर्वदा धर्मं तद्विरुद्धं तु नाचरेत् । मातापित्रतिथीत्युच्चैर्विवादं नाचरेद् गृही ॥५७॥
पञ्च पिण्डाननुद्धृत्य न स्नायात्परवारिषु । स्नायान्नदीप्रस्रवणदेवखातह्रदेषु च ॥५८॥
वर्जयेत्परशय्यादि न चाश्नीयादनापदि । कदर्य्यं बद्धवैराणां तथा चानग्निकस्य च ॥५९॥
वैणाभिशस्तवार्द्धुष्यगणिकागणदीक्षिणाम् । पात्रान्तरचिकित्सानां क्लीबरङ्गोपजीविनाम् ॥६०॥
क्रूरोग्रपतितव्रात्यदाम्भिकोच्छिष्टभोजिनाम् । शास्त्रविक्रयिणश्चैव स्त्रीजितग्रामयाजिनाम् ॥६१॥
नृशंसराजरजककृतघ्नवधजीविनाम् । पिशुनानृतिनोश्चैव सोमविक्रयिणस्तथा ॥६२॥
वन्दिनां स्वर्णकाराणामन्नमेषां कदाचन । न भोक्तव्यं वृथा मांसं केशकीटसमन्वितम् ॥६३॥
भक्तं पर्य्युषितोच्छिष्टं श्वस्पृष्टं पतितोक्षितम् । उदक्यास्पृष्टसंघृष्टमपर्यायञ्च वर्जयेत् ॥
गोघ्रातं शकुनोच्छिष्टं पादस्पृष्टञ्च कामतः ॥६४॥
शूद्रेषु दासगोपालकुलमित्रार्द्धसीरिणः । भोज्यान्नो नापितश्चैव यश्चात्मानं निवेदयेत् ॥
अन्नं पर्य्युषितं भोज्यं स्नेहाक्तं चिरसंभृतम् । अस्नेहा नापि गोधूमयवगोरसविक्रियाः ॥६६॥
औष्ट्रमैकशफं स्त्रीणां पयश्च परिवर्जयेत् । क्रव्यादपक्षिदात्यूहशुकमांसानि वर्जयेत् ॥६७॥
सारसैकशफान्हंसान्बलाकबकटिट्टिभान् । वृथा कृषरसंयावपायसापूपसष्कुलीः ॥६८॥
कुररं जालपादञ्च खञ्जरीटमृगद्विषः । चाषान्मत्स्यान्रक्तपादान्जग्ध्वा वै कामतो नरः ॥
बन्धुरं कामतो जग्ध्वा सोपवासस्त्र्यहं भवेत् । पलाण्डुलशुनादीनि जग्ध्वा चान्द्रायणञ्चरेत् ॥
श्राद्धे देवान्पितॄन्प्राच्यर्य खादेन्मांसं न दोषभाक् । वसेत्स नरके घोरे दिनानि पशुरोमतः ७१॥
सम्मितानि दुराचारो यो हन्त्यविधिना पशून् । मांसं सन्त्यज्य संप्रार्थ्य कामाद्याति ततो हरिम् ॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे गृहस्थविधिर्नाम षण्णवतितमोऽध्यायः ॥९६॥

सप्तनवतितमोऽध्यायः

याज्ञवल्क्य उवाच

द्रव्यशुद्धिं प्रवक्ष्यामि तां निबोधत सत्तमाः। सौवर्णराजताब्जानां शङ्खरज्ज्वादिचर्मणाम् ॥
पात्राणाञ्चासनानाञ्च वारिणा शुद्धिरिष्यते ॥ १ ॥
उष्णाद्भिः स्रुक्स्रुवयोर्धान्यानां प्रोक्षणेन च। तक्षणाद्दारुशृङ्गादेर्यज्ञपात्रस्य मार्जनात् ॥ २ ॥
सोष्णैरुदकगोमूत्रैः शुद्ध्यत्याविककौषिकम्। भैक्ष्यं योषिन्मुखं पश्यन्पुनः पाकान्महीमयम् ॥
गोघ्रातेऽन्ने तथा केशमक्षिकाकीटदूषिते। भस्मक्षेपाद्विशुद्धिः स्याद्भूशुद्धिर्मार्जनादिना ॥४॥
त्रपुसीसकताम्राणां क्षाराम्लोदकवारिभिः। भस्माद्भिर्लोहकांस्यानामज्ञातञ्च सदा शुचि ॥ ५ ॥
अमेध्याक्तस्य मृत्तोयैर्गन्धलेपापकर्षणात्। शुचि गोतृप्तिदं तोयं प्रकृतिस्थं महीगतम् ॥ ६ ॥
तथा मांसं श्वचण्डालक्रव्यादादिनिपातितम्। रश्मिरग्निरजश्छाया गौश्चैव वसुधानि च ॥ ७ ॥
अश्वाजविप्रुषो मेध्यास्तथा च मलबिन्दवः। स्नात्वा पीत्वा क्षुते सुप्ते भुक्त्वा रथ्याप्रसर्पणे ॥
आचान्तः पुनराचामेद्वासोऽन्यत्परिधाय च। क्षुते निष्ठीवने स्वापे परिधानेऽश्रुपातने ॥ ९ ॥
पञ्चस्वेतेषु नाचामेद्दक्षिणं श्रवणं स्पृशेत्। तिष्ठन्त्यग्न्यादयो देवा विप्रकर्णे तु दक्षिणे ॥१०॥
इति श्रीगारुडे महापुराणे द्रव्यशुद्धिर्नाम सप्तनवतितमोऽध्यायः ॥९७॥

अष्टनवतितमोऽध्यायः

याज्ञवल्क्य उवाच

अथ दानविधिं वक्ष्ये तन्मे शृणुत सुव्रताः। अन्येभ्यो ब्राह्मणाः श्रेष्ठास्तेभ्यश्चैव क्रियापराः ॥१॥
ब्रह्मवेत्ता च तेभ्योऽपि पात्रं विद्यात्तपोऽन्वितम्। गोभूधान्यहिरण्यादि पात्रे दातव्यमर्चितम् २॥
विद्यातपोभ्यां हीनेन न तु ग्राह्यः प्रतिग्रहः। गृह्णन्प्रदातारमधो नयत्यात्मानमेव च ॥३॥
दातव्यं प्रत्यहं पात्रे निमित्तेषु विशेषतः। याचिते चापि दातव्यं श्रद्धापूतं तु शक्तितः ॥४॥
हेमशृङ्गी शफै रौप्यैः सुशीला वस्त्रसंयुता। सकांस्यपात्रा दातव्या क्षीरिणी गौः सदक्षिणा ॥५॥
स दशर्णवैकशृङ्गं शफं सप्तपलैः कृतम्। पञ्चाशत्पलिकं पात्रं कांस्यं वत्सस्य कीर्त्यते ॥ ६ ॥
स्वर्णपिप्पलपात्रेण वत्सो वा वत्सिकापि वा। अस्या अपि च दातव्यमपत्यं रोगवर्जितम् ॥ ७ ॥
दाता स्वर्गमवाप्नोति वत्सरान्रोमसंमितान्। कपिला चेत्तारयते भूयश्चासप्तमं कुलम् ॥ ८ ॥
यावद्वत्सस्य द्वौ पादौ मुखं योन्यां प्रदृश्यते। तावद्गौः पृथिवी ज्ञेया यावद्गर्भं न मुञ्चति।

यथा कथञ्चिद्दत्त्वा गां धेनुं वाऽधेनुमेव वा । अरोगामपरिक्लिष्टां दाता स्वर्गे महीयते ॥१०॥
श्रान्तसंवाहनं रोगिपरिचर्य्या सुरार्चनम् । पादशौचं द्विजोच्छिष्टमार्जनं गोप्रदानवत् ॥११॥
द्विजाय स्वमभीष्टं तु दत्त्वा स्वर्गमवाप्नुयात् । भूदीपांश्चान्नवस्त्राणि सर्पिर्दत्त्वा व्रजेच्छ्रियम् ॥
गृहधान्यच्छत्रमाल्यवृक्षयानघृतं जलम् । शय्यानुलेपनं दत्त्वा स्वर्गलोके महीयते ॥१३॥
ब्रह्मदाता ब्रह्मलोकं प्राप्नोति सुरदुर्लभम् । वेदार्थयज्ञशास्त्राणि धर्मशास्त्राणि चैव हि ॥
मूल्येनापि लिखेद्वापि ब्रह्मलोकमवाप्नुयात् ॥ १४ ॥
एतन्मूलं जगद्यस्मादसृजत्पूर्वमीश्वरः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कार्य्यो वेदार्थसंग्रहः ॥१५॥
इतिहासपुराणं वा लिखित्वा यः प्रयच्छति । ब्रह्मदानसमं पुण्यं प्राप्नोति द्विगुणोन्नतिम् ॥१६॥
लोकायतं कुतर्कञ्च प्राकृतं म्लेच्छभाषितम् । न श्रोतव्यं द्विजेनैतदधो नयति तं द्विजम् ॥१७॥
समर्थो यो न गृह्णीयाद्दातृलोकानवाप्नुयात् । कुशाः शाकं पयो गन्धाः प्रत्याख्येया न वारि च ॥
अयाचिताहृतं ग्राह्यमपि दुष्कृतकर्मणः । अन्यत्र कुलटाषण्डपतितेभ्यो द्विषस्तथा ॥
देवातिथ्यर्चनकृते पितृतृप्त्यर्थमेव च ॥१९॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे दानधर्मो नाम अष्टनवतितमोऽध्यायः ॥९८॥

नवनवतितमोऽध्यायः

याज्ञवल्क्य उवाच

अथ श्राद्धविधिं वक्ष्ये सर्वपापप्रणाशनम् । अमावस्याष्टकावृद्धिकृष्णपक्षायनद्वयम् ॥ १ ॥
द्रव्यं ब्राह्मणसम्पत्तिर्विषुवत्सूर्य्यसंक्रमः । व्यतीपातो गजच्छाया ग्रहणं चन्द्रसूर्य्ययोः ॥
श्राद्धं प्रति रुचिश्चैव श्राद्धकालः प्रकीर्त्तितः ॥ २ ॥
अग्र्यः सर्वदेवेषु श्रोत्रियो वेदविद्युवा । तिथिज्ञाने च कुशलः त्रिमधुस्त्रिसवर्णिकः ॥ ३ ॥
स्वस्रीयऋत्विग्जामाताचार्य्यश्वशुरमातुलाः । त्रिणाचिकेतदौहित्रशिष्यसम्बन्धिबान्धवाः ॥४॥
कर्मनिष्ठा द्विजाः केचित्पञ्चाग्निब्रह्मचारिणः । पितृमातृपराश्चैव ब्राह्मणाः श्राद्धदेवताः ॥५॥
रोगी हीनातिरिक्ताङ्गः काणः पौनर्भवस्तथा । अवकीर्णादयो ये च ये चाचारविवर्जिताः ॥६॥
अवैष्णवाश्च ये सर्वे श्राद्धार्हा न कदाचन । निमन्त्रयेच्च पूर्वेद्युर्द्विजैर्भाव्यं च संयतैः ॥ ७ ॥
आचान्तांश्चैव पूर्वाह्णे ह्यासनेषूपवेशयेत् । युग्मन्दैवे तथा पित्र्ये स्वप्रदेशेष्वशक्तितः ॥८॥
द्वौ दैवे प्रागुदक्पित्र्ये त्रीण्येकञ्चोभयोः पृथक् । मातामहानामप्येवं मन्त्रं वा वैश्वदेविकम् ॥
हस्तप्रक्षालनं दत्त्वा विष्टरार्थे कुशानपि । आवाह्य तदनुज्ञातो विश्वेदेवा महानृचा ॥१०॥

यवैरन्नं विकीर्य्याथ भाजने सपवित्रके । शन्नोदेव्या पयः क्षिप्त्वा यवोऽसीति यवांस्तथा ॥
या दिव्या इति मन्त्रेण हस्तेष्वेव विनिक्षिपेत् । गन्धं तथोदकञ्चैव धूपादींश्च पवित्रकम् ॥१२॥
अपसव्यं ततः कृत्वा पितॄणामप्रदक्षिणम् । द्विगुणांस्तु कुशान्दत्त्वा उशन्तस्त्वेत्यृचा पितॄन् ॥
आवाह्य तदनुज्ञातैर्जपेदायान्तु नस्ततः । यवार्थस्तु तिलैः कार्य्यः कुर्य्यादर्घ्यादि पूर्ववत् १४॥
दत्त्वार्घ्यं संश्रवं ह्येषां पात्रे कृत्वा विधानतः । पितृभ्यः स्थानमसीति न्युब्जं पात्रं करोत्यधः ॥
अग्नौ करिष्य आदाय पृच्छत्यन्नं घृतप्लुतम् । सव्याहृतिञ्च गायत्रीं मधुवातेत्यृचस्तथा ॥१६॥
जप्त्वा यथासुखं वाच्यं भुञ्जीरंस्तेऽपि वाग्यताः । अन्नमिष्टं हविष्यञ्च दद्यादक्रोधनो नरः ॥१७॥
आतृप्तेस्तु पवित्राणि जप्त्वा पूर्वजपं तथा । अन्नमादाय तृप्ताः स्थ शेषञ्चैवान्नमन्वहम् ॥१८॥
तदन्नं विकिरेद्भूमौ दद्याच्चापि सकृत्सकृत् । सर्वमन्नमुपादाय सतिलं दक्षिणामुखः ॥१९॥
उच्छिष्टसन्निधौ पिण्डान्प्रदद्यात्पितृयज्ञवत् । मातामहानामप्येवं दद्याच्चाचमनं ततः ॥२०॥
स्वस्ति वाच्यस्ततो दद्यादक्षय्योदकमेव च । दत्त्वा च दक्षिणां शक्त्या स्वधाकारमुदाहरेत् ॥
वाच्यतामित्यनुज्ञातः पितृभ्यश्च स्वधोच्यताम् । विप्रैरस्तु स्वधेत्युक्तो भूमौ सिञ्चेत्ततो जलम् ॥
प्रीयन्तामिति चाहैवं विश्वेदेवा जलं ददत् । दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च ॥
श्रद्धा च नो मा व्यगमद्बहु देयञ्च नोऽस्त्विति । इत्युक्तोऽपि प्रियं वाचं प्रणिपत्य विसर्जयेत् ॥
वाजे वाजे इति प्रीत्या पितृपूर्वं विसर्जनम् । यस्मिंस्ते संश्रवाः पूर्वमर्घ्यपात्रे निपातिताः ॥
पितृपात्रं तदुत्तानं कृत्वा विप्रान्विसर्जयेत् ॥२५॥
प्रदक्षिणमनुस्तुत्य भुञ्जीत पितृशेषितम् । ब्रह्मचारी भवेत्तत्र रजनीं भार्य्यया सह ॥२६॥
एवं सदक्षिणं कुर्य्याद्वृद्धौ नान्दीमुखानपि । यजेत्तदधिकर्कन्धुमिश्राः पिण्डा यवैः श्रिताः २७॥
एकोद्दिष्टं दैवहीनं एकान्नैकपवित्रकम् । आवाहनाग्नौकरणरहितं ह्यपसव्यवत् ॥२८॥
उपतिष्ठतामित्यक्षय्यस्थाने विप्रान्विसर्जयेत् । अभिरम्यतां प्रब्रूयात्प्रोचुस्तेऽभिरताः स्वहः ॥२९॥
गन्धोदकतिलैर्मिश्रं कुर्य्यात्पात्रचतुष्टयम् । अर्घ्यार्थं पितृपात्रेषु प्रेतपात्रं प्रसेचयेत् ॥३०॥
ये समाना इति द्वाभ्यां शेषं पूर्ववदाचरेत् । एतत्सपिण्डीकरणमेकोद्दिष्टं स्त्रिया अपि ॥३१॥
अर्वाक्सपिण्डीकरणं यस्य संवत्सराद्भवेत् । तस्याप्यन्नं सोदकुम्भं दद्यात्संवत्सरे द्विजः ॥
पिण्डांश्च गोऽजविप्रेभ्यो दद्यादग्नौ जलेऽपि वा ॥३२॥
हविष्यान्नेन वै मासं पायसेन तु वत्सरम् । मात्स्यहारिणऔरभ्रशाकुनच्छागपार्षतैः ॥३३॥
ऐणरौरववाराहशशमांसैर्यथाक्रमम् । मासवृद्ध्यापि तुष्यन्ति दत्तैरिह पितामहाः ॥३४॥
दद्याद्वर्षत्रयोदश्यां मघासु च न संशयः । प्रतिपत्प्रभृतिष्वेवं कन्यादीन्श्राद्धदो लभेत् ॥३५॥

शस्त्रेण निहतानां तु चतुर्दश्यां प्रदीयते । स्वर्णं ह्यपत्ययोगश्च शौर्यं क्षेत्रं बलं तथा ॥३६॥
अरोगित्वं यशो वीतशोकतां परमां गतिम् । धनं विद्याश्च वाक्सिद्धिं कुप्यं गोऽजाविकं तथा ॥
अश्वानायुश्च विधिवद्यः श्राद्धं संप्रतीच्छति ॥३७॥
कृत्तिकादिभरण्यन्तं स कामी प्राप्नुयादिमान् । वस्त्राढ्याः प्रीणयन्त्येव नवं श्राद्धकृतं द्विजाः ॥
आयुः प्रजा धनं विद्यां स्वर्गमोक्षसुखानि च । प्रयच्छति तथा राज्यं प्रीत्या नित्यं पितामहः ॥
इति श्रीगारुडे महापुराणे श्राद्धविधिर्नाम नवनवतितमोऽध्यायः ॥९९॥

शततमोऽध्यायः

याज्ञवल्क्य उवाच

विनायकोपसृष्टस्य लक्षणानि निबोधत । स्वप्नेऽवगाहतेऽत्यर्थं जलं मुण्डांश्च पश्यति ॥ १ ॥
विमना विफलारम्भः संसीदत्यनिमित्ततः । राजा राज्यं कुमारी च पतिं पुत्रञ्च गुर्विणी ॥२॥
नाप्नुयात्स्नपनं तस्य पुण्येऽह्नि विधिपूर्वकम् । गौरसर्षपगन्धेन साज्येनोत्सारितस्य तु ॥
सर्वौषधैः सर्वगन्धैर्विलिप्तशिरसं तथा ॥३॥
भद्रासनोपविष्टस्य स्वस्तिवाच्यं द्विजान्शुभान् । मृत्तिकां रोचनां गन्धान्गुग्गुलुञ्चाप्सु निक्षिपेत् ॥
एकाकृत्या ह्येकवर्णैश्चतुर्भिः कलसैर्हृदात् । चर्मण्यानुडुहे रक्ते स्नाप्यं भद्रासने तथा ॥५॥
सहस्राक्षं शतधारमृषिभिः पारणं कृतम् । तेन त्वामभिषिञ्चामि पावमान्यः पुनन्तु ते ॥६॥
भगवान्वरुणो राजा भगं सूर्यो बृहस्पतिः । भगमिन्द्रश्च वायुश्च भगं सप्तर्षयो ददुः ॥७॥
यत्ते केशेषु दौर्भाग्यं सीमन्ते यच्च मूर्द्धनि । ललाटे कर्णयोरक्ष्णोर्नाशं तद्यातु ते सदा ॥८॥
स्नातस्य सार्षपं तैलं श्रवणे मस्तके तथा । जुहुयान्मूर्द्धनि कुशान्साज्यान्संपरिगृह्य च ॥९॥
मितः संयमितश्चैव तथा शालकटङ्कटैः । कूष्माण्डं राजपुत्रांश्च अन्ते स्वाहासमन्वितैः ॥
दद्याच्चतुष्पथे भूमौ कुशानास्तीर्य्य सर्वशः । कृताकृतं तथा चैव तण्डुलौदनमेव च ॥११॥
पुष्पं चित्रं सुगन्धञ्च सुराञ्च त्रिविधामपि । दधिपायसमन्नञ्च घृतञ्च गुडमोदकम् ॥१२॥
एतान्सर्वानुपाकृत्य भूमौ कृत्वा ततः शिवः । अम्बिकामुपतिष्ठेच्च दद्यादन्नं कृताञ्जलिः ॥१३॥
दूर्वासर्षपपुष्पैश्च पुत्रजन्मभिरन्ततः । कृतस्वस्त्ययनश्चैव प्रार्थयेदम्बिकां सतीम् ॥१४॥

रूपं देहि यशो देहि भाग्यं भवति देहि मे । पुत्रान्देहि श्रियं देहि सर्वान्कामांश्च देहि मे ॥१५॥
ब्राह्मणांस्तोषयेत्पश्चाच्छुक्लवस्त्रानुलेपनैः । वस्त्रयुग्मं गुरोर्दद्यात्संपूज्यश्च ग्रहस्तथा ॥१६॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे विनायकोपसृष्टलक्षणं नाम
शततमोऽध्यायः ॥१००॥

एकाधिकशततमोऽध्यायः

याज्ञवल्क्य उवाच

श्रीकामः शान्तिकामो वा ग्रहदृष्ट्यभिचारवान् । ग्रहयागं समं कुर्याद्ग्रहाश्चैते बुधैः स्मृताः ॥
सूर्य्यः सोमो मङ्गलश्च बुधश्चैव बृहस्पतिः । शुक्रः शनैश्चरो राहुः केतुर्ग्रहगणाः स्मृताः ॥२॥
ताम्रकांस्यस्फाटिकाच्च रक्तचन्दनस्वर्णकात् । रजतादयसः सीसात्कांस्याद्दृष्टिः प्रशाम्यति ॥३॥
रक्तः शुक्लस्तथा रक्तः पीतः पीतः सितासितः । कृष्णः कृष्णः क्रमाद्वर्णं निबोध मुनयस्ततः ॥४॥
स्नापयेद्धोमयेच्चैव ग्रहद्रव्यैर्विधानतः । सुवर्णानि प्रदेयानि वासांसि कुसुमानि च ॥५॥
गन्धादिबलयश्चैव धूपो देयश्च गुग्गुलुः । कर्त्तव्यास्तत्र मन्त्रैश्च अधिप्रत्यधिदैवतैः ॥६॥
आकृष्णेन इमं देवा अग्निर्मूर्द्धादिवः ककुत् । उद्बुध्यस्वेति जुहुयादृग्भिरेव यथाक्रमम् ॥७॥
बृहस्पते परिदीयेति अन्नात्परिश्रुतोरसम् । शन्नोदेवी कयानश्च केतुंकृण्वन्निति क्रमात् ॥८॥
अर्कः पलाशः खदिरस्त्वपामार्गोऽथ पिप्पलः । औदुम्बरः शमी दूर्वा कुशाश्च समिधः क्रमात् ॥
होतव्या मधुसर्पिर्भ्यां दध्ना चैव समन्वितः ॥९॥
गुड़ौदनौ पायसञ्च हविष्यं क्षीरषष्टिकम् । दध्योदनं हविः पूपान्मांसं चित्रान्नमेव च ॥१०॥
दद्याद्द्विजः क्रमादेतान्ग्रहेभ्यो भोजनं ततः । धेनुः शङ्खस्तथानड्वान्हेमवासो हयस्तथा ॥११॥
कृष्णा गौरायसं छाग एता वै दक्षिणाः क्रमात् ।
ग्रहाः पूज्याः सदा यस्माद्राज्ञापि प्राप्यते फलम् ॥१२॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे ग्रहशान्तिर्नाम एकाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०१॥

द्व्यधिकशततमोऽध्यायः

याज्ञवल्क्य उवाच

वानप्रस्थाश्रमं वक्ष्ये तत्करस्तु महर्षयः । पुत्रेषु भार्य्यां निक्षिप्य वनं गच्छेत्सहैव वा ॥१
वानप्रस्थो ब्रह्मचारी साग्निः शमदमक्षमी । अर्चयेत्साग्निकान्विप्रान्पितृदेवातिथींस्तथा ॥२

भृत्यांस्तु तर्पयेच्छ्मश्रुजटालोमभृदात्मवान् । दान्तस्त्रिसवनं स्नायान्निवृत्तश्च प्रतिग्रहात् ॥३॥
स्वाध्यायवान्ध्यानशीलः सर्वभूतहिते रतः । अह्नो मासस्य मध्ये वा कुर्य्यात्स्वार्थपरिग्रहम् ॥४॥
निराश्रयं स्वपेद्भूमौ कर्म कुर्य्यात्फलं विना । ग्रीष्मे पञ्चाग्निमध्यस्थो वर्षासु स्थण्डिलेशयः ॥५॥
आर्द्रवासास्तु हेमन्ते योगाभ्यासाद्दिनं नयेत् । अक्रुद्धः परितुष्टश्च समस्तस्य च तस्य च ॥६॥
इति श्रीगारुडे महापुराणे वानप्रस्थधर्मो नाम द्व्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१०२॥

त्र्यधिकशततमोऽध्यायः

याज्ञवल्क्य उवाच

भिक्षोर्धर्मं प्रवक्ष्यामि तं निबोधत सत्तमाः । वनान्निवृत्य कृत्वेष्टिं सर्ववेदप्रदक्षिणाम् ॥ १ ॥
प्राजापत्यं तदन्तेऽपि अग्निमारोप्य चात्मनि । सर्वभूतहितः शान्तस्त्रिदण्डी सकमण्डलुः ॥
सर्वायासं परित्यज्य भिक्षार्थी ग्राममाश्रयेत् ॥ २ ॥
अप्रमत्तश्चरेद्भैक्ष्यं सायाह्ने नाभिलक्षितः । वाहितैर्भिक्षुकैर्ग्रामे यात्रामात्रमलोलुपः ॥ ३ ॥
भवेत्परमहंसो वा एकदण्डी यमादितः । सिद्धयोगस्त्यजन्देहममृतत्वमिहाप्नुयात् ॥ ४ ॥
योगमभ्यस्य मितभुक्परां सिद्धिमवाप्नुयात् । दाताऽतिथिप्रियो ज्ञानी गृही श्राद्धेऽपि मुच्यते ॥५॥
इति श्रीगारुडे महापुराणे त्र्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१०३॥

चतुरधिकशततमोऽध्यायः

याज्ञवल्क्य उवाच

नरकात्पातकोद्भूतात्पापस्य कर्मणः क्षयात् । ब्रह्महा श्वा खरोष्ट्रः स्यान्मूकश्चान्ते भविष्यति ॥१॥
स्वर्णचौरः कृमिः कीटः तृणादिर्गुरुतल्पगः । क्षयरोगी श्यावदन्तः कुनखी शिपिविष्टकः ॥
ब्रह्महत्याक्रमात्स्युश्च तत्सर्वं वा शिशोर्भवेत् ॥२॥
अन्नहर्त्ता त्वनाहारी मूको रागापहारकः । धान्यहार्य्यतिरिक्ताङ्गः पिशुनः पूतिनासिकः ॥३॥
तैलहारी तैलपायी पूतिवक्त्रस्तु सूचकः । जायन्ते लक्षणभ्रष्टा दरिद्राः पुरुषाधमाः ॥
जायन्ते लक्षणोपेता धनधान्यसमन्विताः ॥४॥
इति श्रीगारुडे महापुराणे चतुरधिकशततमोऽध्यायः ॥१०४॥

पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः

याज्ञवल्क्य उवाच

विहितस्याननुष्ठानान्निन्दितस्य च सेवनात् । अनिग्रहाच्चेन्द्रियाणां नरः पतनमृच्छति ॥ १ ॥
तस्माद्यत्नेन कर्त्तव्यं प्रायश्चित्तं विशुद्धये । एवमस्यान्तरात्मा च लोकश्चैव प्रसीदति ॥ २ ॥
लोकः प्रसीदेदात्मैवं प्रायश्चित्तैरघक्षयः । प्रायश्चित्तमकुर्वाणाः पश्चात्तापविवर्जिताः ॥ ३ ॥
नरकान्यान्ति पापा वै महारौरवरौरवान् । तामिस्रं लोहशङ्कुञ्च पूतिगन्धसमाकुलम् ॥ ४ ॥
हंसाभं लोहितोदञ्च सञ्जीवननदीपथम् । महानिलयकाकोलमन्धतामिस्रवासनम् ॥ ५ ॥
अवीचीं कुम्भपाकञ्च यान्ति पापान्विता नराः । ब्रह्महा मद्यपः स्तेयी संयोगी गुरुतल्पगः ॥६॥
गुरुनिन्दा वेदनिन्दा ब्रह्महत्यासमे ह्युभे । निषिद्धभक्षणं जिह्मक्रियाचरणमेव च ॥ ७ ॥
रजस्वलामुखास्वादः सुरापानसमानि तु । अश्वादिहरणं ज्ञेयं सुवर्णस्तेयसम्मितम् ॥ ८ ॥
सखिभार्य्याकुमारीषु स्वयोनिष्वन्त्यजादिषु । सगोत्रासु तथा स्त्रीषु गुरुतल्पसमं स्मृतम् ॥ ९ ॥
पितुः स्वसारं मातुश्च मातुलीं भगिनीं तथा । मातुः सपत्नीं भगिनीमाचार्य्यतनयां तथा ॥१०॥
आचार्य्यपत्नीं स्वसुतां गच्छंस्तु गुरुतल्पगः । छित्त्वा लिङ्गं वधस्तस्य सकामायाः स्त्रियास्तथा ॥
गोवधो ब्राह्मणस्तेयमृणानाञ्च परिक्रिया । अनाहिताग्निता पण्यविक्रयः परिवेदनम् ॥१२॥
भृत्यादध्ययनादानं भृतकाध्यापनं तथा । पारदार्य्यं पारिवित्त्यं वार्द्धुष्यं लवणक्रिया ॥१३॥
सच्छूद्रविट्क्षत्रवधो निन्दितार्थोपजीविता । न्यासित्वं व्रतलोपश्च शूल्यं गोश्चैव विक्रयः ॥१४॥
पितृमातृसुहृत्त्यागस्तडागारामविक्रयः । कन्याया भूषणानाञ्च परिविन्दकयाजनम् ॥१५॥
कन्याप्रदानं तस्यैव कौटिल्यं व्रतलोपनम् । आत्मनोऽर्थे क्रियारम्भो मद्यपस्त्रीनिषेवणम् ॥१६॥
स्वाध्यायाग्निसुतत्यागो बान्धवत्याग एव च । असच्छास्त्राभिगमनं भार्य्यात्मपरिविक्रयः ॥१७॥
उपपापानि चोक्तानि प्रायश्चित्तं निबोधत । शिरःकपालध्वजवान्भिक्षाशी कर्म वेदयन् ॥१८॥
ब्रह्महा द्वादशसमा मितभुक्शुद्धिमाप्नुयात् । सोमेभ्यः स्वाहेति च वा लोभवान्बिभृयात्तनुम् ॥
ग्रहांश्च जुहुयाद्वापि स्वस्वमन्त्रैर्यथाक्रमम् । शुद्धिः स्याद्ब्रह्महननात्कृत्वैवं शुद्धिरेव च ॥२०॥
निरातङ्कं द्विजं गाञ्च ब्राह्मणार्थे हतोऽपि वा । अरण्ये नियतो जप्त्वा त्रिःकृत्वो वेदसंमिताम् ॥
सरस्वतीं वा संसेव्य धनं पात्रे समर्पयेत् । यागस्थक्षत्रविड्घाते चरेद्ब्रह्महनो व्रतम् ॥२२॥
गर्भहा वा यथा वर्णो तथा त्रयीनिषूदनम् । चरेद्व्रतमहत्वापि घातनार्थमुपागतः ॥२३॥
द्विगुणं सवनस्थे तु ब्राह्मणे व्रतमाचरेत् । सुराम्बुघृतगोमूत्रं पीत्वा शुद्धिः सुरापिनः ॥२४॥
अग्निवर्णं मृते नापि चीरवासा जटी भवेत् । व्रतं ब्रह्महनं कुर्य्यात्पुनः संस्कारमर्हति ॥२५॥

रेतोविण्मूत्रपानाच्च सुरापा ब्राह्मणी तथा । पतिलोकपरिभ्रष्टा गृध्री स्याच्छूकरी शुनी ॥२६॥
स्वर्णहारी द्विजो राज्ञे दत्त्वा तु मुषलं तथा । कर्मणः ख्यापनं कृत्वा हतस्तेन भवेच्छुचिः ॥
आत्मतुल्यं सुवर्णं वा दत्त्वा शुद्धिमियाद्द्विजः ॥२७॥
शयने क्रीड़मानस्तु योषितं योषिता स्वपेत् । उच्छेद्य लिङ्गं वृषणं नैर्ऋत्यामुत्सृजेद्दिशि ॥२८॥
प्राजापत्यं चरेत्कृच्छ्रं दुरात्मा गुरुतल्पगः । चान्द्रायणं वा त्रीन्मासानभ्यसेद्वेदसंहिताम् २९॥
पञ्चगव्यं पिबेद्गोघ्नो मासमासीच्च संयतः । गोष्ठेशयो गोऽनुगामी गोप्रदानेन शुध्यति ॥३०॥
उपपातकशुद्धिः स्याच्चान्द्रायणव्रतेन च । पयसा वापि मासेन पराकेणापि वा पुनः ॥३१॥
वृषभैकं सहस्रं गा दद्यात्क्षत्रवधे पुमान् । ब्रह्महत्याव्रतं वापि वत्सरत्रितयं चरेत् ॥३२॥
वैश्यहाऽब्दांश्चरेदेतद्दद्याद्वैकशतं गवाम् । षण्मासाच्छूद्रहा चैतद्दद्याद्वा धेनवो दश ॥
अप्रदुष्टां स्त्रियं हत्वा शूद्रहत्याव्रतञ्चरेत् ॥३३॥
मार्जारगोधानकुलपशुमण्डूकघातनात् । पिबेत्क्षीरं त्र्यहं पापी कृच्छ्रं वाप्यधिकञ्चरेत् ॥३४॥
गजे नीलान्वृषान्पञ्च शुक्लवत्सं द्विहायनम् । खराजमेषेषु वृषो देयः क्रौञ्चे त्रिहायणः ॥३५॥
वृक्षगुल्मलतावीरुच्छेदने जप्यमृक्शतम् । अवकीर्णी भवेद्दत्त्वा ब्रह्मचारी च योषितम् ॥३६॥
गर्दभं पशुमालभ्य नैर्ऋतञ्च विशुध्यति । मधुमांसाशने कार्यं कृच्छ्रशेषं व्रतानि च ॥३७॥
कृच्छ्रत्रयं गुरुः कुर्यान्म्रियेत प्रहितो यदि । प्रतिकूलं गुरोः कृत्वा प्रसाद्यैव विशुद्ध्यति ॥३८॥
रिपून्धान्यप्रदानाद्यैः स्नेहाद्यैर्वाप्युपक्रमेत् । क्रियमाणोपकारे च मृते विप्रे न पातकम् ॥३९॥
महापापोपपापाभ्यां यो वदेच्च मृषावचः । अप्रेक्ष्यो मासमासीत अयाची नियतेन्द्रियः ॥४०॥
अनियुक्तो भ्रातृभार्यां गच्छंश्चान्द्रायणं चरेत् । त्रिरात्रान्ते घृतं प्राश्य गत्वोदक्यां शुचिर्भवेत् ॥
गोष्ठे वसन्ब्रह्मचारी मासमेकं पयोव्रती । गायत्रीजप्यनिरतो मुच्यतेऽसत्प्रतिग्रहात् ॥४२॥
त्रिःकृच्छ्रमाचरेद्व्रात्ये याजकोऽपि चरन्नपि । पठेद्वेदं यथाशक्ति त्यक्त्वा च शरणागतान् ॥४३॥
प्राणयामत्रयं कुर्यात्खरयानोष्ट्रयानगः । नग्नः स्नात्वा च शुद्ध्येत गत्वा चैव दिवा स्त्रियम् ॥
गुरुं हुंकृत्य तुंकृत्य विप्रं निर्जित्य वादतः । प्रसाद्य तञ्च मुनयस्ततो ह्युपवसेद्दिनम् ॥४५॥
विप्रे दण्डोद्यमे कृच्छ्रमतिकृच्छ्रं निपातने । देशं कालं वयः शक्तिं पापञ्चावेक्ष्य यत्नतः ॥
पायश्चित्तप्रकल्पः स्याद्यत्र चोक्ता तु निष्कृतिः ॥४६॥

गर्भत्यागो भर्तृनिन्दा स्त्रीणां पतनकारणम् । एष ग्रहान्तिके दोषः तस्मात्तां दूरतस्त्यजेत् ४७॥
विख्यातदोषः कुर्वीत गुरोरनुमतं व्रतम् । असंविख्यातदोषस्तु रहस्यं व्रतमाचरेत् ॥४८॥
त्रिरात्रोपोषणो जप्त्वा ब्रह्महा त्वघमर्षणम् । अन्तर्जले विशुद्धे च दत्त्वा गाञ्च पयस्विनीम् ॥

सोमेभ्यः स्वाहेति ऋचा दिवसं मारुताशनः । जले स्थित्वा तु जुहुयाच्चत्वारिंशद्घृताहुतीः ॥
त्रिरात्रोपषणो हुत्वा कूष्माण्डीभिर्घृतं शुचिः । सुरापः स्वर्णहारी च रुद्रजापी जले स्थितः ५१॥
अज्ञानकृतपापस्य नाशः सन्ध्यात्रये कृते । रुद्रैकादशजप्याद्धि पापनाशो भवेद्द्विजाः ॥५२॥
सहस्रशीर्षाजप्येन मुच्यते गुरुतल्पगः । प्राणायामशतं कुर्य्यात्सर्वपापापनुत्तये ॥५३॥
ओङ्काराभियुतं सायं सलिलप्राशनाच्छुचिः । कृत्वोपवासं रेतोविण्मूत्राणां प्राशने द्विजः ॥५४॥
वेदाभ्यासरतं शान्तं पञ्चयज्ञक्रियापरम् । न स्पृशन्ति हि पापानि चाशु स्मृत्वा ह्यपोहितः ॥
जप्त्वा सहस्रगायत्रीं शुचिर्ब्रह्महणादृते ॥५५॥
ब्रह्मचर्य्यं दया क्षान्तिर्ध्यानं सत्यमकल्पता । अहिंसास्तेयमाधुर्य्यदमश्चैते यमाः स्मृताः ॥५६॥
स्नानमौनोपवासेज्यास्वाध्यायेन्द्रियनिग्रहः । तपोऽक्रोधो गुरोर्भक्तिः शौचञ्च नियमाः स्मृताः ॥
पञ्चगव्यं तु गोक्षीरं दधिमूत्रशकृद्घृतम् । जग्ध्वा परेद्यूपवसेत्कृच्छ्रं सान्तपनं द्विजाः ॥५८॥
पृथक्सान्तपनैर्द्रव्यैः षडहः सोपवासकः । सप्ताहेन तु कृच्छ्रोऽयं महासान्तपनः स्मृतः ॥५९॥
पर्णोदुम्बरराजीवबिल्वपत्रकुशोदकैः । प्रत्येकं प्रत्यहाभ्यस्तैः पर्णकृच्छ्र उदाहृतः ॥६०॥
तप्तक्षीरघृताम्बूनामेकैकं प्रत्यहं पिबेत् । एकरात्रोपवासश्च तप्तकृच्छ्रश्च पावनः ॥६१॥
एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च । उपवासेन चैकेन पादकृच्छ्र उदाहृतः ॥६२॥
यथा कथञ्चित्त्रिगुणः प्राजापत्योऽयमुच्यते । अयमेवातिकृच्छ्रः स्यात्पाणिपूर्णाम्बुभोजनात् ६३॥
कृच्छ्रातिकृच्छ्रं पयसा दिवसानेकविंशतिम् । द्वादशाहोपवासैश्च पराकः समुदाहृतः ॥६४॥
पिण्याकाचामतक्राम्बुसक्तूनां प्रतिवासरम् । एकैकमुपवासश्च कृच्छ्रः शामोऽयमुच्यते ॥६५॥
एषां त्रिरात्रमभ्यासादेकैकं स्याद्यथाक्रमात् । तुलापुरुष इत्येव ज्ञेयः पञ्चदशाह्निकः ॥६६॥
तिथिपिण्डांश्चरेद्वृद्धया शुक्ले शिख्यण्डसम्मितान् । एकैकं ह्रासयेत्कृष्णे पिण्डञ्चान्द्रायणञ्चरेत् ॥
यथाकथञ्चित्पिण्डानां चत्वारिंशच्छतद्वयम् । मासेनैवोपभुञ्जीत चान्द्रायणमथापरम् ॥६८॥
कृत्वा त्रिषवणं स्नानं पिण्डञ्चान्द्रायणञ्चरेत् । पवित्राणि जपेत्पिण्डान्गायत्र्या चाभिमन्त्रयेत् ॥
अनादृष्टेषु पापेषु शुद्धिश्चान्द्रायणेन तु । धर्मार्थी यश्चरेदेतच्चन्द्रस्यैति सलोकताम् ॥
कृच्छ्रकृद्धर्मकामस्तु महतीं श्रियमश्नुते ॥७०॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे प्रायश्चित्तविवेको नाम पञ्चाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०५॥

षडधिकशततमोऽध्यायः

याज्ञवल्क्य उवाच

प्रेताशौचं प्रवक्ष्यामि तच्छृणुध्वं यतव्रताः । ऊनद्विवर्षं निखनेन्न कुर्य्यादुदकं ततः ॥ १ ॥
आश्मशानादनुव्राज्य इतरैर्ज्ञातिभिर्युतः । यमसूक्तं तथा जप्यं जपद्भिर्लौकिकाग्निना ॥
स दग्धव्य उपेतश्चेदाहिताग्न्यावृतार्थवत् ॥ २ ॥
सप्तमाद्दशमाद्वापि ज्ञातयोऽभ्युपयान्त्यपः । अपनः शोशुचदघमनेन पितृदिङ्मुखाः ॥ ३ ॥
एवं मातामहाचार्य्यपत्नीनाञ्चोदकक्रियाः । कामोदकाः सखिपुत्रस्वस्त्रीयश्वशुरद्विजाः ॥
नामगोत्रेण ह्युदकं सकृत्सिञ्चन्ति वाग्यताः ॥ ४ ॥
पाषण्डपतितानां तु न कुर्य्युरुदकक्रिया । न ब्रह्मचारिणो व्रात्या योषितः कामगास्तथा ॥ ५ ॥
सुरापाः स्वात्मघातिन्यो न शौचोदकभाजनाः । ततो न रोदितव्यं हि त्वनित्या जीवसंस्थितिः ॥
क्रिया कार्य्या यथाशक्ति ततो गच्छेद्गृहान् प्रति । विदार्य्य निम्बपत्राणि नियतो द्वारि वेश्मनः ॥
आचम्याथाग्निमुदकं गोमयं गौरसर्षपान् । प्रविशेयुः समालभ्य कृत्वाश्मनि पदं शनैः ॥ ८ ॥
प्रवेशनादिकं कर्म प्रेतसंस्पर्शनादपि । इच्छतां तत्क्षणाच्छुद्धिः परेषां स्नानसंयमात् ॥ ९ ॥
क्रीतलब्धाशना भूमौ स्वपेयुस्ते पृथक् पृथक् । पिण्डं यज्ञकृता देयं प्रेतायान्नं दिनत्रयम् ॥१०॥
जलमेकाहमाकाशे स्थाप्यं क्षीरं तु मृन्मये । वैतानोपासनाः कार्य्याः क्रियाश्च श्रुतिचोदिताः ११॥
आदन्तजन्मनः सद्य आचूड़ं नैशिकी स्मृता । त्रिरात्रमाव्रतादेशाद्दशरात्रमतः परम् ॥१२॥
त्रिरात्रं दशरात्रं वा शावमाशौचमुच्यते । ऊनद्विवर्ष उभयोः सूतकं मातुरेव हि ॥
अन्तरा जन्ममरणे शेषाहोभिर्विशुध्यति ॥ १३ ॥
दशद्वादशवर्णानां तथा पञ्चदशैव च । त्रिंशद्दिनानि च तथा भवति प्रेतसूतकम् ॥१४॥
अहस्त्वदत्तकन्यासु बालेषु च विशोधनम् । गुर्वन्तेवास्यनूचानमातुलश्रोत्रियेषु च ॥१५॥
अनौरसेषु पुत्रेषु भार्य्यास्वन्यगतासु च । नीरसे राजनि तथा तदहः शुद्धिकारकम् ॥१६॥
हतानां नृपगोविप्रैरन्वक्षं चात्मघातिनाम् । विषाद्यैश्च हतानाञ्च नाशौचं पृथिवीपतेः ॥१७॥
सत्रिव्रतिब्रह्मचारिदातृब्रह्मविदां तथा । दाने विवाहे यज्ञे च संग्रामे देशविप्लवे ॥१८॥
आपद्यपि हतानाञ्च सद्यः शौचं विधीयते । कालोऽग्निकर्म मृद्वायुर्मनो ज्ञानं तपो जपः ॥१९॥
पश्चात्तापो निराहारः सर्वेषां शुद्धिहेतवः । अकार्य्यकारिणां दानं वेगो नद्यास्तु शुद्धिकृत् ॥२०॥
क्षात्रेण कर्मणा जीवेद्विशां वाप्यापदि द्विजः । फलसोमक्षौमवीरुद्दधि क्षीरं घृतं जलम् ॥
तिलौदनरसक्षारमधुलाक्षायुतं हविः ॥ २१ ॥

वस्त्रोपलामवं पुष्पं शाकमृच्चर्मपादुकम् । एणत्वञ्चैव कौषेयं लवणं मांसमेव च ॥२२॥
पिण्याकमूलगन्धांश्च वैश्यवृत्तो न विक्रयेत् । धर्मार्थं विक्रयस्तेषां तिलधान्येन संयुतम् ॥२३॥
लवणादि न विक्रीयात् तथा चापद्गतो द्विजः । कुर्य्यात् कृष्यादिकं तद्वद्विक्रेया हयास्तथा ॥
बुभुक्षितस्त्र्यहं स्थित्वा दृष्ट्वा वृत्तिविवर्जितम् । राजा धर्मान्प्रकुर्वीत वृत्तिं विप्रादिकस्य च २५॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे वर्णधर्मो नाम षडधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०६ ॥

सप्ताधिकशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

पराशरोऽब्रवीद्व्यासं धर्मं वर्णाश्रमादिकम् । कल्पे कल्पे क्षयोत्पत्तिः क्षीयन्ते न ह्यजादयः ॥१॥
श्रुतिः स्मृतिः सदाचारो यः कश्चिद्वेदकर्त्तृकः । वेदाः स्मृता ब्राह्मणादौ धर्मा मन्वादिभिः सदा॥
दानं कलियुगे धर्मः कर्त्तारञ्च कलौ त्यजेत् । पापकृत्यं तु तत्रैव शापं फलति वर्षतः ॥३॥
आचारात्प्राप्नुयात्सर्वं षट्कर्माणि दिने दिने। सन्ध्या स्नानं जपो होमो देवातिथ्यादिपूजनम् ४॥
अपूर्वः सुव्रती विप्रो ह्यपूर्वा यतयस्तदा । क्षत्रियः परसैन्यानि जित्वा पृथ्वीं प्रपालयेत् ॥
बणिक्कृष्यादि वैश्ये स्याद्द्विजभक्तिश्च शूद्रके ॥ ५ ॥
अभक्ष्यभक्षणाच्चौर्य्यादगम्यागमनात् पतेत् । कृषिं कुर्वन्द्विजः श्रान्तं बलीवर्दं न वाहयेत् ॥६॥
दिनार्द्धं स्नानयोगादिकारी विप्रांश्च भोजयेत् । निर्वपेत्पञ्च यज्ञानि क्रूरे निन्दाञ्च कारयेत् ॥७॥
तिलाज्यं न विक्रीणीत शूनायज्ञादघान्वितः । राज्ञो दत्त्वा तु षड्भागं देवतानाञ्च विंशतिम् ॥
त्रयस्त्रिंशच्च विप्राणां कृषिकर्त्ता न लिप्यते ॥ ८ ॥
कर्षकाः क्षत्रविट्शूद्राः खल्वदत्त्वा तु चौरकाः । दिनत्रयेण शुध्येत ब्राह्मणः प्रेतसूतके ॥९॥
क्षत्री दशाहाद्वैश्यस्तु द्वादशान्मासि शूद्रकः । याति विप्रो दशाहात्तु क्षत्रो द्वादशकाद्दिनात्॥
पञ्चदशाहाद्वैश्यस्तु शूद्रो मासेन शुध्यति । एकपिण्डास्तु दायादाः पृथग्भावनिकेतनाः ॥११॥
जन्मना च विपत्तौ च भवेत्तेषाञ्च सूतकम् । चतुर्थे दशरात्रस्य षण्निशाः पुंसि पञ्चमे ॥१२॥
षष्ठे चतुरहाच्छुद्धिः सप्तमे च दिनत्रयम् । देशान्तरे मृते बाले सद्यः शुद्धिर्यतो मृते ॥१३॥
अजातदन्ता ये बाला ये च गर्भाद्विनिःसृताः । न तेषामग्निसंस्कारो न पिण्डं नोदकक्रिया १४॥
यदि गर्भो विपद्येत स्रवते वापि योषितः । यावन्मासान्स्थितो गर्भस्तावद्दिनानि सूतकम् ॥
आनामकरणात्सद्य आचूडान्तादहर्निशम् । आव्रतस्थात्त्रिरात्रेण तदूर्ध्वं दशभिर्दिनैः ॥१६॥

आचतुर्थाद्भवेत्स्रावः पातः पञ्चमषष्ठयोः । ब्रह्मचर्य्यादग्निहोत्रान्नाशुद्धिः सङ्गवर्जनात् ॥१७॥
शिल्पिनः कारवो वैद्या दासीदासाश्च भृत्यकाः । अग्निमान्श्रोत्रियो राजा सद्यःशौचाः प्रकीर्त्तिताः॥
दशाहाच्छुद्ध्यते माता स्नानात्सूते पिता शुचिः । सङ्गात् सूतौ सूतकं स्यादुपस्पृश्य पिता शुचिः॥
विवाहोत्सवयज्ञेषु अन्तरा मृतसूतके । पूर्वसंकल्पितादन्यवर्जनञ्च विधीयते ॥२०॥
मृतेन शुद्ध्यते सूती मृतकं जातकं त्वसौ । गोग्रहादौ विपन्नानामेकरात्रं तु सूतकम् ॥२१॥
अनाथप्रेतवहनात् प्राणायामेन शुध्यति । प्रेतशूद्रस्य वहनात्त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥२२॥
आत्मघातिविषाद्बन्धकृमिदष्टे न संस्कृतिः । गोहतकृमिदष्टञ्च स्पृष्ट्वा कृच्छ्रेण शुध्यति ॥२३॥
अदुष्टां पतितां भार्य्यां यौवने यः परित्यजेत् । सप्तजन्म भवेत् स्त्रीत्वं वैधव्यञ्च पुनः पुनः॥२४॥
बालहत्या त्वगमनाद्दतौ च स्त्री तु शूकरी । अगम्या व्रतकारिण्यो भ्रष्टपानोदकक्रियाः ॥२५॥
औरसः क्षेत्रजः पुत्रः पितृजौ पिण्डदौ पितुः । परिवित्तेस्तु कृच्छ्रं स्यात्कन्यायाः कृच्छ्रमेव च ॥
अतिकृच्छ्रं चरेद्दाता होता चान्द्रायणञ्चरेत् । कुब्जवामनषण्डेषु गद्गदेषु जड़ेषु च ॥
जात्यन्धवधिरे मूके न दोषः परिवेदने ॥ २७ ॥
नष्टे मृते प्रव्रजिते क्लीबे वा पतिते पतौ । पञ्चस्वापत्सु नारीणां पतिरन्यो न विद्यते ॥२८॥
भर्त्रा सह मृता नारी रोमाब्दानि वसेद्दिवि ॥ २९ ॥
श्वादिदष्टस्तु गायत्र्या जपाच्छुद्धो भवेन्नरः । दाह्यो लोकाग्निना विप्रश्चाण्डालाद्यैर्हतोऽग्निमान् ॥
क्षीरैः प्रक्षाल्य तस्यास्थि स्वाग्निना मन्त्रतो दहेत् ॥ ३० ॥
प्रवासे तु मृते भूयः कृत्वा कुशमयं दहेत् । कृष्णाजिने समास्तीर्य्य षट्शतानि पलाशजाः ३१॥
शमीं शिश्ने विनिक्षिप्य अरणिं वृषणे क्षिपेत् । कुण्डं दक्षिणहस्ते तु वामहस्ते तथोपभृत् ॥३२॥
पार्श्वे तूदूखलं दद्यात्पृष्ठे तु मुषलं दहेत् । ऊरौ निक्षिप्य दृषदं तण्डुलाज्यतिलान्मुखे ॥३३॥
श्रोत्रे च प्रोक्षणीं दद्यादाज्यस्थालीञ्च चक्षुषोः । कर्णे नेत्रे मुखे घ्राणे हिरण्यशकलान् क्षिपेत् ॥
अग्निहोत्रोपकरणाद्ब्रह्मलोकगतिर्भवेत् । असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहेत्याज्याहुतिः सकृत् ॥३५॥
हंससारसक्रौञ्चानां चक्रवाकञ्च कुक्कुटम् । मयूरमेषघाती च अहोरात्रेण शुद्ध्यति ॥३६॥
पक्षिणः सकलान् हत्वा अहोरात्रेण शुध्यति । सर्वांश्चतुष्पदान्हत्वा अहोरात्रोषितो जपेत् ॥३७॥
शूद्रं हत्वा चरेत्कृच्छ्रमतिकृच्छ्रन्तु वैश्यहा । क्षत्रं चान्द्रायणं विप्रं द्वाविंशं त्रिंशमाहरेत् ॥३८॥
इति श्रीगारुड़े महापुराणे पराशरोक्तधर्मो नाम सप्ताधिकशततमोऽध्यायः ॥ १०७ ॥

———

अष्टाधिकशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

नीतिसारं प्रवक्ष्यामि अर्थशास्त्रादिसंश्रितम् । राजादिभ्यो हितं पुण्यमायुः स्वर्गादिदायकम् १॥
सद्भिः सङ्गं प्रकुर्वीत सिद्धिकामः सदा नरः । नासद्भिरिहलोकाय परलोकाय वा हितम् ॥ २ ॥
वर्जयेत्क्षुद्रसंवादं दुष्टस्य चैव दर्शनम् । विरोधं सह मित्रेण संप्रीतिं शत्रुसेविना ॥ ३ ॥
मूर्खशिष्योपदेशेन दुष्टस्त्रीभरणेन च । दुष्टानां संप्रयोगेण पण्डितोऽप्यवसीदति ॥ ४ ॥
ब्राह्मणं बालिशं क्षत्रमयोद्धारं विशं जड़म् । शूद्रमक्षरसंयुक्तं दूरतः परिवर्जयेत् ॥ ५ ॥
कालेन रिपुणा सन्धिः काले मित्रेण विग्रहः । कार्य्यकारणमाश्रित्य कालं क्षिपति पण्डितः ६ ॥
कालः पचति भूतानि कालः संहरते प्रजाः । कालः सुप्तेषु जागर्त्ति कालो हि दुरतिक्रमः ॥ ७ ॥
कालेषु चरते वीर्यं काले गर्भे च वर्द्धते । कालो जनयते सृष्टिं पुनः कालोऽपि संहरेत् ॥ ८ ॥
कालः सूक्ष्मगतिर्नित्यं द्विविधश्चेह भाव्यते । स्थूलसंग्रहचारेण सूक्ष्माचारान्तरेण च ॥ ९ ॥
नीतिसारं सुरेन्द्राय इममूचे बृहस्पतिः । सर्वज्ञो येन चेन्द्रोऽभूद्दैत्यान् हत्वाप्नुयाद्दिवम् ॥१०॥
राजर्षिब्राह्मणैः कार्य्यं देवविप्रादिपूजनम् । अश्वमेधेन यष्टव्यं महापातकनाशनम् ॥११॥
उत्तमैः सह साङ्गत्यं पण्डितैः सह सत्कथाम् । अलुब्धैः सह मित्रत्वं कुर्वाणो नावसीदति ॥१२॥
परदारं परार्थञ्च परिहासं परस्त्रिया । परवेश्मनि वासञ्च न कुर्वीत कदाचन ॥१३॥
परोऽपि हितवान् वन्धुर्बन्धुरप्यहितः परः । अहितो देहजो व्याधिर्हितमारण्यमौषधम् ॥१४॥
स वन्धुर्यो हिते युक्तः स पिता यस्तु पोषकः । तन्मित्रं यत्र विश्वासः स देशो यत्र जीव्यते ॥१५॥
स भृत्यो यो विधेयस्तु तद्बीजं यत् प्ररोहति । स भार्य्या या प्रियं ब्रूते स पुत्रो यस्तु जीवति ॥१६॥
स जीवति गुणा यस्य धर्मो यस्य स जीवति । गुणधर्मविहीनो यो निष्फलं तस्य जीवनम् १७॥

सा भर्य्या या गृहे दक्षा सा भार्य्या या प्रियंवदा ॥
सा भार्य्या या पतिप्राणा सा भार्य्या या पतिव्रता ॥१८॥

हिता स्नाता सुगन्धा च नित्यञ्च प्रियवादिनी । अल्पभक्ताल्पभाषिणी सततं मङ्गलैर्युता ॥१९॥
सततं धर्मबहुला सततञ्च पतिप्रिया । सततं प्रियवक्त्री च सततं ऋतुकामिनी ॥२०॥
एतदादिक्रियायुक्ता सर्वसौभाग्यवर्द्धिनी । यस्येदृशी भवेद्भार्य्या देवेन्द्रो न स मानुषः ॥२१॥
यस्य भार्य्या विरूपाक्षी कश्मला कलहप्रिया । उत्तरोत्तरवादास्या सा जरा न जरा जरा ॥२२॥
यस्य भार्य्याश्रितान्यत्र परवेश्माभिकांक्षिणी । कुक्रियात्यक्तलज्जा च सा जरा न जरा जरा ॥
यस्य भार्य्या गुणज्ञा च भर्त्तारमनुगामिनी । अल्पेऽल्पेन तु संतुष्टा सा प्रिया न प्रिया प्रिया ॥

दुष्टा भार्य्या शठं मित्रं भृत्यश्चोत्तरदायकः । ससर्पे गृहे वासो मृत्युरेव न संशयः ॥२५॥
त्यज दुर्जनसंसर्गं भज साधुसमागमम् । कुरु पुण्यमहोरात्रं स्मर नित्यमनित्यताम् ॥२६॥

व्याली कण्ठप्रदेशादपि च फणभृतो भीषणा या च रौद्री
या कृष्णा व्याकुलाङ्गी रुधिरनयनसंव्याकुला व्याघ्रकल्पा ।
क्रोधे चैवोग्रवक्त्रा स्फुरदनलशिखा काकजिह्वा कराला
सेव्या न स्त्री विदग्धा परपुरगमना भ्रान्तचित्ता विरक्ता ॥२७॥

भुजङ्गमे वेश्मनि दृष्टिदृष्टे व्याधौ चिकित्साविनिवर्त्तिते च ॥
देहे च बाल्यादिवयोऽन्विते च कालावृतोऽसौ लभते धृतिं कः ॥२८॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे नीतिसारे अष्टाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०८॥

नवाधिकशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

आपदर्थे धनं रक्षेद्दारान् रक्षेद्धनैरपि । आत्मानं सततं रक्षेद्दारैरपि धनैरपि ॥ १ ॥
त्यजेदेकं कुलस्यार्थे ग्रामस्यार्थे कुलं त्यजेत् । ग्रामं जनपदस्यार्थे आत्मार्थे पृथिवीं त्यजेत् ॥२॥
वरं हि नरके वासो न तु दुश्चरिते गृहे । नरकात् क्षीयते पापं कुगृहान्न निवर्त्तते ॥ ३ ॥
चलत्येकेन पादेन तिष्ठत्येकेन बुद्धिमान् । न परीक्ष्य परं स्थानं पूर्वमायतनं त्यजेत् ॥ ४ ॥
त्यजेद्देशमसद्वृत्तं वासं सोपद्रवं त्यजेत् । त्यजेत् कृपणराजानं मित्रं मायामयं त्यजेत् ॥ ५ ॥

अर्थेन किं कृपणहस्तगतेन पुंसा ज्ञानेन किं बहुशठाकुलसङ्कुलेन ।
रूपेण किं गुणपराक्रमवर्जितेन मित्रेण किं व्यसनकालपराङ्मुखेन ॥ ६ ॥

अदृष्टपूर्वा बहवः सहायाः सर्वे पदस्थस्य भवन्ति मित्राः ।
अर्थैर्विहीनस्य पदच्युतस्य भवत्यकाले स्वजनोऽपि शत्रुः ॥ ७ ॥

आपत्सु मित्रं जानीयात् रणे शूरं रहः शुचिम् ।
भार्य्याञ्च विभवे क्षीणे दुर्भिक्षे च प्रियातिथिम् ॥ ८ ॥

वृक्षं क्षीणफलं त्यजन्ति विहगाः शुष्कं सरः सारसाः
निर्द्रव्यं पुरुषं त्यजन्ति गणिका भ्रष्टं नृपं मन्त्रिणः ।
पुष्पं पर्य्युषितं त्यजन्ति मधुपा दग्धं वनान्तं मृगाः
सर्वः कार्यवशाज्जनो हि रमते कस्यास्ति को वल्लभः ॥ ९ ॥

लुब्धमर्थप्रदानेन श्लाघ्यमञ्जलिकर्मणा । मूर्खं छन्दानुवृत्त्या च याथातथ्येन पण्डितम् ॥ १० ॥
सद्भावेन हि तुष्यन्ति देवाः सत्पुरुषा द्विजाः । इतराः खाद्यपानेन मानदानेन पण्डिताः ११॥
उत्तमं प्रणिपातेन शठं भेदेन योजयेत् । नीचं स्वल्पप्रदानेन समं तुल्यपराक्रमैः ॥ १२ ॥
यस्य यस्य हि यो भावस्तस्य तस्य हि तं वदन् । अनुप्रविश्य मेधावी क्षिप्रमात्मवशं नयेत् ॥
नदीनाञ्च नखीनाञ्च शृङ्गिणां शस्त्रपाणिनाम् । विश्वासो नैव गन्तव्यः स्त्रीषु राजकुलेषु च ॥
अर्थनाशं मनस्तापं गृहे दुश्चरितानि च । वञ्चनञ्चापमानञ्च मतिमान्न प्रकाशयेत् ॥ १५ ॥
हीनदुर्जनसंसर्गमत्यन्तविरहादरः । स्नेहोऽन्यगेहवासश्च नारीसच्छीलनाशनम् ॥ १६ ॥
कस्य दोषः कुले नास्ति व्याधिना को न पीडितः। केन न व्यसनं प्राप्तं श्रियः कस्य निरन्तराः॥

कोऽर्थं प्राप्य न गर्वितो भुवि नरः कस्यापदो नागताः
स्त्रीभिः कस्य न खण्डितं भुवि मनः को नाम राज्ञां प्रियः ।
कः कालस्य न गोचरान्तरगतः कोऽर्थी गतो गौरवं
को वा दुर्जनवागुरानिपतितः क्षेमेण यातः पुमान् ॥१८॥

सुहृत्स्वजनबन्धुर्न बुद्धिर्यस्य न चात्मनि । यस्मिन् कर्मणि सिद्धेऽपि न दृश्येत फलोदयः ॥
विपत्तौ च महद्दुःखं तद् बुधः कथमाचरेत् ॥ १९ ॥
यस्मिन् देशे न सम्मानं न प्रीतिर्न च बान्धवाः । न च विद्यागमः कश्चित् तं देशं परिवर्जयेत्॥
धनस्य यस्य राजभ्यो भयं नास्ति न चौरतः । मृतञ्च यन्न मुञ्चेत समर्जयस्व तद्धनम् ॥२१॥

यदर्जितं प्राणहरैः परिश्रमैः मृतस्य तं वै विभजन्ति रिक्थिनः ।
कृतञ्च यद् दुष्कृतमर्थलिप्सया तदेव दोषापहतस्य यौतुकम् ॥२२॥

सञ्चितं निहितं द्रव्यं परामृष्यं मुहुर्मुहुः । आखोरिव कदर्य्यस्य धनं दुःखाय केवलम् ॥२३॥
नग्ना व्यसनिनो रूक्षाः कपालाङ्कितपाणयः । दर्शयन्तीह लोकस्य अदातुः फलमीदृशम् ॥२४॥
शिक्षयन्ति च याचन्ति देहीति कृपणा जनाः । अवस्थेयमदानस्य माभूदेवं भवानपि ॥२५॥

सञ्चितं क्रतुशतैर्न युज्यते याचितं गुणवते न दीयते ।
तत् कदर्य्यपरिरक्षितं धनं चौरपार्थिवगृहे प्रयुज्यते ॥२६॥

न देवेभ्यो न विप्रेभ्यो बन्धुभ्यो नैव चात्मनि । कदर्य्यस्य धनं याति अग्नितस्कर राजसु ॥२७॥
अतिक्लेशेन येऽप्यर्था धर्मस्यातिक्रमेण च । अरेर्वा प्रणिपातेन माभूवंस्ते कदाचन ॥२८॥
विद्याघातो ह्यनभ्यासः श्रीणां घातः कुचेलता । व्याधीनां भोजनाज्जीर्णं शत्रोर्घातः प्रपञ्चता ॥
तस्करस्य वधो दण्डः कुमित्रस्याल्पभाषणम् । पृथक्शय्या तु नारीणां ब्राह्मणस्यानिमन्त्रणम् ॥

दुर्जनाः शिल्पिनो दासा दुष्टाश्च पटहाः स्त्रियः । ताड़िता मार्दवं यान्ति न ते सत्कारभाजनम् ॥
जानीयात्प्रेषणे भृत्यान्बान्धवान्व्यसनागमे । मित्रञ्चापदि काले च भार्य्याञ्च विभवक्षये ॥३२॥
स्त्रीणां द्विगुण आहारः प्रज्ञा चैव चतुर्गुणा । षड्गुणो व्यवसायश्च कामश्चाष्टगुणः स्मृतः ३३॥
न स्वप्नेन जयेन्निद्रां न कामेन स्त्रियं जयेत् । न चेन्धनैर्जयेद्वह्निं न मद्येन तृषां जयेत् ॥३४॥
समांसैर्भोजनैः स्निग्धैर्मद्यैर्गन्धविलेपनैः । वस्त्रैर्मनोरमैर्माल्यैः कामः स्त्रीषु विजृम्भते ॥३५॥
ब्रह्मचर्य्येऽपि वक्तव्यं प्राप्तं मन्मथचेष्टितम् । हृद्यं हि पुरुषं दृष्ट्वा योनिः प्रक्लिद्यते स्त्रियाः ॥३६॥
सुवेशं पुरुषं दृष्ट्वा भ्रातरं यदि वा सुतम् । योनिः क्लिद्यति नारीणां सत्यं सत्यं हि शौनक ॥

नद्यश्च नार्य्यश्च समस्वभावाः स्वतन्त्रभावे गमनादिकञ्च ।
तोयैश्च दोषैश्च निपातयन्ति नद्यो हि कूलानि कुलानि नार्य्यः ॥३८॥

नदी पातयते कूलं नारी पातयते कुलम् । नारीणाञ्च नदीनाञ्च स्वच्छन्दा ललिता गतिः ॥३९॥
नाग्निस्तृप्यति काष्ठानां नापगानां महोदधिः । नान्तकः सर्वभूतानां न पुंसां वामलोचना ॥४०॥
न तृप्तिरस्ति शिष्टानामिष्टानां प्रियवादिनाम् । सुखानाञ्च सुतानाञ्च जीवितस्य वरस्य च ॥

राजा न तृप्तो धनसञ्चयेन न सागरस्तृप्तिमगाज्जलेन ।
न पण्डितस्तृप्यति भाषितेन तृप्तं न चक्षुर्नृपदर्शनेन ॥४२॥
स्वकर्मधर्मार्जितजीवितानां शास्त्रेषु दारेषु सदा रतानाम् ।
जितेन्द्रियाणामतिथिप्रियाणां गृहेऽपि मोक्षः पुरुषोत्तमानाम् ॥४३॥

मनोऽनुकूलाः प्रमदा रूपवत्यः स्वलङ्कृताः । वासः प्रासादपृष्ठेषु स्वर्गः स्याच्छुभकर्मणा ॥४४॥
न दानेन न मानेन नार्जवेन न सेवया । न शास्त्रेण न शस्त्रेण सर्वथा विषमाः स्त्रियः ॥४५॥
शनैर्विद्या शनैरर्थाः शनैः पर्वतमारुहेत् । शनैः कामञ्च धर्मञ्च पञ्चैतानि शनैः शनैः ॥४६॥
शाश्वतं देवपूजादि विप्रदानञ्च शाश्वतम् । शाश्वतं सगुणा विद्या सुहृन्मित्रञ्च शाश्वतम् ॥४७॥

ये बालभावान्न पठन्ति विद्यां ये यौवनस्था ह्यधनात्मदाराः ।
ते शोचनीया ह्यिह जीवलोके मनुष्यरूपेण मृगाश्चरन्ति ॥४८॥

पठने भोजने चिन्तां न कुर्य्याच्छास्त्रसेवकः । सुदूरमपि विद्यार्थी व्रजेद्गरुड़वेगवान् ॥४९॥

ये बालभावे न पठन्ति विद्यां कामातुरा यौवननष्टवित्ताः ।
ते वृद्धकाले परिभूयमानाः संदह्यमानाः शिशिरे यथाब्जम् ॥५०॥
तर्कोऽप्रतिष्ठः श्रुतयो विभिन्नाः नासावृषिर्यस्य मतं न भिन्नम् ।
धर्मस्य तत्त्वं निहितं गुहायां महाजनो येन गतः स पन्थाः ॥५१॥

आकारैरिङ्गितैर्गत्या चेष्टया भाषितेन तु । नेत्रवक्त्रविकाराभ्यां लक्ष्यतेऽन्तर्गतं मनः ॥५२॥

अनुक्तमप्यूहति पण्डितो जनः परेङ्गितज्ञानफला हि बुद्धयः ।
उदीरितार्थः पशुनापि गृह्यते हयाश्च नागाश्च वहन्ति देशितम् ॥५३॥
अर्थाद्भ्रष्टस्तीर्थयात्रां तु गच्छेत्सत्याद्भ्रष्टो रौरवं वै व्रजेच्च ।
योगाद्भ्रष्टः सत्यधृतिञ्च गच्छेत् राज्याद्भ्रष्टो मृगयायां व्रजेच्च ॥५४॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे नीतिसारे नवाधिकशततमोऽध्यायः ॥१०९॥

दशाधिकशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

यो ध्रुवाणि परित्यज्य ह्यध्रुवाणि निषेवते । ध्रुवाणि तस्य नश्यन्ति अध्रुवं नष्टमेव च ॥ १ ॥
वाग्यन्त्रहीनस्य नरस्य विद्या शस्त्रं यथा कापुरुषस्य हस्ते ।
न तुष्टिमुत्पादयते शरीरे अन्धस्य दारा इव दर्शनीयाः ॥ २ ॥
भोज्यं भोजनशक्तिश्च रतिशक्तिर्वराः स्त्रियः । विभवो दानशक्तिश्च नाल्पस्य तपसः फलम् ॥३॥
अग्निहोत्रफला वेदाः शीलवृत्तिफलं श्रुतम् । रतिपुत्रफला दारा दत्तभुक्तफलं धनम् ॥४॥
वरयेत्कुलजां प्राज्ञो विरूपामपि कन्यकाम् । सुरूपां सुनितम्बाञ्च नाकुलीनां कदाचन ॥५॥
अर्थेनापि हि किं तेन यस्यानर्थे तु सङ्गतिः । को हि नाम शिखाजातं पन्नगस्य मणिं हरेत् ॥६॥
हविर्दुष्टकुलाद्ग्राह्यं बालादपि सुभाषितम् । अमेध्यात्काञ्चनं ग्राह्यं स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ॥७॥
विषादप्यमृतं ग्राह्यं अमेध्यादपि काञ्चनम् । नीचादप्युत्तमां विद्यां स्त्रीरत्नं दुष्कुलादपि ॥८॥
न राज्ञा सह मित्रत्वं न सर्पो निर्विषः क्वचित् । न कुलं निर्मलं तत्र स्त्रीजनो यत्र जायते ॥९॥
कुले नियोजयेद्भक्तं पुत्रं विद्यासु योजयेत् । व्यसने योजयेच्छत्रुमिष्टं धर्मे नियोजयेत् ॥१०॥
स्थानेष्वेव प्रयोक्तव्या भृत्याश्चाभरणानि च । न हि चूडामणिः पादे शोभते वै कदाचन ॥
चूडामणिः समुद्रोऽग्निर्घण्टा चाखण्डमम्बरम् । अथवा पृथिवीपालो मूर्ध्नि पादे प्रमादतः ॥१२॥
कुसुमस्तबकस्येव द्वे गती तु मनस्विनः । मूर्ध्नि वा सर्वलोकानां शीर्षतः पतितो वने ॥१३॥
कर्णभूषणसंग्रहणोचितो यदि मणिस्तु पदे प्रतिबध्यते ।
किं मणिर्न हि शोभते ततो भवति योजयितुर्वचनीयता ॥१४॥
वाजिवारणलौहानां काष्ठपाषाणवाससाम् । नारीपुरुषतोयानामन्तरं महदन्तरम् ॥१५॥
कदर्थितस्यापि हि धैर्यवृत्तेर्न शक्यते सर्वगुणप्रमाथः ।
अधः खलेनापि कृतस्य वह्नेर्नाधः शिखा याति कदाचिदेव ॥१६॥

न सदश्वः कशाघातं सिंहो न गजगर्जितम्। वीरो वा परनिर्दिष्टं न सहेद्भीमनिःस्वनम् ॥१७॥
यदि विभवविहीनः प्रच्युतो वाशु दैवान्नतु खलजनसेवां काङ्क्षयेन्नैव नीचम्।
न तृणमदनकार्य्ये सुक्षुधार्त्तोऽत्ति सिंहः पिबति रुधिरमुष्णं प्रायशः कुञ्जराणाम् ॥१८॥
सकृद्दुष्टञ्च यो मित्रं पुनः सन्धातुमिच्छति। स मृत्युमेव गृह्णीयाद्गर्भमश्वतरी यथा ॥१९॥
शत्रोरपत्यानि प्रियंवदानि नोपेक्षितव्यानि बुधैर्मनुष्यैः।
तान्येव कालेषु विपत्कराणि विषस्य पात्राणि हि दारुणानि ॥२०॥
उपकारगृहीतेन शत्रुणा शत्रुमुद्धरेत्। पादलग्नं करस्थेन कण्टकेनैव कण्टकम् ॥२१॥
अपकारपरे नित्यं चिन्तयेन्न कदाचन। स्वयमेव पतिष्यन्ति कूलजाता इव द्रुमाः ॥२२॥
अनर्था ह्यर्थरूपाश्च अर्थाश्चानर्थरूपिणः। भवन्ति ते विनाशाय दैवायत्तस्य वै सदा ॥२३॥
कार्य्यकालोचिताऽपापा मतिः सञ्जायते हि वै। सानुकूलेषु दैवेषु पुंसः सर्वत्र जायते ॥२४॥
धनप्रयोगकार्य्येषु तथा विद्यागमेषु च। आहारे व्यवहारे च त्यक्तलज्जः सदैव हि ॥२५॥
धनिनः श्रोत्रियो राजा नदी वैद्यस्तु पञ्चमः। पञ्च यत्र न विद्यन्ते न कुर्य्यात्तत्र संस्थितिम् ॥
लोकयात्रा भयं लज्जा दाक्षिण्यं दानशीलता। पञ्च यत्र न विद्यन्ते न तत्र दिवसं वसेत् २७॥
कालविच्छ्रोत्रियो राजा नदी साधुश्च पञ्चमः। एते यत्र न विद्यन्ते तत्र वासं न कारयेत् २८॥
नैकत्र परिनिष्ठाऽस्ति ज्ञानस्य किल शौनक। सर्वः सर्वं न जानाति सर्वज्ञो नास्ति कुत्रचित् ॥
न सर्ववित्कश्चिदिहास्ति लोके नात्यन्तमूर्खो भुवि चापि कश्चित्।
ज्ञानेन नीचोत्तममध्यमेन यो यं विजानाति स तेन विद्वान् ॥३०॥
इति श्रीगारुड़े महापुराणे नीतिसारे दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११०॥

एकादशाधिकशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

पार्थिवस्य तु वक्ष्यामि भृत्यानाञ्चैव लक्षणम्। सर्वाणि हि महीपालः सम्यङ्नित्यं परीक्षयेत् ॥
राज्यं पालयते नित्यं सत्यधर्मपरायणः। निर्जित्य परसैन्यानि क्षितिं धर्मेण पालयेत् ॥ २ ॥
पुष्पात्पुष्पं विचिन्वीयान्मूलच्छेदं न कारयेत्। मालाकार इवारण्ये न यथाङ्गारकारकः ॥ ३ ॥
दोग्धारः क्षीरभुञ्जाना विकृतं तन्न भुञ्जते। परराष्ट्रं महीपालैर्भोक्तव्यं न च दूषयेत् ॥ ४ ॥
नोधश्छिन्द्यात्तु यो धेन्वाः क्षीरार्थी लभते पयः। एवं राष्ट्रं प्रयोगेण पीड्यमानं न वर्जयेत् ॥५॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पृथिवीमनुपालयेत्। पालकस्य भवेद्भूमिः कीर्त्तिरायुर्यशो बलम् ॥ ६ ॥
अभ्यर्च्य विष्णुं धर्मात्मा गोब्राह्मणहिते रतः। प्रजाः पालयितुं शक्तः पार्थिवो विजितेन्द्रियः ॥

ऐश्वर्य्यमध्रुवं प्राप्य राजा धर्मे मतिञ्चरेत् । क्षणेन विभवो नश्येन्नात्मायत्तं धनादिकम् ॥८॥
सत्यं मनोरमाः कामाः सत्यं रम्या विभूतयः । किन्तु वै वनितापाङ्गभङ्गीलोलं हि जीवितम् ॥९॥

व्याघ्रीव तिष्ठति जरा अपि तर्जयन्ती रोगाश्च शत्रव इव प्रभवन्ति गात्रे ।
आयुः परिस्रवति भिन्नघटादिवाम्भो लोको न चात्महितमाचरतीह कश्चित् ॥१०॥

निःशंकं किं मनुष्याः कुरुत परहिते युक्तमग्रे हितं
यन्मोदध्वं कामिनीभिर्मदनशरहता मन्दमन्दातिदृष्ट्या ।
मा पापं संकुरुध्वं द्विजहरिपरमाः संभजध्वं सदैव
आयुर्निःशेषमेति स्खलति जलघटीभूतमृत्युच्छलेन ॥११॥

मातृवत्परदारेषु परद्रव्येषु लोष्ठवत् । आत्मवत्सर्वभूतेषु यः पश्यति स पण्डितः ॥१२॥
एतदर्थं हि विप्रेन्द्रा राज्यमिच्छन्ति भूभृतः । यदेषां सर्वकार्य्येषु वचो न प्रतिहन्यते ॥१३॥
एतदर्थं हि कुर्वन्ति राजानो धनसञ्चयम् । रक्षयित्वा तु चात्मानं यद्धनं तद्द्विजातये ॥१४॥
ओंकारशब्दो विप्राणां येन राष्ट्रं प्रवर्द्धते । स राजा वर्द्धते योगाद्व्याधिभिश्च न बध्यते ॥१५॥
असमर्थाश्च कुर्वन्ति मुनयो द्रव्यसञ्चयम् । किं पुनस्तु महीपालः पुत्रवत्पालयन्प्रजाः ॥१६॥

यस्यार्थास्तस्य मित्राणि यस्यार्थास्तस्य बान्धवाः ।
यस्यार्थाः स पुमान्लोके यस्यार्थाः स च पण्डितः ॥१७॥
त्यजन्ति मित्राणि धनैर्विहीनं पुत्राश्च दाराश्च सुहृज्जनाश्च ।
ते चार्थवन्तं पुनराश्रयन्ति अर्थो हि लोके पुरुषस्य बन्धुः ॥१८॥

अन्धो हि राजा भवति यस्तु शास्त्रविवर्जितः । अन्धः पश्यति चारेण शास्त्रहीनो न पश्यति ॥१९॥
यस्य पुत्राश्च भृत्याश्च मन्त्रिणश्च पुरोहिताः । इन्द्रियाणि प्रसुप्तानि तस्य राज्यं चिरं न हि २०॥
येनार्जितास्त्रयोऽप्येते पुत्रा भृत्याश्च बान्धवाः । जिता तेन समं भूपैश्चतुरब्धिर्वसुन्धरा ॥२१॥
लङ्घयेच्छास्त्रयुक्तानि हेतुयुक्तानि यानि च । स हि नश्यति वै राजा इह लोके परत्र च ॥२२॥
मनस्तापं न कुर्वीत आपदं प्राप्य पार्थिवः । समबुद्धिः प्रसन्नात्मा सुखदुःखे समो भवेत् ॥२३॥
धीराः कष्टमनुप्राप्य न भवन्ति विषादिनः । प्रविश्य वदनं राहोः किं नोदेति पुनः शशी २४॥

धिग्धिक्शरीरसुखलालितमानवेषु मा खेदयेद्धनकृशं हि शरीरमेव ।
सद्वारका ह्यधनपाण्डुसुताः श्रुता हि दुःखं विहाय पुनरेव सुखं प्रपन्नाः ॥२५॥

गन्धर्वविद्यामालोक्य वाद्यं च गणिकागणाः । धनुर्वेदार्थशास्त्राणि लोके रक्षेच्च भूपतिः ॥२६॥
कारणेन विना भृत्ये यस्तु कुप्यति पार्थिवः । स गृह्णाति विषोन्मादं कृष्णसर्पविसर्जितम् ॥२७॥
चापलाद्वारयेद्दृष्टिं मिथ्यावाक्यञ्च वारयेत् । मानवे श्रोत्रिये चैव भृत्यवर्गे सदैव हि ॥२८॥

लीलां करोति यो राजा भृत्यस्वजनगर्वितः। शासने सर्वदा क्षिप्रं रिपुभिः परिभूयते ॥२९॥
हुंकारं भृकुटीं नैव सदा कुर्वीत पार्थिवः। बिना दोषेण यो भृत्यान्राजाऽधर्मेण शास्ति च ॥
लीलासुखानि भोग्यानि त्यजेदिह महीपतिः ॥३०॥
सुखप्रवृत्तैः साध्यन्ते शत्रवो विग्रहे स्थितैः ॥ ३१ ॥
उद्योगः साहसं धैर्यं बुद्धिः शक्तिः पराक्रमः। षड्विधेयस्य उत्साहस्तस्य देवोऽपि शङ्कते॥३२॥
उद्योगेन कृते कार्य्ये सिद्धिर्यस्य न विद्यते। दैवं तस्य प्रमाणं हि कर्त्तव्यं पौरुषं सदा ॥३३॥
इति श्रीगारुडे महापुराणे नीतिसारे एकादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १११ ॥

द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

भृत्या बहुविधा ज्ञेया उत्तमाधममध्यमाः। नियोक्तव्या यथार्हेषु त्रिविधेष्वेव कर्मसु ॥ १ ॥
भृत्ये परीक्षणं वक्ष्ये यस्य यस्य हि ये गुणाः। तमिमं संप्रवक्ष्यामि यद्यदा कथितानि च ॥ २ ॥
यथा चतुर्भिः कनकं परीक्ष्यते निघर्षणच्छेदनतापताड़नैः।
तथा चतुर्भिर्भृतकं परीक्षयेद्व्रतेन शीलेन कुलेन कर्मणा ॥ ३ ॥
कुलशीलगुणोपेतः सत्यधर्मपरायणः। रूपवान्सुप्रसन्नश्च कोषाध्यक्षो विधीयते ॥ ४ ॥
मूल्यरूपपरीक्षाकृद्भवेद्रत्नपरीक्षकः। बलाबलपरिज्ञाता सेनाध्यक्षो विधीयते ॥ ५ ॥
इङ्गिताकारतत्त्वज्ञो बलवान्प्रियदर्शनः। अप्रमादी प्रमाथी च प्रतीहारः स उच्यते ॥ ६ ॥
मेधावी वाक्पटुः प्राज्ञः सत्यवादी जितेन्द्रियः। सर्वशास्त्रसमालोकी ह्येष साधुः स लेखकः ॥
बुद्धिमान्मतिमांश्चैव परचित्तोपलक्षकः। क्रूरो यथोक्तवादी च एष दूतो विधीयते ॥ ८ ॥
समस्तस्मृतिशास्त्रज्ञः पण्डितोऽथ जितेन्द्रियः। शौर्य्यवीर्य्यगुणोपेतो धर्माध्यक्षो विधीयते ॥
पितृपैतामहो दक्षः शास्त्रज्ञः सत्यवाचकः। शुचिश्च कठिनश्चैव सूपकारः स उच्यते ॥१०॥
आयुर्वेदकृताभ्यासः सर्वेषां प्रियदर्शनः। आयुःशीलगुणोपेतो वैद्य एष विधीयते ॥११॥
वेदवेदाङ्गतत्त्वज्ञो जपहोमपरायणः। आशीर्वादपरो नित्यमेष राजपुरोहितः ॥१२॥
लेखकः पाठकश्चैव गणकः प्रतिबोधकः। आलस्ययुक्तश्चेद्राजा कर्मणो वर्जयेत्सदा ॥१३॥
द्विजिह्वमुद्वेगकरं क्रूरमेकान्तदारुणम्। खलस्याहेश्च वदनमपकाराय केवलम् ॥१४॥
दुर्जनः परिहर्त्तव्यो विद्ययाऽलङ्कृतोऽपि सन्। मणिना भूषितः सर्पः किमसौ न भयङ्करः ॥१५॥

अकारणाविष्कृतकोपधारिणः खलाद्भयं कस्य न नाम जायते ।
विषं महाहेर्विषमस्य दुर्वचः सुदुःसहं सन्निपतेत्सदा मुखे ॥१६॥
तुल्यार्थं तुल्यसामर्थ्यं मर्मज्ञं व्यवसायिनम् । अर्द्धराज्यहरं भृत्यं यो हन्यात्स न हन्यते ॥१७॥
शूरत्वयुक्ता मृदुमन्दवाक्या जितेन्द्रियाः सत्यपराक्रमाश्च ।
प्रागेव पश्चाद्विपरीतरूपा ये ते तु भृत्या न हिता भवन्ति ॥१८॥
निरालस्याः सुसन्तुष्टाः सुस्वप्नाः प्रतिबोधकाः । सुखदुःखसमा धीरा भृत्या लोकेषु दुर्लभाः ॥
क्षान्तिसत्यविहीनश्च क्रूरबुद्धिश्च निन्दकः । दाम्भिकः पेटुकश्चैव शठश्च स्पृहयाऽन्वितः ॥
अशक्तो भयभीतश्च राज्ञा त्यक्तव्य एव सः ॥२०॥
सुसन्धानानि चास्त्राणि शस्त्राणि विविधानि च । दुर्गे प्रवेशितव्यानि ततः शत्रुं निपातयेत् ॥
षण्मासमथ वर्षं वा सन्धिं कुर्यान्नराधिपः । पश्यन्सञ्चितमात्मानं पुनः शत्रुं निपातयेत् ॥२२॥
मूर्खान्नियोजयेद्यस्तु त्रयोऽप्येते महीपतेः । अयशश्चार्थनाशश्च नरके चैव पातनम् ॥२३॥
यत्किञ्चित्कुरुते कर्म शुभं वा यदि वाऽशुभम् । तेन स्म वर्द्धते राजा सूक्ष्मतो भृत्यकार्य्यतः ॥
तस्माद्भूमीश्वरः प्राज्ञं धर्मकामार्थसाधने । नियोजयेद्धि सततं गोब्राह्मणहिताय वा ॥२५॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे नीतिसारे द्वादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११२॥

त्रयोदशाधिकशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

गुणवन्तं नियुञ्जीत गुणहीनं विवर्जयेत् । पण्डितस्य गुणाः सर्वे मूर्खे दोषाश्च केवलाः ॥ १ ॥
सद्भिरासीत सततं सद्भिः कुर्वीत सङ्गतिम् । सद्भिर्विवादं मैत्रीञ्च नासद्भिः किञ्चिदाचरेत् ॥
पण्डितैश्च विनीतैश्च धर्मज्ञैः सत्यवादिभिः । बन्धनस्थोऽपि तिष्ठेत न तु राज्ये खलैः सह ॥
सावशेषाणि कार्य्याणि कुर्वन्नर्थैश्च युज्यते । तस्मात्सर्वाणि कार्य्याणि सावशेषाणि कारयेत् ॥
मधुहेव दुहेद्राष्ट्रं कुसुमञ्च न पातयेत् । वत्सापेक्षी दुहेत्क्षीरं भूमिं गाञ्चैव पार्थिवः ॥ ५ ॥
यथा क्रमेण पुष्पेभ्यश्चिनुते मधु षट्पदः । तथा वित्तमुपादाय राजा कुर्वीत सञ्चयम् ॥ ६ ॥
वल्मीकं मधुजालञ्च शुक्लपक्षे तु चन्द्रमाः । राजद्रव्यञ्च भैक्ष्यञ्च स्तोकस्तोकेन वर्द्धते ॥ ७ ॥
अञ्जनस्य क्षयं दृष्ट्वा वल्मीकस्य तु सञ्चयम् । अवन्ध्यं दिवसं कुर्य्याद्दानाध्ययनकर्मसु ॥ ८ ॥

वनेऽपि दोषाः प्रभवन्ति रागिणां गृहेऽपि पञ्चेन्द्रियनिग्रहस्तपः ।
अकुत्सिते कर्मणि यः प्रवर्त्तते निवृत्तरागस्य गृहं तपोवनम् ॥ ६ ॥

सत्येन रक्ष्यते धर्मो विद्या योगेन रक्ष्यते । मृजया रक्ष्यते पात्रं कुलं शीलेन रक्ष्यते ॥१०॥

वरं विन्ध्याटव्यां निवसनमभुक्तस्य मरणं वरं सर्पाकीर्णे शयनमथ कूपे निपतनम् ।
वरं भ्रान्तावर्त्ते सभयजलमध्ये प्रविशनं न तु स्वीये पक्षे तु धनमणु देहीति कथनम् ॥११॥

भाग्यक्षयेषु क्षीयन्ते नोपभोगेन सम्पदः । पूर्वार्जिते हि सुकृते न नश्यन्ति कदाचन ॥१२॥

विप्राणां भूषणं विद्या पृथिव्या भूषणं नृपः । नभसो भूषणं चन्द्रः शील सर्वस्य भूषणम् ॥१३॥

एते ते चन्द्रतुल्याः क्षितिपतितनया भीमसेनार्जुनाद्याः
शूराः सत्यप्रतिज्ञा दिनकरवपुषः केशवेनोपगूढाः ।
ते वै दुष्टग्रहस्थाः कृपणवशगता भैक्ष्यचर्य्यां प्रयाताः
को वा कस्मिन्समर्थो भवति विधिवशाद्भ्रामयेत्कर्मरेखा ॥१४॥

ब्रह्मा येन कुलालवन्नियमितो ब्रह्माण्डभाण्डोदरे
विष्णुर्येन दशावतारगहने क्षिप्तो महासङ्कटे ।
रुद्रो येन कपालपाणिरमरो भिक्षाटनं कारितः
सूर्य्यो भ्राम्यति नित्यमेव गगने तस्मै नमः कर्मणे ॥१५॥

दाता बलिर्याचनको मुरारिर्दानं मही विप्रमुखस्य मध्ये ।
दत्त्वा फलं बन्धनमेव लब्धं नमोऽस्तु ते दैव यथेष्टकारिणे ॥१६॥

माता यदि भवेल्लक्ष्मीः पिता साक्षाज्जनार्दनः । कुबुद्धिप्रतिपत्तिश्चेत्तद्दण्डं विधृतं सदा ॥१७॥

येन येन यथा यद्वत्पुरा कर्म सुनिश्चितम् । तत्तदेवान्तरा भुङ्क्ते स्वयमाहितमात्मनः ॥१८॥

आत्मना विहितं दुःखमात्मना विहितं सुखम् । गर्भशय्यामुपादाय भुङ्क्ते वै पौर्वदेहिकम् ॥

न चान्तरिक्षे न समुद्रमध्ये न पर्वतानां विविधप्रदेशे ।
न मातृमूर्ध्नि प्रधृतस्तथाङ्के त्यक्तुं क्षमः कर्मकृतं नरो हि ॥
न मातृमूर्ध्नि प्रधृतस्तथाङ्के त्यक्तुं क्षमः कर्मकृतं नरो हि ॥२०॥

दुर्गस्त्रिकूटः परिखा समुद्रो रक्षांसि योधाः परमा च वृत्तिः ।
शास्त्रञ्च वै तूशनसा प्रदिष्टं स रावणः कालवशाद्विनष्टः ॥२१॥

यस्मिन्वयसि यत्काले यद्दिवा यच्च वा निशि । यन्मुहूर्त्ते क्षणे वापि तत्तथा न तदन्यथा ॥

गच्छन्ति चान्तरिक्षे वा प्रविशन्ति महीतले । धारयन्ति दिशः सर्वा नादत्तमुपलभ्यते ॥२३॥
पुराधीता च या विद्या पुरा दत्तञ्च यद्धनम् । पुरा कृतानि कर्माणि अग्रे धावन्ति धावतः ॥
कर्माण्यत्र प्रधानानि सम्यगृक्षे शुभग्रहे । वसिष्ठकृतलग्नेऽपि जानकी दुःखभाजनम् ॥२५॥
स्थूलजङ्घो यदा रामः शब्दगामी च लक्ष्मणः । घनकेशी यथा सीता त्रयस्ते दुःखभाजनम् ॥
न पिण्डकर्मणा पुत्रः पिता वा पुत्रकर्मणा । कर्मजन्यशरीरेषु रोगाः शारीरमानसाः ॥२७॥
शरा इव पपन्तीह विमुक्ता दृढधन्विनः । अतो वै शास्त्रगर्भिण्या धिया धीरोऽर्थमीहते ॥
बालो युवा च वृद्धश्च यः करोति शुभाशुभम् । तस्यां तस्यामवस्थायां भुङ्क्ते जन्मनि जन्मनि॥
अनिच्छमानोऽपि नरो विदेशस्थोऽपि मानवः । स्वकर्मपोतवातेन नीयते यत्र तत् फलम् ३०॥

प्राप्तव्यमर्थं लभते मनुष्यो देवोऽपि तं वारयितुं न शक्तः ।
अतो न शोचामि न विस्मयो मे ललाटलेखा न पुनः प्रयाति
(यदस्मदीयं न तु तत् परेषाम्) ॥३१॥

सर्पः कूपे गजः स्कन्धे आखुर्बिले च धावति । नरः शीघ्रतरादेव कर्मणः कः पलायति ॥३२॥
नाल्पायति हि सद्विद्या दीयमानापि वर्द्धते । कूपस्थमिव पानीयं भवत्येव बहूदकम् ॥३३॥
येऽर्था धर्मेण ते सत्या ये धर्मेण गताः श्रियः । धर्मार्थी च महान्लोके तत्स्मृत्वा ह्यर्थकारणात्॥
अन्नार्थी यानि दुःखानि करोति कृपणो जनः । तान्येव यदि धर्मार्थी न भूयः क्लेशभाजनम् ॥
सर्वेषामेव शौचानामन्नशौचं विशिष्यते । योऽन्नार्थैरशुचिः शौचान्न मृदा वारिणा शुचिः ३६॥
सत्यशौचं मनःशौचं शौचमिन्द्रियनिग्रहः । सर्वभूते दया शौचं चलशौचञ्च पञ्चमम् ॥३७॥
यस्य सत्यञ्च शौचञ्च तस्य स्वर्गो न दुर्लभः । सत्यं हि वचनं यस्य सोऽश्वमेधाद्विशिष्यते ३८॥
मृत्तिकानां सहस्रेण उदकानां शतेन च । न शुद्ध्यति दुराचारो भावोपहतचेतनः ॥३६॥
यस्य हस्तौ च पादौ च मनश्चैव सुसंयतम् । विद्या तपश्च कीर्त्तिश्च स तीर्थफलमश्नुते ॥४०॥
न प्रहृष्यति सम्माने नावमानेन कुप्यति । न क्रुद्धः परुषं ब्रूयादेतत् साधोस्तु लक्षणम् ॥४१॥
दरिद्रस्य मनुष्यस्य प्राज्ञस्य मधुरस्य च । काले श्रुत्वा हितं वाक्यं न कश्चित्परितुष्यते ४२॥
न मन्त्रबलवीर्येण प्रज्ञया पौरुषेण च । अलभ्यं लभ्यते मर्त्यैस्तत्र का परिवेदना ॥४३॥
अयाचितो मया लब्धो मत्प्रेषितः पुनर्गतः । यत्रागतस्तत्र गतस्तत्र का परिवेदना ॥४४॥
एकवृक्षे सदा रात्रौ नानापक्षिसमागमः । प्रभातेऽन्यदिशं यान्ति का तत्र परिवेदना ॥४५॥
एकस्वार्थप्रयातानां सर्वेषान्तत्र गामिनाम् । यस्त्वेकस्त्वरितो याति का तत्र परिवेदना ॥४६॥
अव्यक्तादीनि भूतानि व्यक्तमध्यानि शौनक । अव्यक्तनिधनान्येव का तत्र परिवेदना ॥४७॥

नाप्राप्तकालो म्रियते विद्धः शरशतैरपि । कुशाग्रेण तु संस्पृष्टः प्राप्तकालो न जीवति ॥४८॥
लब्धव्यान्येव लभते गन्तव्यान्येव गच्छति । प्राप्तव्यान्येव प्राप्नोति दुःखानि च सुखानि च ४९॥
ततः प्राप्नोति पुरुषः किं प्रलापं करिष्यति । आचोद्यमानानि तथा पुष्पाणि च फलानि च ॥
स्वकालं नातिवर्त्तन्ते तथा कर्म पुराकृतम् ॥ ५० ॥

शीलं कुलं नैव न चैव विद्या ज्ञानं गुणा नैव न बीजशुद्धिः ।
भाग्यानि पूर्वं तपसार्जितानि काले फलन्ति पुरुषस्य यथैव वृक्षाः ॥ ५१ ॥

तत्र मृत्युर्यत्र हन्ता तत्र श्रीर्यत्र सम्पदः । तत्र तत्र स्वयं याति प्रेष्यमाणः स्वकर्मभिः ॥५२॥
भूतपूर्वं कृतं कर्म कर्त्तारमनुतिष्ठति । यथा धेनुशहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम् ॥५३॥
एवं पूर्वकृतं कर्म कर्त्तारमनुतिष्ठति । सुकृतं भुङ्क्ष्व चात्मीयं मूढ किं परितप्यसे ५४॥
यथा पूर्वकृतं कर्म कर्त्तारमनुतिष्ठति । एवं पूर्वकृतं कर्म शुभं वा यदि वाऽशुभम् ॥५५॥
नीचः सर्षपमात्राणि परच्छिद्राणि पश्यति । आत्मनो बिल्वमात्राणि पश्यन्नपि न पश्यति ॥
रागद्वेषादियुक्तानां न सुखं कुत्रचिद्द्विज । विचार्य्य खलु पश्यामि तत्सुखं यत्र निर्वृतिः ५७॥
यत्र स्नेहो भयं तत्र स्नेहो दुःखस्य भाजनम् । स्नेहमूलानि दुःखानि तस्मिंस्त्यक्ते महत्सुखम् ५८॥
शरीरमेवायतनं दुःखस्य च सुखस्य च । जीवितञ्च शरीरञ्च जात्यैव सह जायते ॥५९॥
सर्वं परवशं दुःखं सर्वमात्मवशं सुखम् । एतद्विद्यात्समासेन लक्षणं सुखदुःखयोः ॥६०॥
सुखस्यानन्तरं दुःखं दुःखस्यानन्तरं सुखम् । सुखं दुःखं मनुष्याणां चक्रवत्परिवर्त्तते ॥६१॥
यद्गतं तदतिक्रान्तं यदि स्यात्तच्च दूरतः । वर्त्तमानेन वर्त्तेत न स शोकेन बाध्यते ॥६२॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे नीतिसारे त्रयोशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११३॥

चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

न कश्चित्कस्यचिन्मित्रं न कश्चित्कस्यचिद्रिपुः । कारणादेव जायन्ते मित्राणि रिपवस्तथा ॥ १ ॥
शोकत्राणं भयत्राणं प्रीतिविश्वासभाजनम् । केन रत्नमिदं सृष्टं मित्रमित्यक्षरद्वयम् ॥ २ ॥
सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम् । बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ॥ ३ ॥
न मातरि न दारेषु न सोदर्य्ये न चात्मजे । विश्वासस्तादृशः पुंसां यादृङ्मित्रे स्वभावजे ॥४॥
यदीच्छेत्शाश्वतीं प्रीतिं त्रीणि दोषाणि वर्जयेत् । द्यूतमर्थप्रयोगञ्च परोक्षे दारदर्शनम् ॥ ५ ॥

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासने वसेत् । बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति ॥६॥
विपरीतरतिः कामः स्वायत्तेषु न विद्यते । यत्रापायो बधो दण्डस्तथैव ह्यनुवर्त्तते ॥७॥
अपि कल्पानिलस्यैव तुरगस्य महोदधेः । शक्यते प्रसरो बोद्धुं नह्यरक्तस्य चेतसः ॥८॥
क्षणं नास्ति रहो नास्ति नास्ति प्रार्थयिता जनः । तेन शौनक नारीणां सतीत्वमुपजायते ॥९॥
एकं वै सेवते नित्यमन्यं चेतसि रोचते । पुरुषाणामलाभेन नारी चैव पतिव्रता ॥१०॥
जननी यानि कुरुते रहस्यं मदनातुरा । सुतैस्तानि न चिन्त्यानि शीलविप्रतिपत्तिभिः ॥११॥

पराधीना निद्रा परहृदयकृत्यानुसरणं सदा हेलाहास्यं नियतमपि शोकेन रहितम् ।
पणे न्यस्तः कायः विटजनखुरैर्दारितगलो बहूत्कण्ठावृत्तिर्जगति गणिकाया बहुमतः ॥१२॥

अग्निरापः स्त्रियो मूर्खाः सर्पा राजकुलानि च । नित्यं परोपसेव्यानि सद्यः प्राणहराणि षट् ॥

किं चित्रं यदि शब्दशास्त्रकुशलो विप्रो भवेत्पण्डितः
किं चित्रं यदि दण्डनीतिकुशलो विप्रो भवेद्धार्मिकः ।
किं चित्रं यदि रूपयौवनवती योषिन्न साध्वी भवेत्
किं चित्रं यदि निर्द्धनोऽपि पुरुषः पापं न कुर्य्यात्क्वचित् ॥१४॥

नात्मछिद्रं परे दद्याद्विद्याच्छिद्रं परस्य च । गृहे कूर्म इवाङ्गानि परभावञ्च लक्षयेत् ॥१५॥
पातालतलवासिन्य उच्चप्राकारछादिताः । यदि नो चिकुरोच्छेदः स्त्रियाः केनोपलभ्यते ॥१६॥
समधर्मा हि मर्मज्ञस्तीक्ष्णः स्वजनकण्टकः । न तथा बाधते शत्रुः कृतवैरो बहिःस्थितः ॥१७॥

स पण्डितो यो ह्यनुरञ्जयेद्वै मिष्टेन बालं विनयेन शिष्टम् ।
अर्थेन नारीं तपसा हि देवान्सर्वांश्च लोकांश्च सुसंग्रहेण ॥१८॥
छलेन मित्रं कलुषेण धर्मं परोपतापेन समृद्धिभावम् ।
सुखेन विद्यां परुषेण नारीं वाञ्छन्ति वै ये न च पण्डितास्ते ॥१९॥

फलार्थी फलिनं वृक्षं यश्छिन्द्याद्दुर्मतिर्नरः । निष्फलं तस्य वै कार्य्यं तन्मूलं दोषमाप्नुयात् ॥
साधनो हि तपस्वी च दूरतो वै कृतश्रमः । मद्यपा स्त्री सतीत्येवं विप्र न श्रद्दधाम्यहम् ॥२१॥
न विश्वसेदविश्वस्ते मित्रस्यापि न विश्वसेत् । कदाचित्कुपितं मित्रं सर्वं गुह्यं प्रकाशयेत् ॥२२॥
सर्वभूतेषु विश्वासः सर्वभूतेषु सात्त्विकः । स्वभावमात्मना गुह्यमेतत्साधोर्हि लक्षणम् ॥२३॥
यस्मिन्कस्मिन्कृते कार्य्ये कर्त्तारमनुवर्त्तते । सर्वथा वर्त्तमानोऽपि धैर्य्यबुद्धिन्तु कारयेत् ॥२४॥
वृद्धाः स्त्रियो नवं मद्यं शुष्कं मांसं त्रिमूलकम् । रात्रौ दधि दिवा स्वप्नं विद्वान्षट् परिवर्जयेत् ॥
विषं गोष्ठी दरिद्रस्य वृद्धस्य तरुणी विषम् । विषं कुशिक्षिता विद्या अजीर्णे भोजनं विषम् ॥

प्रियं दानमकुण्ठस्य नीचस्योच्छ्रासनं प्रियम् । प्रियं दानं दरिद्रस्य यूनश्च तरुणी प्रिया ॥२७॥

अत्यम्बुपानं कठिनाशनञ्च धातुक्षयो वेगविधारणञ्च ।
दिवाशयो जागरणञ्च रात्रौ षड्भिर्नराणां निवसन्ति रोगाः ॥२८॥
बालातपश्चाप्यतिमैथुनञ्च श्मशानधूमः करतापनञ्च ।
रजस्वलावक्त्रनिरीक्षणञ्च सुदीर्घमायुस्त्वपि कर्षयेच्च ॥२९॥

शुष्कं मांसं स्त्रियो वृद्धा बालार्कस्तरुणं दधि । प्रभाते मैथुनं निद्रा सद्यः प्राणहराणि षट् ॥३०॥
सद्यः पक्वघृतं द्राक्षा बाला स्त्री क्षीरभोजनम् । उष्णोदकं तरुच्छाया सद्यःप्राणकराणि षट् ३१॥
कूपोदकं वटच्छाया नारीणाञ्च पयोधरः । शीतकाले भवेदुष्णमुष्णकाले च शीतलम् ॥३२॥
सद्योबलकरास्त्रीणि बालाभ्यङ्गसुभोजनम् । सद्योबलहरास्त्रीणि अध्वा च मैथुनं ज्वरः॥३३॥
शुष्कं मांसं पयो नित्यं भार्य्यामित्रैः सहैव तु । न भोक्तव्यं नृपैः सार्द्धं वियोगं कुरुते क्षणात् ॥

कुचेलिनं दन्तमलापधारिणं बह्वाशिनं निष्ठुरवाक्यभाषिणम् ।
सूर्य्योदये ह्यस्तमयेऽपि शायिनं विमुञ्चति श्रीरपि चक्रपाणिनम् ॥३५॥
नित्यं छेदस्तृणानां धरणिविलिखनं पादयोश्चापमार्ष्टिः
दन्तानामप्यशौचं मलिनवसनता रूक्षता मूर्द्धजानाम् ।
द्वे सन्ध्ये चापि निद्रा विवसनशयनं ग्रासहासातिरेकः
स्वाङ्गे पीठे च वाद्यं निधनमुपनयेत्केशवस्यापि लक्ष्मीम् ॥३६॥
शिरः सुधौतं चरणौ सुमार्जितौ वराङ्गनासेवनमल्पभोजनम् ।
अनग्नशायित्वमपर्वमैथुनं चिरप्रनष्टां श्रियमानयन्ति षट् ॥३७॥

यस्य तस्य तु पुष्पस्य पाण्डरस्य विशेषतः । शिरसा धार्य्यमाणस्य अलक्ष्मीः प्रतिहन्यते ॥३८॥
दीपस्य पश्चिमा छाया छाया शय्यासनस्य च । रजकस्य तु यत्तीर्थमलक्ष्मीस्तत्र तिष्ठति ॥३९॥
बालातपः प्रेतधूपः स्त्री वृद्धा तरुणं दधि । आयुष्कामो न सेवेत तथा सम्मार्जनीरजः ॥४०॥
गजाश्वरथधान्यानां गवाञ्चैव रजः शुभम् । अशुभञ्च विजानीयात्खरोष्ट्राजाविकेषु च ॥४१॥
गवां रजो धान्यरजः पुत्रस्याङ्गभवं रजः । एतद्रजो महाशस्तं महापातकनाशनम् ॥४२॥
अजारजः खररजो यत्तु सम्मार्जनीरजः । एतद्रजो महापापं महाकिल्बिषकारकम् ॥४३॥
शूर्पवातो नखाग्राम्बु स्नानवस्त्रमृजोदकम् । मार्जनीरेणुः केशाम्बु हन्ति पुण्यं पुराकृतम् ४४॥
विप्रयोर्विप्रवह्न्योश्च दम्पत्योः स्वामिनोस्तथा । अन्तरेण न गन्तव्यं हयस्य वृषभस्य च ॥४५॥
स्त्रीषु राजाग्निसर्पेषु स्वाध्याये शत्रुसेवने । भोगास्वादेषु विश्वासं कः प्राज्ञः कर्त्तुमर्हति ॥४६॥

न विश्वसेदविश्वस्तं विश्वस्ते नातिविश्वसेत् । विश्वासाद्भयमुत्पन्नं मूलादपि निकृन्तति ॥४७॥
वैरिणा सह सन्धाय विश्वस्तो यदि तिष्ठति । स वृक्षाग्रे प्रसुप्तो हि पतितः प्रतिबुध्यते ॥४८॥
नात्यन्तं मृदुना भाव्यं नात्यन्तं क्रूरकर्मणा । मृदुनैव मृदुं हन्ति दारुणेनैव दारुणम् ॥४९॥
नात्यन्तं सरलैर्भाव्यं नात्यन्तं मृदुना तथा । सरलास्तत्र छिद्यन्ते कुब्जास्तिष्ठन्ति पादपाः ॥५०॥
नमन्ति फलिनो वृक्षा नमन्ति गुणिनो जनाः । शुष्कवृक्षाश्च मूर्खाश्च भिद्यन्ते न नमन्ति च ॥
अप्रार्थितानि दुःखानि यथैवायान्ति यान्ति च । मार्जार इव लम्फेत तथा प्रार्थयते नरः ॥५२॥
पूर्वं पश्चाच्चरन्त्यार्य्ये सदैव बहुसम्पदः । विपरीतमनार्य्ये च यथेच्छसि तथा चर ॥५३॥
षट्कर्णो भिद्यते मन्त्रश्चतुःकर्णश्च धार्य्यते । द्विकर्णस्य तु मन्त्रस्य ब्रह्माप्येको न बुध्यते ॥५४॥
तया गवा किं क्रियते या न दोग्ध्री न गर्भिणी । कोऽर्थः पुत्रेण जातेन यो न विद्वान्न धार्मिकः ॥
एकेनापि सुपुत्रेण विद्यायुक्तेन धीमता । कुलं पुरुषसिंहेन चन्द्रेण गगनं यथा ॥५६॥
एकेनापि सुवृक्षेण पुष्पितेन सुगन्धिना । वनं सुवासितं सर्वं सुपुत्रेण कुलं यथा ॥५७॥
एको हि गुणवान्पुत्रो निर्गुणेन शतेन किम् । चन्द्रो हन्ति तमांस्येको न च ज्योतिः सहस्रशः ॥
लालयेत्पञ्च वर्षाणि दश वर्षाणि ताड़येत् । प्राप्ते तु षोड़शे वर्षे पुत्रं मित्रवदाचरेत् ॥५९॥
जायमानो हरेद्दारान्वर्द्धमानो हरेद्धनम् । म्रियमाणो हरेत्प्राणान्नास्ति पुत्रसमो रिपुः ॥६०॥
केचिन्मृगमुखा व्याघ्राः केचिद्व्याघ्रमुखा मृगाः । तत्स्वरूपपरिज्ञाने ह्यविश्वासः पदे पदे ॥६१॥
एकः क्षमावतां दोषो द्वितीयो नोपपद्यते । यदेनं क्षमया युक्तमशक्तं मन्यते जनः ॥६२॥
एतदेवानुमन्येत भोगा हि क्षणभङ्गिनः । स्निग्धेषु च विदग्धस्य मतयो वै ह्यनाकुलाः ॥६३॥
ज्येष्ठः पितृसमो भ्राता मृते पितरि शौनक । सर्वेषां स पिता हि स्यात्सर्वेषामनुपालकः ॥६४॥
कनिष्ठेषु च सर्वेषु समत्वेनानुवर्त्तते । समोपभोगजीवेषु यथैव तनयेषु च ॥६५॥
बहूनामल्पसाराणां समुदायो हि दारुणः । तृणैरावेष्टिता रज्जुस्तया नागोऽपि बध्यते ॥६६॥
अपहृत्य परस्वं हि यस्तु दानं प्रयच्छति । स दाता नरकं याति यस्यार्थस्तस्य तत्फलम् ६७॥
देवद्रव्यविनाशेन ब्रह्मस्वहरणेन च । कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥६८॥
ब्रह्मघ्ने च सुरापे च चौरे भग्नव्रते तथा । निष्कृतिर्विहिता सद्भिः कृतघ्ने नास्ति निष्कृतिः ॥
नाश्नन्ति पितरो देवाः क्षुद्रस्य वृषलीपतेः । भार्य्याजितस्य नाश्नन्ति यस्याश्चोपपतिर्गृहे ॥७०॥
अकृतज्ञमनार्य्यञ्च दीर्घरोषमनार्जवम् । चतुरो विद्धि चाण्डालान्जात्या जायेत पञ्चमः ॥
नोपेक्षितव्यो दुर्बुद्धिः शत्रुरल्पोऽप्यवज्ञया । वह्निरल्पोऽप्यसंग्राह्यः कुरुते भस्मसाजगत् ॥७२॥
नवे वयसि यः शान्तः स शान्त इति मे मतिः । धातुषु क्षीयमाणेषु शमः कस्य न जायते ७३ ।

पन्थान इव विप्रेन्द्र सर्वसाधारणः श्रियः । मदीया इति मत्वा वै न हि हर्षयुतो भव ॥७४॥
चित्तायत्तं धातुवश्यं शरीरं चित्ते नष्टे धातवो यान्ति नाशम् ।
तस्माच्चित्तं सर्वदा रक्षणीयं स्वस्थे चित्ते धातवः सम्भवन्ति ॥७५॥
इति श्रीगारुडे महापुराणे नीतिसारे चतुर्दशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ ११४ ॥

पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

कुभार्य्याञ्च कुमित्रञ्च कुराजानं कुपुत्रकम् । कुकन्याञ्च कुदेशञ्च दूरतः परिवर्जयेत् ॥ १ ॥
धर्मः प्रव्रजितस्तपः प्रचलितं सत्यञ्च दूरङ्गतं
पृथ्वी वन्ध्यफला जनाः कपटिनो लौल्ये स्थिता ब्राह्मणाः ।
मर्त्याः स्त्रीवशगाः स्त्रियश्च चपला नीचा जना उन्नताः
हा कष्टं खलु जीवितं कलियुगे धन्या जना ये मृताः ॥ २ ॥
धन्यास्ते ये न पश्यन्ति देशभङ्गं कुलक्षयम् । परचित्तगतान्दारान्पुत्रं कुव्यसने स्थितम् ॥ ३ ॥
कुपुत्रे निर्वृतिर्नास्ति कुभार्य्यायां कुतो रतिः । कुमित्रे नास्ति विश्वासः कुराज्ये नास्ति जीवितम् ॥
परान्नञ्च परस्वञ्च परशय्याः परस्त्रियः । परवेश्मनि वासश्च शक्रादपि श्रियं हरेत् ॥ ५ ॥
आलापाद्गात्रसंस्पर्शात्संसर्गात्सह भोजनात् । आसनाच्छयनाद्यानात्पापं संक्रमते नृणाम् ॥६॥
स्त्रियो नश्यन्ति रूपेण तपः क्रोधेन नश्यति । मागो दूरप्रचारेण शूद्रान्नेन द्विजोत्तमः ॥७॥
आसनादेकशय्याया भोजनात्पङ्क्तिसङ्करात् । ततः संक्रमते पापं घटाद्घट इवोदकम् ॥८॥
लालने बहवो दोषास्ताड़ने बहवो गुणाः । तस्माच्छिष्यञ्च पुत्रञ्च ताड़येन्न तु लालयेत् ॥
अध्वा जरा देहवतां पर्वतानां जलं जरा । असंभोगश्च नारीणां वस्त्राणामातपो जरा ॥१०॥
अधमाः कलिमिच्छन्ति सन्धिमिच्छन्ति मध्यमाः ।
उत्तमा मानमिच्छन्ति मानो हि महतां धनम् ॥११॥
मानो हि मूलमर्थस्य माने सति धनेन किम् । प्रभ्रष्टमानदर्पस्य किं धनेन किमायुषा ॥१२॥
अधमा धनमिच्छन्ति धनमानौ हि मध्यमाः । उत्तमा मानमिच्छन्ति मानो हि महतां धनम् ॥
वनेऽपि सिंहा न नमन्ति कर्णं बुभुक्षिता नांशनिरीक्षणञ्च ।
धनैर्विहीनाः सुकुलेषु जाता न नीचकर्माणि समारभन्ति ॥१४॥

नाभिषेको न संस्कारः सिंहस्य क्रियते वने । नित्यमूर्जितसत्त्वस्य स्वयमेव मृगेन्द्रता ॥१५॥

बणिक्प्रमादी भृतकश्च मानी भिक्षुर्विलासी ह्यधनश्च कामी ।
वराङ्गना चाप्रियवादिनी च न ते च कर्माणि समारभन्ति ॥१६॥
दाता दरिद्रः कृपणोऽर्थयुक्तः पुत्रोऽविधेयः कुजनस्य सेवा ।
परापकारेषु नरस्य मृत्युः प्रजायते दुश्चरितानि पञ्च ॥१७॥
कान्तावियोगः स्वजनापमानं ऋणस्य शेषः कुजनस्य सेवा ।
दारिद्र्यभावाद्विमुखाश्च मित्रा विनाग्निना पञ्च दहन्ति तीव्राः ॥१८॥
चिन्तासहस्रेषु च तेषु मध्ये चिन्ताश्चतस्रोऽप्यसिधारतुल्याः ।
नीचापमानं क्षुधितं कलत्रं भार्य्या विरक्ता सहजोपरोधः ॥१९॥
वश्यश्च पुत्रोऽर्थकरी च विद्या अरोगिता सज्जनसङ्गतिश्च ।
इष्टा च भार्य्या वशवर्त्तिनी च दुःखस्य मूलोद्धरणानि पञ्च ॥२०॥
कुरङ्गमातङ्गपतङ्गभृङ्गा मीना हताः पञ्चभिरेव पञ्च ।
एकः प्रमाथी स कथं न घात्यो यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च ॥२१॥

अधीरः कर्कशः स्तब्धः कुचेलः स्वयमागतः । पञ्च विप्रा न पूज्यन्ते बृहस्पतिसमा यदि ॥२२॥
आयुः कर्म चरित्रञ्च विद्या निधनमेव च । पञ्चैतानि विविच्यन्ते जायमानस्य देहिनः ॥२३॥
पर्वतारोहणे तोये गोकुले दुष्टनिग्रहे । पतितस्य समुत्थाने शस्ताः ह्येते गुणाः स्मृताः ॥२४॥
अभ्रच्छाया खले प्रीतिः परनारीषु सङ्गतिः । पञ्चैते ह्यस्थिरा भावा यौवनानि धनानि च २५॥
अस्थिरं जीवितं लोके ह्यस्थिरं धनयौवनम् । अस्थिरं पुत्रदाराद्यं धर्मः कीर्त्तिर्यशः स्थिरम् ॥
शतं जीवितमत्यल्पं रात्रिस्तस्यार्द्धहारिणी । व्याधिशोकजरायासैरर्द्धं तदपि निष्फलम् ॥२७॥
आयुर्वर्षशतं नृणां परिमितं रात्रौ तदर्द्धं हृतं तस्यार्द्धं स्थितकिञ्चिदर्द्धमधिकं बालस्य काले हृतम् ।
किञ्चिद्बन्धुवियोगदुःखमरणैर्भूपालसेवागतं शेषं वारितरङ्गगर्भचपलं मानेन किं मानिनाम् ॥२८॥
अहोरात्रोमयो लोके जरारूपेण सञ्चरेत् । मृत्युर्ग्रसति भूतानि पवनं पन्नगो यथा ॥२९॥
गच्छतस्तिष्ठतो वापि जाग्रतः स्वपतो न चेत् । सर्वसत्त्वहितार्थाय पशोरिव विचेष्टितम् ॥३०॥

अहितहितविचारशून्यबुद्धेः श्रुतिसमये बहुभिर्वितर्कितस्य ।
उदरभरणमात्रतुष्टबुद्धेः पुरुषपशोः पशोश्च को विशेषः ॥३१॥

शौर्य्ये तपसि दाने च यस्य न प्रथितं यशः । विद्यायामर्थलाभे वा मातुरुच्चार एव सः ॥३२॥

सजीवितं क्षणमपि प्रथितं मनुष्यैर्विज्ञानविक्रमयशोभिरभग्नमानैः ।
तन्नाम जीवितमिति प्रवदन्ति तज्ज्ञाः काकोऽपि जीवति चिरञ्च बलिञ्च भुङ्क्ते ॥३३॥

किं जीवितेन धनमानविवर्जितेन मित्रेण किं भवतीति सशङ्कितेन च ।
सिंहव्रतञ्चरत गच्छत मा विषादं काकोऽपि जीवति चिरञ्च बलिञ्च भुङ्क्ते ॥३४॥
यो वात्मनीह न गुरौ न च भृत्यवर्गे दीने दयां न कुरुते न च मित्रकार्य्ये ।
किं तस्य जीवितफलेन मनुष्यलोके काकोऽपि जीवति चिरञ्च बलिञ्च भुङ्क्ते ॥३५॥
यस्य त्रिवर्गशून्यानि दिनान्यायान्ति यान्ति च । स लौहकारभस्त्रेव श्वसन्नपि न जीवति ३६॥
स्वाधीनवृत्तेः साफल्यं न पराधीनवृत्तिता । ये पराधीनकर्माणो जीवन्तोऽपि च ते मृताः ३७॥
स्वपुरा वै कापुरुषाः स्वपुरो मूषिकाञ्जलिः । असन्तुष्टः कापुरुषः स्वल्पकेनापि तुष्यति ॥३८॥
अभ्रच्छाया तृणादग्निर्नीचसेवा पथे जलम् । वेश्यारागः खले प्रीतिः षडेते बुद्बुदोपमाः ॥३९॥
वाचा विहितसार्थेन लोको न च सुखायते । जीवितं मानमूलं हि माने म्लाने कुतः सुखम् ॥
अबलस्य बलं राजा बालस्य रुदित बलम् । बलं मूर्खस्य मौनत्वं तस्करस्यानृतं बलम् ॥४१॥
यथा यथा हि पुरुषः शास्त्रं समधिगच्छति । तथा तथाऽस्यमेधा स्याद्विज्ञानञ्चास्य रोचते ॥४२॥
यथा यथा हि पुरुषः कल्याणे कुरुते मतिम् । तथा तथा हि सर्वत्र श्लिष्यते लोकसुप्रियः॥४३॥
लोभप्रमादविश्वासैः पुरुषो नश्यति त्रिभिः । तस्माल्लोभो न कर्त्तव्यः प्रमादो नो न विश्वसेत् ॥
तावद्भयस्य भेतव्यं यावद्भयमनागतम् । उत्पन्ने तु भये तीव्रे स्थातव्यं वै ह्यभीत्वत् ॥४५॥
ऋणशेषञ्चाग्निशेषं व्याधिशेषं तथैव च । पुनः पुनः प्रवर्द्धन्ते तस्माच्छेषं न कारयेत् ॥४६॥
कृते प्रतिकृतं कुर्य्याद्धिंसिते प्रतिहिंसितम् । न तत्र दोषं पश्यामि दुष्टे दोषं समाचरेत् ॥४७॥
परोक्षे कार्य्यहन्तारं प्रत्यक्षे प्रियवादिनम् । वर्जयेत्तादृशं मित्रं मायामयमरिन्तथा ॥४८॥
दुर्जनस्य हि सङ्गेन सुजनोऽपि विनश्यति । प्रसन्नमपि पानीयं कर्दमैः कलुषीकृतम ॥४९॥
सम्यग्भुङ्क्ते जनः सो हि द्विजायार्था हि यस्य वै । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन द्विजः पूज्यः प्रयत्नतः ॥

तद्भुज्यते यद्द्विजभुज्यशेषं स बुद्धिमान्यो न करोति पापम् ।
तत्सौहृदं यत्क्रियते परोक्षे दम्भैर्विना यः क्रियते स धर्मः ॥५१॥
न सा सभा यत्र न सन्ति वृद्धा वृद्धा न ते ये न वदन्ति धर्मम् ।
धर्मः स नो यत्र न सत्यमस्ति नैतत्सत्यं यच्छलेनानुविद्धम् ॥५२॥

ब्राह्मणोऽपि मनुष्याणामादित्यश्चैव तेजसाम् । शिरोऽपि सर्वगात्राणां व्रतानां सत्यमुत्तमम् ५३।

तन्मङ्गलं यत्र मनः प्रसन्नं तज्जीवनं यन्न परस्य सेवा ।
तदर्जितं यत्स्वजनेन भुक्तं तद्गर्जितं यत्समरे रिपूणाम् ॥ ५४ ॥

सा स्त्री या न मदं कुर्यात्स सुखी तृष्णयोज्झितः । तन्मित्रं यत्र विश्वासः पुरुषः स जितेन्द्रियः

तत्र मुक्तादरस्नेहो विलुप्तं यत्र सौहृदम्। तदेव केवलं श्लाघ्यं यस्यात्मा क्रियते स्तुतौ ५६॥
नदीनामग्निहोत्राणां भारतस्य कुलस्य च। मूलान्वेषो न कर्त्तव्यो मूलाद्दोषेण हीयते ॥५७॥
लवणजलान्ता नद्यः स्त्रीभेदान्तश्च मैथुनम्। पैशुन्यं जनवार्त्तान्तं वित्तं दुःखकृतान्तकम् ॥५८॥
राज्यश्रीर्ब्रह्मशापान्ता पापान्तं ब्रह्मवर्चसम्। आचारं घोषवासान्तं कुलस्यान्तं स्त्रियः प्रभोः॥
सर्वे क्षयान्ता निलयाः पतनान्ताः समुच्छ्रिताः। संयोगा विप्रयोगान्ता मरणान्तं हि जीवितम्॥
यदीच्छेत्पुनरागन्तुं नातिदूरमनुव्रजेत्। उदकान्तान्निवर्त्तेत स्निग्धवर्णाच्च पादपात् ॥६१॥
अनायके न वस्तव्यं न वा च बहुनायके। स्त्रीनायके न वस्तव्यं तथा च बालनायके ॥६२॥
पिता रक्षति कौमारे भर्त्ता रक्षति यौवने। पुत्रस्तु स्थविरे काले न स्त्री स्वातन्त्र्यमर्हति ॥६३॥
त्यजेद्वन्ध्यामष्टमेऽब्दे नवमे तु मृतप्रजाम्। एकादशे स्त्रीजननीं सद्यश्चाप्रियवादिनीम् ॥६४॥
अनर्थित्वान्मनुष्याणां भिया परिजनस्य च। अर्थादपेतमर्य्यादास्त्रयस्तिष्ठन्ति भर्त्तृषु ॥६५॥
अश्वं श्रान्तं गजं मत्तं गावः प्रथमसूतिकाः। अनूदके च मण्डूकान्प्राज्ञो दूरेण वर्जयेत् ॥६६॥

अर्थातुराणां न सुहृन्न बन्धुः कामातुराणां न भयं न लज्जा।
चिन्तातुराणां न सुखं न निद्रा क्षुधातुराणां लवणं न तेजः ॥६७॥

कुतो निद्रा दरिद्रस्य परप्रेष्यचरस्य च। परनारीप्रसक्तस्य परद्रव्यहरस्य च ॥६८॥
सुखं स्वपित्यनृणवान्व्याधिमुक्तश्च यो नरः। सावकाशस्तु वै भुङ्क्ते यस्तु दारैर्न सङ्गतः ॥६९॥
अम्भसः परिमाणेन उन्नतं कमलं भवेत्। स्वस्वामिना बलवता भृत्यो भवति गर्वितः ॥७०॥
स्थानस्थितस्य पद्मस्य मित्रौ वरुणभास्करौ। स्थानच्युतस्य तस्यैव क्लेशशोषणकारकौ ॥७१॥
पदे स्थितस्य मित्रा ये ते तस्य रिपुतां गताः। भानोः पद्मे जले प्रीतिः स्थलोद्धरणशोषणः॥

स्थानस्थितानि पूज्यन्ते पूज्यन्ते च पदे स्थिताः।
स्थानभ्रष्टा न पूज्यन्ते केशा दन्ता नखा नराः ॥७३॥
आचारः कुलमाख्याति वपुराख्याति भाषितम्।
सम्भ्रमः स्नेहमाख्याति वपुराख्याति भोजनम् ॥७४॥

वृथा वृष्टिः समुद्रस्य तृप्तस्य भोजनं वृथा। वृथा दानं समृद्धस्य नीचस्य सुकृतं यथा ॥७५॥
दूरस्थोऽपि समीपस्थो यो यस्य हृदये स्थितः। हृदयादपि निष्क्रान्तः समीपस्थोऽपि दूरतः ७६॥
मुखभङ्गः स्वरो दीनो गात्रस्वेदो महद्भयम्। मरणे यानि चिह्नानि तानि चिह्नानि याचतः॥
कुब्जस्य कीटघातस्य वातान्निष्कासितस्य च। शिखरे वसतस्तस्य वरं जन्म न याचितम् ७८॥
जगत्पतिर्हि याचित्वा विष्णुर्वामनतां गतः। कोऽन्योऽधिकतरस्तस्य योऽर्थी याति न लाघवम्॥

माता शत्रुः पिता वैरी बाला येन न पाठिताः । सभामध्ये न शोभन्ते हंसमध्ये बका यथा८०॥
विद्या नाम कुरूपरूपमधिकं विद्यातिगुप्तं धनं विद्या साधुकरी जनप्रियकरी विद्या गुरूणां गुरुः ।
विद्या बन्धुजनार्त्तिनाशनकारी विद्या परं दैवतं विद्या राजसु पूजिता हि मनुजो विद्याविहीनः पशुः॥
गृहे चाभ्यन्तरे द्रव्यं लग्नञ्चैव तु दृश्यते । अशेषं हरणीयञ्च विद्या न ह्रियते परैः ॥८२॥
शौनकाय नीतिसारं विष्णुः सर्वव्रतानि च । कथयामास वै पूर्वं तत्र शुश्राव शङ्करः ॥
शङ्कराच्च श्रुतो व्यासो व्यासादस्माभिरेव च ॥८३॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे नीतिसारे पञ्चदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११५॥

षोडशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

व्रतानि व्यास वक्ष्यामि हरिर्यैः सर्वदो भवेत् । सर्वमासर्क्षतिथिषु वारेषु हरिरर्चितः ॥ १ ॥
एकभक्तेन नक्तेन उपवासफलादिना । ददाति धनधान्यादि पुत्रराज्यजयाशया ॥ २ ॥
वैश्वानरः प्रतिपदि कुबेरः पूजितोऽर्थदः । उपोष्य ब्रह्मा प्रतिपद्यर्चितः श्रीस्तथाश्विनीम् ॥ ३ ॥
द्वितीयायां यमो लक्ष्मीनारायण इहार्थदः । तृतीयायां त्रिदेवांश्च गौरीविघ्नेशशङ्करान् ॥ ४ ॥
चतुर्थ्याञ्च चतुर्व्यूहः पञ्चम्यामर्चितो हरिः । कार्त्तिकेयो रविः षष्ठ्यां सप्तम्यां भास्करोऽर्थदः ॥
दुर्गाष्टम्यां नवम्याञ्च मातरोऽथ दिशोऽर्थदाः । दशम्याञ्च यमश्चन्द्र एकादश्यामृषीन्यजेत् ६ ॥
द्वादश्याञ्च हरिः कामं त्रयोदश्यां महेश्वरः । चतुर्दश्यां पञ्चदश्यां ब्रह्मा च पितरोऽर्थदाः ॥७॥
अमावस्यां पूजनीयाश्च वारा वै भास्करादयः । नक्षत्राणि च योगाश्च पूजिताः सर्वदायकाः ॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे तिथ्यादिव्रतकथनं नाम
षोडशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११६॥

सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

मार्गशीर्षे सिते पक्षे व्यासानङ्गत्रयोदशी । मल्लिकाजं दन्तकाष्ठं धुस्तूरैः पूजयेच्छिवम् ॥१॥
अनङ्गायेति नैवेद्यैर्मधु प्राश्याथ पौषके । योगेश्वरं पूजयेच्च बिल्वपत्रैः कदम्बजम् ॥
दन्तकाष्ठञ्चन्दनादि नैवेद्यं शष्कुलीं ददेत् ॥ २ ॥

माघे नटेश्वरायार्च्य कुन्दैर्मौक्तिकमालया । प्लक्षेण दन्तकाष्ठञ्च नैवेद्यं पूरिका मुने ॥ ३ ॥
वीरेश्वरं फाल्गुने तु पूजयेत्तु मरूवकैः । शर्कराशाकमण्डांश्च चूतजं दन्तधावनम् ॥ ४ ॥
चैत्रे यजेत्सुरूपाय कर्पूरं प्राशयेद्दितिं । दन्तधावनं वटजं नैवेद्यं शष्कुलीं ददेत् ॥ ५ ॥
पूजा च मोदकैः शम्भोर्वैशाखेऽशोकपुष्पकैः । महारूपाय नैवेद्यं गुड़भक्तं ह्युदुम्बरम् ॥ ६ ॥
दन्तकाष्ठं प्राशयेच्च ददेज्जातीफलं तथा । प्रद्युम्नं पूजयेज्ज्येष्ठे चम्पकैर्बिल्वजं ददेत् ॥ ७ ॥
लवङ्गाशन्तथाषाढ़े उमाभद्रेतिशासनः । अगुरुं दन्तकाष्ठञ्च तमपामार्गकैर्यजेत् ॥ ८ ॥
श्रावणे करवीरञ्च शम्भवे शूलपाणये । गन्धासनो घृताद्यैश्च करवीरजशोधनम् ॥ ९ ॥
सद्योजातं भाद्रपदे वकुलैः पूपकैर्यजेत् । गन्धर्वाशो मदनजमाश्विने च सुराधिपम् ॥१०॥
चम्पकैः स्वर्णवाय्यादौ यजेन्मोदकसंप्रदः । खादिरं दन्तकाष्ठञ्च कर्त्तिके रुद्रमर्चयेत् ॥११॥
वदर्य्या दन्तकाष्ठञ्च दशनो दशमाशनः । क्षीरशाकप्रदः पद्मैरब्दान्ते शिवमर्चयेत् ॥१२॥
रतियुक्तमनङ्गञ्च स्वर्णमण्डलसंस्थितम् । गन्धाद्यैर्दशसाहस्रं तिलव्रीह्यादि होमयेत् ॥१३॥
जागरं गीतवादित्रं प्रभातेऽभ्यर्च्य वेदयेत् । द्विजाय शय्यां पात्रञ्च छत्रं वस्त्रमुपानहौ ॥१४॥
गान्दिजं भोजयेद्भक्त्या कृतकृत्यो भवेन्नरः । एतदुद्यापनं सर्वं व्रतेषु ध्येयमीदृशम् ।
फलञ्च श्रीयुतारोग्यसौभाग्यसर्वभाग्भवेत् ॥ १५ ॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे अनङ्गत्रयोदशीव्रतं नाम सप्तदशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११७॥

अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

व्रतं कैवल्यशमनमखण्डद्वादशीं वदे । मार्गशीर्षे सिते पक्षे गव्याशी समुपोषितः ॥ १ ॥
द्वादश्यां पूजयेद्विष्णुं दद्यान्मासचतुष्टयम् । पञ्चव्रीहियुतं पात्रं विप्रायेदमुदाहरेत् ॥ २ ॥
सप्तजन्मनि यत्किञ्चिन्मयाऽखण्डव्रतं कृतम् । भगवंस्त्वत्प्रसादेन तदखण्डमिहास्तु मे ॥ ३ ॥
यथाऽखण्डं जगत्सर्वं त्वमेव पुरुषोत्तमः । तथाखिलान्यखण्डानि व्रतानि मम सन्त्युत ॥ ४ ॥
सक्तुपात्राणि चैत्रादौ श्रावणादौ घृतान्वितान् । व्रतकृद् व्रतपूर्णन्तु स्त्रीपुत्रस्वर्गभाग्भवेत् ॥५॥
इति श्रीगारुड़े महापुराणे अखण्डद्वादशीव्रतं नाम अष्टादशाधिकशततमोऽध्यायः ॥११८॥

ऊनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अगस्त्यार्घ्यव्रतं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायकम् । अप्राप्ते भास्करे कन्यां सति भागे त्रिभिर्दिनैः ॥१॥
अर्घ्यं दद्यादगस्त्याय मूर्त्तिं संपूज्य वै मुने । काशपुष्पमयीं कुम्भे प्रदोषे कृतजागरः ॥ २ ॥
दध्यक्षताद्यैः संपूज्य उपोष्य फलपुष्पकैः । पञ्चवर्णसमायुक्तं हेमरौप्यसमन्वितम् ॥ ३ ॥
सप्तधान्ययुतं पात्रं दधिचन्दनचर्चितम् । अगस्त्यः खलमानेति मन्त्रेणार्घ्यं प्रदापयेत् ॥ ४ ॥
काशपुष्पप्रतीकाश अग्निमारुतसम्भव । मित्रावरुणयोः पुत्र कुम्भयोने नमोऽस्तु ते ॥ ५ ॥
शूद्रस्त्र्यादिरनेनैव त्यजेद्धान्यं फलं रसम् । दद्याद्द्विजातये कुम्भं सहिरण्यं सदक्षिणम् ॥
भोजयेच्च द्विजान्सप्त वर्षान्कृत्वा तु सर्वभाक् ॥ ६ ॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे अगस्त्यार्घ्यव्रतं नाम ऊनविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥११९॥

विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

रम्भातृतीयां वक्ष्ये च सौभाग्यश्रीसुतादिदाम् । मार्गशीर्षे सिते पक्षे तृतीयायामुपोषितः ॥ १ ॥
गौरीं यजेद्बिल्वपत्रैः कुशोदककरस्ततः । कादम्बदो गिरिसुतां पौषे मरुवकैर्यजेत् ॥ २ ॥
कर्पूरादः कृशरदो मल्लिकादन्तकाष्ठकृत् । माघे सुभद्रां कह्लारैर्घृताशो मण्डकप्रदः ॥ ३ ॥
गोतीमयं दन्तकाष्ठं फाल्गुने गोमतीं यजेत् । कुन्दैः कृत्वा दन्तकाष्ठं जीवाशः शष्कुलीप्रदः ॥
विशालाक्षीं मदनकैश्चैत्रे कृशरसम्प्रदः । दधिप्राशो दन्तकाष्ठं तगरं श्रीमुखीं यजेत् ॥
वैशाखे कर्णिकारैश्च अशोकाशो रदप्रदः ॥ ५ ॥
ज्यैष्ठे नारायणीमर्चेच्छतपत्रैश्च खण्डदः । लवङ्गाशो भवेदेव आषाढे माधवीं यजेत् ॥ ६ ॥
तिलाशो बिल्वपत्रैश्च क्षीरान्नवटकप्रदः । औदुम्बरं दन्तकाष्ठं तगर्य्या श्रावणे श्रियम् ॥ ७ ॥
दन्तकाष्ठं मल्लिकाया क्षीरदो ह्युत्तमां यजेत् । पद्मैर्यजेद्भाद्रपदे शृङ्गदाशो गुड़ादिदः ॥ ८ ॥
रात्रपुत्रीश्चाश्वयुजे जवापुष्पैश्च जीरकम् । प्राशयेन्निशि नैवेद्यैः कृशरैः कार्त्तिके यजेत् ॥ ९ ॥
जातीपुष्पैः पद्मजाञ्च पञ्चगव्याशनो यजेत् । घृतोदनञ्च वर्षान्ते सपत्नीकान्द्विजान्यजेत् ॥१०॥
उमामहेश्वरं पूज्य प्रदद्याच्च गुड़ादिकम् । वस्त्रञ्छत्रसुवर्णाद्यै रात्रौ च कृतजागरः ।
गीतावाद्यैर्ददेत्प्रातर्गवाद्यं सर्वमाप्नुयात् ॥११॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे रम्भातृतीयाव्रतं नाम विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२०॥

एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

चातुर्मास्यव्रतान्यूचे एकादश्यां समाचरेत् । आषाढ्यां पौर्णमास्यां वा सर्वेण हरिमर्च्य च ॥१॥
इदं व्रतं मया देव गृहीतं पुरतस्तव । निर्विघ्नं सिद्धिमाप्नोतु प्रसन्ने त्वयि केशव ॥ २ ॥
गृहीतेऽस्मिन्व्रते देव यद्यपूर्णे म्रियाम्यहम् । तन्मे भवतु सम्पूर्णं त्वत्प्रसादाज्जनार्दन ॥ ३ ॥
एवमभ्यर्च्य गृह्णीयाद्व्रतार्चनजपादिकम् । सर्वाघश्च क्षयं याति चिकीर्षेद्यो हरेर्व्रतम् ॥४॥
स्नात्वा यश्चतुरो मासानेकभक्तेन पूजयेत् । विष्णुं स याति विष्णोर्वै लोकं मलविवर्जितम् ॥५॥
मद्यमांससुरात्यागी वेदविद्धरिपूजनात् । तैलवर्जी विष्णुलोकं विष्णुभाक्कृच्छ्रपादकृत् ॥६॥
एकरात्रोपवासाच्च देवो वैमानिको भवेत् । श्वेतद्वीपं त्रिरात्रात्तु व्रजेत्षष्ठान्नकृन्नरः ॥७॥
चान्द्रायणाद्धरेर्धाम लभेन्मुक्तिमयाचिताम् । प्राजापत्यं विष्णुलोकं पराकव्रतकृद्धरिम् ॥८॥
सक्तुयावकभिक्षाशी पयोदधिघृताशनः । गोमूत्रयावकाहारः पञ्चगव्यकृताशनः ।
शाकमूलफलत्यागी रसवर्जी च विष्णुभाक् ॥९॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे चातुर्मास्यव्रतानि नाम
एकविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२१॥

द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

व्रतं मासोपवासाख्यं सर्वोत्कृष्टं वदामि ते । वानप्रस्थो यतिर्नारी कुर्यान्मासोपवासकम् ॥१॥
आश्विनस्य सिते पक्षे एकादश्यामुपोषितः । व्रतमेतत्तु गृह्णीयाद्यावत्त्रिंशद्दिनानि तु ॥२॥
अद्यप्रभृत्यहं विष्णो यावदुत्थानकं तव । अर्चये त्वामनश्नंस्तु दिनानि त्रिंशदेव तु ॥३॥
कार्त्तिकाश्विनयोर्विष्णो द्वादश्योः शुक्लयोरहम् । म्रिये यद्यन्तराले तु व्रतभङ्गो न मे भवेत् ॥४॥
हरिं यजेत्त्रिषवणस्नायी गन्धादिभिर्व्रती । गात्राभ्यङ्गं गन्धलेपं देवतायतने त्यजेत् ॥५॥
द्वादश्यामथ संपूज्य प्रदद्याद्द्विजभोजनम् । ततश्च पारणं कुर्याद्धरेर्मासोपवासकृत् ॥६॥
दुग्धादिप्राशनं कुर्यात्व्रतस्थो मूर्च्छितोऽन्तरा । दुग्धाद्यैर्न व्रतं नश्येद्भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ॥७॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे मासोपवासाख्यव्रतं नाम द्वाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२२॥

त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

व्रतानि कार्त्तिके वक्ष्ये स्नात्वा विष्णुं प्रपूजयेत् । एकभक्तेन नक्तेन मासं वायाचितेन वा ॥१॥
दुग्धशाकफलाद्यैर्वा उपवासेन वा पुनः । सर्वपापविनिर्मुक्तः प्राप्तकामो हरिं व्रजेत् ॥२॥
सदा हरेर्व्रतं श्रेष्ठं ततः स्याद्दक्षिणायने । चातुर्मास्ये ततस्तस्मात्कार्त्तिके भीष्मपञ्चकम् ॥३॥
ततः श्रेष्ठव्रतं शुक्लस्यैकादश्यां समाचरेत् । स्नायात्त्रिकालं पित्रादीन्यवाद्यैरर्चयेद्धरिम् ॥४॥
यजेन्मौनी घृताद्यैश्च पञ्चगव्येन वारिभिः । स्नापयित्वाऽथ कर्पूरसुखैश्चैवानुलेपयेत् ॥५॥
घृताक्तगुग्गुलैर्धूपं द्विजः पञ्चदिनं दहेत् । नैवेद्यं परमान्नन्तु जपेदष्टोत्तरं शतम् ॥६॥
ॐ नमो वासुदेवाय घृतव्रीहितिलादिकम् । अष्टाक्षरेण मन्त्रेण स्वाहान्तेन तु होमयेत् ॥७॥
प्रथमेऽह्नि हरेः पादौ यजेत्पद्मैर्द्वितीयके । बिल्वपत्रैर्जानुदेशं नाभिं गन्धेन चापरे ॥८॥
स्कन्धौ बिल्वजवाभिश्च पञ्चमेऽह्नि शिरोऽर्चयेत् । मालत्या भूमिशायी स्याद्गोमयं प्राशयेत्क्रमात् ॥
गोमूत्रं क्षीरदधि च पञ्चमे पञ्चगव्यकम् । नक्तं कुर्यात्पञ्चदश्यां व्रती स्याद्भुक्तिमुक्तिभाक् ॥१०॥
एकादशीव्रतं नित्यं तत्कुर्यात्पक्षयोर्द्वयोः । अघौघनरकं हन्यात्सर्वदं विष्णुलोकदम् ॥११॥
एकादशी द्वादशी च निशान्ते च त्रयोदशी । नित्यमेकादशी यत्र तत्र सन्निहितो हरिः ॥१२॥
दशम्येकादशी यत्र तत्रस्थाश्चासुरादयः । द्वादश्यां पारणं कुर्यात्सूतके मृतके चरेत् ॥१३॥
चतुर्दशी प्रतिपदि पूर्वमिश्रामुपावसेत् । पौर्णमास्याममावास्यां प्रतिपन्मिश्रितां मुने ॥१४॥
द्वितीयां तृतीयामिश्रां तृतीयाञ्चाप्युपावसेत् । चतुर्थ्या सङ्गतां नित्यं चतुर्थीञ्चानया युताम् ॥
पञ्चमीं षष्ठीसंयुक्तां षष्ठ्या युक्ताञ्च पञ्चमीम् ॥१५॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे भीष्मपञ्चकादिव्रतं नाम त्रयोविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२३॥

चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

शिवरात्रिव्रतं वक्ष्ये कथाञ्च सर्वकामदम् । यथा च गौरी भूतेशं पृच्छति स्म परं व्रतम् ॥१॥

ईश्वर उवाच

माघफाल्गुनयोर्मध्ये कृष्णा या तु चतुर्दशी । तस्यां जागरणाद्रुद्रः पूजितो भुक्तिमुक्तिदः ॥२॥
कामयुक्तो हरिः पूज्यो द्वादश्यामिव केशवः । उपोषितैः पूजितः सन्नरकात्तारयेत्तथा ॥३॥

निषादश्चार्बुदे राजा पापी सुन्दरसेनकः । स कुक्कुरैः समायुक्तो मृगान्हन्तुं वनं गतः ॥४॥
मृगादिकमसंप्राप्य क्षुत्पिपासार्दितो गिरौ । रात्रौ तडागतीरेषु निकुञ्जे जाग्रदास्थितः ॥५॥
तत्रास्ति लिङ्गं संरक्षञ्छरीरञ्चाक्षिपत्ततः । पर्णानि चापतन्मूर्ध्नि लिङ्गस्यैव न जानतः ॥६॥
तेन धूलिनिरोधाय क्षिप्तं नीरञ्च लिङ्गके । शरः प्रमादेनैकस्तु प्रच्युतः करपल्लवात् ॥७॥
जानुभ्यामवनीं गत्वा लिङ्गं स्पृष्ट्वा गृहीतवान् । एवं स्नानं स्पर्शनञ्च पूजनं जागरोऽभवत् ॥८॥
प्रातर्गृहागतो भार्य्यादत्तान्नं भुक्तवान्स च । काले मृतो यमभटैः पाशैर्बद्ध्वा तु नीयते ॥९॥
तदा मम गणैर्युद्धे जित्वा मुक्तीकृतः स च । कुक्कुरेण सहैवाभूद्गणो मत्पार्श्वगोऽमलः ॥१०॥
एवमज्ञानतः पुण्यं ज्ञानात्पुण्यमथाक्षयम् । त्रयोदश्यां शिवं पूज्य कुर्य्यात्तु नियमं व्रती ॥११॥
प्रातर्देव चतुर्दश्यां जागरिष्याम्यहं निशि । पूजां दानं तपो होमं करिष्याम्यात्मशक्तितः ॥१२॥
चतुर्दश्यां निराहारो भूत्वा शम्भो परेऽहनि । भोक्ष्येऽहं भुक्तिमुक्त्यर्थं शरणं मे भवेश्वर ॥१३॥
पञ्चगव्यामृतैः स्नाप्य अन्तकाले गुरुं श्रितः । ॐ नमो नमः शिवाय गन्धाद्यैः पूजयेद्धरम् ॥
तिलतण्डुलव्रीहींश्च जुहुयात्सघृतं चरुम् । हुत्वा पूर्णाहुतिं दत्त्वा शृणुयाद्गीतसंकथाम् ॥१५॥
अर्द्धरात्रे त्रियामे च चतुर्थे च पुनर्यजेत् । मूलमन्त्रं तथा जप्त्वा प्रभाते तु समापयेत् ॥१६॥
अविघ्नेन व्रतं देव त्वत्प्रसादान्मयार्चितम् । क्षमस्व जगतां नाथ त्रैलोक्याधिपते हर ॥१७॥
यन्मयाद्य कृतं पुण्यं यद्रुद्रस्य निवेदितम् । त्वत्प्रसादान्मया देव व्रतमद्य समापितम् ॥१८॥
प्रसन्नो भव मे श्रीमन्गृहं प्रति च गम्यताम् । त्वदालोकनमात्रेण पवित्रोऽस्मि न संशयः ॥
भोजयेद्ध्याननिष्ठांश्च वस्त्रछत्रादिकं ददेत् ॥१९॥
देवादिदेव भूतेश लोकानुग्रहकारक । यन्मया श्रद्धया दत्तं प्रीयतां तेन मे प्रभुः ॥२०॥
इति समाप्य च व्रती कुर्य्याद्द्वादशवार्षिकम् । कीर्त्तिश्रीपुत्रराज्यादि प्राप्य शैवं पुरं व्रजेत्२१॥
द्वादशेष्वपि मासेषु प्रकुर्य्यादिह जागरम् । व्रती द्वादश संभोज्य दीपदः स्वर्गमाप्नुयात् ॥२२॥
इति श्रीगारुडे महापुराणे शिवरात्रिव्रतं नाम चतुर्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२४॥

पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

पितामह उवाच

मान्धाता चक्रवर्त्यासीदुपोष्यैकादशीं नृपः । एकादश्यां न भुञ्जीत पक्षयोरुभयोरपि ॥१॥
दशम्येकादशीमिश्रा गान्धार्य्या समुपोषिता । तस्याः पुत्रशतं नष्टं तस्मात्तां परिवर्जयेत् ॥२॥

दशम्येकादशी यत्र तत्र सन्निहितो हरिः । बहुवाक्यविरोधेन सन्देहो जायते यदा ॥३॥
द्वादशी तु तदा ग्राह्या त्रयोदश्यान्तु पारणम् । एकादशी कलापि स्यादुपोष्या द्वादशी तथा ॥
एकादशी द्वादशी च विशेषेण त्रयोदशी । त्रिमिश्रा सा तिथिर्ग्राह्या सर्वपापहरा शुभा ॥५॥
एकादशीमुपोष्यैव द्वादशीमथवा द्विज । त्रिमिश्राञ्चैव कुर्वीत न दशम्या युतां क्वचित् ॥६॥
रात्रौ जागरणं कुर्वन्पुराणश्रवणं नृपः । गदाधरं पूजयंश्च उपोष्यैकादशीद्वयम् ॥
रुक्माङ्गदो ययौ मोक्षमन्ये चैकादशीव्रतम् ॥७॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे एकादशीमाहात्म्यं नाम पञ्चविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२५॥

षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

येनार्चनेन वै लोको जगाम परमां गतिम् । तमर्चनं प्रवक्ष्यामि भुक्तिमुक्तिकरं परम् ॥१॥
सामान्यमण्डलं न्यस्य धातारं द्वारदेशतः । विधातारं तथा गङ्गां यमुनाञ्च महानदीम् ॥२॥
द्वारश्रियञ्च दण्डञ्च प्रचण्डं वास्तुपूरुषम् । मध्ये चाधारशक्तिञ्च कूर्मञ्चानन्तमर्चयेत् ॥३॥
भूमिं धर्मं तथा ज्ञानं वैराग्यैश्वैर्य्यमेव च । अधर्मादींश्च चतुरः कन्दनालञ्च पङ्कजम् ॥४॥
कर्णिकां केशरं सत्त्वं राजसन्तामसं गुणम् । सूर्य्यादिमण्डलान्येव विमलाद्याश्च शक्तयः ॥५॥
दुर्गां गणं सरस्वतीं क्षेत्रपालञ्च कोणके । आसनं मूर्त्तिमभ्यर्च्य वासुदेवं बलं स्मरम् ॥६॥
अनिरुद्धं महात्मानं नारायणमथार्चयेत् । हृदयादीनि चाङ्गानि शङ्खादीन्यायुधानि च ॥७॥
श्रियं पुष्टिञ्च गरुड़ं गुरुं परगुरुं यजेत् । इन्द्रादीन्दिक्ष्वधोनागमूर्ध्वं ब्रह्माणमर्चयेत् ॥८॥
विश्वक्सेनमथैशान्यां प्रोक्तं पूजनमागमे । सकृदभ्यर्चितो देवो येनैवं विधिपूर्वकम् ॥९॥
न तस्य सम्भवो भूयः संसारेऽस्मिन्महात्मनः । पुण्डरीकाय संपूज्य ब्रह्माणञ्च गदाधरम् ॥१०॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे षड्विंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२६॥

सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

माघमासे शुक्लपक्षे सूर्य्यर्क्षेण युता पुरा । एकादशी तथा चैका भीमेन समुपोषिता ॥ १ ॥

आश्चर्य्यन्तु व्रतं कृत्वा पितॄणामनृणोऽभवत् । भीमद्वादशी विख्याता प्राणिनां पुण्यवर्द्धिनी ॥
नक्षत्रेण विनाप्येषा ब्रह्महत्यादि नाशयेत् । विनिहन्ति महापापं कुनृपो विषयं यथा ॥ ३ ॥
कुपुत्रस्तु कुलं यद्वत्कुभार्य्या च पतिं यथा । अधर्मश्च यथा धर्मः कुमन्त्री च यथा नृपम् ४ ॥
अज्ञानेन यथा ज्ञानं शौचताशौचतां यथा । अश्रद्धया यथा श्राद्धं सत्यञ्चैवानृतैर्यथा ॥ ५ ॥
हिमं यथोष्णमाहन्यादनर्थं चार्थसञ्चयः । यथा प्रकीर्त्तनाद्दानं तपो वै विस्मयाद्यथा ॥ ६ ॥
अशिक्षया यथा पुत्रो गावो दूरगतैर्यथा । क्रोधेन च यथा शान्तिर्यथा वित्तमवर्द्धनात् ॥ ७ ॥
ज्ञानेनैव यथा विद्या निष्कामेन यथा फलम् । तथैव पापनाशाय प्रोक्तेयं द्वादशी शुभा ॥ ८ ॥
ब्रह्महत्या सुरापानं स्तेयं गुर्वङ्गनागमः । युगपदुपजानाति न निहन्ति त्रिपुष्करम् ॥ ९ ॥
न चापि नैमिषं क्षेत्रं कुरुक्षेत्रं प्रभासकम् । कालिन्दी यमुना गङ्गा न चैव न सरस्वती ॥१०॥
न चैव सर्वतीर्थानि एकादश्याः समो न हि । न दानं न जपो होमो न चान्यं सुकृतं क्वचित् ॥
एकतः पृथिवीदानमेकतो हरिवासरः । ततोऽप्येका महापुण्या इयमेकादशी वरा ॥१२॥
अस्मिन्वराहपुरुषं कृत्वा देवन्तु हाटकम् । घटोपरि नवे पात्रे कृत्वा वै ताम्रभाजने ॥१३॥
सर्व्वबीजभृतेविन्वाः सितवस्त्रावगुण्ठिते । सहिरण्यप्रदीपाद्यैः कृत्वा पूजां प्रयत्नतः ॥१४॥
वराहाय नमः पादौ क्रोडाकृति नमः कटिम् । नाभिं गभीरघोषाय उरः श्रीवत्सधारिणे ॥१५॥
बाहुं सहस्रशिरसे ग्रीवां सर्वेश्वराय च । मुखं सर्वात्मने पूज्यं ललाटं प्रभवाय च ॥१६॥
केशाः शतमयूखाय पूज्या देवस्य चक्रिणः । विधिना पूजयित्वा तु कृत्वा जागरणं निशि १७॥
श्रुत्वा पुराणं देवस्य माहात्म्यप्रतिपादकम् । प्रातर्विप्राय दत्त्वा च याचकाय शुभाय तत् १८॥
कनकक्रोड़सहितं सन्निवेद्य परिच्छदम् । पश्चात्तु पारणं कुर्य्यान्नातितृप्तः सकृद्व्रतः ॥१९॥
एवं कृत्वा नरो विद्वान्न भूयः स्तनपो भवेत् । उपोष्यैकादशीं पुण्यां मुच्यते वै ऋणत्रयात् ॥
मनोऽभिलषितावाप्तिः कृत्वा सर्वव्रतादिकम् ॥२०॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे एकादशीमाहात्म्यं नाम सप्तविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२७॥

अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

व्रतानि व्यास वक्ष्यामि यैस्तुष्टः सर्वदो हरिः । शास्त्रोदितो हि नियमो व्रतं तच्च तपो मतम् १॥
नियमास्तु विशेषाः स्युर्व्रतान्दस्य यमादयः । नित्यं त्रिषवणं स्नायादधःशायी जितेन्द्रियः ॥

स्त्रीशूद्रपतितानां तु वर्जयेदभिभाषणम् । पवित्राणि च पञ्चैव जुहुयाच्चैव शक्तितः ॥ ३ ॥
कृच्छ्राण्येतानि सर्वाणि चरेत्सुकृतवान्नरः । केशानां रक्षणार्थन्तु द्विगुणं व्रतमाचरेत् ॥ ४ ॥
कांस्यं माषं मसूरञ्च चणकं कोरदूषकम् । शाकं मधु परान्नञ्च वर्जयेदुपवासवान् ॥ ५ ॥
पुष्पालङ्कारवस्त्राणि धूपगन्धानुलेपनम् । उपवासेन दुष्येत्तु दन्तधावनमञ्जनम् ॥ ६ ॥
दन्तकाष्ठं पञ्चगव्यं कृत्वा प्रातर्व्रतञ्चरेत् । असकृज्जलपानाच्च ताम्बूलस्य च भक्षणात् ॥
उपवासः प्रदुष्येत दिवास्वप्नाच्चमैथुनात् ॥ ७ ॥
क्षमा सत्यं दया दानं शौचमिन्द्रियनिग्रहः । देवपूजाग्निहवने सन्तोषास्तेयमेव च ॥ ८ ॥
सर्वव्रतेष्वयं धर्मः सामान्यो दशधा स्मृतः । नक्षत्रदर्शनान्नक्तमनक्तं निशि भोजनम् ॥ ९ ॥
गोमूत्रञ्च पलं दद्यादर्द्धाङ्गुष्ठन्तु गोमयम् । क्षीरं सप्तपलं दद्याद्दध्नश्चैव पलत्रयम् ॥१०॥
घृतमेकपलं दद्यात्पलमेकं कुशोदकम् । गायत्र्या चैव गन्धेति आप्यायस्व दधिग्रहः ॥
तेजोऽसीति च देवस्य ब्रह्मकृच्छव्रतं चरेत् ॥११॥
अग्न्याधानं प्रतिष्ठान्तु यज्ञदानव्रतानि च । वेदव्रतवृषोत्सर्गचूडाकरणमेखलाः ॥
माङ्गल्यमभिषेकञ्च मलमासे विवर्जयेत् ॥१२॥
दर्शादर्शस्य चान्तः स्यात्त्रिंशाहोभिस्तु सावनः । रविसंक्रमणात्सौरो नाक्षत्रः सप्तविंशतिः॥१३॥
सौरो मासो विवाहाय यज्ञादौ सावनस्थितिः । युग्माग्निकृतभूतानि षण्मुन्योर्वसुरन्ध्रयोः ॥
रुद्रेण द्वादशीयुक्ता चतुर्दश्याथ पूर्णिमा ॥१४॥
प्रतिपदाप्यमावास्या तिथ्योर्युग्मं महाफलम् । एतद्व्यास्तं महाघोरं हन्ति पुण्यं पुराकृतम् ॥१५॥
प्रारब्धतपसां स्त्रीणां रजो हन्याद्व्रतं न हि । अन्यैर्दानादिकं कुर्य्यात्कायिकं स्वयमेव च॥१६॥
क्रोधात्प्रमादाल्लोभाद्वा व्रतभङ्गो भवेद्यदि । दिनत्रयं न भुञ्जीत शिरसो मुण्डनं भवेत् ॥१७॥
असामर्थ्ये शरीरस्य पुत्रादीन्कारयेद्व्रतम् । व्रतस्थं मूर्च्छितं विप्रं जलानि चानुपाययेत् ॥१८॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे व्रतपरिभाषा नाम अष्टाविंशत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१२८॥

ऊनत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

वक्ष्ये प्रतिपदादीनि व्रतानि व्यास शृण्वथ । वैश्वानरपदं याति शिखिव्रतमिदं स्मृतम् ॥
प्रतिपद्येकभक्ताशी समाप्ते कपिलाप्रदः ॥ १ ॥

चैत्रादौ कारयेच्चैव ब्रह्मपूजां यथाविधि । गन्धपुष्पार्चनैर्दानैर्माल्यादिभिर्मनोरमैः ॥
सहोमैः पूजयेद्देवं सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥ २ ॥
कार्त्तिके तु सितेऽष्टम्यां पुष्पहारेण वत्सरम् । पुष्पादिदाता रूपेप्सू रूपभागी भवेन्नरः ॥३॥
कृष्णपक्षे तृतीयायां श्रावणे श्रीधरं श्रिया । व्रती सवस्त्रां शय्याञ्च फलं दद्याद्द्विजातये ॥४॥
शय्यां दत्त्वा प्रार्थयेच्च श्रीधराय नमः श्रिये । उमां शिवं हुताशञ्च तृतीयायाञ्च पूजयेत् ॥५॥
हविष्यमन्नं नैवेद्यं देयं मदनकं तथा । चैत्रादौ फलमाप्नोति उमया मे प्रभाषितम् ॥६॥
फाल्गुनादितृतीयांतां लवणं यस्तु वर्जयेत् । समाप्ते शयनं दद्याद्गृहञ्चोपस्करान्वितम् ॥७॥
संपूज्य विप्रमिथुनं भवानि प्रीयतामिति । गौरी लोके वसेन्नित्यं सौभाग्यकरमुत्तमम् ॥८॥
गौरी काली उमा भद्रा दुर्गा कान्तिः सरस्वती । मङ्गला वैष्णवी लक्ष्मीः शिवा नारायणी क्रमात् ॥
मार्गतृतीयामारभ्य अवियोगादि चाप्नुयात् ॥ ९ ॥
चतुर्थ्यां सितमाघादौ निराहारो व्रतान्वितः । दत्त्वा तिलांस्तु विप्राय स्वयं भुङ्क्ते तिलोदकम् ॥
वर्षद्वये समाप्तिश्च निर्विघ्नादि समाप्नुयात् ॥ १० ॥
गः स्वाहा मूलमन्त्रोऽयं प्रणवेन समन्वितः । ग्लौं ग्लां हृदये गां गीं गूं हूं ह्रीं ह्रीं शिरःशिखा ॥
गूं वर्म गोञ्च गौं नेत्रं गोञ्च आवाहनादिषु ॥ ११ ॥
आगच्छोल्काय गन्धोल्कः पुष्पोल्कधूपकोल्ककः । दीपोल्काय महोल्काय बलिश्चाथ विसर्जनम् ॥
सिद्धोल्काय च गायत्री न्यासोऽङ्गुष्ठादिरीरितः ।
ॐ महाकर्णाय विद्महे वक्रतुण्डाय धीमहि तन्नो दन्ती प्रचोदयात् ॥ १३ ॥
पूजयेत्तिलहोमैश्च एते पूज्या गणास्तथा । गणाय गणपतये स्वाहा कूष्माण्डकाय च ॥
अमोघोल्कायैकदन्ताय त्रिपुरान्तकरूपिणे ॥ १४ ॥
ॐ श्यामदन्तविकरालास्याहवेशाय वै नमः । पद्मदंष्ट्राय स्वाहान्तमुद्रा वै नर्त्तनं गणे ॥
हस्ततालश्च हसनं सौभाग्यादिफलं भवेत् ॥ १५ ॥
मार्गशीर्षे तथा शुक्लचतुर्थ्यां पूजयेद्गणम् । अब्दं प्राप्नोति विद्यां श्रीकीर्त्त्यायुःपुत्रसन्ततिम् ॥
सोमवारे चतुर्थ्याञ्च समुपोष्यार्च्चयेद्गणम् । जपञ्जुह्वत्स्मरन्नित्यं स्वर्गं निर्विघ्नतां व्रजेत् ॥१७॥
यजेच्छुक्लचतुर्थ्यां यः खण्डलड्डुकमोदकैः । विघ्नार्चनेन सर्वान्वै कामान् सौभाग्यमाप्नुयात् ॥
पुत्रादिकं मदनकैर्मदनाख्या चतुर्थ्यपि ॥ १८ ॥
ॐ गणपतये नमः चतुर्थ्यन्तं यजेद्गणम् । मासे तु यस्मिन्कस्मिंश्चिज्जुहुयाद् वा जपेत्स्मरेत् ॥
सर्वान्कामानवाप्नोति सर्वविघ्नविनाशनम् ॥ १९ ॥

विनायकं मूर्त्तिकाद्यं यजेदेभिश्च नामभिः । सोऽपि सद्गतिमाप्नोति स्वर्गमोक्षसुखानि च २०॥
गणपूज्य एकदन्ती वक्रतुण्डश्च त्र्यम्बकः । नीलग्रीवो लम्बोदरो विकटो विघ्नराजकः ॥
धूम्रवर्णो बालचन्द्रो दशमस्तु विनायकः ॥ २१ ॥
गणपतिर्हस्तिमुखो द्वादश वै यजेद्गणम् । पृथक्समस्तं मेधावी सर्वान्कामानवाप्नुयात् ॥२२॥
श्रावणे चाश्विने भाद्रे पञ्चम्यां कार्त्तिके शुभे । वासुकिस्तक्षकश्चैव कालीयो मणिभद्रकः ॥२३॥
ऐरावतो धृतराष्ट्रः कर्कोटकधनञ्जयौ । घृताद्यैः स्नापिता ह्येते आयुरारोग्यस्वर्गदाः ॥२४॥
अनन्तं वासुकिं शङ्खं पद्मं कम्बलमेव च । तथा कर्कोटकं नागं धृतराष्ट्रञ्च शङ्खकम् ॥२५॥
कालीयं तक्षकञ्चापि पिङ्गलं मासि मासि च । यजेद्भाद्रसिते नागानष्टौ मुक्त्वा दिवं व्रजेत् ॥
द्वारस्योभयतो लेख्या श्रावणे तु सिते यजेत् । पञ्चम्यां पूजयेन्नागाननन्ताद्यान्महोरगान् ॥२७॥
क्षीरं सर्पिश्च नैवेद्यं देयं सर्वविषापहम् । नागा अभयहस्ताश्च दष्टोद्धरणपञ्चमी ॥२८॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे दष्टोद्धरणपञ्चमी नाम ऊनत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥१२९॥

त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

एवं भाद्रपदे मासि कार्त्तिकेयं प्रपूजयेत् । स्नानदानादिकं सर्वमस्यामक्षय्यमुच्यते ॥
सप्तम्यां प्राशयेच्चापि भोज्यं विप्रान् रविं यजेत् ॥ १ ॥
ॐ खखोल्कायमृतत्वं प्रियसङ्गमो भव सदा स्वाहा ।
अष्टम्यां पारणं कुर्य्यान्मरिचं प्राश्य स्वर्गभाक् ॥ २ ॥
इति मरिचसप्तमी ।
सप्तम्यां नियतः स्नात्वा पूजयित्वा दिवाकरम् । दद्यात्फलानि विप्रेभ्यो मार्त्तण्डः प्रीयतामिति ॥
खर्जूरं नारिकेलं वा प्राशयेन्मातुलुङ्गकम् । सर्वे भवन्तु सफला मम कामाः समन्ततः ॥४॥
इति फलसप्तमी ।
संपूज्य देवं सप्तम्यां पायसेनाथ भोजयेत् । विप्रांश्च दक्षिणां दत्त्वा स्वयञ्चाथ पयः पिबेत् ॥५॥
भक्ष्यं चोष्यं तथा लेह्यं ओदनेति प्रकीर्त्तितम् । धनपुत्रादिकामस्तु त्यजेदेतदनोदनः ॥६॥
इति अनोदनसप्तमी ।
वाय्वाशी विजयेच्छुश्च कुर्य्याद्विजयसप्तमीम् । अद्यादर्कञ्च कामेच्छुरुपवासेत कामदम् ॥७॥

गोधूममाषयवषष्टिककांस्यपात्रं पाषाणपिष्टमधुमैथुनमद्यमांसम् ।
अभ्यञ्जनाञ्जनतिलांश्च विवर्जयेद्यः तस्योषितं भवति सप्तसु सप्तमीषु ॥ ८ ॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे सप्तम्यादिव्रतं नाम त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः ॥ १३० ॥

एकत्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

ब्रह्मन् भाद्रपदे मासि शुक्लाष्टम्यामुपोषितः । दूर्वां गौरीं गणेशञ्च फलपुष्पैः शिवं यजेत् ॥१॥
फलव्रीह्यादिकरणैः शम्भवे नमः शिवाय च । त्वं दूर्वेऽमृतजन्मासि ह्यष्टमी सर्वकामभाक् ॥
अनग्निपक्वमश्नीयान्मुच्यते ब्रह्महत्यया ॥ २ ॥

इति दूर्वाष्टमी ।

कृष्णाष्टम्याञ्च रोहिण्यामर्द्धरात्रेऽर्चनं हरेः । कार्य्या विद्धापि सप्तम्या हन्ति पापं त्रिजन्मकम् ॥
उपोषितोऽर्चयेन्मन्त्रैस्तिथिभान्ते च पारणम् ।
योगाय योगपतये गोविन्दाय नमो नमः ॥ ४ ॥

स्नानमन्त्रः । यज्ञाय यज्ञेश्वराय यज्ञपतये यज्ञसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः ।
अर्चनमन्त्रः । विश्वाय विश्वेश्वराय विश्वपतये गोविन्दाय नमो नमः ॥ ५ ॥

शयनमन्त्रः । सर्वाय सर्वेश्वराय पर्वताय सर्वसम्भवाय गोविन्दाय नमो नमः ।
स्थण्डिले पूजयेद्देवं सचन्द्रां रोहिणीन्तथा ॥ ६ ॥

शङ्खे तोयं समादाय सपुष्पफलचन्दनम् । जानुभ्यामवनीं गत्वा चन्द्रायार्घ्यं निवेदयेत् ॥७॥
क्षीरोदार्णवसंभूत अत्रिनेत्रसमुद्भव । गृहाणार्घ्यं शशाङ्केमं रोहिण्या सहितो मम ॥८॥
श्रियै च वसुदेवाय नन्दाय च बलाय च । यशोदायै ततो दद्यादर्घ्यं फलसमन्वितम् ॥ ९ ॥
अनघं वामनं शौरिं वैकुण्ठं पुरुषोत्तमम् । वासुदेवं हृषीकेशं माधवं मधुसूदनम् ॥ १० ॥
वराहं पुण्डरीकाक्षं नृसिंहं दैत्यसूदनम् । दामोदरं पद्मनाभं केशवं गरुड़ध्वजम् ॥ ११ ॥
गोविन्दमच्युतं देवमनन्तमपराजितम् । अधोक्षजं जगद्बीजं स्वर्गस्थित्यन्तकारणम् ॥१२॥
अनादिनिधनं विष्णुं त्रिलोकेशं त्रिविक्रमम् । नारायणं चतुर्बाहुं शङ्खचक्रगदाधरम् ॥ १३ ॥
पीताम्बरधरं दिव्यं वनमालाविभूषितम् । श्रीवत्साङ्कं जगद्धाम श्रीपतिं श्रीधरं हरिम् ॥१४॥
यं देवं देवकी देवी वसुदेवादजीजनत् । भौमस्य ब्रह्मणो गुप्त्यै तस्मै ब्रह्मात्मने नमः ॥

नामान्येतानि संकीर्त्त्य गत्यर्थं प्रार्थयेत्पुनः ॥ १५ ॥
त्राहि मां देवदेवेश हरे संसारसागरात् । त्राहि मां सर्वपापघ्न दुःखशोकार्णवात्प्रभो ॥१६॥
देवकीनन्दन श्रीश हरे संसारसागरात् । दुर्वृत्तांस्त्रायसे विष्णो ये स्मरन्ति सकृत्सकृत् ॥
सोऽहं देवातिदुर्वृत्तस्त्राहि मां शोकसागरात् ॥ १७ ॥
पुष्कराक्ष निमग्नोऽहं महत्यज्ञानसागरे । त्राहि मां देवदेवेश त्वामृतेऽन्यो न रक्षिता १८॥
स्वजन्मवासुदेवाय गोब्राह्मणहिताय च । जगद्धिताय कृष्णाय गोविन्दाय नमो नमः ॥
शान्तिरस्तु शिवञ्चास्तु धनविख्यातिराज्यभाक् ॥ १९ ॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे रोहिण्यष्टमीव्रतं नाम
एकत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३१॥

द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

नक्ताशी त्वष्टमीं यावद्वर्षान्ते चैव धेनुदः । पौरन्दरपदं याति सद्गतिञ्च व्रतेऽच्युत ॥ १ ॥
शुक्लाष्टम्यां पौषमासे महारुद्रेति साधु वै । मत्प्रीतये व्रतकृतं शतसाहस्रिकं फलम् ॥ २ ॥
अष्टमी बुधवारेण पक्षयोरुभयोर्यदा । भविष्यति तदा तस्यां व्रतमेतत्कथा पुरा ॥
तस्यां नियमकर्त्तारो न स्युः खण्डितसम्पदः ॥ ३ ॥
तण्डुलस्याष्टमुष्टीनां वर्जयित्वाऽङ्गुलिद्वयम् । भक्तं सद्भक्तिश्रद्धाभ्यां मुक्तिकामी हि मानवः ॥४॥
आम्रपत्रपुटे कृत्वा यो भुंक्ते कुशवेष्टिते । कलम्बिकाम्लिकोपेतं काम्यं तस्य फलं भवेत् ॥५॥
बुधं पञ्चोपचारेण पूजयित्वा जलाशये । शक्तितो दक्षिणां दद्यात्कर्करीं तण्डुलान्विताम् ॥६॥
बुं बुधायेति बीजः स्यात्स्वाहान्तः कमलादिकः । बाणचापधरं श्यामं दले चाङ्गानि मध्यतः ॥
बुधाष्टमीकथा पुण्या श्रोतव्या कृतिभिर्ध्रुवम् । पुरे पाटलिपुत्राख्ये वीरो नाम द्विजोत्तमः ॥८॥
रम्भा भार्य्या तस्य चासीत्कौशिकः पुत्र उत्तमः । दुहिता विजयानाम्नी धनपालो वृषोऽभवत् ॥
गृहीत्वा कौशिकस्तञ्च ग्रीष्मे गङ्गां गतोऽरमत् । गोपालकैर्वृषश्चौरैः क्रीडन्नपहृतो बलात् ॥१०॥
गङ्गातः स च उत्थाय वनं बभ्राम दुःखितः । जलार्थं विजया चागाद्भ्रात्रा सार्द्धञ्च साप्यगात् ॥
पिपासितो मृणालार्थी आगतोऽथ सरोवरम् । दिव्यस्त्रीणाञ्च पूजादीन्दृष्ट्वा चाप्यथ विस्मितः ॥
स ता गत्वा ययाचेऽन्नं सानुजोऽहं बुभुक्षितः । स्त्रियोऽब्रुवन्व्रतं कर्त्तुं दास्यामश्च कुरु व्रतम् ॥

पत्यर्थं धनपालार्थं पूजयामासतुर्बुधम् । पुटद्वयं गृहीत्वाऽन्नं बुभुजाते प्रदत्तकम् ॥१४॥
स्त्रियो गतौ च धनदौ धनपालमपश्यताम् । चौरैर्दत्तं गृहीत्वाथ प्रदोषे प्राप्तवान् गृहम् ॥१५॥
वीरञ्च दुःखितं नत्वा रात्रौ सुप्तो यथासुखम् । कन्याञ्च युवतीं दृष्ट्वा कस्मै देया सुता मया ॥
धर्मायेत्यब्रवीद्दुःखात्साचाराद्व्रतसत्फलात् । स्वर्गं गतौ च पितरौ व्रतं राज्याय कौशिकः ॥१७॥
चक्रेऽयोध्यामहाराज्यं दत्त्वा च भगिनीं यमे । यमोऽपि विजयामाह गृहस्था भव मे पुरे १८॥
अपश्यन्मातरं स्वां सा पाशयातनया स्थिताम् । अथोद्विग्ना च विजया ज्ञात्वा विमुक्तिदं व्रतम् ॥
चक्रे च सा ततो मुक्ता माता तस्याः कृतव्रता । व्रतपुण्यप्रभावेण स्वर्गं गत्वावसत्सुखम् ॥२०॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे बुधाष्टमीव्रतं नाम द्वात्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३२॥

त्रयस्त्रिंशाधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अशोककलिका ह्यष्टौ ये पिबन्ति पुनर्वसौ । चैत्रे मासि सिताष्टम्यां न ते शोकमवाप्नुयुः ॥ १ ॥
त्वामशोक हराभीष्ट मधुमाससमुद्भव । पिबामि शोकसन्तप्तो मामशोकं सदा कुरु ॥ २ ॥

इत्यशोकाष्टमी ।

ब्रह्मोवाच

शुक्लाष्टम्यामश्वयुजे उत्तराषाढया युता । सा महानवमीत्युक्ता स्नानदानादि चाक्षयम् ॥ ३ ॥
नवमी केवला चापि दुर्गाञ्चैव तु पूजयेत् । महाव्रतं महापुण्यं शङ्कराद्यैरनुष्ठितम् ॥ ४ ॥
अयाचितादि षष्ठ्यादौ राजा शत्रुजयाय च । जपहोमसमायुक्तः कन्यां वा भोजयेत्सदा ॥ ५ ॥
दुर्गे दुर्गे रक्षिणि स्वाहा मन्त्रोऽयं पूजनादिषु । दीर्घाकाराभिर्मात्राभिर्नवदेव्यो नमोऽन्तिकाः ॥
षड्भिः पदैर्नमः स्वाहा वषडादि हृदादिकम् । अङ्गुष्ठादि कनिष्ठान्तं विन्यस्य पूजयेच्छिवाम् ॥
अष्टम्यां नवगेहानि दारुजान्येकमेव वा । तस्मिन्देवी प्रकर्त्तव्या हैमा वा राजतापि वा ॥ ८ ॥
शूले खड्गे पुस्तके वा पटे वा मण्डले यजेत् । कपालं खेटकं घण्टां दर्पणं तर्जनीं धनुः ॥ ९ ॥
ध्वजं डमरुकं पाशं वामहस्तेषु बिभ्रती । शक्तिञ्च मुद्गरं शूलं वज्रं खड्गं तथाङ्कुशम् ॥१०॥
शरं चक्रं शलाकाञ्च दुर्गामायुधसंयुताम् । शेषाः षोडशहस्ताः स्युरञ्जनं डमरुं विना ॥११॥
उग्रचण्डा प्रचण्डा च चण्डोग्रा चण्डनायिका । चण्डा चण्डवती चैव चण्डरूपातिचण्डिका ॥
नवमी चोग्रचण्डा च मध्यस्थाग्निप्रभाकृतिः । रोचना अरुणा कृष्णा नीला धूम्रा च शुक्लका ॥

पीता च पाण्डरा प्रोक्ता आलीढ़ेन हरिस्थिताः ॥१३॥
माहिषोऽथ सखड्गाग्रे प्रकचग्रहमुष्टिका । जप्त्वा दशाक्षरीं विद्यां त्रिशूलञ्च ततो यजेत् ॥१४॥
लिङ्गस्थां पूजयेद्वापि पादुकेऽत्र जलेऽपि वा । विचित्रां रचयेत्पूजामष्टम्यामुपवासयेत् ॥१५॥
पञ्चाब्दं महिषं शस्तं रात्रिशेषञ्च घातयेत् । विधिवत्कालिकी नीतिः तदुत्थरुधिरादिकम् ॥१६॥
नैर्ऋत्यां पूतनाञ्चैव वायव्यां पापराक्षसीम् । चण्डिकाञ्च तथैशान्यामाग्नेय्याञ्च विदारिकाम् ॥१७॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे महानवमीव्रतं नाम
त्रयस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३३॥

चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

महाकौशिकमन्त्रश्च कथ्यतेऽत्र महाफलः ।

महाकौशिकमन्त्रः ।

ॐ महाकौशिकाय नमः । ॐ हूं हूं प्रस्फुर लल लल कुल्व कुल्व चुल्व चुल्व खल्ल खल्ल मुल्व मुल्व गुल्व गुल्व तुल्व तुल्व पुल्ल पुल्ल धुल्व धुल्व धुम धुम धम धम मारय मारय धक धक वशापय वशापय विदारय विदारय कम्प कम्प कम्पय कम्पय पूरय पूरय आवेशय आवेशय ॐ ह्रीं ॐ ह्रीं हं वं वं हुं तट तट मद मद ह्रीं ॐ हूं नैर्ऋताय नमः । निर्ऋतये दातव्यं महाकौशिकमन्त्रेण मन्त्रितं बलिमर्पयेत् ॥१॥
तस्याग्रतो नृपः स्नायाच्छत्रुं कृत्वा च पैष्टकम् । खड्गेन घातयित्वा तु दद्यात्स्कन्दविशाखयोः ॥
मातृणाञ्चैव देवीनां पूजा कार्य्या तथा निशि । ब्रह्माणी चैव माहेशी कौमारी वैष्णवी तथा ॥
वाराही चैव माहेन्द्री चामुण्डा चण्डिका तथा ॥३॥
जयन्ती मङ्गला काली भद्रकाली कपालिनी । दुर्गा शिवा क्षमा धात्री स्वाहा स्वधा नमोऽस्तु ते ॥
क्षीराद्यैः स्नापयेद्देवीं कन्यकाः प्रमदास्तथा । द्विजादीनथ पाषण्डान् अल्पदानेन पूजयेत् ॥५॥
ध्वजपत्रपताकाद्यैरथ यात्रासु वस्त्रकैः । महानवम्यां पूजेयं जयराज्यादिदायिका ॥६॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे महानवमीव्रतं नाम
चतुस्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३४॥

पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

नवम्यामाश्विने शुक्ले एकभक्तेन पूजयेत् । देवीं विप्रान्लक्षमेकं जपेद्बीजं व्रती नरः ॥ १ ॥
इति वीरनवमी ।

ब्रह्मोवाच

चैत्रे शुक्लनवम्याञ्च देवीं दमनकैर्यजेत् । आयुरारोग्यसौभाग्यं शत्रुभिश्चापराजितः ॥२॥
इति दमनाख्या नवमी ।

विष्णुरुवाच

दशम्यामेकभक्ताशी समान्ते दशधेनुदः । दिशश्च काञ्चनीर्दत्त्वा ब्रह्माण्डाधिपतिर्भवेत् । ३॥
इति दिग्दशमी ।

ब्रह्मोवाच

एकादश्यामृषिपूजा कार्य्या सर्वोपकारिका । धनवान्पुत्रवाँश्चान्ते ऋषिलोके महीयते ॥४॥
मरीचिरत्र्यङ्गिरसौ पुलस्त्यः पुलहः क्रतुः । प्रचेताश्च वसिष्ठश्च भृगुर्नारद एव च ॥
चैत्रादौ कारयेत्पूजां माल्यैश्च दमनोद्भवैः ॥ ५ ॥
अशोकाख्याष्टमी प्रोक्ता वीराख्या नवमी तथा । दमनाख्या दिग्दशमी नवम्येकादशी तथा ॥६॥
इति गारुडे महापुराणे अष्टम्यादिव्रतं नाम पञ्चत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३५॥

षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

श्रवणद्वादशीं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदायिनीम् । एकादशी द्वादशी च श्रवणेन च संयुता ॥
विजया सा तिथिः प्रोक्ता हरिपूजादि चाक्षयम् ॥ १ ॥
एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च । उपवासेन भैक्ष्येण नैवाद्वादशिको भवेत् ॥ २ ॥
कांस्यं मांसं तथा क्षौद्रं लोभं वितथभाषणम् । व्यायामञ्च व्यवायञ्च दिवास्वप्नमथाञ्जनम् ॥
शिलापिष्टं मसूरञ्च द्वादश्यां वर्जयेन्नरः ॥ ३ ॥
मासि भाद्रपदे शुक्लद्वादशी श्रवणान्विता । महती द्वादशी ज्ञेया उपवासे महाफला ॥
सङ्गमे सरितां स्नानं बुधयुक्ता महाफला ॥ ४ ॥

कुम्भे सरत्ने सजले यजेत्स्वर्णे तु वामनम् । सितवस्त्रयुगच्छन्नं छत्रोपानद्युगान्वितम् ॥ ५ ॥
ॐ नमो वासुदेवाय शिरः संपूजयेत्ततः । श्रीधराय मुखं तद्वत्कण्ठं कृष्णाय वै नमः ॥ ६ ॥
नमः श्रीपतये वक्षो भुजौ सर्वास्त्रधारिणे । व्यापकाय नमः कुक्षौ केशवायोदरं बुधः ॥ ७ ॥
त्रैलोक्यपतये मेढ्रं जङ्घे सर्वपतये नमः । सर्वात्मने नमः पादौ नैवेद्यं घृतपायसम् ॥ ८ ॥
कुम्भांश्च मोदकान्दद्याज्जागरं कारयेन्निशि । स्नात्वा पीत्वाऽर्चयित्वा तु कृतपुष्पाञ्जलिर्वदेत् ॥
नमो नमस्ते गोविन्द बुध श्रवणसंज्ञक । अघौघसंक्षयं कृत्वा सर्वसौख्यप्रदो भव ॥१०॥
प्रीयतां देवदेवेशो विप्रेभ्यः कलशान्ददेत् । नद्यास्तीरेऽथवा कुर्य्यात्सर्वान्कामानवाप्नुयात् ११॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे श्रवणद्वादशी नाम षट्त्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३६॥

सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

कामदेवत्रयोदश्यां पूजा दमनकादिभिः । रतिप्रीतिसमायुक्तो ह्यशोको मानभूषितः ॥ १ ॥

इति मदनत्रयोदशी ।

चतुर्दश्यां तथाष्टम्यां पक्षयोः शुक्लकृष्णयोः । योऽब्दमेकं न भुञ्जीत भुक्तिभाक् शिवपूजनात् ॥

इति चतुर्दश्यष्टमीव्रतम् ।

त्रिरात्रोपोषितो दद्यात्कार्त्तिक्यां भवनं शुभम् । सूर्य्यलोकमवाप्नोति धामव्रतमिदं शुभम् ॥ ३ ॥
अमावस्यां पितॄणाञ्च दत्तं जलादि चाक्षयम् । नक्ताभ्याशी वारनाम्ना यजन्वारिणि सर्वभाक् ॥

इति वारव्रतानि ।

द्वादशर्क्षाणि विप्रर्षे प्रतिमासन्तु यानि वै । तन्नाम्ना तेऽच्युतं तेषु सम्यक्संपूजयेन्नरः ॥ ५ ॥
केशवं मार्गशीर्षे तु इत्यादौ कृत्तिकादिका । घृतहोमश्चतुर्मासं कृसरञ्च निवेदयेत् ॥ ६ ॥
आषाढादौ पायसन्तु विप्रांस्तेनैव भोजयेत् । पञ्चगव्यजले स्नानं नैवेद्यैर्नक्तमाचरेत् ॥ ७ ॥
अर्वाग्विसर्जनाद्द्रव्यं नैवेद्यं सर्वमुच्यते । विसर्जिते जगन्नाथे निर्माल्यं भवति क्षणात् ॥ ८ ॥
पञ्चरात्रविदो मुख्या नैवेद्यं भुञ्जते स्वयम् । एवं संवत्सरस्यान्ते विशेषेण प्रपूजयेत् ॥ ९ ॥

नमो नमस्तेऽच्युत संक्षयोऽस्तु पापस्य वृद्धिं समुपैति पुण्यम् ।
ऐश्वर्य्यवित्तादि सदाऽक्षयं मे तथास्तु मे सन्ततिरक्षयैव ॥१०॥

यथाच्युत त्वं परतः परस्मात्स ब्रह्मभूतः परतः परस्मात् ।
तथाच्युतं मे कुरु वाञ्छितं सदा मया कृतं पापहराप्रमेय ॥११॥
अच्युतानन्द गोविन्द प्रसीद यदभीप्सितम् । तदक्षयममेयात्मन् कुरुष्व पुरुषोत्तम ॥१२॥
कुर्य्याद्वै सप्तवर्षाणि आयुःश्रीसद्गतिं नरः । उपोष्यैकादशीमब्दमष्टमीञ्च चतुर्दशीम् ॥१३॥
सप्तमीं पूजयेद्विष्णुं दुर्गां शम्भुं रविं क्रमात् । तेषां लोकं समाप्नोति सर्वकामांश्च निर्मलः ॥१४॥
एकभक्तेन नक्तेन तथैवायाचितेन च । उपवासेन शाकाद्यैः पूजयन्सर्वदेवताः ॥
सर्वः सर्वासु तिथिषु भुक्तिमुक्तिमवाप्नुयात् ॥१५॥
धनदोऽग्निः प्रतिपदि नासत्यो दस्र अर्चितः । श्रीर्यमश्च द्वितीयायां पञ्चम्यां पार्वती श्रिया ॥
नागाः षष्ठ्यां कार्त्तिकेयः सप्तम्यां भास्करोऽर्थदः । दुर्गाष्टम्यां मातरश्च नवम्यामथ तक्षकः ॥
दशम्यामिन्द्रो धनद एकादश्यां मुनीश्वराः । द्वादश्याञ्च हरिः कामस्त्रयोदश्यां महेश्वरः ॥
चतुर्दश्यां पञ्चदश्यां ब्रह्मा च पितरोऽपरे ॥१८॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे सर्वतिथिव्रतानि नाम
सप्तत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३७॥

अष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः

हरिरुवाच

राज्ञां वंशान्प्रवक्ष्यामि वंशानुचरितानि च । विष्णुनाभ्यब्जतो ब्रह्मा दक्षोऽङ्गुष्ठाच्च तस्य वै ॥१॥
ततोऽदितिर्विवस्वांश्च ततो विवस्वतः सुतः । मनुरिक्ष्वाकुः शर्यातिर्नृगो धृष्टः पृषध्रकः ॥
नरिष्यन्तश्च नाभागो दिष्टः शशक एव च ॥ २ ॥
मनोरासीदिला कन्या सुद्युम्नोऽस्य सुतोऽभवत् । इलायां तु बुधाजातो रजोरुद्रपुरूरवाः ॥
सुतास्त्रयश्च सुद्युम्नादुत्कलो विनतो गयः ॥ ३ ॥
अभूच्छूद्रो गोवधात्तु पृषध्रस्तु मनोः सुतः । करूषात्क्षत्रिया जाता कारूषा इति विश्रुताः ॥
दिष्टपुत्रस्तु नाभागो वैश्यतामगमत्स च । तस्माद्भनन्दनः पुत्रो वत्सप्रीतिर्भनन्दनात् ॥ ५ ॥
ततः पांशुः खनित्रोऽभूद्भूपस्तस्मात्ततः क्षुपः । क्षुपाद्विंशोऽभवत्पुत्रो विंशाज्जातो विविंशकः ॥
विविंशाच्च खनीनेत्रो विभूतिस्तत्सुतः स्मृतः । करन्धमो विभूतेस्तु ततो जातोऽप्यविक्षितः ॥७॥
मरुत्तोऽविक्षितस्यापि नरिष्यन्तस्ततः स्मृतः । नरिष्यन्तात्तमो जातस्ततोऽभूद्राजवर्द्धनः ॥

राजवर्द्धात्सुधृतिश्च नरोऽभूत्सुधृतेः सुतः । नराच्च केवलः पुत्रः केवलाद्धुन्धुमानपि ॥ ९ ॥
धुन्धुमतो वेगवांश्च बुधो वेगवतः सुतः । तृणबिन्दुर्बुधाजातः कन्या चैलविला तथा ॥१०॥
विशालं जनयामास तृणबिन्दोस्त्वलम्बुषा । विशालाद्धेमचन्द्रोऽभूद्धेमचन्द्राच्च चन्द्रकः ॥११॥
धूम्राश्वश्चैव चन्द्रात्तु धूम्राश्वात्सृञ्जयस्तथा । सृञ्जयात्सहदेवोऽभूत्कृशाश्वस्तत्सुतोऽभवत् ॥१२॥
कृशाश्वात्सोमदत्तस्तु ततोऽभूज्जनमेजयः । तत्पुत्रश्च सुमन्त्रिश्च एते वैशालका नृपाः ॥१३॥
शर्यातेस्तु सुकन्याऽभूत् सा भार्य्या च्यवनस्य तु । अनन्तो नाम शर्यातेरनन्ताद्देवकोऽभवत् ॥
रैवतो रेवतस्यापि रेवताद्रेवती सुता ॥ १४ ॥
धृष्टस्य धार्ष्टकं क्षत्रं वैश्यकं तद्बभूव ह । नाभागपुत्रो नेदिष्टो ह्यम्बरीषोऽपि तत्सुतः ॥१५॥
अम्बरीषाद्विरूपोऽभूत्पृषदश्वो विरूपतः । रथीनरश्च तत्पुत्रो वासुदेवपरायणः ॥१६॥
इक्ष्वाकोस्तु त्रयः पुत्रा विकुक्षिनिमिदण्डकाः । इक्ष्वाकुजो विकुक्षिस्तु शशादः शशभक्षणात् ॥
पुरञ्जयः शशादाच्च ककुत्स्थाख्योऽभवत्सुतः । अनेनास्तु ककुत्स्थाच्च पृथुः पुत्रस्त्वनेनसः ॥१८॥
विश्वरातः पृथोः पुत्र आर्द्रोऽभूद्विश्वराततः । युवनाश्वोऽभवच्चार्द्रात् श्रावस्तो युवनाश्वतः १९॥
बृहदश्वस्तु श्रावस्तात्तत्पुत्रः कुबलाश्वकः । धुन्धुमारो हि विख्यातो दृढाश्वश्च ततोऽभवत् २०॥
चन्द्राश्वः कपिलाश्वश्च हर्य्यश्वश्च दृढाश्वतः । हर्य्यश्वाच्च निकुम्भोऽभूद्धिताश्वश्च निकुम्भतः २१॥
पूजाश्वश्च हिताश्वाच्च तत्सुतो युवनाश्वकः । युवनाश्वाच्च मान्धाता बिन्दुमत्यस्ततोऽभवत् ॥
मुचुकुन्दोऽम्बरीषश्च पुरुकुत्सस्त्रयः सुताः । पञ्चाशत्कन्यकाश्चैव भार्य्यास्ताः सौभरेर्मुनेः २३॥
युवनाश्वोऽम्बरीषाच्च हरितो युवनाश्वतः । पुरुकुत्सान्नर्मदायां त्रसद्दस्युरभूत्सुतः ॥२४॥
अनरण्यस्ततो जातो हर्य्यश्वोऽप्यनरण्यतः । तत्पुत्रोऽभूद् वसुमनास्त्रिधन्वा तस्य चात्मजः ॥
त्रय्यारुणस्तस्य पुत्रस्तस्य सत्यरतः सुतः । यस्त्रिशङ्कुः समाख्यातो हरिश्चन्द्रोऽभवत्ततः ॥२६॥
हरिश्चन्द्राद्रोहिताश्वो हरितो रोहिताश्वतः । हरितस्य सुतश्चञ्चुश्चञ्चोश्च विजयः सुतः ॥२७॥
विजयाद्रुरुको जज्ञे रुरुकात्तु बृकः सुतः । बृकाद्बाहुर्नृपोऽभूच्च बाहोस्तु सगरः स्मृतः ॥२८॥
षष्टिपुत्रसहस्राणि सुमत्यां सगरोद्भवः । केशिन्यामेक एवासौ असमञ्जससंज्ञकः ॥२९॥
तस्यांशुमान्सुतो विद्वान्दिलीपस्तत्सुतोऽभवत् । भगीरथो दिलीपाच्च यो गङ्गामानयद्भुवम् ॥३०॥
श्रुतो भगीरथसुतो नाभागश्च श्रुतात्किल । नाभागादम्बरीषोऽभूत्सिन्धुद्वीपोऽम्बरीषतः ॥३१॥
सिन्धुद्वीपस्यायुतायुः ऋतुपर्णस्तदात्मजः । ऋतुपर्णात्सर्वकामः सुदासोऽभूत्तदात्मजः ॥३२॥
सुदासस्य च सौदासो नाम्ना मित्रसहः स्मृतः । कल्माषपादसंज्ञश्च दमयन्त्यां तदात्मजः ॥३३॥
अश्वकाख्योऽभवत्पुत्रो ह्यश्वकान्मूलकोऽभवत् । ततो दशरथो राजा तस्य चैलविलः सुतः ॥३४॥

तस्य विश्वसहः पुत्रः खट्वाङ्गश्च तदात्मजः । खट्वाङ्गाद्दीर्घबाहुश्च दीर्घबाहोर्ह्यजः सुतः ॥३५॥
तस्य पुत्रो दशरथश्चत्वारस्तत्सुताः स्मृताः । रामलक्ष्मणशत्रुघ्नभरताश्च महाबलाः ॥३६॥
रामात्कुशलवौ जातौ भरतात्तार्क्षपुष्करौ । चित्राङ्गदश्चन्द्रकेतू लक्ष्मणात्संबभूवतुः ॥३७॥
सुबाहुशूरसेनौ च शत्रुघ्नात्संबभूवतुः । कुशस्य चातिथिः पुत्रो निषधो ह्यतिथेः सुतः ॥
निषधस्य नलः पुत्रो नलस्य च नभाः स्मृतः । नभसः पुण्डरीकस्तु क्षेमधन्वा तदात्मजः ॥३९॥
देवानीकस्तस्य पुत्रो देवानीकादहीनकः । अहीनकाद्रुरुर्जज्ञे पारियात्रो रुरोः सुतः ॥४०॥
पारियात्राद्दलो जज्ञे दलपुत्रश्छलः स्मृतः । छलादुक्थस्ततो वुक्थाद्वज्रनाभस्ततो गणः ॥४१॥
उषिताश्वो गणाज्जज्ञे ततो विश्वसहोऽभवत् । हिरण्यनाभस्तत्पुत्रस्तत्पुत्रः पुष्पकः स्मृतः ॥४२॥
ध्रुवसन्धिरभूत्पुष्पाद्ध्रुवसन्धेः सुदर्शनः । सुदर्शनादग्निवर्णः पद्मवर्णोऽग्निवर्णतः ॥४३॥
शीघ्रस्तु पद्मवर्णात्तु शीघ्रात्पुत्रो मरुस्त्वभूत् । मरोः प्रसुश्रुतः पुत्रस्तस्य चोदावसुः सुतः ॥४४॥
उदावसोर्नन्दिवर्द्धनः सुकेतुर्नन्दिवर्द्धनात् । सुकेतोर्देवरातोऽभूद्बृहदुक्थस्ततः सुतः ॥४५॥
बृहदुक्थान्महावीर्य्यः सुधृतिस्तस्य चात्मजः । सुधृतेर्धृष्टकेतुश्च हर्य्यश्वो धृष्टकेतुतः ॥४६॥
हर्य्यश्वात्तु मरुर्जातो मरोः प्रतीन्धकोऽभवत् । प्रतीन्धकात्कृतिरथो देवमीढस्तदात्मजः ॥४७॥
विबुधो देवमीढात्तु विबुधात्तु महाधृतिः । महाधृतेः कृतिरातो महारोमा तदात्मजः ॥४८॥
महारोम्णः स्वर्णरोमा ह्रस्वरोमा तदात्मजः । सीरध्वजो ह्रस्वरोम्णः तस्य सीताभवत्सुता ॥४९॥
भ्राता कुशध्वजस्तस्य सीरध्वजात्तु भानुमान् । शतद्युम्नो भानुमतः शतद्युम्नाच्छुचिः स्मृतः ॥
ऊर्जनामा शुचेः पुत्रः सनद्वाजस्तदात्मजः । सनद्वाजात्कुलिर्जातोऽनञ्जनस्तु कुलेः सुतः ॥५१॥
अनञ्जनाच्च कुलजित्तस्यापि चाधिनेमिकः । श्रुतायुस्तस्य पुत्रोऽभूत्सुपार्श्वश्च तदात्मजः ॥५२॥
सुपार्श्वात्सृञ्जयो जातः क्षेमारिः सृञ्जयात्स्मृतः । क्षेमारितस्त्वनेनाश्च तस्य रामरथः स्मृतः ॥
सत्यरथो रामरथात्तस्मादुपगुरुः स्मृतः । उपगुरोरुपगुप्तः स्वागतश्चोपगुप्ततः ॥५४॥
स्वनरः स्वागताज्जज्ञे सुवर्चास्तस्य चात्मजः । सुवर्चसः सुपार्श्वस्तु सुश्रुतश्च सुपार्श्वतः ॥५५॥
जयस्तु सुश्रुताज्जज्ञे जयात्तु विजयोऽभवत् । विजयस्य ऋतः पुत्रः ऋतस्य सुनयः सुतः ॥५६॥
सुनयाद्वीतहव्यस्तु वीतहव्याद्धृतिः स्मृतः । बहुलाश्वो धृतेः पुत्रो बहुलाश्वात्कृतिः स्मृतः ॥५७॥
जनकस्य द्वयं वंश उक्तो योगसमाश्रयः ॥ ५८ ॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे सूर्य्यवंशवर्णनं नाम
अष्टत्रिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३८॥

———

ऊनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

हरिरुवाच

सूर्य्यस्य कथितो वंशः सोमवंशं शृणुष्व मे । नारायणसुतो ब्रह्मा ब्रह्मणोऽत्रेः समुद्भवः ॥
अत्रेः सोमस्तस्य भार्य्या तारा सुरगुरोः प्रिया ॥ १ ॥
सोमात्तारा बुधं जज्ञे बुधपुत्रः पुरूरवाः । बुधपुत्रादथोर्वश्यां षट् पुत्रास्तु श्रुतात्मकः ॥
विश्वावसुः शतायुश्च आयुर्धीमानमावसुः ॥ २ ॥
अमावसोर्भीमनामा भीमपुत्रश्च काञ्चनः । काञ्चनस्य सुहोत्रोऽभूज्जह्नुश्चाभूत्सुहोत्रतः ॥ ३ ॥
जह्नोः सुमन्तुरभवत्सुमन्तोरपजापकः । बलाकाश्वस्तस्य पुत्रो बलाकाश्वात्कुशः स्मृतः ४ ॥
कुशाश्वः कुशनाभश्चामूर्त्तरयो वसुः कुशात् । गाधिः कुशाश्वात्संजज्ञे विश्वामित्रस्तदात्मजः ॥
कन्या सत्यवती दत्ता ऋचीकाय द्विजाय सा । ऋचीकाज्जमदग्निश्च रामस्तस्याभवत्सुतः ॥ ६ ॥
विश्वामित्राद्देवरातमधुच्छन्दादयः सुताः । आयुषो नहुषस्तस्मादनेना रजिरम्भकौ ॥ ७ ॥
क्षत्रवृद्धः क्षत्रवृद्धात्सुहोत्रश्चाभवन्नृपः । काश्यकाशगृत्समदाः सुहोत्रादभवंस्त्रयः ॥ ८ ॥
गृत्समदाच्छौनकोऽभूत्काश्याद्दीर्घतमास्तथा । वैद्यो धन्वन्तरिस्तस्मात्केतुमांश्च तदात्मजः ९ ॥
भीमरथः केतुमतो दिवोदासस्तदात्मजः । दिवोदासात्प्रतर्दनः शत्रुजित्सोऽत्र विश्रुतः ॥१०॥
ऋतध्वजस्तस्य पुत्रो ह्यलर्कश्च ऋतध्वजात् । अलर्कात्सन्नतिर्जज्ञे सुनीतः सन्नतेः सुतः ॥११॥
सत्यकेतुः सुनीतस्य सत्यकेतोर्विभुः सुतः । विभोस्तु सुविभुः पुत्रः सुविभोः सुकुमारकः १२॥
सुकुमाराद्धृष्टकेतुर्वीतिहोत्रस्तदात्मजः । वीतिहोत्रस्य भर्गोऽभूद्भर्गभूमिस्तदात्मजः ॥१३॥
वैष्णवाः स्युर्महात्मान इत्येते काशयो नृपाः । पञ्चपुत्रशतान्यासन्रजेः शक्रेण संहृताः ॥१४॥
प्रतिक्षत्रः क्षत्रवृद्धात्सञ्जयश्च तदात्मजः । विजयः सञ्जयस्यापि विजयस्य कृतः सुतः ॥१५॥
कृताद्वृषधनश्चाभूत्सहदेवस्तदात्मजः । सहदेवाददीनोऽभूज्जयत्सेनोऽप्यदीनतः ॥१६॥
जयत्सेनात्संकृतिश्च क्षत्रधर्मा च संकृतेः । यतिर्ययातिः संयातिरयातिर्वै कृतिः क्रमात् ॥
नहुषस्य सुताः ख्याता ययातेर्नृपतेस्तथा ॥ १७ ॥
यदुश्च तुर्वसुश्चैव देवयानी व्यजायत । द्रुह्युश्चानुश्च पूरुश्च शर्मिष्ठा वार्षपार्वणी ॥१८॥
सहस्रजित्क्रोष्टुमना रघुश्चैव यदोः सुतः । सहस्रजितः शतजित्तस्माद् वै हयहैहयौ ॥१९॥
अनरण्यो हयात्पुत्रो धर्मो हैहयतोऽभवत् । धर्मस्य धर्मनेत्रोऽभूत्कुन्तिर्वै धर्मनेत्रतः ॥२०॥
कुन्तेर्बभूव साहञ्जिर्महिष्मांश्च तदात्मजः । भद्रश्रेण्यस्तस्य पुत्रो भद्रश्रेण्यस्य दुर्दमः ॥२१॥

धनको दुर्दमाच्चैव कृतवीर्य्यश्च धानकः । कृताग्निः कृतकर्मा च कृतोगः सुमहाब.. ॥२२॥
कृतवीर्य्यादर्जुनोऽभूदर्जुनाच्छूरसेनकः । जयध्वजो मधुः शूरो वृषणः पञ्च सुव्रताः ॥२३॥
जयध्वजात्तालजङ्घो भरतस्तालजङ्घतः । वृषणस्य मधुः पुत्रो मधोर्वृष्णयादिवंशकः ॥२४॥
क्रोष्टोर्विजनिवान्पुत्र आहिस्तस्य महात्मनः । आहेरुशङ्कुः संजज्ञे तस्य चित्ररथः सुतः ॥२५॥
शशबिन्दुश्चित्ररथात्पत्न्योर्लक्षञ्च तस्य ह । दशलक्षञ्च पुत्राणां पृथुकीर्त्यादयो वराः ॥२६॥
पृथुकीर्त्तिः पृथुजयः पृथुदानः पृथुश्रवाः । पृथुश्रवसोऽभूत्तम उशनास्तमसोऽभवत् ॥२७॥
तत्पुत्रः शितगुर्नाम श्रीरुक्मकवचस्ततः । रुक्मश्च पृथुरुक्मश्च ज्यामघः पालितो हरिः ॥२८॥
श्रीरुक्मकवचस्यैते विदर्भो ज्यामघात्तथा । भार्य्यायाञ्चैव शैव्यायां विदर्भात्क्रथकौशिकौ२९॥
रोमपादो रोमपादाद्बभ्रुर्बभ्रोर्धृतिस्तथा । कौशिकस्य ऋचिः पुत्रः ततश्चैद्यो नृपः किल ॥३०॥
कुन्तिः किलास्य पुत्रोऽभूत्कुन्तेर्वृष्णिः सुतः स्मृतः । वृष्णेश्च निवृतिः पुत्रो दशार्हो निवृतेस्तथा ॥
दशार्हस्य सुतो व्योमा जीमूतश्च तदात्मजः । जीमूताद्विकृतिर्जज्ञे ततो भीमरथोऽभवत् ॥३२॥
ततो मधुरथो जज्ञे शकुनिस्तस्य चात्मजः । करम्भिः शकुनेः पुत्रस्तस्य देवमतः स्मृतः॥३३॥
देवक्षत्रो देवमतो देवक्षत्रान्मधुः स्मृतः । कुरुवंशो मधोः पुत्रो ह्यनुश्च कुरुवंशतः ॥३४॥
पुरुहोत्रो ह्यनोः पुत्रो ह्यंशुश्च पुरुहोत्रतः । सत्वश्रुतः सुतश्चांशोस्ततो वै सात्वतो नृपः॥३५॥
भजिनो भजमानश्च सात्वतादन्धकः सुतः । महाभोजो वृष्णिदिव्यावन्यो देवावृधोऽभवत् ॥
निमिवृष्णी भजमानादयुताजित्तथैव च । शतजिच्च सहस्राजिद्बभ्रुर्देवो बृहस्पतिः ॥३७॥
महाभोजात्तु भोजोऽभूद्वृष्णेश्चैव सुमित्रकः । स्वधाजि.संज्ञकस्तस्मादनमित्रशिनी तथा ॥३८॥
अनमित्रस्य निघ्नोऽभून्निघ्नाच्छत्राजितोऽभवत् । प्रसेनश्चापरः ख्यातो ह्यनमित्राच्छिविस्तथा ॥
शिवेस्तु सत्यकः पुत्रः सत्यकात्सात्यकिस्तथा । सात्यकेः सञ्जयः पुत्रः कुलिश्चैव तदात्मजः ॥
कुलेर्युगन्तरः पुत्रस्ते शैवेयाः प्रकीर्त्तिताः ॥४०॥

अनमित्रान्वये वृष्णिः श्वफल्कश्चित्रकः सुतः । श्वफल्काच्चैव गान्दिन्यामक्रूरो वैष्णवोऽभवत् ॥
उपमद्गुरथाक्रूराद्देवद्योतस्ततः सुतः । देववानुपदेवश्च अक्रूरस्य सुतौ स्मृतौ ॥४२॥
पृथुर्विपृथुश्चित्रस्य अन्तकस्य शुचिः स्मृतः । कुकुरो भजमानस्य तथा कम्बलबर्हिषः ॥४३॥
धृष्टस्तु कुकुराज्जज्ञे तस्मात्कापोतरोमकः । तदात्मजो विलोमा च विलोम्नस्तुम्बुरुः सुतः४४॥
तस्माच्च दुन्दुभिर्जज्ञे पुनर्वसुरतः स्मृतः । तस्याहुकश्चाहुकी च कन्या चैवाहुकस्य तु ॥४५॥
देवकश्चोग्रसेनश्च देवकाद्देवकी त्वभूत् । वृकदेवोपदेवा च सहदेवा सुरक्षिता ॥४६॥
श्रीदेवी शान्तिदेवी च वसुदेव उवाह ताः । देवश्चानुपदेवश्च सहदेवासुतौ स्मृतौ ॥४७॥

उग्रसेनस्य कंसोऽभूत्सुनामा च वटादयः । विदूरथो भजमानाच्छूरश्चाभूद्विदूरथात् ॥४८॥
विदूरथसुतस्याथ शूरस्यापि समी सुतः । प्रतिक्षत्रश्च समिनः स्वयम्भोजस्तदात्मजः ॥४९॥
हृदिकश्च स्वयम्भोजात्कृतवर्मा तदात्मजः । देवः शतधनुश्चैव शूराद्वै देवमीढुषः ॥५०॥
दश पुत्रा मारिषायां वसुदेवादयोऽभवन् । पृथा च श्रुतदेवी च श्रुतकीर्त्तिः श्रुतश्रवाः ॥५१॥
राजाधिदेवी शूराच्च पृथां कुन्तेः सुतामदात् । सा दत्ता कुन्तिना पाण्डोस्तस्यां धर्मानिलेन्द्रकैः॥
युधिष्ठिरो भीमपार्थौ नकुलः सहदेवकः । माद्रयां नासत्यदस्राभ्यां कुन्त्यां कर्णः पुराऽभवत् ॥
श्रुतदेव्यां दन्तवक्रो जज्ञे वै युद्धदुर्मदः । अन्तर्द्धानादयः पञ्च श्रुतकीर्त्त्यांश्च कैकयात् ॥५४॥
राजाधिदेव्यां बिन्दश्च अनुबिन्दश्च जज्ञिरे । श्रुतश्रवा दमघोषात्प्रजज्ञे शिशुपालकम् ॥५५॥
पौरवी रोहिणी भार्य्या मदिरानकदुन्दुभेः । देवकीप्रमुखा भद्रा रोहिण्यां बलभद्रकः ॥५६॥
सारणाद्याः शठश्चैव रेवत्यां बलभद्रतः । निशठश्चोल्मुको जातो देवक्यां षट् च जज्ञिरे ॥५७॥
कीर्त्तिमांश्च सुषेणश्च उदार्य्यो भद्रसेनकः । ऋजदासो भद्रदेवः कंस एवावधीच्च तान् ॥५८॥
संकर्षणः सप्तमोऽभूदष्टमः कृष्ण एव च । षोडशस्त्रीसहस्राणि भार्य्याणाञ्चाभवन्हरेः ॥५९॥
रुक्मिणी सत्यभामा च लक्ष्मणा चारुहासिनी । श्रेष्ठा जाम्बवती चाष्टौ जज्ञिरे ताः सुतान्बहून् ॥
प्रद्युम्नश्चारुदेष्णश्च प्रधानाः साम्ब एव च । प्रद्युम्नादनिरुद्धोऽभूत्ककुद्मिन्यां महाबलः ॥६१॥
अनिरुद्धात्सुभद्रायां वज्रो नाम नृपोऽभवत् । प्रतिबाहुर्वज्रसुतश्चारुस्तस्य सुतोऽभवत् ॥६२॥
वह्निस्तु तुर्वसोर्वंशे वह्नेर्भार्गोऽभवत्सुतः । भार्गाद्भानुरभूत्पुत्रो भानोः पुत्रः करन्धमः ॥६३॥
करन्धमस्य मरुतो द्रुह्योर्वंशं निबोध मे । द्रुह्योस्तु तनयः सेतुरारद्धश्च तदात्मजः ॥
आरद्धस्यैव गान्धारो धर्मो गान्धारतोऽभवत् ॥६४॥

धृतस्तु धर्मपुत्रोऽभूद्दुर्गमश्च धृतस्य तु । प्रचेता दुर्गमस्यैव अनोर्वंशं शृणुष्व मे ॥६५॥
अनोः स्वभानरः पुत्रस्तस्मात्कालञ्जयोऽभवत् । कालञ्जयात्सृञ्जयोऽभूत्सृञ्जयात्तु पुरञ्जयः ॥६६॥
जनमेजयस्तु तत्पुत्रो महाशालस्तदात्मजः । महामना महाशालादुशीनर इति स्मृतः ॥६७॥
उशीनराच्छिबिर्जज्ञे वृषदर्भः शिबेः सुतः । महामनोजात्तितिक्षोः पुत्रोऽभूच्च रुषद्रथः ॥६८॥
हेमो रुषद्रथाज्जज्ञे सुतपा हेमतोऽभवत् । बलिः सुतपसो जज्ञे अङ्गवङ्गकलिङ्गकाः ॥६९॥
अन्ध्रः पौण्ड्रश्च बालेया अनपालस्तथाङ्गतः । अनपालाद्दिविरथस्ततो धर्मरथोऽभवत् ॥७०॥
रोमपादो धर्मरथाच्चतुरङ्गस्तदात्मजः । पृथुलाक्षस्तस्य पुत्रश्चम्पोऽभूत्पृथुलाक्षतः ॥७१॥
चम्पपुत्रश्च हर्य्यङ्गस्तस्य भद्ररथः सुतः । बृहत्कर्मा सुतस्तस्य बृहद्भानुस्ततोऽभवत् ॥७२॥
बृहन्मना बृहद्भानोस्तस्य पुत्रो जयद्रथः । जयद्रथस्य विजयो विजयस्य धृतिः सुतः ॥७३॥

धृतेर्धृतव्रतः पुत्रः सत्यधर्मा धृतव्रतात् । तस्य पुत्रस्त्वाधिरथः कर्णस्तस्य सुतोऽभवत् ॥
वृषसेनस्तु कर्णस्य पुरुवंशान् श्रृणुष्व मे ॥७४॥
इति श्रीगारुडे महापुराणे चन्द्रवंशवर्णनं नाम
ऊनचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१३९॥

चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ।

हरिरुवाच

जनमेजयः पुरोश्चाभून्मनस्युर्जनमेजयात् । तस्य पुत्रश्चाभयदः सम्बुश्चाभयदादभूत् ॥ १ ॥
सम्बोर्बहुगतिः पुत्रः संजातिस्तस्य चात्मजः । वत्सजातिश्च संजातेः रौद्राश्वश्च तदात्मजः ॥ २ ॥
ऋतेयुः स्थण्डिलेयुश्च कक्षेयुश्च कृतेयुकः । जलेयुः सन्ततेयुश्च रौद्राश्वस्य सुता वराः ॥ ३ ॥
रतिनार ऋतेयोश्च तस्य प्रतिरथः सुतः । तस्य मेधातिथिः पुत्रस्तत्पुत्रश्चैनिलः स्मृतः ॥ ४ ॥
ऐनिलस्य तु दुष्मन्तो भरतस्तस्य चात्मजः । शकुन्तलायां संजज्ञे वितथो भरतादभूत् ॥ ५ ॥
वितथस्य पुत्रो मन्युर्मन्योश्चैव नरः स्मृतः । नरस्य संकृतिः पुत्रो गर्गो हि संकृतेः सुतः ॥ ६ ॥
गर्गादमन्युः पुत्रो वै शिनिः पुत्रो व्यजायत । मन्युपुत्रान्महावीर्य्यादुरुक्षयः सुतोऽभवत् ॥ ७ ॥
उरुक्षयात्त्रय्यारुणिर्व्यूहक्षत्राच्च मन्युजात् । सुहोत्रस्तस्य हस्ती च अजमीढद्विमीढकौ ॥ ८ ॥
हस्तिनः पुरुमीढश्च कण्वोऽभूदजमीढतः । कण्वान्मेधातिथिर्जज्ञे यतः काण्वायना द्विजाः ॥
अजमीढाद् बृहदिषुस्तत्पुत्रश्च बृहद्धनुः । बृहत्कर्मा तस्य पुत्रस्तस्य पुत्रो जयद्रथः ॥ १० ॥
जयद्रथाद्विश्वजिच्च सेनजिच्च तदात्मजः । रुचिराश्वः सेनजितः पृथुसेनस्तदात्मजः ॥ ११ ॥
पारस्तु पृथुसेनस्य पाराद् द्वीपोऽभवन्नृपः । नृपस्य समरः पुत्रः सुकृतिश्च पृथोः सुतः ॥ १२ ॥
विभ्राजः सुकृतेः पुत्रो विभ्राजादश्वहोऽभवत् । कृत्यां तस्माद् ब्रह्मदत्तो विष्वक्सेनस्तदात्मजः ३॥
यवीनरो द्विमीढस्य धृतिमांश्च यवीनरात् । धृतिमतः सत्यधृतिर्दृढनेमिस्तदात्मजः ॥ १४ ॥
दृढनेमेः सुपार्श्वोऽभूत्सुपार्श्वात्सन्नतिस्तथा । कृतस्तु सन्नतेः पुत्रः कृतादुग्रायुधोऽभवत् ॥ १५ ॥
उग्रायुधाच्च क्षेम्योऽभूत्सुधीरस्तु तदात्मजः । पुरञ्जयः सुधीराच्च तस्य पुत्रो विदूरथः ॥ १६ ॥
अजमीढान्नलिन्याञ्च नीलो नाम नृपोऽभवत् । नीलाच्छान्तिरभूत्पुत्रः सुशान्तिस्तस्य चात्मजः ॥
सुशान्तेश्च पुरुर्जातो ह्यर्कस्तस्य सुतोऽभवत् । अर्कस्य चैव हर्य्यश्वो हर्य्यश्वान्मुकुलोऽभवत् ॥
यवीनरो बृहद्भानुः कम्पिल्लः सृञ्जयस्तथा । पाञ्चालान्मुकुलाज्जज्ञे शरद्वान् वैष्णवो महान् १९॥
दिवोदासो द्वितीयोऽस्य अहल्यायां शरद्वतः । शतानन्दोऽभवत्पुत्रस्तस्य सत्यधृतिः सुतः ॥२०॥

कृपः कृपी सत्यधृतेरुर्वश्या वीर्य्यहानितः । द्रोणपत्नी कृपी जज्ञे अश्वत्थामानमुत्तमम् ॥२१॥
दिवोदासान्मित्रयुश्च मित्रयोश्च्यवनोऽभवत् । सुदासश्च्यवनाज्जज्ञे सौदासस्तस्य चात्मजः॥२२॥
सहदेवस्तस्य पुत्रः सहदेवात्तु सोमकः । जन्तुस्तु सोमकाज्जज्ञे पृषतश्चापरो महान् ॥२३॥
पृषताद् द्रुपदो जज्ञे धृष्टद्युम्नस्ततोऽभवत् । धृष्टद्युम्नाद् धृष्टकेतुर्ऋक्षोऽभूदजमीढ़तः ॥ २४ ॥
ऋक्षात् संवरणो जज्ञे कुरुः संवरणादभूत् । सुधनुश्च परीक्षिच्च जह्नुश्चैव कुरोः सुताः ॥ २५ ॥
सुधनुषः सुहोत्रोऽभूच्च्यवनोऽभूत्सुहोत्रतः । च्यवनात्कृतको जज्ञे अथोपरिचरो वसुः ॥२६॥
बृहद्रथश्च प्रत्यग्रः सत्याद्याश्च वसोः सुताः । बृहद्रथात्कुशाग्रश्च कुशाग्रादृषभोऽभवत् ॥२७॥
ऋषभात्पुष्पवांस्तस्माज्जज्ञे सत्यहितो नृपः । सत्यहितात्सुधन्वाऽभूज्जह्नुश्चैव सुधन्वतः ॥२८॥
बृहद्रथाजरासन्धः सहदेवस्तदात्मजः । सहदेवाच्च सोमापिः सोमापेः श्रुतवान् ततः॥२९॥
भीमसेनोग्रसेनौ च श्रुतसेनोऽपराजितः । जनमेजयश्चान्योऽभूज्जह्नोस्तु सुरथोऽभवत् ॥३०॥
विदूरथस्तु सुरथात्सार्वभौमो विदूरथात् । जयसेनः सार्वभौमादावाधीतस्तदात्मजः ॥३१॥
अयुतायुस्तस्य पुत्रस्तस्य चाक्रोधनः सुतः । अक्रोधनस्यातिथिश्च ऋक्षोऽभूदतिथेः सुतः ॥३२॥
ऋक्षाच्च भीमसेनोऽभूद्दिलीपो भीमसेनतः। प्रतीपोऽभूद्दिलीपाच्च देवापिस्तु प्रतीपतः ॥३३॥
शन्तनुश्चैव वाह्लीकस्त्रयस्ते भ्रातरो नृपाः । वाह्लीकात्सोमदत्तोऽभूद्भूरिर्भूरिश्रवास्ततः ॥३४॥
शालश्च शन्तनोर्भीष्मो गङ्गायां धार्मिको महान् । चित्राङ्गदविचित्रौ तु सत्यवत्यान्तु शन्तनोः॥
विचित्रवीर्य्यस्य भार्य्ये तु अम्बिकाम्बालिके तयोः। धृतराष्ट्रन्तु पाण्डुञ्च तद्दास्यां विदुरं तथा ॥
व्यास उत्पादयामास गान्धारी धृतराष्ट्रतः । शतं पुत्रं दुर्योधनाद्यं पाण्डोः पञ्च प्रजज्ञिरे ॥३७॥
प्रतिबिन्ध्यः श्रुतसोमः श्रुतकीर्त्तिश्च चार्जुनात् । शतानीकः श्रुतकर्मा द्रौपद्यां पञ्च वै क्रमात् ॥
यौधेयी च हिड़िम्बा च कैशी चैव सुभद्रिका । विजयी वै रेणुमती पञ्चभ्यस्तु सुताः क्रमात् ॥
देवको घटोत्कचश्च अभिमन्युश्च सर्वगः । सुहोत्रो निरमित्रश्च परीक्षिदभिमन्युजः ॥
जनमेजयोऽस्य ततो भविष्यांश्च नृपान् शृणु ॥ ४० ॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे चन्द्रवंशवर्णनं नाम
चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४०॥

एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

हरिरुवाच

शतानीको ह्यश्वमेधदत्तश्चाप्यधिसोमकः । कृष्णोऽनिरुद्धश्चाप्युष्णस्ततश्चित्ररथो नृपः ॥१॥

शुचिद्रथो वृष्णिमांश्च सुषेणश्च सुनीथकः । नृचक्षुश्च मुखाबाणो मेधावी च नृपञ्जयः ॥२॥
पारिप्लवश्च सुनयो मेधावी च नृपञ्जयः । हरिस्तिग्मो बृहद्रथः शतानीकः सुदानकः ॥३॥
उदानोऽह्निनरश्चैव दण्डपाणिर्निमित्तकः । क्षेमकश्च ततः शूद्रः पिता पूर्वस्ततः सुतः ॥४॥
बृहद्बलास्तु कथ्यन्ते नृपाश्चेक्ष्वाकुवंशजाः । बृहद्बलादुरुक्षयो वत्सव्यूहस्ततः परः ॥५॥
बृहदश्वो भानुरथः प्रतीव्यश्च प्रतीतकः । मनुदेवः सुनक्षत्रः किन्नरश्चान्तरिक्षकः ॥६॥
सुपर्णः कृतजिच्चैव बृहद्भ्राजश्च धार्मिकः । कृतञ्जयो धनञ्जयः सञ्जयः शाक्य एव च ॥७॥
शुद्धोदनो बाहुलश्च सेनजित्क्षुद्रकस्तथा । समित्रः कुड़वश्चातः सुमित्रो मागधान् शृणु ॥८॥
जरासन्धः सहदेवः सोमापिश्च श्रुतश्रवाः । अयुतायुर्निरमित्रः स्वक्षेत्रो बहुकर्मकः ॥९॥
श्रुतञ्जयः सेनजिच्च भूरिश्चैव शुचिस्तथा । क्षेम्यश्च सुव्रतो धर्मः श्मश्रुमो दृढ़सेनकः ॥१०॥
सुमतिः सुबलो नीतो सत्यजिद्विश्वजित्तथा । इषुञ्जयश्च इत्येते नृपा बार्हथद्रथाः स्मृताः ॥११॥
अधर्मिष्ठाश्च शूद्राश्च भविष्यन्ति नृपास्ततः । स्वर्गादिकृद्धि भगवान्साक्षान्नारायणोऽव्ययः ॥१२॥
नैमित्तिकः प्राकृतिकस्तथैवात्यन्तिको लयः । याति भूः प्रलयञ्चाप्सु आपस्तेजसि पावकः ॥१३॥
वायौ वायुश्च वियति आकाशं यात्यहंकृतौ । अहंबुद्धौ मतिर्जीवे जीवोऽव्यक्ते तदात्मनि ॥
आत्मा परेश्वरो बिष्णुरेको नारायणो नरः । अविनाश्यपरं सर्वं जगत्सर्गादि नाशि हि ॥१५॥
नृपादयो गता नाशमतः पापं विवर्जयेत् । धर्मं कुर्य्यात्स्थिरं येन पापं हित्वा हरिं व्रजेत् ॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे राजवंशो नाम एकचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४१॥

द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

वंशादीन्पालयामास अवतीर्णो हरिः प्रभुः । दैत्यधर्मस्य नाशार्थं वेदधर्मादिगुप्तये ॥१॥
मत्स्यादिकस्वरूपेण अवतारं करोत्यजः । मत्स्यो भूत्वा हयग्रीवं दैत्यं हत्वाजिकण्टकम् ॥२॥
वेदानानीय मन्वादीन्पालयामास केशवः । मन्दरं धारयामास कूर्मो भूत्वा हिताय च ॥३॥
क्षीरोदमथने वैद्यो देवो धन्वन्तरिर्ह्यभूत् । बिभ्रत्कमण्डलुं पूर्णममृतेन समुत्थितः ॥४॥
आयुर्वेदमथाष्टाङ्गं सुश्रुताय स उक्तवान् । अमृतं पाययामास स्त्रीरूपी च सुरान् हरिः ॥५॥
अवतीर्णो वराहोऽथ हिरण्याक्षं जघान ह । पृथिवीं धारयामास पालयामास देवताः ॥६॥
नरसिंहोऽवतीर्णोऽथ हिरण्यकशिपुं रिपुम् । दैत्यान्निहतवान्वेदधर्मादीनभ्यपालयत् ॥७॥

ततः परशुरामोऽभूज्जमदग्नेर्जगत्प्रभुः । त्रिःसप्तकृत्वः पृथिवीं चक्रे निःक्षत्रियां हरिः ॥८॥
कार्त्तवीर्य्यं जघानाजौ कश्यपाय महीं ददौ । यागं कृत्वा महाबाहुर्महेन्द्रे पर्वते स्थितः ॥९॥
ततो रामो भविष्णुश्च चतुर्धा दुष्टमर्दनः । पुत्रो दशरथाज्जज्ञे रामश्च भरतोऽनुजः ॥१०॥
लक्ष्मणश्चाथ शत्रुघ्नो रामभार्य्या च जानकी ॥११॥
रामश्च पितृसत्यार्थं मातृभ्यो हितमाचरन् । शृङ्गवेरं चित्रकूटं दण्डकारण्यमागतः ॥१२॥
नासां शूर्पणखायाश्च छित्वाथ खरदूषणम् । हत्वा स राक्षसं सीतापहारिरजनीचरम् ॥१३॥
रावणं चानुजं तस्य लङ्कापुर्य्यां विभीषणम् । रक्षोराज्ये च संस्थाप्य सुग्रीवहनुमन्मुखैः ॥१४॥
आरुह्य पुष्पकं सार्द्धं सीतयां पतिभक्तया । सुमहापतिव्रतया सोऽयोध्यां स्वपुरीं गतः ॥१५॥
राज्यञ्चकार देवादीन्पालयामास स प्रजाः । धर्मसंरक्षणं चक्रे अश्वमेधादिकान्क्रतून् ॥१६॥
सुमहापतिव्रतया रेमे रामो यथासुखम् । रावणस्य गृहे सीता स्थित्वापि न हि रावणम्१७॥
कर्मणा मनसा वाचा सा गता राघवं विना । पतिव्रता तु सा सीता अनसूया यथैव तु ॥१८॥
पतिव्रतायाः सीताया माहात्म्यं कथयाम्यहम् । कौशिको ब्राह्मणः कुष्ठी प्रतिष्ठानेऽभवत्पुरा ॥
तं तथा व्याधितं भार्य्या पतिं देवमिवार्चयत् । निर्भर्त्सितापि भर्त्तारं तममन्यत दैवतम् ॥२०॥
भर्त्रोक्ता सानयद्वेश्यां शुल्कमादाय चाधिकम् । पथि शूले तदा प्रोतमचौरं चौरशङ्कया ॥२१॥
माण्डव्यमतिदुःखार्त्तमन्धकारेऽथ स द्विजः । पत्नीस्कन्धसमारूढश्चालयामास कौशिकः ॥२२॥
पादावमर्षणात्क्रुद्धो माण्डव्यस्तमुवाच ह । सूर्य्योदये मृतिस्तस्य येनाहं चालितः पदा ॥२३॥
तच्छ्रुत्वा प्राह तद्भार्य्या सूर्य्यो नोदयमेष्यति । ततः सूर्य्योदयाभावादभवत्सततं निशा ॥२४॥
बहून्यब्दप्रमाणानि ततो देवा भयं ययुः । ब्रह्माणं शरणं जग्मुस्तानूचे पद्मसम्भवः ॥२५॥
प्रशाम्यते तेजसैव तपस्तेजस्त्वनेन वै । पतिव्रताया माहात्म्यान्नोद्गच्छति दिवाकरः२६॥
तस्य चानुदयाद्धानिर्मर्त्त्यानां भवतां तथा । तस्मात्पतिव्रतामत्रेरनसूयां तपस्विनीम् ॥२७॥
प्रसादयत वै पत्नीं भानोरुदयकाम्यया । तैः सा प्रसादिता गत्वा ह्यनसूया पतिव्रता २८॥
कृत्वादित्योदयं सा च तं भर्त्तारमजीवयत् । पतिव्रतानसूयायाः सीताभूदधिका किल ॥२९॥
इति श्रीगारुडे महापुराणे सीतामाहात्म्यं नाम द्विचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४२॥

त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

रामायणमतो वक्ष्ये श्रुतं पापविनाशनम् । विष्णुनाभ्यब्जतो ब्रह्मा मरीचिस्तत्सुतोऽभवत् ॥१॥

मरीचेः कश्यपस्तस्माद्रविस्तस्मान्मनुः स्मृतः । मनोरिक्ष्वाकुरस्याभूद्वंशे राजा रघुः स्मृतः ॥२॥
रघोरजस्ततो जातो राजा दशरथो बली । तस्य पुत्रास्तु चत्वारो महाबलपराक्रमाः ॥३॥
कौशल्यायामभूद्रामो भरतः कैकयीसुतः । सुतौ लक्ष्मणशत्रुघ्नौ सुमित्रायां बभूवतुः ॥४॥
रामो भक्तः पितुर्मातुर्विश्वामित्रादवाप्तवान् । अस्त्रग्रामं ततो यक्षीं ताड़कां प्रजघान ह ॥५॥
विश्वामित्रस्य यज्ञे वै सुबाहुं न्यवधीद्बली । जनकस्य क्रतुं गत्वा उपयेमेऽथ जानकीम् ॥६॥
उर्मिलां लक्ष्मणो वीरो भरतो माण्डवीं सुताम् । शत्रुघ्नो वै कीर्त्तिमतीं कुशध्वजसुते उभे ॥७॥
पित्रादिभिरयोध्यायां गत्वा रामादयः स्थिताः । युधाजितं मातुलञ्च शत्रुघ्नभरतौ गतौ ॥८॥
गतयोर्नृपवर्य्योऽसौ राज्यं दातुं समुद्यतः । रामाय तत्सुपुत्राय कैकेय्या प्रार्थितं तदा ॥
चतुर्दशसमा वासो वने रामस्य वाञ्छितः ॥ ६ ॥
रामः पितृहितार्थञ्च लक्ष्मणेन च सीतया । राज्यञ्च तृणवत्त्यक्त्वा श्रृङ्गवेरपुरं गतः ॥१०॥
रथं त्यक्त्वा प्रयागञ्च चित्रकूटगिरिं गतः । रामस्य तु वियोगेन राजा स्वर्गं समाश्रितः॥११॥
संस्कृत्य भरतश्चागाद्राममाह बलान्वितः । अयोध्यां तु समागत्य राज्यं कुरु महामते ॥१२॥
स नैच्छत्पादुके दत्त्वा राज्याय भरताय तु । विसर्जितोऽथ भरतो रामराज्यमपालयत् ॥१३॥
नन्दिग्रामे स्थितो भक्तो ह्ययोध्यां नाविशद् व्रती । रामोऽपि चित्रकूटाच्च अत्रेराश्रममाययौ ॥
नत्वा सुतीक्ष्णं चागस्त्यं दण्डकारण्यमागतः । तत्र शूर्पणखा नाम राक्षसी चात्तुमागता ॥१५॥
निकृत्य कर्णौ नासे च रामेणाथापराहिता । तत्प्रेरितः खरश्चागाद्दूषणस्त्रिशिरास्तथा ॥१६॥
चतुर्दशसहस्रेण रक्षसां तु बलेन च । रामोऽपि प्रेषयामास बाणैर्यमपुरञ्च तान् ॥१७॥
राक्षस्या प्रेरितोऽभ्यागाद्रावणो हरणाय हि । मृगरूपं स मारीचं कृत्वाग्रेऽथ त्रिदण्डधृक् ॥
सीतया प्रेरितो रामो मारीचं निजघान ह । म्रियमाणः स च प्राह हा सीते लक्ष्मणेति च१९॥
सीतोक्तो लक्ष्मणोऽथागाद्रामश्चानु ददर्श तम् । उवाच राक्षसी माया नूनं सीता हृतेति सा॥२०॥
रावणोऽन्तरमासाद्य अङ्केनादाय जानकीम् । जटायुषं विनिर्भिद्य ययौ लङ्कां ततो बली ॥२१॥
अशोकवृक्षच्छायायां रक्षितां तामधारयत् । आगत्य रामः शून्याञ्च पर्णशालां ददर्श ह ॥२२॥
शोकं कृत्वाथ जानक्या मार्गणं कृतवान्प्रभुः । जटायुषञ्च संस्कृत्य तदुक्तो दक्षिणां दिशम्॥२३॥
गत्वा सख्यं ततश्चक्रे सुग्रीवेण च राघवः । सप्त तालान्विनिर्भिद्य शरेणानतपर्वणा ॥२४॥
बालिनञ्च विनिर्भिद्य किष्किन्ध्यायां हरीश्वरम् । सुग्रीवं कृतवान्राम ऋष्यमूके स्वयं स्थितः ॥
सुग्रीवः प्रेषयामास वानरान्पर्वतोपमान् । सीताया मार्गणं कर्त्तुं पूर्वाद्यैः सुमहाबलान्॥२६॥
प्रतीचीमुत्तरां प्राचीं दिशं गत्वा समागताः । दक्षिणान्तु दिशं ये च मार्गयन्तोऽथ जानकीम् ॥

वनानि पर्वतान्द्वीपान्नदीनां पुलिनानि च । जानकीन्ते ह्यपश्यन्तो मरणे कृतनिश्चयाः ॥२८॥
सम्पातिवचनाज्ज्ञात्वा हनूमान्कपिकुञ्जरः । शतयोजनविस्तीर्णं पुप्लुवे मकरालयम् ॥२९॥
अपश्यज्जानकीं तत्र अशोकवनिकास्थिताम् । भर्त्सितां राक्षसीभिश्च रावणेन च रक्षसा ॥३०॥
भव भार्य्येति वदता चिन्तयन्तीञ्च राघवम् । अङ्गुरीयं कपिर्दत्त्वा सीतां कौशल्यमब्रवीत् ॥३१॥
रामस्य तस्य दूतोऽहं शोकं मा कुरु मैथिलि । स्वाभिज्ञानञ्च मे देहि येन रामः स्मरिष्यति ॥
तच्छ्रुत्वा प्रददौ सीता वेणीरत्नं हनूमते । यथा रामो नयेच्छीघ्रं तथा वाच्यं त्वया गते ॥
तथेत्युक्त्वा तु हनुमान्वनं दिव्यं बभञ्ज ह । हत्वाक्षं राक्षसांश्चान्शान्बन्धनं स्वयमागतः ॥३४॥
सर्वैरिन्द्रजितो बाणैर्दृष्ट्वा रावणमब्रवीत् । रामदूतोऽस्मि हनुमान्देहि रामाय मैथिलीम् ३५॥
एतच्छ्रुत्वा प्रकुपितो दीपयामास पुच्छकम् । कपिर्ज्वलितलाङ्गूलो लङ्कां देहे महाबलः ॥३६॥
दग्ध्वा लङ्कां समायातो रामपार्श्वं स वानरः । जग्ध्वा फलं मधुवने दृष्टा सीतेत्यवेदयत् ॥३७॥
वेणीरत्नञ्च रामाय रामो लङ्कापुरीं ययौ । ससुग्रीवः सहनुमान्साङ्गदाद्यः सलक्ष्मणः ॥३८॥
विभीषणोऽपि सम्प्राप्तः शरणं राघवं प्रति । लङ्कैश्वर्य्येष्वभ्यषिञ्चद्रामस्तं रावणानुजम् ॥३९॥
रामो नलेन सेतुञ्च कृत्वाब्धौ चोत्ततार तम् । सुवेलावस्थितश्चैव पुरीं लङ्कां ददर्श ह ॥४०॥
अथ ते वानरा वीरा नीलाङ्गदनलादयः । धूम्रधूम्राक्षवीरेन्द्रा जाम्बवत्प्रमुखास्तदा ॥४१॥
मैन्दद्विविदमुख्यास्ते पुरीं लङ्कां बभञ्जिरे । राक्षसांश्च महाकायान्कालाञ्जनचयोपमान् ॥४२॥
रामः सलक्ष्मणो हत्वा सकपिः सर्वराक्षसान् । विद्युज्जिह्वञ्च धूम्राक्षं देवान्तकनरान्तकौ ॥४३॥
महोदरमहापार्श्वावतिकायं महाबलम् । कुम्भं निकुम्भं मत्तञ्च मकराक्षं ह्यकम्पनम् ॥४४॥
प्रहस्तं वीरमुन्मत्तं कुम्भकर्णं महाबलम् ॥४५॥
रावणिं लक्ष्मणश्छित्त्वा ह्यस्त्राद्यैराघवो बली । निकृत्य बाहुचक्राणि रावणं तु व्यपातयत् ॥४६॥
सीतां शुद्धां गृहीत्वाथ विमाने पुष्पके स्थितः । सवानरः समायातो ह्ययोध्यां प्रवरां पुरीम् ॥४७॥
तत्र राज्यं चकाराथ पुत्रवत्पालयन्प्रजाः । दशाश्वमेधानाहृत्य गयाशिरसि पातनम् ॥४८॥
पिण्डानां विधिवत्कृत्वा दत्त्वा दानानि राघवः । पुत्रौ कुशलवौ दृष्ट्वा तौ च राज्येऽभ्यषेचयत् ॥४९॥
एकादशसहस्राणि रामो राज्यमकारयत् । शत्रुघ्नो लवणं जघ्ने शैलूषो भरतः स्थितः ॥५०॥
अगस्त्यादीन्मुनीन्नत्वा श्रुत्वोत्पत्तिञ्च रक्षसाम् । स्वर्गं गतो जनैः सार्द्धमयोध्यास्थै कृतार्थकः ५१॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे रामायणवर्णनं नाम
त्रिचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४३॥

———

चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

हरिवंशं प्रवक्ष्यामि कृष्णमाहात्म्यमुत्तमम् । वसुदेवात्तु देवक्यां वासुदेवो बलोऽभवत् ॥ १ ॥
धर्मादिरक्षणार्थाय अधर्मादिविनष्टये । कृष्णः पीत्वा स्तनौ गाढं पूतनामनयत्क्षयम् ॥ २ ॥
शकटः परिवृत्तोऽथ भग्नौ च यमलार्जुनौ । दमितः कालियो नागो धेनुको विनिपातितः ॥ ३ ॥
धृतो गोवर्द्धनः शैल इन्द्रेण परिपूजितः । भारावतरणं चक्रे प्रतिज्ञां कृतवान्हरिः ॥ ४ ॥
रक्षणायार्जुनादेश्च अरिष्टादिर्निपातितः । केशी विनिहतो दैत्यो गोपाद्याः परितोषिताः ॥ ५ ॥
चाणूरो मुष्टिको मल्लः कंसो मञ्चान्निपातितः । रुक्मिणीसत्यभामाद्या अष्टौ पत्न्यो हरेः पराः ६ ॥
षोडशस्त्रीसहस्राणि अन्यान्यासन्महात्मनः । तासां पुत्राश्च पौत्राद्या शतशोऽथ सहस्रशः ॥ ७ ॥
रुक्मिण्याञ्चैव प्रद्युम्नो न्यवधीच्छम्बरञ्च यः । तस्य पुत्रोऽनिरुद्धोऽभू दुषाबाणसुतापतिः ॥ ८ ॥
हरिशङ्करयोर्यत्र महायुद्धं बभूव ह । बाणबाहुसहस्रञ्च छिन्नं बाहुद्वयो ह्यभूत् ॥ ९ ॥
नरको निहतो येन पारिजातं जहार यः । बलश्च शिशुपालश्च हतश्च द्विविदः कपिः ॥१०॥
अनिरुद्धादभूद्वज्रः स च राजा गते हरौ । सान्दीपनिं गुरुञ्चक्रे सपुत्रञ्च चकार सः ॥
मथुरायाञ्चोग्रसेनं पालनञ्च दिवौकसाम् ॥११॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे हरिवंशवर्णनं नाम चतुश्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४४॥

पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

भारतं संप्रवक्ष्यामि भारावतरणं भुवः । चक्रे कृष्णो युध्यमानः पाण्डवादिनिमित्ततः ॥१॥
विष्णुनाभ्यब्जतो ब्रह्मा ब्रह्मपुत्रोऽत्रिरत्रितः । सोमस्ततो बुधस्तस्मादुर्वश्याञ्च पुरूरवाः ॥२॥
तस्यायुस्तत्र वंशेऽभूद्ययातिर्भरतः कुरुः । शन्तनुस्तस्य वंशेऽभूद्गङ्गायां शन्तनोः सुतः ॥३॥
भीष्मः सर्वगुणैर्युक्तो ब्रह्मवैवर्त्तपारगः ॥ ४ ॥
शन्तनोः सत्यवत्याञ्च द्वौ पुत्रौ सम्बभूवतुः । चित्राङ्गदं तु गन्धर्वः पुत्रं चित्राङ्गदोऽवधीत् ५॥
अन्यो विचित्रवीर्य्योऽभूत्काशिराजसुतापतिः । विचित्रवीर्य्ये स्वर्याते व्यासात्तत्क्षेत्रतोऽभवत् ६॥
धृतराष्ट्रोऽम्बिकापुत्रः पाण्डुरम्बालिकासुतः । भुजिष्यायान्तु विदुरो गान्धार्य्यां धृतराष्ट्रतः ॥७॥
दुर्य्योधनप्रधानास्तु शतसंख्या महाबलाः । पाण्डोः कुन्त्याञ्च माद्रयाञ्च पञ्च पुत्राः प्रजज्ञिरे ८॥

युधिष्ठिरो भीमसेनो ह्यर्जुनो नकुलस्तथा । सहदेवश्च पञ्चैते महाबलपराक्रमाः ॥९॥
कुरुपाण्डवयोर्वैरं दैवयोगाद्बभूव ह । दुर्य्योधनेनाधीरेण पाण्डवाः समुपद्रुताः ॥१०॥
दग्ध्वा जतुगृहं वीरास्ते मुक्ता स्वधियामलाः । ततस्तदेकचक्रायां ब्राह्मणस्य निवेशने ॥११॥
विप्रवेशा महात्मानो निहत्य बकराक्षसम् ॥१२॥
ततः पाञ्चालविषये द्रौपद्यास्ते स्वयंवरम् । विज्ञाय वीर्य्यशुल्कान्तां पाण्डवा उपयेमिरे ॥१३॥
द्रोणभीष्मानुमत्या तु धृतराष्ट्रः समानयत् । अर्द्धराज्यं ततः प्राप्ता इन्द्रप्रस्थे पुरोत्तमे ॥१४॥
राजसूयं ततश्चक्रुः सभां कृत्वा यतव्रताः । अर्जुनो द्वारवत्यान्तु सुभद्रां प्राप्तवान्प्रियाम् ॥
वासुदेवस्य भगिनीं मित्रं देवकिनन्दनम् ॥१५॥
नन्दिघोषं रथं दिव्यमग्नेर्धनुरनुत्तमम् । गाण्डीवं नाम तद्दिव्यं त्रिषु लोकेषु विश्रुतम् ॥
अक्षयान्सायकांश्चैव तथाभेद्यञ्च दंशनम् ॥१६॥
स तेन धनुषा वीरः पाण्डवो जातवेदसम् । कृष्णद्वितीयो बीभत्सुरतर्पयत वीर्य्यवान् ॥१७॥
नृपान्दिग्विजये जित्वा रत्नान्यादाय वै ददौ । युधिष्ठिराय महते भ्रात्रे नीतिविदे मुदा ॥१८॥
युधिष्ठिरोऽपि धर्मात्मा भ्रातृभिः परिवारितः । जितो दुर्य्योधनेनैव मायाद्यूतेन पापिना ॥१९॥
कर्णदुःशासनमते स्थितेन शकुनेर्मते । अथ द्वादश वर्षाणि वने तेपुर्महत्तपः ॥२०॥
सधौम्या द्रौपदीषष्ठा मुनिवृन्दाभिसंवृताः । ययुर्विराटनगरं गुप्तरूपेण संश्रिताः ॥२१॥
वर्षमेकं महाप्रज्ञा गोग्रहादिमपालयन् । ततो ज्ञाताः स्वकं राष्ट्रं प्रार्थयामासुराहताः ॥२२॥
पञ्चग्रामानर्द्धराज्याद्वीरा दुर्य्योधनं नृपम् । नाप्तवन्तः कुरुक्षेत्रे युद्धञ्चक्रुर्बलान्विताः ॥२३॥
अक्षौहिणीभिर्दिव्याभिः सप्तभिः परिवारिताः । एकादशभिरुद्युक्ता युक्ता दुर्य्योधनादयः ॥२४॥
आसीद्युद्धं सङ्कुलञ्च देवासुररणोपमम् । भीष्मः सेनापतिरभूदादौ दौर्य्योधने बले ॥२५॥
पाण्डवानां शिखण्डी च तयोर्युद्धं बभूव ह । शस्त्राशस्त्रि महाघोरं दशरात्रं शराशरि ॥२६॥
शिखण्ड्यर्जुनबाणैश्च भीष्मः शरशतैर्युतः । उत्तरायणमीक्ष्याथ ध्यात्वा देवं गदाधरम् ॥२७॥
उक्त्वा धर्मान्बहुविधांस्तर्पयित्वा पितॄन्बहून् । आनन्दे तु पदे लीनो विमले मुक्तकिल्बिषे ॥२८॥
तता द्रोणो ययौ योद्धुं धृष्टद्युम्नेन वीर्य्यवान् । दिनानि पञ्च तद्युद्धमासीत्परमदारुणम् ॥२९॥
यत्र ते पृथिवीपाला हताः पार्थतसागरे । शोकसागरमासाद्य द्रोणोऽपि स्वर्गमाप्तवान् ३०॥
ततः कर्णो ययौ योद्धुमर्जुनेन महात्मना । दिनद्वयं महायुद्धं कृत्वा पार्थास्त्रसागरे ॥
निमग्नः सूर्य्यलोकन्तु ततः प्राप स वीर्य्यवान् ॥३१॥
ततः शल्यो ययौ योद्धुं धर्मराजेन धीमता । दिनार्द्धेन हतः शल्यो बाणैर्ज्वलनसन्निभैः ॥३२॥

दुर्य्योधनोऽथ वेगेन गदामादाय वीर्य्यवान् । अभ्यधावत वै भीमं कालान्तकयमोपमः ॥३३॥
अथ भीमेन वीरेण गदया विनिपातितः । अश्वत्थामा गतो द्रौणिः सुप्तसैन्यं ततो निशि ३४॥
जघान बाहुवीर्य्येण पितुर्वधमनुस्मरन् । दृष्टद्युम्नं जघानाथ द्रौपदेयांश्च वीर्य्यवान् ॥३५॥
द्रौपद्यां रुद्यमानायामश्वत्थाम्नः शिरोमणिम् । ऐषिकास्त्रेण तं जित्वा जग्राहार्जुन उत्तमः ॥३६॥
युधिष्ठिरं समाश्वास्य स्त्रीजनं शोकसङ्कुलम् । स्नात्वा सन्तर्प्य देवांश्च पितॄनथ पितामहान् ३७॥
आश्वासितोऽथ भीमेन राज्यञ्चैवाकरोन्महत् । विष्णुमीजेऽश्वमेधेन विधिवद्दक्षिणावता ॥३८॥
राज्ये परीक्षितं स्थाप्य यादवानां विनाशनम् । श्रुत्वा तु मौशले राजा जप्त्वा नामसहस्रकम् ॥
विष्णोः स्वर्गं जगामाथ भीमाद्यैर्भ्रातृभिर्युतः ॥३९॥
वासुदेवः पुनर्बुद्धः स मोहाय सुरद्विषाम् । देवादीनां रक्षणाय अधर्महरणाय च ॥४०॥
दुष्टानाञ्च वधार्थाय अवतारं करोति च । यथा धन्वन्तरिर्विंशे जातः क्षीरोदमन्थने ॥४१॥
देवादीनां जीवनाय आयुर्वेदमुवाच ह । विश्वामित्रसुतायैव सुश्रुताय महात्मने ॥
भारतांश्चावतारांश्च श्रुत्वा स्वर्गं व्रजेन्नरः ॥४२॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे भारतवर्णनं नाम पञ्चचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४५॥

षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

धन्वन्तरिरुवाच

सर्वरोगनिदानञ्च वक्ष्ये सुश्रुत तत्त्वतः । आत्रेयाद्यैर्मुनिवरैर्यथा पूर्वमुदीरितम् ॥१॥
रोगः पाप्मा ज्वरो व्याधिर्विकारो दुष्टमामयः । यक्ष्मातङ्कगदाबाधाः शब्दाः पर्य्यायवाचिनः २॥
निदानं पूर्वरूपाणि रूपाण्युपशयस्तथा । संप्राप्तिश्चेति विज्ञानं रोगाणां पञ्चधा स्मृतम् ॥३॥
निमित्तहेत्वायतनप्रत्ययोत्थानकारणैः । निदानमाहुः पर्य्यायैः प्राग्रूपं येन लक्ष्यते ॥४॥
उत्पित्सुरामयो दोषविशेषेणानधिष्ठितः । लिङ्गमव्यक्तमल्पत्वाद्व्याधीनां तद्यथायथम् ॥५॥
तदेव व्यक्ततां जातं रूपमित्यभिधीयते । संस्थानं व्यञ्जनं लिङ्गं लक्षणं चिह्नमाकृतिः ॥६॥
हेतुव्याधिविपर्य्यस्तविपर्य्यस्तार्थकारिणाम् । औषधान्नविहाराणामुपयोगं सुखावहम् ॥७॥
विद्यादुपशयं व्याधेः स हि सात्म्यमिति स्मृतः । विपरीतोऽनुपशयो व्याध्यसात्म्येतिसंज्ञितः ॥८॥
यथा दुष्टेन दोषेण यथा चानुविसर्पता । निर्वृत्तिरामयस्यासौ सम्प्राप्तिर्यातिरागतिः ॥९॥
संख्याविकल्पप्राधान्यबलकालविशेषतः । सा भिद्यते यथात्रैव वक्ष्यन्तेऽष्टौ ज्वरा इति ॥१०॥

दोषाणां समवेतानां विकल्पोंऽशांशकल्पना । स्वातन्त्र्यपारतन्त्र्याभ्यांव्याधेःप्राधान्यमादिशेत् ॥
हेत्वादिकात्स्नावयवैर्बलाबलविशेषणम् । नक्तं दिनर्त्तुभुक्तांशैर्व्याधिकालो यथा मलम् ॥१२॥
इति प्रोक्तो निदानार्थः स व्यासेनोपदेक्ष्यते । सर्वेषामेव रोगाणां निदानं कुपिता मलाः ॥१३॥
तत्प्रकोपस्य तु प्रोक्तं विविधाहितसेवनम् । अहितस्त्रिविधो योगस्त्रयाणां प्रागुदाहृतः ॥१४॥
तिक्तोषणकषायाम्लरूक्षाप्रमितभोजनैः । धावनोदीरणनिशाजागरात्युच्चभाषणैः ॥१५॥
क्रियाभियोगभीशोकचिन्ताव्यायाममैथुनैः । ग्रीष्माहोरात्रभुक्तयन्ते प्रकुप्यति समीरणः ॥१६॥
पित्तं कट्वम्लतीक्ष्णोष्णकटुक्रोधविदाहिभिः । शरन्मध्याहरात्र्यर्द्धविदाहसमयेषु च ॥१७॥
स्वाद्वम्ललवणस्निग्धगुर्वभिष्यन्दिशीतलैः । आस्यास्वप्नसुखाजीर्णदिवास्वप्नादिबृंहणैः ॥१८॥
प्रच्छर्दनाद्ययोगेन भुक्तमात्रवसन्तयोः । पूर्वाह्णे पूर्वरात्रे च श्लेष्मा वक्ष्यामि सङ्करान् ॥१९॥
मिश्रीभावात्समस्तानां सन्निपातस्तथा पुनः । संकीर्णाजीर्णविषमविरुद्धाद्यशनादिभिः ॥२०॥
व्यापन्नमद्यपानीयशुष्कशाकाममूलकैः । पिण्याकमृत्यवसरपूतिशुष्ककृपामिषैः ॥२१॥
दोषत्रयकरैस्तैस्तैस्तथान्नपरिवर्त्ततः । धातोर्दुष्टात्पुरो वाताद्ग्रिहावेशविप्लवात् ॥२२॥
दुष्टामान्नैरतिश्लेष्मग्रहैर्जन्मर्क्षपीडनात् । मिथ्यायोगाच्च विविधात्पापानाञ्च निषेवणात् ।
स्त्रीणां प्रसववैषम्यात्तथा मिश्रोपचारतः ॥२३॥
प्रतिरोगमिति क्रुद्धा रोगविध्यनुगामिनः । रसायनं प्रपद्याशु दोषा देहे विकुर्वते ॥२४॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे सर्वरोगनिदानं नाम षट्चत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१४६॥

सप्तचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

धन्वन्तरिरुवाच

वक्ष्ये ज्वरनिदानं हि सर्वज्वरविबुद्धये । ज्वरो रोगपतिः पाप्मा मृत्युराजोऽशनोऽन्तकः ।
क्रुद्धदक्षाध्वरध्वंसिरुद्रोर्ध्वनयनोद्भवः ॥१॥
तत्सन्तापो मोहमयः सन्तापात्मापचारजः । विविधैर्नामभिः क्रूरो नानायोनिषु वर्त्तते ॥ २ ॥
पाकलो गजेष्वभितापो वाजिष्वलर्कः कुक्कुरेषु ।
इन्द्रमदो जलदेष्वप्सु नीलिका ज्योतिरोषधीषु भूम्यामूषरो नाम ॥ ३ ॥
हृल्लासश्छर्दनं कासः स्तम्भः शैत्यं त्वगादिषु । अङ्गेषु च समुद्भूताः पीडकाश्च कफोद्भवे ॥ ४ ॥
काले यथास्तं सर्वेषां प्रवृत्तिर्वृद्धिरेव वा । निदानोक्तानुपशयो विपरीतो यथापि वा ॥ ५ ॥

अरुचिश्चाविपाकश्च स्तम्भमालस्यमेव च । हृद्दाहश्च विपाकश्च तन्द्रा चालस्यमेव च ॥
वस्तिविमर्दावनया दोषाणामप्रवर्त्तनम् ॥ ६ ॥

लालाप्रसेको हृल्लासः क्षुन्नाशो रसदं मुखम् । स्वच्छमुष्णगुरुत्वञ्च गात्राणां बहुमूत्रता ॥
न विजीर्णं न च ग्लानिर्ज्वरस्यामस्य लक्षणम् ॥ ७ ॥

क्षुत्क्षामता लघुत्वञ्च गात्राणां ज्वरमार्दवम् । दोषप्रवृत्तिरष्टाहान्निरामज्वरलक्षणम् ॥
यथा स्वलिङ्गं संसर्गे ज्वरसंसर्गजोऽपि वा ॥ ८ ॥

शिरोर्त्तिमूर्च्छावमिदेहदाहकण्ठास्यशोषावपि पर्वभेदाः ।
उन्निद्रता सम्भ्रमरोमहर्षा जृम्भातिवाक्त्वं पवनात्सपित्तात् ॥ ९ ॥
तापहान्यरुचिपर्वशिरोक्षीणश्वासकासविवर्णाः ।
शीतजाड्यतिमिरभ्रमितन्द्राश्लेष्मवातजनितज्वरलिङ्गम् ॥१०॥
शीतस्तम्भस्वेददाहाव्यवस्थास्तृष्णा कासः श्लेष्मपित्तप्रवृत्तिः ।
मोहस्तन्द्रा लिप्ततिक्तास्यता च ज्ञेयं रूपं श्लेष्मपित्तज्वरस्य ॥११॥

सर्वजो लक्षणैः सर्वैर्दाहोऽत्र च मुहुर्मुहुः । तद्वच्छीतं तिमिरनिद्रा दिवा जागरणं निशि १२॥
सदा वा नैव वा निद्रा महास्वेदो हि नैव वा । गीतनर्त्तनहास्यादिः प्रकृतेहाप्रवर्त्तनम् १३॥
साश्रुणी कलुषे रक्ते भुग्ने लुलितपक्ष्मणी । अक्षिणी पिण्डिकापार्श्वशिरःपर्वास्थिरुग्भ्रमः १४॥
सस्वनौ सरुजौ कर्णौ महाशीतो हि नैव वा । परिदग्धा खरा जिह्वा गुरुस्रस्ताङ्गसन्धिता ॥१५॥
ष्ठीवनं रक्तपित्तस्य लोठनं शिरसोऽतितृट् । कोठानां श्यावरक्तानां मण्डलानाञ्च दर्शनम् ॥
हृद्व्यथा मलसंसर्गः प्रवृत्तिर्वाल्पशोऽति वा । स्निग्धास्यता बलभ्रंशः स्वरसादः प्रलापितः १७॥
दोषपाकश्चिरं तन्द्रा प्रततं कण्ठकूजनम् । सन्निपातमभिन्यासं तं ब्रूयाच्च हतौजसम् ॥१८॥
वायुना कण्ठरुद्धेन पित्तमन्तःसुपीडितम् । व्यवायित्वाच्च सौक्ष्म्याच्च बहिर्मार्गं प्रपद्यते ॥
तेन हारिद्रनेत्रत्वं सन्निपातोद्भवे ज्वरे ॥ १९ ॥

दोषे विवृद्धे नष्टेऽग्नौ सर्वसंपूर्णलक्षणः । सन्निपातज्वरोऽसाध्यः कृच्छ्रसाध्यस्ततोऽन्यथा २० ॥
अन्यत्र सन्निपातोत्थं यत्र पित्तं पृथक् स्थितम् । त्वचि कोष्ठे च वा दाहं विदधाति पुरोऽनु वा ॥
तद्वद्वातकफे शीतं दाहादिर्दुस्तरस्तयोः । शीतादौ तत्र पित्तेन कफे स्यन्दितशोषिते ॥२२॥
पित्ते शान्तेऽथ वै मूर्च्छा मदस्तृष्णा च जायते । दाहादौ पुनरन्तेषु तन्द्रालस्ये वमिः क्रमात् ॥
आगन्तुरभिघाताभिषङ्गशापाभिचारतः । चतुर्धा तु कृतः स्वेदो दाहाद्यैरभिघातजः ॥२४॥
श्रमाच्च तस्मिन्पवनः प्रायो रक्तं प्रदूषयन् । सव्यथाशोकवैवर्ण्यं सरुजं कुरुते ज्वरम् ॥२५॥

ग्रहावेशौषधिविषक्रोधभीशोककामजः । अभिषङ्गग्रहोऽप्यस्मिन्नकस्माद्धासरोदने ॥ २६ ॥
ओषधिगन्धजे मूर्च्छा शिरोरुग्वमथुः क्षवः । विषान्मूर्च्छातिसारश्च श्यावता दाहकृद्भ्रमः ॥२७॥
क्रोधात्कम्पः शिरोरुक् च प्रलापो भयशोकजे । कामाद्भ्रमोऽरुचिर्दाहो ह्रीर्निद्राधीधृतिक्षयः ॥
ग्रहादौ सन्निपातस्य रूपादौ मरुतस्तयोः । कोपात्कोपेऽपि पित्तस्य यौ तु शापाभिचारजौ २६॥
सन्निपातज्वरौ घोरौ तावसह्यतमौ मतौ । तत्राभिचारिकैर्मन्त्रैर्हूयमानश्च तप्यते ॥ ३० ॥
पूर्वञ्चेतस्ततो देहस्ततो विस्फोटदिग्भ्रमैः । सदाहमूर्च्छाग्रस्तस्य प्रत्यहं वर्द्धते ज्वरः ॥३१॥
इति ज्वरोऽष्टधा दृष्टः समासाद्द्विविधस्तु सः । शरीरी मानसः सौम्यस्तीक्ष्णोऽन्तर्बहिराश्रयः ३२॥
प्राकृतो वैकृतः साध्योऽसाध्यः सामो निरामकः । पूर्वं शरीरे शारीरे तापो मनसि मानसे ३३॥
पवनैर्योगवाहित्वाच्छीतं श्लेष्मयुते भवेत् । दाहः पित्तयुते मिश्रं मिश्रेऽन्तःसंश्रये पुनः ॥३४॥
ज्वरेऽधिकं विकाराः स्युरन्तःक्षोभी मलग्रहः । बहिरेव बहिर्वेगे तापोऽपि च स साधितः ॥३५॥
वर्षाशरद्वसन्तेषु वाताद्यैः प्राकृतः क्रमात् । वैकृतोऽन्यः स दुःसाध्यः प्रायश्च प्राकृतोऽनिलात् ॥
वर्षासु मारुतो दुष्टः पित्तश्लेष्मान्वितं ज्वरम् । कुर्य्याच्च पित्तं शरदि तस्य चानुबलः कफः ३७॥
तत्प्रकृत्या विसर्गाच्च तत्र नानशनाद्भयम् । कफो वसन्ते तमपि वातपित्तं भवेदनु ॥३८॥
बलवत्स्वल्पदोषेषु ज्वरः साध्योऽनुपद्रवः । सर्वथा विकृतज्ञाने प्रागसाध्य उदाहृतः ॥३६॥

ज्वरोपद्रवतीक्ष्णत्वमन्दाग्निर्बहुमूत्रता । न प्रवृत्तिर्न विजीर्णा न क्षुत्सामज्वराकृतिः ॥४०॥
ज्वरवेगोऽधिकस्तृष्णा प्रलापः श्वसनं भ्रमः । मलप्रवृत्तिरुत्क्लेशः पच्यमानस्य लक्षणम् ॥४१॥
जीर्णतामविपर्य्यासात्सप्तरात्रञ्च लङ्घनम् । ज्वरः पञ्चविधः प्रोक्तो मलकालबलाबलात् ॥४२॥
प्रायशः सन्निपातेन भूयसामुपदिश्यते । सन्ततः सततोऽन्येद्युस्तृतीयकचतुर्थकौ ॥४३॥
धातुमूत्रशकृद्वाहिस्रोतसां व्यापिनो मलाः । तापयन्तस्तनुं सर्वां तुल्यदूष्याादिवर्द्धिताः ॥४४॥
बलिनो गुरवस्तस्याविशेषेण रसाःस्मृताः । सततं निष्प्रतिद्वन्द्वा ज्वरं कुर्य्युः सुदुःसहम् ॥४५॥
मलं ज्वरोष्णधातून् वा स शीघ्रं क्षपयेत्ततः । सर्वाकारं रसादीनां शुद्ध्या शुद्ध्यापि वा क्रमात् ॥
वातपित्तकफैः सप्तदशद्वादशवासरात् । प्रायोऽनुयाति मर्यादां मोक्षाय च वधाय च ॥४७॥
इत्यग्निवेशस्य मतं हारीतस्य पुनः स्मृतिः । द्विगुणा सप्तमी या च नवम्येकादशी तथा ।

एषा त्रिदोषमर्य्यादा मोक्षाय च वधाय च ॥ ४८ ॥

शुद्ध्यशुद्ध्या ज्वरः कालं दीर्घमप्यत्र वर्त्तते । कृशानां व्याधिमुक्तानां मिथ्याहारादिसेविनाम् ॥
अल्पोऽपि दोषो दुष्ट्याद्देर्लब्धान्यतमतो बलम् । सप्रत्यनीको विषमं यस्माद् वृद्धिक्षयान्वितः ॥५०॥
सविक्षेपो ज्वरं कुर्य्याद्विषमक्षयवृद्धिभाक् । दोषः प्रवर्त्तते तेषां स्वे काले ज्वरयन् बली ॥५१॥

निवर्त्तते पुनश्चैव प्रत्यनीकबलाबलः । क्षीणदोषो ज्वरः सूक्ष्मा रसादिष्वेव लीयते ॥५२॥
लीनत्वात्कार्श्यवैवर्ण्यजाड्यादीनां दधाति सः । आसन्नविकृतास्यत्वाच्छ्रोतसां रसवाहिनाम् ॥
आशु सर्वस्य वपुषो व्याप्तिदोषो न जायते ॥५३॥
सन्ततः सततस्तेन विपरीतो विपर्य्ययात् । विषमो विषमारम्भः क्षपाकालेन सङ्गवान् ॥५४॥
दोषो रक्ताश्रयः प्रायः करोति सन्ततं ज्वरम् । अहोरात्रस्य सन्धौ स्यात् सकृदन्येद्युराश्रितः ॥
तस्मिन्मांसवहा नाड़ी मेदोनाड़ी तृतीयके । ग्राही पित्तानिलान्मूर्ध्नत्रिकस्य कफपित्ततः ॥५६॥
सपृष्ठस्यानिलकफात्स चैकाहान्तरः स्मृतः । चतुर्थको मलैर्मेदोमज्जास्थ्यन्तरे स्थितः ॥५७॥
मज्जास्थ एव ह्यपरः प्रभावमनुदर्शयेत् । द्विधा कफोणिजङ्घाभ्यां सपूर्वशिरसानिलात् ॥५८॥
अस्थिमज्जोरुपगते चतुर्थकविपर्य्ययः । त्रिधा त्र्यहं ज्वरयति दिनमेकन्तु मुञ्चति ॥५९॥
बलाबलेन दोषाणामभ्यचेष्टादिजन्मनाम् । पक्वानामविनिर्यासात्सप्तरात्रञ्च लङ्घयेत् ॥६०॥
ज्वरः स्यान्मनसस्तद्वत्कर्मणश्च तदा तदा । गम्भीरधातुचारित्वात्सन्निपातेन सम्भवात् ॥
तुल्योच्छ्रयाच दोषाणां दुश्चिकित्स्यश्चतुर्थकः ॥६१॥
सूक्ष्मात्सूक्ष्मज्वरेष्वेषु दूराद्दूरतरेषु च । दोषो रक्तादिमार्गेषु शनैरल्पश्चिरेण यत् ॥६२॥
याति देहञ्च नाशेषं सन्तापादीन्करोत्यतः । क्रमो यत्नेन विच्छिन्नः सतापो लक्ष्यते ज्वरः ॥
विषमो विषमारम्भः क्षपाकालानुसारवान् ॥६३॥
यथोत्तरं मन्दगतिर्मन्दशक्तिर्यथायथम् । कालेनाप्नोति सदृशान्सरसादींस्तथा तथा ॥६४॥
दोषो ज्वरयति क्रुद्धश्चिराच्चिरतरेण च । भूमौ स्थितं जलैः सिक्तं कालं नैव प्रतीक्ष्यते ॥
अङ्कुराय यथा बीजं दोष बीजं भवेत्तथा ॥६५॥
वेगं कृत्वा विषं यद्वदाशये नीयते बलम् । कुप्यत्याप्तबलं भूयः कालदोषविषं तथा ॥६६॥
एवं ज्वराः प्रवर्त्तन्ते विषमाः सततादयः । उत्क्लेशो गौरवं दैन्यं भङ्गोऽङ्गानां विजृम्भणम् ॥
अरोचको वमिः श्वासः सर्वस्मिन्रसगे ज्वरे ॥६७॥
रक्तनिष्ठीवनं तृष्णा रूक्षोष्णः पिड़कोद्गमः । दाहरागभ्रममदप्रलापो रक्तसंश्रिते ॥६८॥
तृड्ग्लानिसृष्टवर्चस्कमन्तर्दाहो भ्रमस्तमः । दौर्गन्ध्यं गात्रविक्षेपो मांसस्थे मेदसि स्थिते ॥
स्वेदोऽतितृष्णा वमनं दौर्गन्ध्यं वा सहिष्णुता ॥६९॥
प्रलापो ग्लानिररुचिरस्थिगे त्वस्थिभेदनम् ॥७०॥
दोषप्रवृत्तिरुद्बोधः श्वासाङ्गक्षेपकूजनम् । अन्तर्दाहो बहिः शैत्यं श्वासो हिक्का हि मज्जगे ॥७१॥
तमसो दर्शनं मर्मच्छेदनं स्तब्धमेढ्रता । शुक्रप्रवृत्तौ मृत्युस्तु जायते शुक्रसंश्रये ॥७२॥

उत्तरोत्तरदुःसाध्याः पञ्चान्ये तु विपर्य्यये । प्रलिम्पन्निव गात्राणि श्लेष्मणा गौरवेण च ॥
मन्दज्वरप्रलापस्तु सशीतः स्यात्प्रलेपकः ॥७३॥
नित्यं मन्दज्वरो रूक्षः शीतकृच्छ्रेण गच्छति । स्तब्धाङ्गः श्लेष्मभूयिष्ठो भवेदङ्गबलाशकः ॥
हरिद्राभेदवर्णाभस्तत्तल्लेपं प्रमेहति । स वै हारिद्रको नाम ज्वरभेदोऽन्तकः स्मृतः ॥७५॥
कफवातौ समौ यत्र हीनपित्तस्य देहिनः । तीक्ष्णोऽथवा दिवा मन्दो जायते रात्रिजो ज्वरः ॥
दिवाकरार्पितबले व्यायामाच्च विशोषिते । शरीरे नियतं वाताज्ज्वरः स्यात्पौर्वरात्रिकः ॥७७॥
आमाशये यदात्मस्थे श्लेष्मपित्ते ह्यधः स्थिते । तदर्द्धं शीतलं देहे अर्द्धं चोष्णं प्रजायते ॥७८॥
काये पित्तं यदा न्यस्तं श्लेष्मा चान्ते व्यवस्थितः । उष्णत्वं तेन देहस्य शीतत्वं करपादयोः ॥
रसरक्ताश्रयः साध्यो मांसमेदोगतश्च यः । अस्थिमज्जागतः कृच्छ्रस्तैस्तैः स्वाङ्गैर्हतप्रभः ॥८०॥
त्रिसंज्ञो ज्वरवेगार्त्तः सक्रोध इव वीक्ष्यते । सदोषमुष्णञ्च सदा शकृन्मुञ्चति वेगवत् ॥८१॥
देहो लघुर्व्यपगतक्लममोहतापः पाको मुखे करणसौष्ठवमव्यथत्वम् ।
स्वेदः क्षवः प्रकृतियोगिमनोऽन्नलिप्सा कण्डूश्च मूर्ध्नि विगतज्वरलक्षणानि ॥८२॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे ज्वरनिदानं नाम सप्तचत्वारिंशदधिक-
शततमोऽध्यायः ॥१४७॥

अष्टचत्वारिंशदधिकशततमोऽध्यायः

धन्वन्तरिरुवाच

अथातो रक्तपित्तस्य निदानं प्रवदाम्यहम् । भृशोष्णतिक्तकट्वम्ललवणादिविदाहिभिः ॥ १ ॥
कोद्रवोद्दालकैश्चान्यैस्तदुक्तैरतिसेवितैः । कुपितं पैत्तिकैः पित्तं द्रवं रक्तञ्च मूर्च्छति ॥ २ ॥
तैर्मिथस्तुल्यरूपत्वमागम्य व्याप्नुवंस्तनुम् । पित्तरक्तस्य विकृतेः संसर्गाद्दूषणादपि ॥ ३ ॥
गन्धवर्णानुवृत्तेषु रक्तेन व्यपदिश्यते । प्रभवत्यसृजः स्थानात्प्लीहतो यकृतश्च तत् ॥ ४ ॥
शिरोगुरुत्वमरुचिः शीतेच्छा धूमकोऽम्लकः । छर्द्दितश्छर्दिवैभत्स्यं कासः श्वासो भ्रमः क्लमः ॥
लोहितो न हिनो मत्स्यगन्धास्यत्वञ्च विज्वरे । रक्तहारिद्रहरितवर्णता नयनादिषु ॥ ६ ॥
नीललोहितपीतानां वर्णानामविवेचनम् । स्वप्ने उन्मादधर्मित्वं भवत्यस्मिन्भविष्यति ॥ ७ ॥
ऊर्ध्वं नासाक्षिकर्णास्यैर्मेढ्रयोनिगुदैरधः । कुपितं रोमकूपैश्च समस्तैस्तत्प्रवर्त्तते ॥ ८ ॥
ऊर्ध्वं साध्यं कफाद्यस्मात्तद्विरेचनसाधितम् । बह्वौषधस्य पित्तस्य विरेको हि वरौषधम् ॥ ९ ॥

अनुबन्धी कफो यत्र तत्र तस्यापि शुद्धिकृत् । कषायाः स्वादवो यस्य विशुद्धौ श्लेष्मला हिताः ॥
कटुतिक्तकषाया वा ये निसर्गात्कफावहाः । अधो याप्यश्च नायुष्मांस्तत्प्रच्छर्दनसाधकम् ॥११॥
अल्पौषधञ्च पित्तस्य वमनं नवमौषधम् । अनुबन्धिबलो यस्य शान्तपित्तनरस्य च ॥१२॥
कषायश्च हितस्तस्य मधुरा एव केवलम् । कफमारुतसंस्पृष्टमसाध्यमुपनामनम् ॥१३॥
असह्यं प्रतिलोमत्वादसाध्यादौषधस्य च । न हि संशोधनं किञ्चिदस्य च प्रतिलोमिनः ॥१४॥
शोधनं प्रतिलोमञ्च रक्तपित्तेऽभिसर्जितम् । एवमेवोपशमनं संशोधनमिहेष्यते ॥१५॥
संसृष्टेषु हि दोषेषु सर्वथा छर्दनं हितम् । तत्र दोषोऽत्र गमनं शिवास्त्र इव लक्ष्यते ॥
उपद्रवाश्च विकृतिं फलतस्तेषु साधितम् ॥१६॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे रक्तपित्तनिदानं नाम अष्टचत्वारिंशद-
धिकशततमोऽध्यायः ॥१४८॥

ऊनपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

धन्वन्तरिरुवाच

आशुकारी यतः कासः स एवातः प्रचक्ष्यते । पञ्च कासाः स्मृता वातपित्तश्लेष्मक्षतक्षयैः ॥१॥
क्षयायोपेक्षिताः सर्वे बलिनश्चोत्तरोत्तरम् । तेषां भविष्यतां रूपं कण्ठे कण्डूररोचकः ॥ २ ॥
शुष्ककर्णास्यकण्ठत्वं तत्राधोविहितोऽनिलः । ऊर्ध्वं प्रवृत्तः प्राप्योरस्तस्मिन्कण्ठे च संसृजन् ॥
शिरास्रोतांसि संपूर्य ततोऽङ्गान्युत्क्षिपन्ति च । क्षिपन्निवाक्षिणी क्लिष्टस्वरः पार्श्वे च पीड़यन् ॥
प्रवर्त्तते स वक्त्रेण भिन्नकांस्योपमध्वनिः । हृत्पार्श्वोरुशिरःशूलमोहक्षोभस्वरक्षयान् ॥ ५ ॥
करोति शुष्ककासञ्च महावेगरुजास्वनम् । सोऽङ्गहर्षी कफं शुष्कं कृच्छ्रान्मुक्त्वाल्पतां व्रजेत् ॥
पित्तात्पीताक्षिकता तिक्तास्यत्वं ज्वरो भ्रमः । पित्तासृग्वमनं तृष्णा वैस्वर्यं धूमको मदः ॥७॥
प्रततं कासवेगे च ज्योतिषामिव दर्शनम् । कफादुरोऽल्परुङ्मूर्ध्नि हृदयं स्तिमितं गुरु ॥ ८ ॥
कण्ठे प्रलेपमदनं पीनसच्छर्द्यरोचकाः । रोमहर्षो घनस्निग्धश्लेष्मणाञ्च प्रवर्त्तनम् ॥ ९ ॥
युद्धाद्यैः साहसैस्तैस्तैः सेवितैरयथाबलम् । उरस्यन्तःक्षतो वायुः पित्तेनानुगतो बली ॥१०॥
कुपितः कुरुते कासं कफं तेन सशोणितम् । पीतं श्यावञ्च शुष्कञ्च ग्रथितं कुपितं बहु ॥११॥
ष्ठीवेत्कण्ठेन रुजता विभिन्नेनैव चोरसा । सूचीभिरिव तीक्ष्णाभिस्तुद्यमानेन शूलिना ॥१२॥
दुःखस्पर्शेन शूलेन भेदपीड़ा हि तापिना । पर्वभेदज्वरश्वासतृष्णावैस्वर्य्यकम्पवान् ॥१३॥

पारावत इवोत्कूजन्पार्श्वशूली ततोऽस्य च । कफाद्यैर्वमनं पक्तिबलवर्णश्च हीयते ॥१४॥
क्षीणस्य सास्रङ्मूत्रत्वं श्वासपृष्ठकटिग्रहः । वायुप्रधानाः कुपिता धातवो राजयक्ष्मणः ॥१५॥
कुर्वन्ति यक्ष्मायतने कासं ष्ठीवेत्कफं ततः । पूतिपूयोपमं पीतं मिश्रं हरितलोहितम् ॥१६॥
सुप्यते तुद्यत इव हृदयं पचतीव च । अकस्मादुष्णशीतेच्छा बह्वाशित्वं बलक्षयः ॥१७॥
स्निग्धप्रसन्नवक्त्रत्वं श्रीमद्दर्शननेत्रता । ततोऽस्य क्षयरूपाणि सर्वाण्याविर्भवन्ति च ॥१८॥
इत्येष क्षयजः कासः क्षीणानां देहनाशनः । याप्यो वा बलिनां तद्वत्क्षतजोऽपि नवौ तु तौ ॥
सिद्ध्येतामपि सामर्थ्यात्साध्यादौ च पृथक्क्रमः । मिश्रा याप्याश्च ये सर्वे जरसः स्थविरस्य च ॥
कासश्वासक्षयच्छर्दिस्वरसादादयो गदाः । भवन्त्युपेक्षया यस्मात्तस्मात्तां त्वरया जयेत् ॥२१॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे कासनिदानं नाम ऊनपञ्चाशद-
धिकशततमोऽध्यायः ॥१४९॥

पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

धन्वन्तरिरुवाच

अथातः श्वासरोगस्य निदानं प्रवदाम्यहम् । कासवृद्ध्या भवेत् श्वासः पूर्वैर्वा दोषकोपनैः ॥१॥
आमातिसारवमथूविषपाण्डुज्वरैरपि । रजोधूमानिलैर्मर्मघातादपि हिमाम्बुना ॥ २ ॥
क्षुद्रकस्तमकच्छिन्नो महानूर्ध्वश्च पञ्चमः । कफोपरुद्धगमनपवनो विष्वगास्थितः ॥ ३ ॥
प्राणोदकान्नवाहीनि दुष्टस्रोतांसि दूषयन् । उरःस्थः कुरुते श्वासमामाशयसमुद्भवम् ॥ ४ ॥
प्राग्रूपं तस्य हृत्पार्श्वशूलं प्राणविलोमता । आनाहः शङ्खभेदश्च तत्रायासोऽतिभोजनैः ॥ ५ ॥
प्रेरितः प्रेरयन् क्षुद्रं स्वयं स समलं मरुत् । प्रतिलोमं शिरा गच्छेदुदीर्य्य पवनः कफम् ॥ ६ ॥
परिगृह्य शिरोग्रीवमुरःपार्श्वे च पीडयन् । कासं घुर्घुरकं मोहरुचिरं पीनसं भृशम् ॥ ७ ॥
करोति तीव्रवेगञ्च श्वासं प्राणोपतापिनम् । प्रताम्येत्तस्य वेगेन ष्ठीवनान्ते क्षणं सुखी ॥ ८ ॥
कृच्छ्राच्छयानः श्वसिति निषण्णःस्वास्थ्यमर्हति। उच्छ्रिताक्षो ललाटेन स्विद्यता भृशमार्त्तिमान् ॥
विशुष्कास्यो मुहुः श्वासः कांक्षत्युष्णं सवेपथुः । मेघाम्बुशीतप्राग्वातैः श्लेष्मलैश्च विवर्द्धते ॥१०॥
स याप्यस्तमकः साध्यो नरस्य बलिनो भवेत् । ज्वरमूर्च्छावतः शीतैर्न शाम्येत्प्रथमस्तु सः ॥११॥
कासश्वसितवर्च्छोर्णमर्मच्छेदरुजार्दितः । सस्वेदमूर्च्छः सानाहो बस्तिदाहविबोधवान् ॥१२॥
अधोदृष्टिः प्लुताक्षस्तु स्निह्यद्रक्तैकलोचनः । शुष्कास्यः प्रलपन्दीनो नष्टच्छायो विचेतनः ॥१३॥

महता महता दीनो नादेन श्वसिति क्वथन् । उद्धूयमानः संरब्धो मत्तर्षभ इवानिशम् ॥१४॥
प्रनष्टज्ञानविज्ञानो विभ्रान्तनयनाननः । अक्षं समाक्षिपन्बद्धमूत्रवर्चा विशीर्णवाक् ॥१५॥
शुष्ककण्ठो मुहुश्चैव कर्णशङ्खशिरोऽतिरुक् । यो दीर्घमुच्छ्वसित्यूर्ध्वं न च प्रत्याहरत्यधः ॥१६॥
श्लेष्मावृतमुखश्रोत्रः क्रुद्धगन्धवहार्दितः । ऊर्ध्वदिग्वीक्षते भ्रान्तमक्षिणी परितः क्षिपन् ॥१७॥
मर्मसु छिद्यमानेषु परिदेवी निरुद्धवाक् । एते सिद्ध्येयुरव्यक्ता व्यक्ताः प्राणहरा ध्रुवम् ॥१८॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे श्वासनिदानं नाम पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५०॥

एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

धन्वन्तरिरुवाच

हिक्कारोगनिदानञ्च वक्ष्ये सुश्रुत तच्छृणु । श्वासैकहेतु प्राग्रूपं संख्या प्रकृतिसंश्रया ॥ १ ॥
हिक्का भक्ष्योद्भवा क्षुद्रा यमला महतीति च । गम्भीरा च मरुत्तत्र त्वरयाऽयुक्तिसेवितैः ॥ २ ॥
रूक्षतीक्ष्णखराशान्तैरन्नपानैः प्रपीड़ितः । करोति हिक्कां मरुतो मन्दशब्दां क्षुधानुगाम् ॥
समं सन्ध्यान्नपानेन या प्रयाति च सान्नजा ॥ ३ ॥
आयासात्पवनः क्रुद्धः क्षुद्रां हिक्कां प्रवर्त्तयेत् । जत्रुमूलात्परिसृता मन्दवेगवती हि सा ॥ ४ ॥
वृद्धिमायासतो याति भुक्तमात्रे च मार्दवम् । चिरेण यमलैर्वेगैर्या हिक्का संप्रवर्त्तते ॥ ५ ॥
परिणामा मुखे वृद्धिं परिणामे च गच्छति । कम्पयन्ती शिरो ग्रीवां यमलां तां विनिर्दिशेत् ॥६॥
प्रलापच्छर्द्यतीसारनेत्रविप्लुतजृम्भिता । यमला वेगिनी हिक्का परिणामवती च सा ॥ ७ ॥
ध्वस्तभ्रूशङ्खयुग्मस्य श्रुतिविप्लुतचक्षुषः । स्तम्भयन्ती तनुं वाचं स्मृतिं संज्ञाञ्च मुञ्चती ॥ ८ ॥
तुदन्ती मार्गमाणस्य कुर्वती मर्मघट्टनम् । पृष्ठतो नमनं साऽऽर्य्य महाहिक्का प्रवर्तते ॥ ९ ॥
महाशूला महाशब्दा महावेगा महाबला । पक्वाशयाच्च नाभेर्वा पूर्ववत्सा प्रवर्त्तते ॥१०॥
तद्रूपा सा महत्कुर्य्याज्जृम्भणाङ्गप्रसारणम् । गम्भीरेण निदानेन गम्भीरां तु सुसाधयेत् ॥११॥
आद्ये द्वे वर्जयेदन्ये सर्वलिङ्गाञ्च वेगिनीम् । सर्वस्य सञ्चितामस्य स्थविरस्य व्यवायिनः ॥१२॥
व्याधिभिः क्षीणदेहस्य भक्तच्छेदकृशस्य च । सर्वेऽपि रोगा नाशाय नत्वेवं शीघ्रकारिणः ॥
हिक्काश्वासौ यथा तौ हि मृत्युकाले कृतालयौ ॥ १३ ॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे हिक्कानिदानं नाम एकपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५१॥

द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

धन्वन्तरिरुवाच

अथातो यक्ष्मरोगस्य निदानं प्रवदाम्यहम् । अनेकरोगानुगतो बहुरोगपुरोगमः ॥ १ ॥
राजयक्ष्मा क्षयः शोषो रोगराडिति कथ्यते । नक्षत्राणां द्विजानाञ्च राज्ञोऽभूद्यदयं पुरा ॥
यच्च राजा च यक्ष्मा च राजयक्ष्मा ततो मतः ॥ २ ॥
देहौषधक्षयकृतेः क्षयान्ते सम्भवेच्च सः । रसादिशोषणाच्छोषो रोगराडिति राजवान् ॥३॥
साहसं वेगसंरोधः शुक्रौजःस्नेहसंक्षयः । अन्नपानविधित्यागश्चत्वारस्तस्य हेतवः ॥ ४ ॥
तैरुदीर्णोऽनिलः पित्तं व्यर्थञ्चोदीर्य्य सर्वतः । शरीरसन्धिमाविश्य ताः शिराः प्रतिपीड़यन् ॥५॥
मुखानि स्रोतसां रुद्ध्वा तथैवातिविसृज्य वा । मध्यमूर्ध्वमधस्तिर्यग्व्यथां सञ्जनयेद्धृदः ॥ ६ ॥
रूपं भविष्यतस्तस्य प्रतिश्यायो भृशं ज्वरः । प्रसेको मुखमाधुर्य्यं मार्दवं वह्निदेहयोः ॥ ७ ॥
लौल्यमार्गान्नपानादौ शुचावशुचिवीक्षणः । मक्षिकातृणकेशादिपातः प्रायोऽन्नपानयोः ॥ ८ ॥
हृल्लासच्छर्दिररुचिरश्नतेऽपि बलक्षयः । पाण्योरुवक्षःपादास्यकुक्ष्यक्षांरनिशुक्लता ॥ ९ ॥
बाह्वोः प्रतोदो जिह्वायाः काये वैभत्स्यदर्शनम् । स्त्रीमद्यमांसप्रियता घृणिता मूर्द्धगुण्ठनम् ॥१०॥
नखकेशास्थिवृद्धिश्च स्वप्ने चाभिभवो भवेत् । पतनं कृकलासाहिकपिश्वापदपक्षिभिः ॥११॥
केशास्थितुषभस्मादितरौ समधिरोहणम् । शून्यानां ग्रामदेशानां दर्शनं शुष्यतोऽम्भसः ॥
ज्योतिर्दिवि दवाग्नीनां ज्वलताञ्च महीरुहाम् ॥ १२ ॥
पीनसश्वासकासञ्च स्वरमूर्द्धरुजोऽरुचिः । ऊर्ध्वनिःश्वाससंशोषावधश्छर्दिश्च कोष्ठगे ॥१३॥
स्थिते पार्श्वे च रुग्बोधे सन्धिस्थे भवति ज्वरः । रूपाण्येकादशैतानि जायन्ते राजयक्ष्मणः १४॥
तेषामुपद्रवान् विद्यात्कण्ठध्वंसकरो रुजः । जृम्भाङ्गमर्दनिष्ठीववह्निमान्द्यास्यपूतिता ॥१५॥
तत्र वाताच्छिरःपार्श्वशूलञ्च साङ्गमर्दनम् । कण्ठरोधः स्वरभ्रंशो पित्तात्पादांसपाणिषु ॥१६॥
दाहोऽतिसारोऽसृक्छर्दिर्मुखगन्धो ज्वरो मदः । कफादरोचकच्छर्दिकासावर्द्धाङ्गगौरवम् ॥१७॥
प्रसेकः पीनसः श्वासः स्वरभेदोऽल्पवह्निता । दोषैर्मन्दानलत्वेन शोथलेपकफोल्वणैः ॥१८॥
स्रोतोमुखेषु रुद्धेषु धातुषु स्वल्पकेषु च । विदाहो मनसः स्थाने भवन्त्यन्ये ह्युपद्रवाः ॥१९॥
पच्यते कोष्ठ एवान्नमम्लयुक्तै रसैर्युतम् । प्रायोऽस्य क्षयभागानां नैवान्नं चाङ्गपुष्टये ॥२०॥
रसो ह्यस्य न रक्ताय मांसाय कुरुते तु तत् । उपस्तब्धः समन्ताच्च केवलं वर्तते क्षयी ॥२१॥
लिङ्गेष्वल्पेष्वतिक्षीणं व्याधौ षट्करणत्त्रयम् । वर्जयेत्साधयेदेव सर्वेष्वपि ततोऽन्यथा ॥२२॥
दोषैर्व्यस्तैः समस्तैश्च क्षयात्सर्वस्य मेदसाम् । स्वरभेदो भवेत्तस्य क्षामो रूक्षश्चलः स्वरः ॥२३॥

शूकपर्णाभकण्ठत्वं स्निग्धोष्णोपशमोऽनिलात् । पित्तात्तालुगले दाहः शोषो भवति सन्ततम् ॥२४॥
लिम्पन्निव कफैः कण्ठं मुखं घुरघुरायते । स्वयं विरुद्धैः सर्वैस्तु सर्वलिङ्गैः क्षयो भवेत् ॥२५॥
धूमायतीव चात्यर्थमुदेति श्लेष्मलक्षणम् । कृच्छ्रसाध्याः क्षयाश्चात्र सर्वैरल्पञ्च वर्जयेत् २६॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे यक्ष्मनिदानं नाम
द्विपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५२॥

त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

धन्वन्तरिरुवाच

अरोचकनिदानं ते वक्ष्येऽहं सुश्रुताधुना । अरोचको भवेद्दोषैर्जिह्वाहृदयसंश्रयैः ॥ १ ॥
सन्निपातेन मनसः सन्तापेन च पञ्चमः । कषायतिक्तमधुरं वातादिषु मुखं क्रमात् ॥ २ ॥
सर्वं वीतरसं शोकक्रोधादिषु यथा मनः । छर्दिर्दोषैः पृथक् सर्वैर्दुष्टैरन्यैश्च पञ्चमी ॥ ३ ॥
उदानोऽधिकृतान्दोषान्सर्वं सन्ध्यर्द्धमस्यति । आशुक्लेशोऽस्य लावण्यप्रसेकारुचयोपमाः ॥ ४ ॥
नाभिपृष्ठं रुजत्याशु पार्श्वे चाहारमुत्क्षिपेत् । ततो विच्छिन्नमल्पाल्पकषायं फेनिलं वमेत् ॥ ५ ॥
शब्दोद्गारयुतः कृच्छ्रमनुकृच्छ्रेण वेगवत् । कासास्यशोषकं वातात्स्वरपीड़ासमन्वितम् ॥ ६ ॥
पित्तात्क्षारोदकनिभं धूम्रं हरितपीतकम् । सासृगम्लं कटु तिक्तं तृण्मूर्च्छादाहपाकवत् ॥ ७ ॥
कफात्स्निग्धं घनं पीतं श्लेष्मतस्तु समाक्षिकम् । मधुरं लवणं भूरि प्रसक्तं लोमहर्षणम् ॥ ८ ॥
मुखश्वयथुमाधुर्य्यतन्त्रीहृल्लासकासवान् । सर्वैर्लिङ्गैः समापन्नस्त्याज्यो भवति सर्वथा ॥ ९ ॥
सर्वं यस्य च विद्विष्टं दर्शनश्रवणादिभिः । वातादिनैव संक्रुद्धाः कृमिदुष्टान्नजे गदे ॥
शूलवेपथुहृल्लासो विशेषात्कृमिजे भवेत् ॥ १० ॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे अरोचकनिदानं नाम त्रिपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५३॥

चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

धन्वन्तरिरुवाच

हृद्रोगादिनिदानं ते वक्ष्येऽहं सुश्रुताधुना । कृमिहृद्रोगलिङ्गैश्च स्मृताः पञ्च तु हृद्गताः ॥१॥
वातेन शून्यतात्यर्थं भुज्यते रोदितीति च । भिद्यते शुष्यते स्तब्धं हृदयं शून्यता भ्रमः ॥२॥

अकस्माद्दीनता शोको भयं शब्देऽसहिष्णुता । वेपथुर्वेपनान्मोहश्वासरोधोऽल्पनिद्रता ॥३॥
पित्तात्तृष्णा श्रमो दाहः स्वेदोऽम्लकरुजः क्लमः । छर्दनं ह्यम्लपित्तस्य धूमकल्पितको ज्वरः ॥४॥
श्लेष्मणा हृदयं स्तब्धमग्निमान्द्यास्यवैकृतम् । कासास्थिसादनिष्ठीवनिद्रालस्यारुचिज्वराः ॥५॥
हृद्रोगे हि त्रिभिर्दोषैः कृमिभिः श्यावनेत्रता । तमःप्रवेशो हृल्लासः शोथः कण्डुः कफस्रुतिः ॥
हृदयं सततञ्चात्र क्रकचेनेव दीर्य्यते । चिकित्सेदामयं घोरं तच्छीघ्रं शीघ्रमारिणम् ॥७॥
वातात्पित्तात्कफात्तृष्णा सन्निपाताद्बलक्षयः । षष्ठी स्यादुपसर्गाच्च वातपित्ते च कारणम् ॥८॥
सर्वेषु तत्प्रकोपो हि सम्यग्धातुप्रशोषणात् । सर्वदेहभ्रमोत्कम्पतापहृद्दाहमोहकृत् ॥९॥
जिह्वामूलगलक्लोमतालुतोयवहाः शिराः । संशोष्य तृष्णा जायन्ते तासां सामान्यलक्षणम् ॥१०॥
मुखशोषो जलातृप्तिरन्नद्वेषः स्वरक्षयः । कण्ठौष्ठतालुकार्कश्याजिह्वानिष्क्रमणे क्लमः ॥
प्रलापश्चित्तविभ्रंशो ह्युद्गाराद्यस्तथामयः ॥११॥
मारुतात्क्षामता दैन्यं शङ्खभेदः शिरोभ्रमः । गन्धाज्ञानास्यवैरस्यश्रुतिनिद्राबलक्षयाः ॥१२॥
अम्लाल्पकेन वृद्धिश्च पित्तान्मूर्च्छास्यतिक्तता ॥१३॥
रक्तेक्षणत्वं सततं शोषो दाहोऽतिधूमकः । कफो रुणद्धि कुपितस्तोयवाहिषु मारुतम् ॥१४॥
स्रोतश्च सकफं तेन पङ्कवच्छोष्यते तपः । शूकैरिवाचितः कण्ठो निद्रामधुरवक्त्रता ॥१५॥
सर्वदा शिरसो जाड्यं स्तैमित्यच्छर्द्यरोचकाः । आलस्यमविपाकश्च यः स स्यात्सर्वलक्षणः ॥१६॥
आमोद्भवाच्च रक्तस्य संरोधाद्वातपित्तता । उष्णाक्रान्तस्य सहसा शीतो भवति दुःसहः ॥१७॥
तृष्णारुद्धो गतः कोष्ठं कुर्य्याच्चु पित्तजैव सा । या च पानातिपानोत्थास्तीक्ष्णाग्रे स्नेहपाकजा ॥
स्निग्धकट्वम्ललवणभोजनेन कफोद्भवा । तृष्णारसक्षयोक्तेन लक्षणेन क्षयात्मिका ॥१९॥
शोषमोहज्वराद्यन्यदीर्घरोगोपसर्गतः । या तृष्णा जायते तीव्रा सोपसर्गात्मिका स्मृता ॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे हृद्रोगनिदानं नाम
चतुःपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५४॥

पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

धन्वन्तरिरुवाच

वक्ष्ये मदात्ययादेश्च निदानं मुनिभाषितम् । तीक्ष्णाम्लरुक्षसूक्ष्माद्यव्यनायाशुकरं लघु ॥१॥
विकाशि विपदं मद्ये मेदसोऽस्माद्विपर्य्ययः । तीक्ष्णोदयाश्च दिव्युक्ताश्चित्तोपतापिनो गुणाः ॥२॥

जीवितान्ताः प्रजायन्ते विशेषोत्कर्षवर्त्तिनः । तीक्ष्णादिभिर्गुणैर्मद्यान्मान्द्यदीनौजसो गुणाः ३॥
इन्द्रियाणि च संक्षोभ्य चेतो नयति विक्रियाम् । आद्ये मद्ये द्वितीयेऽपि प्रमदायतने स्थितः ४॥
दुर्विकल्पहतो मूढः सुखमित्येव मुच्यते । मद्यपाने मतिर्यस्य प्राप्य राजासनं मदैः ॥५॥
निरङ्कुश इव व्यालो न किञ्चिन्नाचरेत्ततः । इयं भूमिरवाच्यानां दौःशील्यस्येदमास्पदम् ॥६॥
एकोऽयं बहुमार्गाया दुर्गतेर्दर्शकः परः । निश्चेष्टः सततं याञ्छेत्तृतीयेऽत्र मदे स्थितः ॥७॥
मरणादपि पापात्मा गतः पापतरां दशाम् । धर्माधर्मं सुखं दुःखं मानामानं हिताहितम् ॥८॥
न वेद शोकमोहार्त्तः शोषमोहादिसंयुतः । संमोदभ्रममूर्च्छायां सापस्मारं पतत्यधः ॥
नाति माद्यन्ति बलिनः कृताहारा महाशनाः ॥९॥
वातात्पित्तात्कफात्सर्वैर्भवेद्रोगो मदात्ययः । सामान्यलक्षणं तेषां प्रमोहो हृदयव्यथा ॥१०॥
विभेदप्रततं तृष्णा सौम्यो ग्लानिज्वरोऽरुचिः । पुरोविबन्धस्तिमिरं कासः श्वासः प्रजागरः ॥
स्वेदोऽतिमात्रं विष्टम्भः श्वयथुश्चित्तविभ्रमः । स्वप्नेनैवाभिभवति न चोक्तश्च स भाषते ॥१२॥
पित्ताद्दाहज्वरस्वेदो मोहो निरथश्च हृद्भ्रमः । श्लेष्मणश्छर्दिहृल्लासनिद्रा चोदरगौरवम् ॥१३॥
सर्वजे सर्वलिङ्गत्वं ज्ञात्वा मद्यं पिबेत्तु यः । सर्वश्च रुचिरश्चास्य मतिध्वंसकविक्रिये ॥१४॥
भवेतां पायिनः काष्ठे द्रव्ये तस्याविशेषतः । मारुताच्छ्लेष्मनिष्ठीवकण्ठशोषोऽतिनिद्रता ॥१५॥
शब्दासहत्वं तच्चित्तविक्षेपोऽङ्गे हि वातरुक् । हृत्कण्ठरोगः सम्मोहः श्वासतृष्णावमिज्वराः ॥१६॥
निवर्त्तेद्यस्तु मद्येभ्यो जितात्मा बुद्धिपूर्वकृत् । विकारैः क्लिश्यते या तु न स शारीरमानसैः ॥
रजोमोहहिताहारपरस्य स्युस्त्रयो गदाः । वसासृक्क्लेदनावाहिस्रोतोरोधसमुद्भवाः ॥१८॥
मदमूर्च्छोपसंन्यासा यथोत्तरबलोद्भवाः । मदोऽत्र दोषैः सर्वैस्तु रक्तमद्यविषैरपि ॥१९॥
रक्ताल्पत्वाद्द्रुताभासश्चलश्छ्लितचेष्टितः । रुक्षश्यामारुणतनुर्मद्ये वातोद्भवे भवेत् ॥२०॥
पित्तेन क्रोधनो रक्तपीताभः कलहप्रियः । स्वप्नोऽसम्बद्धवाक्यादिः कफाद्ध्यानपरो हि सः ॥
सर्वात्मा सन्निपातेन रक्तस्तम्भाङ्गदूषणम् । पित्तलिङ्गं तु मद्येन विकृतेहः स्वराज्ञता ॥२२॥
त्रिशत्कम्पातिनिद्रा च सर्वेभ्योऽप्यधिकं श्रमः । लक्षयेल्लक्षणोत्कर्षाद्वातादीन्लक्षणादिषु ॥२३॥
अरुणं नीलकृष्णं वा खमपश्यन्विशेत्तमः । शीघ्रञ्च प्रतिबुध्येत हृत्पीड़ा वेपथुर्भ्रमः ॥२४॥
कासः श्यावारुणच्छायामूर्च्छा च मारुतात्मिका । पित्तेन रक्तं पीतं वा नभः पश्यन्विशेत्तमः ॥
विबुध्येत च सस्वेदो दाहतृष्णोपपीड़ितः । भिन्नवर्त्पीतनीलाभो रक्तपित्तारुणेक्षणः ॥२६॥
कफे समेघसङ्काशं पश्यत्याकाशमाविशेत् । तमश्चिराच्च बुध्येत हृल्लासः सुप्रसेकवान् ॥२७॥
गुरुभिः स्तिमितैरङ्गै राजधर्माविबन्धवत् । सर्वाकृतिस्त्रिदोषैश्च अपस्मार इवापरः ॥२८॥

पातयत्याशु निश्चेष्टं विना बीभत्सचेष्टितैः । दोषेषु मदमूर्च्छायां कृतवेगेषु देहिनाम् ॥२९॥
स्वयमेवोपशाम्यन्ति संन्यासेनौषधैर्विना । वाग्देहमनसां चेष्टामाक्षिप्यातिबलोऽमनाः॥३०॥
ससंन्यासान्निपतिताः प्राणघातेन संश्रयाः । भवन्ति तेन पुरुषाः काष्ठभूता मृतोपमाः ॥३१॥
म्रियेत शीघ्रं शीघ्रं चेच्चिकित्सा न प्रयुज्यते । अगाधे ग्राहबहुले सलिलौघ इवार्णवे ॥३२॥
संन्यासे विनिमज्जन्तं नरमाशु निवर्त्तयेत् । मदमानो रोषतोषं लभेयुरिति निश्चितम् ॥३३॥
युक्त्या युक्तं च विमुक्तिहेतवे मद्यमयुक्तं नरकादेः ॥
सामर्थ्यं प्रकृतिसहायमथवा वयांसि कुरुते । प्रविविच्य तनुं रूपं विवृति ततः पिबत्यमृतम् ३४॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे मदात्ययादिनिदानं नाम
पञ्चपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५५॥

षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

धन्वन्तरिरुवाच

अथार्शसां निदानञ्च व्याख्यास्यामि च सुश्रुत । सर्वदा प्राणिनां मांसे कीलकाः प्रभवन्ति य ॥
अर्शांसि तस्मादुच्यन्ते गुदमार्गनिरोधनात् । दोषस्त्वङ्मांसमेदांसि सन्दूष्य विविधाकृतीन्॥२॥
मांसाङ्कुरानपानादौ कुर्वन्त्यर्शांसि तान् जगुः । सहजन्मान्तरोत्थेन भेदो द्वेधा समासतः ॥३॥
शुष्कस्रावा विभेदाश्च गुदस्थानानुसंश्रयाः । अर्द्धपञ्चाङ्गुलिस्तस्मिंस्त्रोऽर्द्धाङ्गुलिस्थिताः ॥४॥
रक्तप्रवाहिणी तासामन्त्रमध्ये विसर्जिनी । बाह्यासंवरणे तस्या गुदादौ बहिरङ्गुले ॥५॥
सार्द्धाङ्गुलप्रमाणेन रोमाण्यत्र ततः परम् । तत्र हेतुः सहोत्थानां बाल्ये जीवोपतप्तता ॥६॥
अर्शसां बीजसृष्टिस्तु मातृपित्रुपचारतः । देवतानां प्रकोपे हि सन्निपातो हि च।न्तः ॥७॥
असाध्या एवमाख्याताः सर्वरोगाः कुलोद्भवाः । सहजानि विशेषेण रुक्षदुर्दर्शनानि न ॥
अन्तर्मुखानि पाण्डूनि दारुणोपद्रवाणि च ॥८॥
षोढार्शांसि पृथग्दोषसंसर्गनिश्चयत्वतः । शुष्काणि वातश्लेष्माभ्यामार्द्राणि त्वस्य पित्ततः ॥९॥
दोषप्रकोपहेतुस्तु प्रागुक्तमलसादिनि । अग्नौ मलेऽतिनिचिते पुनश्चातिव्यवायतः ॥१०॥
पानसंक्षोभविषमकठिनक्षुद्रकाशनात् । बस्तिनेत्रगलौष्ठोत्थतलभेदादिघट्टनात् ॥११॥
भृशशीताम्बुसंस्पर्शप्रततातिप्रवाहणात् । गतमूत्रशकृद्वेगधारणात्तदुदीरणात् ॥१२॥
जुगुप्सातीसारमेव ग्रहणी सोऽप्युपद्रवः । कर्षणाद्विषमादेश्च चेष्टाभ्यो योषितां पुनः ॥१३॥
आमगर्भप्रपतनाद्गर्भवृद्धिप्रपीडनात् । ईदृशैश्चापरैर्वायुरपानः कुपितो मले ॥१४॥

पायोर्बलीषु संवृत्तिरुद्धासु पर्वमूर्त्तिषु । जायन्तेऽर्शांसि तत्पूर्वं लक्षणं वह्निमन्दता ॥१५॥
विष्टम्भः सास्थिसदनं पिण्डिकोद्वेष्टनो भ्रमः । सन्दाहो नेत्रयोः शोथः शकृद्भेदोऽथ वा ग्रहः ॥
मारुतः पुरतो मूढः प्रायो नाभेरधश्चरन् । सरक्तः परिव्यक्तश्च कृच्छ्रातिगच्छति श्वसन् ॥१७॥
अंत्रकूजनमाटोपः क्षारितोद्गारभूरिता । प्रभूतमूत्रमल्पविडश्रद्धाधूम्रकोऽम्लकः ॥ १८ ॥
शिरःपृष्ठोरसां शूलमालस्यं भिन्नवर्त्तता । इन्द्रियार्थेषु लौल्यञ्च क्रोधो दुःखोपचारतः ॥ १९ ॥
आशङ्का ग्रहणीशोषपाण्डुगुल्मोदराणि च । एतान्येव विवर्द्धन्ते जातेष्वहतनामसु ॥ २० ॥
निवर्त्तमानो मानो हि तैरधोमार्गरोधतः । क्षोभयेदनिलानन्यान् सर्वेन्द्रियशरीरगान् ॥ २१ ॥
तथा मूत्रशकृत्पित्तकफस्थानानि शोषयन् । गृह्णात्यग्निं ततः सर्वे भवन्ति प्रायशोऽर्शसः ॥ २२ ॥
कृशो भृशं कृशोत्साहो दीनः क्षामोऽथ निष्प्रभः । असारो विगतच्छायो जन्तुदग्ध इव द्रुमः ॥२३॥
कृच्छ्रैरुपद्रवैर्ग्रस्तो यक्ष्मोक्तैर्मर्मपीड़नैः । तथा कासपिपासास्यवैरस्यश्वासपीनसैः ॥ २४ ॥
क्लमाङ्गभङ्गवमथुक्षवथुश्वयथुज्वरैः । क्लैव्यबाधिर्य्यस्तैमित्यशर्करापरिपीड़ितः ॥ २५ ॥
क्षामो भिन्नस्वरो ध्यायन् मुहुः ष्ठीवन्नरोचकी । सर्वमर्मास्थिहृन्नाभिपायुवङ्क्षणशूलवान् ॥
गुदेन स्रवता पित्तं पललोदकसन्निभम् ॥ २६ ॥

विशुष्कश्चव मुक्ताग्रं पक्वमाचान्तवान्तरम् । पित्तात् पीतं हरिद्राक्तं विच्छिन्नञ्चोपदिश्यते ॥२७॥
गुदाङ्कुरा बह्वनिलाः शुष्काश्चिमचिमान्विताः । म्लानाः श्यावारुणाः स्तब्धा विषदाः परुषाः खराः॥
मिथो विसदृशा वक्रास्तीक्ष्णा विस्फुटिताननाः । बिम्बखर्जूरकर्कन्धुकार्पासफलसन्निभाः ॥ २९ ॥
केचित्कदम्बपुष्पाभाः केचित्सिद्धार्थकोपमाः । शिरःपार्श्वांसजङ्घोरुवङ्क्षणाद्यधिकव्यथाः ॥
क्षवथूद्गारविष्टम्भहृद्ग्रहारोचकप्रदाः । कासश्वासाग्निवैषम्यकर्णनादभ्रमावहाः ॥ ३१ ॥
तैरार्त्तो ग्रथितं स्तोकं सशब्दं सप्रवाहिकम् । रुक्फेनपिच्छानुगतं विबद्धमुपवेश्यते ॥ ३२ ॥
कृष्णत्वङ्नखविण्मूत्रनेत्रवक्त्रञ्च जायते । गुल्मप्लीहोदराष्ठीलासम्भवस्तत एव च ॥ ३३ ॥
पित्तोत्तरा नीलमुखा रक्तपीतासितप्रभाः । तन्वग्रस्राविणो विस्रास्तनवो मृदवः श्लथाः ॥३४॥
शुकजिह्वायकृत्खण्डजलौकावक्त्रसन्निभाः । दाहपाकज्वरस्वेदतृण्मूर्च्छाऽरुचिमोहदाः ॥ ३५ ॥
सोष्माणो द्रवनीलोष्णपीतरक्तामवर्चसः । यवमध्या हरित्पीतहारिद्रत्वङ्नखादयः ॥ ३६ ॥
श्लेष्मोल्बणा महामूला घना मन्दरुजः सिताः । उत्सन्नोपचितस्निग्धस्तब्धवृत्तगुरुस्थिराः ॥ ३७ ॥
पिच्छिलाः स्तिमिताः श्लक्ष्णाः कण्ड्वाढ्याः स्पर्शनप्रियाः ।
करीरपनसास्थ्याभास्तथा गोस्तनसन्निभाः ॥३८॥

वङ्क्षणानाहिनः पायुबस्तिनाभिविकर्षिणः । सश्वासकासहृल्लासप्रसेकारुचिपीनसाः ॥ ३९ ॥

मेहकृच्छ्रशिरोजाड्यशिशिरक्षारकारिणः । क्लैव्याग्निमार्दवच्छर्दिरामप्रायविकारदाः ॥ ४० ॥
वसाभसकफप्राज्यपुरीषाः सप्रवाहिकाः । न स्रवन्ति न भिद्यन्ते पाण्डुस्निग्धत्वगादयः ॥४१॥
संसृष्टलिङ्गात्संसर्गनिचयात्सर्वलक्षणाः । रक्तोल्बणा गुदे कीलाः पित्ताकृतिसमन्विताः ॥४२॥
वटप्ररोहसदृशाः गुञ्जाविद्रुमसन्निभाः । तेऽत्यर्थं दुष्टमुष्णञ्च गाढविट्कप्रपीड़िताः ॥ ४३ ॥
स्रवन्ति सहसा रक्तं तस्य चातिप्रवृत्तितः । भेकाभः पीडयते दुःखैः शोणितक्षयसम्भवैः ॥४४॥
हीनवर्णबलोत्साहो हतौजाः कलुषेन्द्रियः । मुद्गकोद्रवजम्बीरकरीरचणकादिभिः ॥ ४५ ॥
रुक्षैः संग्राहिभिर्वायुर्विट्स्थाने कुपितो बली । अधोवहानि स्रोतांसि संरुध्याधः प्रशोषयन् ॥४६॥
पुरीषं वातविण्मूत्रसङ्गं कुर्वीत दारुणम् । तेन तीव्रा रुजा कोष्ठपृष्ठहृत्पार्श्वगा भवेत् ॥४७॥
आध्मानमुदरे विष्ठा हृल्लासपरिवर्त्तनम् । बस्तौ च सुतरां शूलो गण्डश्वयथुसम्भवः ॥४८॥
पवनस्योर्ध्वगामित्वात् ततश्छर्द्यरुचिज्वराः । हृद्रोगग्रहणीदोषमूत्रसङ्गप्रवाहिकाः ॥ ४९ ॥
बाधिर्य्यातिशिरःश्वासशिरोरुक्कासपीनसाः । मलविकारतृष्णासु पित्तगुल्मोदरादयः ॥ ५० ॥
एते च वातजा रोगा जायन्ते दारुणाः स्मृताः । दुर्नामामृत्यूदावर्त्तपरमोऽयमुपद्रवः ॥ ५१ ॥
बाताभिभूतकोष्ठानां तैर्विनापि प्रजायते । सहजानि तु दोषाणि यानि चाभ्यन्तरे बलौ ॥
स्थितानि तान्यसाध्यानि याप्यन्तेऽग्निबलादिभिः ॥ ५२ ॥
द्वन्द्वजानि द्वितीयायां बलौ यान्याश्रितानि च । कृच्छ्रसाध्यानि तान्याहुः परिसंवत्सराणि च ॥
बाह्यायां तु बलौ जातान्येकदोषोल्वणानि च । अर्शांसि सुखसाध्यानि न चिरोत्पत्तिकानि च ॥
मेढ्रादिष्वपि वक्ष्यन्ते यथास्वं नाभिजानि तु । गण्डूपदस्य रूपाणि पिच्छिलानि मृदूनि च॥५५॥
व्यानो गृहीत्वा श्लेष्माणं करोत्यर्शस्त्वचो बहिः । कीलोपमं स्थिरखरं चर्मकीलञ्च तं विदुः॥५६॥
वातेन तोदपारुष्यं पित्तादसितवक्त्रता । श्लेष्मणा स्निग्धता तस्य ग्रथितत्वं सवर्णता॥५७॥
अर्शसां प्रशमे यत्नमाशु कुर्वीत बुद्धिमान् । तान्याशु हि गदं कार्य्यं कुर्य्युरूर्ध्वंगुदोदरम् ॥५८॥

इति गारुड़े महापुराणे अर्शोनिदानं नाम षट्पञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५६॥

सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ।

धन्वन्तरिरुवाच

अतीसारग्रहण्योश्च निदानं वच्मि सुश्रुत । दोषैर्व्यस्तैः समस्तैश्च भयाच्छोकाच्च षड्विधः ॥ १ ॥
अतीसारः स सुतरां जायतेऽत्यम्बुपानतः । विशुष्कान्नवसास्नेहतिलपिष्टविरूढकैः ॥ २ ॥

मद्यरुक्षातिमात्रादिदिवसादिपरिश्रमात् । कृमिभ्यो वेगरोधाच्च तद्विधैः कुपितानिलः ॥ ३ ॥
विभ्रंसयत्यधो रक्तं हत्वा तेनैव चानलम् । व्यापर्य्यान्नशकृत्कोष्ठपुरीषद्रवतादयः ॥ ४ ॥
प्रकल्पतेऽतीसारस्य लक्षणं तस्य भाविनः । भेदो हृद्गुदकोष्ठेषु गात्रस्वेदो मलग्रहः ॥ ५ ॥
आध्मानमविपाकश्च तत्र वातेन विज्वरम् । स्वल्पाल्पं शब्दशून्याढ्यं विरुद्धमुपवेश्यते ॥ ६ ॥
रुक्षं सफेनमस्वच्छं ग्रथितं वा मुहुर्मुहुः । तथा दग्ध्वा गुदामांसं पिच्छिलं परिकर्त्तयन् ।
सशुष्कभ्रष्टपायुश्च हृष्टरोमा विनिःश्वसन् ॥ ७ ॥
पित्तेन पीतमसितं हारिद्रं शाद्वलप्रभम् । सरक्तमतिदुर्गन्धं तृण्मूर्च्छास्वेददाहवान् ॥ ८ ॥
सशूलपायुसन्तापपाकवाञ्श्लेष्मणा घनम् । पिच्छिलं तत्रानुसारमल्पाल्पं सप्रवाहिकम् ॥ ९ ॥
सरोमहर्षः सोत्क्लेशो गुरुर्बस्तिगुदोदरः । कृतेऽप्यकृतसञ्ज्ञश्च सर्वात्मा सर्वलक्षणः ॥१०॥
भयेन क्षुभिते चित्ते शयितो द्रावयेच्छकृत् । वायुस्ततो निवार्य्येत क्षिप्रमुष्णं प्रविप्लवम् ॥११॥
वातपित्ते समं लिङ्गमभूत्तद्वच्च शोकतः । अतीसारः समासेन द्वेधा सामो निरामकः ॥१२॥
शकृद्दुर्गन्धमाटोपविष्टम्भार्त्तिप्रसेकिनः । विपरीतो निरामस्तु कफात्कोऽपि न मज्जति १३॥
अतीसारेषु यो नातियत्नवान्ग्रहणीगदः । तस्य स्यादग्निनिर्वाणकरैरित्यनुसेवितैः ॥१४॥
सामं शकृन्निरामं वा जीर्णं येनातिसार्य्यते । सोऽतिसारोऽतिसरणादाशुकारी स्वभावतः ॥
सामशीर्णमजीर्णेन जीर्णे पक्वं तु नैव च ॥१५॥
चिरकृद्ग्रहणीदोषः सञ्चयश्चोपवेशयेत् । स चतुर्द्धा पृथग्दोषैः सन्निपाताच्च जायते ॥१६॥
प्राग्रूपाङ्गस्य सदनं चिरात्पवनमल्पकः । प्रसेको वक्त्रवैरस्यमरुचिस्तृट्समो भ्रमः ॥१७॥
आबद्धोदरता छर्दिः कर्णकेऽप्यनुकूजनम् । सामान्यलक्षण कार्श्यं भूमकस्तमको ज्वरः ॥१८॥
मूर्च्छा शिरोरुविष्टम्भः श्वयथुः करपादयोः । तन्द्रानिलात्तालुशोषस्तिमिरं कर्णयोः स्वनः ॥
पार्श्वोरुवङ्क्षणग्रीवारुजा तीक्ष्णविसूचिका ॥१९॥
रुग्णेषु वृद्धिः सर्वेषु क्षुत्तृष्णापरिकर्त्तिकाः । जीर्णे जीर्य्यति चाध्मानं भुक्ते स्वास्थ्यं समश्नुते ॥
वाताद्धृद्रोगगुल्मार्शःप्लीहपाण्डुस्त्वसंज्ञिता । चिराद्दुःखं द्रवं शुष्कं तुन्दारं शब्दफेनवत् ॥
पुनः पुनः सृजेद्वर्चः पायुरुच्छ्वासकासवान् ॥२१॥
पीतेन पीतनीलाभं पीताभं सृजति द्रवम् । अत्यम्लोद्गारहृत्कण्ठदाहारुचितृडर्दितः ॥२२॥
श्लेष्मणा पच्यते दुःखे मलश्छर्दिररोचकाः । आस्योपदाहनिष्ठीवकासहृल्लासपीनसाः ॥२३॥
हृदयं मन्यते स्त्यानमुदरं स्तिमितं गुरुम् । उद्गारो दुष्टमधुरः सदनं संप्रहर्षणम् ॥२४॥
सम्भिन्नश्लेष्मसंश्लिष्टगुरुवर्च्चःप्रवर्त्तनम् । अकृशस्यापि दौर्बल्यं सर्वजे सर्वदर्शनम् ॥२५॥

विभागेऽङ्गस्य द्वे चोक्ता विषमाद्यास्त्रयो मताः । तेऽप्यस्य ग्रहणीदोषाः समस्तेष्वस्ति कारणम् ॥
वातव्याध्यश्मरीकुष्ठमोहोदरभगन्दरम् । अर्शांसि ग्रहणीत्यष्टौ महारोगाः सुदुस्तराः ॥२७॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे अतिसारनिदानं नाम
सप्तपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५७॥

अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः

धन्वन्तरिरुवाच

अथातो मूत्रघातस्य निदानं शृणु सुश्रुत । बस्तिबस्तिशिरामेढ्रकटीवृषणपायु च ॥ १ ॥
एकसंवरणाः प्रोक्ता गुदास्थिविवराश्रयाः । अधोमुखोऽपि वस्तिर्हि मूत्रवाहिशिरामुखैः ॥ २ ॥
पार्श्वेभ्यः पूर्य्यते सूक्ष्मैः स्यन्दमानैरनारतम् । तैस्तैरेव प्रविश्यैवं दोषाः कुर्वन्ति विंशतिम् ३ ॥
मूत्राघातः प्रमेहश्च कृच्छ्रान्मर्म समाश्रयेत् । बस्तिवङ्क्षणमेढ्रास्थियुक्तमल्पं मुहुर्मुहुः ॥ ४ ॥
मूत्राणि वाते कृच्छ्राय पित्ते पीतं सदाहरुक् । रक्तं वा कफजे बस्तिमेढ्रगौरवशोथवान् ॥ ५ ॥
सपिच्छिलं पिङ्गलञ्च सर्वैः सर्वात्मकं मलैः । यदा वायुर्मुखं बस्तेर्व्यावर्त्त्य परिशोषयन् ॥ ६ ॥
मूत्रं सपित्तं सकफं सशुक्रं वा तदा क्रमात् । संजायतेऽश्मरी घोरा पित्ताङ्गमिव रोचता ॥ ७ ॥
श्लेष्माश्रया च सर्वा स्यादथास्याः पूर्वलक्षणम् । बस्त्याध्मानं तदासन्नदेशे हि परितोऽतिरुक् ॥
बस्तौ च मूत्रसङ्गित्वं मूत्रकृच्छ्रं ज्वरोऽरुचिः । सामान्यलिङ्गं रुग्णाभिसीवनीबस्तिमूर्द्धसु ॥९॥
विस्तीर्णायासमूत्रं स्यात्तया मार्गनिरोधने । बध्यं बाधामुखं मेहेदच्छं गोमेदकोपमम् ॥१०॥
तत्संक्षोभाद्भवेत्सासृङ्मांसमध्वनि रुग्भवेत् । तत्र वाताभिमूत्रार्त्तो दन्तान्खादति वेपते ॥११॥
गृह्णाति मेहनं नाभिं पीड़यत्यतिलक्षणम् । सानिलं मुञ्चति शकृन्मुहुर्मेहति बिन्दुशः ॥१२॥
श्यामरुक्षाश्मरी चास्य स्याच्चिता कण्टकैरिव । पित्तेन दह्यते वस्तिः पच्यमान इवोष्णवान् ॥
भल्लातकास्थिसंस्थाना रक्ता पीता सिताश्मरी । वस्तिर्निस्तुद्यत इव श्लेष्मणा शीतला गुरुः ॥
अश्मरी महती श्लक्ष्णा मधुवर्णाथवा सिता । एता भवन्ति बालाना तेषामेव च भूयसाम् १५॥
आशयोपचयाल्पत्वाद्ग्रहणाहरणे सुखा । शुक्राश्मरी तु महती जायते शुक्रधारणात् ॥१६॥
स्थानच्युतममुक्तं वा अण्डयोरन्तरेऽनिलः । शोषयत्युपसंगृह्य शुक्रं तच्छुक्रमश्मरी ॥१७॥
बस्तिरुक् कृच्छ्रमूत्रत्वं शुक्रा श्वयथुकारिणी । तस्यामुत्पन्नमात्रायां शुष्कमेत्य विलीयते ॥१८॥

र्यां नं ज्वरकासेऽस्मिन्नश्मर्य्येव च शर्करा । असौ वा वायुना भिन्ना सा त्वस्मिन्ननुलोमगे ॥
निरेति सह सूत्रेण प्रतिलोमे विपच्यते ॥१९॥
मूत्रसंस्राविणं कुर्य्यात्क्रुद्धो बस्तेर्मुखं मरुत् । मूत्रसङ्गं रुजं कुर्य्यात्कदाचिच्च स्वधामतः ॥२०॥
प्रच्छाद्य बस्तिमुद्धृत्य गर्भान्तं स्थूलविप्लुताम् । करोति तत्र रुग्दाहं स्पन्दनोद्वेष्टनानि च ॥२१॥
बिन्दुशश्च प्रवर्त्तेत मूत्रं बस्तौ तु पीड़िते । धारावरोधश्चाप्येष वातबस्तिरिति स्मृतः ॥२२॥
दुस्तरो दुस्तरतरो द्वितीयः प्रबलोऽनिलः । शकृन्मार्गस्य बस्तेश्च वायुश्चान्तरमाश्रितः ॥२३॥
अष्ठीलाभं घनं ग्रन्थिं करोत्यचलमुन्नतम् । वाताष्ठीलेति सात्मानं विण्मूत्राणि च सर्गकृत् ॥
विगुणः कुण्डलीभूतो बस्तौ तीव्रव्यथानिलः । अवध्यमूत्रं भ्रमति संस्तम्भोद्वेष्टगौरवम् ॥२५॥
मूत्रमल्पाल्पमथवा विमुञ्चति सकृत् सकृत् । वातकुण्डलिकेत्येव शुक्रे तु विधृतेऽचिरे ॥२६॥
न निरेति निरुद्धं वा मूत्रातीतं तदल्परुक् । विधारणात् प्रतिहते वातादावर्त्तितं यदा ॥२७॥
नाभेरधस्तादुदरं मूत्रमापूरयेत्तदा । कुर्य्याद्धि रुगनाध्मानमशक्तिमलसंग्रहम् ॥२८॥
तन्मूत्रं जाठरं छिद्रं वैगुण्येनानिलेन वा । आक्षिप्तमल्पमूत्रस्य बस्तौ नाभौ च वा मले ॥
स्थित्वा स्रवेच्छनैः पश्चात्सरुजं वाथवाऽरुजम् । मूत्रोत्सर्गमविच्छिन्नं तच्छेषं गुरुशोषवत् ॥३०॥
अन्तर्बस्तिमुखे वृत्तः स्थिरोऽल्पः सहसा भवेत् । अश्मरीतुल्यरुग्ग्रन्थिर्मूत्रग्रन्थिः स उच्यते ॥
मूत्रितस्य स्त्रियं यातो वायुना शुक्रमुद्धृतम् । स्थानाच्च्युतं मूत्रयतः प्राक् पश्चाद् वा प्रवर्त्तते ॥
भस्मोदकप्रतीकाशं मूत्रशुक्रं तदुच्यते । रुक्षदुर्बलयोर्वातेनोदावर्त्तं शकृद् यदा ॥३३॥
मूत्रस्रोतोऽनुपद्येत संसृष्टं शकृता तदा । मूत्रविन्दुस्तुल्यगन्धी स्याद्विघातं तदादिशेत् ३४॥
पित्तव्यायामतीक्ष्णाम्लभोजनाध्मानकादिभिः । प्रवृद्धवायुना मूत्रे वस्तिस्थे नैव दाहकृत् ३५॥
मूत्रं वर्त्तयते पूर्वं सरक्तं रक्तमेव वा । उष्णं पुनः पुनः कृच्छ्रादुष्णवातं वदन्ति तम् ॥
रूक्षस्य क्लान्तदेहस्य बस्तिस्थौ पित्तमारुतौ । मूत्रक्षयं सरुग्दाहं जनयेतां तदाह्वयम् ॥३७॥
पित्तं कफो द्वावपि वा हन्येते चानिलेन चेत् । कृच्छ्रान्मूत्रं तदा पीतं रक्तं श्वेतं घनं सृजेत् ॥
सदाहं रोचनाशङ्खचूर्णवर्णं भवेच्च तत् । शुष्कं समस्तवर्णं वा मूत्रसादं वदन्ति तम् ॥
इति विस्तारतः प्रोक्ता रोगा मूत्रप्रवृत्तिजाः ॥३९॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे मूत्राघातमूत्रकृच्छ्रनिदानं नाम
अष्टपञ्चाशदधिकशततमोऽध्यायः ॥१५८॥

———

ऊनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

धन्वन्तरिरुवाच

प्रमेहाणां निदानं ते वक्ष्येऽहं शृणु सुश्रुत । प्रमेहो विंशतिस्तत्र श्लेष्मणो दश पित्ततः ॥
षट्चत्वारोऽनिलात्तेषां मेदोमूत्रकफावहाः ॥ १ ॥
हारिद्रमेही कटुकं हरिद्रासन्निभं शकृत् । विस्रं माञ्जिष्ठमेहेन मञ्जिष्ठासलिलोपमम् ॥ २ ॥
विस्रमुष्णं सलवणं रक्ताभं रक्तमेहतः । वसामेही वसामिश्रं वसाभं मूत्रयेन्मुहुः ॥ ३ ॥
मज्जाभं मज्जमिश्रं वा मज्जमेही मुहुर्मुहुः । हस्ती मत्त इवाजस्रं मूत्रं वेगविवर्जितम् ॥ ४ ॥
सलसीकं विबद्धञ्च हस्तिमेही प्रमेहति । मधुमेही मधुसमं जायते स किल द्विधा ॥ ५ ॥
क्रुद्धे धातुक्षयाद्वायौ दोषावृतपथे यदा । आवृतो दोषलिङ्गानि सोऽनिमित्तं प्रदर्शयेत् ६ ॥
क्षणात्क्षीणः क्षणात्पूर्णो भजते कृच्छ्रसाध्यताम् । जालेनोपेक्षितः सर्वो ह्यायाति मधुमेहताम् ७ ॥
मधुरं यच्च मेहेषु प्रायो मध्विव मेहति । सर्वे ते मधुमेहाख्या माधुर्य्याच्च तनोर्यतः ॥ ८ ॥
अविपाकोऽरुचिश्छर्दिर्निद्रा कासः सपीनसः । उपद्रवाः प्रजायन्ते मेहानां कफजन्मनाम् ॥ ९ ॥
बस्तिमेहनयोस्तोदो मुष्कावदरणं ज्वरः । दाहस्तृष्णाम्लिका मूर्च्छा विड्भेदः पित्तजन्मनाम्
वातजानामुदावर्तः कम्पहृद्ग्रहलोलताः । शूलमुन्निद्रता शोषः श्वासः कासश्च जायते ॥११॥
शराविका कच्छपिका ज्वालिनी विनतालजी । मसूरिका सर्षपिका पुत्रिणी सविदारिका ॥
विद्रधिश्चेति पिडकाः प्रमेहोपेक्षया दश ॥१२॥
अन्नञ्च कफसंश्लेषात्प्रायस्तत्र प्रवर्त्तनम् । स्वाद्वम्ललवणस्निग्धगुरुपिच्छिलशीतलम् ॥१३॥
नवं धान्यं सुरासूपमांसेक्षुगुड़गोरसम् । एकस्थानासनवतिं शयनं विनिवर्त्तनम् ॥१४॥
बस्तिमाश्रित्य कुरुते प्रमेहान्दूषितः कफः । दूषयित्वा वपुः क्लेदं स्वेदमेदोवसामिषम् ॥१५॥
पित्तं रक्तमतिक्षीणे कफादौ मूत्रसंश्रयम् । धातुं बस्तिमुपानीय तत्क्षये चैव मारुतः ॥१६॥
साध्यासाध्यप्रतीक्ष्याद्या मेहास्तेनैव तद्भवाः । सने समकृता दोषे परमत्वान्मतापि च ॥१७॥
सामान्यलक्षणं तेषां प्रभूताविलमूत्रता । दोषदूष्या विशेषेऽपि तत्संयोगविशेषतः ॥
मूत्रवर्णादिभेदेन भेदो मेहेषु कल्प्यते ॥१८॥
अच्छं बहुसितं शीतं निर्गन्धमुदकोपमम् । मेहत्युदकमेहेन किञ्चिदाविलपिच्छिलम् ॥१९॥
इक्षोरसमिवात्यर्थं मधुरं चेक्षुमेहतः । सान्द्रीभवेत् पर्य्युषितं सान्द्रमेहेन मेहति ॥२०॥
सुरामेही सुरातुल्यमुपर्य्यच्छमधो घनम् । संहृष्टरोमा पिष्टेन पिष्टवद्बहुलं सितम् ॥२१॥
शुक्राभं शुक्रमिश्रं वा शुक्रमेही प्रमेहति । मूर्त्ताणून् सिकतामेही सिकतारूपिणो मलान् ॥२२॥

शीतमेही सुबहुशो मधुरं भृशशीतलम् । शनैः शनैः शनैर्मेही मन्दं मन्दं प्रमेहति ॥
लालातन्तुयुतं मूत्रं लालामेहेन पिच्छिलम् ॥२३॥
गन्धवर्णरसस्पर्शैः क्षारेण क्षारतोयवत् । नीलमेहेन नीलाभं कालमेही मसीनिभम् ॥२४॥
सन्धिमर्मसु जायन्ते मांसलेषु च धामसु । अन्तोन्नता मध्यनिम्ना अक्लेदमरुजान्विता ॥
शरावमानसंस्थाना पिड़का स्यात् शराविका ॥२५॥
सदाहा कूर्मसंस्थाना ज्ञेया कच्छपिका बुधैः । महती पिड़का नीला विनता नाम सा स्मृता२६॥
दहति त्वचमुत्थाने ज्वालिनी कष्टदायिनी । रक्ता सिता स्फोटचिता दारुणा त्वलजी भवेत् ॥
मसूराकृतिसंस्थाना विज्ञेया तु मसूरिका । सर्पपामानसंस्थाना जिह्वापाकमहारुजा ॥२८॥
पुत्रिणी महती चाल्पा सुसूक्ष्मा पिड़का स्मृता । विदाराकन्दवद्वृत्ता कठिना च विदारिका ॥
विद्रधेर्लक्षणैर्युक्ता ज्ञेया विद्रधिका तु सा । पुत्रिणी च विदारी च दुःसहा बहुमेदसः ॥३०॥
सद्यः पित्तोल्बणास्त्वन्याः सम्भवन्त्यल्पमेदसः । तास्ताश्चापि पिड़काः स्याद्दोषोद्रेको यथायथम् ॥
प्रमेहेण विनाप्येता जायन्ते दुष्टमेदसः । तावच्च नोपलक्ष्यन्ते यावद्वर्णश्च वर्जितम् ॥३२॥
हारिद्रयरक्तवर्णं वा मेहप्राग्रूपवर्जितम् । यो मूत्रयेत तन्मेहं रक्तपित्तन्तु तद्विदुः ॥३३॥

स्वेदोऽङ्गगन्धः शिथिलत्वमङ्गे शय्याशनस्वप्नसुखाभिषङ्गः ।
हृन्नेत्रजिह्वाश्रवणोपदाहा घनाग्रता केशनखाभिवृद्धिः ॥३४॥
शीतप्रियत्वं गलतालुशोषो माधुर्य्यमास्ये करपाददाहः ।
भविष्यतो मेहगणस्य रूपं मूत्रेऽपि धावन्ति पिपीलिकाश्च ॥३५॥
तृष्णा प्रमेहे मधुरं प्रपिच्छन् मध्वामये स्याद् विविधो विकारः ।
सम्पूरणाद्वा कफसम्भवः स्यात्क्षीणेषु दोषेष्वनिलात्मको वा ॥३६॥
सम्पूर्णरूपाः कफपित्तमेहाः क्रमेण ये वै रतिसम्भवाश्च ।
संक्रामते पित्तकृतास्तु याप्याः साध्योऽस्ति मेहो यदि नास्ति विष्टम् ॥३७॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे प्रमेहनिदानं नाम ऊनषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१५९॥

षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

धन्वन्तरिरुवाच

निदानं विद्रधेर्वक्ष्ये गुल्मस्य शृणु सुश्रुत । भक्तैः पर्य्युषितात्युष्णशुष्करुक्षविदाहिभिः ॥ १ ॥
जिह्मशय्याविचेष्टाभिस्तैस्तैश्चासृक्प्रदूषणैः । दुष्टस्त्वङ्मांसमेदोऽस्थिमदामृष्टोदराश्रयः ॥ २ ॥

यः शोथो बहिरन्तश्च महाशूलो महारुजः । वृत्तः स्यादायतो वा स्मृतो रोगः स विद्रधिः ॥ ३ ॥
दोषैः पृथक् समुदितैः शोणितेन स्रुतेन च । बाह्ये ते तत्र तत्राङ्गे दारुणे ग्रथितः स्रुतः ॥ ४ ॥
अन्तरो दारुणश्चैव गम्भीरो गुल्मवर्द्धनः । वल्मीकवत्समुत्स्रावी अग्निमान्द्यश्च जायते ॥ ५ ॥
नाभिवस्तियकृत्प्लीहक्लोमहृत्कुक्षिवङ्क्षणि । हृदये वेपमाने तु तत्र तत्रातितीव्ररुक् ॥ ६ ॥
श्यामारुणशिरोत्थानपाको विषमसंस्थितिः । संज्ञाच्छेदभ्रमानाहस्पन्दसर्पणशब्दवान् ॥ ७ ॥
रक्तताम्रासितः पित्तात्तृण्मोहज्वरदाहवान् । क्षिप्तोत्थानप्रपाकश्च पाण्डुः कण्डूयुतः कफात् ८॥
संक्लेशशीतकस्तम्भजृम्भारोचकगौरवाः । चिरोत्थानोऽविपाकश्च सङ्कीर्णः सन्निपातजः ॥ ९ ॥

सामर्थ्याच्चात्र विड्भेदो बाह्याभ्यन्तरलक्षणम् । कृष्णः स्फोटावृतः श्यामस्तीव्रदाहरुजाज्वरः ॥
पित्तलिङ्गोऽसृजा बाह्यं स्त्रीणामेव तथान्तरम् । शस्त्राद्यैरभिघातोत्थरक्तैश्च रोगकारणम् ॥११॥
क्षतोत्थो वायुना क्षिप्तः स रक्तः पित्तमीरयन् । पित्तासृग्लक्षणं कुर्य्याद्विद्रधिं भूर्य्युपद्रवम् ॥१२॥
तेनोपद्रवभेदश्च स्मृतोऽधिष्ठानभेदतः । नाभौ हि ध्मातं चेद्बस्तौ मूत्रकृच्छ्रश्च जायते ॥१३॥
श्वासप्रश्वासरोधश्च प्लीहायामतितृट् परम् । गलरोधश्च क्लोम्नि स्यात्सर्वाङ्गप्ररुजो हृदि ॥१४॥

प्रमोहस्तमकः कासो हृदयोद्घट्टनं तथा । कुक्षिपार्श्वान्तरे चैव कुक्षौ दोषोपजन्म च ॥१५॥
तथा चेदूरुसन्धौ च वङ्क्षणे कटिपृष्ठयोः । पार्श्वयोश्च व्यथा पायौ पवनस्य निरोधनम् ॥१६॥
आमपक्वविदग्धत्वं तेषां शोथवदादिशेत् । नाभेरूर्ध्वमुखात्पक्वात्प्रद्रवन्त्यपरे गुदात् ॥१७॥
गुदास्यनाभिजे विद्याद्दोषं क्लेदाच्च विद्रधौ । कुरुते स्वाधिष्ठानस्य विवर्त्तं सन्निपातजः ॥१८॥
पक्वो हि नाभिबस्तिस्थो भिन्नोऽन्तर्बहिरेव च । पाकश्चान्तःप्रवृद्धस्य क्षीणस्योपद्रवार्दिताः १९॥
विद्रधिश्च भवेत्तत्र पापानां पापयोषिताम् । मृते तु गर्भगे चैव सम्भवेत् श्वयथुर्घनः ॥२०॥
स्तने समुत्थे दुःखं वा बाह्यविद्रधिलक्षणम् । नारीणां सूक्ष्मरक्तत्वात्कन्यायां तु न जायते ॥२१॥
क्रुद्धो रुद्धगतिर्वायुः शेफमूलकरो हि सः । मुष्कवङ्क्षणतः प्राप्य फलकोषातिवाहिनीम् ॥२२॥
आपीड्य धमनीवृद्धिं करोति फलकोषयोः । दोषो मेदेषु तदाऽऽस्ते सवृद्धिः सप्तधा गदः ॥२३॥
मूत्रं तयोरप्यनिलाद्बाह्ये वाभ्यन्तरे तथा । वातपूर्णः खरस्पर्शो रुक्षो वाताच्च दाहकृत् ॥
पक्वोदुम्बरसङ्काशः पित्ताद्दाहोष्मपाकवान् । कफात्तीव्रो गुरुः स्निग्धः कण्डूमान्कठिनाल्परुक् ॥
कृष्णः स्फोटावृतः पिण्डो वृद्धिलिङ्गश्च रक्ततः । कफवन्मेदसां वृद्धिर्मृदुतालफलोपमः ॥२६॥
मूत्रधारणशीलस्य मूत्रजस्तत्र गच्छतः । अलोमः पूर्णधृतिमान्क्षोभं याति सरन्मृदु ॥२७॥
मूत्रकृच्छ्रमधस्ताच्च बलयः फलकोषयोः । वातकोपिभिराहारैः शीततोयावगाहनैः ॥२८॥
विण्मूत्रधारणाच्चैव विषमाङ्गविचेष्टनैः । क्षोभितैः क्षोभितौजश्च क्षीणान्तःशरिरो यदा ॥

पवनो विगुणीभूय शोणितं तदधो नयेत् । कुर्यात्तत्क्षणसन्धिस्थो ग्रन्थ्याभः श्वयथुस्तदा ॥

उपेक्ष्यमाणस्य च गुल्मवृद्धिमाध्मानरुग्वै विविधाश्च रोगाः ।
सुपीड़ितोऽन्तःस्वनवान्प्रयाति प्रध्मापयन्नेति पुनश्च मूर्ध्नः ॥ ३१ ॥

रक्तवृद्धिरसाध्योऽयं वातवृद्धिः समाकृतिः । रुक्षकृष्णारुणशिरा ऊर्णावृतगवाक्षवत् ॥३२॥
वातोऽष्टधा पृथग्दोषैः संसृष्टैर्निचयं गतः । आर्त्तवस्य च दोषेण नारीणां जायतेऽष्टमः ॥३३॥
ज्वरमूर्च्छातिसारैश्च वमनाद्यैश्च कर्मभिः । कर्शितो बलवान्याति शीतार्त्तश्च बुभुक्षितः ॥३४॥
यः पिबत्यन्नपानानि लङ्घनप्लावनादिकम् । सेवते हीनसंज्ञाभिरर्दितः समुदीरयन् ॥३५॥
स्नेहस्वेदावनभ्यस्य शोषणं वा निषेवयेत् । शुद्धो वा शुद्धिहानिर्वा भजेत स्यन्दनानि वा ३६॥
वातोल्बणास्तस्य मलाः पृथक्चैव हि तेऽथवा । सर्वो रक्तयुतो वातादेहस्रोतोऽनुसारिणः ३७॥
ऊर्ध्वाधोमार्गमावृत्य वायुः शूलं करोति वै । स्पर्शोपलभ्यं गुल्मोत्थमुष्णं ग्रन्थिस्वरूपिणम् ॥
कर्षणात्कफविड्घातैर्मार्गस्यावरणेन वा । वायुः कृताश्रयः कोष्ठे रौक्ष्यात्काठिन्यमागतः ॥
स्वतन्त्रः स्वाश्रये दुष्टः परतन्त्रः पराश्रये । ततः पिण्डितवत् श्लेष्मा मलसंसृष्ट एव च ॥
गुल्म इत्युच्यते बस्तिनाभिहृत्पार्श्वसंश्रयः ॥४०॥

वातजन्ये शिरःशूलज्वरप्लीहान्त्रकूजनम् । वेधः सूच्येव विड्भ्रंशः कृच्छ्रे मूत्रं प्रवर्त्तते ॥४१॥
गात्रे मुखे पदे शोथः अग्निमान्द्यं तथैव च । रुक्षकृष्णत्वगादित्वं चलत्वादनिलस्य च ॥४२॥
अनिरूपितसंस्थानो विचक्षुः चक्षुराततम् । पिपीलिकाव्याप्त इव गुल्मः स्फुरति नुद्यते ॥४३॥
पित्ताद्दाहाम्लकौ मूर्च्छा विड्भेदः स्वेदतृड्भवाः । हारिद्रियं सर्वगात्रेषु गुल्माच्छोथस्य दर्शनम् ॥
हीयते दीप्यते श्लेष्मा स्वस्थानं दहतीव च । कफात्स्तैमित्यमरुचिः सदनं शिरसि ज्वरः ॥४५॥
पीनमानस्य हृल्लासः शुक्लकृष्णत्वगादिता । गुल्मो गभीरः कठिनो गुरुः स्वप्नस्थिराल्पकः ॥
स्वदोषस्थानधामानस्तत एवात्र मारकाः । प्रायस्तु यत्तद्द्वन्द्वोत्था गुल्माः संसृष्टमैथुनाः ४७॥
सर्वजस्तीव्ररुग्दाहः शीघ्रपाकी घनोन्नतः । सोऽसाध्यो रक्तगुल्मस्तु स्त्रिया एव प्रजायते ४८॥
ऋतौ या चैव शूलार्त्ता यदि वा योनिरोगिणी । सेवते वानिलानि स्त्री क्रुद्धस्तस्याः समीरणः ॥
निरुध्याप्यार्त्तवं योन्यां प्रतिमासं व्यवस्थितम् । कुक्षिं करोति तद्गर्भे लिङ्गमाविष्करोति च ॥
हृल्लासदौहृदस्तन्यदर्शनं कामचारिता । क्रमेण वायोः संसार्गात्पित्तं योनिषु सञ्चयम् ५१॥
रक्तस्य कुरुते तस्या वातपित्तोक्तगुल्मजान् । गर्भाशये च सुतरां शूलाश्चैवासृगाश्रये ॥५२॥
योनिस्रावश्च दौर्गन्ध्यं तोयस्यन्दनवेदने । कदापि गर्भवद्गुल्मः सर्वे ते रतिसम्भवाः ॥५३॥
पाकश्चिरेण भजते नैधते विद्रधिः पुनः । पाच्यते शीघ्रमत्यर्थं दुष्टरक्ताश्रयस्तु सः ॥५४॥

अतः शीघ्रं विदाहित्वाद्विद्रधिः सोऽभिधीयते । गुल्मान्तराश्रये बस्तिदाहश्च प्लीहवेदना ॥५५॥
अग्निवर्णबलभ्रंशो वेगानां वा प्रवर्त्तनम् । अतो विपर्य्यये बाह्यं कोष्ठाङ्गेषु च नातिरुक् ५६॥
वैवर्ण्यमथवा कासो बहिरुन्नतताधिकम् । साटोपमत्युग्ररुजमाध्मानमुदरे भृशम् ॥५७॥
ऊर्ध्वाधो वातरोधेन तमानाहं प्रचक्षते । घनश्चाष्ठ्युपमो ग्रन्थिलोऽष्ठीला तु समुन्नतः ॥५८॥
समस्तलिङ्गसंयुक्तः प्रत्यष्ठीला तदाकृतिः । पक्वाशयोद्भवोऽप्येवं वायुस्तीव्ररुजाश्रयात् ॥५९॥

उद्गारबाहुल्यपुरीषबन्धतृप्त्यक्षमत्वान्त्रविकूजनानि ।
आटोपमाध्मानमपक्तिशक्तिः आसन्नगुल्मस्य भवेच्च चिह्नम् ॥६०॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे विद्रधिगुल्मनिदानं नाम
षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६०॥

एकषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

धन्वन्तरिरुवाच

उदराणां निदानञ्च वक्ष्ये सुश्रुत तच्छृणु । रोगाः सर्वेऽपि मन्दाग्नौ सुतरामुदराणि तु ॥१॥
अजीर्णामयाश्चाप्यन्ये जायन्ते मलसञ्चयात् । ऊर्ध्वाधो वायवो रुद्ध्वा व्याकुलीव प्रवाहिणी ॥
प्राणा ह्यपानान्संदूष्य कुर्य्युस्तान्मांससन्धिगान् । आध्माप्य कुक्षिमुदरमष्टधा तस्य भिद्यते ॥३॥
पृथग्दोषैः समस्तैश्च प्लीहबद्धक्षततोदकैः । तेनार्त्ताः शुष्कताल्वोष्ठाः सर्वपादकरोदराः ॥४॥
नष्टचेष्टबलाहाराः कृतप्रध्मातकुक्षयः । पुरुषाः स्युः प्रेतरूपा भाविनस्तस्य लक्षणम् ॥५॥
क्षुन्नाशोऽरुचिवत्सर्वं सविदाहश्च पच्यते । जीर्णान्नं यो न जानाति सोऽपथ्यं सेवते नरः ६॥
क्षीयते बलमङ्गस्य श्वसित्यल्पोऽपि चेष्टितः । विपश्यावृत्तिबुद्धिश्च शोकशोषादयोऽपि च ॥७॥
रुग्वस्तिसन्धौ सततं लघ्वल्पभोजनैरपि । जराजीर्णो बलभ्रंशो भवेज्जठररोगिणः ॥ ८ ॥
स्वतन्त्रतन्द्रालसता मलसर्गोऽल्पवह्निता । दाहः श्वयथुराध्मानमन्त्रे सलिलसम्भवे ॥९॥
सर्वत्र तोये मरणं शोचनं तत्र निष्फलम् । गवाक्षवच्छिराजालैरुदरं गुड़गुड़ायते ॥१०॥
नाभिमन्त्रञ्च विष्टभ्य वेगं कृत्वा प्रणश्यति । मारुते हृत्कटीनाभिपायुवङ्क्षणवेदनाः ॥११॥
सशब्दो निःसरेद्वायुर्वहते मूत्रमल्पकम् । नातिमात्रं भवेल्लौल्यं नरस्य विरसं मुखम् ॥१२॥
तत्र वातोदरे शोथः पाणिपान्मुखकुक्षिषु । कुक्षिपार्श्वोदरकटीपृष्ठरुक्पर्वभेदनम् ॥१३॥
शुष्ककासाङ्गमर्दाधोगुरुता मलसंग्रहः । श्यामारुणत्वगादित्वं मुखे च रसवृद्धिता ॥१४॥

सतोदभेदमुदरं नीलकृष्णशिराततम् । आध्मातमुदरे शब्दमद्भुतं वा करोति सः ॥१५॥
वायुश्चात्र सरुक्शब्दं विधत्ते सर्वथागतिः । पित्तोदरे ज्वरो मूर्च्छा दाहित्वं कटुकास्यता ॥१६॥
भ्रमोऽतीसारः पीतत्वं त्वगादावुदरं हरित् । पीतताम्रशिरादित्वं सस्वेदं सोष्म दह्यते ॥१७॥
धूमायति मृदुस्पर्शं क्षिप्रपाकं प्रदूयते । श्लेष्मोदरेषु सदनं स्वेदश्वयथुगौरवम् ॥१८॥
निद्रा क्लेशोऽरुचिः श्वासः कासः शुक्लत्वगादिता । उदरं तिमिरं स्निग्धं शुक्लकृष्णशिरावृतम् ॥
नीरातिवृद्धौ कठिनं शीतस्पर्शं गुरुं स्थिरम् । त्रिदोषकोपने तैस्तैस्त्रिदोषजनितैर्मलैः ॥२०॥
सर्वदूषणदुष्टाश्च सरक्ताः सञ्चिता मलाः । कोष्ठं प्राप्य विकुर्वाणाः शोषमूर्च्छाभ्रमान्वितम् ॥२१॥
कुर्य्युस्त्रिलिङ्गमुदरं शीघ्रपाकं सुदारुणम् । वर्द्धते तच्च सुतरां शीतवातप्रदर्शने ॥२२॥
अत्यशनाच्च संक्षोभाद्यानपानादिचेष्टितैः । अविहितैश्च पानाद्यैर्वमनव्याधिकर्षणैः ॥२३॥
वामपार्श्वस्थिता प्लीहा च्युतस्थाना विवर्द्धते । शोणिताद्वा वसादिभ्यो विवृद्धश्च विवर्द्धयेत् ॥
सोऽष्ठीला चातिकठिनः प्रोन्नतः कूर्मपृष्ठवत् । क्रमेण वर्द्धमानश्च कुक्षौ व्याततिमाहरेत् ॥२५॥
श्वासकाशपिपासास्यवैरस्याध्मानकज्वरैः । पाण्डुत्वमूर्च्छा छर्दिश्च दाहमोहैश्च संयुतः ॥
अरुणाभं विचित्राभं नीलहारिद्रराजिमत् । उदावर्त्तेन चानाहमोहहृद्दहनज्वरैः ॥२७॥
गौरवारुचिकाठिन्यैर्विघातभ्रमसंक्रमात् । प्लीहवद्दक्षिणात्पार्श्वात्कुर्य्याद्यकृदपि च्युतम् ॥२८॥
पक्के भूते यकृति च सदा बद्धे मले गुदे । दुर्नामभिरुदावर्त्तैरन्यैर्वा पीड़ितो भवेत् ॥२९॥
वर्चःपित्तकफान्बद्धान्करोति कुपितोऽनिलः । अपानो जठरे तेन संरुद्धो ज्वररुग्भवः ॥३०॥
कासः श्वासोरुसदनं शिरोऽङ्गनाभिपार्श्वरुक् । मलासर्गोऽरुचिश्छर्दिरुदरं मलमारुतम् ॥३१॥
स्थिरनीलारुणशिराजालैरुदरमावृतम् । नाभेरुपरि च प्रायो गोपुच्छाकृति जायते ॥३२॥
अस्थ्यादिशल्यैरन्यैश्च विद्धे चैवोदरे तथा । पच्यते यकृतादिश्च तच्छिद्रैश्च सरन्ध्रहिः ॥३३॥
आम एव गुदादेति ततोऽल्पाल्पः सकृद्रसः । स तु विकृतगन्धोऽपि पिच्छिलः पीतलोहितः ॥
शेषश्चापूर्य्य जठरं घोरमारभते ततः । वर्द्धते तदधो नाभेराशु चैति जलात्मताम् ॥३५॥
उद्रिक्ते दोषरूपे च व्याप्ते च श्वासतृड्भ्रमैः । छिद्रोदरमिदं प्राहुः परिस्रावीति चापरे ॥३६॥
प्रवृत्तः स्नेहपानादिः सहसानन्दपायिनः । अत्यम्बुपानान्मन्दाग्नेः क्षीणस्यातिकृशस्य च ॥
रुद्धाम्लमार्गानिलः कफश्च जलमूर्च्छितः । वर्द्धते तु तदेवाम्बु तन्मात्राद्बिन्दुराशितः ॥३८॥
तत्कोपादुदरं तृष्णागुदश्रुतिरुजान्वितम् । कासश्वासारुचियुतं नानावर्णशिराततम् ॥३९॥
तोयपूर्णान्मृदुस्पर्शात्सदृशं क्षोभवेपथुः । दकोदरं स्थिरं स्निग्धं नाड़ीमावृत्य जायते ॥४०॥
उपेक्षायाञ्च सर्वेषां स्वस्थानां परिस्त्रालिताः । पाका द्रवा द्रवीकुर्य्युः सन्धिस्रोतोमुखान्यपि ॥

स्वेदे चैव तु संरुद्धे मूर्च्छिताश्चान्तरस्थितः । तदेवोदरमापूर्य्य कुर्य्यात्तदोदरामयम् ॥४२॥
गुरूदरं स्थितं वृत्तमाहतञ्च न शब्दकृत् । बलहीनं तथा घोरं नाड्यां स्पृष्टञ्च सर्पति ॥४३॥
शिरान्तर्द्धानमुदरे सर्वलक्षणमुच्यते । वातपित्तकफप्लीहसन्निपातोदकोदरम् ॥४४॥
पश्चाच्च जातसलिलं विष्टम्भोपद्रवान्वितम् । जन्मनैवोदरं सर्वं प्रायः कृच्छ्रतमं मतम् ॥४५॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे उदरनिदानं नाम एकषष्ट्यधिक-
शततमोऽध्यायः ॥१६१॥

द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

धन्वन्तरिरुवाच

पाण्डुशोथनिदानञ्च शृणु सुश्रुत वच्मि ते । पित्तप्रधानाः कुपिता यथोक्तैः कोपनैर्मलाः ॥ १ ॥
तत्र नीतेन बलिना क्षिप्ताक्षिप्तं यदि स्थितम् । धमनीर्दशमीः प्राप्य व्याप्नुवन्सकलां तनुम् ॥२॥
श्लेष्मत्वगसृङ्मांसानि प्रदूष्यन्त्येवमाश्रितम् । त्वङ्मांसयोस्तु कुरुते त्वचि वर्णाः पृथग्विधाः ॥
स्वयं हरिद्राहारिद्रं पाण्डुत्वं तेषु चाधिकम् । वातोऽयं प्राहुरित्युक्तः स रोगस्तेन गौरवम् ॥४॥
धातूनां स्पर्शशैथिल्यमामजश्च गुणक्षयः । ततोऽल्परक्तमेदोऽस्थिनिःसारः स्यात् श्लथेन्द्रियः ॥
शीर्यमाणैरिवाङ्गैस्तु द्रवता हृदयेन च । शूलाक्षिकूटवदनस्तैमित्यं तत्र लालया ॥ ६ ॥
हीनतृट् शिशिरद्वेषी शीर्षलोमा हतानलः । समशक्तिज्वरी श्वासी कर्णशूली तथा भ्रमी ॥ ७ ॥
स पञ्चधा पृथग्दोषैः समस्तैर्मृत्तिकादनात् । प्राग्रूपमस्य हृदयस्यन्दनं रूक्षता त्वचि ॥ ८ ॥
अरुचिः पीतमूत्रत्वं स्वेदाभावोऽल्पमूत्रता । मदः समानिलात्तत्र गाढ़रुक्क्लेदगात्रता ॥ ९ ॥
कृष्णरुक्षारुणशिरानखविण्मूत्रनेत्रता । शोथो नासास्यवैरस्यं विट्शोषः पार्श्वमूर्च्छना ॥१०॥
पित्ते हरितपित्ताभः शिरादिषु ज्वरस्तमः । तृट्शोषमूर्च्छादौर्गन्ध्यं शीतेच्छा कटुवक्त्रता ॥११॥
विड्भेदोऽम्लको दाहः कफाच्च हृदयार्द्रता । तन्द्रा लवणवक्त्रत्वं रोमहर्षः स्वरक्षयः ॥१२॥
कासश्छर्दिश्च निचयान्निष्टलिङ्गोऽतिदुःसहः । उत्कर्षानिलपित्तेन कटुर्वा मधुरः कफः ॥१३॥
दूषयित्वा वसादींश्च रौक्षाद्रक्तविमोक्षणम् । स्रोतसां संक्षयं कुर्य्यादनु रुद्ध्वा च पूर्ववत् ॥१४॥
पाण्डुरोगे क्षयं यातं नाभिपादास्यमेहनम् । पुरीषं कृमिवन्मुञ्चेद्भिन्नं सास्रं कफान्वितम् ॥१५॥
यः पित्तरोगी सेवेत पित्तलं तस्य कामलम् । कोष्ठशाखोद्गतं पित्तं दग्ध्वासृङ्मांसमाहरेत् १६॥
हारिद्रमूत्रनेत्रत्वं मुखवक्त्रशकृत्तथा । दाही विपाकतृष्णावान्भेकाभो दुर्बलेन्द्रियः ॥१७॥

भवेत्पित्तानुगः शोथः पाण्डुरोगावृतस्य च । उपेक्षया च शोथाद्याः सकृच्छ्राः कुम्भकामलाः ॥
हरितश्यामपित्तत्वं पाण्डुरोगो यदा भवेत् । वातपित्तभ्रमस्तृष्णा स्त्रीषु हर्षो मृदुज्वरः ॥१९॥
तन्द्रा वा चानलभ्रंशस्तं वदन्ति हलीमकम् । अलसञ्चाति महति तेषां पूर्वमुपद्रवः ॥२०॥
शोथः प्रधानः कथितः स एवातो निगद्यते । पित्तरक्तकफान्वायुर्दुष्टो दुष्टान् बहिःशिराः ॥२१॥
नीत्वा रुद्धगतिस्तैर्हि कुर्य्यात्त्वङ्मांससंश्रयम् । उत्सेधं संहतं शोथं तमाहुर्निचयादतः ॥२२॥
सर्वं हेतुविशेषैस्तु रूपभेदान्नवात्मकम् । दोषैः पृथग्द्वयैः सर्वैरभिघाताद्विषादपि ॥ २३ ॥
तदेव निजमागन्तु सर्वाङ्गे कामजं तु तत् । पृथून्नताग्रग्रथिता विशेषैश्च त्रिधा विदुः ॥ २४ ॥
सामान्यहेतुः शोथानां दोषजाता विशेषतः । व्याधिकर्मोपवासादिक्षीणस्य भवति द्रुतम् ॥२५॥
अतिमात्रं यथान्यस्य गुरुरत्यन्तशीतलम् । लवणक्षारतीक्ष्णाम्लशाकाम्बुस्वप्नजागरम् ॥२६॥
रोधो वेगस्य वल्लूरमजीर्णश्रममैथुनम् । पच्यते मार्गगमनं यानेन क्षोभिणापि वा ॥२७॥
श्वासकासातीसारार्शोजठरप्रदरज्वरः । विष्टम्भालसकच्छर्दिहिक्काविसर्पपाण्डु च ॥२८॥
ऊर्ध्वशोथमधो वस्तौ मध्ये कुर्वन्ति मध्यगाः । सर्वाङ्गगाः सर्वगतः प्रत्यगेति तदाश्रयः ॥२९॥
तत्पूर्वरूपं दवथुः शिरायामङ्गगौरवम् । वाताच्छोथश्चलो रुक्षः खररोमारुणोऽसितः ॥३०॥
शङ्खवस्त्यन्त्रभृशार्त्तिभेदी भेदाप्रसुप्तिमान् । वातोत्तानः समः शीघ्रमुन्नमेत्पीड़िता तनुः ॥३१॥
स्निग्धस्तु मर्दनैः शाम्येद्रात्रावल्पो दिवा महान् । त्वक्सर्षपलिप्ते च तस्मिंश्चिमिच्चिमायते ॥३२॥
पीतरक्तासिताभासः पित्तजातश्च शोषकृत् । शीघ्रं नासौ वा प्रशमेन्मध्ये प्राग्दहते तनुः ॥३३॥
सतृड्दाहज्वरस्वेदो भ्रमक्लेशमदभ्रमाः । साभिलाषी शकृद्भेदी गन्धः स्पर्शसहो मृदुः ॥३४॥

कण्डूमान् पाण्डुरोमा त्वक्कठिनः शीतलो गुरुः ।
स्निग्धः श्लक्ष्णः स्थिरः शूलो निद्राच्छर्द्यग्निमान्द्यकृत् ॥ ३५ ॥

आघातेन च शस्त्रादिच्छेदभेदक्षतादिभिः । हिमानिलोदध्यनिलैर्भल्लातकपिकच्छुजैः ॥३६॥
रसैः शूकैश्च संस्पर्शात् श्वयथुः स्याद्विसर्पवान् । भृशोष्मा लोहिताभासः प्रायशः पित्तलक्षणः ३७॥
विषजः सविषप्राणिपरिसर्पणमूत्रणात् । दंष्ट्रादन्तनखाघातादविषप्राणिनामपि ॥३८॥
विण्मूत्रशुक्रोपहतमलवद्वस्त्रशङ्करात् । विषवृक्षानिलस्पर्शाद्गरयोगावचूर्णनात् ॥३९॥
मृदुश्चलोऽवलम्बी च शीघ्रो दाहरुजाकरः । नवोऽनुपद्रवः शोथः साध्योऽसाध्यः पुरेरितः ४०॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे पाण्डुशोथनिदानं नाम
द्विषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६२॥

———

त्रिषष्टयधिकशततमोऽध्यायः

धन्वन्तरिरुवाच

विसर्पादिनिदानं ते वक्ष्ये सुश्रुत तच्छृणु । स्याद्विसर्पो विघातात्तु दोषैर्दुष्टैश्च शोथवत् ॥१॥
अधिष्ठानञ्च तं प्राहुर्बाह्यं तत्र भयाच्छ्रमात् । यथोत्तरञ्च दुःसाध्यस्तत्र दोषो यथायथम् ॥२॥
प्रकोपनैः प्रकुपिता विशेषेण विदाहिभिः । देहे शीघ्रं विशन्तीह तेऽन्तरे हि स्थिता बहिः ॥३॥
तृष्णाभियोगाद्वेगानां विषमाच्च प्रवर्त्तनात् । आशु चाग्निबलभ्रंशादतो बाह्यं विसर्पयेत् ॥४॥
तत्र वातात्स वीसर्पो वातज्वरसमव्यथः । शोथस्फुरणनिस्तोदभेदायासार्त्तिहर्षवान् ॥५॥
पित्ताद्द्रुतगतिः पित्तज्वरलिङ्गोऽतिलोहितः । कफात्कण्डूयुतः स्निग्धः कफज्वरसमानरुक् ॥६॥
सन्निपातसमुत्थश्च सर्वलिङ्गसमन्वितः । सदोषलिङ्गैश्चीयन्ते सर्वैः स्फोटैरुपेक्षितः ॥७॥
वातपित्ताज्ज्वरच्छर्दिमूर्च्छातीसारतृड्भ्रमैः । ग्रन्थिभेदाग्निसदनतमकारोचकैर्युतः ॥८॥
करोति सर्वमङ्गञ्च दीप्ताङ्गारावकीर्णवत् । यं यं देशं विसर्पश्च विसर्पति भवेत् स सः ॥९॥
शान्ताङ्गारासितो नीलो रक्तो वाशु च चीयते । अग्निदग्ध इव स्फोटैः शीघ्रगत्वाद्द्रुतं स च ॥
मर्मानुसारी वीसर्पः स्याद्वातोऽतिबलस्ततः । व्यथतेऽङ्गं हरेत्संज्ञां निद्राञ्च श्वासमीरयेत् ॥११॥
हिक्काञ्च स गतोऽवस्थामीदृशीं लभते न ना । क्वचिन्मर्मारतिग्रस्तो भूमिशय्यासनादिषु ॥१२॥
चेष्टमानस्ततः क्लिष्टो मनोदेहप्रमोहवान् । दुष्प्रबोधोऽश्नुते निद्रां सोऽग्निवीसर्प उच्यते ॥१३॥
कफेन रुद्धः पवनो भित्त्वा तं बहुधा कफम् । रक्तं वा वृद्धरक्तस्य त्वक्शिरास्नायुमांसगम् १४॥
दूषयित्वा तु दीर्घानुवृत्तस्थूलस्वरात्मिकाम् । ग्रन्थीनां कुरुते मालां सरक्तां तीव्ररुग्ज्वराम् १५॥
श्वासकासातीसारास्यशोषहिक्कावमिभ्रमैः । मोहवैवर्ण्यमूर्च्छाङ्गभङ्गाग्निसदनैर्युताम् ॥
इत्ययं ग्रन्थिवीसर्पः कफमारुतकोपजः ॥ १६ ॥

कफपित्ताज्ज्वरः स्तम्भो निद्रा तन्द्रा शिरोरुजा । अङ्गावसादविक्षेपौ प्रलापारोचकभ्रमाः १७॥
मूर्च्छाग्निहानिर्भेदोऽस्थ्नां पिपासेन्द्रियगौरवम् । आमोपवेशनं लेपः स्रोतसां स च सर्पति १८॥
प्रायेणामाशयं गृह्णन्नेकदेशं न चातिरुक् । पीड़कैरवकीर्णोऽतिपीतलोहितपाण्डुरैः ॥१९॥
स्निग्धोऽसितो मेचकाभो मलिनः शोथवान् गुरुः । गम्भीरपाकः प्रायोष्मस्पृष्टः क्लिन्नोऽवदीर्य्यते ॥
पक्वच्छीर्णमांसश्च स्पष्टस्नायुशिरागणः । शवगन्धी च वीसर्पः कर्दमाख्यमुशन्ति तम् ॥२१॥
बाह्यहेतोः क्षतात्क्रुद्धः स रक्तपित्तमीरयन् । वीसर्पं मारुतः कुर्य्यात्कुलत्थसदृशैश्चितम् ॥२२॥
स्फोटैः शोथज्वररुजादाहाढ्यं श्यावशोणितम् । पृथक्दोषैस्त्रयः साध्या द्वन्द्वजाश्चानुपद्रवाः ॥

असाध्याः कृतसर्वोत्थाः सर्वे चाक्रान्तमर्मणः। शीर्णस्नायुशिरामांसाः क्लिन्नाश्च शवगन्धयः २४॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे विसर्पनिदानं नाम
त्रिषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६३॥

चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

धन्वन्तरिरुवाच

मिथ्याहारविहारेण विशेषेण विरोधिना। साधुनिन्दावधाद् युद्धहरणाद्यैश्च सेवितैः ॥१॥
पाप्मभिः कर्मभिः सद्यः प्राक्तनैः प्रेरिता मलाः। शिराः प्रपद्य तैर्युक्तास्त्वग्वसारक्तमामिषम् ॥२॥
दूषयन्ति श्लुक्ष्णीकृत्य निश्चरन्तस्ततो बहिः। त्वचः कुर्वन्ति वैवर्ण्यं शिष्टाः कुष्ठमुशन्ति तम् ॥३॥
कालेनोपेक्षितं यत्स्यात् सर्वं कुष्ठानि तद्वपुः। प्रपद्य धातून् बाह्यान्तः सर्वान् संक्लेद्य चावहेत् ४॥
सस्वेदक्लेदसङ्कोचान् क्रिमीन् सूक्ष्मांश्च दारुणान्। लोमत्वक्स्नायुधमनीराक्रामति यथाक्रमम्॥५॥
भस्माच्छादितवत्कुर्य्याद्बाह्यं कुष्ठमुदाहृतम्। कुष्ठानि सप्तधा दोषैः पृथग्द्वन्द्वैः समागतैः ॥६॥
सर्वेष्वपि त्रिदोषेषु व्यपदेशोऽधिकस्ततः। वातेन कुष्ठं कापालं पित्तेनौदुम्बरं कफात् ॥७॥
मण्डलाख्यं विचर्ची च ऋष्याख्यं वातपित्तजम्। चर्मैककुष्ठं किटिमं सिध्मालसविपादिकाः ॥८॥
वातश्लेष्मोद्भवा श्लेष्मपित्ताद्दद्रुशतारुषी। पुण्डरीकं सविस्फोटं पामा चर्मदलं तथा ॥९॥
सर्वेभ्यः काकणं पूर्वत्रिकं दद्रु सकाकणम्। पुण्डरीकर्ष्यजिह्वे च महाकुष्ठानि सप्त तु ॥१०॥
अतिश्लक्ष्णखरस्पर्शस्वेदास्वेदविवर्णताः। दाहः कण्डूस्त्वचि स्वापस्तोदः काचोन्नतिस्तमः ॥
व्रणानामधिकं शूलं शीघ्रोत्पत्तिश्चिरस्थितिः। रूढानामपि रुक्षत्वं निमित्तेऽल्पेऽतिकोपनम् १२॥
रोमहर्षोऽसृजः कार्ष्ण्यं कुष्ठलक्षणमग्रजम्। कृष्णारुणकपालाभं यद्रुक्षं परुषं तनु ॥१३॥
विस्तृताकृतिपर्य्यस्तं दूषितैर्लोमभिश्चितम्। कापालं तोदबहुलं तत् कुष्ठं विषमं स्मृतम् ॥१४॥
उदुम्बरफलाभासं कुष्ठमौदुम्बरं वदेत्। वर्त्तुलं बहुलक्लेदयुक्तं दाहरुजाधिकम् ॥१५॥
असंच्छन्नमदरणं कृमिवत् स्यादुदुम्बरम्। स्थिरं स्त्यानं गुरु स्निग्धं श्वेतरक्तं मलान्वितम्॥१६॥
अन्योन्यासक्तमुच्छूनबहुकण्डूस्रुतिकृमिम्। श्लक्ष्णपीताभसंयुक्तं मण्डलं परिकीर्त्तितम् ॥१७॥
सकण्डूपिडका श्यावा सक्लेदा च विचर्च्चिका। परुषं तत्र रक्तान्तमन्तः श्यामं समुन्नतम् ॥१८॥
ऋष्यजिह्वाकृति प्रोक्तं ऋष्यजिह्वं बहुक्रिमि। हस्तिचर्मखरस्पर्शं चर्माख्यं कुष्ठमुच्यते ॥१९॥
अस्वेदञ्च मत्स्यशल्कसन्निभं किटिमं पुनः। रुक्षाग्निवर्णं दुःस्पर्शं कण्डूमत् परुषासितम् ॥२०॥

अन्तरुक्तं बहिःस्निग्धमन्तर्घृष्टं रजः किरेत् । श्लक्ष्णस्पर्शं तनु स्निग्धं स्वच्छमस्वेदपुष्पवत् ॥२१॥
प्रायेण चोर्ध्वकार्श्यञ्च कुण्डैः कण्डूपरैश्चितम् । रक्तैरलंशुका पाणिपादे कुर्य्याद्विपादिका ॥२२॥
तीव्रार्त्तगाढकण्डूञ्च सरागपिडकाचितम् । दीर्घप्रतानदूर्वावदतसीकुसुमच्छवि ॥२३॥
उच्छूनमण्डलो दद्रुः कण्डूमानिति कथ्यते । स्थूलमूलं सदाहार्त्ति रक्तस्रावं बहुव्रणम् ॥२४॥
सदाहकक्लेदरुजं प्रायशः सर्वजन्म च । रक्ताक्तमण्डलं पाण्डु कण्डूदाहरुजान्वितम् ॥२५॥
सोत्सेधमाचितं रक्तैः पर्णपत्रमिवाम्बुभिः । पुण्डरीकं भवेत्तद्धि चितं स्फोटैः सितारुणैः ॥२६॥
विस्फोटपिटका पामा कण्डूक्लेदरुजान्विता । सूक्ष्मा श्यामारुणा रुक्षा प्रायः स्फिक्पाणिकूर्परे ॥
सस्फोटसंस्पर्शसहं कण्डूरक्तातिदाहवत् । रक्तदलं चर्मदलं काकणं तीव्रदाहरुक् ॥२८॥
पूर्वरक्तञ्च कृष्णञ्च काकणं त्रिफलोपमम् । कृष्णलिङ्गैर्युतैः सर्वैः स्वस्वकारणतो भवेत् ॥२९॥
दोषभेदाय विहितैरादिशेल्लिङ्गकर्मभिः । कुष्ठं स्वदोषानुगतं सर्वदोषगतं त्यजेत् ॥३०॥
कुष्ठोक्तं यच्च यच्चास्थिमज्जशुक्रसमाश्रयम् । कृच्छ्रं मेदोगतञ्चैव याप्यं साध्यास्थिमांसगम् ॥३१॥
अकृच्छ्रं कफवातोत्थं त्वग्गतं त्वमलञ्च यत् । तत्र त्वचि स्थिते कुष्ठे काये वैवर्ण्यरुक्षता ॥३२॥
स्वेदतापश्वयथवः शोणिते पिशिते पुनः । पाणिपादाश्रिताः स्फोटाः क्लेशात् सन्धिषु चाधिकम् ॥
दोषस्याभीक्ष्णयोगेन दलनं स्याच्च मेदसि । नातिसंज्ञास्ति मज्जास्थिनेत्रवेगस्वरक्षयः ॥३४॥
क्षते च क्रिमिभिः शुक्रे स्वदारापत्यबाधनम् । यथा पूर्वाणि सर्वाणि स्वलिङ्गानि मृगादिषु ॥३५॥
कुष्ठैकसम्भवं श्वित्रं किलासं दारुणं भवेत् । निर्दिष्टमपरिस्रावि त्रिधातूद्भवसंश्रयम् ॥३६॥
वाताद्रुक्षारुणं पित्तात्ताम्रं कमलपत्रवत् । सदाहं रोमविध्वंसि कफात् श्वेतं घनं गुरु ॥३७॥
सकण्डूरं क्रमाद्रक्तमांसमेदःसु चादिशेत् । वर्णेनैवेदृगुभयं कृच्छ्रं तत् चोत्तरोत्तरम् ॥३८॥
अशुक्लरोमबहुलमसंश्लिष्टमथो नवम् । अनग्निदग्धजं साध्यं श्वित्रं वर्ज्यमतोऽन्यथा ॥३९॥
गुह्यपाणितलौष्ठेषु जातमप्यचिरन्तनम् । वर्जनीयं विशेषेण किलासं सिद्धिमिच्छता ॥४०॥
स्पर्शैकाहारसङ्गादिसेवनात् प्रायशो गदाः । एकशय्यासनाच्चैव वस्त्रमाल्यानुलेपनात् ॥४१॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे कुष्ठरोगनिदानं नाम
चतुःषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६४॥

पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

धन्वन्तरिरुवाच

क्रिमयश्च द्विधा प्रोक्ता बाह्याभ्यन्तरभेदतः । बहिर्मलकफासृग्विड्जन्मभेदाच्चतुर्विधाः ॥१॥

नामतो विंशतिविधा बाह्यास्तत्र मलोद्भवाः । तिलप्रमाणसंस्थानवर्णाः केशाम्बराश्रयाः ॥२॥
बहुपादाश्च सूक्ष्माश्च यूका लिक्षाश्च नामतः । द्विधा ते कोठपिड्काः कण्डूगण्डान् प्रकुर्वते ॥३॥
कुष्ठैकहेतवोऽन्तर्जाः श्लेष्मजा बाह्यसम्भवाः । मधुरान्नगुडक्षीरदधिमत्स्यनवौदनैः ॥४॥
कफादामाशये जाता वृद्धाः सर्पन्ति सर्वतः । पृथुब्रध्ननिभाः केचित्केचिद्गण्डूपदोपमाः ॥५॥
रूढधान्याङ्कुराकारास्तनुदीर्घास्तथाणवः । श्वेतास्ताम्रावभासाश्च नामतः सप्तधा तु ते ॥६॥
अन्त्रादा उदरावेष्टा हृदयादा महागुदाः । च्युरवो दर्भकुसुमाः सुगन्धास्ते च कुर्वते ॥७॥
हृल्लासमास्यश्रवणमविपाकमरोचकम् । मूर्च्छाच्छर्दिज्वरानाहकार्श्यक्षवथुपीनसान् ॥८॥
रक्तवाहिशिरास्थानरक्तजा जन्तवोऽणवः । अपादा वृत्तताम्राश्च सौक्ष्म्यात्केचिददर्शनाः ॥
केशादा रोमविध्वंसा रोमद्वीपा उदुम्बराः । षट् ते कुष्ठैककर्माणः सहसौरसमातरः ॥१०॥
पक्वाशये पुरीषोत्था जायन्तेऽधोविसर्पिणः । वृद्धास्ते स्युर्भवेयुश्च ते यदामाशयोन्मुखाः ॥११॥
तदास्योद्गारनिःश्वासविड्गन्धानुविधायिनः । पृथुवृत्ततनुस्थूलाः श्यावपीतसितासिताः ॥१२॥
ते पञ्च नाम्ना क्रिमयः ककेरुकमकेरुकाः । सौसुरादाः सशूलाख्या लेलिहा जनयन्ति हि १३॥
विड्भेदशूलविष्टम्भकार्श्यपारुष्यपाण्डुताः । रोमहर्षाग्निसदनं गुदकण्डूर्विमार्गगाः ॥१४॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे क्रिमिनिदानं नाम
पञ्चषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६५॥

षट्षष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

धन्वन्तरिरुवाच

वातव्याधिनिदानं ते वक्ष्ये सुश्रुत तच्छृणु । सर्वथानर्थकथने विघ्न एव च कारणम् ॥ १ ॥
अदृष्टदुष्टपवनशरीरमविशेषतः । स विश्वकर्मा विश्वात्मा विश्वरूपः प्रजापतिः २॥
स्रष्टा धाता विभुर्विष्णुः संहर्ता मृत्युरन्तकः । तद्वदुक्तश्च यत्नेन यतितव्यमतः सदा ॥ ३ ॥
तस्योक्ते दोषविज्ञाने कर्म प्राकृतवैकृतम् । समासव्यासतो दोषभेदानामवधाय च ॥ ४ ॥
प्रत्येकं पञ्चधा वीरो व्यापारश्चेह वैकृतः । तस्योच्यते विभागेन सनिदानं सलक्षणम् ॥ ५ ॥
धातुक्षयकरैर्वायुः क्रुद्धो नातिनिषेव्यते । चतुःस्रोतोऽवकाशेषु भूयस्तान्येव पूरयेत् ॥ ६ ॥
तेभ्यस्तु दोषपूर्णेभ्यः प्रच्छाद्य विवरं ततः । तत्र वायुः सकृत्क्रुद्धः शूलानाहान्त्रकूजनम् ७ ॥
मलरोधं स्वरभ्रंशं दृष्टिपृष्ठकटिग्रहम् । करोत्येव पुनः काये कृच्छ्रानन्यानुपद्रवान् ॥ ८ ॥

आमाशयोत्थं वमथुश्वासकासविसूचिकाः । कण्डूपरोधधर्मादिव्याधीनूर्ध्वञ्च नाभितः ॥ ६ ॥
स्रोतादिष्विन्द्रियाबाधं त्वचि स्फोटनरुक्षताम् । चक्रे तीव्ररुजाश्वासगरामयविवर्णताः ॥१०॥
अन्त्रस्यान्तश्च विष्टम्भमरुचिं कृशता भ्रमम् । मांसमेदोगतग्रन्थि चर्मादावुपककर्कशम् ॥११॥
गुर्वङ्गं तुद्यतेऽत्यर्थं दण्डमुष्टिहतं यथा । अस्थिस्थः सक्थिमन्यस्थिशूलं तीव्रञ्च लक्षयेत् ॥
मज्जस्थोऽस्थिषु चास्थैर्य्यमस्वप्नं यत्तदा रुजाम् । शुक्रस्य शीघ्रमुत्सङ्गसर्गान्विकृतिमेव वा १३॥
तत्तद्गर्भस्थशुक्रस्थः शिरश्चाश्यानविट्कता । तत्र स्थानस्थितः कुर्य्यात्क्रुद्धः श्वयथुकृच्छ्रताम् ॥
जलपूर्णदृतिस्पर्शं शोपं सन्धिगतोऽनिलः । सर्वाङ्गसंश्रयस्तोदभेदस्फुरणभञ्जनम् ॥१५॥
स्तम्भनाक्षेपणं स्वप्नः सन्धिभञ्जनकम्पनम् । यदा तु धमनीः सर्वाः क्रुद्धोऽभ्येति मुहुर्मुहुः ॥
तदाङ्गमाक्षिपत्येष व्याधिराक्षेपणः स्मृतः ॥१६॥

अधः प्रतिहतो वायुर्व्रजेदूर्ध्वं तदा पुनः । तदावष्टभ्य हृदयं शिरःशङ्खौ च पीड़येत् ॥१७॥
स क्षिपेत्परितो गात्रं हनुं वा चास्य नामयेत् । कृच्छ्रादुच्छ्वसितिस्तस्य निमीलन्नयनद्वयम् १८॥
कपोत इव कूजेच्च निःसङ्गः सोपतंत्रकः । स एव वामनासायां युक्तस्तु मरुता हृदि ॥१६॥
प्राप्नोति च मुहुः स्वास्थ्यं मुहुरस्वास्थ्यवान्भवेत् । अभिघातसमुत्थश्च दुश्चिकित्स्यतमो मतः ॥
स्वेदस्तम्भं तदा तस्य वायुच्छिन्नतनुर्यदा । व्याप्नोति सकलं देहं यत्र चायाम्यते पुनः ॥२१॥
अन्तर्धातुगतश्चैव वेगस्तम्भश्च नेत्रयोः । करोति जृम्भां सदनं दशनानां हतोद्यमम् ॥२२॥
पार्श्वयोर्वेदनां बाह्यां हनुपृष्ठशिरोग्रहम् । देहस्य बहिरायामं पृष्ठतो हृदये शिरः ॥२३॥
उरश्चोत्क्षिप्यते तत्र स्कन्धो वा नाम्यते तदा । दन्तेष्वास्ये च वैवर्ण्यं अस्वेदस्तत्र गात्रतः २४॥
बाह्यायामं हनुस्तम्भं ब्रुवते वातरोगिणम् । विण्मूत्रमसृजं प्राप्य ससमीरसमीरणाः ॥२५॥
आयच्छन्ति तनोर्दोषाः सर्वमापादमस्तकम् । तिष्ठतः पाण्डुमात्रस्य व्रणायामः सुवर्द्धितः ॥२६॥
नात्र वेगे भवेत्स्वास्थ्यं सर्वेष्वाक्षेपणेन तत् । जिह्वाविलेखनादुष्णभक्षणादतिमानतः ॥२७॥
कुपितो हनुमूलस्थः स्तम्भयित्वानिलो हनुम् । करोति विवृतास्यत्वमथवा संवृतास्यताम् ॥२८॥
हनुस्तम्भः स तेन स्यात्कृच्छ्राच्चर्वणभाषणम् । वाग्वाहिनीशिरास्तम्भो जिह्वां स्तम्भयतेऽनिलः ॥
जिह्वास्तम्भः स तेनान्नपानवाक्येष्वनीशता । शिरसा भारहरणादतिहास्यप्रभाषणात् ॥३०॥
विषमादुपधानाच्च कठिनानाञ्च चर्वणात् । वायुर्विवर्द्धते तैश्च वातलैरूर्ध्वमास्थितः ॥३१॥
वक्रीकरोति वक्त्रञ्च उच्चैर्हसितमीक्षितम् । ततोऽस्य कुरुते मूर्द्धी वाक्शक्तिं स्तब्धनेत्रताम् ॥
दन्तचालं स्वरभ्रंशः श्रुतिहानीक्षितग्रहः । गन्धाज्ञानं स्मृतिध्वंसस्त्रासः श्वासश्च जायते ३३॥
निष्ठीवः पार्श्वतोदश्च एकस्याक्ष्णो निमीलनम् । जत्रोरूर्ध्वं रुजस्तीव्राः शरीरार्द्धधरोऽपि वा३४॥

तमाहुरर्दितं केचिदेकाङ्गमथ चापरे । रक्तमाश्रित्य च शिराः कुर्यान्मूर्द्धधराः शिराः ३५॥
रुक्षः सवेदनः कृष्णः सोऽसाध्यः स्याच्छिरोग्रहः । तनुं गृहीत्वा वायुश्च शिरास्नायुस्तथैव च ॥
पक्षमन्यतरं हन्ति पक्षाघातः स उच्यते । कृत्स्नस्य कायस्यार्द्धं स्यादकर्मण्यमचेतनम् ॥३७॥
एकाङ्गरोगतां केचिदन्ये कक्षरुजो विदुः । सर्वाङ्गरोधस्तम्भश्च सर्वकायाश्रितेऽनिले ॥३८॥
शुद्धवातकृतः पक्षः कृच्छ्रसाध्यतमो मतः । कृच्छ्रश्चान्येन संसृष्टो विवृद्धः क्षयहेतुकः ॥३९॥
आमबद्धायनः कुर्यात्संस्तभ्याङ्गं कफान्वितः । असाध्य एव सर्वो हि भवेद्दण्डापतानकः ॥४०॥
अंसमूलोत्थितो वायुः शिराः संकुच्य तत्रगः । बहिः प्रस्यन्दितहरं जनयत्येव बाहुकम् ॥४१॥
तलं प्रत्यङ्गुलीनां याः कण्डरा बाहुपृष्ठतः । बाह्वोः कर्मक्षयकरी विश्वाची वेति सोच्यते ॥४२॥
वायुः कट्याश्रितः सक्थ्नः कण्डरामाक्षिपेद् यदा । तदा खञ्जो भवेज्जन्तुः पङ्गुः सक्थ्नोर्द्वयोर्वधात्॥
कम्पते गमनारम्भे खञ्जन्निव च गच्छति । कलायखञ्जं तं विद्यान्मुक्तसन्धिप्रबन्धनम् ॥४४॥
शीतोष्णद्रवसंशुष्कगुरुस्निग्धैश्च सेवितैः । जीर्णाजीर्णे तथायासक्षोभस्निग्धप्रजागरैः ॥४५॥
सश्लेष्ममेदः समये परमत्यर्थसञ्चितम् । अभिभूयेतरं दोषं शरीरं प्रतिपद्यते ॥४६॥
सक्थ्यस्थीनि प्रपूर्यान्तः श्लेष्मणा स्तम्भितेन तत् । तदास्थि स्नाति तेनोरोस्तथा शीतानिलेन तु ॥
श्यामाङ्गमङ्गस्तैमित्यतन्द्रामूर्च्छारुचिज्वरैः । तमूरुस्तम्भमित्याह बाह्यवातमथापरे ॥४८॥
वातशोणितसंशोथो जानुमध्ये महारुजः । ज्ञेयः क्रोष्टुकशीर्षस्तु स्थूलक्रोष्टुकशीर्षवत् ॥४९॥
रुक्पादविषमन्यस्ते श्रमाद्वा जायते यदा । वातेन गुल्फमाश्रित्य तमाहुर्वातकण्टकम् ॥५०॥
पार्ष्णिप्रत्यङ्गुलीनाभौ कण्ठे वा मारुतार्दिते । सातिक्षेपं निगृह्णाति गृध्रसीं तां प्रचक्षते ॥५१॥
हृष्येते चरणौ यस्य भवताश्चापि सुप्तकौ । पादहर्षः स विज्ञेयः कफमारुतकोपजः ॥५२॥
पादयोः कुरुते दाहं पित्तासृक्सहितोऽनिलः । विशेषतश्चंक्रमतः पाददाहं तमादिशेत् ॥५३॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे वातव्याधिनिदानं नाम षट्षष्ट्यधिक-
शततमोऽध्यायः ॥१६६॥

सप्तषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

धन्वन्तरिरुवाच

वातरक्तनिदानं ते वक्ष्ये सुश्रुत तच्छृणु । विरुद्धाध्यशनक्रोधदिवास्वप्नप्रजागरैः ॥ १ ॥
प्रायशः सुकुमाराणां मिथ्याहारविहारिणाम् । स्थूलानां सुखिनाञ्चापि कुप्यते वातशोणितम् ॥

अभिघातादशुद्धेश्च नृणामसृजि दूषिते । वातलैः शीतलैर्वाथ वृद्धः क्रुद्धो विमार्गगः ॥ ३ ॥
तादृशैवासृजा रुद्धः प्राक्तदेव प्रदोषयेत् । आद्यं वातं गुदं वादं बलासं वातशोणितम् ॥ ४ ॥
तदा दुर्नामभिः स्तब्धं पूर्वस्यादौ प्रधावति । विशेषाद्वमनाद्यैश्च प्रलम्बस्तस्य लक्षणम् ॥ ५ ॥
भविष्यतः कुष्ठसमं तथा साम्बुदसंज्ञकम् । जानुजङ्घोरुकट्यंसहस्तपादाङ्गसन्धिषु ॥ ६ ॥
कण्डूस्फुरणनिस्तोदभेदगौरवसुप्तताः । भूत्वा भूत्वा प्रशाम्यन्ति कदा वाविर्भवन्ति च ॥ ७ ॥
पादयोर्मूलमास्थाय कदाचिद्धस्तयोरपि । आखोरिव विषं क्रुद्धः कृत्स्नं देहं विधावति ॥ ८ ॥
त्वङ्मांसाश्रयमुत्तानं तत्पूर्वं जायते ततः । कालान्तरेण गम्भीरं सर्वधातूनभिद्रवेत् ॥ ९ ॥
कट्यादिसंयतस्थाने त्वक्ताम्रश्यावलोहिताः । श्वयथुः ग्रथितः पाकः स वायुश्चास्थिमज्जसु ॥
छिन्दन्निव चरन्त्यन्तश्चक्रीकुर्वंश्च वेगवान् । करोति खञ्जं पङ्गुं वा शरीरं सर्वतश्चरन् ॥
वताधिकेऽधिकन्तत्र शूलस्फुरणभञ्जनम् । शोथस्य रौक्ष्यं कृष्णत्वं श्यावताबृद्धिहानयः ॥१२॥
धमन्यङ्गुलिसन्धीनां सङ्कोचोऽङ्गग्रहोऽतिरुक् । शीतद्वेषानुपशयौ स्तम्भवेपथुसुप्तयः ॥१३॥
रक्ते शोथोऽतिरुक्तोदस्ताम्रश्चिमिचिमायते । स्निग्धरूक्षैः समं नैति कुण्डक्लेदसमन्वितः ॥
पित्ते विदाहः सम्मोहः स्वेदो मूर्च्छा मदस्तृषा । स्पर्शासहत्वं रुग्रावः शोषः पाको भृशोष्मता ॥
कफे स्तैमित्यगुरुतासुप्तिस्निग्धत्वशीतताः । कण्डूर्मन्दा च रुग्द्वन्द्वं सर्वलिङ्गञ्च सङ्करात् ॥१६॥
एकदोषञ्च संसाध्यं याप्यञ्चैव द्विदोषजम् । त्रिदोषजं त्यजेदाशु रक्तपित्तं सुदारुणम् ॥१७॥
रक्तमङ्गे निहन्त्याशु शाखासन्धिषु मारुतः । निवेश्यान्योन्यमावार्य्य वेदनाभिर्हरत्यसून् ॥१८॥
वायौ पञ्चात्मके प्राणे रौक्ष्याचापल्यलङ्घनैः । अत्याहाराभिघाताच्च वेगोदीरणधारणैः ॥१९॥
कुपितश्चक्षुरादीनामुपघातं प्रकल्पयेत् । पीनसो दाहतृट्कासश्वासादिश्चैव जायते ॥२०॥
कण्ठरोधो मलभ्रंशच्छर्द्यरोचकपीनसान् । कुर्य्याच्च गलगण्डादींस्तान् जत्रुमूर्द्धसंश्रयः ॥२१॥
व्यानोऽतिगमनस्नानक्रीडाविषयचेष्टितैः । विरुद्धरुक्षभीहर्षविषादाद्यैश्च दूषितः ॥२२॥
पुंस्त्वोत्साहबलभ्रंशशोकचित्तप्लवज्वरान् । सर्वाकारादिनिस्तोदरोमहर्षं सुप्तसुप्तताम् ॥२३॥
कुष्ठं विसर्पमन्यच्च कुर्य्यात्सर्वाङ्गसादनम् । समानो विषमाजीर्णशीतसङ्कीर्णभोजनैः ॥२४॥
करोत्यकालशयनजागराद्यैश्च दूषितः । शूलगुल्मग्रहण्यादीन् यकृत्कामाश्रयान् गदान् ॥२५॥
अपानो रुक्षगुर्वन्नवेगाघातातिवाहनैः । यानयानसमुत्थानचङ्क्रमैश्चातिसेवितैः ॥२६॥
कुपितः कुरुते वेगान् कृच्छ्रान् पक्वाशयाश्रयान् । मूत्रशुक्रप्रदोषार्शोगुदभ्रंशादिकान् वसून् ॥
सर्वाङ्गमाततं साम तन्द्रास्तैमित्यगौरवैः । स्निग्धत्वाद्बोधकालस्य शैत्यशोथाग्निहानयः ॥२८॥
कण्डूरुक्षातिनाशेन तद्विधोपशमेन च । मुक्तिं विद्यान्निरामं तं तन्द्रादीनां विपर्य्ययात् ॥२९॥

वायोरावरणं वातो बहुभेदं प्रचक्षते । पित्तलिङ्गावृते दाहस्तृष्णा शूलं भ्रमस्तमः ॥
कटुकोष्णाम्ललवणैर्विदाहशीतकामता ॥३०॥

शैत्यगौरवशूलाग्निकट्वाज्यपयसोऽधिकम् । लङ्घनायासरुक्षोष्णकामता च कफावृते ॥३१॥
कफावृतेऽङ्गमर्दः स्याद्धल्लासो गुरुताऽरुचिः । रक्तावृते सदाहार्त्तिस्त्वङ्मांसाश्रयजा भृशम् ॥३२॥
भवेत्सरागः श्वयथुर्जायन्ते मण्डलानि च । शोथो मांसेन कठिनो हृल्लासपिटकास्तथा ॥३३॥
चललग्नो मृदुः शीतः शोथो गात्रेषु रोचकः । आढ्यवात इव ज्ञेयः स कृच्छ्रो मेदसावृतः ॥३४॥
स्पर्श आच्छादितेऽत्युष्णः शीतलश्च त्वनावृते । मज्जावृते तु विषमं जृम्भणं परिवेष्टनम् ॥
शूलश्च पीड्यमाने च पाणिभ्यां लभते सुखम् ॥३५॥

शुक्रावृते तु शोथे वै चातिवेगो न विद्यते । भुक्ते कुक्षौ रुजा जीर्णे निवृत्तिर्भवति ध्रुवम् ॥३६॥
मूत्रप्रवृत्तिराध्मानं बस्तेर्मूत्रावृते भवेत् । छिद्रावृते विबन्धोऽथ स्वस्थानं परिकृन्तति ॥३७॥
पतत्याशु ज्वराक्रान्तो भुक्तं च लभते नरः । सकृत्पीड़ितमन्नेन दुष्टं शुक्रं चिरात्सृजेत् ॥३८॥
सर्वधात्वावृते वायौ श्रोणिवङ्क्षणपृष्ठरुक् । विलोमे मारुते चैव हृदयं परिपीड्यते ॥३९॥
भ्रमो मूर्च्छा रुजा दाहः पित्तेन प्राण आवृते । रुजा तन्द्रा स्वरभ्रंशो दाहो व्याने तु सर्वशः ॥
क्रमोऽङ्गचेष्टाभङ्गश्च सन्तापः सहवेदनः । समान उष्मोपहतिः सस्वेदोपरतिः सुतृट् ॥
दाहश्च स्यादपाने तु मले हारिद्रवर्णता । रजोवृद्धिस्तापनश्च तथा चानाहमेहनम् ॥४२॥
श्लेष्मणा प्रावृते प्राणे नादः स्रोतोऽवरोधनम् । ष्ठीवनश्चैव सस्वेदश्वासनिःश्वाससंग्रहः ॥४३॥
उदाने गुरुगात्रत्वमरुचिर्वाक्स्वरग्रहः । बलवर्णप्रणाशश्च व्याने पर्वास्थिसंग्रहः ॥४४॥
गुरुताङ्गेषु सर्वेषु स्थूलत्वञ्चागतं भृशम् । समानेऽतिक्रियाज्ञत्वमस्वेदो मन्दवह्निता ॥४५॥
अपाने सकफं मूत्रं शकृतः स्यात् प्रवर्त्तनम् । इति द्वाविंशतिविधं वातरक्तामयं विदुः ॥४६॥
प्राणादयस्तथान्योऽन्यं समाक्रान्ता यथाक्रमम् । सर्वेऽपि विंशतिविधं विद्यादावरणञ्च यत् ४७॥
हृल्लासोच्छ्वाससंरोधः प्रतिश्यायः शिरोग्रहः । हृद्रोगो मुखशोषश्च प्राणेनापान आवृते ॥४८॥
उदानेनावृते प्राणे भवेद्धि बलसंक्षयः । विचारणेन विभजेत्सर्वमावरणं भिषक् ॥४९॥
स्थानान्यपेक्ष्य वातानां वृद्धिर्हानिश्च कर्मणाम् । प्राणादीनाञ्च पञ्चानां पित्तमावरणं मिथः ५०॥
पित्तादीनामावसतिर्मिश्राणां मिश्रितैश्च तैः । मिश्रैः पित्तादिभिस्तद्वन्मिश्राण्यपि त्वनेकधा ५१॥
तां लक्षयेदवहितो यथा स्वलक्षणोदयात् । शनैः शनैश्चोपशयं दृढानपि मुहुर्मुहुः ॥५२॥
विशेषाज्जीवितं प्राण उदानो बलमुच्यते । स्यात्तयोः पीड़नाद्धानिरायुषश्च बलस्य च ॥५३॥
आवृता वायवो ज्ञाता ज्ञाता वा स्वस्थानच्युताः । प्रयत्नेनापि दुःसाध्या भवेयुर्वानुपद्रवा ५४॥

वेद्रधिप्लीहहृद्रोगगुल्माग्निसदनादयः । भवन्त्युपद्रवास्तेषामावृतानामुपेक्षया ॥५५॥
निदानं सुश्रुत मया आत्रेयोक्तं समीरितम् । सर्वरोगविवेकाय नराद्यायुःप्रवृद्धये ॥५६॥
एवं विज्ञाय रोगादींश्चिकित्सामथवा चरेत् । त्रिफला सर्वरोगघ्नी मध्वाज्यगुड़संयुता ॥५७॥
सशोषा त्रिफला वापि सर्वरोगप्रमर्दिनी । शतावरीगुडूच्यग्निविडङ्गेन युताथवा ॥५८॥
शतावरी गुडूच्यग्निः शुण्ठी मूषलिका बला । पुनर्नवा च बृहती निर्गुण्डी निम्बपत्रकम् ५९॥
भृङ्गराजश्चामलकं वासकस्तद्रसेन वा । भाविता त्रिफला सप्तवारमेकमथापि वा ॥६०॥
पूर्वोक्तश्च यथालाभं युक्ताश्चूर्णश्च मोदकः । वटिका घृततैलं वा कषायः शोषरोगनुत् ॥
पलं पलार्द्धकं वापि कर्षं कर्षार्द्धमेव वा ॥ ६१ ॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे सप्तषष्ट्यधिकशततमेऽध्याये रोगाणां निदानं समाप्तम् ॥ १६७ ॥

अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः

धन्वन्तरिरुवाच

सर्वरोगहरं सिद्धं योगसारं वदाम्यहम् । शृणु सुश्रुत संक्षेपात्प्राणिनां जीवहेतवे ॥ १ ॥
कषायकटुतिक्ताम्लरुक्षाहारादिभोजनात् । चिन्ताव्यवायव्यायामभयशोकप्रजागरात् ॥ २ ॥
उच्चैर्भाषातिभाराच्च कर्मयोगातिकर्षणात् । वायुः कुप्यति पर्जन्ये जीर्णान्ने दिनसंक्षये ॥३॥
उष्णाम्ललवणक्षारकटुकाजीर्णभोजनात् । तीक्ष्णातपाग्निसन्तापमद्यक्रोधनिषेवणात् ॥४॥
विदाहकाले भुक्तस्य मध्याह्ने जलदात्यये । ग्रीष्मकालेऽर्द्धरात्रेऽपि पित्तं कुप्यति देहिनः ॥५॥
स्वाद्वम्ललवणास्निग्धगुरुशीतातिभोजनात् । नवान्नपिच्छिलानूपमांसादिसेवनादपि ॥६॥
अव्यायामदिवास्वप्नशय्यासनसुखादिभिः । कफप्रदोषो भुक्ते च वसन्ते च प्रकुप्यति ॥७॥
देहपारुष्यसंकोचतोदविष्टम्भकादयः । तथा च सुप्तता रोमहर्षस्तम्भनशोषणम् ॥८॥
श्यामत्वमङ्गविश्लेषबलमायासवर्द्धनम् । वायोर्लिङ्गानि तैर्युक्तं रोगं वातात्मकं वदेत् ॥९॥
दाहोष्मपादसंक्लेदकोपरागपरिश्रमाः । कट्वम्लशववैगन्धस्वेदमूर्च्छातितृड्भ्रमाः ॥
हारिद्रं हरितत्वञ्च पित्तलिङ्गान्वितैर्नरः ॥१०॥
स्निग्धत्वं देहे माधुर्यंचिरकारित्वबन्धनम् । स्तैमित्यतृप्तिसङ्घातशोथशीतलगौरवम् ॥११॥
कण्डूनिद्राभियोगश्च लक्षणं कफसम्भवम् । हेतुलक्षणसंसर्गाद्विद्याद्व्याधिं द्विदोषजम् ॥१२॥
सर्वहेतुसमुत्पन्नं त्रिलिङ्गं सान्निपातिकम् । दोषधातुमलाधारो देहिनां देह उच्यते ॥१३॥

तेषां समत्वमारोग्यं क्षयवृद्धेर्विपर्य्ययः । वसासृङ्मांसमेदोऽस्थिमज्जाशुक्राणि धातवः ॥१४॥
वातपित्तकफा दोषा विण्मूत्राद्या मलाः स्मृताः ।
वायुः शीतो लघुः सूक्ष्मः स्वरनाशो स्थिरो बली ॥१५॥

पित्तमम्लकटूष्णश्चापक्तिश्च रोगकारणम् । मधुरो लवणः स्निग्धो गुरुः श्लेष्मातिपिच्छिलः ॥
गुदश्रोण्याश्रयो वायुः पित्तं पक्वाशयस्थितम् । कफस्यामाशयस्थानं कण्ठो वा मूर्द्धसन्धयः ॥
कटुतिक्तकषायाश्च कोपयन्ति समीरणम् । कट्वम्ललवणाः पित्तं स्वादूष्णलवणाः कफम् ॥१८॥
एत एव विपर्य्यस्ताः शमायैषां प्रयोजिताः । भवन्ति रोगिणः शान्त्यै स्वस्थानं सुखहेतवः ॥
चक्षुष्यो मधुरो ज्ञेयो रसधातुविवर्द्धनः । अम्लोत्तरो मनोहृद्यं तथा दीपनपाचनम् ॥२०॥
दीपनो ज्वरतृष्णाघ्नस्तिक्तः शोधनशोषणः । पित्तलो लेखनः स्तम्भी कषायो ग्राहिशोषणः ॥
रसवीर्य्यविपाकानामाश्रयं द्रव्यमुत्तमम् । रसपाकान्तरस्थायी द्रव्यः सर्वस्य चाश्रयः ॥२२॥
शीतोष्णलवणं वीर्य्यमथवा शक्तिरिष्यते । रसानां द्विविधः पाको मधुरः कटुरेव च ॥२३॥
भिषग्भेषजरोगार्त्तपरिचारकसम्पदः । चिकित्साङ्गानि चत्वारि विपरीतान्यसिद्धये ॥२४॥
देशकालवयोवह्निसाम्यप्रकृतिभेषजम् । देहसत्त्वबलव्याधीन्बुद्ध्वा कर्म समारभेत् ॥२५॥
संसृष्टलक्षणोपेतो देशः साधारणः स्मृतः । बाल आषोडशान्मध्यः सप्ततेर्वृद्ध उच्यते ॥२६॥
कफपित्तानिलाः प्रायो यथाक्रममुदीरिताः । क्षाराग्निशस्त्ररहिता क्षीणे प्रवयसि क्रियाः ॥२७॥
कृशस्य बृंहणं कार्य्यं स्थूलदेहस्य कर्षणम् । रक्षणं मध्यकायस्य देहभेदास्त्रयो मताः ॥२८॥
स्थैर्य्यव्यायामसन्तोषैर्बोद्धव्यं यंत्रतो बलम् । अविकारी महोत्साहो महासाहसिको नरः ॥२९॥
पानाहारादयो यस्य विरुद्धाः प्रकृतेरपि । स्वसुखायोपकल्प्यन्ते तत्साम्यमिति कथ्यते ॥३०॥
गर्भिण्याः श्लैष्मिकैर्भक्ष्यैः श्लैष्मिको जायते नरः । वातलैः पित्तलैस्तद्वत्समधातुर्हिताशनात् ॥
कृशो रुक्षोऽल्पकेशश्च चलचित्तो नरः स्थितः । बहुवाक्यरतः स्वप्ने वातप्रकृतिको नरः ॥३२॥
अकालपलितो गौरः प्रस्वेदी कोपनो बुधः । स्वप्नेऽपि दीप्तिमत्प्रेक्षी पित्तप्रकृतिरुच्यते ॥३३॥
स्थिरचित्तः स्वरः सूक्ष्मः प्रसन्नः स्निग्धमूर्द्धजः । स्वप्ने जलशिलालोकी श्लेष्म प्रकृतिको नरः ॥
सम्मिश्रलक्षणैर्ज्ञेयो द्वित्रिदोषान्वयो नरः । दोषस्येतरसद्भावेऽप्यधिकप्रकृतिः स्मृतः ॥३५॥
मन्दस्तीक्ष्णोऽथ विषमः समश्चेति चतुर्विधाः । कफपित्तानिलाधिक्यात्तत्साम्याज्जाठरोऽनलः ॥
समस्य पालनं कार्य्यं विषमे वातनिग्रहः । तीक्ष्णे पित्तप्रतीकारो मन्दे श्लेष्मविशोधनम् ॥३७॥
प्रभवः सर्वरोगाणामजीर्णश्चाग्निनाशनम् । आमाम्लरसविष्टम्भलक्षणं तच्चतुर्विधम् ॥३८॥
आमाद्विसूचिका चैव हृदालस्यादयस्तथा । वचालवणतोयेन छर्दनं तत्र कारयेत् ॥३९॥

शुक्राभावो भ्रमो मूर्च्छा तर्षोऽम्लात्संप्रवर्त्तते । अपक्वं तत्र शीताम्बुपानं वातनिषेवणम् ॥४०॥
गात्रभङ्गशिरोजाड्यभक्तद्वेषादयो रसात् । तस्मिन्स्वापो दिवा कार्यो लङ्घनं वा विवर्जनम् ॥
शूलगुल्मौ च विण्मूत्रस्तम्भविष्टम्भसूचकौ । विधेयं स्वेदनं तत्र पानीयं लवणोदकम् ॥४२॥
आमम्लञ्च विष्टब्धं कफपित्तानिलैः क्रमात् । आलिप्य जठरं प्राज्ञो हिङ्गुत्र्यूषणसैन्धवैः ॥४३॥
दिवास्वप्नं प्रकुर्वीत सर्वाजीर्णविनाशनम् । अहिताग्नै रोगराशिरहितार्थं ततस्त्यजेत् ॥४४॥
उष्णाम्बु वानुपानञ्च माक्षिकैः पाचनं भवेत् । करीरदधिमत्स्यैश्च प्रायः क्षीरं विरुध्यते ॥४५॥
बिल्वः शोणा च गम्भारी पाटला गणिकारिका । दीपनं कफवातघ्नं पञ्चमूलमिदं महत् ॥४६॥
शालपर्णी पृश्निपर्णी बृहतीद्वयगोक्षुरः । वातपित्तहरं वृष्यं कनीयः पञ्चमूलकम् ॥४७॥
उभयं दशमूलं स्यात्सन्निपातज्वरापहम् । कासे श्वासे च तन्द्रायां पार्श्वशूले च शस्यते ॥४८॥
एतैस्तैलानि सर्पींषि प्रलेपान्यलकां जयेत् । क्वाथ्याच्चतुर्गुणं वारि पादस्थं स्याच्चतुर्गुणम् ॥४९॥
स्नेहश्च तत्समं क्षीरं कल्कश्च स्नेहपादकः । संवर्त्तितौषधैः पाको बस्तौ पाने भवेत्समः ॥
स्वरोऽभ्यङ्गे मृदुर्नस्ये पाकोऽपि संप्रकल्पयेत् ॥५०॥
स्थूलदेहेन्द्रियाश्चिन्त्या प्रकृतिर्या त्वधिष्ठिता । आरोग्यमिति तं विद्यादायुष्मन्तमुपाचरेत् ॥५१॥
यो गृह्णातीन्द्रियैरर्थान्विपरीतान्स मृत्युभाक् । भिषङ्मित्रगुरुद्वेषी प्रियारातिश्च यो भवेत् ॥५२॥
गुल्फजानुललाटञ्च हनुर्गण्डस्तथैव च । भ्रष्टं स्थानच्युतं यस्य स जहात्यचिरादसून् ॥५३॥
वामाक्षिमज्जनं जिह्वा श्यामा नासा विकारिणी ।
कृष्णौ स्थानच्युतौ चोष्ठौ कृष्णास्यं यस्य तं त्यजेत् ॥५४॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे वैद्यकशास्त्रे सूत्रस्थानं नाम
अष्टषष्ट्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६८॥

ऊनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

धन्वन्तरिरुवाच

हिताहितविरेकाय अनुपानविधिं वदे । रक्तशालि त्रिदोषघ्नं तृष्णामेदोनिवारकम् ॥ १ ॥
महाशालि परं वृष्यं कलमः श्लेष्मपित्तहा । शीतो गुरुस्त्रिदोषघ्नः प्रायशो गौरषष्टिकः ॥ २ ॥
श्यामाकः शोषणो रुक्षो वातलः श्लेष्मपित्तहा । तद्वत्प्रियङ्गुनीवारकोरदूषाः प्रकीर्त्तिताः ॥ ३ ॥
बहुवारः सक्तुच्छीतः श्लेष्मपित्तहरो यवः । वृष्यः शीतो गुरुः स्वादुर्गोधूमो वातनाशनः ॥ ४ ॥

कफपित्तास्रजिन्मुद्गः कषायो मधुरो लघुः । माषो बहुबलो वृष्यः पित्तश्लेष्महरो गुरुः ॥ ५ ॥
अवृष्यः श्लेष्मपित्तघ्नो राजमाषोऽनिलार्त्तिनुत् । कुलत्थः श्वासहिक्काहृत्कफगुल्मानिलापहः ॥६॥
रक्तपित्तज्वरोन्माथी शीतो ग्राही मकुष्ठकः । पुंस्त्वासृक्कफपित्तघ्नश्चणको वातलः स्मृतः ॥ ७ ॥
मसूरो मधुरः शीतः संग्राही कफपित्तहा । तद्वत्सर्वगुणाढ्यश्च कलायश्चातिवातलः ॥ ८ ॥
आढ़की कफपित्तघ्नी शुक्रला च तथा स्मृता । अतसी पित्तला ज्ञेया सिद्धार्थः कफवातजित् ॥९॥
सक्षारमधुरस्निग्धो बलोष्णपित्तकृत्तिलः । बलघ्ना रुक्षकाः शीता विविधाः शस्यजातयः ॥१०॥
चित्रकेङ्गुदिनालीकाः पिप्पलीमधुशिग्रवः । चव्याचरणनिर्गुण्डीतर्कारीकाशमर्दकाः ॥११॥
सबिल्वाः कफपित्तघ्नाः क्रिमिघ्ना लघुदीपिकाः । वर्षाभूमार्करौ वातकफघ्नौ दोषनाशनौ ॥१२॥
तिक्तरसः स्यादेरण्डः काकमाची त्रिदोषहृत् । चाङ्गेरी कफवातघ्नी सर्षपं सर्वदोषदम् ॥१३॥
तद्वदेव च कौसुम्भं राजिका वातपित्तला । नाड़ीचः कफपित्तघ्नः चुचुर्मधुरशीतलः ॥१४॥
दोषघ्नं पद्मपत्रञ्च त्रिपुटं वातकृत्परम् । सक्षारः सर्वदोषघ्नो वास्तुको रोचनः परः ॥१५॥
तण्डुलीयो विषहरः पालङ्क्यश्च तथापरे । मूलकं दोषकृच्चामं स्विन्नं वातकफापहम् ॥१६॥
सर्वदोषहरं हृद्यं कण्ठ्यं तत्पक्वमिष्यते । कर्कोटकं सवार्त्ताकं पटोलं कारवेल्लकम् ॥१७॥
कुष्ठमेहज्वरश्वासकासपित्तकफापहम् । सर्वदोषहरं हृद्यं कूष्माण्डं बस्तिशोधनम् ॥१८॥
कलिङ्गालाबुनी पित्तनाशिनी वातकारिणी । त्रपुषेर्वारुके वातश्लेष्मले पित्तवारणे ॥१९॥
वृक्षाम्लं कफवातघ्नं जम्बीरं कफवातनुत् । वातघ्नं दाड़िमं ग्राहि नागरङ्गफलं गुरु ॥२०॥
केशरं मातुलुङ्गञ्च दीपनं कफवातनुत् । वातपित्तहरं माम्रं त्वक्स्निग्धोष्णानिलापहम् ॥२१॥
सर्वमामलकं वृष्यं मधुरं हृद्यमम्लकृत् । भुक्तप्ररोचका पुण्या हरीतक्यमृतोपमा ॥२२॥
स्रंसनी कफवातघ्नी परं तद्वत्त्रिदोषजित् । वातश्लेष्महरं त्वम्ल स्रंसनं तिन्तिड़ीफलम् ॥२३॥
दोषलं लकुचं स्वादु वकुलं कफवातजित् । गुल्मवातकफश्वासकासघ्नं बीजपूरकम् ॥२४॥
कपित्थं ग्राहि दोषघ्नं पक्वं गुरु विषापहम् । कफपित्तकरं बालमापूर्णं पित्तवर्द्धनम् ॥२५॥
पक्वाम्रं वातकृन्मांसशुक्रवर्णबलप्रदम् । वातघ्नं कफपित्तघ्नं ग्राहि विष्टम्भि जाम्बवम् ॥२६॥
तिन्दुकं कफवातघ्नं बदरं वातपित्तहृत् । विष्टम्भि वातलं बिल्वं प्रियालं पवनापहम् ॥२७॥
राजादनफलं मोचं पनसं नारिकेलकम् । शुक्रमांसकराण्याहुः स्वादुस्निग्धगुरूणि च ॥२८॥
द्राक्षामधुकखर्जूरं कुङ्कुमं वातरक्तजित् । मागधी मधुरा पक्वा श्वासपित्तहरा परा ॥२९॥
आर्द्रकं रोचकं वृष्यं दीपनं कफवातहृत् । शुण्ठीमरिचपिप्पल्यः कफवातजिता मताः ॥३०॥
अवृष्यं मरिचं विद्यादिति वैद्यकसम्मितम् । गुल्मशूलविबन्धघ्नं हिङ्गु वातकफापहम् ॥३१॥
यमानीधन्यकाजाज्यो वातश्लेष्मनुदः परम् । चक्षुष्यं सैन्धवं वृष्यं त्रिदोषशमनं स्मृतम् ॥३२॥

सौवर्चलं विबन्धघ्नं उष्णं हृच्छूलनाशनम् । उष्णं शूलहरं तीक्ष्णं विडङ्गं वातनाशनम् ॥३३॥
रोमकं वातलं स्वादु रोचनं क्लेदनं गुरु । हृत्पाण्डुगलरोगघ्नं यवक्षारोऽग्निदीपनः ॥३४॥
दहनो दीपनस्तीक्ष्णः सर्जिक्षारो विदारणः । दोषघ्नं नाभसं वारि लघु हृद्यं विषापहम् ॥३५॥
नादेयं वातलं रुक्षं सारसं मधुरं लघु । वातश्लेष्महरं वाप्यं ताड़गं वातलं स्मृतम् ॥३६॥
रौच्यमग्निकरं रूक्षं कफघ्नं लघु नैर्झरम् । दीपनं पित्तलं कौपमौद्भिदं पित्तनाशनम् ॥३७॥
दिवार्ककिरणैर्जुष्टं रात्रौ चैवेन्दुरश्मिभिः । सर्वदोषविनिर्मुक्तं तत्तुल्यं गगनाम्बुना ॥३८॥
उष्णं वारि ज्वरश्वासमेदोऽनिलकफापहम् । शृतशीतं त्रिदोषघ्नमुषितं तच्च दोषलम् ॥३९॥
गोक्षीरं वातपित्तघ्नं स्निग्धं गुरु रसायनम् । गव्याद्गुरुतरं स्निग्धं माहिषं वह्निनाशनम् ॥४०॥
छागं रक्तातिसारघ्नं कासश्वासकफापहम् । चक्षुष्यं जीवनं स्त्रीणां रक्तपित्ते च लावणम् ॥४१॥
परं वातहरं वृष्यं पित्तश्लेष्मकरं दधि । दोषघ्नं मन्थजातं तु मस्तु स्रोतोविशोधनम् ॥४२॥
ग्रहण्यर्शोऽर्दितार्तिघ्नं नवनीतं नवोद्धृतम् । विकाराश्च किलाटाद्या गुरवः कुष्ठहेतवः ॥४३॥
परं ग्रहणीशोथार्शःपाण्डवतीसारगुल्मनुत् । त्रिदोषशमनं तक्रं कथितं पूर्वसूरिभिः ॥४४॥
वृष्यञ्च मधुरं सर्पिर्वातपित्तकफापहम् । गव्यं सैध्यञ्च चक्षुष्यं संस्काराच्च त्रिदोषजित् ॥४५॥
अपस्मारगदोन्मादमूर्च्छाघ्नं संस्कृतं घृतम् । अजादीनाञ्च सर्पींषि विद्याद्गोक्षीरवद्गुणैः ॥
कफवातहरं मूत्रं सर्वक्रिमिविषापहम् ॥४६॥

पाण्डुत्वोदरकुष्ठार्शःशोथगुल्मप्रमेहनुत् । वातश्लेष्महरं बल्यं तैलं केश्यं तिलोद्भवम् ॥४७॥
सार्षपं कृमिपाण्डुघ्नं कफमेदोऽनिलापहम् । क्षौमं तैलमचक्षुष्यं पित्तहृद्वातनाशनम् ॥४८॥
अक्षजं कफपित्तघ्नं केश्यं त्वक्स्रोततर्पणम् । त्रिदोषघ्नं मधु प्रोक्तं वातलञ्च प्रकीर्त्तितम् ॥४९॥
हिक्काश्वासकृमिच्छर्दिमेहतृष्णाविषापहम् । इक्षवो रक्तपित्तघ्ना बल्या वृष्याः कफप्रदाः ॥५०॥
फाणितं पित्तलं तीव्रं सुरामत्स्यण्डिका लघुः । खण्डं वृष्यं तथा स्निग्धं स्वाद्वसृक्पित्तवातजित् ॥
वातपित्तहरो रुक्षो वातघ्नः कफकृद् गुड़ः । स पित्तघ्नः परः पथ्यः पुराणोऽसृक्प्रसादनः ॥५२॥
रक्तपित्तहरा वृष्या सस्नेहा गुड़शर्करा । सर्वपित्तकरं मद्यमम्लत्वात्कफवातजित् ॥५३॥
रक्तपित्तकरास्तीक्ष्णास्तथा सौवीरजातयः । पाचनो दीपनः पथ्यो मण्डः स्याद्भृष्टतण्डुलः ॥
वातानुलोमनी लघ्वी पेया बस्तिविशोधनी । सतक्रदाड़िमव्योषा सगुड़ा मधुपिप्पली ॥५५॥
हन्तीयं सुकृता पेया कासश्वासप्रवाहिकाः । पायसः कफहृद्बल्यः कृशरा वातनाशिनी ॥५६॥
सुधौतः प्रस्रुतः स्निग्धः सुखोष्णो लघुरोचनः । कन्दमूलफलस्नेहैः साधितो बृंहणो गुरुः ॥५७॥
ईषदुष्णसेवनाच्च लघुः सूपः सुसाधितः । स्विन्नं निष्पीड़ितं शाकं हितं स्नेहादिसंस्कृतम् ५८॥

दाड़िमामलकैर्यूषो वह्निकृद्वातपित्तहः । श्वासकासप्रतिश्यायकफघ्नो मूलकैः कृतः ॥५९॥
यवकोलकुलत्थानां यूषः कण्ठ्योऽनिलापहः । मुद्गामलकजो ग्राही श्लेष्मपित्तविनाशनः ॥६०॥
सगुड़ं दधि वातघ्नं सक्तवो रुक्षवातलाः । घृतपूर्णोऽग्निकारी स्याद्वृष्या गुर्वी च शष्कुली ६१॥
बृंहणाः सामिषा भक्ष्याः पिष्टका गुरवः स्मृताः । तैले कृताश्च दृष्टिघ्नास्तोयस्विन्नाश्च दुर्जराः ॥
अत्युष्णा मण्डकाः पथ्याः शीतला गुरवो मताः । अनुपानञ्च पानीयं श्रमतृणादिनाशनम् ६३॥
अनुपानादिरक्षाकृत्स्याद्विषाद्रोगवर्जितः । अनुष्णः शिखिकण्ठाभो विषश्चैव विवर्णकृत् ६४॥
गन्धस्पर्शरसास्तीव्रा भोक्तुश्च स्यान्मनोव्यथा । आघ्राणे चाक्षिरोगः स्यादसाध्यश्च भिषग्वरैः ॥
वेपथु जृम्भणाद्यं स्याद्विषस्येतत्तु लक्षणम् ॥६५॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे अनुपानादिविधिकथनं
नाम ऊनसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१६९॥

सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ।

धन्वन्तरिरुवाच

ज्वरोऽष्टधा पृथग्द्वन्द्वसङ्घातागन्तुजः स्मृतः । मुस्तपर्पटकोशीरचन्दनोदीच्यनागरैः ॥
शृतशीतं जलं दद्यात्पिपासाज्वरशान्तये ॥ १ ॥
नागरं देवकाष्ठञ्च धन्याकं बृहतीद्वयम् । दद्यात्पाचनकं पूर्वं ज्वरिताय ज्वरापहम् ॥ २ ॥
आरग्वधाभयामुस्तारिक्ताग्रन्थिकनिर्मितः । कषायः पाचनो सामे सशूले च ज्वरे हितः ॥३॥
मधूकसारसिन्धूत्थवचोषणकणाः समाः । श्लक्ष्णं पिष्टाम्भसा नस्यं कुर्य्यात्संज्ञाप्रबोधनम् ॥४॥
त्रिवृद्विशालात्रिफलाकटुकारग्वधैः कृतः । सक्षारो भेदनः क्वाथः पेयः सर्वज्वरापहः ॥५॥
महौषधामृतामुस्तचन्दनोशीरधन्यकैः । क्वाथस्तृतीयकं हन्ति शर्करामधुयोजितः ॥६॥
अपामार्गजटा कट्यां लोहितैः सप्ततन्तुभिः । बद्ध्वा वारे रवेर्नूनं ज्वरं हन्ति तृतीयकम् ॥७॥
गङ्गाया उत्तरे कूले अपुत्रस्तापसो मृतः । तस्मै तिलोदकं दद्यान्मुञ्चत्यैकाहिको ज्वरः ॥८॥
गुडूच्याः क्वाथकल्काभ्यां त्रिफलावासकस्य च ।
मृद्वीकाया बलायाश्च सिद्धाः स्नेहा ज्वरच्छिदः ॥९॥
धात्रीशिवाकणावह्निकाथः सर्वज्वरान्तकः । ज्वरातिसारहरणमौषधं प्रवदाम्यथ ॥१०॥

पृश्निपर्णीबलाबिल्वनागरोत्पलधन्यकैः । पाठेन्द्रयवभूनिम्बमुस्तपर्पटकैः शृताः ॥
जयन्त्याममतीसारं सज्वरं समहौषधाः ॥११॥
नागरातिविषामुस्तभूनिम्बामृतवत्सकैः । सर्वज्वरहरः क्वाथः सर्वातीसारनाशनः ॥१२॥
मुस्तपर्पटकैर्दिव्यशृङ्गवेरशृतं पयः । शालपर्णी पृश्निपर्णी बृहती कण्टकारिका ॥१३॥
बलाश्वदंष्ट्राविश्वादिपाठानागरधन्यकम् । एतदाहारसंयोगे हितं सर्वातिसारिणाम् ॥१४॥
विश्वचूतास्थिक्वाथश्च खण्डं मध्वतिसारनुत् । अतिसारे हिता तद्वत्कुटजत्वक्कणायुता ॥१५॥
वत्सकातिविषाविश्वकणाकन्दकषायकः । प्रयुक्तश्चामशूलाढ्ये ह्यतीसारे सशोणिते ॥१६॥
चिकित्साथ ग्रहण्यास्तु ग्रहणी चाग्निनाशिनी । चित्रकक्वाथकल्काभ्यां ग्रहणीघ्नं शृतं हविः ॥
गुल्मशोथोदरप्लीहशूलाशोघ्नं प्रदीपनम् ॥१७॥
सौवर्चलं सैन्धवञ्च त्रिड़ङ्गौद्भिदमेव च । सामुद्रेण समं पञ्च लवणान्यत्र योजयेत् ॥१८॥
भेषजं शस्त्रक्षाराग्न्यस्त्रिधा वै चार्शसां हरम् । विद्धि तच्चार्शसो घ्नन्तु तक्रं नवोद्धृतञ्च यत् १९॥
गुडूचीं पिप्पलीयुक्तामभयां घृतभर्जिताम् । त्रिवृदर्शोविनाशार्थं भक्षयेदम्ललोणिकाम् ॥२०॥
तिलेक्षुरससंयोगश्चार्शःकुष्ठविनाशनः । पञ्चकोलं समरिचं सत्र्यूषणमथाग्निकृत् ॥२१॥
हरीतकी भक्ष्यमाणा नागरेण गुड़ेन वा । सैन्धवोपहिता वापि सातत्येनाग्निदीपनी ॥२२॥
फलत्रिकामृतावासातिक्ताभूनिम्बनिम्बजः । क्वाथः क्षौद्रयुतो हन्यात्पाण्डुरोगं सकामलम् २३॥
त्रिवृच्च त्रिफला श्यामा पिप्पली शर्करा मधु । मोदकः सन्निपातान्तो रक्तपित्तज्वरापहः ॥२४॥
वासायां विद्यमानायामाशायां जीवितस्य च । रक्तपित्ती क्षयी कासी किमर्थमवसीदति ॥२५॥
अटरुषकमृद्वीकापथ्याक्वाथः सशर्करः । क्षौद्राढ्यः कासनश्वासरक्तपित्तनिबर्हणः ॥२६॥
वासारसः खण्डमधुयुतः पीतोऽथ रक्तजित् । सल्लकीबदरीजम्बुप्रियालाम्रार्जुनं धवः ॥
पीतक्षीरञ्च मध्वाढ्य पृथक्शोणितवारणम् ॥२७॥
समूलफलपत्राया निर्गुण्ड्याः स्वरसैर्घृतम् । सिद्धं पीत्वा क्षयक्षीणो निर्व्याधिर्भाति देववत् २८॥
हरीतकीकणाशुण्ठीमरिचं गुड़संयुतम् । कासघ्नो मोदकः प्रोक्तस्तृष्णारोचकनाशनः ॥२९॥
कण्टकारिगुडूचीभ्यां पृथक्त्रिंशत्पले रसे । प्रस्थं सिद्धं घृतं स्याच्च कासनुद्वह्निदीपनम् ॥३०॥
कृष्णा धात्री शिता शुण्ठी हिक्काघ्नी मधुसंयुता । हिक्काश्वासी पिबेद्भार्गीं सविश्वामुष्णवारिणा ॥
तैलाक्तं स्वरभेदी वा खादिरं धारयेन्मुखे । पथ्यां पिप्पलीसंयुक्तां संयुक्तां नागरेण वा ॥३२॥
विड़ङ्गत्रिफलाचूर्णं छर्दिहृन्मधुना सह । आम्रजम्बुकषायं वा पिबेन्माक्षिकसंयुतम् ॥३३॥
छर्दिं सर्वां प्रणुदति तृष्णाञ्चैवापकर्षति । त्रिफला भ्रममूर्च्छाहृत्पीता सा मधुनापि वा ॥३४॥

पञ्चगव्यं हितं पानादपस्मारग्रहादिनुत् । कुष्माण्डकरसो वाच्यं सयष्टिकं तदर्थकृत् ॥३५॥
ब्राह्मीरसवचाकुष्ठशङ्खपुष्पीभिरेव च । पुराणं सेव्यमुन्मादग्रहापस्मारनुद्घृतम् ॥३६॥
अश्वगन्धाकषाये च कल्के क्षीरे चतुर्गुणे । घृतपक्कं तु वातघ्नं वृष्यं मांसाय पुत्रकृत् ॥३७॥
नीलीमुण्डीरिकाचूर्णं मधुसर्पिःसमन्वितम् । छिन्नाक्काथं पिबन्हन्ति वातरक्तं सुदुस्तरम् ॥३८॥
सगुड़ाः पञ्च पथ्याश्च कुष्ठवातार्शसादनाः । गुडूचीस्वरसं कल्कं चूर्णं वा क्काथमेव वा ॥३९॥
वातरक्तान्तकं कालागुडूच्चीक्काथकल्कतः । घृतं शृतं सदुग्धं स्यात्कुष्ठव्रणादिनाशनम् ॥४०॥
त्रिफलागुग्गुलुर्वातरक्तमूर्च्छापहारकः । ऊरुस्तम्भविनाशाय गोमूत्रेण च गुग्गुलुः ॥४१॥
शुण्ठीगोक्षुरकक्काथः सामवातार्त्तिशूलनुत् । दशमूलामृतैरण्डरास्नानागरदारुभिः ॥४२॥
क्काथो हन्ति महाशोथं मरीचगुड़संयुतः । कासघ्नो मोदकः प्रोक्तस्तृष्णारोचकनाशनः ॥४३॥
कण्टकारिगुडूचीभ्यां पृथक्त्रिशत्पले रसे । प्रस्थसिद्धं घृतञ्चैव कासनुद्धृदि दीपनः ॥४४॥
कृष्णाधात्रीसिताशुण्ठीमरिचैः सैन्धवान्वितः । क्काथ एरण्डतैलेन सामं हन्त्यनिलं गुरुम् ॥४५॥
बला पुनर्नवैरण्डबृहतीद्वयगोक्षुरैः । सहिङ्गु लवणं पीतं वातशूलविमर्दनम् ॥४६॥
त्रिफलानिम्बयष्टीककटुकारग्वधैः शृतम् । पाययेन्मधुना मिश्रं दाहशूलोपशान्तये ॥४७॥
त्रिफलापः सयष्टीकं परिणामार्त्तिनाशनम् । गोमूत्रशुद्धमण्डूरं त्रिफलाचूर्णसंयुतम् ॥
विलिहन्मधुसर्पिर्भ्यां शूलं हन्ति त्रिदोषजम् ॥४८॥

त्रिवृत्कृष्णाहरीतक्यो द्विचतुःपञ्चभागिकाः । गुटिका गुड़तुल्यास्ता विड्विबन्धगदापहाः ४९॥
हरीतकीयवक्षारपिप्पलीत्रिवृतस्तथा । घृतैश्चूर्णमिदं पेयमुदावर्त्तविनाशनम् ॥५०॥
त्रिवृद्धरीतकीश्यामाः स्नुहीक्षीरेण भाविताः । वटिका मूत्रपातास्ताः श्रेष्ठाश्चानाहभेदिकाः ५१॥
त्र्यूषणत्रिफलाधन्यविडङ्गचव्यचित्रकैः । कल्कीकृतैर्घृतं सिद्धं संस्कारं वातगुल्मनुत् ५२॥
मूलं नागरगान्धीतं सक्षीरं हृदयार्त्तिनुत् । सौवर्चलं तदर्द्धं तु शिवानाञ्च घृतं पिबेत् ॥५३॥
कणापाषाणभेदर्वा शिलाजतुकचूर्णकम् । तण्डुलाद्भिर्गुडेनापि मूत्रकृच्छ्रीति जीवति ॥५४॥
अमृतानागरीधात्रीवाजिगन्धात्रिकण्टकान् । प्रपिबेद्वातरोगार्त्तः सशूली मूत्रकृच्छ्रवान् ॥५५॥
सितातुल्यो यवक्षारः सर्वकृच्छ्रनिवारणः । निदिग्धिकारसो वापि सक्षौद्रः कृच्छ्रनाशनः ॥
लवणं त्रिफलाकल्कैर्मूत्राघातहरं स्मृतम् । मूत्रे विरुद्धे कर्चूरचूर्णं लिङ्गे प्रवेशयेत् ॥५७॥
क्काथश्च शिग्रुमूलोत्थः कवोष्ण उष्मपातनः । सर्वमेहहरो धात्र्या रसः क्षौद्रनिशायुतः ॥
त्रिफलादारुदार्व्यब्जक्काथः क्षौद्रेण मेहहा ॥५८॥
अस्वप्नञ्च व्यवायञ्च व्यायामं चिन्तनानि च । स्थौल्यमिच्छन्परित्यक्तुं क्रमेणातिप्रवर्द्धयेत् ॥५९॥

यवश्यामाकभोजी स्यात्स्थूलो मधुरवारिपः। उष्णमन्नं समण्डं वा पिबन्कृशतनुर्भवेत् ॥६०॥
सचव्यजीरकं व्योषा हिङ्गुसौवर्चलामलाः । मधुना शक्तवः पीता मेदोघ्नाः सर्वदीपनाः ॥६१॥
चतुर्गुणे जले मूत्रे द्विगुणे चित्रकोत्पले । कल्कैः सिद्धं घृतप्रस्थं सक्षीरं जठरी पिबेत् ॥६२॥
क्रमवृद्धया दशाहानि दश पैप्पलिकं दिनम् । वर्द्धयेत्पयसा सार्द्धं तथैवापानयेत्पुनः ॥६३॥
क्षीरयष्टिकभोजी स्यादेवं कृष्णासहस्रकम् । बृंहणं मुद्गमायुष्यं प्लीहोदरविनाशनम् ॥६४॥
पुनर्नवाक्काथकल्कैः सिद्धं शोथहरं घृतम् । गवां मूत्रेण संसेव्यं पिप्पलीं वा पयोऽन्विताम् ॥
गुडेन वाभयां तुल्यां विश्वं वा शोथरोगिणा ॥६५॥
तैलमेरण्डजं पीत्वा वलासिद्धं पयोऽन्वितम् । आध्मानशूलापचितामन्त्रवृद्धिं जयेन्नरः ॥६६॥
भ्रष्टैरण्डकतैलेन कल्कः पथ्यासमुद्भवः । कृष्णासैन्धवसंयुक्तो वृद्धिरोगहरः परः ॥६७॥
निर्गुण्डीमूलनस्येन गण्डमाला विनश्यति । स्नुहीगण्डीरिकास्वेदो नाशयेदर्बुदानि ॥६८॥
हस्तिकर्णपलाशस्य गलगण्डं तु लेपतः । धुस्तूरैरण्डनिर्गुण्डीवर्षाभूशिग्रुसर्षपैः च ॥६९॥
प्रलेपः श्लीपदं हन्ति चिरोत्थमतिदारुणम् । शोभाञ्जनकसन्धिूत्थहिङ्गु विद्रधिनाशनम् ॥७०॥
शरपुङ्खा मधुयुता स्यात्सर्वव्रणरोपणी । निम्बपत्रस्य वा लेपः स भवेत्व्रणशोषणः ॥७१॥
त्रिफला खदिरो दार्वी न्यग्रोधो व्रणशोधनः । सद्यःक्षतं व्रणं वैद्यः सशूलं परिषेचयेत् ॥७२॥
यष्टिमधुकयुक्तेन किञ्चिदुष्णेन सर्पिषा । बुद्धयागन्तुव्रणान्वैद्यो नाशयेत्संप्रलेपनात् ॥७३॥
शीतां क्रियां प्रयुञ्जीत पित्तरक्तोष्मनाशिनीम् । क्काथो वंशत्वगेरण्डश्वदंष्ट्राणाञ्च समधुः ॥७४॥
सहिङ्गुसैन्धवः पीतः कोष्ठस्थं स्रावयेदसृक् । यवकोलकुलत्थानामारोग्यार्थं रसेन वा ॥७५॥
भुञ्जीतान्नं यवागुं वा पिबेत्सैन्धवसंयुतम् । करञ्जारिष्टनिर्गुण्डीरसो हन्याद्व्रणक्रिमीन् ॥७६॥
त्रिफलाचूर्णसंयुक्तो गुग्गुलुर्वटकीकृतः । निर्यन्त्रणो विबन्धघ्नो व्रणशोव्रणशोधनः ॥७७॥
दूर्वास्वरससिद्धत्वात्तैलं कम्पिल्लकेन वा । दार्वीत्वचश्च कल्केन प्रधानं व्रणरोपणम् ॥७८॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे ज्वरादिचिकित्साकथनं
नाम सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७०॥

एकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

धन्वन्तरिरुवाच

नाडीव्रणादिरोगाणां चिकित्सां शृणु सुश्रुत । नाडीं शस्त्रेण संगाह्य नाडीनां व्रणवत्क्रिया ॥
गुग्गुलुत्रिफलाव्योषैः समांशैराज्ययोजितैः । नाडीदुष्टव्रणं शूलं भगन्दरमथो जयेत् ॥ २ ॥

निर्गुण्डीरसतस्तैलं नाड़ीदुष्टव्रणापहम् । हितं पामामयानां तु पानाभ्यञ्जननस्यकैः ॥ ३ ॥
गुग्गुलुत्रिफलाकृष्णा त्रिपञ्चैकांशयोजिता । गुटिका शोथगुल्मार्शोभगन्दरवतां हिता ॥ ४ ॥
शिरावेधे ध्वजमध्ये विशुद्धिरुपदंशके । पाको रक्ष्यः प्रयत्नेन शिश्नक्षयकरो हि सः ॥ ५ ॥
पटोलनिम्बभूनिम्बगुडुचीक्वथमापिबेत् । सगुग्गुलुं सखदिरमुपदंशो विनश्यति ॥ ६ ॥
दहेत्कटाहे त्रिफलां सा मसी मधुसंयुता । उपदंशे प्रलेपोऽयं सद्यो रोपयते व्रणम् ॥ ७ ॥
त्रिफलानिम्बभूनिम्बकरञ्जखदिरादिभिः । कल्कैः क्वाथैर्घृतं पक्वमुपदंशहरं परम् ॥ ८ ॥
आदौ भग्नं विदित्वा तु सेचयेच्छीतलाम्बुना । पक्वेन लेपनं कार्य्यं बन्धनञ्च कुशान्वितम् ॥ ९ ॥
माषं मांसं तथा सर्पिः क्षीरं यूषः सतीलजः । बृंहणं चान्नपानं स्याद्देयं तु भग्नरोगिणे ॥१०॥
रसोनमधुलाजाम्बुसिताकल्कसमश्नुताम् । छिन्नभिन्नच्युतास्थीनां सन्धानमचिराद्भवेत् ॥११॥
अश्वत्थत्रिफलाव्योषाः सर्वैरेभिः समीकृतैः । तुल्यो गुग्गुलुर्योज्यश्च भग्नसन्धिप्रसाधकः ॥१२॥
सर्वकुष्ठेषु वमनं रेचनं रक्तमोक्षणम् । वचावासापटोलानां निम्बस्य च कलित्वचः ॥१३॥
कषायो मधुना पीतो वातहृद्बृंहणः परः । विरेचनं प्रयोक्तव्यं त्रिवृद्दन्तीफलत्रिकैः ॥१४॥
मनःशिलामरीचैस्तु तैलं कुष्ठविनाशनम् । सर्वकुष्ठे विलेपोऽयं शिवापञ्चगुडौदनम् ॥१५॥
करञ्जतगरौ कुष्ठं गोमूत्रेण प्रलेपतः । करवीरोद्वर्त्तनञ्च तैलाक्तस्य च कुष्ठहृत् ॥१६॥
हरिद्रा मलयं रास्ना गुडूची तगरस्तथा । आरग्वधः करञ्जा च लेपः कुष्ठहरः परः ॥१७॥
मनःशिलाविड़ङ्गानि वागुजी सर्षपस्तथा । करञ्जी मूत्रपिष्टोऽयं लेपः कुष्ठहरोऽर्कवत् ॥१८॥
विड़ङ्गैरगजाकुष्ठनिशासिन्धूत्थसर्षपैः । मूत्राम्बुपिष्टो लेपोऽयं दद्रुकुष्ठविनाशनः ॥१९॥
प्रपुन्नाड़कबीजानि धात्रीसर्जरसस्नुही । सौवीरपिष्टं दद्रूणामेतदुद्वर्त्तनं परम् ॥२०॥
आरग्वधस्य पत्राणि आरनालेन पेषयेत् । दद्रुकिट्टिमकुष्ठानि हन्ति सिध्मानमेव च ॥२१॥
उष्णा पीता वागुजी च कुष्ठजित्क्षीरभोजिनः । तिलाज्यत्रिफलाक्षौद्रव्योषभल्लातशर्कराः ॥
वृष्याः सप्त समा मेध्याः कुष्ठहाः कामचारिणः ॥२२॥
विड़ङ्गत्रिफलाकृष्णाचूर्णं लीढ़ं समाक्षिकम् । हन्ति कुष्ठकृमीमेहनाड़ीव्रणभगन्दरान् ॥२३॥
यः खादेदभयारिष्टं तथा त्वामलकानिशाः । स जयेत्सर्वकुष्ठानि मासादूर्ध्वं न संशयः ॥२४॥
दह्यमानः च्युतः कुम्भे तत्सह खदिराङ्कुरः । साक्षधात्रीरसक्षौद्रो हन्यात्कुष्ठं रसायनम् ॥२५॥
धात्रीखदिरयोः क्वाथं पीत्वा वागुजिसंयुतम् । शङ्खेन्दुधवलं श्वित्रं हन्ति तूर्णं न संशयः ॥२६॥
पीत्वा भल्लातकं तैलं मासाद्व्याधिं जयेन्नरः । सेवितं खादिरं वारि पानाद्यैः कुष्ठजिद्भवेत् ॥२७॥
वासा गुड़ूची त्रिफला पटोलञ्च करञ्जकम् । निम्बाशनं कृष्णवेत्रं क्वाथकल्केन यद्घृतम् ॥

वज्रकं तद्भवेत्कुष्ठं शतवर्षाणि जीवति ॥२८॥
स्वरसेन च दूर्वायाः पचेत्तैलं चतुर्गुणम् । कच्छुर्विचर्चिका पामा अभ्यङ्गादेव नश्यति ॥२९॥
द्रुमत्वगर्ककुष्ठानि लवणानि च मूत्रकम् । गण्डीरिकां चित्रकैस्तैस्तैलं कुष्ठव्रणादिनुत् ॥३०॥
धात्रीनिम्बफलं तद्वद्गोमूत्रेण च चित्रकम् । वासामृतापर्पटिकानिम्बभूनिम्बमार्कवैः ॥
त्रिफलाकुलत्थैः क्वाथः सक्षौद्रश्चाम्लपित्तहा ॥३१॥
फलत्रिकं पटोलञ्च तिक्ताक्वाथः सितायुतः । पीतो यष्टिमधुयुतो ज्वरच्छर्द्यम्लपित्तजित् ॥३२॥
वासाघृतं तिक्तघृतं पिप्पलीघृतमेव च । अम्लपित्ते प्रयोक्तव्यं गुड़कूष्माण्डकं तथा ॥३३॥
पिप्पली मधुसंयुक्ता अम्लपित्तविनाशिनी । श्लेष्माग्निमान्द्यनुत्पथ्यापिप्पलीगुड़मोदकः ॥३४॥
पिष्ट्वाजाजीं सधन्याकां घृतप्रस्थं विपाचयेत् । कफपित्तारुचिहरं मन्दानलवमिं हरेत् ॥३५॥
पिप्पल्यामृतभूनिम्बवासकारिष्टपर्पटैः । खदिरारिष्टकैः क्वाथो विस्फोटार्त्तिज्वरापहः ॥३६॥
त्रिफलारससंयुक्तं सर्पिस्त्रिवृतया सह । प्रयोक्तव्यं विरेकार्थं विसर्पज्वरशान्तये ॥३७॥
खदिरत्रिफलारिष्टपटोलामृतवासकैः । क्वाथोऽष्टकाख्यो जयति रोमान्तिकमसूरिकाः ॥३८॥
कुष्ठवीसर्पविस्फोटकण्ड्वादीनां विघातकः । लसूनानान्तु चूर्णस्य घर्षो मशकनाशनः ॥३९॥
चर्मकीलं जीर्यमाणं मशकांस्तिलकालकान् । उत्कृत्य शस्त्रेण दहेत्क्षाराग्निभ्यामशेषतः ॥४०॥
पटोलनीलीलेपः स्याज्जालगर्दभरोगनुत् । गुञ्जाफलैः शृतं तैलं भृङ्गराजरसेन तु ॥
कण्डुदारणकृत्कुष्ठकापालकुष्ठनाशनम् ॥४१॥
आम्रास्थिमज्जात्रिफलानीलैश्च भृङ्गराजकैः । सुपक्वं लौहचूर्णं सकाञ्जिकं कृष्णकेशकृत् ॥४२॥
दार्वीशार्कपर्णरसद्विप्रस्थे मधुकापले । तैलस्य कुड़वं पक्वं वार्द्धक्यपलितापहम् ॥४३॥
मुखरोगे तु त्रिफलागण्डूषपरिधारणम् । गृहधूमयवक्षारपाठाव्योषरसाञ्जनम् ॥४४॥
सलोध्रं त्रिफलाचूर्णं तथा चित्रकचूर्णितम् । सक्षौद्रं धारयेद्वक्त्रे ग्रीवादन्तस्य रोगनुत् ॥४५॥
पटोलनिम्बजम्बीरआम्रमालतिपल्लवाः । पञ्चपल्लवकः श्रेष्ठः कषायो मुखधारणे ॥४६॥
लशुनार्द्रकशिग्रूणां पारुल्या मूलकस्य च । कदल्याश्च रसः श्रेष्ठः कदुष्णः कर्णपूरणे ॥४७॥
तीव्रशूलोत्तरे कर्णे सशब्दे क्लेदवाहिनि । स्नुहीपत्ररसं कोष्णं सैन्धवेनावचूर्णितम् ॥४८॥
जातीपत्ररसे तैलं विपक्वं पूतिकर्णजित् । शुण्ठीतैलं सार्षपञ्च कोष्णं स्यात्कर्णशूलनुत् ॥४९॥
पञ्चमूलीशृतं क्षीरं स्याच्चित्रकहरीतकी । ससर्पिर्गुड़ः षड़ङ्गो यूषः पीनसशान्तये ॥५०॥
अक्षिकुक्षिभवा रोगाः प्रतिश्यायव्रणज्वराः । पञ्चैते पञ्चरात्रेण प्रथमं यान्ति लङ्घनात् ॥५१॥
धात्रीरसाञ्जनाञ्च दृशः कोपं हरति पूरणात् । सक्षौद्रसैन्धवं वापि शिग्रुदार्वीरसाञ्जनम् ॥५२॥

हरिद्रादारुसिन्धूत्थरसाञ्जनैः सगैरिकैः । पिष्टैर्दत्तो बहिर्लेपो नेत्रव्याधिनिवारकः ॥५३॥
घृतभ्रष्टाभयालेपात्त्रिफला क्षीरसंयुता । शुण्ठीनिम्बदलैः पिष्टैः सुखोष्णैः स्वल्पसैन्धवैः ॥
धार्य्यश्चक्षुषि विक्षेपाच्छोथकण्डुरुजापहः ॥५४॥

अभयाख्यामृतञ्चैकद्विचतुर्भागिकं युतम् । मध्वाज्यलीढं क्वाथो वा सर्वनेत्ररुगर्दनः ॥५५॥
चन्दनत्रिफलापूगपलाशतरुमूलकैः । जलपिष्टैरियं वर्त्तिरशेषतिमिरापहा ॥५६॥
दध्ना निर्घृष्टमरिचं रात्र्यन्धापहमञ्जनम् । त्रिफलाक्वाथकल्काभ्यां सपयस्कं शृतं घृतम् ।
तिमिराण्यचिराद्धन्यात्पीतमेतन्निशामुखे ॥५७॥

पिप्पलीत्रिफलाक्षारलोहचूर्णं ससैन्धवम् । भृङ्गराजरसैर्घृष्टं गुडिकाञ्जनमिष्यते ॥
अर्शः सतिमिरं कोठं हन्त्यन्यान्नेत्ररोगकान् ॥५८॥

त्रिकटु त्रिफला चैव सैन्धवञ्च मनःशिलाः । केतकं शङ्खनाभिश्च जातीपुष्पाणि निम्बकम् ॥
रसाञ्जनं भृङ्गराजं घृतं मधु पयस्तथा । एतत्पिष्ट्वा च वटिका सर्वनेत्ररुगर्दिनी ॥६०॥
दग्धमेरण्डकं मूलं लेपात्काञ्जिकपेषितम् । शिरोऽर्त्तिं नाशयत्याशु पुष्पं वा मुचुकुन्दकम् ॥
शतमूल्येरण्डमूलचक्राव्याघ्रीपलैः शृतम् । तैलं नस्यं मरुच्छ्लेष्मतिमिरोर्ध्वगदापहम् ॥६२॥
लवणं सगुडं विश्वं पिप्पली वा ससैन्धवा । भुजस्तम्भादिरोगेषु सर्वेषूर्ध्वगदेषु च ॥६३॥
सूर्य्यावर्त्ते विधातव्यं नस्यकर्मादिभेषजम् । दशमूलीकषायं तु सर्पिः सैन्धवसंयुतम् ॥
नस्यमङ्गविभेदघ्नं सूर्य्यावर्त्तशिरोऽर्त्तिनुत् ॥६४॥

दध्ना सौवर्चलाजाजीमधूकं नीलमुत्पलम् । पिबेत्क्षौद्रयुतं नारी वातासृग्दरपीडिता ॥६५॥
वासकस्वरसं पित्ते गुडूच्या रसमेव वा । जलेनामलकीबीजं शर्करामधुसंयुतम् ॥६६॥
आमलक्या रसं मधु मूलं कार्पासमेव वा । पाण्डुप्रदरशान्त्यर्थं पिबेत्तण्डुलवारिणा ॥६७॥
तण्डुलीयकमूलं तु सक्षौद्रं सरसाञ्जनम् । तण्डुलोदकसंपीतं सर्वांश्चासृग्दरान् जयेत् ॥
कुशमूलं तण्डुलाद्भिः पीतञ्चासृग्दरं जयेत् ॥६८॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे कुष्ठादिचिकित्साकथनं नाम
एकसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७१॥

———

द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

धन्वन्तरिरुवाच

स्त्रीरोगादिचिकित्साञ्च वक्ष्ये सुश्रुत तच्छृणु । योनिव्यापत्सु भूयिष्ठं शस्यते कर्म वातजित् ॥ १ ॥
वचोपकुञ्चिकाजातीकृष्णावासकसैन्धवम् । अजाजी च यवक्षारं चित्रकं शर्करान्वितम् ॥ २ ॥
पिष्टालोड्य जलाद्यैश्च खादयेद्घृतभर्जितम् । योनिपार्श्वार्त्तिहृद्रोगगुल्मार्शो विनिवर्त्तयेत् ॥ ३ ॥
बदरीपत्रसंलेपाद्योनिर्भिन्ना प्रशाम्यति । लोध्रतुम्बीफलालेपाद्योनेर्दार्ढ्यं करोति च ॥ ४ ॥
पञ्चपल्लवयष्ट्यर्कमालतीकुसुमैर्घृतम् । रविपक्वमसृग्दरयोनिगन्धविनाशनम् ॥ ५ ॥
सकाञ्जिकं जवापुष्पं प्रस्थं ज्योतिष्मतीदलम् । दूर्वापिष्टञ्च संप्राश्य चित्रकं शर्करान्वितम् ॥ ६ ॥
धात्र्यञ्जनाभयाचूर्णं तोयपीतं रजो हरेत् । सदुग्धा लक्ष्मणा पीता नस्याद्वा पुत्रदेत्युभौ ॥७॥
दुग्धस्यार्द्धाढकं चाज्यमश्वगन्धा च पुत्रदा । बन्ध्या पुत्रं लभेत् पीत्वा घृतेन व्योषकेशरम् ८॥
कुशकाशोरुबुकानां मूलैर्गोक्षुरकस्य च । श्रृतं दुग्धं सितायुक्तं गर्भिण्याः शूलनुत् परम् ॥९॥
पाठालाङ्गल्यपामार्गैस्तथा च कुटजैः पृथक् । नाभिबस्तिभगालेपात् सुखं नारी प्रसूयते ॥१०॥
सूताया हृच्छिरोबस्तिशूलमर्कन्दसंज्ञितम् । यवक्षारं पिबेत्तत्र मस्तु कोष्णोदकेन वा ॥११॥
दशमूलीकृतः क्वाथः साज्यः सूतिरुजापहः । शालितण्डुलचूर्णन्तु सदुग्धं दुग्धकृद्भवेत् ॥१२॥
विदारीकुसुमरसं मूलं कार्पासजं तथा । धात्रीस्तन्यविशुद्ध्यर्थं मुद्गयूषो रसायनः ॥१३॥
कुष्ठा वचाभया ब्राह्मी मधूका क्षौद्रसर्पिषी । वर्णायुःकान्तिजननं लेह्यं बालस्य दापयेत् ॥१४॥
स्तन्याभावे पयः छागं गव्यं वा तद्गुणं पिबेत् । स्वेदेन नाभिशोथान्तो मृदा स्यादग्नितप्तया ॥
लौहो मुस्तकातिविषा वमिकासज्वरे पिबेत् । मुस्तशुण्ठीविषारुणकूटजश्चातिसारनुत् ॥१६॥
व्योषं मधु मातुलुङ्गं हिक्काच्छर्दिनिवारणम् । कुष्ठेन्द्रयवसिद्धार्थो निशा दूर्वा च कुष्ठजित् ॥१७॥
महामुण्डितिकोदीच्यक्वाथैः स्नानं ग्रहापहम् । सप्तच्छदाभयनिशा—दैर्ध्यानलेपनम् ॥१८॥

शङ्खाब्जबीजरुद्राक्षवचालौहादिधारणम् ।
ॐ कं टं गं गं वैनतेयाय नमः ॥
ॐ ह्रीं ह्रां ह्रः मन्त्रेण शान्तिर्बालानां मार्जनाद्बलिदानतः ।
ॐ ह्रीं बालग्रहाद्बलिं गृह्णीत बालं मुञ्चत स्वाहा ॥१९॥

तण्डुलाद्भिः शिरीषस्य मूलं पीतं विषापहम् । तन्दुलाद्भिश्च वर्षाभोः शुक्लायाः सर्पदंशनुत् ॥२०॥
दध्याज्यं तण्डुलीयञ्च गृहधूमो निशा तथा । पिष्टं पानं तथा क्षौद्रं सिन्धूत्थस्य विषान्तकम् ॥२१
अङ्कोटमूलनिष्क्वाथः साज्यः पीतो विषान्तकः । यज्जराव्याधिविध्वंसि भेषजं तद्रसायनम् ॥२२

सिन्धूत्थशर्कराशुण्ठीकणामधुगुडैः क्रमात् । वर्षादिष्वभया सेव्या रसायनगुणैषिणा ॥२३॥
ज्वरस्यान्तेऽभया चैका प्रभुङ्क्ते द्वे बिभीतके। भुक्त्वा मध्वाज्यधात्रीणां चतुष्कं शतवर्षकृत्॥२४॥
पीताश्वगन्धा पयसा घृतेनाशेषरोगनुत् । मण्डूकपर्ण्याः स्वरसो विदार्य्याश्चामृतोपमः ॥२५॥
तिलधात्रीभृङ्गराजो जग्ध्वा वर्षशती भवेत् । त्रिकटु त्रिफला वह्निर्गुडूची च शतावरी ॥२६॥
विड़ङ्गलोहचूर्णन्तु मधुना सह रोगनुत् । त्रिफला च कणा शुण्ठी गुडूची च शतावरी ॥२७॥
विड़ङ्गभृङ्गराजादि भावितं सर्वरोगनुत् । चूर्णं त्रिदार्य्या मध्वाज्यं लीढ्वा दश स्त्रियो व्रजेत् ॥
घृतं शतावरीकल्कैः क्षीरैर्दशगुणैः पचेत् । शर्करापिप्पलीक्षौद्रयुक्तं वा जारकं विदुः ॥२९॥
प्रतिमर्षोऽवपीड़श्च नस्यं प्रवपनं तथा । शिरोविरेचनञ्चेति पञ्चकर्म च कथ्यते ॥३०॥
मासैर्द्विसंख्यैर्माघाद्यैः क्रमात्षड् ऋतवः स्मृताः । अग्निसेवामधुक्षीरविकृतीः परिषेवयेत् ॥३१॥
स्त्रीयुक्तः शिशिरे तद्वद्वसन्ते न दिवा स्वपेत् । त्यजेद्वर्षासु स्वप्नादीन्शरदीन्दोश्च रश्मयः ॥
पथ्यानि शालयो मुद्गा वर्षाम्भः कथितं पयः । निम्बातसीकुसुम्भानां शिग्रुसर्षपयोस्तथा ॥
ज्योतिष्मतीमूलकानां तैलानि च हरन्ति हि । कृमिकुष्ठप्रमेहांश्च वातश्लेष्मशिरोरुजः ॥३४॥
दाड़िमामलकीकोलकरमर्दप्रियालकम् । जम्बीरं नागरङ्गञ्च आम्रातककपित्थकम् ॥३५॥
पित्तलान्यनिलघ्नानि कफोत्क्लेशकराणि च । जलं जीमूतकेक्ष्वाकुकुटजाकृतबन्धनम् ॥३६॥
धामार्गवश्च संयोज्याः सर्वथा वमनेष्वमीः । पूर्वाह्णे वमनायैते मदनेन्द्रयवौ वचा ॥३७॥
मृदुकोष्ठश्च पित्तेन खरो वातकफाश्रयात् । मध्यमः समदोषे स्यात्त्रिवृत्पित्ते विरेचनम् ॥३८॥
शर्करामधुसंयुक्तं सैन्धवं नागरं त्रिवृत् । हरीतकीविडङ्गानि गोमूत्रेण विरेचनम् ॥३९॥
एरण्डतैलं त्रिफलाक्वाथश्च द्विगुणस्तथा । वातोल्बणेषु दोषेषु भोजयित्वाथ वामयेत् ॥४०॥
वंशादिनेत्रं कुर्वीत षडष्टद्वादशाङ्गुलम् । कर्कन्धूफलवच्छिद्रं वस्तिरुत्तानशायिने ॥४१॥
नेरूहदानेऽपि विधिरयमेवमुदीरितः । अर्द्धत्रिपट्पले मात्रा लघुमध्योत्तमः क्रमात् ॥४२॥
पथ्याक्षधात्र्य एकद्विचतुर्भागा रुगर्दनाः । शतावर्य्यमृताभृङ्गसिन्धुवारादिभाविताः ॥४३॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे स्त्रीरोगचिकित्सादिकथनं नाम
द्विसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७२॥

त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

धन्वन्तरिरुवाच

द्रव्याणि मधुरादीनि वक्ष्ये रोगहराण्यहम् । शालिषष्टिकगोधूममक्षीरं घृतं रसो मधु ॥ १ ॥

मजाशृङ्गाटकयवकशेर्विर्वीरुगोक्षुरम् । गम्भीरी पौष्करं बीजं द्राक्षा खजूरक बला ।। २ ।।
नारिकेलेक्ष्वात्मगुप्ता विदारी च पियालकम् । मधूकं तालकूष्माण्डं मुख्योऽयं मधुरो गणः ।।
मूर्च्छादाहप्रशमनः षड़िन्द्रियप्रसादनः । कृमिकृत्कफकृच्चैव एकोऽत्यर्थं निषेवितः ।। ४ ।।
श्वासकासास्यमाधुर्य्यस्वरघातार्वुदानि च । गलगण्डश्लीपदानि गुड़लेपादि कारयेत् ।। ५ ।।
दाड़िमामलकाम्रञ्च कपित्थकरमर्दकौ । मातुलुङ्गाम्रातकञ्च वदरं तिन्तिड़ीफलम् ।। ६ ।।
दधि तक्रं काञ्जिकञ्च लकुचं चाम्लवेतसम् । अम्लो लोणः शुण्ठीयुक्तो जारणः पाचनो रसः ।।
क्लेदनो वातकृद्रूष्यो विदाही चानुलोमनः । अम्लोऽत्यर्थं सेव्यमानः कुर्य्याद्वै दन्तहर्षकम् ।।
शरीरस्य च शैथिल्यं स्वरकण्ठास्यहृद्दहेत् । छिन्नभिन्नव्रणादीनि पाचयत्यग्निभावितः ।। ९ ।।
लवणानि यवक्षारसर्जिकादिश्च लावणः । शोधनः पाचनः क्लेदी विश्लेषसर्पणादिकृत् ।।१०।।
मार्गरोधी मार्दवकृत्स एकः परिषेवितः । गात्रकण्डूकोठशोथवैवर्ण्यं जनयेद्रसः ।।
रक्तवातं पित्तरक्तं पुंस्त्वेन्द्रियरुजादिकम् ।।११।।
व्योषशिग्रुमूलकञ्च देवदारु च कुष्ठकम् । लशुनं वल्गुजीफलं मुस्तागुग्गुलु लाङ्गली ।।१२।।
कटुको दीपनः शोधी कुष्ठकण्डुकफान्तकृत् । स्थौल्यालस्यकृमिहरः शुक्रमेदोविरोधनः ।।
एकोऽत्यर्थं सेव्यमानः भ्रमदाहादिकृद्भवेत् ।। १३ ।।
कृतमालः करीराणि हरिद्रेन्द्रयवास्तथा । स्वादुकण्टकवेत्राणि बृहतीद्वयशङ्खिनी ।।१४।।
गुडूची च द्रवन्ती च त्रिवृन्मण्डूकपर्ण्यपि । कारवेल्लकवार्त्ताकुकरवीरकवासकाः ।।१५।।
रोहिणी शङ्खपुष्पी च कर्कोटी वै जयन्तिका। जातीवरुणकं निम्बो ज्योतिष्मती पुनर्नवा ।।१६।।
तिक्तो रसश्छेदनः स्याद्रोचनो दीपनस्तथा । शोधनो ज्वरतृष्णाघ्नो मूर्च्छाघ्नः कण्डुकादिजित् ।।
विण्मूत्रक्लेदसंशोषो ह्यत्यर्थं स च सेवितः । हनुस्तम्भाक्षेपकार्त्तिशिरःशूलव्रणादिहृत् ।।१८।।
त्रिफलाशल्लकीजम्बु आम्रातकवटादिकम् । तिन्दुकं वकुलं शालं पालङ्कमुद्गचिल्लकम् ।।१९।।
कषायो ग्राहको रोपी स्तम्भनक्लेदशोषणः । एकोऽत्यर्थं सेव्यमानो हृदये चाथ पीड़कः ।।
मुखशोषज्वराध्मानहनुस्तम्भादिकारकः ।। २० ।।
हरिद्राकुष्ठलवणं मेषशृङ्गिबलाद्वयम् । कच्छुरा शल्लकी चैव पुनर्नवा शतावरी ।।२१।।
अग्निमन्थो ब्रह्मदण्डी श्वदंष्ट्रैरण्डके तथा । यवकोलकुलत्थादिकर्पाशी दशमूलकम् ।।
पृथक्समस्तो वातान्तः कफपित्तहरस्तथा ।। २२ ।।
शतावरी विदारी च बालकोशीरचन्दनम् । दूर्वा वटः पिप्पली च बदरी शल्लकी तथा ।।२३।।
कदली चोत्पलं पद्ममुदुम्बरपटोलकम् । अथ श्लेष्महरो वर्गो हरिद्रागुड़कुष्ठकम् ।।२४।।

शतपुष्पी च जाती च व्योषारग्वधलाङ्गली । सर्पिस्तैलवसामज्जस्नेहेषु प्रवरं स्मृतम् ॥२५॥
तथा धीस्मृतिमेधाग्निकाङ्क्षिणां शस्यते घृतम् । केवलं पैत्तिके सर्पिर्वातिके लवणान्वितम् ।
देयं बहुकफे वापि व्योषक्षारसमायुतम् । ग्रन्थीनाडीकृमिश्लेष्ममेदोमारुतरोगिषु ॥२७॥
तैलं लाघवदार्ढ्याय क्रूरकोष्ठेषु देहिषु । वातातपाम्बुभारस्त्रीव्यायामक्षीणधातुषु ॥२८॥
रौक्षक्लेशक्षयात्यग्निवातावृतपथेषु च । अथ दग्ध्वा शिराजालं योनिकर्म शिरोरुजि २६॥
उत्तमस्य पलं मात्रा त्रिभिश्चाक्षैश्च मध्यमे । जघन्यस्य पलार्द्धेन स्नेहक्वाथौषधेषु च ॥३०॥
जलमुष्णं घृते देयं पृथक्तैले तु शस्यते । स्नेहे पित्ते तु तृष्णायां पिबेदुष्णोदकं नरः ॥३१॥
वातानुलोमं दीप्ताग्नेर्वर्चः स्निग्धस्य तन्मतम् । रुक्षस्य स्नेहनं कार्यमतिस्निग्धस्य रुक्षणम् ३२॥
श्यामाककोरदोषान्नतक्रपिण्याकसक्तुभिः । वातश्लेष्मणि वाते वा कफे वा स्वेद इष्यते ।
न स्वेदयेदतिस्थूलरुक्षदुर्बलमूर्च्छितान् ॥ ३३ ॥
इति श्रीगारुडे महापुराणे योगसारादिकथनं नाम त्रिसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७३॥

चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

धन्वन्तरिरुवाच

घृततैलादि वक्ष्यामि शृणु सुश्रुत रोगनुत् । शङ्खपुष्पी वचा ब्राह्मी सोमा ब्रह्मसुवर्चला ॥ १ ॥
अभया च गुडूची च अटरूषकवागुजी । एतैरक्षसमैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ २ ॥
कण्टकार्य्या रसप्रस्थक्षीरप्रस्थसमन्वितम् । एतद्ब्राह्मीघृतं नाम श्रुतिमेधाकरं परम् ॥ ३ ॥
त्रिफलाचित्रकबलानिर्गुण्डीनिम्बवासकाः । पुनर्नवा गुडूची च बृहती च शतावरी ॥
एतैर्घृतं यथालाभं सर्वरोगविमर्दनम् ॥ ४ ॥
बलाशतकषाये तु तैलस्यार्द्धाढ़कं पचेत् । कल्कैर्मधूकमञ्जिष्ठाचन्दनोत्पलपद्मकैः ॥ ५ ॥
सूक्ष्मैलापिप्पलीकुष्ठत्वगेलागुरुकेशरैः । गन्धाश्वजीवनीयैश्च क्षीराढ़कसमाश्रितम् ॥ ६ ॥
एवं मृद्वग्निना पक्वं स्थापयेद्राजते शुभे । सर्ववातविकारांस्तु सर्वधात्वन्तराश्रयान् ॥
तैलमेतत्प्रशमयेद्बलासं राजवल्लभम् ॥ ७ ॥
शतावरीरसप्रस्थं क्षीरप्रस्थं तथैव च । शतपुष्पं देवदारु मांसी शैलेयकं बला ॥ ८ ॥
चन्दनं तगरं कुष्ठं मनःशिला ज्योतिष्मती । एतैः कर्षसमैस्तेन घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥ ९ ॥
कुब्जवामनपङ्गूनां बधिरव्यङ्गकुष्ठिनाम् । वायुना भग्नगात्राणां ये च सीदन्ति मैथुने ॥१०॥

जराजर्जरगात्राणां चाध्मानमुत्रशोषिणाम् । त्वग्गताश्चापि ये रोगा शिरास्नायुगताश्च ये ॥११॥
सर्वांस्तान्नाशयत्याशु तैलं रोगकुलान्तकम् । नारायणमिदं तैलं विष्णुनोक्तं रुगर्दनम् ॥
पृथक्तैलं घृतं कुर्य्यात्समस्तैरौषधैः पृथक् ॥ १२ ॥
शतावर्य्या गुडूच्या वा चित्रकैः व्योषनिम्बकैः ।
निर्गुण्ड्या वा प्रसारण्या कण्टकार्य्या रसादिभिः ॥ १३ ॥
वर्षाभूबालया वापि वासकेन फलत्रिकैः । ब्राह्मिकैरण्डकेनापि भृङ्गराजेन यष्टिना ॥१४॥
मुषल्या दशमूलेन खदिरेण वटादिभिः । वटिका मोदको वापि चूर्णं स्यात्सर्वरोगनुत् ॥१५॥
घृतेन मधुना वापि अद्भिः खण्डगुड़ादिभिः । लवणैः कटुकैर्युक्तं यथालाभञ्च रोगनुत् ॥१६॥
चित्रकार्कत्रिवृद्वापि यमानीहयमारकम् । सुधां च बालां गणिकां सप्तपर्णसुवर्चिकाम् ॥१७॥
ज्योतिष्मतीञ्च सभृत्य तैलं धीरो विपाचयेत् । एतन्निष्यन्दन तैलं भृशं दद्याद्भगन्दरे ॥१८॥
शोधनं रोपणञ्चैव सर्ववर्णकरं परम् । चित्रकाद्यं महातैलं सर्वरोगप्रभञ्जनम् ॥१९॥
अजमोदं ससिन्दूरं हरितालनिशाद्वयम् । क्षारद्वयं फेनयुतमार्द्रकं सरलोद्भवम् ॥२०॥
इन्द्रवारुण्यपामार्गकदलैः स्यन्दनैः समम् । एभिः सर्षपजं तैलमजामूत्रैश्च योजितम् ॥२१॥
मृद्वग्निना पचेदेतद्गव्यक्षीरेण संयुतम् । अजमोदादिकं तैलं गण्डमालां व्यपोहति ॥२२॥
विदग्धस्तु पचेत्पक्वं पक्वञ्चैव विशोधयेत् । रोपणं मृदुभावञ्च तैलेनानेन कारयेत् ॥२३॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे घृततैलादिकथनं नाम
चतुःसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७४॥

पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

रुद्र उवाच

एवं धन्वन्तरिर्विष्णुः सुश्रुतादीनुवाच ह । हरिः पुनर्हरायाह नानायोगान्रुगर्दनान् ॥ १ ॥

हरिरुवाच

सर्वज्वरेषु प्रथमं कार्यं शङ्कर लङ्घनम् । क्वथितोदकपानञ्च तथा निर्वातसेवनम् ॥ २ ॥
अग्निस्वेदाज्ज्वरास्त्वेवं नाशमायान्ति हीश्वर । वातज्वरहरः क्वाथो गुडूच्या मुस्तकस्य च ॥३॥
दुरालभैः कृतः क्वाथः पित्तज्वरहरः शृणु । शुण्ठीपर्पटमुस्तैश्च बालकोशीरचन्दनैः ॥ ४ ॥
साज्यः क्वाथः श्लेष्मजन्तु सशुण्ठिः सदुरालभः । सबालकः सर्वज्वरं सशुण्ठिः सहपर्पटः ॥ ५ ॥

क्वाथश्च तिक्तकैरण्डगुडूचीशुण्ठिमुस्तकैः । पित्तज्वरहरः स्याच्च शृण्वन्यं योगमुत्तमम् ॥६॥
बालकोशीरपाठाभिः कण्टकारिकमुस्तकैः । ज्वरनुच्च कृतः क्वाथस्तथा वै सुरदारुणा ॥ ७ ॥
धन्याकनिम्बमुस्तानां समधुः स तु शङ्कर । पटोलपत्रयुक्तस्तु गुडूचीत्रिफलायुतः ॥
पीतोऽखिलज्वरहरः क्षुधाकृद्वातनुत्त्विदम् ॥ ८ ॥
हरीतकीपिप्पलीनामामलीचित्रकोद्भवम् । चूर्णं ज्वरघ्नं कथितं धन्याकोशीरपर्पटैः ॥ ९ ॥
आमलक्या गुडूच्या च मधुयुक्तं सचन्दनम् । समस्तज्वरनुच्च स्यात्सन्निपातहरं शृणु ॥१०॥
हरिद्रानिम्बत्रिफलामुस्तकैर्देवदारुणा । कषायं कटुरोहिण्या सपटोलं सपत्रकम् ॥
त्रिदोषज्वरनुच्च स्यात्पीतन्तु क्वाथितं जलम् ॥११॥
कण्टकार्य्या नागरस्य गुडूच्या पुष्करेण च । जग्ध्वा नागबलाचूर्णं श्वासकासादिनुद्भवेत्॥१२॥
कफवातज्वरे देयं जलमुष्णं पिपासिने । विश्वपर्पटकोशीरमुस्तचन्दनसाधितम् ॥१३॥
दद्यात्सुशीतलं वारि तृट्छर्दिज्वरदाहनुत् । बिल्वादिपञ्चमूलस्य क्वाथः स्याद्वातिके ज्वरे ॥
पाचनं पिप्पलीमूलं गुडूचीविश्वभेषजम् । वातज्वरे त्वयं क्वाथो दत्तः शान्तिकरः परः ॥
पित्तज्वरनुत्समधुः क्वाथः पर्पटनिम्बयोः ॥१५॥
विधाने क्रियमाणेऽपि यस्य संज्ञा न जायते । पादयोस्तु ललाटे वा दहेल्लौहशलाकया ॥१६॥
तिक्ता पाठा पटोलश्च विशाला त्रिफला त्रिवृत् । सक्षीरो भेदनः क्वाथः सर्वज्वरविशोधनः ॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे नानायोगादिकथनं नाम
पञ्चसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७५॥

षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

भगवानुवाच

समराज्याः प्रजायन्ते खल्वाटस्य कचाः शुभाः । दग्धहस्तिदन्तलेपात्साजाक्षीररसाञ्जनात् ॥१॥
भृङ्गराजरसेनैव चतुर्भागेन साधितम् । केशवृद्धिकरं तैलं गुञ्जाचूर्णान्वितेन च ॥२॥
एलामांसीकुष्ठमुरायुक्तमभ्युद्गतं शिरः । गुञ्जाफलं समादेयं लेपनं चन्द्रलुप्तनुत् ॥३॥
आम्रास्थिचूर्णलेपाद् वै केशाः सूक्ष्मा भवन्ति च । करञ्जामलकैलाः सलाक्षा लेपोऽरुणापहः ४॥
आम्रास्थिमज्जामलकलेपात्केशा भवन्ति च । बद्धमूला घना दीर्घाः स्निग्धाः स्युर्नोत्पतन्ति च ॥

विड़ङ्गगन्धपाषाणसाधितं तैलमुत्तमम् । सचतुर्गुणगोमूत्र मनसः शिलमेव वा ॥
शिरोऽभ्यङ्गाच्छिरोजन्मयूकालिख्याः क्षयं नयेत् ॥६॥
नवदग्ध शङ्खचूर्णं घृष्टसीसकलेपितम् । कचाः श्लक्ष्णा महाकृष्णा भवन्ति वृषभध्वज ॥
भृङ्गराजं लोहचूर्णं त्रिफला बीजपूरकम् । नीली च करवीरञ्च गुड़मेतैः समैः शृतम् ॥
पलितानीह कृष्णानि कुर्य्याल्लेपान्महौषधम् ॥८॥
आम्रास्थिमज्जा त्रिफला नीली च भृङ्गराजकम् । जीर्णं पक्वलोहचूर्णं काञ्जिकं कृष्णकेशकृत् ॥
चक्रमर्दकबीजानि कुष्ठमेरण्डमूलकम् । सात्युष्णकाञ्जिकं पिष्ट्वा लेपान्मस्तकरोगनुत् ॥१०॥
सैन्धवञ्च वचा हिङ्गु कुष्ठं नागेश्वरं तथा । शतपुष्पा देवदारु एभिस्तैलं तु साधितम् ॥११॥
गोपुरीषरसेनैव चतुर्भागेन संयुतम् । तत्कर्णभरणादुग्रकर्णशूलं क्षयं नयेत् ॥१२॥
मेषमूत्रसैन्धवाभ्यां कर्णयोर्भरणाच्छिव । कर्णयोः पूतिनाशः स्यात्कृमिस्रावादिकस्य च ॥
मालतीपुष्पदलयो रसेन भरणात्तथा । गोजलेनैव पूरेण पूयस्रावो विनश्यति ॥१४॥
कुष्ठमाषमरीचानि तगरं मधु पिप्पली । अपामार्गोऽश्वगन्धा च बृहती सितसर्षपाः ॥१५॥
यवास्तिलाः सैन्धवञ्चैतेषामुद्वर्त्तनं शुभम् । लिङ्गबाहुस्तम्भनाशं कर्णयोर्वृद्धिकृद्भवेत् ॥१६॥
कटु तैलं भल्लातकं बृहतीफलदाड़िमम् । वल्कलैः साधितं लिप्तं लिङ्गं तेन विवर्द्धते ॥१७॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे षट्सप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७६॥

सप्तसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

हरिरुवाच

श्रीभाञ्जनपत्ररसं मधुयुक्तं हि चक्षुषोः । भरणाद्रोगहरणं भवेन्नास्त्यत्र संशयः ॥१॥
अशीतितिलपुष्पाणि जात्याश्च कुसुमानि च । उपनिम्बामलाशुण्ठीपिप्पलीतण्डुलीयकम् ॥ २ ॥
छायाशुष्कां वर्तीं कुर्य्यात् पिष्ट्वा तण्डुलवारिणा । मधुना सह सा चाक्ष्णोरञ्जनात्तिमिरादिनुत् ॥३॥
बिभीतकास्थिमज्जा तु शङ्खनाभिर्मनःशिलाः । निम्बपत्रमरीचानि अजामूत्रेण पेषयेत् ॥
पुष्पं रात्र्यन्धतां हन्ति तिमिरं पटलं तथा ॥ ४ ॥
चतुर्भागानि शङ्खस्य तदर्द्धेन मनःशिला । सैन्धवञ्च तदर्द्धेन एतत् पिष्टोदकेन तु ॥ ५ ॥
छायाशुष्कां तु वटिकां कृत्वा नयनमञ्जयेत् । तिमिरं पटलं हन्ति पिञ्जटस्य महौषधम् ॥ ६ ॥
त्रिकटु त्रिफला चैव करञ्जस्य फलानि च । सैन्धवं रजनी द्वे च भृङ्गराजरसेन हि ॥

पिष्ट्वा तदञ्जनादेव तिमिरादिविनाशनम् ॥ ७ ॥
अटरूषकमूलं तु काञ्जिकापिष्टमेव तु । तेनाक्ष्णोर्भूरिलेपाच्च चक्षुःशूलं विनश्यति ॥ ८ ॥
शतद्रुबदरीमूलं पीतमक्षिव्यथां हरेत् । सैन्धवं कटुतैलञ्च अपामार्गस्य मूलकम् ॥ ९ ॥
क्षीरकाञ्जिकसंघृष्टं ताम्रपात्रे तु तेन च । अञ्जनात् पिञ्जटस्यैव नाशो भवति शङ्कर ॥

ॐ दद्रु सर क्रों ह्रीं ठः ठः दद्रु सर ह्रीं ह्रीं ॐ उं ऊं सर क्रीं क्रीं ठः ठः आद्या वश-मायान्ति मन्त्रेणानेन चाञ्जनात् ॥ १० ॥

बिल्वकं नीलिकामूलं पिष्टमभ्यञ्जनेन च । अनेनाञ्जितमात्रेण नश्यन्ति तिमिराणि हि ॥११॥
पिप्पलीतगरञ्चैव हरिद्रामलकं वचा । खदिरैः पिष्टवर्तिश्च अञ्जनान्नेत्ररोगनुत् ॥१२॥
नीरपूर्णमुखो धौति जलक्षेपेण योऽक्षिणी । प्रभाते नेत्ररोगैश्च नित्यं सर्वैः प्रमुच्यते ॥१३॥
शुक्लैरण्डस्य मूलेन पत्रेणापि प्रसाधितम् । छागदुग्धसेकयुक्ताच्चक्षुषोर्वातरोगनुत् ॥१४॥
चन्दनं सैन्धवं वृद्धपलाशश्च हरीतकी । पटलं कुसुमं नीली चक्रिकां हरतेऽञ्जनात् ॥
गुञ्जामूलं छागमूत्रे घृष्टं तिमिरबन्धनुत् ॥१५॥
रौप्यताम्रसुवर्णानां हस्तघृष्टशलाकया । घृष्टमुद्वर्त्तनं रुद्र कामलाव्याधिनाशनम् ॥१६॥
घोषाफलमथाघ्रातं पीतं कामलनाशनम् । दूर्वा दाडिमपुष्पं तु अलक्तकहरीतकी ॥
नासार्शवातरक्तनुन्नस्याद्वै स्वरसेन हि ॥१७॥
सुपिष्टं जिङ्गिनीमूलं तद्रसेन वृषध्वज । नस्यादानाद्विनश्येत नासार्शो नीललोहितः ॥१८॥
गव्यं घृतं सर्जरसं रुद्र धन्याकसैन्धवम् । धुस्तूरकं गैरिकञ्च एतैः साधितसिक्थकम् ॥१९॥
सतैलं व्रणनुत् स्याच्च स्फुटितोच्चटिताधरे ॥१६॥
जातीपत्रञ्च चर्वित्वा विधृतं मुखरोगनुत् । भक्षणात्केशरबीजस्य दन्ताः स्युश्चलिता स्थिराः ॥
मुस्तकं कुष्ठमेला च यष्टिकं मधुबालकम् । धन्याकमेतददनान्मुखदुर्गन्धनुद्धर ॥२१॥
कषायं कटुकं वापि तिक्तशाकस्य भक्षणात् । तैलयुक्तस्य नित्यं स्यान्मुखदुर्गन्धताक्षयः ॥
दन्तव्रणानि सर्वाणि क्षयं गच्छन्त्यनेन तु ॥२२॥
काञ्जिकस्य सतैलस्य गण्डूषकवलस्थितिः । ताम्बूलचूर्णं दग्धस्य मुखस्य व्याधिनुच्छिव ॥२३॥
परित्यक्तिः श्लेष्मणश्च शुण्ठीचर्वणतो यथा । मातुलुङ्गदलान्येला यष्टीमधु च पिप्पली ॥२४॥
जातीपत्रमथैषाञ्च चूर्णं लीढं तथा कृतम् । शेफालिकाजटायाश्च चर्वणं गलशुण्ठिनुत् ॥२५॥
नासाशिरारक्तकर्षान्नश्येच्छङ्कर जिह्विका । रसः शिरीषबीजानां हरिद्रायाश्चतुर्गुणः ॥२६॥
तेन पक्वेन भूतेश नस्यं मस्तकरोगनुत् । गलरोगा विनश्यन्ति नस्यमात्रेण तत्क्षणात् ॥२७॥

दन्तकीटविनाशः स्याद्गुञ्जामूलस्य चर्वणात् । काकजङ्घास्नुहीनीलीकषायो मधुयोजितः ॥
दन्ताक्रान्तं दन्तजांश्च कृमीन्नाशयते शिव ॥२८॥

घृतं कर्कटपादेन दुग्धमिश्रेण साधितम् । तेन चाभ्यर्दिता दन्ताः कुर्य्युः कटकटां न हि ॥२९॥
लिप्त्वा कर्कटपादेन केवलेनाथवा शिव । त्रिसप्ताहं वारिपिष्टा ज्योतिष्मत्याः फलानि हि ॥३०॥
शुक्लाभयामजलेपाद्दन्तस्याङ्ककलङ्कनुत् । लोध्रकुङ्कुममञ्जिष्ठालोहकालेयकानि च ॥३१॥
यवतण्डुलमेतैश्च यष्टीमधुसमन्वितैः । वारिपिष्टैर्वक्त्रलेपः स्त्रीणां शोभनवक्त्रकृत् ॥३२॥
द्विभागं छागदुग्धेन तैलप्रस्थं तु साधितम् । रक्तचन्दनमञ्जिष्ठालाक्षाणां कर्षकेण वा ॥
यष्टीमधुकुङ्कुमाभ्यां सप्ताहान्मुखकान्तिकृत् ॥३३॥

शुण्ठीश्चपिप्पलीचूर्णं गुडूची कण्टकारिका । एभिश्च क्वथितं वारि पीतं चाग्निं करोति वै ॥३४॥
वातमूलक्षयञ्चैव करोति प्रमथेश्वर । करञ्जकर्कटोशीरं बृहती कटुरोहिणी ॥३५॥
गोक्षुरं क्वथितं त्वेभिर्वारि पीतं भ्रमापहम् । दाहं पित्तज्वरं शोषं मूर्च्छाञ्चैव क्षयं नयेत् ॥३६॥
मध्वाज्यपिप्पलीचूर्णं क्वथितं क्षीरसंयुतम् । पीतं हृद्रोगकासस्य विषमज्वरनुद्भवेत् ॥३७॥
क्वाथौषधीनां सर्वासां कर्षार्द्धं ग्राह्यमेव च । वयोऽनुरूपतो ज्ञेयो विशेषो वृषभध्वज ॥३८॥
दुग्धं पीतं तु संयुक्तं गोपुरीषरसेन च । विषमज्वरनुत्स्याच्च काकजङ्घारसस्तथा ॥३९॥
सशुण्ठीक्वथितं क्षीरं विषमज्वरनुद्भवेत् । यष्टीमधुकमुस्तञ्च सैन्धवं बृहतीफलम् ॥४०॥
एतैर्नस्यप्रदानाच्च निद्रा स्यात्पुरुषस्य च । मरीचमधुयुक्तानां नस्यान्निद्रा भवेच्छिव ॥४१॥
मूलं तु काकजङ्घाया निद्राकृत्स्याच्छिरःस्थितम् । सिद्धं तैलं काञ्जिकेन तथा सर्जरसेन च ॥४२॥
शतोदकसमायुक्तं लेपात्सन्तापनाशनम् । शोणितज्वरदाहेभ्यो जातसन्तापनुत्तथा ॥४३॥
शैलिशैवालाग्निमन्थः शुण्ठीपाषाणभेदकम् । शोभाञ्जनं गोक्षुरं वा वरुणच्छन्नमेव च ॥४४॥
शोभाञ्जनस्य मूलञ्च एतैः क्वथितवारि च । दत्त्वा हिङ्गुयवक्षारं पित्तवातविनाशनम् ॥४५॥
पिप्पली पिप्पलीमूलं तथा भल्लातकं शिव । वार्येतैः क्वथितं पीतं शूलापस्मारनुद्भवेत् ॥४६॥
अश्वगन्धामूलकाभ्यां सिद्धा वल्मीकमृत्तिका । एतया मर्दनाद्रुद्र ऊरुस्तम्भः प्रशाम्यति ॥४७॥
बृहतीकस्य वै मूलं संपिष्टमुदकेन च । पीतं सङ्घातव्रातस्य विपाटनकृदेव च ॥४८॥
पीतं तक्रेण मूलञ्च आर्द्रस्य तगरस्य च । हरेत झिञ्झिनीवातं वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥४९॥
अस्थिसंहारमेकेन भक्तेन सह खादितम् । पीतं मांसरसेनापि वातनुच्चास्थिभङ्गनुत् ॥५०॥
घृतलिप्तं सक्तुकञ्च छागक्षीरेण संयुतम् । तल्लेपात्पादयोर्नश्येत्सन्तापो नात्र संशयः ॥५१॥
मध्वाज्यसैन्धवैः सिक्थगुड़गैरिकगुग्गुलैः । ससर्जरसस्फुटितः क्षौमशुद्धिश्च लेपनात् ॥५२॥

कटुतैलेन लिप्तो वै विधूमाग्नौ प्रतापितः । मृत्तिकाखादितः पादः समः स्याद्वृषभध्वज ॥५३॥
सर्जरसः सिक्थकञ्च जीरकञ्च हरीतकी । तत्साधितघृताभ्यङ्गो ह्यग्निदग्धव्यथापनुत् ॥५४॥
तिलतैलं चाग्निदग्धं यवभस्मसमन्वितम् । अग्निदग्धव्रणं नश्येद्बहुशः कृतलेपतः ॥५५॥
नवनीतं माहिषञ्च दग्धपिष्टतिलानि च । सभल्लाकं व्रणं नश्येद्भृच्छूलं नस्यलेपतः ॥५६॥
कर्पूरगव्यसर्पिर्भ्यां प्रहारः पूरितो हर । शस्त्रोद्भवो बन्धनञ्च शुक्लवस्त्रेण शङ्कर ॥
पाकश्च वेदना चैव न स्पृशेद्वृषभध्वज ॥५७॥

आम्रमूलरसेनैव शस्त्रघातः प्रपूरितः । ढौकते शस्त्रघातः स्यान्निर्व्रणो घृतपूरितः ॥५८॥
शरपुङ्खा लज्जालुका पाठा चैषां तु मूलकम् । जलपिष्टं तस्य लेपाच्छस्त्रघातः प्रशाम्यति ॥५९॥
मूलञ्च काकजङ्घायास्त्रिरात्रेणैव शोषितः । पाकपूतिवेदनाञ्च हन्ति वै रोहिते व्रणे ॥६०॥
सजलं तिलतैलञ्च अपामार्गस्य मूलकम् । तत्सेकदानान्नश्येच्च प्रहारोद्भववेदना ॥६१॥
अभयां सैन्धवं शुण्ठीमेतत्पिष्टोदकेन तु । भक्षयित्वा ह्यजीर्णस्य नाशो भवति शङ्कर ॥६२॥
कटिबद्धं निम्बमूलमक्षिशूलहरं भवेत् । शणमूलं सताम्बूलं दग्धमिन्द्रियकल्पहृत् ॥६३॥
अन्नस्विन्नहरिद्रा च श्वेतसर्षपमूलकम् । बीजानि मातुलुङ्गस्य एषामुद्वर्त्तनं समम् ॥
सप्तरात्रप्रयोगेण शुभदेहकरं भवेत् ॥६४॥

श्वेतापराजितापत्रं निम्बपत्ररसेन तु । नस्यदानाड्डाकिनीनां पितॄणां ब्रह्मरक्षसाम् ॥
मोक्षः स्यान्मधुसारेण नस्याच्च वृषभध्वज ॥६५॥
मूलं श्वेतजयन्त्याश्च पुष्यर्क्षे तु समाहृतम् । श्वेतापराजितार्कस्य चित्रकस्य च मूलकम् ॥
कृत्वा तु वटिकां नारी तिलकेन वशीभवेत् ॥६६॥
पिप्पलीलोहचूर्णन्तु शुण्ठीश्चामलकानि च । समानि रुद्र जानीयात्सैन्धवं मधुशर्करा ॥६७॥
उडुम्बरप्रमाणेन सप्ताहभक्षणात्समम् । पुमांश्च बलवान्स स्यात्जीवेद्वर्षशतद्वयम् ॥
ॐ ठ ठ ठ इति सर्ववश्यप्रयोगेषु प्रयुक्तः सर्वकामकृत् ॥६८॥
संगृह्य वृक्षात्काकस्य निलयं प्रदहेच्च तत् । चिताग्नौ भस्म तच्छत्रोर्दत्तं शिरसि शङ्कर ॥६९॥
तमुच्चाटयते रुद्र शृणु तद्योगमुत्तमम् । निक्षिप्तञ्च पुरीषं वै वनमूषिकचर्मणि ॥७०॥
कटितन्तुनिबद्धं वै कुर्य्यान्मलनिरोधनम् । कृष्णकाकस्य रक्तेन यस्य नाम प्रलिख्यते ॥७१॥
मध्यमध्ये च्युतदले ततो निक्षिप्यते हर । स खाद्यते काकवृन्दैर्नारी पुरुष एव च ॥७२॥
शर्करामध्वजाक्षारं तिलगोक्षुरकं समम् । स शत्रुं नाशयेद्रुद्र उच्चाटितमिदं हर ॥७३॥
उलूककृष्णकाकस्य बिल्वस्याथ समिच्छतम् । रुधिरेण समायुक्तं ययोर्नाम्ना तु हूयते ॥

तयोर्मध्ये महावैरं भवेन्नास्त्यत्र संशयः ॥७४॥

भावितं ऋतदुग्धेन मत्स्यस्य रोहितस्य च । मांसं तत्साधितं तैलं तदभ्यङ्गाच रोगनुत् ॥
चन्दनोदकनस्यात्तु रोमोत्थानं भवेत्पुनः ॥७५॥

हस्ते लाङ्गलिकाकन्दं गृहीतं तेन लेपितम् । शरीरं येन स पुमान्वृद्धेर्दर्पं व्यपोहति ॥७६॥
मयूररुधिरेणैव जीवं संहरते शिव । ज्वलतान्तु भुजङ्गाना बिलस्थानामपीश्वर ॥७७॥
देहश्रिताग्नौ दग्धश्च सर्पस्याजगरस्य हि । तद्भस्म संमुखे क्षिप्तं शत्रूणां भङ्गकृद्भवेत् ॥७८॥
मन्त्रेणानेन तत्क्षिप्तं महाभङ्गकरं रिपोः । ॐ ठ ठ ठ चाहीहि चाहीहि स्वाहा ॥
ॐ उदरं पाहिहि पाहिहि स्वाहा ॥७९॥

सुदर्शनाया मूलं तु पुष्यर्क्षे च समाहृतम् । निक्षिप्तं गृहमध्ये तु भुजङ्गा वर्जयन्ति तत् ॥८०॥
अर्कमूलेन रविणा अर्काग्निज्वलिता शिव । युक्ता सिद्धार्थतैलेन बर्त्तिर्मार्गाहिनाशिनी ॥८१॥
मार्जारपललं विष्ठा हरितालञ्च भावितम् । छागमूत्रेण तल्लिप्तो मूषिको मूषिकान्हरेत् ॥८२॥
मुक्तो हि मन्दिरे रुद्र नात्र कार्य्या विचारणा । त्रिफलार्जुनपुष्पाणि भल्लातकशिरीषकम् ॥८३॥
लाक्षा सर्जरसश्चैव विडङ्गश्चैव गुग्गुलः । एतैर्धूपो मक्षिकाणां मशकानां विनाशनः ॥८४॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे सप्तसप्तत्यधिक-
शततमोऽध्यायः ॥१७७॥

अष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः

हरिरुवाच

ब्रह्मदण्डीवचाकुष्ठं प्रियङ्गु नागकेशरम् । दद्यात्ताम्बूलसंयुक्तं स्त्रीणां मन्त्रेण तद्वशम् ॥
ॐ नारायण्यै स्वाहा ॥ १ ॥

ताम्बूलं यस्य दीयेत स वशी स्यात्समन्त्रतः । ॐ हरिः हरिः स्वाहा ॥ २ ॥
गोदन्तं हरितालञ्च संयुक्तं काकजिह्वया । चूर्णं कृत्वा यस्य शिरे दीयते स वशी भवेत् ॥
श्वेतसर्षपनिर्माल्यं यद्गृहे तद्विनाशकृत् ॥ ३ ॥

वैभीतकं शाखोटकं मूलं पत्रञ्च संयुतम् । स्थाप्यते यद्गृहद्वारे तत्र वै कलहो भवेत् ॥ ४ ॥
खञ्जरीटस्य मांसं तु मधुना सह पेषयेत् । ऋतुकाले योनिलेपात्पुरुषो दासतामियात् ॥ ५ ॥
अगुरुं गुग्गुलञ्चैव नीलोत्पलसमन्वितम् । गुडेन धूपयित्वा तु राजद्वारे प्रियो भवेत् ॥ ६ ॥

श्वेतापराजितामूलं पिष्टं रोचनया युतम् । यं पश्येत्तिलकेनैव वशी कुर्य्यान्नृपालये ॥ ७ ॥
काकजङ्घा वचा कुष्ठं निम्बपत्रं सकुङ्कुमम् । आत्मरक्तसमायुक्तं वशी भवति मानवः ॥ ८ ॥
आरण्यस्य विडालस्य गृहीत्वा रुधिरं शुभम् । करञ्जतैले तद्भाव्यं रुद्राग्नौ कज्जलं ततः ॥
पातयेत्पद्मपत्रेण अदृश्यः स्यात्तदञ्जनात् ॥ ९ ॥

ॐ नमः खड्गवज्रपाणये महायक्षसेनापतये स्वाहा ।
ॐ रुद्रं ह्रां ह्रीं वरशक्ता त्वरिताविद्या ।
ॐ मातरः स्तम्भय स्वाहा ।
महासुगन्धिकामूलं शुक्रं स्तम्भेत्कटौ स्थितम् ॥१०॥
ॐ नमः सर्वसत्त्वेभ्यो नमः सिद्धिं कुरु कुरु स्वाहा ।

सप्ताभिमन्त्रितं कृत्वा करवीरस्य पुष्पकम् । स्त्रीणामग्रे भ्रामयेच्च क्षणाद्वै सा वशा भवेत् ॥११॥
ब्रह्मदण्डीवचापत्रं मधुना सह पेषयेत् । अङ्गलेपाच्च वनिता नान्यं भर्त्तारमिच्छति ॥१२॥
ब्रह्मदण्डीशिखा वक्त्रे क्षिप्ता शुक्रस्य स्तम्भनम् । मूलं जयन्त्या वक्त्रस्थं व्यवहारे जयप्रदम् ॥
भृङ्गराजस्य मूलं तु पिष्टं शुक्रेण संयुतम् । अक्षिणी चाञ्जयित्वा तु वशी कुर्य्यान्नरं किल ॥१४॥
अपराजिताशिखान्तु नीलोत्पलसमन्विताम् । ताम्बूलेन प्रदानाच्च वशीकरणमुत्तमम् ॥१५॥
अङ्गुष्ठे च पदे गुल्फे जानौ च जघने तथा । नाभौ वक्षसि कुक्षौ च कक्षे कण्ठे कपोलके १६॥
ओष्ठे नेत्रे ललाटे च मूर्ध्नि चन्द्रकलाः स्थिताः ।
स्त्रीणां पक्षे सिते कृष्णे ऊर्ध्वाधः संस्थिता नृणाम् ॥ १७ ॥
वामाङ्गे दक्षिणाङ्गे च क्रमाद्रुद्र द्रवादिकृत् । चतुःषष्टिकलाः प्रोक्ताः कामशास्त्रे वशीकराः ॥
आलिङ्गनाद्या नारीणां कुमारीणां वशीकराः ॥ १८ ॥
रोचनागन्धपुष्पाणि निम्बपुष्पं प्रियङ्गवः । कुङ्कुमं चन्दनञ्चैव तिलकेन जगद्वशेत् ॥
ॐ ह्रीं गौरि देवि सौभाग्यं पुत्रवश्यादि देहि मे ।
ॐ ह्रीं लक्ष्मि देवि सौभाग्यं सर्वं त्रैलोक्यमोहनम् ॥ १९ ॥
सुगन्धञ्च हरिद्रा च कुङ्कुमानि च लेपतः । वशयेद्रुद्र धूपश्च पुष्पधूपं सुगन्धिकम् ॥२०॥
दुरालभा वचा कुष्ठं कुङ्कुमञ्च शतावरी । तिलतैलेन संयुक्तं योनिलेपाद्वशो नरः ॥२१॥
निम्बकाष्ठस्य धूमेन धूपयित्वा भगं स्त्रियाः । सुभगा स्यात्साति रुद्र पतिर्दासो भविष्यति २२॥
माहिषं नवनीतञ्च कुष्ठञ्च मधुयष्टिका । सौभाग्यं भगलेपात्स्यात्पतिर्दासो भवेत्तथा ॥२३॥
मधुयष्टिञ्च गोक्षीरं तथा च कण्टकारिका । एतानि समभागानि पिबेदुष्णेन वारिणा ॥

चतुर्भागावशेषेण गर्भसम्भवमुत्तमम् ॥ २४ ॥
मातुलुङ्गस्य बीजानि क्षीरेण सह भावयेत् । तत्पीत्वा लभते गर्भं नात्र कार्य्या विचारणा ॥
मातुलुङ्गस्य बीजानि मूलान्येरण्डकस्य च । घृतेन सह संयोज्य पाययेत्पुत्रकांक्षिणी ॥२६॥
अश्वगन्धाघृतं दुग्धं क्वाथितं पुत्रकारकम् । पलाशस्य तु बीजानि क्षौद्रेण पेषयेत् ॥
रजस्वला तु पीत्वा स्यात्पुष्पगर्भविवर्जिता ॥ २७ ॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे अष्टसप्तत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७८ ॥

ऊनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

हरिरुवाच

हरितालं यवक्षारं पत्राङ्गं रक्तचन्दनम् । जातिहिङ्गुलकं लाक्षां पक्त्वा दन्तान्प्रलेपयेत् ॥१॥
हरीतकीकषायेण मृष्ट्वा दन्तान्प्रलेपयेत् । दन्ताः स्युर्लोहिताः पुंसः श्वेता रुद्र न संशयः॥२॥
मूलकं स्विद्य मन्दाग्नौ रसं तस्य प्रपूरयेत् । कर्णयोः पूरणात्तेन कर्णस्रावो विनश्यति ॥३॥
अर्कपत्रं गृहीत्वा तु मन्दाग्नौ तापयेच्छनैः । निष्पीड्य पूरयेत्कर्णौ कर्णशूलं विनश्यति ॥४॥
प्रियङ्गुमधुकायष्टिधातक्युत्पलपंक्तिभिः । मञ्जिष्ठालोध्रलाक्षाभिः कपित्थस्वरसेन च ॥
पचेत्तैलं तथा स्त्रीणां नश्येत्क्लेदः प्रपूरणात् ॥ ५ ॥
शुष्कमूलकशुण्ठीनां क्षारो हिङ्गु महौषधम् । शतपुष्पा वचा कुष्ठं दारुशिग्रु रसायनम् ॥६॥
सौवर्चलं यवक्षारं तथा सर्जकसैन्धवम् । तथा ग्रन्थि विडं मुस्तं मधुयुक्तं चतुर्गुणम् ॥७॥
मातुलुङ्गरसस्तद्वत्कदल्याश्च रसो हि तैः । पक्वतैलं हरेदाशु स्रावादींश्च न संशयः ॥८॥
कर्णयोः कृमिनाशः स्यात्कटुतैलस्य पूरणात् । हरिद्रानिम्बपत्राणि पिप्पल्यो मरीचानि च ॥९॥
विडङ्गभद्रं मुस्तञ्च सप्तमं विश्वभेषजम् । गोमूत्रेण च पिष्ट्वैव कृत्वा च वटिकां हर ॥
अजीर्णहृद्द्रवेच्चैकं द्वयं विसूचिकापहम् ॥ १० ॥
पटोलं मधुना हन्ति गोमूत्रेण तथार्बुदम् । एषा च शाङ्करी वर्त्तिः सर्वनेत्रामयापहा ॥११॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे ऊनाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १७९ ॥

अशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

हरिरुवाच

वचा मांसी च बिल्वञ्च तगरं पद्मकेशरम् । नागपुष्पं प्रियङ्गुञ्च समभागानि चूर्णयेत् ॥
अनेन धूपितो मर्त्यः कामवद्विचरेन्महीम् ॥ १ ॥
कर्पूरं देवदारुञ्च मधुना सह योजयेत् । लिङ्गलेपाच्च तेनैव वशीकुर्यात्स्त्रियं किल ॥ २ ॥
मैथुनं पुरुषो गच्छेद्गृह्णीयात्स्वकमिन्द्रियम् । वामहस्तेन वामञ्च हस्तं यस्या स्त्रिया लिहेत् ॥
आलिप्ता स्त्री वशं याति नान्यं पुरुषमिच्छति ॥ ३ ॥
ॐ रक्तचामुण्डे अमुकं मे वशमानय आनय । ॐ ह्रीं ह्रौं हः फट् ।
इमं जप्त्वाऽयुतं मन्त्रं तिलकेन च शङ्कर । गोरोचनासंयुतेन स्वरक्तेन वशी भवेत् ॥ ४ ॥
सैन्धवं कृष्णलवणं सौवीरं मत्स्यपित्तकम् । मधुसर्पिःसितायुक्तं स्त्रीणां तद्भगलेपनम् ॥ ५ ॥
यः पुमान्मैथुनं गच्छेन्नान्यां नारीं गमिष्यति । शङ्खपुष्पी वचा मांसी सोमराजी च फल्गुकम् ॥
माहिषं नवनीतञ्च गुटीकरणमुत्तमम् । सनलानि च पत्राणि क्षीरेणाज्येन पेषयेत् ॥ ७ ॥
गुटिकां शोधितां कृत्वा नारीयोन्यां प्रवेशयेत् । दशवारं प्रसूतापि पुनः कन्या भविष्यति ८ ॥
सर्षपाश्च वचा चैव मदनस्य फलानि च । मार्जारविष्ठाधुस्तूरं स्त्रीकेशेन समन्वितः ॥ ९ ॥
चातुर्थकहरो धूपो डाकिनीज्वरनाशकः । अर्जुनस्य च पुष्पाणि भल्लातकविडङ्गके ॥१०॥
वाला चैव सर्जरसं सौवीरसर्षपास्तथा । सर्पयूकामक्षिकाणां धूमो मशकनाशनः ॥११॥
भूलतायाश्च चूर्णेन स्तम्भः स्याद्योनिपूरणात् । तेन लेपनतो योनौ भगस्तम्भस्तु जायते ॥१२॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे अशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८० ॥

एकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

हरिरुवाच

ताम्बूलञ्च घृतं क्षौद्रं लवणं ताम्रभाजने । तथा पयःसमायुक्तं चक्षुःशूलहरं परम् ॥ १ ॥
हरीतकी वचा कुष्ठं व्योषं हिङ्गु मनःशिला । कासे श्वासे च हिक्कायां लिह्यात्क्षौद्रं घृतप्लुतम् २॥
पिप्पलीत्रिफलाचूर्णं मधुना लेहयेन्नरः । नश्यते पीनसः कासः श्वासश्च बलवत्तरः ॥ ३ ॥
समूलचित्रकं भस्म पिप्पलीचूर्णकं लिहेत् । श्वासं कासञ्च हिक्काञ्च मधुमिश्रं वृषध्वज ॥ ४ ॥

नीलोत्पलं शर्करा च मधुकं पद्मकं समम् । तण्डुलोदकसंमिश्रं प्रशमेद्रक्तविक्रिया ॥ ५ ॥
शुण्ठी च शर्करा चैव तथा क्षौद्रेण संयुता । कोकिलस्वर एव स्याद् गुण्डिकाभुक्तिमात्रतः ६ ॥
हरितालं शङ्खचूर्णं कदलीदलभस्मना । एतद्द्रव्येण चोद्वर्त्य लोमशातनमुत्तमम् ॥ ७ ॥
लवणं हरितालञ्च तुम्बिन्याश्च फलानि च । लाक्षारससमायुक्तं लोमशातनमुत्तमम् ॥ ८ ॥
सुधा च हरितालञ्च शङ्खभस्म मनःशिला । सैन्धवेन सहैकत्र छागमूत्रेण पेषयेत् ॥
तत्क्षणादुद्वर्त्तनादेव लोमशातनमुत्तमम् ॥ ९ ॥
शङ्खमामलकं पत्रं धातक्याः कुसुमानि च । पिष्ट्वा तत्पयसा सार्द्धं सप्ताहं धारयेन्मुखे ॥
स्निग्धाः श्वेताश्च दन्ताश्च भवन्ति विमलप्रभाः ॥ १० ॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे एकाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८१ ॥

द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

हरिरुवाच

शरद्ग्रीष्मवसन्तेषु प्रायशो दधि गर्हितम् । हेमन्ते शिशिरे चैव वर्षासु दधि शस्यते ॥१॥
भुक्ते तु शर्करा पीता नवनीतेन बुद्धिकृत् । गुड़स्य तु पुराणस्य पलमेकन्तु भक्षयेत् ॥
स्त्रीसहस्रञ्च गच्छेच्च पुमान्बलयुतो हर ॥ २ ॥
कुष्ठं संचूर्णितं कृत्वा घृतमाक्षिकसंयुतम् । भक्षयेत्स्वप्नवेलायां बलीपलितनाशनम् ॥३॥
अतसीमाषगोधूमचूर्णं कृत्वा तु पिप्पलीम् । घृतेन लेपयेद्गात्रमेभिः सार्द्धं विचक्षणः ॥
कन्दर्पसदृशो मर्त्यो नित्यं भवति शङ्कर ॥ ४ ॥
यत्रास्तिलाश्वगन्धा च मुषली सरला गुड़म् । एभिश्च रचितां जग्ध्वा तरुणो बलवान्भवेत् ॥५॥
हिङ्गु सौवर्चलं शुण्ठीं पीत्वा तु क्वथितोदकैः । परिणामाख्यशूलञ्च अजीर्णञ्चैव नश्यति ॥६॥
धातकीसोमराजीञ्च क्षीरेण सह पेषयेत् । दुर्बलश्च भवेत्स्थूलो नात्र कार्य्या विचारणा ॥७॥
शर्करामधुसंयुक्तं नवनीतं बली लिहेत् । क्षीराशी च क्षयी पुष्टिं मेधाञ्चैवातुलां लभेत् ॥८॥
कुलीरचूर्णं सक्षीरं पीतञ्च क्षयरोगनुत् । भल्लातकं विडङ्गञ्च यवक्षारञ्च सैन्धवम् ॥९॥
मनःशिलाशङ्खचूर्णं तैलपक्वं तथैव च । लोमानि शातयत्येव नात्र कार्य्या विचारणा ॥१०॥
मातुलरस्य रसं गृह्य जलौकां तत्र पेषयेत् । हस्तौ संलेपयेत्तेन अग्निस्तम्भनमुत्तमम् ॥११॥
शाल्मलीरसमादाय खरमूत्रे निधाय तम् । अग्न्यादौ विक्षिपेत्तेन अग्निस्तम्भनमुत्तमम् ॥१२॥

वायस्या उदरं गृह्य मण्डूकवसया सह । गुटिकां कारयेत्तेन ततोऽग्नौ संक्षिपेत्सुधीः ॥
एवमेतत्प्रयोगेण अग्निस्तम्भनमुत्तमम् ॥ १३ ॥
मुण्डीतकवचामुस्तं मरिचं तगरं तथा । चर्वित्वा च इमं सद्यो जिह्वया ज्वलनं लिहेत् १४॥
गोरोचनां भृङ्गराजं चूर्णीकृत्य घृतं समम् । दिव्याम्भसः स्तम्भनं स्यान्मन्त्रेणानेन वै तथा ॥
ॐ अग्निस्तम्भनं कुरु कुरु ॥ १५ ॥
ॐ नमो भगवते जलं स्तम्भय सं सं सं केक केक चर चर ।
जलस्तम्भनमन्त्रोऽयं जलं स्तम्भयते शिव ॥ १६ ॥
गृध्रास्थिञ्च गवास्थिञ्च तथा निर्माल्यमेव च । अरेर्यो निखनेद्द्वारे पञ्चत्वमुपयाति सः ॥१७॥
पञ्चरक्तानि पुष्पाणि पृथग्जात्याः समालभेत् । कुङ्कुमेन समायुक्तमात्मरक्तसमन्वितम् ॥१८॥
पुष्पेण तु समं पिष्ट्वा रोचनायाः पलैकतः । स्त्रिया पुंसा कृतो रुद्र तिलकोऽयं वशीकरः ॥
ब्रह्मदण्डी तु पुष्येण भक्ष्ये पाने वशीकरः । यष्टीमधुपलैकेन पक्वमुष्णोदकं पिबेत् ॥२०॥
विष्टम्भिकाञ्च हृच्छूलं हरत्येव महेश्वर ।
ॐ ह्रूं जः मन्त्रोऽयं हरते रुद्र सर्पवृश्चिकज विषम् ॥२१॥
पिप्पली नवनीतञ्च शृङ्गवेरञ्च सैन्धवम् । मरिचं दधि कुष्ठञ्च नस्ये पाने विषं हरेत् ॥२२॥
त्रिफलार्द्रककुष्ठञ्च चन्दनं घृतसंयुतम् । एतत्पलाच्च लेपाच्च विषनाशो भवेच्छिव ॥२३॥
पारावतस्य चाक्षीणि हरितालं मनःशिला । एतद्योगाद्विषं हन्ति वैनतेय इवोरगान् ॥२४॥
सैन्धवं त्र्यूषणं चूर्णं दधिमध्वाज्यसंयुतम् । वृश्चिकस्य विषं हन्ति लेपोऽयं वृषभध्वज ॥२५॥
ब्रह्मदण्डीतिलान्क्वाथ्य चूर्णं त्रिकटुकं पिबेत् । नाशयेद्रुद्र गुल्मानि निरुद्धं रक्तमेव च ॥२६॥
पीत्वा क्षीरं क्षौद्रयुतं नाशयेदसृजः श्रुतिम् । अटरूषकमूलेन भगं नाभिञ्च लेपयेत् ॥
सुखं प्रसूयते नारी नात्र कार्य्या विचारणा ॥ २७ ॥
शर्करां मधुसंयुक्तां पीत्वा तण्डुलवारिणा । रक्तातिसारशमनं भवतीति वृषध्वज ॥२८॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे द्व्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८२ ॥

त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

हरिरुवाच

मरिचं शृङ्गवेरञ्च कुटजत्वचमेव च । पानाच्च ग्रहणी नश्येच्छशाङ्काकृतिशेखर ॥१॥

पिप्पली पिप्पलीमूलं मरिचं तगरं वचा। देवदारुरसं पाठां क्षीरेण सह पेषयेत् ॥२॥
अनेनैव प्रयोगेण अतीसारो विनश्यति। मरीचतिलपुष्पाभ्यामञ्जनं कामलापहम् ॥३॥
हरीतकी समगुड़ा मधुना सह योजिता। विरेचनकरी रुद्र भवतीति न संशयः ॥४॥
त्रिफलाचित्रकं चित्रं तथा कटुकरोहिणी। ऊरुस्तम्भहरो ह्येष उत्तमं तु विरेचनम् ॥५॥
हरीतकी शृङ्गवेरं देवदारु च चन्दनम्। क्वाथयेच्छागदुग्धेन अपामार्गस्य मूलकम् ॥
जयन्त्या वा चोरुस्तम्भं सप्तरात्रेण नाशयेत् ॥ ६ ॥
अनन्तशृङ्गवेरञ्च सूक्ष्मचूर्णानि कारयेत्। गुग्गुलं गुड़तुल्यञ्च गुलिकामुपयुज्य च ॥
वायुस्नायुगतञ्चैव अग्निमान्द्यञ्च नाशयेत् ॥ ७ ॥
शङ्खपुष्पीन्तु पुष्येण समुद्धृत्य सपत्रिकाम्। समूलां छागदुग्धेन अपस्मारमरं पिबेत् ॥८॥
अश्वगन्धाभयां चैव उदकेन समं पिबेत्। रक्तपित्तं विनश्येत नात्र कार्य्या विचारणा ॥९॥
हरीतकीकुष्ठचूर्णं कृत्वा आस्यञ्च पूरयेत्। शीतं पीत्वाथ पानीयं सर्वच्छर्दिनिवारणम् ॥१०॥
गुड़ूचीपद्मकारिष्टधन्याकं रक्तचन्दनम्। पित्तश्लेष्मज्वरच्छर्दिदाहतृष्णाघ्नमग्निकृत् ॥
ॐ हुं नम इति ॥ ११ ॥
श्रोत्रे बद्धा शङ्खपुष्पी ज्वरं मन्त्रेण वै हरेत् ॥
ॐ जम्भिनी स्तम्भिनी मोहय सर्वव्याधीन्मे वज्रेण ठः ठः सर्वव्याधीन्मे वज्रेण फट् इति ॥१२॥
पुष्पमष्टशतं जप्त्वा हस्ते दत्त्वा नखं स्पृशेत्। चातुर्थको ज्वरो रुद्र अन्ये चैव ज्वरास्तथा ॥
जम्बूफलं हरिद्रा च सर्पस्यैव च कञ्चुकम्। सर्वज्वराणां धूपोऽयं हरश्चातुर्थकस्य च ॥१४॥
करवीरं भृङ्गपत्रं लवणं कुष्ठकर्कटम्। चतुर्गुणेन मूत्रेण पचेत्तैलं हरेच्च तत् ॥
पामां विचर्चिकां कुष्ठमभ्यङ्गाद्धि व्रणानि वै ॥ १५ ॥
पिप्पलीमधुपानाच्च तथा मधुर भोजनात्।
प्लीहा विनश्यते रुद्र तथा शूरणसेवनात् ॥ १६ ॥
पिप्पलीञ्च हरिद्राञ्च गोमूत्रेण समन्विताम्। प्रक्षिपेच्च गुदद्वारे अर्शांसि विनिवारयेत् ॥१७॥
अजादुग्धमार्द्रकञ्च पीतं प्लीहादिनाशनम्। सैन्धवञ्च विड़ङ्गानि सोमराजी तु सर्षपाः ॥१८॥
रजनी द्वे विषञ्चैव गोमूत्रेणैव पेषयेत्। कुष्ठनाशश्च तल्लेपान्निम्बपत्रादिना तथा ॥१९॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे त्र्यशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥ १८३ ॥

चतुरशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

हरिरुवाच

रजनीकदलीक्षारलेपः सिध्मविनाशनः । कुष्ठस्य भागमेकं तु पथ्या भागद्वयं तथा ॥
उष्णोदकेन संपीत्वा कटिशूलविनाशनः ॥ १ ॥
अभयानवनीतञ्च शर्करापिप्पलीयुतम् । पानादर्शोहरं स्याच्च नात्र कार्य्या विचारणा ॥ २ ॥
अटरूषकपत्रेण घृतं मृद्वग्निना पचेत् । चूर्णं कृत्वा तु लेपोऽयं अर्शरोगहरः परः ॥ ३ ॥
गुग्गुलत्रिफलायुक्तं पीत्वा नश्येद्भगन्दरम् । अजाजीशृङ्गवेरञ्च दध्ना मण्डं विपाचयेत् ॥ ४ ॥
लवणेन तु संयुक्तं मूत्रकृच्छ्रविनाशनम् । यवक्षारं शर्करा च मूत्रकृच्छ्रविनाशनम् ॥ ५ ॥
चिताग्निः खञ्जरीटस्य विष्ठा फेनो हयस्य च । शोभाञ्जनं वासनेत्रं नर एतैस्तु धूपितः ॥
अदृश्यस्त्रिदशैः सर्वैः किं पुनर्मानवैः शिव ॥ ६ ॥
तिलतैले यवान्दग्ध्वा मसीं कृत्वा तु लेपयेत् । तेनैव सह तैलेन अग्निदग्धः सुखी भवेत् ॥ ७ ॥
लज्जालुः शरपुङ्खा च लेपः साज्योऽग्निनाशनः ।
ॐ नमो भगवते ठ ठ छिन्धि छिन्धि ज्वलनं प्रज्वलितं नाशय नाशय हु फट् ॥ ८ ॥
करे बद्ध्वा तु निर्गुण्ड्या मूलं ज्वरहरं द्रुतम् । मूलञ्च श्वेतगुञ्जायाः कृत्वा तत्सतखण्डकम् ॥
हस्ते बद्ध्वा नाशयेच्च अर्शास्येव न संशयः । विष्णुकान्ताजमूत्रेण चौरव्याघ्रादिरक्षणम् ॥१०॥
ब्रह्मदण्ड्यास्तु मूलानि सर्वकर्माणि कारयेत् । त्रिफलायाश्च चूर्णन्तु साज्यं कुष्ठविनाशनम् ॥
आज्यं पूनर्नवाबिल्वैः पिप्पलीभिश्च साधितम् । हरेद्धिक्कां श्वासकासं पीतं स्त्रीणाञ्च गर्भकृत् ॥
भक्षयेच्चैवमार्दानि पयसाज्येन पाचितम् । घृतशर्करया युक्तं शुक्रः स्यादक्षयस्ततः ॥१३॥
विडङ्गं मधुकं पाठां मांसीं सर्जरसं तथा । हरिद्रां त्रिफलाञ्चैवमपामार्गं मनःशिलाम् ॥१४॥
उडुम्बरं धातक्यांञ्च तिलतैलेन पेषयेत् । योनिं लिङ्गञ्च म्रक्षेत स्त्रीपुंसोः स्यात्प्रियं मिथः ॥१५॥
नमस्ते ईश वरदाय आकर्षिणि विकर्षिणि मुग्धे स्वाहा इति ।
योनिलिङ्गस्य तैलेन शङ्कर म्रक्षणात्ततः ॥ १६ ॥
पुनर्नवामृता दूर्वा कनकञ्चेन्द्रवारुणी । बीजैनैषां जातिकाया रसेन रसमर्दनम् ॥१७॥
मूषाया मध्यगं कृत्वा रसं मारणमीरितम् । मध्वाज्यसहितं दुग्धं वलीपलितनाशनम् ॥१८॥
मध्वाज्यं गड़ताम्रञ्च कारवल्लरसस्तथा । दहनाच्च भवेद्रौप्यं सुवर्णकरणं शृणु ॥१६॥
पीतं धुस्तूरपुष्पञ्च सीसकञ्च पलं मतम् । लाङ्गलिकायाः शाखा च स्वर्णञ्च दहनाद्भवेत् २०॥
तैलं धुस्तूरवृक्षस्य तेन दीपं प्रदीपयेत् । समाधावुपविष्टं तु गगनस्थो न पश्यति ॥२१॥

वृषस्य मृण्मयस्यैव युक्तो भेको निगृह्यते । शङ्करावयवैर्युक्तो धूपं घ्रात्वा च गर्जति ॥
विस्मयं कुरुते चैव वृषवन्नात्र संशयः ॥ २२ ॥
रात्रौ च सार्षपं तैलं कीटं खद्योतनामकम् । ताभ्यां दीपः प्रज्वलितो वाग्निज्वालकलापवत् २३॥
चूर्णं छुछुन्दरीदेहं दग्ध्वा रुद्र प्रलेपयेत् । तपन्ते तत्त्वणाद्दग्ध्वा यदि सम्यक् प्रलेपयेत् ॥
चन्दनेन भवेन्मोक्षः पानाल्लेपात्सुखी भवेत् ॥ २४ ॥
कुञ्जरस्य मदात्तस्य स्वयं नेत्रे शिवाञ्जयेत् । संग्रामं जयते सोऽपि महाशूरश्च जायते ॥२५॥
दन्तं डुण्डुभसर्पस्य मुखे संगृह्य वै क्षिपेत् । तिष्ठते जलमध्ये तु निर्विकल्पं स्थले यथा ॥२६॥
कुम्भीरनेत्रदंष्ट्राणि अस्थीनि रुधिरं तथा । वसातैलसमायुक्तमेकत्र तन्नियोजयेत् ॥
आत्मानं म्रक्षयेत्तेन जले तिष्ठेद्दिनत्रयम् ॥ २७ ॥
कुम्भीरकस्य नेत्राणि हृदयं कच्छपस्य च । मूषिकस्य वसास्थीनि शिशुमारवसा तथा ॥
एतान्येकत्र संलेपात् जले तिष्ठेद् यथा गृहे ॥ २८ ॥
लौहचूर्णं तक्रपीतं पाण्डुरोगहरं भवेत् । तण्डुलीयकगोत्तुरमूलं पीतं पयोऽन्वितम् ॥२९॥
कामलादिहरं पीतं मुखरोगहरं तथा । जातीमूलं तक्रपीतं कोलमूलं त्वजीर्णनुत् ॥३०॥
सतक्रकुशमूलं वा बाकुचीमूलमेव वा । काञ्जिकेन च बाकुच्या मूलं वै दन्तरोगनुत् ३१॥
तथेन्द्रवारुणीमूलं वारिपीतं विषादिहृत् । सुरभिकामूलपानाद्वातनाशो भवेच्छिव ॥३२॥
शिरोरोगहरं लेपाद्गुञ्जाचूर्णं सकाञ्जिकम् । बला चातिबला यष्टी शर्करा मधुसंयुता ॥३३॥
बन्ध्यागर्भकरं पीतं नात्र कार्य्या विचारणा। श्वेतापराजितामूलं पिप्पलीशुण्ठिकायुतम् ॥३४॥
परिपिष्टं शिरोलेपाच्छिरःशूलविनाशनम् । निर्गुण्डिकाशिखां पीत्वा गण्डमालाविनाशनम् ॥
केतकीपत्रजं क्षारं गुडेन सह भक्षयेत् । तक्रेण शरपुङ्खां वा पीत्वा प्लीहां विनाशयेत् ॥३६॥
मातुलुङ्गस्य निर्यासं गुड़ाज्येन समन्वितम् । वातपित्तजशूलानि हन्ति वै पानयोगतः ॥
शुण्ठी सौवर्चलं हिङ्गु पीत्वा हृदयरोगनुत् ॥३७॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे वैद्यकशास्त्रे चतुर-
शीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८४॥

पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

हरिरुवाच

ॐ नमो गणपतये इति । अयं गणपतेर्मन्त्रो धनविद्याप्रदायकः ॥ १ ॥

इममष्टसहस्रञ्च जप्त्वा बद्ध्वा शिखां ततः । व्यवहारे जयः स्याच्च शतं जापान्नृणां प्रियः ॥२॥
तिलानान्तु घृताक्तानां कृष्णानां रुद्र होमयेत् । अष्टोत्तरसहस्रं तु राजा वश्यस्त्रिभिर्दिनैः ॥३॥
अष्टम्याञ्च चतुर्दश्यामुपोष्याभ्यर्च्य विघ्नराट् । तिलाक्षतानां जुहुयादष्टोत्तरसहस्रकम् ॥
अपराजितः स्याद् युद्धे च सर्वे तञ्च सिषेविरे ॥४॥
जप्त्वा चाष्टसहस्रं तु ततश्चाष्टशतेन हि । शिखां बद्ध्वा राजकुले व्यवहारे जयो भवेत् ॥५॥
ह्रीं:कारं सविसर्गञ्च प्रातःकाले नरस्तु यः । स्त्रीणां ललाटे विन्यस्य वशतां नयति ध्रुवम् ॥६॥
सुसमाहितचित्तेन न्यस्य तु प्रमदालये । सोत्कामां कामिनीं कुर्य्यान्नात्र कार्य्या विचारणा ॥
जुहुयादयुतं यस्तु शुचिः प्रयतमानसः । दृष्टमात्रे तदा तस्य वश्यमायान्ति योषितः ॥८॥
मनःशिलापत्रकञ्च सगोरोचनकुङ्कुमम् । एभिः कृततिलकस्य वश्यमायान्ति योषितः ॥९॥
सहदेवी भृङ्गराजः श्वेताऽपराजिता वचा । तेनैव तिलकं कृत्वा त्रैलोक्यं वशमानयेत् ॥१०॥
गोरोचना मीनपित्तमाभ्याञ्च कृतवर्त्तिकः । यः पुमान् तिलकं कुर्य्याद्वामहस्तकनिष्ठया ॥
स करोति वशं सर्वं त्रैलोक्य नात्र संशयः ॥११॥
गोरोचना महादेव धातुशोणितभाविता । ततो वै कृततिलका सा नरं यं निरीक्षते ॥
तत्क्षणात्तं वश कुर्य्यान्नात्र कार्य्या विचारणा ॥१२॥
नागेश्वरञ्च शैलेयं त्वक्पत्रञ्च हरीतकी । चन्दनं कुष्ठसूदमैलारक्तशालिसमन्विता ॥१३॥
एतैर्धूपो वशकरः स्मरबाणैर्हरेश्वरः । रतिकाले महादेव पार्वतीप्रिय शङ्कर ॥१४॥
निजशुक्रं गृहीत्वा तु वामहस्तेन यः पुमान् । कामिनीचरणं वामं लिप्येत स्यात् स्त्रियः प्रियः ॥
सैन्धवञ्च महादेव पारावतमलं मधु । एभिर्लिप्ते तु लिङ्गे वै कामिनीवशकृद्भवेत् ॥१६॥
पुष्पाणि पञ्चरक्तानि गृहीत्वा यानि कानि च । तत्तुल्यञ्च प्रियङ्गुञ्च पेषयेदेकयोगतः ॥
अनेन लिप्तलिङ्गस्य कामिनी वशतामियात् ॥१७॥
हयगन्धा च मञ्जिष्ठा मालतीकुसुमानि च । श्वेतसर्षपमेतैश्च लिप्तलिङ्गः स्त्रियः प्रियः ॥१८॥
मूलं नु काकजङ्घाया दुग्धपीतं तु शोषनुत् । अश्वगन्धानागबलागुड़माषनिषेविणः ॥
रूपं भवेद्यथा तद्वन्नवयौवनचारिणाम् ॥१९॥
लौहचूर्णसमायुक्तं त्रिफलाचूर्णमेव वा । मधुना सेवितं रुद्र परिणामाख्यशूलनुत् ॥२०॥
क्वथितोदकपानं तु शम्बूकक्षारकं यथा । मृगशृङ्गं ह्यग्निदग्धं गव्याज्येन समन्वितम् ॥
पीतं हृत्पृष्ठशूलानां भवेन्नाशकरं शिव ॥२१॥
हिङ्गु सौवर्चलं शुण्ठी वृषध्वज महौषधम् । एभिस्तु क्वथितं वारि पीतं वै सर्वशूलनुत् ॥२२॥

अपामार्गस्य वै मूलं सामुद्रलवणान्वितम् । आस्वादितमजीर्णस्य शूलस्य स्याद्विमर्दनम् ॥२३॥
वटरोहाङ्कुरा रुद्र तण्डुलोदकघर्षितः । पीतः सतक्रोऽतीसारं क्षयं नयति शङ्कर ॥२४॥
अङ्कोटमूलकर्षार्द्धं पिष्टं तण्डुलवारिणा । सर्वातीसारग्रहणीं पीतं हरति भूतप ॥२५॥
मरीचशुण्ठिकुटजत्वक्चूर्णञ्च गुडान्वितम् । क्रमात्तद्द्विगुणं पीतं ग्रहणीव्याधिनाशनम् ॥२६॥
श्वेतापराजितामूलं हरिद्रासिक्थतण्डुलम् । अपामार्गत्रिकटुकमेषाञ्च वटिका शिव ॥
विसूचिकामहाव्याधिं हरत्येव न संशयः ॥२७॥
त्रिफलागुरु भूतेश शिलाजतु हरीतकी । एकैकमेषां चूर्णं तु मधुना च विमिश्रितम् ॥
पीतं सर्वञ्च मेहं तु क्षयं नयति शङ्कर ॥२८॥
अर्कक्षीरप्रस्थमेकं तिलतैलं तथैव च । मनःशिलामरोचानां सिन्दूरस्य पल पलम् ॥२६॥
चूर्णं कृत्वा ताम्रपात्रे त्वातपैः शोषयेत्ततः । पीतं स्नुहीगतं दुग्ध सैन्धव शूलनुद्भवेत् ॥३०॥
त्रिकटुत्रिफलालक्त तिलतैलं तथैव च । मनःशिलां निम्बपत्रं जातीपुष्पमजापयः ॥३१॥
तन्मूत्र शङ्खनाभिश्च चन्दनं घर्षयेत्ततः । एभिश्च वर्त्तिकां कृत्वा त्वक्षिणी चाञ्जयेत्ततः ॥
नश्यते पटल काचं पुष्पञ्च तिमिरादिकम् । विभीतकस्य वै चूर्णं समधु श्वासनाशनम् ॥३३॥
पिप्पलीत्रिफलाचूर्णं मधुसैन्धवसंयुतम् । सर्वरूपज्वरश्वासशोषपानसद्भवेत् ॥३४॥
देवदारोश्च वै चूर्णमजामूत्रेण भावयेत् । एकविंशति वै वारमक्षिणी तेन चाञ्चयेत् ॥
रात्र्यन्धता पटलता नश्येन्निर्लोमता तथा ॥३५॥
पिप्पली केतकं रुद्र हरिद्रामलकं वचा । सर्वाक्षिरोगा नश्येयुः सक्षीरादञ्जनात्ततः ॥३६॥
काकजङ्घाशिग्रुमूले मुखेन विधृते शिव । चर्विता दन्तकीटानां विनाशो हि भवेद्धर ॥३७॥
इति श्रीगारुडे महापुराणे पञ्चाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८५॥

षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

हरिरुवाच

पीतं सारं गुडूच्याश्च मधुना च प्रमेहनुत् । पीतं गोशालिकामूलं तिलदध्याज्यसंयुतम् ॥१॥
निरुद्धमूत्रं कथितं निवर्त्तयति शङ्कर । तथा हिक्कां हरेत्पीत सौवर्चलयुतञ्च वै ॥२॥
गोरक्षकर्कटीमूलं पिष्टं वास्योदकेन च । पीतं दिनत्रयेणैव नाशयेद्रुद्र शर्कराम् ॥३॥
पीतं वै मालतीमूलं ग्रीष्मकाले समाहितम् । साधितं छागदुग्धेन पीतं शर्करयान्वितम् ॥
हरेन्मूत्रनिरोधञ्च हरेद्वै पाण्डुशर्कराम् ॥४॥

द्विजयष्ट्याश्च वै मूलं पिष्टं तण्डुलवारिणा । गण्डमालां हरेल्लेपात्कुरण्डगलगण्डकौ ॥५॥
रसाञ्जनं हरीतक्याश्चूर्णं तेनैव गुण्टनात् । नश्येद्वै पुरुषव्याधीन्नात्र कार्य्या विचारणा ॥ ६ ॥
करवीरमूललेपाल्लेपात्पूगफलस्य च । पुंव्याधिर्नश्यते रुद्र योगमन्यं वदाम्यहम् ॥ ७ ॥
दन्तीमूलं हरिद्रा च चित्रकं तस्य लेपनात् । भगन्दरविनाशः स्यादन्यं योगं वदाम्यहम् ॥
जलौकाजग्धरक्तञ्च भगन्दरविनाशनम् ॥ ८ ॥
त्रिफलाजलघृष्टञ्च मार्जारास्थि विलेपितम् । ततो न प्रस्रवेद्रक्तं नात्र कार्य्या विचारणा ॥ ९ ॥
हरिद्राऽनेकवारञ्च स्नुहीक्षीरेण भाविता । वटिकाऽर्शोऽग्निनाशाय तल्लेपाद्वृषभध्वज ॥
घोषाफल सैन्धवञ्च पिष्ट्वा चार्शोहरं परम् ॥१०॥
गव्याज्यं साधितं पीत पलाशक्षारवारिणा । त्रिगुणेन त्रिकटुक अर्शांसि क्षपयेच्छिव ॥११॥
बिल्वस्य च फलं दग्धं रक्तार्शःप्रविनाशनम् । जग्ध्वा कृष्णतिलान्येव नवनीतयुतान्यपि ॥१२॥
यवक्षारं शुण्ठिचूर्णं युक्तं तुल्यगुडान्वितम् । अग्निवृद्धिं करोत्येव प्रत्यूषे वृषभध्वज ॥१३॥
शुण्ठ्या च क्वथितं वारि पीतं चाग्निं करोति वै । हरीतकीं सैन्धवञ्च चित्रकं रुद्र पिप्पली ॥
चूर्णमुष्णोदकेनैषां पीतं चातिक्षुधाकरम् । साज्यं शूकरमांसं वै पीतञ्चातिक्षुधाकरम् ॥१५॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे षडशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८६॥

सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

हरिरुवाच

हस्तिकर्णपलाशस्य पत्राणि चूर्णयेद्धर । सर्वरोगविनिर्मुक्तं चूर्णं पलशतं शिव ॥ १ ॥
सक्षीरं भक्षितं कुर्यात्सप्ताहेन वृषध्वज । नरं श्रुतिधरं रुद्र मृगेन्द्रगतिविक्रमम् ॥ २ ॥
पद्मरागप्रतीकाशं युक्तं दशशतायुषा । षोडशाब्दाकृतिं रुद्र सततं दुग्धभोजनात् ॥ ३ ॥
मधुसर्पिःसमायुक्तं जग्धमायुष्करं भवेत् । तज्जग्धं मधुना सार्द्धं दशवर्षसहस्रिकम् ॥ ४ ॥
कुर्य्यान्नरं श्रुतिधरं प्रमदाजनवल्लभम् । दध्ना नित्यं भक्षितं तु वज्रदेहकरं भवेत् ॥ ५ ॥
केशराजिसमायुक्तं नरं वर्षसहस्रिणम् । तच्च काञ्जिकसंयुक्तं नरं कुर्य्याच्च भक्षितम् ॥ ६ ॥
शतवर्षं दिव्यदेहं बलीपलितवर्जितम् । जग्धं त्रिफलया युक्तं चक्षुष्मन्तं करोति वै ॥ ७ ॥
अन्धः पश्येत्तु चूर्णस्य साज्यस्यैव तु भक्षणात् । महिषीक्षीरसंयुक्तो तल्लेपः कृष्णकेशकृत् ॥
खल्वाटस्य च वै केशा भवन्ति वृषभध्वज । तैलयुक्तेन चूर्णेन बलीपलितनाशनम् ॥ ९ ॥

तदुद्वर्त्तनमात्रेण सर्वरोगैः प्रमुच्यते । सच्छागक्षीरच्चूर्णेन दृष्टिः स्यान्मासतोऽञ्जनात् ॥१०॥
पलाशस्य च बीजानि श्रावणे वितुषाणि च । गृहीत्वा नवनीतेन तेषां चूर्णञ्च भक्षयेत् ॥११॥
कर्षार्द्धमेकं सेवेन नत्वा नित्यं हरिं प्रभुम् । षष्टिपुराणधान्यस्य पथ्यमम्बुवर्जं हर ॥
जीवेद्वर्षसहस्राणि बलीपलितवर्जितः ॥१२॥
भृङ्गराजस्य वै मूलं पुष्यर्क्षे तु समाहृतम् । गृहीत्वा तस्य चूर्णन्तु ससौवीरञ्च भक्षयेत् ॥१३॥
मासमात्रप्रयोगेण बलीपलितवर्जितः । शतानि पञ्च जीवेच्च नरो नागबलो भवेत् ॥
भवेच्छ्रुतिधरो रुद्र पुष्यर्क्षे चैव भक्षणात् ॥१४॥
इति श्रीगारुडे महापुराणे सप्ताशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८७॥

अष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः

हरिरुवाच

निर्व्रणः स्यात्पूयहीनो प्रहारो घृतपूरितः । अपामार्गस्य वै मूलं हस्ताभ्याञ्च विमर्दितम् ॥
तद्रसेन प्रहारस्य रक्तस्रावो न पूरणात् ॥१॥
रुद्र लाङ्गलिकामूलं हिज्जलस्य तथैव च । तेन व्रणमुखं लिप्तं शल्यो निःसरते व्रणात् ॥
चिरकालप्रविष्टोऽपि तेन मार्गेण शङ्कर ॥२॥
बालमूलं मेषशृङ्गीमूलं वा वारिघर्षितम् । तेन लिप्तं चिरं जातं नाड़ीव्रणं प्रशाम्यति ॥३॥
महिषीदधियुक्तेन जग्धं कोद्रवभक्तकम् । कङ्कुमूलस्य वै चूर्णं दत्तं नाड़ीव्रणापहम् ॥४॥
ब्रह्मयष्टिफलं पिष्टं वारिणा तेन लेपितम् । तेन घृष्टं रक्तदोषः प्रणश्यति न संशयः ॥५॥
यवभस्म विड़ङ्गञ्च गन्धपाषाणमेव च । शुण्ठिरेपाञ्चैव चूर्णं भावितं रुधिरेण वै ॥६॥
कृकलासस्य तल्लिप्तं विद्रधिं नाशयेच्छिव । शोभाञ्जनस्य मूलं तु अतसीमसिना सह ॥७॥
गौरसर्षपयुक्तानि सर्वाण्येतानि शङ्कर । पिष्टान्यनम्लतक्रेण ग्रन्थिकं नाशयेद्धि वै ॥८॥
श्वेतापराजितामूलं पिष्टं तण्डुलवारिणा । तेन नस्यप्रदानात्स्याद्धनवृन्दस्य विद्रवः ॥९॥
अगस्त्यपुष्पनस्यो वै समरीचस्तु शूलहृत् । भुजङ्गवर्म वै हिङ्गु निम्बपत्राणि वै यवाः ॥
गौरसर्षप एभिः स्याल्लेपो भूतहरः शिव ॥१०॥
गोरोचना मरीचानि पिप्पली सैन्धवं मधु । अञ्जनं कृतमेभिः स्याद्ग्रहभूतहरं शिव ॥११॥
गुग्गुलूलूकपुच्छाभ्यां धूपाद्ग्रहहरो भवेत् । चतुर्थकज्वरैर्मुक्तो कृष्णवस्त्रावगुण्ठितः ॥१२॥
इति श्रीगारुड़े महापुराणे अष्टाशीत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८८॥

ऊननवत्यधिकशततमोऽध्यायः

हरिरुवाच

श्वेतापराजितापुष्परसेनाक्ष्णोश्च पूरणे । पटलं नाशमायाति नात्र कार्य्या विचारणा ॥१॥
मूलं गोक्षुरकस्यैव चर्बित्वा नीललोहित । दन्तकीटव्यथा दग्धा सुरासुरविमर्दन ॥२॥
नारी पुष्पादि लेपित्वा गोर्क्षारेणोपवासतः । श्वेतार्कस्य तु वै मूलं तस्यास्तद्गुल्मशूलनुत् ॥३॥
श्वेतार्कपुष्पं विधिना गृहीतं पूर्वमन्त्रितम् । ऋतुशुद्धा च ललना कटौ बद्ध्वा प्रसूयते ॥४॥
हस्तबद्धं पलाशस्य अपामार्गस्य वा हर । मूलं सर्वज्वरहरं भूतप्रेतादनुद्धवेत् ॥५॥
पीतं वृश्चिकमूलञ्च पर्य्यूषितजलेन वै । साद्धं विनाशयेद्दाहज्वरञ्च परमेश्वर ॥६॥
शिखायाञ्चैव तद्बद्धं भवेदैकाहिकादिनुत् । वास्योदकेन पीतं तत्सर्वविषहरं भवेत् ॥७॥
यस्य लज्जालुकामूलं दीयते च स्वरेतसा । सार्द्धं स वैरं संयाति पुमान्स्त्री वा न संशयः ॥८॥
पिष्ट्वा गव्यघृतेनैव पाठामूलं पिबेत्तु यः । सर्वं विषं विनश्येत नात्र कार्य्या विचारणा ॥९॥
वास्योदकयुतं मूलं शिरीषस्य यथा तथा । रक्तचित्रकमूलस्य रसस्य भरणाद्धर ॥
कर्णयोः कामलाव्याधिनाशः स्यान्नात्र संशयः ॥१०॥
श्वेतकोकिलाक्षमूलं छागीक्षीरेण संयुतम् । त्रिसप्ताहेन वै पीतं क्षयरोगं क्षयं नयेत् ॥११॥
नारिकेलस्य वै पुष्पं छागक्षीरेण संयुतम् । पिबेच्च त्रिविधस्तस्य वातरक्तो विनश्यति ॥१२॥
कुर्य्यात्सुदर्शनामूलं माल्येन सुसमाहृतम् । कण्ठबद्धं त्र्याहिकादिग्रहभूतविनाशनम् ॥१३॥
पुष्ये धवलगुञ्जाया गृहीतं मूलमुत्तमम् । मुखे तु निहितं रुद्र हरेन्नानाविषं बहु ॥१४॥
हस्ते बद्धं काण्डयुक्तं कण्ठे बद्धं ग्रहादिहृत् । कृष्णायां तु चतुर्दश्यां कटिबद्धं समाहृतम् ॥
सिंहादिश्वापदाद्भीतिं हरेच्च नीललोहित ॥१५॥
विष्णुक्रान्तामूलमीश कर्णबद्धन्तु धारयेत् । पट्टसूत्रेण भूतेश मकरादिभयं न वै ॥१६॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे ऊननवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१८९॥

नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

हरिरुवाच

अपराजिताया मूलञ्च गोमूत्रेण समन्वितम् । पीतञ्चापि हरत्येव गण्डमालां न संशयः ॥१॥
अथेन्द्रवारुणीमूलं विधिना पीतमीश्वर । जिङ्गिण्या रसकं रुद्र शूकशिम्ब्या समन्वितम् ॥

शीतोदकञ्च तन्नस्यो बाहुग्रीवाव्यथां हरेत् ॥२॥
माहिषं नवनीतञ्च अश्वगन्धा च पिप्पली । वचा कुष्ठद्वयं लेपो लिङ्गस्रोतस्तनार्त्तिहृत् ॥३॥
कुष्ठनागबलाच्चूर्णं नवनीतसमन्वितम् । तल्लेपो युवतीनाञ्च स्तनं कुर्य्यान्मनोहरम् ॥४॥
इन्द्रवारुणिकामूलं यस्य नाम्ना सुदूरतः । निक्षिप्यते समुत्पाट्य तस्य प्लीहा विनश्यति ॥५॥
पुनर्नवायाः शुक्लाया मूलं तण्डुलवारिणा । पीतं विद्रधिनुत्स्याच नात्र कार्य्या विचारणा ६॥
कदलीपत्रक्षारं तु पानीयेन प्रसाधितम् । तस्यादनाद्विनश्यन्ति उदरव्याधयोऽखिलाः ॥७॥
कदल्या मूलमादाय गुडाज्येन समन्वितम् । अग्निना साधितं जग्धमुदरस्थक्रिमीन् हरेत् ॥८॥
नित्यं निम्बदलानाञ्च चूर्णमामलकस्य च । प्रत्यूषे भक्षयेच्चैव तस्य कुष्ठं विनश्यति ॥९॥
हरीतकी विडङ्गञ्च हरिद्रा सितसर्षपाः । सोमराजस्य मूलानि करञ्जस्य च सैन्धवम् ॥
गोमूत्रपिष्टान्येतानि कुष्ठरोगहराणि वै ॥१०॥
एकश्च त्रिफलाभागस्तथा भागद्वयं शिव । सोमराजस्य बीजानां जग्धं पथ्यया दद्रुनुत् ॥११॥
अम्लतक्रं सगोमूत्रं क्वथितं लवणान्वितम् । कांस्यघृष्टं ज्वरं लेपात्कुष्ठरोगविनाशनम् ॥१२॥
हरिद्रा हरितालञ्च दूर्वागोमूत्रसैन्धवम् । अयं लेपो हन्ति दद्रुं पामामेव गरं तथा ॥१३॥
सोमराजस्य बीजानि नवनीतयुतानि च । मधुनास्वादितानि स्युः शुक्लकुष्ठहराणि वै ॥
तक्रान्नदानतो रुद्र नात्र कार्य्या विचारणा ॥१४॥

श्वेतापराजितामूलं वर्त्तितं चास्य वारिणा । तल्लेपो रुद्र मासेन शुक्लकुष्ठविनाशनः ॥१५॥
माहिषं नवनीतञ्च सिन्दूरञ्च मरीचकम् । पामा विलेपनान्नश्येद्दुर्नामा वृषभध्वज ॥१६॥
विशुष्कगम्भारीमूलं पक्वं क्षीरेण संयुतम् । भक्षितं शुक्रपित्तस्य विनाशकरमीश्वर ॥१७॥
मूलकस्य तु बीजानि अपामार्गरसेन वै । पिष्टानि तेन लेपेन सिह्लिका रुद्र नश्यति ॥१८॥
कदलीक्षारसंयुक्ता हरिद्रा शिह्लिकापहा । रम्भापामार्गयोः क्षार एरण्डेन विमिश्रितः ॥
तदभ्यङ्गान्महादेव सद्यः सिध्म विनश्यति ॥१९॥
कुष्माण्डलताक्षारः सगोमूत्रश्च तत्त्वतः । जलपिष्टा हरिद्रा च सिद्धा मन्दानलेन हि ॥२०॥
माहिषेण पुरीषेण वेष्टिता वृषभध्वज । अस्या उद्वर्त्तनं कुर्य्यादङ्गसौष्ठवमीश्वर ॥२१॥
तिलसर्षपसंयुक्तं हरिद्राद्वयकुष्ठकम् । तेनोद्वर्त्तितदेहः स्याद्दुर्गन्धः सुरभिः पुमान् ॥२२॥
मनोहरश्चानुदिनं दूर्वाणां काकजङ्घया । अर्जुनस्य तु पुष्पाणि जम्बूपत्रयुतानि च ॥
सलोध्राणि च तल्लेपो देहदुर्गन्धतां हरेत् ॥२३॥
युक्तं लोध्रभवैर्नीरैश्चूर्णन्तु कनकस्य च । तेनोद्वर्त्तितदेहस्य न स्याद्ग्रीष्मं प्रबाधकम् ॥२४॥

दुग्धेनोपसि सेकश्च घर्मदोषश्च नश्यति । काकजङ्घोद्वर्त्तनं तु अङ्गरागकरं भवेत् ॥२५॥
यष्टीमधु शर्करा च वासकस्य रसो मधु । एतत्पीतं रक्तपित्तकामलापाण्डुरोगनुत् ॥२६॥
रक्तपित्तं हरेत्पीतो वासकस्य रसो मधु । प्रातःकाले तोयपानात्पीनसं दारुणं हरेत् ॥२७॥
विभीतकस्य वै चूर्णं पिप्पल्याः सैन्धवस्य च । पीतं सकाञ्जिकं हन्ति स्वरभेदं महेश्वर ॥२८॥
चूर्णमामलकं सेव्यं पीतं गव्यपयोऽन्वितम् । मनःशिला बलामूलं कोलपर्णश्च गुग्गुलुः ॥२९॥
जातिपत्रं कोलपत्रं तथा चैव मनःशिला । एभिश्चैव कृता वर्त्तिर्बदर्य्यग्नौ महेश्वर ॥
धूमपानं कासहरं नात्र कार्य्या विचारणा ॥३०॥
त्रिफलापिप्पलीचूर्णं भक्षितं मधुना युतम् । भोजनादौ हि समधु पिपासाज्वरितं हरेत् ॥३१॥
बिल्वमूलञ्च समधु गुडूचीक्कथितं जलम् । पीतं हरेच्च त्रिविधं छर्दिं नैवात्र संशयः ॥
पीता दूर्वा छर्दिनुत्स्यात्पिष्टा तण्डुलवारिणा ॥३२॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे नवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९०॥

एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

हरिरुवाच

पुनर्नवाया मूलञ्च श्वेतं पुष्ये समाहृतम् । वारि पीतं तस्य पार्श्वे भवनेषु न पन्नगाः ॥ १ ॥
तार्क्ष्यमूर्त्तिं वहेद्यो वै भल्लूकदन्तनिर्मिताम् । स पन्नगैर्न दश्येत यावज्जीवं वृषध्वज ॥ २ ॥
पिबेच्छाल्मलिमूलं यः पुष्यर्क्षे रुद्र वारिणा । तस्मिन्नपास्तदशना नागाः स्युर्नात्र संशयः॥ ३ ॥
पुष्ये लज्जालुकामूले हस्तबद्धे तु पन्नगान् । गृह्णीयाल्लेपतो वापि नात्र कार्य्या विचारणा ॥ ४ ॥
पुष्ये श्वेतार्कमूलं तु पीतं शीतेन वारिणा । नश्येत दंशकविषं करवीरादिजं विषम् ॥ ५ ॥
महाकालस्य वै मूलं पिष्टं तत्काञ्जिकेन वै । वोड्राणां डुण्डुभानाञ्च तल्लेपो हरते विषम् ॥ ६ ॥
तण्डुलीयकमूलञ्च पिष्टं तण्डुलवारिणा । घृतेन सह पीतं तु हरेत्सर्वविषाणि च ॥ ७ ॥
नीलीलज्जालुकामूलं पिष्टं तण्डुलवारिणा । पीत्वा तद्दंशकविषं नश्येदेकैर्न चोभयोः ॥ ८ ॥
कूष्माण्डकस्य स्वरसः सगुडः सहशर्करः । पीतः सदुग्धो नाशः स्याद्दंशकस्य विषस्य वै ॥ ९ ॥
तथा कोद्रवमूलस्य मोहस्य हर एव च । यष्टीमधुसमायुक्ता तथा पीता च शर्करा ॥१०॥
सदुग्धा च त्रिरात्रेण मूषविषहरा भवेत् । चुल्लकत्रयपानाच्च वारिणः शीतलस्य वै ॥११॥
ताम्बूलदग्धमुखस्य लालास्रावो विनश्यति । घृतं सशर्करं पीत्वा मद्यपानमदो न वै ॥१२॥

कृष्णाङ्कोठस्य मूलेन पीतं सुक्कथितं जलम् । ततो नश्येद्गरविषं त्रिरात्रेण महेश्वर ॥१३॥
उष्णं गव्यघृतञ्चैव सैन्धवेन समन्वितम् । नाशयेत्तन्महादेव वेदनां वृश्चिकोद्भवाम् ॥१४॥
कुसुम्भं कुङ्कुमञ्चैव हरितालं मनःशिला । करञ्जं पिषितं चैव अर्कमूलञ्च शङ्कर ॥१५॥
विषं नृणां विनश्येत एतेषां भक्षणाच्छिव । दीपतैलप्रदानाच्च दंशैराकीटजैः शिव ॥
खर्जूरकविषं नश्येत्तदा वै नात्र संशयः ॥१६॥
दंशस्थानं वृश्चिकस्य शुण्ठीतगरपादिका । नश्येन्मधुमद्विकाया एतेषा लेपनो विषम् ॥१७॥
शतपुष्पा सैन्धवञ्च साज्यं वा तेन लेपयेत् । शिरीषस्य तु बीजं वै सिद्धं क्षीरेण धर्षितम् ॥१८॥
तल्लेपेन महादेव नश्येत्कुक्कुरजं विषम् । ज्वलिताग्निर्वारिसेकी तथा दर्दुरजं विषम् ॥१९॥
धुस्तूरकरसं मिश्रं क्षीराज्यगुड़पानतः । मूलं विषं विनश्येत शशाङ्ककृतशेखर ॥२०॥
वटनिम्बशमीनाञ्च वल्कलैः कथितं जलम् । तत्सेकान्मुखदन्तानां नश्येद्वै विषवेदना ॥२१॥
लेपनाद्देवदारोश्च गैरिकस्य च लेपनात् । नागेश्वरो हरिद्रे द्वे तथा चैव मजीठिका ॥
एभिर्लेपाद्विनश्येत लूताविषमुमापते ॥२२॥
करञ्जस्य तु बीजानि वरुणच्छदमेव च । तिलाश्च सर्षपा हन्युर्विषं वै नात्र संशयः ॥२३॥
घृतकुमारीपत्रं वै दत्तं सलवणं हर । तुरङ्गमशरीराणां कण्डुर्नश्येद्दशाहतः ॥२४॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे एकनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९१॥

द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

हरिरुवाच

चित्रकस्याष्टभागाश्च शूरणस्य च षोडश । शुण्ठ्याश्चत्वारो भागाश्च मरिचानां द्वयं तथा ॥
त्रितयं पिप्पलीमूलं विड़ङ्गानां चतुष्टयम् । अष्टौ मुषलिकाभागास्त्रिफलायाश्चतुष्टयम् ॥ २ ॥
द्विगुणेन गुड़ेनैषां मोदकानि हि कारयेत् । तद्भक्षणमजीर्णं हि पाण्डुरोगञ्च कामलम् ॥
अतीसाराणि मन्दाग्निं प्लीहाञ्चैव निवारयेत् ॥ ३ ॥
बिल्वाग्निमन्थः श्योनाकपाटलापारिभद्रकम् । प्रसारण्यश्वगन्धा च बृहती कण्टकारिका ॥ ४ ॥
बला चातिबला रास्ना श्वदंष्ट्रा च पुनर्नवा । एरण्डः शारिवा पर्णी गुड़ूची कपिकच्छुका ॥
एषां दशपलान्भागान्क्वाथयेच्छलिलेऽमले । तेन पादावशेषेण तैलपात्रे विपाचयेत् ॥ ६ ॥
आजं वा यदि वा गव्यं क्षीरं दत्त्वा चतुर्गुणम् । शतावरीं सैन्धवञ्च तैलतुल्यं प्रदापयेत ॥

द्रव्याणि यानि पेष्याणि तानि वक्ष्यामि तच्छृणु । शतपुष्पा देवदारु बला पर्णी वचाऽगुरु ॥
कुष्ठं मांसी सैन्धवञ्च पलमेकं पुनर्नवा । पाने नस्ये तथाभ्यङ्गे तैलमेतत्प्रदापयेत् ॥ ९ ॥
हृच्छूलं पार्श्वशूलञ्च गण्डमालाञ्च नाशयेत् । अपस्मारं वातरक्तं वपुष्मांश्च पुमान्भवेत् ॥१०॥
गर्भमश्वतरी विन्द्यात्किं पुनर्मानुषी हर । अश्वानां वातभग्नानां कुञ्जराणां नृणां तथा ॥
तैलमेतत्प्रयोक्तव्यं सर्ववातविकारिणाम् ॥११॥

हिङ्गु तुम्बुरु शुण्टी च साध्यं तैलन्तु सार्षपम् । एतद्धि पूरणं श्रेष्ठं कर्णशूलापहं परम् ॥१२॥
शुष्कमूलकशुण्ठीनां क्षारो हिङ्गुलनागरम् । तक्रं चतुर्गुणं दद्यात्तैलमेतद्विपाचयेत् ॥१३॥
बाधिर्य्यं कर्णशूलञ्च पूयस्रावञ्च कर्णयोः । क्रिमयश्च विनश्यन्ति तैलस्यास्य प्रपूरणात् ॥१४॥
शुष्कमूलकशुण्ठीनां क्षारो हिङ्गुलनागरम् । शतपुष्पा वचा कुष्ठं दारुशिग्रुरसाञ्जनम् ॥१५॥
सौवर्च्चलं यवक्षारं सामुद्रं सैन्धवं तथा । ग्रन्थिकं विड़मुस्तं च मधु शुक्तं चतुर्गुणम् ॥१६॥
मातुलुङ्गरसश्चैव कदलीरस एव च । तैलमेभिर्विपक्तव्यं कर्णशूलापहं परम् ॥१७॥
बाधिर्य्यं कर्णनादश्च पूयस्रावश्च दारुणः । पूरणादस्य तैलस्य क्रिमयः कर्णयोर्हर ॥१८॥
सद्यो विनाशमायान्ति शशाङ्ककृतशेखर । क्षारतैलमिदं श्रेष्ठं मुखदन्तमलापहम् ॥१९॥
चन्दनं कुङ्कुमं मांसी कर्पूरो जातिपत्रिका । जातीकक्कोलपूगानां लवङ्गस्य फलानि च ॥२०॥
अगुरूणि च कस्तूरी कुष्ठं तगरपादिका । गोरोचना प्रियङ्गुश्च बला चैव तथा नखी ॥२१॥
सरलं सप्तपर्णञ्च लाक्षा चामलकी तथा । तथा तु पद्मकश्चैव एतैस्तैलं प्रसाधयेत् ॥२२॥
प्रस्वेदामलदुर्गन्धकण्डूकुष्ठहरं परम् । स्त्रीशतं गच्छते रुद्र वन्ध्यापि लभते सुतम् ॥२३॥
यमानी चित्रकं धन्यं त्र्यूषणं जीरकं तथा । सौवर्च्चलं विड़ङ्गञ्च पिप्पलीमूलराजिकम् ॥२४॥
एभिः पचेद्घृतप्रस्थं जलप्रस्थाष्टसंयुतम् । तथाऽर्शोगुल्मश्वयथुं हन्ति वह्निं करोति वै ॥२५॥
मरिचं त्रिवृतं कुष्ठं हरितालं मनःशिला । देवदारु हरिद्रे द्वे कुष्ठं मांसी च चन्दनम् ॥२६॥
विशाला करवीरञ्च अर्कक्षीरं शकृद्रसः । एषाञ्च कार्षिको भागो विषस्यार्द्धपलं भवेत् ॥२७॥
प्रस्थं कटुकतैलस्य गोमूत्रेऽष्टगुणे पचेत् । मृत्पात्रे लौहपात्रे वा शनैर्मृद्वग्निना पचेत् ॥२८॥
पामा विचर्च्चिका चैव दद्रु विस्फोटकानि च । अभ्यङ्गेन प्रणश्यन्ति कोमलत्वञ्च जायते ॥२९॥
प्रभूतान्यपि श्वित्राणि तैलेनानेन म्रक्षयेत् । चिरोत्थितमपि श्वित्रं विनष्टं तत्क्षणाद्भवेत् ॥३०॥
पटोलपत्रं कटुका मञ्जिष्ठा शारिवा निशा । जातीशमीनिम्बपत्रं मधुकं क्वथितं घृतम् ॥३१॥
एभिर्लेपात्स्युररुजो व्रणा विस्राविणः शिव । शङ्खपुष्पी वचा सोम ब्राह्मीब्रह्मसुवर्च्चलाः ॥३२॥
अभया च गुड़ूची च अटरूषकवागुजी । एतैरक्षसमैर्भागैर्घृतप्रस्थं विपाचयेत् ॥३३॥

कण्टकार्य्या रसप्रस्थं क्षीरप्रस्थसमन्वितम्। एतद्ब्राह्मीघृतं नाम स्मृतिमेधाकरं परम् ॥३४॥
अग्निमन्थो वचा वासा पिप्पलीमधुसैन्धवम्। सप्तरात्रप्रयोगेण किन्नरैरिव गायते ॥३५॥
अपामार्गः सगुडूची कुष्ठं शतावरी वचा। शङ्खपुष्पाभया साज्यं विडङ्गं भक्षितं समम्॥
त्रिभिर्दिनैर्नरं कुर्याद्ग्रन्थाष्टशतधारिणम् ॥३६॥
अद्भिर्वा पयसाज्येन मासमेकन्तु सेविता। वचा कुर्य्यान्नरं प्राज्ञं श्रुतिधारणसंयुतम् ॥३७॥
चन्द्रसूर्य्यग्रहे पीतं पलमेकं पयोऽन्वितम्। वचायास्तत्क्षणं कुर्य्यान्महाप्रज्ञायुतं नरम् ॥३८॥
भूनिम्बनिम्बत्रिफलापर्पटैश्च शृतं जलम्। पटोलीमुस्तकाभ्याञ्च वासकेन च नाशयेत् ॥३९॥
विस्फोटकानि रक्तञ्च नात्र कार्य्या विचारणा। केतकस्य फलं शङ्खं सैन्धवं त्र्यूषणं वचा॥
फेनो रसाञ्जनं क्षौद्रं विडङ्गानि मनःशिला। एषां वर्त्तिर्हन्ति काचं तिमिरं पटलं तथा ॥४१॥
प्रस्थद्वयं माषकस्य क्काथश्च द्रोणमम्भसाम्। चतुर्भागावशेषेण तैलप्रस्थं विपाचयेत् ॥४२॥
काञ्जिकस्याढकं दत्त्वा पिष्टान्येतानि दापयेत्। पुनर्नवा गोक्षुरकं सैन्धवं त्र्यूषणं वचा ॥४३॥
लवणं सुरदारु च मञ्जिष्ठा कण्टकारिका। नस्यात्पानाद्धरत्येव कर्णशूलं सुदारुणम् ॥४४॥
बाधिर्य्यं सर्वरोगांश्च अभ्यङ्गाच्च महेश्वर। पलद्वयं सैन्धवञ्च शुण्ठीचित्रकरञ्चकम् ॥४५॥
सौवीरपञ्चप्रस्थञ्च तैलप्रस्थं पचेत्ततः। असृग्दरस्वरह्लीहासर्ववातविकारनुत् ॥४६॥
उदुम्बरं वटं प्लक्षं जम्बूद्वयमथार्जुनम्। पिप्पलञ्च कदम्बञ्च पलाशं लोध्रतिन्दुकम् ॥४७॥
मधूकमाम्रसर्ज्जञ्च बदरं पद्मकेशरम्। शिरीषबीजङ्केतक एतत्क्काथेन साधितम्॥
तैलं हन्ति व्रणान्लेपाच्चिरकालभवानपि ॥४८॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे द्विनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९२॥

त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

हरिरुवाच

पलाण्डुजीरके कुष्ठमश्वगन्धाजमोदकम्। वचा त्रिकटुकञ्चैव लवणं चूर्णमुत्तमम् ॥ १ ॥
ब्राह्मीरसैर्भावितञ्च सर्पिर्मधुसमन्वितम्। सप्ताहं भक्षितं कुर्य्यान्निर्मलाञ्च मतिं पराम् ॥ २ ॥
सिद्धार्थकं वचा हिङ्गु करञ्जं देवदारु च। मञ्जिष्ठा त्रिफला विश्वं शिरीषो रजनीद्वयम् ॥ ३ ॥
प्रियङ्गु निम्ब त्रिकटु गोमूत्रेणेव घर्षितम्। नस्यमालेपनञ्चैव तथा चोद्वर्त्तनं हि तत् ॥ ४ ॥
अपस्मारविषोन्मादशोषालक्ष्मीज्वरापहम्। भूतेभ्यश्च भयं हन्ति राजद्वारे तु पूजनम् ॥ ५ ॥

निम्बं कुष्ठं हरिद्रे द्वे शिग्रुसर्षपजं तथा । देवदारु पटोलञ्च धन्यं तक्रेण घर्षितम् ॥ ६ ॥
देहं तैलाक्तगात्रं वै अनेनोद्वर्त्तनं तथा । पामाः कुष्ठानि नश्येयुः कण्डुं हन्ति च निश्चितम् ७॥
सामुद्रं सैन्धवं क्षारराजिकालवणं विड्म् । कटुलोहरजश्चैव त्रिवृत्सुवर्णकं समम् ॥
दधिगोमूत्रपयसा मन्दपावकपाचितम् ॥ ८ ॥
एतच्चाग्निबलं चूर्णं पिबेदुष्णेन वारिणा । जीर्णेऽजीर्णे तु भुञ्जीत मासादिघृतभोजनम् ॥ ९ ॥
नाभिशूलं मूत्रशूलं गुल्मप्लीहभवञ्च यत् । सर्वं शूलहरं चूर्णं जठरानलदीपनम् ॥
परिणामसमुत्थस्य शूलस्य च हितं परम् ॥१०॥
अभयामलकं द्राक्षा पिप्पली कण्टकारिका । शृङ्गी पुनर्नवा शुण्ठी जग्ध्वा कासं निहन्ति वै ॥
अभयामलकं द्राक्षा पाठा चैव विभीतकम् । शर्करा च समं चैव जग्धं ज्वरहरं भवेत् ॥१२॥
त्रिफला बदरं द्राक्षा पिप्पली च विरेककृत् । हरीतकी सोष्णनीरलवणञ्च विरेककृत् ॥१३॥
कूर्ममत्स्याश्वमहिषगोशृगालाश्च वानराः । बिडालबर्हिकाकाश्च वराहोलूककुक्कुटाः ॥१४॥
हंस एषाञ्च विण्मूत्रं मांसं वा रोमशोणितम् । धूपं दद्याज्ज्वरार्त्तेभ्य उन्मत्तेभ्यश्च शान्तये ॥
एतान्यौषधजातानि घ्नन्ति रोगान्भवेश्वर । निघ्नन्ति तांश्च रोगांश्च वृक्षमिन्द्राशनिर्यथा ॥१६॥
औषधे भगवान्विष्णुः स स्मृतो रोगनुद्भवेत् । ध्यातोऽर्चितः स्तुतो वापि नात्र कार्या विचारणा ॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे त्रिनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९३॥

चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः

हरिरुवाच

सर्वव्याधिहरं वक्ष्ये वैष्णवं कवचं शुभम् । येन रक्षा कृता शम्भोर्नात्र कार्य्या विचारणा ॥१॥
प्रणम्य देवमीशानमजं नित्यमनामयम् । देवं सर्वेश्वरं विष्णुं सर्वव्यापिनमव्ययम् ॥ २ ॥
बध्नाम्यहं प्रतीकारं नमस्कृत्य जनार्दनम् । अमोघाप्रतिमं सर्वं सर्वदुःखनिवारणम् ॥ ३ ॥
विष्णुर्मामग्रतः पातु कृष्णो रक्षतु पृष्ठतः । हरिर्मे रक्षतु शिरो हृदयञ्च जनार्दनः ॥ ४ ॥
मनो मम हृषीकेशो जिह्वां रक्षतु केशवः । पातु नेत्रे वासुदेवः श्रोत्रे सङ्कर्षणो विभुः ॥ ५ ॥
प्रद्युम्नः पातु मे घ्राणमनिरुद्धस्तु चर्म च । वनमाली गलस्यान्तं श्रीवत्सो रक्षतामधः ॥ ६ ॥
पार्श्वं रक्षतु मे चक्रं वामं दैत्यनिवारणम् । दक्षिणं तु गदादेवी सर्वासुरनिवारिणी ॥ ७ ॥
उदरं मुषलं पातु पृष्ठं मे पातु लाङ्गलम् । ऊर्ध्वं रक्षतु मे शार्ङ्गं जङ्घे रक्षतु नन्दकः ॥ ८ ॥

पार्ष्णी रक्षतु शङ्खश्च पद्मं मे चरणावुभौ । सर्वकार्य्यार्थसिद्ध्यर्थं पातु मां गरुडः सदा॥ ९ ॥
वराहो रक्षतु जले विषमेषु च वामनः । अटव्यां नारसिंहश्च सर्वतः पातुः केशवः ॥१०॥
हिरण्यगर्भो भगवान् हिरण्यं मे प्रयच्छतु । सांख्याचार्य्यस्तु कपिलो धातुसाम्यं करोतु मे ॥११॥
श्वेतद्वीपनिवासी च श्वेतद्वीपं नयत्वजः । सर्वान्शत्रून्सूदयतु मधुकैटभसूदनः ॥१२॥
विष्णुः सदा चाकर्षतु किल्बिषं मम विग्रहात् । हंसो मत्स्यस्तथा कूर्मः पातु मां सर्वतो दिशम्॥
त्रिविक्रमस्तु मे देवः सर्वान्पापान्निगृह्णतु । तथा नारायणो देवो बुद्धिं पालयतां मम ॥१४॥
शेषो मे निर्मलं ज्ञानं करोत्वज्ञाननाशनम् । वड़वामुखो नाशयतु कल्मषं यत्कृतं मया ॥१५॥
पद्भ्यां ददातु परमं सुखं मूर्ध्नि मम प्रभुः। दत्तात्रेयः कलयतु सपुत्रपशुबान्धवम् ॥१६॥
सर्वानरीन्नाशयतु रामः परशुना मम । रक्षोघ्नस्तु दाशरथिः पातु नित्यं महाभुजः ॥१७॥
शत्रून्हलेन मे हन्याद्रामो यादवनन्दनः । प्रलम्बकेशिचाणूरपूतनाकंसनाशनः ॥
कृष्णस्य यो बालभावः स मे कामान् प्रयच्छतु ॥१८॥
अन्धकारतमोघोरं पुरुषं कृष्णपिङ्गलम् । पश्यामि भयसंत्रस्तः पाशहस्तमिवान्तकम् ॥१९॥
ततोऽहं पुण्डरीकाक्षमच्युतं शरणं गतः । धन्योऽहं निर्भयो नित्यं यस्य मे भगवान्हरिः २०॥
ध्यात्वा नारायणं देवं सर्वोपद्रवनाशनम् । वैष्णवं कवचं बद्ध्वा विचरामि महीतले ॥२१॥
अप्रधृष्योऽस्मि भूतानां सर्वदेवमयो ह्यहम् । स्मरणाद्देवदेवस्य विष्णोरमिततेजसः ॥२२॥
सिद्धिर्भवतु मे नित्यं यथा मन्त्रमुदाहृतम् । यो मां पश्यति चक्षुर्भ्यां यञ्च पश्यामि चक्षुषा ॥
सर्वेषां पापदुष्टानां विष्णुर्बध्नाति चक्षुषी ॥ २३ ॥
वासुदेवस्य यच्चक्रं तस्य चक्रस्य ये त्वराः । ते हि छिन्दन्तु पापानि मम हिंसन्तु हिंसकान् ॥
राक्षसेषु पिशाचेषु कान्तारेष्वटवीषु च । विवादे राजमार्गेषु द्यूतेषु कलहेषु च ॥२५॥
नदीसन्तारणे घोरे संप्राप्ते प्राणसंशये । अग्निचौरनिपातेषु सर्वग्रहनिवारणे ॥२६॥
विद्युत्सर्पविषोद्वेगे रोगे च विघ्नसङ्कटे । जप्यमेतज्जपेन्नित्यं शरीरे भयमागते ॥२७॥
अयं भगवतो मन्त्रो मन्त्राणां परमो महान् । विख्यातं कवचं गुह्यं सर्वपापप्रणाशनम् ॥
स्वमायाकृतनिर्माणकल्पान्तगहनं महत् ॥ २८ ॥
ॐ अनाद्यन्त जगद्बीज पद्मनाभ नमोऽस्तु ते ।

ॐ कालाय स्वाहा । ॐ कालपुरुषाय स्वाहा । ॐ कृष्णाय स्वाहा । ॐ कृष्णरूपाय स्वाहा । ॐ चण्डाय स्वाहा । ॐ चण्डरूपाय स्वाहा । ॐ प्रचण्डाय स्वाहा । ॐ प्रचण्ड-रूपाय स्वाहा । ॐ सर्वाय स्वाहा । ॐ सर्वरूपाय स्वाहा । ॐ नमो भुवनेशाय

त्रिलोकधात्रे इह विटि सिविटि सिविटि स्वाहा। ॐ नमः अथोखेतये ये ये संज्ञायापात्र दैत्यदानवयक्षराक्षसभूतपिशाचकुष्माण्डान्तापस्मारकच्छर्दनदुर्द्धराणामेकाहिक - द्वितीय - तृतीय- चातुर्थक मौहूर्त्तिकदिनज्वररात्रिज्वरसन्ध्याज्वरसर्वज्वरादीनां लूताकीटकण्टकपूतनाभुजङ्ग- स्थावरजङ्गमविषादीनां इदं शरीरं मम पथ्यं तुम्बुरु स्फुट स्फुट प्रकोट लफट विकटदंष्ट्रः पूर्वतो रक्षतु। ॐ है है है है दिनकरसहस्रकालसमाहतो जय पश्चिमतो रक्ष। ॐ निवि निवि प्रदीप्तज्वलनज्वालाकार महाकपिल उत्तरतो रक्ष। ॐ विलि विलि मिलि मिलि गरुड़ि गरुड़ि गौरीगान्धारीविषमोहविषमविषमां मोहयतु स्वाहा दक्षिणतो रक्ष। मां पश्य सर्वभूतभयोपद्र- वेभ्यो रक्ष रक्ष जय जय विजय तेन हीयते रिपुत्रासाहंकृतवाद्यतोभय रुदय वोभयो अभयं दिशतु च्युतः तदुदरमखिलं विशन्तु युगपरिवर्त्तसहस्रसंख्येयोऽस्तमलमिव प्रविशन्ति रश्मयः। वासुदेवसङ्कर्षणप्रद्युम्नश्चानिरुद्धकः। सर्वज्वरान्मम घ्नन्तु विष्णुर्नारायणो हरिः॥ २९॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे वैष्णवकवचकथनं नाम
चतुर्नवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १९४॥

पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

हरिरुवाच

सर्वकामप्रदां विद्यां सप्तरात्रेण तां शृणु। नमस्तुभ्यं भगवते वासुदेवाय धीमहि॥ १॥
प्रद्युम्नायानिरुद्धाय नमः सङ्कर्षणाय च। नमो विज्ञानदात्रे च परमानन्दमूर्त्तये॥ २॥
आत्मारामाय शान्ताय निवृत्तद्वैतदृष्टये। त्वं रूपाणि च सर्वाणि तस्मात्तुभ्यं नमो नमः॥ ३॥
हृषीकेशाय महते नमस्तेऽनन्तमूर्त्तये। यस्मिन्निदं यतश्चैतत्तिष्ठत्यन्योऽपि जायते॥ ४॥
मृन्मयीं वहसि क्षोणीं तस्मै ते ब्रह्मणे नमः। यन्न स्पृशन्ति न विदुर्मनोबुद्धीन्द्रियासवः॥
अन्तर्बहिश्चरसि त्वं व्योमतुल्यं नमाम्यहम्॥ ५॥

ॐ नमो भगवते महापुरुषाय महाभूतपतये सकलसत्त्वभाविव्रीडनिकरकमलरेणूत्पल- निभधर्माख्यविद्यया चरणारविन्दयुगल परमेष्ठिन्नमस्ते अवापविद्याधरतां चित्रकेतोश्च विंदय॥ ६॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे पञ्चनवत्यधिकशततमोऽध्यायः॥ १९५॥

षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः

हरिरुवाच

अवाप जप्त्वा चेन्द्रत्वं विष्णुधर्माख्यविद्यया । सर्वान् शत्रून्विनिर्जित्य ताञ्च वक्ष्ये महेश्वर ॥१॥
पादयोर्जानुनोरूर्वोरुदरे हृद्यथोरसि । मुखे शिरस्यानुपूर्वं ओङ्कारादीनि विन्यसेत् ॥२॥
नमो नारायणायेति विपर्य्यासमथापि च । करन्यासं ततः कुर्य्याद्द्वादशाक्षरविद्यया ॥३॥
प्रणवादि यकारान्तमङ्गुल्यङ्गुष्ठपर्वसु । न्यसेद्धृदय ओङ्कारं मनुं मूर्ध्नि समस्तकम् ॥४॥
ओङ्कारं तु भ्रुवोर्मध्ये शिखानेत्रादिमूर्द्धतः । ॐ विष्णवे इति इमं मन्त्रन्यासमुदीरयेत् ॥५॥
आत्मानं परमं ध्यायेच्छेषं यच्छक्तिभिर्युतम् । मम रक्षां हरिः कुर्य्यान्मत्स्यमूर्त्तिर्जलेऽवतु ॥६॥
त्रिविक्रमस्तथाकाशे स्थले रक्षतु वामनः । अटव्यां नरसिंहस्तु रामो रक्षतु पर्वते ॥७॥
भूमौ रक्षतु वाराहो व्योम्नि नारायणोऽवतु । कर्मबन्धाच्च कपिलो दत्तो योगांश्च रक्षतु ॥८॥
हयग्रीवो देवतानां कुमारो मकरध्वजः । नारदोऽन्यार्चनाद्देवः कूर्मो वै नैर्ऋते सदा ॥९॥
धन्वन्तरिश्चापथ्याच्च नागः क्रोधवशात् किल । यज्ञो रोगात् समस्ताच्च व्यासोऽज्ञानाच्च रक्षतु ॥१०॥
बुद्धः पाषण्डसंघातात्कल्किरवतु कल्मषात् । पायान्मध्यन्दिने विष्णुः प्रातर्नारायणोऽवतु ॥११॥
मधुहा चापराह्णे च सायं रक्षतु माधवः । हृषीकेशः प्रदोषेऽव्यात्प्रत्यूषेऽव्याज्जनार्दनः ॥१२॥
श्रीधरोऽव्यादर्द्धरात्रे पद्मनाभो निशीथके । चक्रकौमोदकीबाणा घ्नन्तु शत्रूंश्च राक्षसान् ॥१३॥
शङ्खः पद्मं च शत्रुभ्यः शार्ङ्गं वै गरुडस्तथा । बुद्धीन्द्रियमनःप्राणान् पाहि च पार्श्वभूषणम् ॥१४॥
शेषं सर्वञ्च रूपञ्च सदा सर्वत्र पातु माम् । विदिक्षु दिक्षु च सदा नरसिंहश्च रक्षतु ॥१५॥
एतद्धारयमाणस्तु यं यं पश्यति चक्षुषा । स वशो स्याद्विपाप्मा च रोगमुक्तो दिवं व्रजेत् ॥१६॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे षण्णवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९६ ॥

सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

धन्वन्तरिरुवाच

गारुडं संप्रवक्ष्यामि गरुडेन उदीरितम् । कश्यपाय सुमित्रेण विषहृद् येन गारुडी ॥१॥
पृथिव्यापस्तथा तेजो वायुराकाशमेव च । क्षित्यादिष्वेव वर्गाश्च एते वै मण्डलाधिपाः ॥२॥
पञ्चतत्त्वे स्थिता देवाः प्राप्यंते विष्णुसेवकैः । दीर्घस्वरविभिन्नाश्च नपुंसकविवर्जिताः ॥३॥

षडङ्गः स शिरः प्रोक्तो हृच्छिरश्च शिखा क्रमात् । कवचं नेत्रमस्त्रं स्यान्न्यासः स्वस्थलसंस्थितिः ॥
सर्वसिद्धिपदस्यान्ते कालवह्निरधोऽनिलः । षष्ठस्वरसमायुक्तमर्द्धेन्दुसंयुतं परम् ॥५॥
परापरविभिन्नाश्च शिवस्योर्ध्वाध ईरिताः । रेफेणाङ्गेषु सर्वत्र न्यासं कुर्य्याद् यथाविधि ॥६॥
हृदि पाणितले देहे कर्णे नेत्रे करोति च । जपात्तु सर्वसिद्धिः स्याच्चतुर्वक्त्रसमायुतम् ॥७॥
चतुरस्रां सुविस्तारां पीतवर्णां तु चिन्तयेत् । पृथिवीं चेन्द्रदैवत्यां मध्ये वरुणमण्डलम् ॥८॥
मध्ये पद्मं तथा युक्तमर्द्धचन्द्रं सुशीतलम् । इन्द्रनीलद्युतिं सौम्यमथवाग्नेयमण्डलम् ॥९॥
त्रिकोणं स्वस्तिकैर्युक्तं ज्वालामालानलं स्मरेत् । भिन्नाञ्जननिभाकारं स्ववृत्तं बिन्दुभूषितम् ॥१०॥
क्षीरोर्मिसदृशाकारं शुद्धस्फटिकवर्चसम् । प्लावयन्तं जगत् सर्वं व्योमामृतमनुं स्मरेत् ॥११॥
वासुकिः शङ्खपालश्च स्थितौ पार्थिवमण्डले । कर्कोटः पद्मनाभश्च वारुणे तौ व्यवस्थितौ ॥१२॥
आग्नेयेन तु कुलिकस्तक्षश्चैव महाब्जकौ । वायुमण्डलसंस्थौ च पञ्च भूतानि विन्यसेत् ॥१३॥
अङ्गुष्ठादिकनिष्ठान्तमनुलोमविलोमतः । पर्वसन्धिषु च न्यस्या जया च विजया तथा ॥१४॥
आस्यादिस्वपुरस्थाने न्यासाः शिवषडङ्गकम् । कनिष्ठादौ हृदादौ च शिखायां करयोर्न्यसेत् ॥
व्यापकन्तु ततः पूर्वं क्रमादङ्गुलिपर्वसु । भूतानाञ्च पुनर्न्यासः शिवाङ्गानि तथैव च ॥१६॥
प्रणवादिनमश्चान्ते नाम्नैव च समन्विताः । सर्वमन्त्रेषु कथितो विधिः स्थापनपूजने ॥१७॥
आद्याक्षरं तन्नाम्नश्च मन्त्रोऽयं परिकीर्त्तितः । अष्टानां नागजातीनां मन्त्रः सान्निध्यकारकः ॥१८॥
ॐ स्वाहा क्रमशश्चैव पञ्चभूतपुरोगतम् । एष साक्षाद्भवेत्तार्क्ष्यः सर्वकर्मप्रसाधकः ॥१९॥
करन्यासं स्वरं कृत्वा शरीरे तु पुनर्न्यसेत् । ज्वलन्तं चिन्तयेत् प्राणमात्मसंशुद्धिकारकम् ॥
बीजं तु चिन्तयेत्पश्चाद्वर्षान्तममृतात्मकम् । एवञ्चाप्यायनं कृत्वा मूर्ध्नि सञ्चिन्त्य चात्मनः ॥
पृथिवीं पादयोर्दद्यात् तप्तकाञ्चनसप्रभाम् । अशेषभुवनाकीर्णां लोकपालसमन्विताम् ॥२२॥
एतां भगवतीं पृथ्वीं स्वदेहे विन्यसेद् बुधः । श्यामवर्णमयं ध्यायेत्पृथिवीद्विगुणं भवेत् ॥२३॥
ज्वालामालाकुलं दीप्तमाब्रह्म भुवनान्तिकम् । नाभिग्रीवान्तरे न्यस्य त्रिकोणं मण्डलं रवेः ॥२४॥
भिन्नाञ्जननिभाकारं निखिलं व्याप्य संस्थितम् । आत्ममूर्त्तिस्थितं ध्यायेद्वायव्यं तीक्ष्णमण्डलम् ॥
शिखोपरि स्थितं दिव्यं शुद्धस्फटिकवर्चसम् । अप्रमाणमहाव्योम व्यापकं चामृतोपमम् ॥२६॥
भूतन्यासं पुरा कृत्वा नागानाञ्च यथाक्रमम् । लकारान्ता बिन्दुयुता मन्त्रा भूतक्रमेण तु ॥२७॥
शिवबीज ततो दद्यात्तां ध्यायेच्च मण्डलम् । यच्चास्य क्रममाख्यातं मण्डलस्य विचक्षणः ॥
तस्य न चिन्तयेद्वर्णं कर्मकाले विधानवित् ॥२८॥
पादपदैस्तथा चञ्चुकृष्णनागैर्विभूषितम् । तार्क्ष्यं ध्यायेत् ततो नित्यं विषे स्थावरजङ्गमे ॥२९॥

ग्रहभूतपिशाचे च डाकिनीयक्षराक्षसे । नागैर्विवेष्टितं कृत्वा स्वदेहे विन्यसेच्छिवम् ॥३०॥
द्विधान्यासः समाख्यातो नागानाञ्चैव भूतयोः। एवं ध्यात्वा कर्म कुर्य्यादात्मतत्त्वादिकं क्रमात् ॥
त्रितत्त्वं प्रथमं दत्त्वा शिवतत्त्वं ततः परम् । यथा देहे तथा देवे अङ्गुलीनाञ्च पर्वसु ॥३२॥
देहन्यासं पुरा कृत्वा अनुलोमविलोमतः । कन्दं नालं तथा पद्मं धर्मं ज्ञानादिमेव च ॥३३॥
द्वितीयस्वरसम्भिन्नं वर्गान्तेन तु पूजयेत् । क्षौमिति कर्णिकामध्ये मूर्ध्नि रेफेण संयुतम् ॥३४॥
अ क च ट त प य शा वर्गाः पूर्वादिके न्यसेत् । पत्रान्तकेशरान्ते तु द्वौ द्वौ पूर्वादिकौ तथा ॥३५॥
केशरे तु स्वरान्यस्त्वा ईशान्तान् षोडशार्चयेत् । वामाद्याः शक्तयः प्रोक्तास्त्रितत्त्वं तु ततो न्यसेत् ॥
आवाहयेत्ततो मूर्ध्नि शिवमङ्गं ततः परम् । कर्णिकायां न्यसेद्देवं साङ्गं तत्र पुरःसरम् ॥३७॥
पृथिवी पश्चिमे पत्रे आपश्चोत्तरसंस्थिताः । तेजस्तु दक्षिणे पत्रे वायुं पूर्वेण पूजयेत् ॥३८॥
स्वबीजं मूर्त्तिरूपं तु प्रागुक्तं परिकल्पयेत् । यं वायुमूलं नैर्ऋत्ये रेफस्त्वनलसंस्थितः ॥३९॥
वं च ईशे सदा पूज्य ॐ हृदिस्थश्च पूजयेत् । तन्मात्रान् भूतमात्रांस्तान् बहिरेव प्रपूजयेत् ॥४०॥
शिवाङ्गानि ततः पश्चाद् ध्यात्वा संपूजयेत्ततः। आग्नेय्यां हृदयं पूज्य शिर ईशानगोचरे ॥४१॥
नैर्ऋत्ये तु शिखां दद्याद्वायव्यां कवचं न्यसेत् । अस्त्रं तु बाह्यतो दद्यान्नेत्रमुत्तरसंस्थितम् ॥४२॥
पत्राग्रे कर्णिकाग्रे तु वीजानि परिपूजयेत् । अनन्तादिकुलीरान्ता अष्टौ नागाः क्रमात् स्थिताः ॥
पूर्वादिकक्रमेणैव ईशपर्य्यन्तमेव च । पूजयेच्च सदा मन्त्री विधानेन पृथक् पृथक् ॥४४॥
हृदि पद्मे विधानेन शिलादौ दत्तमण्डले । एतत् कार्य्यं समुद्दिष्टं नित्यनैमित्तिकेऽपि च ॥४५॥
आत्मानं चिन्तयेन्नित्यं कामरूपं मनोहरम् । प्लावयन्तं जगत् सर्वं सृष्टिसंहारकारकम् ॥४६॥
ज्वालामालाभिरुद्दीप्तं आब्रह्मभुवनान्तिकम् । दशबाहुं चतुर्वक्त्रं पिङ्गाक्षं शूलपाणिनम् ॥४७॥
दंष्ट्राकरालमत्युग्रं त्रिनेत्रं शशिशेखरम् । भैरवं तु स्मरेत् सिद्धयै गरुड़ं सर्वकर्मसु ॥४८॥
नागानां नाशनार्थाय गरुड़ं भीमभीषणम् । पादौ पत्राणि संस्थाप्य दिशः पक्षांस्तु संश्रिताः ॥
सप्तस्वर्गा उरसि च ब्रह्माण्डं कण्ठमाश्रितम् । रुद्रादि ईशपर्यन्तं शिरस्तस्य विचिन्तयेत् ॥५०॥
सदाशिवशिखान्तस्थं शक्तित्रितयमेव च । परात्परं शिवं साक्षात्तार्क्ष्यं भुवननायकम् ॥५१॥
त्रिनेत्रमुग्ररूपञ्च विषनागक्षयङ्करम् । ग्रसनं भीमवक्त्रञ्च गरुड़ं मन्त्रविग्रहम् ॥५२॥
कालाग्निमिव दीप्तञ्च चिन्तयेत् सर्वकर्मसु । एवं न्यासविधिं कृत्वा यं यं मनसि चिन्तयेत् ॥
तत्तस्यैव भवेत् साध्यं नरो वै गरुड़ायते । प्रेता भूतास्तथा यक्षा नागा गन्धर्वराक्षसाः ॥
दर्शनात्तस्य नश्यन्ति ज्वराश्चातुर्थिकादयः ॥५४॥

धन्वन्तरिरुवाच

एवं स गरुडं प्रोचे गरुडः कश्यपाय च । महेश्वरो यथा गौरीं प्राह विद्यां तथा शृणु ॥५५॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे सप्तनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१७४॥

अष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

भैरव उवाच

नित्यक्लिन्नामथो वक्ष्ये त्रिपुरां भुक्तिमुक्तिदाम् ।

ॐ ह्रीं आगच्छ देवि ! ऐं ह्रीं ह्रीं रेखाकरणम् । ॐ ह्रीं क्लेदिनी भं नमः । मदनक्षोभिना तथा । ऐं यं क्रीं वा गणरेखया । ह्रीं मदनान्तरे च । ऐं ह्रीं ह्रीं च निरञ्जना वागति मदनान्तरेखे खनेत्रावलीति च । वेगवति महाप्रेतासनाय च पूजयेत् । ॐ ह्रीं क्रैं नें क्रैं नित्ये मदद्रवे क्रीं नमः । ऐं ह्रीं त्रिपुरायै नमः । ॐ ह्रीं क्रीं पश्चिमवक्त्रं ॐ ऐं ह्रीं ह्रीं च तथोत्तरम् । ऐं ह्रीं दक्षिणं चोर्ध्वं वक्त्रं तु पश्चिमम् । ॐ ह्रीं पाशाय, क्रीं अङ्कुशाय, ऐं कपालाय नमः । आद्यं भयं ऐं ह्रीं ह्रीं च तथा शिरः तथा शिखायै कवचे । ऐं ह्रीं क्रीं अस्त्राय फट् ॥ १ ॥

पूर्वे कामरूपाय असिताङ्गाय भैरवाय नमो ब्रह्माण्यै । दक्षिणे चैव कन्दाय वं नमः । रुरुभैरवाय माहेश्वर्या आवाहयेत् ॥२॥

तथा पश्चिमे चण्डाय वै नमः कौमार्य्यै चोत्तरे चोल्काय क्रोधाय नमः वैष्णव्यै ॥३॥

अग्निकोणे अघोराय उन्मत्तभैरवायेति वाराह्यै । रक्षःकोणे साराय कपालिने भैरवाय माहेन्द्रयै ॥ ४ ॥

वायुकोणे जालन्धराय भीषणाय भैरवाय चामुण्डायै । ईशकाणके वटुकाय संहारश्च- ण्डिकाञ्च प्रपूजयेत् ॥ ५ ॥

रतिप्रीतिकामदेवान्पञ्चबाणान्यजेदथ । ध्यानार्चनाज्जप्यहोमाद्देवी सिद्धा च सर्वदा ॥६॥

नित्या च त्रिपुरा व्याधिं हन्याज्ज्वालामुखी क्रमात् ।
ज्वालामुखीक्रमं वक्ष्ये सा पूज्या मध्यतः शुभा ॥७॥

नित्यारुणा मदनातुरा महामोहा प्रकृत्यपि । कलना श्रीभारती च आकर्षणी महेन्द्राणी ॥८॥

ब्रह्माणी चैव माहेशी कौमारी वैष्णवी तथा । वाराही चैव माहेन्द्री चामुण्डा चापराजिता ॥

विजया चाजिता चैव मोहिनी त्वरिता तथा । स्तम्भिनी जृम्भिणी पूज्या कालिका पञ्चबाह्यतः ॥
ज्वालामुखीक्रमं पूज्य विषादिहरणं भवेत् ॥१०॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे अष्टनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ॥१९८॥

नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः

भैरव उवाच

अपि चूडामणिं वक्ष्ये शुभाशुभविशुद्धये । सूर्यं देवीं गणं सोमं स्मृत्वा तु विलिखेन्नरः ॥ १ ॥
त्रिरेखातो मूर्त्तिकाभा अथवा प्रश्नवाक्यतः । दिशास्थानप्रसूतो वा ध्वजादीन्गणयेत्क्रमात् ॥२॥
ध्वजो धूमोऽथ सिंहश्च श्वा वृषः खरदन्तिनः । ध्वांक्षश्च अष्टमो ज्ञेयो नाममन्त्रैश्च तान्न्यसेत् ॥

ध्वजस्थाने ध्वजं दृष्ट्वा राज्यचिन्ताधनादिकम् ।
ध्वजस्थाने स्थितो धूम्रो धातुचिन्ता च लाभकम् ॥४॥
ध्वजस्थाने स्थिते सिंहे धनलाभादिकं भवेत् ।
ध्वजस्थाने स्थिते श्वाने दासीचिन्तासुखादिकम् ॥५॥

ध्वजस्थाने वृषं दृष्ट्वा स्थानचिन्ता च लाभकम् । ध्वजस्थाने खरं दृष्ट्वा दुःखक्लेशादिकं भवेत् ॥
ध्वजस्थाने गजं दृष्ट्वा स्थानचिन्ताजयादिकम् । ध्वजस्थाने तथा ध्वांक्षे क्लेशचिन्ता धनक्षयः ॥
धूम्रस्थाने ध्वजं दृष्ट्वा पूर्वं दुःखं ततो धनम् । धूम्रे धूम्रं तथा दृष्ट्वा कलिदुःखादिकं भवेत् ॥८॥
धूम्रस्थाने स्थिते सिंहे मनश्चिन्ताधनादिकम् । धूम्रस्थाने स्थिते श्वाने जयलाभादिकं भवेत् ॥
धूम्रस्थाने वृषं दृष्ट्वा नारीगोऽश्वधनादिकम् । धूम्रस्थाने खरं दृष्ट्वा व्याधिश्चापि धनक्षयः १०॥
धूम्रस्थाने गजे दृष्टे राज्यलाभजयादिकम् । धूम्रस्थाने स्थिते ध्वांक्षे धनराज्यविनाशनम् ॥
सिंहस्थाने ध्वजं दृष्ट्वा राज्यलाभादि निर्दिशेत् । सिंहस्थाने स्थिते धूम्रे कन्याप्राप्तिधनादिकम् ॥
सिंहस्थाने स्थिते सिंहे जयो मित्रसमागमः । सिंहस्थाने स्थिते श्वाने स्त्रीचिन्ता ग्रामलाभकम् ॥
सिंहस्थाने वृषं दृष्ट्वा गृहक्षेत्रार्थलाभकम् । सिंहस्थाने गजं दृष्ट्वा ग्रामस्वामित्वमेव च ॥१४॥
सिंहस्थाने गजं दृष्ट्वा आरोग्यायुःसुखादिकम् । सिंहस्थाने स्थिते ध्वांक्षे कन्याधान्यगुणादिकम् ॥
श्वानस्थाने ध्वजं दृष्ट्वा स्थानचिन्तासुखादिकम् । श्वानस्थाने स्थिते धूम्रे कलहं कार्य्यनाशनम् ॥
श्वानस्थाने स्थिते सिंहे कार्य्यसिद्धिर्भविष्यति । श्वानस्थाने स्थिते श्वाने धननाशो भविष्यति ॥
श्वानस्थाने वृषं दृष्ट्वा रोगी रोगाद्विमुच्यते । श्वानस्थाने खरं दृष्ट्वा कलहस्य भयं भवेत् ॥१८॥

श्वानस्थाने गजं दृष्ट्वा पुत्रभार्य्यासमागमः । श्वानस्थाने स्थिते ध्वांक्षे पीड़ा स्यात्कुलनाशनम् ।।
वृषस्थाने ध्वजं दृष्ट्वा राजपूजासुखादिकम् । वृषस्थाने स्थिते धूम्रे राजपूजासुखादिकम् ।।२०।।
वृषस्थाने स्थिते सिंहे सौभाग्यञ्च धनादिकम् । वृषस्थाने स्थिते श्वाने बलश्रीकाम ईरितः ।।
वृषस्थाने वृषं दृष्ट्वा कीर्त्तितुष्टिसुखादिकम् । वृषस्थाने खरं दृष्ट्वा महालाभादिकं भवेत् ।।२२।।
वृषस्थाने गजं दृष्ट्वा स्त्रीगजादिसमागमः । वृषस्थाने स्थिते ध्वांक्षे स्थानमानसमागमः ।।२३।।
खरस्थाने ध्वजं दृष्ट्वा रोगशोकादिकं भवेत् । खरस्थाने स्थिते धूम्रे तस्करादिभयं भवेत् ।।२४।।
खरस्थाने स्थिते सिंहे पूजाश्रीविजयादिकम् । खरस्थाने स्थिते श्वाने सन्तापधननाशनम् ।।
खरस्थाने वृषं दृष्ट्वा सुखं प्रियसमागमः । खरस्थाने खरं दृष्ट्वा दुःखपीड़ादि निर्दिशेत् ।।२६।।
खरस्थाने गजं दृष्ट्वा सुखपुत्रादिक भवेत् । खरस्थाने स्थिते ध्वांक्षे कलहं व्याधिरेव च ।।
गजस्थाने ध्वजं दृष्ट्वा स्त्रीजयश्रीसुखादिकम् । गजस्थाने स्थिते धूम्रे धनधान्यसमागमः ।।
गजस्थाने स्थिते सिंहे जयसिद्धिसमागमः । गजस्थाने स्थिते श्वाने आरोग्यसुखसम्पदः ।।२९।।
गजस्थाने वृषं दृष्ट्वा राजमानधनादिकम् । गजस्थाने खरं दृष्ट्वा पूर्वं दुःखं ततः सुखम् ।।३०।।
गजस्थाने गजं दृष्ट्वा क्षेत्रधान्यसुखादिकम् । गजस्थाने स्थिते ध्वांक्षे धनधान्यसमागमः ।।३१।।
ध्वांक्षस्थाने ध्वजं दृष्ट्वा कार्य्यनाशो भविष्यति । ध्वांक्षस्थाने स्थिते धूम्रे कलिदुःखं गमिष्यति ।।
ध्वांक्षस्थाने स्थिते सिंहे विग्रहो दुःखमेव च । ध्वांक्षस्थाने स्थिते श्वाने गृहभङ्गभयादिकम् ।।
ध्वांक्षस्थाने वृषं दृष्ट्वा स्थानभ्रंशभयादिकम् । ध्वांक्षस्थाने खरं दृष्ट्वा धननाशपराजयः ।।३४।।
ध्वांक्षस्थाने गजं दृष्ट्वा धनकीर्त्त्यादिकं भवेत् । ध्वांक्षस्थाने स्थिते ध्वांक्षे विदेशगमनादिकम् ।।

इति श्रीगारुड़े महापुराणे नवनवत्यधिकशततमोऽध्यायः ।।१९९।।

द्विशततमोऽध्यायः

भैरव उवाच

वक्ष्ये वायुजयं देवि जयाजयविदेशकम् । वाय्वग्निजलशक्राख्यं मङ्गलानाञ्चतुष्टयम् ।। १ ।।
वामदक्षिणसंस्थश्च वायुश्च बहुलो भवेत् । ऊर्ध्ववाही भवेदग्निरधस्तु वरुणो भवेत् ।। २ ।।
माहेन्द्रो मध्यसंस्थस्तु शुक्लपक्षे तु वामगः । कृष्णपक्षे दक्षिणग उदयस्य त्र्यहं त्र्यहम् ।। ३ ।।
वहेत प्रतिपादाद्ये च विपरीते भवेन्नतिः । उदयं सूर्य्यमार्गेण चन्द्रेणास्तमयो यदि ।। ४ ।।
वर्द्धन्ते गुणसंघाता अन्यथा विघ्नमौचितम् । संक्रान्त्यः षोडश प्रोक्ता दिवारात्रौ वरानने ।। ५ ।।

यदा च संक्रमेद्वायुरर्द्धार्द्धप्रहरे स्थितः । स्वास्थ्यहानिस्तदा ज्ञेया वायुर्भ्रमति देहिषु ॥ ६ ॥
दक्षिणे च पुटे वायुर्हितो भोजनमैथुने । खङ्गहस्ते जये युद्धे रिपून्कामसमन्वितः ॥ ७ ॥
वामेन गमनं श्रेष्ठं सर्वकार्य्येषु भूषितम् । वायुर्वहति तत्रस्थः प्रश्नो भूतस्य शोभनः ॥ ८ ॥
माहेन्द्रे वारुणे वाते कोऽपि दोषो न जायते । अनावृष्टिर्दक्षवाहे वृष्टिः स्याद्वामवाहके ॥ ९ ॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे द्विशततमोऽध्यायः ॥२००॥

एकाधिकद्विशततमोऽध्यायः

धन्वन्तरिरुवाच

हयायुर्वेदमाख्यास्ये हयसर्वार्थलक्षणम् । काकतुण्डी कृष्णजिह्वा वृक्षास्यश्चोष्णतालुकः ॥ १ ॥
कराली हीनदन्तश्च शृङ्गी विरलदन्तकः । एकाण्डश्चैव जाताण्डः कञ्चुकी द्विखुरी स्तनी ॥२॥
मार्जारपादो व्याघ्राभः कुष्ठविद्रधिसन्निभः । यमजो वामनश्चैव मार्जारः कपिलोचनः ॥ ३ ॥
एतद्दोषी हयस्त्याज्य उत्तमोऽश्वस्तुरुष्कजः । मध्यमः पञ्चहस्तश्च कनीयांश्च त्रिहस्तकः ॥ ४ ॥
असंहता ये च वाहा ह्रस्वकर्णास्तथैव च । शबलाभाः प्रभावेषु न दीनाश्चिरजीविनः ॥ ५ ॥
रेवन्तपूजनाद्धोमाद्दत्ताश्च द्विजभोजनात् । सरलं निम्बपत्राणि गुग्गुलुः सर्षपा घृतम् ॥ ६ ॥
तिलञ्चैव वचा हिङ्गु बध्नीयाद्वाजिनो गले । आगन्तुजं दोषजं तु व्रणं द्विविधमीरितम् ॥ ७ ॥
चिरपाकं वातजं तु श्लेष्मजं क्षिप्रपाकिकम् । कण्ठदाहात्मकं पित्ताच्छोणितान्मन्दवेदनम् ॥८ ॥
आगन्तुजं तु शास्त्राद्यैर्दुष्टव्रणविशोधनम् । एरण्डमूलं हरिद्रे द्वे चित्रकं विश्वभेषजम् ॥ ९ ॥
रसोनं सैन्धवं वापि तक्रकाञ्जिकपेषितम् । तिलसक्तुकपिण्डिका दधियुक्ता ससैन्धवा ॥
निम्बपत्रयुतं पिण्डं व्रणशोधनरोपणम् ॥१०॥
पटोलं निम्बपत्रञ्च वचा चित्रकमेव च । पिप्पली शृङ्गवेरञ्च चूर्णमेकत्र कारयेत् ॥११॥
एतत्पानं क्रिमिश्लेष्ममदानिलविनाशनम् । निम्बपत्रं पटोलञ्च त्रिफला खदिरं तथा ॥१२॥
क्वाथयित्वा ततो वाहं स्रुतरक्तं विचक्षणः । त्र्यहमेव प्रदातव्यं हयकुष्ठोपशान्तये ॥१३॥
सव्रणेषु च कुष्ठेषु तैलं सर्षपजं हितम् । लशुनादिकषायश्च पानभुक्तश्चोपशान्तये ॥१४॥
मातुलुङ्गरसोपेतं मांसीनां रसकेन वा । सद्यो दद्यात्तत्र नस्यं अन्यैर्वा तैः सुसंयुतैः ॥१५॥
पलद्वयं प्रथमेऽह्नि एकैकपलवृद्धितः । यावद्दिनानि पूर्णानि पलान्यष्टादशोत्तमे ॥१६॥

अधमेऽष्टपलानि स्युर्मध्यमे स्युश्चतुर्दश । शरन्निदाघयोर्नैव देयं नैव तु दापयेत् ॥१७॥
तैलेन वातिके रोगे शर्कराज्यपयोन्वितैः । कटुतैलैः कफे व्योषैः पित्ते त्रिफलवारिभिः ॥१८॥
शालिषष्टिकदुग्धाशी हयो हि न जुगुप्सितः । पक्वजम्बूनिभो हेमवर्णोऽश्वो न जुगुप्सितः ॥१९॥
अर्द्धप्रहरणे धूर्य्ये गुग्गुलुं प्राशयेद्धयम् । भोजयेत्पायसं दुग्धं सत्वरं सुस्थिरो हयः ॥२०॥
विकारे भोजने दुग्धं शाल्यन्नं वातले ददेत् । कर्षमांसरसैः पित्ते मधुमुद्गरसाज्यकैः ॥२१॥
कफे मुद्गान्कुलत्थान्वा कटुतिक्तान्कफे हये । बाधिर्य्ये व्याधिते ग्रासे त्रिदोषादौ तु गुग्गुलुः ॥
घासैर्दूर्वा सर्वरोगे प्रथमेऽह्नि पलं ददेत् । विवर्द्धयेत्ततो कर्षमेकाह्नि पलपञ्चकम् ॥२३॥
पाने च भोजने चैव अशीतिपलकं वरम् । मध्ये षष्टिश्चाधमेषु चत्वारिंशच्च भोगिषु ॥२४॥
व्रणे कुष्ठेषु खञ्जेषु त्रिफलाक्वाथसंयुतम् । मन्दाग्नौ शोथरोगे च गवां मूत्रेण योजितम् ॥२५॥
वातपित्ते व्रणे व्याधौ गोक्षीरं घृतसंयुतम् । देयं कृशानां पुष्ट्यर्थं मांसैर्युक्तञ्च भोजनम् ॥२६॥
सुपिष्टायाः प्रदातव्यं गुडूच्याः पलपञ्चकम् । प्रभाते घृतसंयुक्तं शरद्ग्रीष्मे च वाजिनाम् ॥२७॥
रोगघ्नं पुष्टिदञ्चापि बलतेजोविवर्द्धनम् । तदेवाश्वाय दातव्यं क्षारयुक्तमथापि वा ॥२८॥
गुडूचीकल्पयोगेन शतावर्य्यश्वगन्धयोः । चत्वारि त्रीणि मध्यस्य जघन्यस्य पलानि हि ॥२९॥
अकस्माद्यत्र वाहानामेकरूपं यदा भवेत् । म्रियते च यदा क्षिप्रमुपसर्गं तमादिशेत् ॥३०॥
होमाद्यै रक्षया विप्रभोजनैर्वलिकर्मणा । शान्त्योपसर्गशान्तिः स्याद्धरीतक्यादिकल्पतः ॥३१॥
हरीतकी गवां मूत्रैस्तैलेन लवणान्विता । आदौ पञ्च ततः पञ्च वृद्धया पूर्णशतावधिः ॥
उत्तमा च शतं मात्रा त्वशीतिः षष्टिरेव वा ॥३२॥
गजायुर्वेदमाख्यास्ये उक्ताः कल्पा गजे हिताः । गजे चतुर्गुणा मात्रा ताभिर्गजरुगर्दनः ॥३३॥
गजोपसर्गव्याधीनां शमनं शान्तिकर्म च । पूजयित्वा सुरान्विप्रान्रत्नैर्गो कपिलां ददेत् ॥३४॥
दन्तिदन्तद्वये मालां निबध्नीयादुपोषितः । मन्त्रेण मन्त्रिता वैद्यैर्वचा सिद्धार्थकास्तथा ॥३५॥
सूर्य्यादिशिवदुर्गाश्रीविष्णवर्चा रक्षयेद्गजम् । बलिं दद्याच्च भूतेभ्यः स्नापयेच्च चतुर्घटैः ॥३६॥
भोजनं मन्त्रितं दद्याद्धस्मनोद्धूनयेद्गजम् । भूतरक्षा शुभा मेध्या वारणं रक्षयेत्सदा ॥३७॥
त्रिफलापञ्चकोले च दशमूलं विडङ्गकम् । शतावरी गुडूची च निम्बवासककिंशुकाः ॥३८॥
गजरोगविनाशाय हितो रुक्षः कषायकः । आयुर्वेदद्वयोक्तानामुक्तं संक्षेपसारतः ॥३९॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे एकाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०१॥

द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

एवं धन्वन्तरिः प्राह सुश्रुताय च वैद्यकम् । अथ नामानि वक्ष्यामि ओषधीनां समासतः ॥१॥
स्थिरा विदारिगन्धा च शालपर्ण्यंशुमत्यपि । लाङ्गली कलसी चैव क्रोष्टुपुच्छा गुहा मता ॥२॥
पुनर्नवाथ वर्षाभूः कठिल्या कारुणा तथा । एरण्डश्चोरुबूकः स्यादामण्डो वर्द्धमानकः ॥३॥
झषा नागबला ज्ञेया श्वदंष्ट्रा गोक्षुरो मतः । शतावरी वरा भीरु पीवरीन्दीवरी वरी ॥ ४ ॥
ब्राह्मी तु बृहती कृष्णा हंसपादी मधुश्रवा । धामनी कण्टकारी स्यात्क्षुद्रा सिंही निदिग्धिका ॥
वृश्चिकाल्यमृता काली विषघ्नी सर्पदंष्ट्रिका । मर्कटी चात्मगुप्ता स्यादार्षेयी कपिकच्छुका॥ ६ ॥
मुद्गपर्णी क्षुद्रसहा माषपर्णी महासहा । न्यग्रोधस्तु वटो ज्ञेयः अश्वत्थः कपिलो मतः ॥ ७ ॥
प्लक्षोऽथ गर्दभाण्डः स्यात्पर्कटी च कपीतनः । पार्थस्तु ककुभो धन्वी विज्ञेयोऽर्जुननामभिः ॥
नन्दीवृक्षः प्ररोही स्यात्पुष्टिकारीति चोच्यते । वञ्जुलो वेतसो ज्ञेयो भल्लातश्चाप्यरुष्करः ॥ ९ ॥
लोध्रः सारवको धृष्टस्तिरीटश्चापि कीर्त्तितः । बृहत्फला महाजम्बूर्ज्ञेया बालफला परा ॥१०॥
तृतीया जलजम्बूः स्यान्नादेयी सा च कीर्त्तिता । कणा कृष्णोपकुञ्ची च शौण्डी मागधिकेति च ॥
कथिता पिप्पली तज्ज्ञैस्तन्मूलं ग्रन्थिकं स्मृतम् । ऊषणं मरिचं ज्ञेयं शुण्ठो विश्वं महौषधम् ॥
व्योषं कटुत्रयं विध्यात्त्र्यूषणं तच्च कीर्त्यते । लाङ्गली हलिनी च स्याच्छ्रेयसी गजपिप्पली ॥१३॥
त्रायन्ती त्रायमाणा स्यादुत्सा या सुवहा स्मृता । चित्रकः स्याच्छिखी वह्निरग्निसंज्ञाभिरुच्यते ॥
षड्ग्रन्थोग्रा वचा ज्ञेया श्वेता हैमवतीति च । कुटजो वृक्षकः शक्रो वत्सको गिरिमल्लिका ॥
कलिङ्गेन्द्रयवारिष्टं तस्य बीजानि लक्षयेत् । मुस्तको मेघनामा स्यात्कौन्ती ज्ञेया हरेणुका ॥१६॥
एला च बहुला प्रोक्ता सूक्ष्मैला च तथा त्रुटिः । पद्मा भार्गी तथा काञ्ची ज्ञेया ब्राह्मणयष्टिका ॥
मूर्वा मधुरसा ज्ञेया तेजनी तिक्तवल्लिका । महानिम्बो बृहन्निम्बो दोप्यकः स्याद् यमानिका ॥
विडङ्गं क्रिमिशत्रुः स्याद्रामठं हिङ्गुरुच्यते । अजाजी जीरकं ज्ञेयं कारवी चोपकुञ्चिका ॥१९॥
विज्ञेया कटुका तिक्ता तथा कटुकरोहिणी । तगरं स्यान्नतं वक्रं चोचं त्वचवराङ्गकम् ॥२०॥
उदीच्यं बालकं प्रोक्तं ह्रीवेरं चाम्बुनामभिः । पत्रकं दलसंज्ञाभिश्चोरकं तस्कराह्वयम् ॥२१॥
हेमाभं नागसंज्ञाभिर्नागकेशर उच्यते । असृक्कुङ्कुममाख्यातं तथा काश्मीरवाह्लिकम् ॥२२॥
अयो लोहं समुद्दिष्टं यौगिकैर्लोहनामभिः । पुरं कुटन्नटं विद्यान्महिषाक्षः पलङ्कषा ॥२३॥
काश्मरीं कट्फला ज्ञेया श्रीपर्णी चेति कीर्त्तिता । शल्लकी गजभक्ष्या च पत्री च सुरभी श्रवाः ॥

धात्रीमामलकीं विद्याद्रक्षश्चैव विभीतकः । पथ्याभया च विज्ञेया पूतना च हरीतकी ॥२५॥
त्रिफला फलमेवोक्ता तच्च ज्ञेयं फलत्रिकम् । उदकीर्य्यो दीर्घवृन्तः करञ्जश्चेति कीर्त्तितः ॥२६॥
यष्टी यष्टयाह्वयं प्रोक्तं मधुकं मधुयष्टिका । धातकी ताम्रपर्णी स्यात्समङ्गा कुञ्जरा मता ॥२७॥
सितं मलयजं शीतं गोशीर्षं सितचन्दनम् । विद्याद्रक्तं चन्दनञ्च द्वितीयं रक्तचन्दनम् ॥२८॥
काकोली च स्मृता वीरा वयस्या चार्कपुष्पिका । शृङ्गी कर्कटशृङ्गी च महाघोषा च कीर्त्तिता ॥
तुगाक्षीरी शुभा वांशी विज्ञेया वंशलोचना । मृद्वीका च स्मृता द्राक्षा तथा गोस्तनिका मता ॥
स्यादुशीरं मृणालञ्च सेव्यं लामज्जकं तथा । सारञ्च गोपवल्ली च गोपी भद्रा च कथ्यते ॥३१॥
दन्ती कटङ्कटेरी च ज्ञेया दारुनिशेति च । हरिद्रा रजनी प्रोक्ता पीतिका रात्रिनामिका ३२॥
वृक्षादनी छिन्नरुहा नीलवल्ली रसामृता । वसुकोटश्च विज्ञेयो वाशिरः काम्पिल्लो मतः ॥३३॥
पाषाणभेदकोऽरिष्टो ह्यश्मभित्कुट्टभेदकः । घण्टाको शुष्कको ज्ञेयो वचोऽथ सूत्रको मतः ॥
सुरसो बीजकश्चैव पीतशालोऽभिधीयते । वज्रवृक्षो महावृक्षः स्नुही स्रुक् च सुधा गुडा ३५॥
तुलसीं सुरसां विद्यादुपस्थेति च कथ्यते । कुठेरकोऽप्यर्जुनकः पर्णी सौगन्धिपर्णिकः ॥३६॥
नीलश्च सिन्धुवारश्च निर्गुण्डीति सुगन्धिका । ज्ञेया सुगन्धिपर्णीति वासन्ती कुब्जेति च ॥३७॥
कालीयकं पीतकाष्ठं कतकाख्यः पुनः स्मृतः । गायत्री खदिरो ज्ञेयस्तद्भेदः कन्दरो मतः ॥३८॥
इन्दीवरं कुवलयं पद्मं नीलोत्पलं स्मृतम् । सौगन्धिकं शतदलं अब्जं कमलमुच्यते ॥३९॥
अजवर्णो भवेदूर्जो वाजिकर्णोऽश्वकर्णकः । श्लेष्मातकस्तथा शेलुर्बहुवारश्च कथ्यते ॥४०॥
सुनन्दकः ककुद्भद्रं छत्राकी छत्रसंज्ञकः । कबरी कुम्भको धृष्टः क्षुद्विधो घनकृत्तथा ॥४१॥
कृष्णार्जकः करालश्च काममानः प्रकीर्त्तितः । प्राची बला नदीक्रान्ता काकजङ्घाऽथ वायसी ॥
ज्ञेया मूषिकपर्णी तु भ्रमन्ती चाखुपर्णिका । विषमुष्टिर्द्रावणश्च केशमुष्टिरुदाहृता ॥४३॥
किलिहीं कटुकीं विद्यादन्तकश्चाम्लवेतसः । अश्वत्था बहुपुत्रा च विज्ञेया चामलक्यपि ॥४४॥
अरूषकं पत्रशूकं क्षीरी राजादनं मतम् । महापात्रञ्च दाडिम्बं तमेव करकं वदेत् ॥४५॥
मसूरी विदली शष्पा कालिन्दीति विरुच्यते । कण्टकाख्या महाश्यामा वृक्षपादीनि वक्ष्यते ॥४६॥
विद्या कुन्ती निकुम्भा च त्रिभङ्गी त्रिपुटी त्रिवृत् । सप्तला यवतिक्ता च चर्मा चर्मकसेनि च ४७॥
शङ्खिनी सुकुमारी च तिक्ताक्षी चाक्षिपीलुकम् । गवाक्षी चामृता श्वेता गिरिकर्णी गवादनी ॥
काम्पिल्लकोऽथ रक्ताङ्गो गुण्डारोचनिकेति च । हेमक्षीरी स्मृता पीता गौरी च कालदुग्धिका ॥४९॥
गाङ्गेरुकी नागबला विशाला चेन्द्रवारुणी । तार्क्ष्यं शैलं नीलवर्णमञ्जनञ्च रसाञ्जनम् ॥५०॥
निर्यासोऽयञ्च शाल्मल्याः स मोचरससंज्ञकः । प्रत्यक्पुष्पी खरी ज्ञेया अपामार्गो मयूरकः ॥५१॥

सिंहास्यवृषवासाकमटरूषकमादिशेत् । जीवको जीवशाकश्च कर्बुरश्च शटीं विदुः ॥५२॥
कट्फलं सोमवृक्षः स्यादग्निगन्धा सुगन्धिका । शताङ्गं शतपुष्पा च मिसिर्मधुरिका मता ॥५३॥
ज्ञेयं पुष्करमूलञ्च पुष्करं पुष्कराह्वयम् । यासोऽथ धन्वयासश्च दुःस्पर्शोऽथ दुरालभा ॥५४॥
वाकुची सोमराजी च सोमवल्लीति कीर्त्तिता । मर्करः केशराजश्च भृङ्गराजो निगद्यते ॥५५॥
प्रोक्तस्त्वेडगजस्तज्ज्ञैश्चक्रमर्दश्च संज्ञकः । सुरङ्गी तगरः स्नायुः कलनाशा तु वायसी ॥५६॥
महाकालः स्मृतो वेलस्तण्डुलीयो घनस्तनः । इक्ष्वाकुस्तिक्ततुम्बी स्यात्तिक्तालाबुर्निगद्यते ॥५७॥
धामार्गवोऽथ विज्ञेयः कोषातक्यथ यामिनी । विद्युत्कोषातकीभेदः कृतभेदनसंज्ञका ॥५८॥
तथा जीमूतकाख्या च खुड्डाको देवताड़कः । गृध्रादना गृध्रनखी हिङ्गुकाकादनी मता ॥५९॥
अश्वारिश्चैव बोद्धव्यः करवीरोऽश्वमारकः । सिन्धुसैन्धवसिन्धूत्थमणिमन्थमुदाहृतम् ॥६०॥
क्षारो यवाग्रजश्चैव यवक्षारोऽभिधीयते । सर्जिका सर्जिकाक्षारो द्वितीयः परिकीर्त्तितः ॥६१॥
काशीशं पुष्पकाशीशं विज्ञेयं नेत्रभेषजम् । धातुकाशीशकाशी च संज्ञेयं तच्च कीर्त्तितम् ॥६२॥
सौराष्ट्रीमृत्तिकाक्षारं काक्षी च पङ्कपर्पटी । विद्यात्समाक्षिकाधातु तार्प्यं तार्प्युत्थसम्भवम् ॥६३॥
शिला मनःशिला ज्ञेया नैपाली कुलटीति च । आलं मनस्तालकं वा हरितालं विनिर्दिशेत् ॥
गन्धको गन्धपाषाणो रसः पारद उच्यते । ताम्रमौदुम्बरं शुल्वं विद्यान्म्लेच्छमुखं तथा ॥६५॥
अद्रिसारस्त्वयस्तीक्ष्णं लोहकञ्चापि कथ्यते । माक्षिकं मधु च क्षौद्रं तच्च पुष्परसं स्मृतम् ॥६६॥
ज्येष्ठन्तु सोदकं तत्स्यात्काञ्जिकं तु सौवीरकम् । सिता सितोपला चैव मत्स्यण्डी शर्करा स्मृता ॥
त्वगेलापत्रकैस्तुल्यैस्त्रिसुगन्धि त्रिजातकम् । नागकेशरसंयुक्तं तच्चतुर्जातमिष्यते ॥६८॥
पिप्पली पिप्पलीमूलं चव्यचित्रकनागरैः । कथितं पञ्चकोलञ्च कोलकं कोलसंज्ञया ॥६९॥
प्रियङ्गुः कङ्गुका ज्ञेया कोरदूषश्च कोद्रवः । त्रिपुटः पुटसंज्ञश्च कलापो लङ्गको मतः ॥७०॥
सतीनो वर्त्तुलश्चैव वेणुश्चापि प्रकीर्त्तितः । पिचुकं पित्तलं चाद्यं विड़ालपादकं तथा ॥७१॥
विद्यात्कर्षं तथा चाग्नि सुवर्णं कवलग्रहम् । पलार्द्धं शुक्तिमिच्छन्ति तथाष्टमाषकस्त्विति ॥७२॥
पलं बिल्वञ्च मुष्टिः स्याद्द्वे पले प्रसृतिं वदेत् । अञ्जलिं कुडवञ्चैव विद्यात्पलचतुष्टयम् ॥७३॥
अष्टमानं पलान्यष्टौ तच्च मानमिति स्मृतम् । चतुर्भिः कुड़वैः प्रस्थं प्रस्थाश्चत्वार आढकः ॥
कांस्यपात्रश्च संप्रोक्तो द्रोणश्च चतुराढके । तुला पलशतं प्रोक्तं भागो विंशत्पलः स्मृतः ॥७५॥
मानमेवंविधं प्रोक्तं प्रस्थद्रव्येषु पण्डितैः । द्रवद्रव्येषु चोद्दिष्टं द्विगुणं परिकीर्त्तितम् ॥७६॥
भद्रदारु देवकाष्ठं दारु स्याद्देवदारुकम् । कुष्ठमामयमाख्यातं मांसीञ्च नलदंशनम् ॥७७॥
शङ्खः शुक्तिनखः शङ्खी व्याघ्री व्याघ्रनखः स्मृतः । पुरं पलङ्कषं विद्यान्महिषाक्षञ्च गुग्गुलुः ७८॥

रसं गन्धरसो वोले सर्जः सर्जरसो मतः । प्रियङ्गुः फलिनी श्यामा गौरीकान्तेति चोच्यते ॥
करञ्जो नक्तमालः स्यात्पूतिकश्चिरबिल्वकः । शिग्रुः शोभाञ्जनो नाम ज्ञानमानश्च कीर्त्तितः ॥
जया जयन्ती शरणो निर्गुण्डी सिन्धुवारकः । मोरटा पीलुपर्णी च तुण्डी स्यात्तुण्डिकेरिका ॥
मदनो गालवो वोधो घोटा घोटी च कथ्यते । चतुरङ्गुलसम्पाको व्याधिघाताभिसंज्ञकः ॥८२॥
विद्यादारग्वधं राजवृक्षं रैवतसंज्ञकम् । दष्टका चातितिक्ता स्यात्कण्टकी च विकङ्कतः ॥
निम्बोऽरिष्टः समाख्यातः पटोलं कोलकं विदुः । वयस्था चैव विश्वा च छिन्ना छिन्नरुहा मता ॥
वत्सादन्यमृता चेति गुडूचीनामसंग्रहः । किराततिक्तकश्चैव भूनिम्बः काण्डतिक्तकः ॥८५॥

सूत उवाच

नामान्येतानि च हरे वन्यानां भेषजां तथा । अतो व्याकरणं वक्ष्ये कुमारोक्तञ्च शौनक ॥८६॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे द्व्यधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०२॥

त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः

कुमार उवाच

अथ व्याकरणं वक्ष्ये कात्यायन समासतः । सिद्धशब्दविवेकाय बालव्युत्पत्तिहेतवे ॥ १ ॥
सुप्तिङन्तं पदं ख्यातं सुपः सप्त विभक्तयः । स्वौजसः प्रथमा प्रोक्ता सा प्रातिपदिकात्मके ॥२॥
सम्बोधने च लिङ्गादावुक्ते कर्मणि कर्त्तरि । अर्थवत्प्रातिपदिकं धातुप्रत्ययवर्जितम् ॥ ३ ॥
अमौशसा द्वितीया स्यात्तत्कर्म क्रियते च यत् । द्वितीया कर्मणि प्रोक्ताऽन्तरान्तरेण संयुते॥४॥
टाभ्यांभिसस्तृतीया स्यात्करणे कर्त्तरीरिता । येन क्रियते तत्करणं कर्त्ता यश्च करोति सः ॥ ५ ॥
ङेभ्यांभ्यसश्चतुर्थी स्यात्सम्प्रदाने च कारके । यस्मै दित्सा धारयते रोचते सम्प्रदानकम् ॥ ६ ॥
पञ्चमी स्यान्ङसिभ्यांभ्यो ह्यपादाने च कारके । यतोऽपैति समादत्ते अपादत्ते भयं यतः ॥ ७ ॥
ङसोमामश्च षष्ठी स्यात्स्वामिसम्बन्धमुख्यके । ङ्योःसुपश्च सप्तमी स्यात् सा चाधिकरणे भवेत् ॥
आधारश्चाधिकरणो रक्षार्थानां प्रयोगतः । ईप्सितञ्चानीप्सितं यत्तदपादानकं स्मृतम् ॥ ९ ॥
पञ्चमी पर्यपाङ्योगे इतरर्त्तेऽन्यदिङ्मुखे । एनयोगे द्वितीया स्यात्कर्मप्रवचनीयकैः ॥१०॥
वीप्सेत्थम्भावचिह्नेऽभिर्भागे चैव परिप्रती । अनुरेषु सहार्थे च हीनेऽनूपश्च कथ्यते ॥११॥
द्वितीया च चतुर्थी स्याच्चेष्टायां गतिकर्मणि । अप्राणे हि विभक्ती द्वे मन्यकर्मण्यनादरे ॥१२॥

नमः स्वस्ति स्वधा स्वाहालंवषड्योग ईरिता। चतुर्थी चैव तादर्थ्ये तुमर्थाद्भाववाचिनः॥
तृतीया सहयोगे स्यात्कुत्सितेऽङ्गे विशेषणे। काले भावे सप्तमी स्यादेतैर्योगेऽपि षष्ठ्यपि॥१४॥
स्वामीश्वराधिपतिभिः साक्षाद्दायादसूतकैः। निर्द्धारणे द्वे विभक्ती षष्ठी हेतुप्रयोगके॥१५॥
स्मृत्यर्थकर्मणि तथा करोतेः प्रतियत्नके। हिंसार्थानां प्रयोगे च प्रतिकर्मणि कर्त्तरि॥१६॥
न कर्त्तृकर्मणोः षष्ठी निष्ठयोः प्रातिपादिके। द्विविधं प्रातिपदिकं नाम धातुस्तथैव च॥१७॥
भुवादिभ्यस्तिङो लः स्याल्लकारा दश वै स्मृताः। तिप्तसन्ति प्रथमो मध्य. सिप्थसथोत्तमपुरुषः॥
मिब्वस्मस्परस्मै तु पदानाञ्चात्मनेपदम्। त आत अन्ते प्रथमो स आथे ध्वे च मध्यमः॥१६॥
ए वहे मह उत्तमः पुरुषो हि निरूप्यते। नाम्नि प्रयुज्यमानेऽपि प्रथमः पुरुषो भवेत्॥२०॥
मध्यमो युष्मदि प्रोक्त उत्तमः पुरुषोऽस्मदि। भूराद्या धातवः प्रोक्ताः सनाद्यन्तास्तथा ततः॥
लडीरिते वर्त्तमाने स्मेनातीते च धातुतः। भूतेऽनद्यतने लङ् वा लुङाशिषि च धातुतः॥२२॥
विध्यादावेवानुमतौ लोङ्वाच्यो मन्त्रणे भवेत्। निमन्त्रणाधीष्टसंप्रश्ने प्रार्थनेषु तथाशिषि॥२३॥
लिडतीते परोक्षे स्यादुद्भूते लुङ् भविष्यति। धातोर्लृट्क्रियातिपत्तौ लिडर्थे लोट् प्रकीर्त्तितः॥२४॥
कृतस्त्रिष्वपि वर्त्तन्ते भावे कर्मणि कर्त्तरि। तृणतव्यवङनीयः स्यात् शतृङाद्याश्च धातुतः॥२५॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे त्र्यधिकद्विशततमोऽध्यायः॥२०३॥

चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

सिद्धोदाहरणं वक्ष्ये संहितादिपुरःसरम्। विप्राग्रं स्वागता वीदं सूत्तमं स्यात् पितर्षभः॥१॥
कलृकारो विश्रुताश्चेवं लाङ्गलीषा मनीषया। गङ्गोदकं तवल्कार ऋणार्णं प्रार्णमित्यपि॥२॥
शीतार्त्तश्च तवल्कारः सैन्द्री सोकार इत्यपि। वध्वासनञ्च पित्रर्थो लनुबन्धो नये जयेत्॥३॥
नायको लवणं गावस्त एते न त ईश्वराः। देवीगृह अथो अत्र अ अवेहि पट् इमौ॥४॥
अमी अश्वाः षडस्यैति तन्न वाक् षड्दलानि च। तच्चरेत्तल्लुनातीति तज्जलं तच्छ्मशानकम्॥५॥
सुगन्नत्र पचन्नत्र भवांश्छादयतीति च। भवाञ्झनत्करश्चैव भवांस्तरति संस्मृतम्॥६॥
भवाँल्लिखति ताञ्चक्रे भवांञ्शेतेऽप्यमीदृशम्। भवान्डीनं त्वन्तरसि त्वङ्करोषि सदार्चनम्॥७॥
कश्चरेत् कष्टकारेण कः कुर्यात् कः फले स्थितः। कश्शेते चैव कष्षण्डः कोऽर्थः को याति गौरवम्

क इहात्र क एवाहुर्देवा आहुश्च भो व्रज । स्वपूर्विष्णुर्व्रजति च गोष्पतिश्चैव धूष्पतिः ॥९॥
अस्मानेष व्रजेत् स स्यादृक्साम स च गच्छति । कुटीच्छाया तथाच्छाया सन्धयोऽन्ये तथेदृशाः १०॥
समासाः षट् समाख्याताः सद्विजः कर्मधारयः । द्विगुस्त्रिवेदीग्रामश्च अयं तत्पुरुषः स्मृतः ॥११॥
तत्कृतश्च तदर्थश्च वृकभीतिश्चयं धनम् । ज्ञानदक्षेण तत्त्वज्ञो बहुव्रीहिरथाव्ययी ॥१२॥
भाववोऽधिस्त्रि यथोक्तिर्द्वन्द्वो देवर्षिमानवाः । तद्धिताः पाण्डवः शैवो ब्राह्मयश्च ब्रह्मतादयः ॥१३॥
देवा मसखिपत्यंशु क्रोष्टुस्वायम्भुवः पिता । ना प्रशास्ता च वागग्नौ वटजन्ताश्च पुंस्यपि ॥१४॥
हलन्तश्चावसृक्क्ष्माभु तथा क्रव्यान्मृगाविधः । आद्या राजा युवापन्था पूषन् ब्रह्महनोहनी ॥१५॥
विद्वेधा उशनानड्वान्मधुलिट् काष्ठतट् तथा । वनवार्य्यस्थिवस्तूनि जगत् समाहनी तथा ॥१६॥
कर्मसर्पिर्वपुस्तेज यज्वा सन्तानसंशयः । जयो जया नदी लक्ष्मी श्रीस्त्रीभूर्वधूरपि ॥१७॥
भ्रूपुनर्भूस्तथा धेनुः स्वसा माता चमौ स्त्रियः । वाक्स्रग्दिक्क्रुधः प्रायो युवतिः ककुभस्तथा ॥१८॥
द्यौ वागुरावृपश्चैव सुमना उष्णिहौ स्त्रियाम् । गुणद्रव्यक्रियायोगा स्त्रीलिङ्गाश्च वदामि ते ॥१९॥
शुक्लः कीलालकश्चैव शुचिश्च ग्रामणीः सुधीः । बाहुः कमलभूः कर्त्ता स्वमाता वपुषः स्वनौः ॥२०॥
सत्या नाग्न्यस्तथा पुंसो मभक्षयत दीर्घपात् । सर्वविश्वोभये त्वौभौ तथान्यान्यतराणि च ॥२१॥
डतरो डतमो नेमस्त्वसमोऽथ सिमस्तथा । पूर्वापराधरश्चैव दक्षिणश्चोत्तराधरौ ॥२२॥
अपराश्चान्तरोपेत यावता क्रिमसो द्वयम् । युष्मदस्मत्प्रथमश्च वस्नसोऽल्पे तथार्द्धके ॥२३॥
नेमकतिपयौ द्वे च त्रयः स्वर्द्धादयस्तथा । शृणोत्याद्या जुहोतिश्च जहातिश्च दधात्यपि ॥२४॥
दीप्यतिः स्तूयतिश्चैव पुत्रीयति धनायति । त्रुट्यति म्रियते चैव चिन्चीषति निनीषति ॥२५॥
सर्वे तिष्ठन्ति सर्वस्मै सर्वस्मात् सर्वतोगतः । सर्वेषाञ्चैव सर्वस्मिन्नेवं विश्वादयस्तथा ॥२६॥
पूर्वे पूर्वा च पूर्वस्मात्पूर्वस्मिन्पूर्व ईरितः ।

सूत उवाच

सुप्तिङन्तं सिद्धरूपं नाममात्रेण दर्शितम् । कात्यायनः कुमारात्तु श्रुत्वा विस्तरमब्रवीत् ॥२७॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे चतुरधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०४॥

पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

हरेः श्रुत्वाऽब्रवीद् ब्रह्मा यथा व्यासाय शौनक । ब्राह्मणादिसमाचारं सर्वदं ते यथा वदे ॥१॥
श्रुतिस्मृती तु विज्ञाय श्रौतं कर्म समाचरेत् । श्रौतं कर्म न चेदुक्तं तदा स्मार्त्तं समाचरेत् ॥२॥

तत्राप्यशक्तः करणे सदाचारं चरेद् बुधः । श्रुतिस्मृतीह विप्राणां लोचने कर्मदर्शने ॥३॥
श्रुत्युक्तः परमो धर्मः स्मृतिशास्त्रगतोऽपरः । शिष्टाचारेण शिष्टानां त्रयो धर्माः सनातनाः ॥४॥
सत्यं दानं दया लोभो विद्येज्या पूजनं दमः । अष्टौ तानि पवित्राणि शिष्टाचारस्य लक्षणम् ॥
तेजोमयानि पूर्वेषां शरीराणीन्द्रियाणि च । न च लिप्यति पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥६॥
निवासमुख्या वर्णानां धर्माचाराः प्रकीर्त्तिताः । सत्य यज्ञस्तपो दानमेतद्धर्मस्य लक्षणम् ॥७॥
अदत्तस्यानुपादानं दानमध्ययनं तपः । विद्या वित्तं तपः शौर्य्यं कुले जन्म त्वरोगिता ॥८॥
संसारोच्छित्तिहेतुश्च धर्मादेव प्रवर्त्तते । धर्मात् सुखञ्च ज्ञानञ्च ज्ञानान्मोक्षोऽधिगम्यते ॥९॥
इज्याध्ययनदानानि यथाशास्त्रं सनातनः । ब्रह्मक्षत्रियवैश्यानां सामान्यो धर्म उच्यते ॥१०॥
याजनाध्ययने शुद्धे विशुद्धाच्च प्रतिग्रहः । वृत्तित्रयमिदं प्राहुर्मुनयः श्रेष्ठवर्णिनः ॥११॥
शस्त्रेणाजीवनं राज्ञो भूतानाञ्चाभिरक्षणम् । पाशुपाल्यं कृषिः पण्यं वैश्यस्य जीवनं स्मृतम् ॥१२॥

शूद्रस्य द्विजशुश्रूषा द्विजानामनुपूर्वशः । गुरौ वासोऽग्निशुश्रूषा स्वाध्यायो ब्रह्मचारिणः ॥१३॥
त्रिस्नाता स्नापिता भैक्ष्यं गुरौ प्राणान्तिकी स्थितिः । समेखले जटा दण्डी मुण्डो वा गुरुसंश्रयः ॥
अग्निहोत्रोपचरणं जीवनञ्च स्वकर्मभिः । धर्मदारेषु कल्पेत पर्ववर्जं रतिक्रियाः ॥१५॥
देवपित्रतिथिभ्यश्च पूजादिष्वनुकल्पनम् । श्रुतिस्मृत्यर्थसंस्थानं धर्मोऽयं गृहमेधिनः ॥१६॥
जटित्वमग्निहोतृत्वं भूशय्याजिनधारणम् । वने वासः पयोमूलनीवारफलवृत्तिता ॥१७॥
प्रतिषिद्धे निवृत्तिश्च त्रिःस्नानं व्रतधारिता । देवतातिथिपूजा च धर्मोऽयं वनवासिनः ॥१८॥
सर्वारम्भपरित्यागो भैक्ष्यान्नं वृक्षमूलता । निष्परिग्रहता द्रोहः समता सर्वजन्तुषु ॥१९॥
प्रियाप्रियपरिष्वङ्गे सुखदुःखाधिकारिता । सबाह्याभ्यन्तरं शौचं वाग्यमो ध्यानचारिता ॥२०॥
सर्वेन्द्रियसमाहारो धारणध्याननित्यता । भावसंशुद्धिरित्येष परिव्राड्धर्म उच्यते ॥२१॥
अहिंसा सूनृता वाणी सत्यशौचे क्षमा दया । वर्णिना लिङ्गिनाञ्चैव सामान्यो धर्म उच्यते ॥२२॥
यथोक्तकारिणः सर्वे प्रयान्ति परमां गतिम् । आबोधात् स्वपनं यावत् गृहस्थधर्म वच्मि ते ॥
ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत धर्माथौं चानुचिन्तयेत् । शर्वर्य्यन्ते समुत्थाय कृतशौचः समाहितः ॥२४॥
स्नात्वा सन्ध्यामुपासीत दन्तधावनपूर्विकाम् । प्रातःसन्ध्यामुपासीत दन्तधावनपूर्विकाम् ॥२५॥
उभे मूत्रपुरीषे च दिवा कुर्य्यादुदङ्मुखः । रात्रौ च दक्षिणे कुर्यादुभे सन्ध्ये यथा दिवा ॥२६॥
छायायामन्धकारे वा रात्रौ वाहनि वा द्विजः । यथा तु सुमुखः कुर्य्यात् प्राणाबाधभयेषु च ॥
गोमयाङ्गारवल्मीकफालाकृष्टे जले शुभे । मार्गोपजीव्यच्छायासु न मूत्रञ्च पुरीषकम् ॥२८॥
अन्तर्जलाद्देवगृहाद्वल्मीकान्मूषिकस्थलात् । परेषां शौचशिष्टाच्च श्मशानाच्च मृदं त्यजेत् ॥२९॥

एकां लिङ्गे मृदं दद्याद्वामहस्ते मृदं द्वयम् । उभयोर्द्वे च दातव्ये मूत्रशौचं प्रचक्षते ॥३०॥
एकां लिङ्गे गुदे तिस्रस्तथा वामकरे दश । पञ्च पादे दशैकस्मिन् करयोः सप्त मृत्तिकाः ॥३१॥
अर्द्धप्रसृतिमात्रा तु प्रथमा मृत्तिका स्मृता । द्वितीया च तृतीया च तदर्द्धा परिकीर्त्तिता ॥३२॥
उपविष्टस्तु विण्मूत्रं कर्तुं यस्तु न विन्दति । स कुर्य्यादर्द्धशौचं तु अस्य शौचस्य सर्वदा ॥३३॥
दिवा शौचस्य रात्र्यर्द्धं यद्वा पादो विधीयते । स्वस्थस्य तु यथोद्दिष्टमार्त्तः कुर्य्याद्यथाबलम् ३४॥
वसाशुक्रमसृङ्मज्जालालाविण्मूत्रकर्णगुत् । श्लेष्माश्रुदूषिका स्वेदो द्वादशैते नृणां मलाः ॥
यावता शुद्धिर्मन्येत तावच्छौचं समाचरेत् । प्रमाणं शौचसंख्याया नादिष्टैरवशिष्यते ॥३६॥
शौचं तु द्विविधं प्रोक्तं बाह्यमाभ्यन्तरं तथा । मृज्जलाभ्यां स्मृतं बाह्यं भावशुद्धिरथान्तरम् ॥३७॥
त्रिराचामेदपः पूर्वं द्विः प्रमृज्यात्ततो मुखम् । संमृज्याङ्गुष्ठमूलेन त्रिभिरास्यमुपस्पृशेत् ॥३८॥
अङ्गुष्ठेन प्रदेशिन्या घ्राणं पश्चादनन्तरम् । अङ्गुष्ठानामिकाभ्याञ्च चक्षुःश्रोत्रे पुनः पुनः ॥३९॥
कनिष्ठाङ्गुष्ठयोर्नाभिं हृदयं तु तलेन वै । सर्वाभिस्तु शिरः पश्चाद्बाहू चाग्रेण संस्पृशेत् ॥४०॥

ऋचो यजूंषि सामानि त्रिः पठन् प्रीणयेत्क्रमात् ।
अथर्वाङ्गिरसौ पूर्वं द्विःप्रमाष्टयथ षण्मुखम् ॥४१॥

इतिहासपुराणानि वेदाङ्गानि यथाक्रमम् । खं मुखे नासिके वायुं नेत्रे सूर्य्यः श्रुतिर्दिशः ॥४२॥
प्राणग्रन्थिमथो नाभिं ब्रह्माणं हृदये स्पृशेत् । रुद्रं मूर्ध्ना समालभ्य प्रीणात्यर्थशिखामृषीन् ॥४३॥
बाहू यमेन्द्रवरुणे कुबेरवसुधानलान् । अभ्युक्ष्य चरणौ विष्णुमिन्द्रं विष्णुं करद्वयम् ॥४४॥
अग्निर्वायुश्च सूर्य्येन्दुगिरयोऽङ्गुलिपर्वसु । गङ्गाद्याः सरितस्तासु या रेखाः करमध्यगाः ॥४५॥
उषःकाले तु संप्राप्ते शौचं कृत्वा यथार्थवत् । ततः स्नानं प्रकुर्वीत दन्तधावनपूर्वकम् ॥४६॥
मुखे पर्य्युषिते नित्यं भवत्यप्रयतो नरः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन कुर्य्याद्वै दन्तधावनम् ॥४७॥
कदम्बबिल्वखदिरकरवीरवटार्जुनाः । यूथी च बृहती जाती करञ्जार्कातिमुक्तकाः ॥४८॥
जम्बूमधूकापामार्गशिरीषोदुम्बराशनाः । क्षीरिकण्टकिवृक्षाद्याः प्रशस्ता दन्तधावने ॥४९॥
कटुतिक्तकषायाश्च धनारोग्यसुखप्रदाः । प्रक्षाल्य भुक्त्वा च शुचौ देशे त्यक्त्वा तदाचमेत् ॥
अमावस्यां तथा षष्ठ्यां नवम्यां प्रतिपद्यपि । वर्जयेद्दन्तकाष्ठं तु तथैवार्कस्य वासरे ॥५१॥
अभावे दन्तकाष्ठस्य निषिद्धायां तथा तिथौ । अपां द्वादशगण्डूषैः कुर्वीत मुखशोधनम् ॥५२॥
प्रातः स्नात्वा प्रशंसन्ति दृष्टादृष्टकरं हितम् । सर्वमर्हति शुद्धात्मा प्रातःस्नायी जपादिकम् ५३॥
अत्यन्तमलिनः कायो नवच्छिद्रसमन्वितः । स्रवत्येष दिवारात्रौ प्रातःस्नानं विशोधनम् ५४॥
मनःप्रसादजननं रूपसौभाग्यवर्द्धनम् । शोकदुःखप्रशमनं गङ्गास्नानवदाचरेत् ॥५५॥
अथ हस्ते तु नक्षत्रे दशम्यां ज्यैष्ठके सिते । दशपापहरायाञ्च अदत्त्वा दानकल्मषम् ॥५६॥

विरुद्धाचरणं हिंसा • परदारोपसेवनम् । पारुष्यानृतपैशून्यमसम्बद्धाभिभाषणम् ॥५७॥
परद्रव्याभिधानञ्च मनसानिष्टचिन्तनम् । एतद्दशाघघातार्थं गङ्गास्नानं करोम्यहम् ॥५८॥
प्रातः संक्षेपतः स्नानं वाणप्रस्थगृहस्थयोः ॥ ५९ ॥
यतेस्त्रिषवणं स्नानं सकृत्तु ब्रह्मचारिणः । आचम्य तीर्थमावाह्य स्नायात्स्मृत्वाव्ययं हरिम् ॥
तिस्रः कोट्यर्द्धविज्ञेया मन्देहा नाम राक्षसाः । उदयन्तं दुरात्मानः सूर्य्यमिच्छन्ति खादितुम् ॥
स हन्ति सूर्यं सन्ध्यायां नोपास्तिं कुरुते तु यः । दहन्ति मन्त्रपूतेन तोयेनानलरूपिणा ॥६२॥
अहोरात्रस्य यः सन्धिः सा सन्ध्या भवतीति ह ।
द्विनाड़िका भवेत्सन्ध्या यावद्भवति दर्शनम् ॥६३॥
सन्ध्याकर्मावसाने तु स्वयंहोमो विधीयते । स्वयंहोमफलं यत्तु तदन्येन न जायते ॥६४॥
ऋत्विक्पुत्त्रो गुरुर्भ्राता भागिनेयोऽथ विट्पतिः । एभिरेव हुतं यत्तु तद्धुतं स्वयमेव हि ॥६५॥
ब्रह्मा वै गार्हपत्याग्निर्दक्षिणाग्निस्त्रिलोचनः । विष्णुराहवनीयोऽग्निः कुमारः सत्य उच्यते ॥६६॥
कृत्वा होमं यथाकालं सौरान्मन्त्राञ्जपेत्ततः । समाहितात्मा सावित्रीं प्रणवञ्च यथोदितम् ॥६७॥
प्रणवे नित्ययुक्तस्य व्याहृतीषु च सप्तसु । त्रिपदायाञ्च सावित्र्यां न भयं विद्यते क्वचित् ॥६८॥
गायत्रीं यो जपेन्नित्यं कल्यमुत्थाय मानवः । लिप्यते न स पापेन पद्मपत्रमिवाम्भसा ॥६९॥
श्वेतवर्णा समुद्दिष्टा कौशेयवसना तथा । अक्षसूत्रधरा देवी पद्मासनगता शुभा ॥७०॥
आवाह्य यजुषाऽनेन तेजोऽसीति विधानतः । एतद्यजुः पुरा देवैर्दृष्टिदर्शनकांक्षिभिः ॥७१॥
आदित्यमण्डलान्तःस्थां ब्रह्मलोकस्थितामपि । तत्रावाह्य जपित्वातो नमस्काराद्विसर्जयेत् ॥७२॥
पूर्वाह्ण एव कुर्वीत देवतानाञ्च पूजनम् । न विष्णोः परमो देवस्तस्मात्तं पूजयेत्सदा ॥७३॥
ब्रह्मविष्णुशिवान्देवान्न पृथग्भावयेत्सुधीः । लोकेऽस्मिन्मङ्गलान्यष्टौ ब्राह्मणो गौर्हुताशनः ॥७४॥
हिरण्यं सर्पिरादित्य आपो राजा तथाष्टमः । एतानि सततं पश्येदर्चयेच्च प्रदक्षिणम ॥७५॥
वेदस्याध्ययनं पूर्वं सर्वदाभ्यसनं चरेत् । तद्दानञ्चैव शिष्येभ्यो वेदाभ्यासो हि पञ्चधा ॥७६॥
वेदार्थं यज्ञशास्त्राणि धर्मशास्त्राणि चैव हि । मूल्येन लेखयित्वा यो दद्याद्याति स वैदिकम् ॥
इतिहासपुराणानि लिखित्वा यः प्रयच्छति । ब्रह्मदानसमं पुण्यं प्राप्नोति द्विगुणीकृतम् ॥७८॥
तृतीये च तथा भागे पोष्यवर्गार्थसाधनम् । माता पिता गुरुर्भ्राता प्रजा दीनाः समाश्रिताः ॥
अभ्यागतोऽतिथिश्चाग्निः पोष्यवर्गा उदाहृताः । भरणं पोष्यवर्गस्य प्रशस्तं स्वर्गसाधनम् ८० ॥
भरणं पोष्यवर्गस्य तस्माद्यत्नेन कारयेत् । स जीवति वरश्चैको बहुभिर्योपजीव्यति ॥८१॥
जीवन्तो मृतकास्त्वन्ये पुरुषाः स्वोदरम्भराः । स्वकीयोदरपूर्णञ्च कुक्कुरस्यापि विद्यते ॥८२॥
अर्थेभ्योऽपि विवृद्धेभ्यः सम्भृतेभ्यस्ततस्ततः । क्रियाः सर्वाः प्रवर्त्तन्ते पर्वतेभ्य इवापगाः ॥८३॥

सर्वरत्नाकरा भूमिर्धान्यानि पशवः स्त्रियः । अर्थस्य कार्य्ययोगत्वादर्थ इत्यभिधीयते ॥८४॥
अद्रोहेणैव भूतानामल्पद्रोहेण वा पुनः । या वृत्तिस्तां समास्थाय विप्रो जीवेदनापदि ॥८५॥
धनं तु त्रिविधं ज्ञेयं शुक्लं शबलमेव च । कृष्णञ्च तस्य विज्ञेयो विभागः सप्तधा पृथक् ८६॥
क्रमायत्तं प्रीतिदत्तं प्राप्तञ्च सह भार्य्यया । अविशेषेण सर्वेषां वर्णानां त्रिविधं धनम् ॥८७॥
वैशेषिकं धनं दृष्टं ब्राह्मणस्य त्रिलक्षणम् । याजनाध्यापने नित्यं विशुद्धश्च प्रतिग्रहः ॥८८॥
त्रिविधं क्षत्रियस्यापि प्राहुर्वैशेषिकं धनम् । शुद्धार्थं लब्धकरजं दण्डाप्तं जयजं तथा ॥८९॥
वैशेषिकं धनं दृष्टं वैश्यस्यापि त्रिलक्षणम् । कृषिगोरक्षवाणिज्यं शूद्रस्यैभ्यस्त्वनुग्रहात् ॥९०॥
कुषीदकृषिवाणिज्यं प्रकुर्वीत स्वयं कृतम् । आपत्काले स्वयं कुर्वन्नैनसा युज्यते द्विजः ॥९१॥
बहवो वर्त्तनोपाया ऋषिभिः परिकीर्त्तिताः । सर्वेषामपि चैवैषां कुषीदमधिकं विदुः ॥९२॥
अनावृष्ट्या राजभयान्मूषिकाद्यैरुपद्रवैः । कृष्यादिके भवेद्बाधा सा कुषीदे न विद्यते ॥९३॥
देशं गतानां या वृद्धिर्नानापण्योपजीविनाम् । कुषीदं कुर्वतः सम्यक्संस्थितस्यैव जायते ॥९४॥
लब्धलाभः पितृन्देवान्ब्राह्मणांश्चैव पूजयेत् । ते तृप्तास्तस्य तद्दोषं शमयन्ति न संशयः ॥९५॥
कृषीबलोऽन्नपानादियानशय्यासनानि च । राजभ्यो विंशतिर्दत्त्वा पशुस्वर्णादिकं शतम् ॥९६॥
विद्या शिल्पं भृतिः सेवा गोरक्षा विपणिः कृषिः । वृत्तिर्भैक्ष्यं कुषीदञ्च दश जीवनहेतवः ॥९७॥
प्रतिग्रहार्जिता विप्रे क्षत्रिये शस्त्रनिर्जिताः । वैश्ये न्यायार्जिताः स्वार्थाः शूद्रे शुश्रूषयार्जिता ॥
नदी बहूदका शाकपर्णानि च समित्कुशाः । आग्नेयो ब्रह्मघोषश्च विप्राणां धनमुत्तमम् ॥९९॥
अयाचितोपपन्ने तु नास्ति दोषः प्रतिग्रहे । अमृतं तद्विदुर्देवास्तस्मात्तन्नैव वर्जयेत् ॥१००॥
गुरुद्रव्यांश्चोज्जिहीर्षुर्नार्चिष्यन्देवतातिथीन् । सर्वतः प्रतिगृह्णीयाद्यत्तु तृप्येत्स्वयं ततः ॥१०१॥
साधुतः प्रतिगृह्णीयादथवाऽसाधुतो द्विजः । गुणवानल्पदोषश्च निर्गुणो हि निमज्जति ॥१०२॥
एवं तत्परवृत्त्या वा कृत्वा भरणमात्मनः । कुर्य्याद्विशुद्धिं परतः प्रायश्चित्तं द्विजोत्तमः १०३॥
चतुर्थे च तथा भागे स्नानार्थं मृदमाहरेत् । तिलपुष्पकुशादीनि स्नानञ्चाकृत्रिमे जले ॥१०४॥
नित्यं नैमित्तिकं काम्यं क्रियाङ्गं मलकर्षणम् । मार्जनाचमावगाहाश्चाष्टस्नानं प्रकीर्त्तितम् १०५॥
अस्नातस्तु पुमान्नार्हो जपाग्निहवनादिषु । प्रातःस्नानं तदर्थन्तु नित्यस्नानं प्रकीर्त्तितम् ॥१०६॥
चाण्डालशवविष्ठाद्यान् स्पृष्ट्वा स्नानं रजस्वलाम् ।
स्नानार्हस्तु यदा स्नाति स्नानं नैमित्तिकं हि तत् ॥१०७॥
पुष्यस्नानादिकं स्नानं दैवज्ञविधिचोदितम् । तद्धि काम्यं समुद्दिष्टं नाकामस्तत्प्रयोजयेत् ॥
जप्तुकामः पवित्राणि अर्चिष्यन्देवतातिथीन् । स्नानं समाचरेद्यत्तु क्रियाङ्गं तच्च कीर्त्तितम् १०९

मलापकर्षणार्थाय प्रवृत्तिस्तत्र नान्यथा । सरःसु देवखातेषु तीर्थेषु च नदीषु च ॥११०॥

स्नानमेव क्रिया यस्मात्क्रियास्नानमतःपरम् ।
अद्भिर्गात्राणि शुध्यन्ति तीर्थस्नानात्फलं लभेत् ॥१११॥

मार्जनान्मज्जनैर्मन्त्रैः पापमाशु प्रणश्यति । नित्यं नैमित्तिकञ्चापि क्रियान्नं मलकर्षणम् ॥
तीर्थाभावे तु कर्त्तव्यमुष्णोदकपरोदकैः ॥ ११२ ॥

भूमिष्ठादुद्धृतं पुण्यं ततः प्रस्रवणादिकम् । ततोऽपि सारसं पुण्यं तस्मान्नादेयमुच्यते ॥११३॥
तीर्थतोयं ततः पुण्यं गाङ्गं पुण्यन्तु सर्वतः । गाङ्गं पयः पुनात्याशु पापमामरणान्तिकम् ११४॥
गयायाञ्च कुरुक्षेत्रे यत्तोयं समुपस्थितम् । तस्मात्तु गाङ्गमपरं जानीयात्तोयमुत्तमम् ॥११५॥
पुत्रजन्मनि योगेषु तथा संक्रमणे रवेः । राहोश्च दर्शने स्नानं प्रशस्तं निशि नान्यथा ॥११६॥
उषस्युषसि यत्स्नानं सन्ध्यायामुदिते रवौ । प्राजापत्येन तत्तुल्यं महापातकनाशनम् ॥११७॥
यत्फलं द्वादशाब्दानि प्राजापत्ये कृते भवेत् । प्रातःस्नायी तदाप्नोति वर्षेण श्रद्धयान्वितः ११८॥
य इच्छेद्विपुलान्भोगांश्चन्द्रसूर्यग्रहोपमान् । प्रातःस्नायी भवेन्नित्यं मासौ द्वौ माघफाल्गुनौ ॥
यस्तु माघं समासाद्य प्रातःस्नायी हविष्यभुक् । अतिपापं महाघोरं मासादेव व्यपोहति १२०॥
मातरं पितरञ्चापि भ्रातरं सुहृदं गुरुम् । यदुद्दिश्य निमज्जेत द्वादशांशं लभेत्तु सः ॥१२१॥
तुष्यत्यमलकैर्विष्णुरेकादश्यां विशेषतः । श्रीकामः सर्वदा स्नानं कुर्वीतामलकैर्नरः ॥१२२॥
सन्तापः कीर्त्तिरल्पायुर्धनं निधनमेव । आरोग्यं सर्वकामाप्तिरभ्यङ्गाद्भास्करादिषु ॥१२३॥
उपोषितस्य व्रतिनः कृत्तकेशस्य नापितैः । तावच्छ्रीस्तिष्ठति प्रीता यावत्तैलं न संस्पृशेत् ॥१२४॥
एवं स्नात्वा पितृन्देवान्मनुष्यांस्तर्पयेन्नरः । नाभिमात्रे जले स्थित्वा चिन्तयेदूर्ध्वमानसः ॥१२५॥
आगच्छन्तु मे पितर इमं गृह्णन्त्वपोऽञ्जलिम् । त्रींस्त्रीनञ्जलीन्दद्यादाकाशे दक्षिणे तथा ॥१२६॥
वसित्वा वसनं शुष्कं स्थलस्थास्तीर्णवर्हिषि । विधिज्ञास्तर्पणं कुर्य्युर्न पात्रे तु कदाचन ॥१२७॥
यदपां क्रूरमांसात्तु यदमेध्यं तु किञ्चन । अशान्तं मलिनं यच्च तत्सर्वमपगच्छतु ॥१२८॥
गृहीत्वानेन मन्त्रेण तोयं सव्येन पाणिना । प्रक्षिपेद्दिशि नैर्ऋत्यां रक्षोऽपहतये तु तत् ॥१२९॥
निषिद्धभक्षणाद्यत्तु पापाद्यच्च प्रतिग्रहम् । दुष्कृतं यच्च मे किञ्चिद्वाङ्मनःकायकर्मभिः ॥१३०॥
पुनातु मे तदिन्द्रस्तु वरुणः सबृहस्पतिः । सविता च भगश्चैव मुनयः सनकादयः ॥१३१॥
आब्रह्मस्तम्बपर्य्यन्तं जपंस्तृप्यन्त्विति ब्रुवन् । क्षिपेदपोऽञ्जलींस्त्रींस्तु कुर्वन्संक्षेपतर्पणम् ॥१३२॥
सुराणामर्चनं कुर्य्याद् ब्रह्मादीनाममत्सरी । ब्राह्मवैष्णवरौद्रैश्च सावित्रैर्मैत्रवारुणैः ॥१३३॥
तल्लिङ्गैरर्चयेन्मन्त्रैः सर्वदेवान्नमस्य च । नमस्कारेण पुष्पाणि विन्यसेत्तु पृथक्पृथक् ॥१३४॥

सर्वदेवमयं विष्णुं भास्करञ्चाथ चार्चयेत् । दद्यात्पुरुषसूक्तेन य पुष्पाण्यप एव वा ॥१३५॥
अर्चितं स्याज्जगदिदं तेन सर्वं चराचरम् । अन्यैश्च तान्त्रिकैर्मन्त्रैः पूजयेच्च जनार्दनम् ॥१३६॥
आदावर्घ्यं प्रदातव्यं ततः पश्चाद्विलेपनम् । ततः पुष्पाञ्जलिं धूपं उपहारफलानि च ॥१३७॥
स्नानमन्तर्जले चैव मार्जनाचमनं तथा । जलाभिमन्त्रणं यच्च तीर्थस्य परिकल्पनम् ॥
अघमर्षणसूक्तेन त्रिवारं त्वेव नित्यशः ॥१३८॥
स्नाने चरितमित्येतत्समुद्दिष्टं महात्मभिः । ब्रह्मक्षत्रविशाञ्चैव मन्त्रवत् स्नानमिष्यते ।
तूष्णीमेव तु शूद्रस्य सनमस्कारकं स्मृतम् ॥१३९॥
अध्यापन ब्रह्मयज्ञः पितृयज्ञस्तु तर्पणम् । होमो दैवो बलिर्भौतो नृयज्ञोऽतिथिपूजनम् ॥१४०॥
गवां गोष्ठे दशगुणं अग्न्यागारे शताधिकम् । सिद्धक्षेत्रेषु तीर्थेषु देवतायतनेषु च ॥
सहस्रशतकोटीनामनन्तं विष्णुसन्निधौ ॥१४१॥
पञ्चमे च तथा भागे संविभागो यथार्थतः । पितृदेवमनुष्याणां कोटीनाञ्चोपदिश्यते ॥१४२॥
ब्राह्मणेभ्यः प्रदायाग्रं यः सुहृद्भिः सहाश्नुते । स प्रेत्य लभते स्वर्गमन्नदानं समाचरन् ॥१४३॥
पूर्वं मधुरमश्नीयाल्लवणाम्लौ च मध्यतः । कटुतिक्तकषायांश्च पयश्चैव तथान्ततः ॥१४४॥
शाकञ्च रात्रौ भूमिष्ठमत्यन्तञ्च विवर्जयेत् । न चैकरससेवायां प्रसज्येत कदाचन ॥१४५॥
अमृतं ब्राह्मणस्यान्नं क्षत्रियान्नं पयः स्मृतम् । वैश्यस्य चान्नमेवान्नं शूद्रान्नं रुधिरं स्मृतम् ॥१४६॥
अमावासी वसेद्यत्र एकहायनमेव वा । तत्र श्रीश्चैव लक्ष्मीश्च वसते नात्र संशयः ॥१४७॥
उदरे गार्हपत्याग्निः पृष्ठदेशे तु दक्षिणः । आस्ये आहवनीयोऽग्निः सत्ये सर्वश्च मूर्द्धनि ॥१४८॥
यः पञ्चाग्नीनिमान्वेद आहिताग्निः स उच्यते । शरीरमापः सोमञ्च विविधञ्चान्नमुच्यते ॥१४९॥
प्राणो ह्यग्निस्तथादित्यस्त्रिभोक्ता एक एव तु । अन्नं बलाय मे भूमेरपामग्न्यनिलस्य च ॥१५०॥
भवत्येतत्परिणतौ समास्वव्याहतं सुखम् । हस्तेन परिमार्ज्याथ कुर्य्यात्ताम्बूलभक्षणम् ॥१५१॥
श्रवणञ्चेतिहासस्य तत्कुर्य्यात्सुसमाहितः । इतिहासपुराणाद्यैः षष्ठसप्तमके नयेत् ॥१५२॥
ततःसन्ध्यामुपासीत स्नात्वा वै पश्चिमां नरः । एतद्वा दिवसे प्रोक्तमनुष्ठानं मया द्विज ॥१५३॥
आचारं यः पठेद्विद्वान्श्शृणुयात्स दिवं व्रजेत् । आचारादिधर्मकर्त्ता केशवो हि स्मृतो द्विज ॥

इति गारुडे महापुराणे पञ्चाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०५॥

षडधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथ स्नानविधिं वक्ष्ये स्नानमूला क्रिया यतः। मृद्गोमयतिलान्दर्भान्पुष्पाणि सुरभीणि च ॥१॥
आहरेत्स्नानकाले च स्नानार्थी प्रयतः शुचिः। गन्धोदकान्तं विविक्ते स्थापयेत्तान्यथ क्षितौ ॥२॥
त्रिधा कृत्वा मृदन्तान्तु गोमयञ्च विचक्षणः। अद्भिर्मृद्भिश्च चरणौ प्रक्षाल्याथ करौ तथा ॥३॥
उपवीती बद्धशिखः सम्यगाचम्य वाग्यतः। उरुं राजेत्यृचा तोयमुपस्थाय प्रदक्षिणम्।
आवर्त्तयेत्तदुदकं ये ते शतमिति त्यृचा ॥ ४ ॥

ॐ उरुं राजा वरुणश्चकार सूर्य्याय पन्थानमन्नेत प्रपराट् प्रतिधाता च वक्तारस्ता हृदयाविपश्चित्। नमोऽग्न्यरुणायाभिष्ठतोवरुणस्य पाशः वरुणाय नमः ॥ ५ ॥

ॐ ये ते शतं वरुणाय सहस्रं यज्ञीयाः पाशा वितता महान्तस्तेभिर्नोऽद्यसवितोत विष्णुर्विश्वे मुञ्चन्तु मरुतः स्वर्काः स्वाहा। सुमित्रियान इत्यपोऽञ्जलिमाकृत्योत्तरेण तोयं पश्चाद्विराज्य चैव विनिक्षिपेत्। ॐ सुमित्रियान आप ओषधयः सन्तु दुर्मित्रियास्तस्मै सन्तु योऽस्मान्द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्मः। पादौ जङ्घेकटिश्चैव पूर्वमृद्भिस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥ ६ ॥

प्रक्षाल्य हस्तावाचम्य नमस्कृत्य जलं ततः। इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदं समूढ़मस्य पांशुले॥
महाव्याहृतिभिः पश्चदाचामेत्प्रयतोऽपि सन्। मार्जयेद्वै मृदाङ्गानि इदं विष्णुरितित्यृचा ॥
भास्कराभिमुखो मज्जेदापो अस्मानितित्यृचा ॥ ८ ॥

ॐ आपो अस्मान्मातरः शुद्धयन्तु घृतेन नो घृतप्वः पुनन्तु।
विश्वं हि विप्रं प्रवहन्ति देवी रुदिताभ्यः शुचित्रा पूतयामि ॥ ९ ॥

ततोऽवघृष्य पात्राणि निमज्योन्मज्य वै शनैः। गोमयेन विलिप्याथ मानस्तोक इतित्यृचा ॥१०॥

ॐ मानस्तोके तनये मान आयुषिमानो गोषुमानो अश्वेषुरीरिषः।
मानोवीरान्मानो रुद्रभामिनोऽवधीर्हविष्मन्तः सदसि त्वाहवामहे ॥ ११ ॥

ततोऽभिषिञ्चेन्मन्त्रैस्तु वारुणैस्तु यथाक्रमम्। इमम्मे वरुणे द्वाभ्यां त्वन्नः सत्वन्न इत्यपि ॥१२॥
आपो त्वन्तुमसीति च मुञ्चत्ववभृतेति च। ॐ इमम्मे वरुणस्त्र्यधीहरसत्यामृतयः ॥१३॥

ॐ तत्त्वायामि ब्रह्मणा वन्दमानस्तदाशास्ते यजमानो हविर्भिः। अहेडमानो वरुणो हवोऽध्युरुषं समान आयुः प्रमोषीः। ॐ त्वन्नो अग्ने वरुणस्य विद्वान्देवस्य हेलो अवयासि-

सींष्ठा यजिष्ठो वह्नितमः शोशुचानो विश्वाद्वेषांसि प्रमुमुग्धः सत्स्वाहा । ॐ सत्वन्नो अग्ने-वमो भवोति नेदिष्ठो अस्या उपसोऽव्युष्टौ । अवयक्ष्माणो वरुणं रराणो व्रीहिमृडीकं सुहवोन एधि । ॐ आपो नौषधि हिंसार्द्धम्नो राजस्ततो वरुणो नोमुञ्चा यदाहरस्या इति । ॐ वरुणेति शपामहे ततो वरुण नो मुञ्च । ॐ उदुत्तमं वरुणपाशमस्मदवाधमं विमध्यमं श्रथाय अथावयमादित्यव्रते तवानागसो अदितये स्याम । मुञ्चन्तु मामप्यथाद्वरुणस्य त्वत् । अहो यमस्य पत्नीसानः सर्वस्मादेव किल्विषात् । अवभृथनिचं पुनर्विचेरुसि नित्यं प्रन्नः । अवदेवैर्देवकृता मनोयासि समवमत्यै कृतं पुष्पाच्छा देवधीमल्पाही ॥१४॥

अभिषिच्य तथात्मानं निमज्याचम्य वै पुनः । दर्भेण पाययेन्मन्त्रैरलिङ्गैः पारणैरिमैः ॥१५॥
आपोहिष्ठेति तिसृभिरिदमापो हविष्मतीः । देवीराप इति द्वाभ्यां आपो देवा इतित्यृचा १६॥
द्रुपदादिव इति च शन्नो देवीरपां रसः । आपो देवाः पावमान्यः पुनन्त्वाद्या त्यृचो नव ॥
चित्पतिर्मेति च शनैः स्नाप्यात्मानं समाहितः । हिरण्यवर्णा इति च पावमान्यस्तथा पराः१८॥
तरत्समा शुद्धवत्यः पवित्राणि च शक्तितः । वारुण्या बहवः पुण्याः शक्तितः संप्रयोजयेत् १९॥
ॐकारेण व्याहृतिभिर्गायत्र्या च समन्वितः । आदावन्ते च कुर्वीत अभिषेकं यथाश्रमम् २०॥
जलमध्यस्थितस्येव मार्जनन्तु विधीयते । अन्तर्जले जपेन्मन्त्रं त्रिः कृत्वा अघमर्षणम् ॥२१॥
द्रुपदाद्यात्रिरावर्त्तेदयं गौरिति च त्यृचम् । अन्यांश्चैव तु मन्त्रान्वा स्मृतिपृष्टान्समाहितः ॥२२॥
सव्याहृतिं सप्रणवां गायत्रीं वा जपेद्बुधः । आवर्त्तयेद्वा प्रणवं स्मरेद्वा विष्णुमव्ययम् ॥२३।
विष्णोरायतनं चापः स एवाप्पतिरुच्यते । तस्यैवं तमवस्त्वेतस्तस्मात्तं ह्यप्च संस्मरेत् ॥२४॥
तद्विष्णोरितिमन्त्रेण निमज्याप्सु पुनः पुनः । गायत्री वैष्णवी ह्येषा विष्णोः संस्मरणाय वै ॥
ॐ इदमाप प्रवहता स्वं मलं क्षारलोहितम् । यथा त्वहोत्रामृतं यच्च शोके अभीपणम् ॥२६॥

आपोमातस्मादेनसः पावमानश्च मुञ्चतु हविष्मती विना आपोहविष्मान्आविरासीत । हविष्मान्देव असुरो हविष्मान् अस्तु सूर्य्यः । देवीरापो अपा पत्न्या यश्च ऊर्मिर्हविष्यः इन्द्रियवान्मादित्यन्तनः तं देवेभ्यो देवता दाम्शुक्रलेभ्यः तेषां भागकर्विवसिसमुद्रस्य दक्षिण्याग्रयासिमेनापोऽग्र्भिरश्मतमोधीः । आपो देवी मधुमतीरगृह्णन्तु ह्यन्नती राजस्वतिलाः । याभिर्मित्रावरुणस्य सिञ्चयाभिरिन्द्रमनयत्यन्नवातीवद्रुपदां शन्नो देवी अपामसृग्द्वयससूर्य्ये सन्तं समाहितं अपां रसस्य यो रस्य यो गृह्णास्युत्तमम् । आपो देवीरुपसूर्य्य मधुमती वयस्याय प्रजाभ्यः तासामास्थानात्वर्जिहतामोषधयः सपिप्पलाः । पुनन्तु मा पितरः सौम्यासः पुनन्तवनापि पिता सहसा पवित्रेण गतायुषा । पुनन्तु मा पितामहाः पुनन्तु प्रपितामहाः

पवित्रेण गतायुषा विश्वमायुर्वा वैष्णवैः । अग्न आयुषि परमात्माश्वरौर्जमिषञ्च त्वचे वावस्वत्वच्छू-
नाम् । पुनन्तु मा देवजनाः पुनन्तु मां मनसा धियः पुनन्तु विश्वा भूतानि जातवेदः पुनीहि
माम् । पवित्रेण पुनीह मा शुक्रेण देवदी अग्ने कृत्वा क्रतुधन्वः । यत्ते पवित्रमर्चिष्यग्ने वित-
तमन्तरा ब्रह्मा तेन पुनातु मा । पवमानः सोद्य नः पवित्रेण विचाषणीय पोता मा पुनातु मा ।
उभाभ्यां देवसवितः पवित्रेण वसेन च मां खनीविश्वतः । वैश्वदेवी पूनता देव्या गृभ्नास्याभि-
सावक्ष्यस्तान्नोवीत पूज्याः । तमयादन्तस्वधमादेषु वयं स्याम पतयो रयीणाम् । चित्पतिर्मा
पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः । तस्य ते पवित्र पूतस्य यत्कामः । प्रणितच्छकेयं
देवो वाक्पतिर्मा सविता त्वच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः । तस्य ते पवित्रपते पवित्र-
पूतस्य यत्कामः । पुनस्तच्छकेयं द्युपतिं अयं गौः पृश्निवक्रमीसदशशतं मातरं पुनः पितरञ्च
प्रयस्मः । देवो मा सविता पुनात्वच्छिद्रेण पवित्रेण सूर्य्यस्य रश्मिभिः । तस्य ते पवित्रपते
पूतस्य यत्कामः पुनात्वच्छकेयं ॐ तद्विष्णोः परमं पदं सदा पश्यन्ति सूरयः । दिवीव
चक्षुराततम् ॥ २७ ॥

स्नात्वैवं वाससी धौते अच्छिन्ने परिधाय च । प्रक्षाल्य च मृदाद्भिश्च हस्तौ प्रक्षाल्य वै तदा ॥
आचान्ते पुनराचामेन्मन्त्रेण स्नानभोजने । द्रुपदञ्च त्रिरावर्त्त्य तथा चैवाघमर्षणम् ॥२९॥
आचम्याप्लाव्य चात्मानं त्रिराचम्य शनैरसून् । ततोऽपतिष्ठेदादित्यमूर्ध्नि पुष्पान्विताञ्जलिः ३०॥
प्रक्षिप्योदकमुद्धूय उदुत्यं चित्रमित्यपि । तच्चक्षुर्देव इति च हंसः शुचि सदित्यपि ॥३१॥
एताञ्जीवेदूर्ध्वबाहुः सूर्य्यमीक्ष्य समाहितः । गायत्रीञ्च तथा शक्त्या उपस्थाय दिवाकरम् ॥
विभ्राडित्यनुवाकेन सूक्तेन पुरुषस्य च । शिवसङ्कल्पेन तथा मण्डलब्राह्मणेन च ॥३३॥
दिवा कियत्तथा चान्यैः सौरैर्मन्त्रैश्च शक्तितः । जपयज्ञस्तु कर्त्तव्यः सर्वदेवप्रणीतकैः ॥३४॥
अध्यात्मविद्या विधिवज्जपेद्वा जपसिद्धये । सव्यं कृत्वा त्रिराचम्य श्रियं मेधां धृतिं क्षितिम् ॥
वाचं वागीश्वरं पुष्टिं तुष्टिञ्च परितर्पयेत् । उमामरुन्धतीञ्चैव शचीं मातरमेव च ॥३६॥
जयाञ्च विजयाञ्चैव सावित्रीं शान्तिमेव च । स्वाहां स्वधां धृतिञ्चैव तथैवादितिमुत्तमाम् ३७॥
ऋषिपत्नीश्च कन्याश्च तर्पयेत्काम्यदेवताः । सर्वमङ्गलकामस्तु तर्पयेत्सर्वमङ्गलाम् ॥३८॥
आब्रह्मस्तम्भपर्य्यन्तं जगत्तृप्यत्विदं ब्रुवन् । क्षिपेदपोऽञ्जलींस्त्रींश्च कुर्वन्काङ्क्षेत तर्पणम् ॥३९॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे षडधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०६॥

सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

तर्पणं सम्प्रवक्ष्यामि देवादिपितृतुष्टिदम् ।

ॐ मोदास्तृप्यन्तां ॐ प्रमोदास्तृप्यन्तां ॐ सुमुखास्तृप्यन्तां ॐ दुर्मुखास्तृप्यन्तां ॐ विघ्नास्तृप्यन्तां ॐ विघ्नकर्त्तारस्तृप्यन्ता ॐ छन्दांसि तृप्यन्तां ॐ वेदास्तृप्यन्तां ॐ ओषधयस्तृप्यन्तां ॐ सनातनस्तृप्यतां ॐ इतराचार्य्यास्तृप्यन्तां ॐ संवत्सरस्यावयवास्तृप्यन्तां ॐ देवास्तृप्यन्तां ॐ अप्सरसस्तृप्यन्तां ॐ देवान्धकास्तृप्यन्तां ॐ सागरास्तृप्यन्तां ॐ नागास्तृप्यन्तां ॐ पर्वतास्तृप्यन्तां ॐ सरिन्मनुष्या यक्षास्तृप्यन्तां ॐ रक्षांसि तृप्यन्तां ॐ पिशाचास्तृप्यन्तां ॐ सुपर्णास्तृप्यन्तां ॐ भूतानि तृप्यन्तां ॐ भूतग्रामचतुर्विधास्तृप्यन्तां ॐ दक्षस्तृप्यतां ॐ प्रचेतास्तृप्यतां ॐ मरीचिस्तृप्यतां ॐ अत्रिस्तृप्यतां ॐ अङ्गिरास्तृप्यतां ॐ पुलस्त्यस्तृप्यतां ॐ पुलहस्तृप्यतां ॐ क्रतुस्तृप्यतां ॐ नारदस्तृप्यतां ॐ भृगुस्तृप्यतां ॐ विश्वामित्रस्तृप्यतां ॐ कश्यपस्तृप्यतां ॐ जमदग्निस्तृप्यतां ॐ वसिष्ठस्तृप्यतां ॐ स्वायम्भुवस्तृप्यतां ॐ स्वारोचिषस्तृप्यतां ॐ तामसस्तृप्यतां ॐ रैवतस्तृप्यतां ॐ चक्षुस्तृप्यतां ॐ महातेजास्तृप्यतां ॐ वैवस्वतस्तृप्यतां ॐ ध्रुवस्तृप्यतां ॐ धवस्तृप्यतां ॐ अनिलस्तृप्यतां ॐ प्रभापस्तृप्यताम् ॥ १ ॥

नीवीतिः ॐ सनकस्तृप्यतां ॐ सनन्दनस्तृप्यतां ॐ सनातनस्तृप्यतां ॐ कपिलस्तृप्यतां ॐ आसुरिस्तृप्यतां ॐ वोढुस्तृप्यतां ॐ मनुष्याणां कव्यवाडस्तृप्यतां ॐ सोमस्तृप्यतां ॐ यमस्तृप्यतां ॐ अर्य्यमास्तृप्यताम् ॥ २ ॥

प्राचीनावीती ॐ अग्निष्वात्ताः पितरस्तृप्यन्तां ॐ सोमस्याः पितरस्तृप्यन्तां ॐ बर्हिषदः पितरस्तृप्यन्तां यमाय नमः धर्मराजाय नमः मृत्यवे नमः अन्तकाय नमः वैवस्वताय नमः कालाय नमः सर्वभूतक्षयाय नमः औदुम्बराय नमः दध्नाय नमः नीलाय नमः परमेष्ठिने नमः वृकोदराय नमः चित्राय नमः चित्रगुप्ताय नमः ॥ ३ ॥

ब्रह्मादिस्तम्बपर्य्यन्तं जगत्तृप्यतु पितृभ्यः स्वधा नमः । पितामहेभ्यः स्वधा नमः । आयान्तु नः पितरः सौम्यासा अग्निष्वात्ताः पथिभिर्देवयानैरस्मिन् यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधिब्रुवन्तु ते अवन्त्वस्मान् ॥ ४ ॥

ॐ ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतं स्वधास्थ तर्पयत मे पितॄन्पितृभ्यः स्वधा नमः पितामहेभ्यः स्वधा नमः मातामहेभ्यः स्वधा नमः। प्रमातामहेभ्यः स्वधा नमः। वृद्धप्रमातामहेभ्यः स्वधा नमः। पितामहस्य अक्षयाः पितरो अमीमदन्तः पितरो अमी तृप्यन्तः पितरः स्वधध्वं पिबेह पितरोऽपि वानत्रयांश्च विश्रयांश्च भवनपवित्रत्वा रथपति ते जातवेदाः स्वधाभिर्यज्ञं सुकृतं जुषस्व ॥ ५ ॥ ॐ मधुवाता ऋतायते मधु क्षरन्ति सिन्धवः। माध्वीर्नः सन्त्वोषधीर्मधुनक्तमुतोषसो मधुमत्पार्थिवं रजः। मधुद्यौरस्तु नः पिता। मधुमान्नो वनस्पतिर्मधुमान् अस्तु सूर्य्यो माध्वीर्गावो भवन्तु नः ॥ ६ ॥

प्रपितामहस्याञ्जलिदानम्। नमो वः पितरो रसाय नमो वः पितरः शोषाय नमो वः पितरो जीवाय नमो वः पितरः स्वधायै नमो वः पितरो घोराय नमो वः पितरो मन्यवे। नमो वः पितरो गृहान्न पितरो दत्तः। नमो वः पितरो दध्मे तद्वः पितरो वासः। मातामहानां त्रिरञ्जलिः। ततो मात्रादीनाम् ॥ ७ ॥

ये चास्माकं कुले जाता अपुत्रा गोत्रिणो मृताः।
ते तृप्यन्तु मया दत्तं वस्त्रनिष्पीडनोदकम् ॥ ८ ॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे सप्ताधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०७॥

———

अष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

वैश्वदेवं प्रवक्ष्यामि होमलक्षणमुत्तमम्।

प्रज्वाल्य चाग्निं पर्युक्ष्य क्रव्यादमग्निं प्रहिणोमि दूरं यमराज्यं गच्छतु रिप्रवाह। इहैवायमितरो जातवेदा देवेभ्यो हव्यं वहतु प्रजानन्। ॐ पावक वैश्वानर इदमासनं अवमीगर्भसंस्कृतः। ओजोरूप महाब्रह्मन्न मुहूर्त्तास्त्रिषु वैश्वानरं प्रतिबोधयामि। ॐ वैश्वानरे न उभयं आप्रयातु परानतः अग्निर्न स्वद्युर्तारुपपृष्ठो दिवि पृष्ठोऽश्वि पृथिव्यां पृष्ठा विवेवा ओषधी चाविवेश वैश्वानरः सहसा पृष्ठोऽग्निः नमो दिव्य स पष्ठां नक्तम् ॥ १ ॥ ॐ प्रजापतये स्वाहा ॐ सोमाय स्वाहा ॐ बृहस्पतये स्वाहा। ॐ अग्निसोमाभ्यां स्वाहा। ॐ इन्द्राग्निभ्यां स्वाहा। ॐ द्यावापृथिवीभ्यां स्वाहा। ॐ इन्द्राय स्वाहा। ॐ विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा।

ॐ ब्रह्मणे स्वाहा । ॐ अद्भ्यः स्वाहा । ॐ ओषधिवनस्पतिभ्यः स्वाहा । ॐ ग्रहाय स्वाहा । ॐ देवदेवताभ्यः स्वाहा । ॐ इन्द्राय स्वाहा । ॐ इन्द्रपुरुषेभ्यः स्वाहा । ॐ यमाय स्वाहा । ॐ यमपुरुषाय स्वाहा । ॐ सर्वेभ्यो भूतेभ्यो दिवाचारिभ्यः स्वाहा । ॐ वसुधापितृभ्यः स्वाहा । ॐ ये भूताः प्रचरन्ति दीना च निमिहन्तो भुवनस्य मध्ये तेभ्यो बलिपुष्टिकामो ददामि । मयि पुष्टिं पुष्टिपतिर्ददातु । ॐ आचाण्डालपतिर्ददातु आचाण्डालपतितवायसेभ्यः ॥ २ ॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे अष्टाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०८॥

नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

अथ सन्ध्याविधिं वक्ष्ये द्विजातीनां समासतः । अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा ॥
यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥ १ ॥

ॐ गायत्रीच्छन्दो विश्वामित्रऋषिस्त्रिपात्समुद्रः कुक्षिश्चन्द्रादित्यौ लोचनौ । अग्निमुखं विष्णुर्हृदयं ब्रह्मरुद्रशिरो रुद्रशिखा उपनयने विनियोगः । ॐ भूः पादे भुवः जानुनि स्वः हृदये महः शिरसि जनः शिखायां तपः कण्ठे सत्यं ललाटे । ॐ हृदयाय नमः । ॐ भूः शिरसे स्वाहा । ॐ भुवः शिखायै वौषट् स्वः कवचाय हुं ॐ भूर्भुवःस्वः अस्त्राय फट् ॥२॥

ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यं ततस्त्रिपदा । आपोज्योतीरसोऽमृतं ब्रह्मभूर्भुवः स्वरों सूर्यश्चेत्यादि । आपः पुनन्त्वित्यादि । अग्निश्चेत्यादि ॥३॥

ॐ आयातु वरदे देवि पूर्वाह्णे श्वेतरूपिणी । माहेश्वरी च गायत्री शुक्लवस्त्रादिमण्डिता ॥
वृषस्कन्धसमारूढा त्रिशूलवरधारिणी ॥ ४ ॥

आयातु वरदा देवी मध्याह्ने कृष्णरूपिणी । अतसीकुसुमप्रख्या वैष्णवी गरुड़ासना ॥
पीतवस्त्रा शङ्खचक्रगदापद्मसमन्विता ॥ ५ ॥

श्वेतवर्णा समुद्दिष्टा रविमण्डलसंस्थिता । श्वेतपद्मसमासीना श्वेतपुष्पोपशोभिता ॥
आयातु वरदा देवी अपराह्णे सरस्वती ॥ ६ ॥

ॐ आपोहिष्ठामयो भुवस्तान उर्ज्जे दधातनः । महेरणाय चक्षुपे । ॐ यो वः शिवतमो रसः तस्य भाजयते हनः उशतीरिव मातरः । ॐ तस्मा अरङ्गमामवो यस्य क्षयाय जिन्वथ आपोजनयथाचनः । ॐ सुमित्रियान आप ओषधयः सन्तु ॐ दुर्मित्रियास्तस्मै

सन्तु योऽस्मान् द्वेष्टि यञ्च वयं द्विष्मः । ॐ द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः । ॐ ऋतञ्च सत्यञ्चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत ततो रात्र्यजायत ततः समुद्रोऽर्णवः समुद्रादर्णवादधिसंवत्सरोऽजायत अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी सूर्य्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत् दिवञ्च पृथिवीञ्चान्तरिक्षमथो स्वः ॥ ७ ॥

ॐ गायत्र्या विश्वामित्रऋषिर्गायत्रीच्छन्दः सविता देवता जपे विनियोगः । ॐ उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः दृशे विश्वाय सूर्य्यम् । ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेर्वा आपो द्यावा पृथिवीञ्चान्तरिक्षं सूर्य्यात्मा जगतस्तस्थुषश्च । ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत् । पश्येम शरदः शतं जीवेमः शरदः शतम् । शृणुयाम शरदः शतम् । ॐ विश्वतश्चक्षुरुत विश्वतोमुखं विश्वतः संबाहुभ्यां धमति संपतत्रैर्द्यावा भूमिं जनयन् देवएकः । देवानां भुविदोनाञ्जविद्वानाद्धमितमनसस्पत इव देवयज्ञं स्वाहा वा तेधा जपेत् ॥ ८ ॥

उत्तरे शिखरे जाता भूम्यां पर्वतवासिनि । ब्रह्मणा समनुज्ञाता गच्छ देवि यथासुखम् ॥ ९ ॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे नवाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२०९॥

दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

व्यास श्राद्धमहं वक्ष्ये भुक्तिमुक्तिप्रदं नृणाम् । पूर्वं निमन्त्रयेद्विप्रान्विशेषाद् ब्रह्मचारिणः ॥१॥
प्रदक्षिणोपवीतेन देवान्वामोपवीतिना । पितृन्निमन्त्रयेत्पादौ ततो संयोगमन्त्रतः ॥२॥

ॐ आगतं भवद्भिरिति प्रश्नः । ॐ सुस्वागतमिति तैरुक्ते ॐ विश्वेभ्यो देवेभ्य एतत्पादोदकमर्घ्यं स्वाहा । इति देवब्राह्मणपादयोर्देवतीर्थेनाभुग्नकुशसहितजलदानम् ॥३॥

ततो दक्षिणाभिमुखेन वामोपवीतेन अमुकगोत्रेभ्यः अस्मत्पितृपितामहेभ्यो यथानामशर्मभ्य एतत्पादोदकमर्घ्यं स्वधेति पित्रादिब्राह्मणपादयोः पितृतीर्थेन आभुग्नकुशकुसुमसहितजलदानम् ॥ ४ ॥

एवं मातामहादिभ्यः एतत् आचमनीयं स्वाहा स्वधेति ब्राह्मणहस्ते एष वोऽर्घ्यं इति ब्राह्मणहस्ते पुष्पदानम् ॥ ५ ॥

ॐ सिद्धमिदमासनं इह सिद्धमित्यभिज्ञातः ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यं समव्याहृतिभिः पूर्वमुखदेवब्राह्मणोपवेशनम् । उत्तरदिङ्मुखपितृब्राह्मणोपवेशनम् । ॐ देवताभ्यः पितृभ्यश्च महायोगिभ्य एव च । नमः स्वधायै स्वाहायै नित्यमेव भवन्तु ते । इति त्रिर्जपेत् ॥ ६ ॥

ॐ अद्यास्मिन्देशे अमुकमासे अमुकगते सवितरि अमुकतिथौ अमुकगोत्राणामस्मत्पितृपितामहप्रपितामहानां यथानामशर्मणां विश्वेदेवपूर्वकं श्राद्धं करिष्ये । ॐ विश्वेभ्यो देवेभ्यः स्वाहा। ॐ विश्वेदेवानावाहयिष्ये आवाहयेत्युक्ते ॐ विश्वेदेवाः स आगत शृणुताम इमं हवम् इदं बर्हिर्निषीदत । ॐ विश्वेदेवाः शृणुतेमं हवं येमे अन्तरिक्षे य उपपद्य विष्टया अग्निजिह्वा उतवा यजत्रा । आसद्यास्मिन्बर्हिषि मादयध्वम् । ॐ ओषधयः सममदन्तः सोमेन सह राज्ञा यस्मै कृणोति ब्राह्मणस्तं राजानं पारयामसि । ॐ आगच्छन्तु महाभागा विश्वेदेवा महाबलाः । ये यत्र विहिताः श्राद्धे सावधाना भवन्तु ते ॥ ॐ अपहतासुरारक्षांसि वेदिषद । इति त्रिभिर्यवविकिरणम् ॥ ७ ॥

ॐ पात्रमहं करिष्ये ॐ कुरुष्वेति अनुज्ञातः साग्रकुशपत्रद्वयं प्रादेशप्रमाणं कृत्वा ॐ पवित्रे स्थो वैष्णव्यौ अनेन कुशान्तरेण छित्त्वा ॐ विष्णुर्मनसा पूतेस्थ इत्यभ्युद्य कुशान्तरेण त्रिवृतं कृत्वा पात्रे पवित्रनिक्षेपणम् ॥ ८ ॥

ॐ शन्नो देवीरभिष्टये आपो भवन्तु पीतये संयोरभिस्रवन्तु नः । पात्रे जलदानम् । ॐ यवोऽसि यवयास्मद्द्वेषो यवयारातिः इति यवदानम् । गन्धद्वारां दुराधर्षां नित्यपुष्टां करीषिणीम् । ईश्वरीं सर्वभूतानां त्वामिहोपाह्वये श्रियमिति गन्धदानम् । ॐ या दिव्या आपः पयसा संबभूवुर्या अन्तरिक्षा उतपार्थिवीर्या यज्ञियास्तान आपः शिवाः संश्योना सुहवा भवन्तु । ॐ एषोऽर्घ्यो नमः । इति ब्राह्मणहस्ते जलं दत्त्वा अनेनैव पात्रेण पवित्रग्रहणं कृत्वा संस्रवं पनिश्च ब्राह्मणपार्श्वे दद्यात् । ततः प्रथमपात्रे संस्रवजलं संस्थाप्य कुशोपरि ऊर्ध्वमस्त्रं स्थापनं कुर्य्यात्तदुपरि कुशदानम् ॥ ९ ॥

विश्वेभ्यो देवेभ्य एतानि गन्धपुष्पधूपदीपवासोयुगयज्ञोपवीतानि नमः । गन्धादिदानमच्छिद्रमस्तु । अस्त्विति ब्राह्मणप्रतिवचनम् ॥ १० ॥

ततः पितृपितामहप्रपितामहानां मातामहप्रमातामहवृद्धप्रमातामहानां श्राद्धमहं करिष्ये इति अनुज्ञावचनं कुरुष्वेति ब्राह्मणैरुक्ते ॐ देवताभ्यः पितृभ्यश्च इति त्रिर्जपेत् ॥ ११ ॥

ॐ अमुकगोत्रेभ्योऽस्मत्पितृपितामहेभ्यो यथानामशर्मभ्यः सपत्नीकेभ्य इदमासनं स्वधा । इति ब्राह्मणवामे आसनदानम् । ॐ पितॄनावाहयिष्ये ॐ आवाहयेत्युक्ते ॐ उशन्तस्त्वा निधीमह्युशन्तः समिधीमहि उशन्नु शत आवह पितॄन्हविषे अत्तवे । ॐ आयान्तु नः पितरः सोम्यासो अग्निष्वात्ता पथिभिर्देवयानैः । अस्मिन्यज्ञे स्वधया मदन्तोऽधिब्रुवन्तु ते अवन्त्वस्मानित्यावाहनम् । ॐ अपहता असुरा रक्षांसि वेदिषदः । इति तिलविकिरणम् । ॐ तिलोऽसि सोमदैवत्यो गोषवो देवनिर्मितः । प्रत्नमद्भिः पृक्तः स्वधया पितॄन्लोकान्प्रीणीहि नः स्वाहा । इति तिलदानम् ॥ १२ ॥

गन्धपुष्पे हस्ताभ्यां दत्त्वा पितृपात्रमुत्थाप्य या दिव्येति पठित्वा अमुकगोत्रास्मत्पितः अमुकदेवदशर्मन् सपत्नीक एष तेऽर्घ्यः स्वधा । सपवित्रं पात्रं गृहीत्वा वामपार्श्वे दक्षिणे कुशोपरि । ॐ पितृभ्यः स्थानमसीत्यधोमुखपात्रस्थापनम् ॥ १३ ॥

ॐ शुद्धयन्तां लोकाः पितृसदनाः पितृसदनमसि । अधोमुखपात्रस्पर्शनम् । ततो घृताक्तमन्नं गृहीत्वा दक्षिणोपवीती पितृब्राह्मणम् । ॐ अग्नौ करणमहं करिष्ये ॐ कुरुष्वेति तेनोक्ते ॐ अग्नये कव्यवाहनाय स्वाहा। आहुतिद्वयं देवब्राह्मणहस्ते दत्त्वा अवशिष्टान्नं पिण्डार्थं स्थापयित्वा अपरमर्द्धं पित्रादिपात्रे मातामहादिपात्रे च निक्षिपेत् ॥१४॥

पात्रमुद्रादि निधाय कुशं दत्त्वा अधोमुखाभ्यां पाणिभ्यां पात्रं गृहीत्वा । ॐ पृथिवी ते पात्रं द्यौः पिधानं ब्राह्मणस्य मुखे मृते अमृतं जुहोमि स्वाहा पात्राभिमन्त्रणम् । इदं विष्णुर्विचक्रमे त्रेधा निदधे पदं समूढमस्य पां स्वाहा । विष्णो हव्यं रक्षस्व इत्यन्नमध्ये अधोमुखद्विजाङ्गुष्ठनिवेशनम् ॥१५॥

अपहतेति त्रियववि किरणम् । ॐ निहन्मि सर्वं यदमेध्यवद्भवेद्धताश्च सर्वेऽसुरदानवा मया । रक्षांसि यक्षाः सपिशाचसङ्घा हता मया यातुधानाश्च सर्वे इति सिद्धार्थविकिरणम् ॥१६॥

ततो मधुावलोचनसंज्ञकेभ्यो देवेभ्य एतदन्नं सघृतं सपानीयं सव्यञ्जनं स्वाहेति वारिकुशाग्रैरनुसङ्कल्पनम् । ॐ अन्नमिदमच्छिद्रमस्तु ॐ सङ्कल्पसिद्धिरस्तु ॥१७॥

ततो विपरीतोपवीतेन सव्यञ्जनं सघृतमन्नं पित्रादिब्राह्मणपात्रे निधाय तदुपरि भूमिसंलग्नकुशं दत्त्वा । ॐ पृथिवी ते पात्रं इति मन्त्रेण उत्तानाभ्यां पात्रं गृहीत्वा ॐ इदं विष्णोरित्यन्नोपरि उत्तानं द्विजाङ्गुष्ठं निवेशयेत् । ॐ अपहतेति तिलविकिरणम् । भूमिपातितवामजानुः अमुकगोत्रेभ्यः अस्मत्पितृपितामहेभ्यः सपत्नीकेभ्य एतदन्नं सघृतं सपानीयं सव्य-

ऽन्नं प्रतिषिद्धवर्जितं स्वधा। अन्नं सङ्कल्प्य ॐ ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः कीलालं परिस्रुतं स्वधास्थ तर्पयत मे पितरम्। दक्षिणाभिमुखवारिधारात्यागः ॥१८॥

ॐ श्राद्धमिदमच्छिद्रमस्तु ॐ सङ्कल्पसिद्धिरस्तु ॐ भूर्भुवः स्वः इति विसर्जयित्वा ॐ मधुवाता ऋतायते मधु क्षरन्तु सिन्धवः माध्वीर्नः सन्त्वोषधीर्मधुनक्तमुतोषसो मधुमत् पार्थिवं रजः मधुद्यौरस्तु नः पिता। मधुमान्नो वनस्पतिः मधुमानस्तु सूर्य्यो माध्वीर्गावो भवन्तु नः। मधु मधु मधु इति जपः ॥१९॥ यथासुखं वाग्यता जुषध्वं इति ब्रूयात्। भक्तवत्सलव्याधादिकं पितृस्तोत्रं जपेत्—

सप्त व्याधा दशार्णेषु मृगाः कालञ्जरे गिरौ। चक्रवाकाः शरद्वीपे हंसाः सरसि मानसे ॥२०॥
तेऽभिजाताः कुरुक्षेत्रे ब्राह्मणा वेदपारगाः। प्रस्थिता दूरमध्वानं यूयं तेभ्योऽवसीदत ॥२१॥

ततस्तृप्यस्व दक्षिणाभिमुखो वामोपवीतो तदुत्सृष्टाग्रतः ॥

ॐ अग्निदग्धाश्च ये जीवा येऽप्यदग्धाः कुले मम। भूमौ दत्तेन तृप्यन्तु तृप्ता यान्तु पराङ्गतिम् ॥

इति भूमौ कुशोपरि सघृतमन्नं जलप्लुतं विकिरेत् ॥२२॥

ततो ब्राह्मणक्रमेण जलगण्डूषं दत्त्वा पूर्ववत्सव्याहृतिकां गायत्रीं मधुवातेत्यृचं जप्त्वा ॐ रुचितं भवद्भिरिति देवब्राह्मणप्रश्नः सुरुचितमिति तेनोक्ते ॐ शेषमन्नमिति प्रश्नः इष्टैः सह भुज्यतां पित्रादिब्राह्मणं वामोपवीतेन ॐ तृप्तास्थ इति प्रश्नः ॐ तृप्ताः स्म इति तेनोक्ते भूम्यभ्युक्षणं मण्डलचतुष्कोणं तिलविकिरणम् ॥२३॥

ॐ अमुकगोत्र अस्मत्पितः अमुकदेवशर्मन् सपत्नीक एतत्ते पिण्डासनं स्वधा। इत्थ रेखामध्ये पितामहाय सव्याहृतिकां गायत्रीं मधुवातेति त्रिर्जपन् अन्नं साज्यं पिण्डं कृत्वा कुशोपरि अमुकगोत्र अस्मत्पितः अमुकदेवशर्मन् सपत्नीक एष ते पिण्डः स्वधा। इत्थं रेखामध्ये पितामहाय ततः सव्याहृतिकां गायत्रीं मधुवातेति त्रिर्जपन् पिण्डविकिरणं पिण्डान्तिके। ॐ लेपभुजः प्रीयन्तामिति स्तरणकुशेषु हस्तमार्जनं प्रक्षालितपिण्डोदकेन ॐ अमुकगोत्र अस्मत्पितः अमुकशर्मन् सपत्नीक! एतत्ते जलमवनेनिक्ष्व ये चात्रत्वामनुजांश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधेति पितृपिण्डसेचनम्। पिण्डपात्रमधोमुखं कृत्वा बद्धाञ्जलिः ॐ पितर्मादयध्वं यथाभागमावृषायध्वमिति जपेत् आपः स्पृष्ट्वा वामेन परावृत्त्य उदङ्मुखः प्राणांस्त्रिः संयम्य षड्भ्य ऋतुभ्यो नमः इति जपः ॥२४॥

वामेनैव परावृत्य पुष्पदानम्। अक्षतञ्चारिष्टञ्चास्तु मे पुण्यं शान्तिपुष्टिर्दक्षिणामुखः अमीमदन्तः पितरो यथाभागमावृषायिषत इति जपः। वासः शिथिलीकृत्याञ्जलिं कृत्वा ॐ नमो वः

पितरो नमो व इति जपः । गृहान्नः पितरो दत्त इति गृहवीक्षणं ततः मदो वः पितरो द्वेष्म इति वीक्ष्य एतद्वः पितरो वास इत्युच्चार्य्य अमुकगोत्र ! एतत्ते वासः स्वधा। ततः सूत्रदानम्। वामेन णिना उदकपात्रं गृहीत्वा ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतं पयः इत्यादि पिण्डोपरि धारात्यागः ॥२५॥

पूर्वस्थापितपात्रशेषोदकैः प्रत्येकं पिण्डसेचनं पिण्डमावाह्य गन्धादिदानं पिण्डोपरि कुशपत्रञ्च दत्त्वा ॐ अक्षन्नमीमदन्तह्यवप्रिया अधूषत अस्तोषत सुभानवो विप्रा नविष्ठयामतीयो यान्नन्द्वते हरीति त्रिर्जपः ॥२६॥

इत्थं मातामहादिब्राह्मणानामाचमनं ॐ सुप्रोक्षितमस्त्विवति भूम्यभ्युक्षणं कृत्वा । ॐ अपां मध्ये स्थिता देवाः सर्वमप्सु प्रतिष्ठितम्। ब्राह्मणस्य करे न्यस्ताः शिवा आपो भवन्तु नः॥

शिवा आपः सन्त्विवति ब्राह्मणहस्ते जलदानम् । लक्ष्मीर्वसति पुष्करे लक्ष्मीर्वसति सदा गोष्ठे सौमनस्यं सदास्तु ते । सोमस्येति धृतिश्च यद्यच्छ्रेयस्करं लोके तत्तदस्तु सदा मम । ॐ अक्षतञ्चारिष्टञ्चास्तु इति यवतण्डुलदानम् ॥२७॥

अमुकगोत्राणामस्मत्पितृपितामहप्रपितामहानां सपत्नीकानामिदमन्नपानादिकमक्षय्यमस्त्विवति पित्रादिब्राह्मणहस्ते तिलजलदानम् । अस्त्विवति ब्राह्मणो वदेत् । एतन्मातामहादीनामक्षय्यमाशिषः । ॐ अघोराः पितरः सन्तु गोत्रं नो वर्द्धतां दातारो नोऽभिवर्द्धन्तां वेदाः सन्ततिरेव च । श्रद्धाचनोमाव्यगमत् बहु देयञ्च नोऽस्त्विवति अन्नञ्च नो बहु भवेदतिथींश्च लभेमहि । याचितारश्च नः सन्तु मा च याचिष्म कञ्चन । एता एवाशिषः सन्तु ॥२८॥

सौमनस्यमस्तु अस्त्विवत्युक्ते प्रदत्तपिण्डस्थाने अर्घ्यार्थं पवित्रमोचनम् । कुशपवित्रं गृहीत्वा तेन कुशेन पित्रादिब्राह्मणं स्पृष्ट्वा स्वधां वाचयिष्ये ॐ वाच्यतां ॐ पितृपितामहेभ्यो यथानामशर्मभ्यः सपत्नीकेभ्यः स्वधोच्यताम् । अस्तु स्वधा इत्युक्ते ऊर्जं वहन्तीरमृतं घृतमिति पिण्डोपरि वारिधारां दद्यात् ॥२९॥

ततः ॐ विश्वेदेवा अस्मिन्यज्ञे प्रीयन्तां देवब्राह्मणहस्ते यवोदकदानम् । ॐ प्रीयन्तामिति तेनोक्ते ॐ देवताभ्य इति त्रिर्जपेत् ॥३०॥

अधोमुखः पिण्डपात्राणि चालयित्वा आचम्य दक्षिणोपवीती पूर्वाभिमुखः ॐ अमुकगोत्राय अमुकदेवशर्मणे ब्राह्मणाय सपत्नीकाय श्राद्धप्रतिष्ठार्थं दक्षिणामेतद्रजतं तुभ्यमहं सम्प्रददे । इति दक्षिणां दद्यात् । ततो देवब्राह्मणाय दक्षिणादानम् ॥३१॥

ततः पितृब्राह्मणे पिण्डाः सम्पन्ना इति प्रश्नः । सुसम्पन्ना इति पिण्डे क्षीरधारां दत्त्वा पिण्डचालनं अतिथिब्राह्मणे पिण्डपात्रमुत्तानं कृत्वा । ॐ वाजे वाजे वत वाजिनो नो

धनेषु विप्रा अमृता ऋतज्ञा अस्म मध्वः पिबत मादयध्वं तृप्ता यात पथिभिर्देवयानैरिति पिण्डादिविसर्जनं आमावाजस्य प्रसवो जगम्यादिमे द्यावा पृथिवी विश्वरूपे आमागन्तुं पितरो मातरो युवमामा सोमोऽमृतत्वाय गम्यात् इति देवविसर्जनम् । ॐ अभिरम्यतामिति पितृ ब्राह्मणविसर्जनम् । ब्राह्मणैरनुद्गतस्य निवर्त्तनम् । गवादिषु पिण्डप्रतिपादनमिति शेषः ॥३२॥ अयं श्राद्धविधिः प्रोक्तः पठितः पापनाशनः । अनेन विधिना श्राद्धं कृतं वै यत्र कुत्रचित् ॥३३॥ अक्षया स्यात्पितॄणाञ्च स्वर्गप्राप्तिर्ध्रुवा तथा । इत्युक्तं पार्वणश्राद्धं पितॄणां ब्रह्मलोकदम् ॥३४॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे पार्वणश्राद्धकथनं नाम दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१०॥

एकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

नित्यश्राद्धं प्रवक्ष्यामि पूर्ववत्तद्विशेषवत् ।

ॐ अमुकगोत्राणामस्मत्पितृपितामहानां अमुकशर्मणां सपत्नीकानां श्राद्धं सिद्धान्नेन युष्मत्स्वहं करिष्ये ।

आसनादिकमत्र स्याद्विश्वेदेवविवर्जितम् ॥ १ ॥

वृद्धिश्राद्धं प्रवक्ष्यामि पूर्ववत्तद्विशेषकम् ।

जातपुत्रमुखदर्शनादौ वृद्धिश्राद्धं पूर्वाभिमुखेषु दक्षिणोपवीतिषु सयवबदरकुशैर्देवतीर्थेन नमस्कारान्तेन दक्षिणोपचारेण कर्त्तव्यम् ॥ २ ॥

दक्षिणजानुं गृहीत्वा ॐ अद्यास्मदीयामुकवृद्धौ अमुकगोत्राणामस्मत्-पितामही-मातॄणाम-मुकदेवीनाममुकगोत्राणां श्राद्धे कर्त्तव्ये वसुसत्यसंज्ञकानां विश्वेषां देवानां श्राद्धं सिद्धान्नेन युष्मासु मया कर्त्तव्यमिति देवब्राह्मणामन्त्रणम् । ॐ करिष्यसीति तेनोक्त इत्थमेवापरदेव-ब्राह्मणामन्त्रणम् ॥ ३ ॥

तत अमुकवृद्धौ अमुकगोत्राया मत्प्रपितामह्या अमुकदेव्या नान्दीमुख्याः श्राद्धं सिद्धान्नेन युष्मासु मया कर्त्तव्यमिति । प्रपितामही ब्राह्मणामन्त्रणं करिष्यसीति । तेनोक्ते इत्थमेव प्रमातामह्यादिब्राह्मणामन्त्रणम् ॥ ४ ॥

देवपितृसर्वदेवब्राह्मणां श्राद्धकरणानुज्ञापनं आसने ॐ विश्वेदेवा स आगत शृणुताम

इमं हवम् इदं बर्हिर्निषीदत । ॐ विश्वेदेवाः शृणुतेमं हवं येमे अन्तरिक्षे य उपपद्यविष्टये अग्निजिह्वा उतवा यजत्रा आसाद्यास्मिन्वबर्हिषि मादयध्वम् । ॐ आगच्छन्तु इति विश्वेदेवावाहनं गन्धादिदानम् । अच्छिद्रावधारणवाचनम् ॥ ५ ॥

ततः प्रपितामहीप्रभृतीनामनुज्ञापनं आसनदानं गन्धादिदानञ्च अच्छिद्रावधारणवाचनम् । इत्थं पितामह्या मातुः ततः प्रपितामहादीनां अनुज्ञापनं आसनं आवाहनं गन्धादिदानं वृद्धप्रमातामहादीनां अनुज्ञापनादिकरणम् । ॐ वसुसत्यसंज्ञकेभ्यो देवेभ्यो एतदन्नं सव्यञ्जनं सवदरं सदधि प्रतिषिद्धवर्जितं नम इति अन्नसङ्कल्पनम् । ॐ अमुकगोत्रे अस्मत्पितामहि अमुकीदेवि नान्दीमुखि ! एतदन्नं सवदरं सदधि नमः एवं मातामहप्रमातामहेभ्यः ॥६॥

एकोद्दिष्टं पुरावत्ते तद्विशेषं वदे शृणु ।

प्रथमं निमन्त्रणं पादप्रक्षालनम् आसनम् अद्य अमुकगोत्रस्य मत्पितुरमुकदेवशर्मणः प्रतिसांवत्सरिकमेकोद्दिष्टश्राद्धं सिद्धान्नेन युष्मास्वहं करिष्ये । श्राद्धकरणानुज्ञापनम् आसनं गन्धादिदानम् अन्नानुकल्पनम् । जप्यं निवीति उत्तराभिमुखीभूयातिथिश्राद्धं कुर्य्यात् ॥ ७ ॥

ततस्तृप्तिं ज्ञात्वा दक्षिणाभिमुखो वामोपवीती उच्छिष्टसमीपे अग्निदग्धा इति अन्नविकिरणम् । अमुकगोत्र ! मत्पितरमुकदेवशर्मन्नेतत्ते जलमवनेनिक्ष ये चात्र त्वामनुजांश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधा इति रेखोपरि वारिधारादानम् । शेषं पूर्ववत् ॥ ८ ॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे एकादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२११॥

द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

सपिण्डीकरणं वक्ष्ये पूर्णेऽब्दे तत्क्षयेऽहनि । कृतं सम्यग्यथाकाले प्रेतादेः पितृलोकदम् ॥ १ ॥
सपिण्डीकरणं कुर्य्यादपराह्णे तु पूर्ववत् ।

पितामहादिब्राह्मणनिमन्त्रणम् । ॐ पुरूरवो माद्रवसंज्ञकेभ्यो देवेभ्य एतदासनं नमः वामपार्श्वे चासनदानम् । आवाहनम् । ततः पितामहप्रपितामहानां सपत्नीकानां श्राद्धमहं करिष्ये इत्यनुज्ञाग्रहणं पात्रत्रयकरणं पात्रोपरि कुशं दत्त्वा पात्रान्तरेण पिधाय अच्छिद्रावधारणान्तं परिसमाप्य तथैव पितुरपि सपत्नीकस्य प्रेतपदान्तनाम्ना श्राद्धकरणानुज्ञापनं देवपात्राच्छिद्रावधारणम् ॥ २ ॥

तत्परिसमाप्य पितामहप्रपितामहवृद्धप्रपितामहक्रमेण पात्राणां मनाक्चालनम् उद्घाटनं कृत्वा । ॐ ये समानाः समनसः पितरो यमराज्ये तेषां लोकः स्वधा नमो यज्ञो देवेषु कल्पताम् ।

ॐ ये समानाः समनसो जीवा जीवेषु मामकाः । तेषां श्रीर्मयि कल्पतामस्मिन्लोके शतं समाः ॥

एतन्मन्त्रद्वयेन पितृपात्रोदकं पितामहप्रपितामहपात्रे वृद्धप्रपितामहपात्रं परित्यज्य पितामहप्रपितामहयोरुदकं पवित्रञ्च पितृपात्रे क्षिपेत् ॥ ३ ॥

ततः पितृब्राह्मणहस्ते पात्रस्थपवित्रदानम् । पात्रस्थपुष्पेण शिरसः करपादार्चनं ब्राह्मणहस्तेऽन्यजलदानं हस्ताभ्यां पात्रमुत्थाप्य या दिव्येति पठित्वा अमुकगोत्र ! मत्पितामह ! अमुकदेवशर्मन् सपत्नीक ! एष ते अर्घ्यः स्वधा पितृपात्रेणैव पितामहब्राह्मणहस्ते स्तोकमर्घोदकं कृत्वा स्तोकमुदकं पिण्डसेचनार्थं पात्रान्तरेण पिधाय पितृब्राह्मणवामपार्श्वे दक्षिणाग्रकुशोपरि पितृभ्यः स्थानमसीति अधोमुखपात्रस्थापनम् ॥ ४ ॥

पितामहप्रपितामहवृद्धप्रपितामहानां गन्धादिदानमग्नौकरणम् अवशिष्टान्नं प्रपितामहादिपात्रे क्षिपेत् । पितामहपात्राभिमन्त्रणपर्यन्तक्रमेण समाप्यापि ब्राह्मणपात्राभिमर्षणं अङ्गुष्ठनिवेशन तिलविकिरणं कृत्वा अमुकगोत्र ! एतत्ते अन्नं घृतं पानीयं सव्यञ्जनं प्रतिषिद्धवर्जितं ये चात्र त्वामनुजांश्च त्वमनु तस्मै ते स्वधा इति ॥ ५ ॥

ततो देवप्रभृतिभ्य आपोषणं दद्यात् । अतिथिप्राप्तौ अतिथिश्राद्धं कुर्यात् । अस्मिन्नवसरे विकिरणम् । पितामहादौ प्रश्नं कृत्वा पितृब्राह्मणं ॐ स्वदितं भवद्भिरिति प्रश्नः । ॐ अमुकगोत्र ! मत्पितः ! अमुकशर्मन् ! सपत्नीक ! एष ते पिण्डो ये चात्रत्वा मनुजांश्च त्वमनु तस्मै स्वधेति पिण्डपात्रमच्छिद्रमस्तु । ततः सङ्कल्पसिद्धिवाचनं समाप्य पिण्डं द्विधा कृत्वा ये समानाः सुमनस इति मन्त्रद्वय पठित्वा पितामहवृद्धप्रपितामहपात्रेषु क्षिपेत् । पिण्डेषु गन्धादिकं दत्त्वा पिण्डचालनं अतिथिब्राह्मणे स्वदितादिप्रश्नः । ब्राह्मणानामाचमनं भुक्तिक्रमेण ताम्बूलदानम् । सुप्रोक्षितमस्तु शिवा आपः सन्तु वृद्धप्रपितामहक्रमेण ब्राह्मणहस्ते जलदानम् । गोत्रस्याक्षय्यमस्तु पितृब्राह्मणहस्ते उपतिष्ठतामिति सतिलजलदानम् ॥ ६ ॥

अघोराः पितरः सन्तु अस्त्वित्युक्ते स्वधां वाचयिष्ये इति पितामहादिब्राह्मणानुज्ञापनम् । ॐ वाच्यतां इत्युक्ते ॐ पितामहादिभ्यः स्वधोच्यतां अस्तु स्वधेत्युक्ते पितृब्राह्मणपितृभ्यः स्वधोच्यतामिति अस्तु स्वधेत्युक्ते ॥७॥ ॐ ऊर्जं वहन्तीरिति दक्षिणाभिमुखवारिधारात्यागः ।

ॐ विश्वेदेवा अस्मिन् यज्ञे प्रीयन्तामिति देवब्राह्मणहस्ते यवोदकदानम्। ॐ देवताभ्य इति त्रिर्जपः ॥ ८ ॥

पिण्डपात्राणि चालयित्वा आचम्य पितामहादिभ्यो दक्षिणां दत्त्वा ततः पितृब्राह्मणाय आशिषो मे प्रदीयन्तामित्याशीःप्रार्थनं प्रतिगृह्यतामित्युक्ते दातारो नोऽभिवर्द्धन्तामिति पात्रमुत्तानं कृत्वा वाजे वाजे विसर्जनं अभिरम्यतामिति पितृब्राह्मणम् ॥ ९ ॥

सपिण्डीकरणश्राद्धं व्यास प्रोक्तं मया तव। श्राद्धं विष्णुः श्राद्धकर्त्ता फलं श्राद्धादिकं हरिः ॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे श्राद्धानुष्ठानं नाम द्वादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१२॥

त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

धर्मसारमहं वक्ष्ये संक्षेपाच्छृणु शङ्कर। भुक्तिमुक्तिप्रदं सूक्ष्मं सर्वपापविनाशनम् ॥१॥
श्रुतं धर्मं बलं धैर्य्यं सुखमुत्साहमेव च। शोको हरति वै नृणां तस्माच्छोकं परित्यजेत् ॥२॥
कर्मदाराः कर्मलोकाः कर्मसम्बन्धिबान्धवाः। कर्माणि प्रेरयन्तीह पुरुषं सुखदुःखयो ॥३॥
दानमेव परो धर्मो दानात्सर्वमवाप्यते। दानं स्वर्गश्च राज्यञ्च दद्याद्दानं ततो नरः ॥४॥
एकतो दानमेवाहुः समग्रवरदक्षिणम्। एकतो भयभीतस्य प्राणिनः प्राणरक्षणम् ॥५॥
तपसा ब्रह्मचर्य्येण यज्ञैः स्नानेन वा पुनः। धर्मस्य नाशका ये च ते वै निरयगामिनः ॥६॥
ये च होमजपस्नानदेवतार्चनतत्पराः। सत्यक्षमादयायुक्तास्ते नराः सर्वगामिनः ॥७॥
न दाता सुखदुःखानां न च हर्त्तास्ति कश्चन। स्वकृतान्येव भुञ्जन्ते दुःखानि च सुखानि च ॥
धर्मार्थं जीवितं येषां दुर्गाण्यतितरन्ति ते। सन्तुष्टः को न शक्नोति फलमूलैश्च वर्त्तितुम ॥९॥
सर्व एव हि सौख्येन सङ्कटान्यवगाहते। इदमेव हि लोभस्य कार्य्यं स्यादतिदुष्करम् ॥१०॥
लोभात्क्रोधः प्रभवति लोभाद्द्रोहः प्रवर्त्तते। लोभान्मोहश्च माया च मानो मत्सर एव च ११॥
रागद्वेषानृतक्रोधलोभमोहमदोज्झितः। यः स शान्तः परं लोकं याति पापविवर्जितः १२॥
देवता मुनयो नागा गन्धर्वा गुह्यका हर। धार्मिकं पूजयन्तीह न धनाढ्यं न कामिनम् १३॥
अनन्तबलवीर्य्येण प्रज्ञया पौरुषेण वा। अलभ्यं लभते मर्त्यस्तत्र का परिवेदना ॥१४॥
सर्वसत्त्वदयात्यर्थं सर्वेन्द्रियविनिग्रहः। सर्वत्रानित्यबुद्धित्वं श्रेयः परमिदं स्मृतम् ॥१५॥

पश्यन्निवाग्रतो मृत्युं यो धर्मं नाचरेन्नरः । अजागलस्तनस्येव तस्य जन्म निरर्थकम् ॥१६॥
भ्रूणहा ब्रह्महा गोघ्नः पितृहा गुरुतल्पगः । भूमिं सर्वगुणोपेतां दत्त्वा पापैः प्रमुच्यते ॥१७॥
न गोदानात्परं दानं किञ्चिदस्तीह मे मतिः । या गौर्न्यायार्जिता दत्ता कृत्स्नं तारयते कुलम् ॥
नान्नदानात्परं दानं किञ्चिदस्ति वृषध्वज । अन्नेन धार्य्यते सर्वं चराचरमिदं जगत् ॥१९॥
कन्यादानं वृषोत्सर्गस्तीर्थसेवा श्रुतं तथा । हस्त्यश्वरथदानानि मणिरत्नवसुन्धराः ॥२०॥
अन्नदानस्य सर्वाणि कलां नार्हन्ति षोडशीम् ।
अन्नात्प्राणा बलं तेजश्चान्नाद्वीर्य्यं धृतिः स्मृतिः ॥२१॥
कूपवापीतड़ागादि आरामाणि च कारयेत् । त्रिसप्तकुलमुद्धृत्य विष्णुलोके महीयते ॥२२॥
साधूनां दर्शनं पुण्यं तीर्थादपि विशिष्यते । कालेन फलते तीर्थं सद्यः साधुसमागमः ॥२३॥
सत्यं दमस्तपः शौचं सन्तोषश्च क्षमार्जवम् । ज्ञानं शमो दया दानमेष धर्मः सनातनः ॥२४॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे धर्मसारकथनं नाम त्रयोदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१३॥

चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

प्रायश्चित्तादि वक्ष्येऽहं नरकाद्यघमर्दनम् । मक्षिका विप्रुषो नारी भुवि तोयं हुताशनः ॥
मार्जारो नकुलश्चैव शुचीन्येतानि नित्यशः ॥ १ ॥
यः शूद्रोच्छिष्टसंस्पृष्टः प्रमादाद्भुङ्क्ते द्विजः । अहोरात्रोषितो भूत्वा पञ्चगव्येन शुध्यति ॥२॥
विप्रो विप्रेण संस्पृष्ट उच्छिष्टेन कदाचन । स्नानं जप्यञ्च कर्त्तव्यं दिनस्यान्ते च भोजनम् ॥३॥
अन्नं समक्षिकाकेशं शुध्येद्वान्तेन तत्क्षणात् । यश्च पाणितले भुङ्क्ते अङ्गुल्या बाहुना च यः ४॥
अहोरात्रेण शुध्येत पिबेत्पतितवार्य्युत । पीतशेषन्तु यत्तोयं वामहस्तेन मद्यवत् ॥५॥
चर्ममध्यगतं तोयमशुचि स्यान्न तत्पिबेत् । अन्त्यजातिरविज्ञातो निवसेद्यस्य वेश्मनि ॥६॥
चान्द्रायणं पराकं वा द्विजातीनां विशोधनम् । प्राजापत्यन्तु शूद्रस्य पश्चाज्ज्ञाते तथापरे ॥७॥
यस्तत्र भुङ्क्ते पक्वान्नं कृच्छ्रार्द्धं तस्य दापयेत् ।
तेषामपि च यो भुङ्क्ते कृच्छ्रपादो विधीयते ॥ ८ ॥
रजकानाञ्च शैलूषवेणुचर्मोपजीविनाम् । एतदन्नञ्च यो भुङ्क्ते द्विजश्चान्द्रायणं चरेत् ॥९॥

चाण्डालकूपभाण्डेषु अज्ञानात्पिबते जलम् । कुर्य्यात्सान्तपनं विप्रस्तदर्द्धश्च विशः स्मृतम् १०॥
पादं शूद्रस्य दातव्यमज्ञानादन्त्यवेश्मनि । प्रायश्चित्तं त्रिकृच्छ्रं स्यात्पराकमन्त्यजागतौ ॥११॥
अन्त्यजोच्छिष्टभुक्शुध्येद्द्विजश्चान्द्रायणेन च । चाण्डालान्नं यदा भुङ्क्ते प्रमादादैन्धनश्चरेत् ॥
क्षत्रजातिः सान्तपनं यज्ञोरात्रं परे तथा । एकवृत्ते तु चण्डालः प्रमादाद्ब्राह्मणो यदि ॥
फलं भक्षयते तत्र अहोरात्रेण शुध्यति ॥ १३ ॥
भुक्त्वोच्छिष्टमपि वान्ताचाण्डालं स्पृशते यदि । गायत्र्यष्टसहस्रं तु द्रुपदां वा शतं जपेत् ॥१४॥
चाण्डालश्वपचान्ने वा विण्मूत्रे तु कृतेन वा । प्रायश्चित्तं त्रिरात्रं स्यात्पराकश्चान्त्यजागतौ १५॥
अकामतः स्त्रियां गत्वा पराकस्तत्र साधकः । अन्त्यजातिप्रसूतस्य प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥१६॥
मद्यादिदुष्टभाण्डेषु यदापः पिबते द्विजः । कृच्छ्रपादेन शुध्येत पुनः संस्कारकर्मणा ॥१७॥
ये प्रत्यवसिता विप्रा वज्राग्निपवनादिषु । अन्नपानादि संगृह्य चिकीर्षन्ति गृहान्तरम् ॥१८॥
चारयेत्त्रीणि कृच्छ्राणि त्रीणि चान्द्रायणानि वै । जातकर्मादिसंस्कारं वसिष्ठो मुनिरब्रवीत् ॥
प्राजापत्यादिभिर्द्रष्टा स्त्री शुध्येत द्विभोजनात् । उच्छिष्टोच्छिष्टसंस्पृष्टशुना शूद्रेण वा द्विजः २०॥
उपोष्य रजनीमेकां पञ्चगव्येन शुध्यति । वर्णबाह्येन संस्पृष्टः पञ्चरात्रेण वै तदा ॥२१॥
अदुष्टाः सन्तताधारा वातोद्धूताश्च रेणवः । स्त्रियो बालाश्च वृद्धाश्च न दुष्यन्ति कदाचन २२॥

नित्यमास्यं शुचि स्त्रीणां शकुन्तैः पातितं फलम् ।
प्रस्रवे च शुचिर्वत्सः श्वा मृगो ग्रहणे शुचिः ॥२३॥
उदके चोदकस्थं तु स्थलेषु स्थलजः शुचिः ।
पादौ स्थाप्यौ च तत्रैव आचान्तः शुचितामियात् ॥ २४ ॥

भस्मना शुध्यते कांस्यं सुरया यन्न लिप्यते । मूत्रेण सुरया मिश्रं तापनैः खलु शुध्यति ॥२५॥

गवाघ्रातानि कांस्यानि शूद्रोच्छिष्टानि यानि च ।
काकश्वानहतान्येव शुध्यन्ति दश भस्मना ॥२६॥

शूद्रभाजनभोक्ता यः पञ्चगव्यं तूपोषितः । उच्छिष्टं स्पृशते विप्रः श्वशूद्रश्चापराधिकः ॥२७॥
उपोषितः पञ्चगव्याच्छुध्येत्स्पृष्ट्वा रजस्वलाम् । अनूदकेषु देशेषु चौरव्याघ्राकुले पथि ॥२८॥
कृत्वा मूत्रपुरीषन्तु द्रव्यहस्तो न दुष्यति । भूमौ निक्षिप्य तद्द्रव्यं शौचं कृत्वा समाहितः २९॥
आरनालं दधि क्षीरं तक्रन्तु कृशरञ्च यत् । शूद्रादपि च तद् ग्राह्यं माषं मधु तथान्त्यजात् ३०॥
गौड़ीं पैष्टीञ्च माध्वीकं विप्रादिर्यः सुरां पिबेत् । सुरां पिबन्द्विजः शुध्येदग्निवर्णां सुरां पिबेत् ॥
विप्रैः पञ्चशतं जप्यं गायत्र्याः क्षत्रियस्य च । शतं विप्रश्च भुक्त्वान्नं पानपात्रेण सूतके ॥३२॥

शुचिर्विप्रो दशाहेन क्षत्रियो द्वादशाहतः । वैश्यः पञ्चदशाहेन शूद्रो मासेन शुध्यति ॥३३॥
राज्ञां युद्धेषु यज्ञादौ देशान्तरगतेषु च । बाले प्रेते च यन्मासे सद्यः शौचं विधीयते ॥३४॥
अविवाहा तथा कन्या द्विजो यो मौञ्जिवर्जितः । जातदन्तश्च बालश्च कुमारी च त्रिवर्षिका ॥
तेषां शुद्धिस्त्रिरात्रेण गर्भस्रावे च रात्रिभिः । सूतायां मासतुल्याश्च चतुर्थेऽह्नि रजस्वला ॥३६॥
दुर्भिक्षे राष्ट्रसंपाते सूतके मृतकेपि वा । नियमाश्च न दुष्यन्ति दानधर्मपरास्तथा ॥३७॥
दीक्षाकाले विवाहादौ देवद्विजनिमन्त्रिते । पूर्वसङ्कल्पिते वापि नाशौचं मृतसूतके ॥३८॥
प्रसूतपत्नीसंस्पर्शादशुचिः स्यात्तथा द्विजः । अग्नयो यत्र हूयन्ते वेदो वा यत्र पठ्यते ॥३९॥
सततं वैश्वदेवादि म तेषां सूतकं भवेत् । अशुद्धे च गृहे भुक्ते त्रिरात्राच्छुध्यति द्विजः ॥४०॥
ब्राह्मणी क्षत्रिया वैश्या शूद्रा चैव रजस्वला । अन्योन्यस्पर्शनात्तत्र ब्राह्मणी तु त्रिरात्रतः ॥४१॥
द्विरात्रतः क्षत्रिया च शुद्धा वैश्या ह्युपोषिता । शूद्रा स्नानेन शुध्येत द्रोणार्थं न विसर्जयेत् ॥
काकश्वानोपनीतन्तु अन्नं बाह्यन्तु तत्त्यजेत् । सुवर्णाद्भिः समभ्युक्ष्य हुताशे च प्रतापयेत् ४३ ॥
कूपे च पतितौ दृष्ट्वा श्वशृगालौ च मर्कटम् । तत्कूपस्योदकं पीत्वा शुध्येद्विप्रस्त्रिभिर्दिनैः ॥
क्षत्रियोऽहर्द्वयेनैव वैश्यो वैकाहतः परम् ॥४४॥

अस्थि चर्म मलं वापि मूषिकं यदि कूपतः । उद्धृत्य चोदकं पञ्चगव्याच्छुध्येत शोधितम् ॥४५॥
तड़ागे पुष्करिण्यादौ भस्मादि पातयेत्तथा । षट्कुम्भानप उद्धृत्य पञ्चगव्येन शुध्यति ॥४६॥
स्त्रीरजः पतितं मध्ये त्रिंशत्कुम्भान्समुद्धरेत् । अगम्यागमनं कृत्वा मद्यगोमांसभक्षणम् ॥४७॥
शुध्येच्चान्द्रायणाद्विप्रः प्राजापत्येन भूमिपः । वैश्यः शान्तपनाच्छूद्रः पञ्चाहोभिर्विशुध्यति ॥४८॥
प्रायश्चित्ते कृते दद्याद्गवां ब्राह्मणभोजनम् । क्रीडायां शयनीयादौ नीलीवस्त्रं न दुष्यति ॥
नीलीवस्त्रं न स्पृशेच्च नीली च निरयं व्रजेत् ॥४९॥
ब्रह्मघ्नश्च सुरापश्च स्तेयी च गुरुतल्पगः । ऋक्षं दृष्ट्वा विशुध्यन्ते तत्संयोगी च पञ्चमः ५०॥
ततो धेनुशतं दद्याद् ब्राह्मणानान्तु भोजनम् । ब्रह्महा द्वादशाब्दानि कुटीं कृत्वा वने वसेत् ॥
न्यस्येदात्मानमग्नौ वा सुसमिद्धे सुरापि यः । स्तेयी सर्वं वेदविदे ब्राह्मणायोपदापयेत् ॥
वृषभैकं सहस्रं गां दद्याच्च गुरुतल्पगः ॥५२॥

कृतपापं चरेद्रोधे द्वौ पादौ बन्धने पशोः । सर्वकृच्छ्रं निपाते स्यात्कान्तारे गृहदाहतः ॥५३॥
घण्टाभरणदोषेण कृतपाते मृते गवि । अस्थिभङ्गं गवां कृत्वा शृङ्गभङ्गमथापि वा ॥५४॥
त्वग्भेदं पुच्छनासां वा मासार्द्धं यावकं पिबेत् । सर्वं हस्त्यश्वशस्त्राद्यैर्निश्चयं कृच्छ्रमेव तु ॥५५॥
अज्ञानात्प्राश्य विण्मूत्रं सुरासंस्पृष्टमेव च । पुनः संस्कारमायान्ति त्रयो वर्णा द्विजायतः ॥५६॥

वपनं मेखला दण्डो भैक्ष्यचर्य्यव्रतानि च । निवर्त्तन्ते द्विजातीनां पुनः संस्कारमर्हति ॥५७॥
आममांसं घृतं क्षौद्रं स्नेहश्च कालसम्भवः । अन्त्यभाण्डस्थिताः सर्वे निष्क्रान्ताः शुचयः स्मृताः ॥
एकभक्तं क्रमान्नक्तं एकैकाहमयाचितम् । उपवासः पादकृच्छ्रं कृच्छ्रार्द्धद्विगुणं हि यत् ॥५९॥
प्राजापत्यन्तु तत्स्याच्च सर्वपातकनाशनम् । कृच्छ्रं सप्तोपवासैश्च महासान्तपनं स्मृतम् ॥६०॥
त्र्यहमुष्णं पिबेदपः त्र्यहमुष्णं पयः पिबेत् । त्र्यहमुष्णं पिबेन् सर्पिस्तत्कृच्छ्रमघापहम् ॥६१॥
द्वादशाहोपवासेन पराकः सर्वपापहा । एकैकं वर्द्धयेत् पिण्डं शुक्ले कृष्णे च ह्रासयेत् ॥६२॥
पयः काञ्चनवर्णायाः श्वेतवर्णे च गोमयम् । गोमूत्रं ताम्रवर्णाया नीलवर्णाभवं घृतम् ॥६३॥
दधि स्यात् कृष्णवर्णाया दर्भोदकसमायुतम् । गोमूत्रमाषकाण्यष्टौ गोमयस्तु चतुष्टयम् ॥६४॥
क्षीरस्य द्वादश प्रोक्ता दध्नस्तु दश उच्यते । घृतस्य माषकाः पञ्च पञ्चगव्यं मलापहम् ॥६५॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे प्रायश्चित्तकथनं नाम
चतुर्दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१४॥

पञ्चदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

ब्रह्मोवाच

मुनिभिश्चरिता धर्मा भक्त्या व्यासमयोदिताः । यैर्विष्णुस्तुष्यते चैव सुखादिपरिचारकाः ॥१॥
तर्पणेन च होमेन सन्ध्याया वन्दनेन च । प्राप्यते भगवान् विष्णुर्धर्मकामार्थमोक्षदः ॥२॥
धर्मो हि भगवान् विष्णुः पूजाविष्णुस्तु तर्पणम् । होमः सन्ध्या तथा ध्यानं धारणा सकलं हरिः ॥

सूत उवाच

प्रलयं जगतो वक्ष्ये तत्सर्वं शृणु शौनक । चतुर्युगसहस्रन्तु कल्पैकाब्जदिनं स्मृतम् ॥४॥
कृतत्रेताद्वापरादियुगावस्थां निबोध मे । कृते धर्मश्चतुष्पाच्च सत्यं दानं तपो दया ॥५॥
धर्मपाता हरिश्चेति सन्तुष्टा ज्ञानिनो नराः । चतुर्वर्षसहस्राणि नरा जीवन्ति वै तदा ॥६॥
कृतान्ते क्षत्रियैर्विप्रा विट् शूद्राश्च जिता द्विजैः । शूरश्चातिबलो विष्णू रक्षांसि च जघान ह ॥७॥
त्रेतायुगे त्रिपाद्धर्मः सत्यदानदयात्मकः । नरा यज्ञपरास्तस्मिंस्तथा क्षत्रोद्भवं जगत् ॥८॥
रक्तो हरिर्नरैः पूज्यो नरा दशशतायुषः । तत्र विष्णुर्भीमरथः क्षत्रिया राक्षसानहन् ॥९॥
द्विपादविग्रहो धर्मः पीताताङ्गाच्युते गते । चतुःशतायुषो लोका द्विजक्षत्रोद्भवाः प्रजाः ॥१०॥
तत्र दृष्ट्वाल्पबुद्धींश्च विष्णुर्व्यासस्वरूपधृक् । तदेकं तु चतुर्वेदं चतुर्द्धा व्यभजत् पुनः ॥११॥

शिष्यानध्यापयामास समस्तान् तान् निबोध मे । ऋग्वेदमथ पैलन्तु सामवेदञ्च जैमिनिम् ॥१२॥
अथर्वाणं सुमन्तुं तु यजुर्वेदं महामुनिम् । वैशम्पायनसञ्ज्ञन्तु पुराणं सूतमेव च ॥
अष्टादश पुराणानि यो वेत्ति हरिरेव हि ॥१३॥
सर्गश्च प्रतिसर्गश्च वंशो मन्वन्तराणि च । वंशानुचरितञ्चैव पुराणं पञ्चलक्षणम् ॥१४॥
ब्राह्मं पाद्मं वैष्णवञ्च शैवं भागवतं तथा । भविष्यन्नारदीयञ्च स्कान्दं लिङ्गं वराहकम् ॥१५॥
मार्कण्डेयं तथाग्नेयं ब्रह्मवैवर्त्तमेव च । कौर्मं मात्स्यं गारुड़ञ्च वायवीयमनन्तरम् ॥
अष्टादशसमुद्दिष्टं ब्रह्माण्डमिति संज्ञितम् ॥१६॥
अन्यान्युपपुराणानि मुनिभिः कथितानि तु । आद्यं सनत्कुमारोक्तं नारसिंहमथापरम् ॥१७॥
तृतीयं स्कन्दमुद्दिष्टं कुमारेण तु भाषितम् । चतुर्थं शिवधर्माख्यं स्यान्नन्दीश्वरभाषितम् ॥१८॥
दुर्वाससोक्तमाश्चर्य्यं नारदोक्तमतः परम् । कपिलं वामनञ्चैव तथैवोशनसेरितम् ॥१९॥
ब्रह्माण्डं वारुणञ्चाथ कालिकाह्वयमेव च । माहेश्वरं तथा साम्बमेवं सर्वार्थसञ्चयम् ॥
पराशरोक्तमपरं मारीचं भार्गवाह्वयम् ॥२०॥
पुराणं धर्मशास्त्रञ्च वेदस्त्वङ्गानि यन्मुने । न्यायः शौनक मीमांसा आयुर्वेदार्थशास्त्रकम् ॥
गन्धर्वश्च धनुर्वेदो विद्या ह्यष्टादश स्मृताः ॥२१॥
द्वापरान्तेन च हरिर्गुरुभारमपाहरत् । एकपादस्थिते धर्मे कृष्णत्वञ्चाच्युते गते ॥२२॥
जनास्तदा दुराचारा भविष्यन्ति च निर्दयाः । सत्त्वं रजस्तम इति दृश्यन्ते पुरुषे गुणाः ॥
कालसञ्चोदितास्तेऽपि परिवर्त्तन्त आत्मनि ॥२३॥
प्रभूतञ्च यदा सत्त्वं मनोबुद्धीन्द्रियाणि च । तदा कृतयुगं विद्यात् ज्ञाने तपसि यद्रतः ॥२४॥
यदा कर्मसु काम्येषु शक्तिर्यशसि देहिनाम् । तदा त्रेता रजोभूतिरिति जानीहि शौनक ॥२५॥
यदा लोभस्त्वसन्तोषो मानो दम्भश्च मत्सरः । कर्मणाञ्चापि काम्यानां द्वापरं तद्रजस्तमः ॥२६॥
यदा सदानृतं तन्द्रा निद्रा हिंसादिसाधनम् । शोकमोहौ भयं दैन्यं स कलिस्तमसि स्मृतः २७॥
यस्मिन् जनाः कामिनः स्युः शश्वत् कटुकभाषिणः। दस्यूत्कृष्टा जनपदा वेदाः पाषण्डदूषिताः ॥
राजानश्च प्रजाभिक्षाः शिश्नोदरपराजिताः । अव्रता वटवोऽशौचा भिक्षवश्च कुटुम्बिनः ॥२९॥
तपस्विनो ग्रामवासाः न्यासिनो ह्यर्थलोलुपाः । ह्रस्वकाया महाहाराश्चौर्य्यास्तु साधवः स्मृताः ॥
त्यक्ष्यन्ति भृत्याश्च पतिं तापसस्त्यक्ष्यति व्रतम् । शूद्राः प्रतिग्रहिष्यन्ति वैश्यस्तपपरायणः ॥३१॥
उद्विग्नाः सन्ति च जनाः पिशाचसदृशाः प्रजाः । अन्यायभोजनेनाग्निदेवतातिथिपूजनम् ॥३२॥
कारिष्यन्ति कलौ प्राप्ते न च पित्र्युदकक्रियाम् । स्त्रीपराश्च जनाः सर्वे शूद्रप्रायाश्च शौनक ३३॥

बहुप्रजाल्पभाग्याश्च भविष्यन्ति कलौ स्त्रियः । शिरःकण्डूयनपरा आज्ञां भेत्स्यन्ति भर्त्सिताः ॥
विष्णुं न पूजयिष्यन्ति पाषण्डोपहता जनाः । कलेर्दोषनिधेर्विप्रा अस्ति ह्येको महागुणः ॥३५॥
कीर्त्तनादेव कृष्णस्य महाबन्धं परित्यजेत् । कृते यज्ञादिना विष्णुं त्रेतायां जपतः फलम् ॥३६॥
द्वापरे परिचर्य्यायां कलौ तद्धरिकीर्त्तनात् । तस्माद् ध्येयो हरिर्नित्यं ध्येयः पूज्यश्च शौनक ॥३७॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे युगधर्मकथनं नाम पञ्च-
दशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१५॥

षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

चतुर्युगसहस्रान्ते ब्राह्मो नैमित्तिको लयः । अनावृष्टिश्च कल्पान्ते जायते शतवार्षिकी ॥१॥
उत्तिष्ठन्ति तदा रौद्रा दिवि सप्त दिवाकराः । ते तु पीत्वा जलं सर्वं शोषयन्ति जगत्त्रयम् ॥२॥
भूर्भुवःस्वर्महर्लोकं चराचरं जनं तथा । रुद्रो भूत्वासौ विष्णुश्च पातालानि दहत्यथ ॥३॥
विष्णुर्दहेत्त्रिलोकञ्च मुखान्मेघान् सृजत्यलम् । वर्षन्ते च वर्षशतं नानामोहमहाघनाः ॥४॥
विष्णुरेकार्णवे भूते वर्षे ब्रह्मस्वरूपधृक् । शेतेऽनन्तासने विष्णुर्नष्टे स्थावरजङ्गमे ॥५॥
सुप्त्वा वर्षसहस्रं स जगद्भूयोऽसृजद्धरिः । अथ प्राकृतिकं वक्ष्ये प्रलयं शृणु शौनक ॥६॥
पूर्णे संवत्सरशते संहृत्य सकलं जगत् । ब्राह्मणं न्यस्य देहे हि मुक्तो योगबलैर्हरिः ॥७॥
अनावृष्ट्यर्कसम्पन्ना आसन् मेघास्तथा द्विज । शतं वर्षाणि वर्षद्भिर्मेघैरण्डं प्रपूर्य्यते ॥८॥
अन्तर्गतेन तोयेन भिन्नमण्डं जगत्पतेः । पूर्णे ब्रह्मायुषि गते भिद्यतेऽम्भसि लीयते ॥९॥
एवं सा जगदाधारा तोये चोर्वी प्रलीयते । आपस्तेजसि लीयन्ते तेजो वायौ प्रलीयते ॥१०॥
वायुः खे खञ्च भूतादौ विशते च तदा महान् । महान् प्रपद्यते व्यक्ता प्रकृतिः पुरुषे नरे ॥११॥
शतवर्षं हरिः शेते सृजतेऽथ दिनागमे । अव्यक्तादिक्रमेणैव व्यक्तीभूतं चराचरम् ॥१२॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे नैमित्तिकप्रलयकथनं
नाम षोडशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१६॥

सप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

आध्यात्मिकादितापांस्त्रीन् ज्ञात्वा संसारचक्रवित् । उत्पन्नज्ञानवैराग्यः प्राप्नोत्यात्यन्तिकं लयम् ॥
संसारचक्रं वक्ष्येऽहमादावुत्क्रान्तिकालतः । यद्विना पुरुषार्थो न लीनः स्यात्परमात्मनि ॥२॥
उर्ध्ववासो नरस्त्यक्त्वा देहमन्यत् प्रपद्यते । नीयते द्वादशाहेन यमस्य यमपूरुषैः ॥३॥
तत्र यद्बान्धवास्तोयं प्रयच्छन्ति तिलैः सह । यच्च पिण्डं प्रयच्छन्ति यमलोके तदश्नुते ॥४॥
गतश्च नरकं पापात् स्वर्गं याति स्वपुण्यतः । पापकृद् याति नरकं पुण्यकृद् याति वै दिवम् ॥
स्वर्गाच्च नरकात् त्यक्तः स्त्रीणां गर्भे भवत्यपि । नाभिभूतश्च तस्यैव याति बीजद्वयं हि तत् ॥६॥
कलनं बुद्बुदमयं ततः शोणितमेव च । पेश्या पलसमोऽण्डः स्यादङ्कुरं तत उच्यते ॥७॥
उपाङ्गान्यङ्गुलीनेत्रनासान्यग्रबलानि च । आवहं याति चाङ्गेभ्यस्तत्परं तु नखादिकम् ॥८॥
त्वचो रोमाणि जायन्ते केशाश्चैव ततः परम् । नरश्चाधोमुखः स्थित्वा दशमे च स जायते ॥९॥
ततस्तु वैष्णवी मायाऽऽवृणोत्यत्यन्तमोहिनी । बालत्वं तु कुमारत्वं यौवनं वृद्धतामपि ॥१०॥
ततश्च मरणं तत्तद्धर्ममाप्नोति मानवः । एवं संसारचक्रेऽस्मिन्भ्राम्यते घटियन्त्रवत् ॥११॥
नरकात्प्रतिमुक्तस्तु पापयोनिषु जायते । पतितात्प्रतिगृह्याथ अधोयोनिं व्रजेद् बुध ॥१२॥
नरकात्प्रतिमुक्तस्तु कृमिर्भवति याचकः । उपाध्यायव्यलीकस्तु कृत्वा श्वा भवति द्विजः ॥१३॥
तज्जायां मनसा वाञ्छंस्तद्द्रव्यं वाप्यसंशयः । गर्दभो जायते जन्तुर्मित्रस्यैवापमानकृत् ॥१४॥
पितरौ पीडयित्वा तु कच्छपत्वञ्च जायते । भर्त्तुः पिण्डमुपाश्वस्तो वञ्चयित्वा तमेव यः ॥१५॥
सोऽपि मोहसमापन्ने जायते वानरो मृतः । न्यासोपहर्त्ता नरकाद्विमुक्तो जायते कृमिः ॥१६॥
असूयकश्च नरकान्मुक्तो भवति राक्षसः । विश्वासहर्त्ता च नरो मीनयोनौ प्रजायते ॥१७॥
यवधान्यानि संहृत्य जायते मूषको मृतः । परदाराभिमर्षात्तु वृको घोरोऽभिजायते ॥१८॥
भ्रातृभार्य्याप्रसङ्गत्वे कोकिलो जायते नरः । गुर्वादिभार्य्यागमनाच्छूकरो जायते नरः ॥१९॥
यज्ञदानविवाहानां विघ्नकर्त्ता भवेत्कृमिः । देवतापितृविप्राणामदत्त्वा यो समश्नुते ॥२०॥
प्रमुक्तो नरकाद्वापि वायसः सम्प्रजायते । ज्येष्ठभ्रात्रपमानाच्च क्रौञ्चयोनौ प्रजायते ॥२१॥
शूद्रस्तु ब्राह्मणीं गत्वा कृमियोनौ प्रजायते । तस्यामपत्यमुत्पाद्य काष्ठान्तःकीटको भवेत् ॥२२॥
कृतघ्नः कृमिकः कीटः पतङ्गो वृश्चिकस्तथा । अशस्त्रं पुरुषं हर्त्ता नरः सञ्जायते खरः ॥२३॥
कृमिः स्त्रीवधकर्त्ता च बालहन्ता च जायते । भोजनञ्चोरयित्वा तु मक्षिका जायते नरः ॥२४॥

हृत्वान्नञ्चैव मार्जारस्तिलहृच्चैव मूषिकः । घृतं हृत्वा च नकुलः काको मद्गुरमामिषम् ॥२५॥
मधु हृत्वा नरो दंशः पूपं हृत्वा पिपीलिकः । अपो हृत्वा तु पापात्मा वायसः सम्प्रजायते २६॥
हृते काष्ठे च हारीतः कपोतो वा प्रजायते । हृत्वा तु काञ्चनं भाण्डं कृमियोनौ प्रजायते २७॥
कार्पासिके हृते क्रौञ्चो वह्निहर्त्ता वकस्तथा । मयूरो वर्णकं हृत्वा शाकपत्रञ्च जायते ॥२८॥
जीवञ्जीवकतां याति रक्तवस्त्रापहृन्नरः । छुछुन्दरिः शुभान्गन्धान् शशं हृत्वा शशो भवेत् २९॥
षण्ढः कलापहरणे काष्ठहृत्तृणकीटकः । पुष्पं हृत्वा दरिद्रस्तु पङ्गुर्यानकहृन्नरः ॥३०॥
शाकहर्त्ता च हारीतस्तोयहर्त्ता च चातकः । गृहहृन्नरकान्गत्वा रौरवादीन्सुदारुणान् ॥३१॥
तृणगुल्मलतावल्लीत्वक्हा च तरुतां व्रजेत् । एष एव क्रमो दृष्टो गोसुवर्णादिहारिणाम् ॥३२॥
विद्यापहारी मूकश्च गत्वा च नरकान्बहून् । असमिद्धे हुते चाग्नौ मन्दाग्निः समजायत ॥३३॥
परनिन्दा कृतघ्नत्वं परमर्य्यादघातनम् । नैष्ठुर्य्यं नैर्घृण्यत्वञ्च परदारोपसेविनाम् ॥३४॥
परस्वहरणाशौचं देवतानाञ्च कुत्सनम् । निकृत्य वञ्चनं नृणां कार्पण्यञ्च नृणां नरः ॥
उपलक्षणादि जानीयान्मुक्तानां नरकादनु ॥ ३५ ॥
दया भूतषु संवादः परलोकं प्रतिक्रिया । सत्यं हितार्थमुक्तिश्च वेदप्रामाण्यदर्शनम् ॥३६॥
गुरुदेवर्षिसिद्धर्षिसेवनं साधुसंयमः । सत्क्रियाभ्यसनं मैत्री स्वर्गस्य लक्षणं विदुः ॥
अष्टाङ्गयोगविज्ञानात्प्राप्नोत्यात्यन्तिकं फलम् ॥ ३७ ॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे पापपरिणामकथनं नाम
सप्तदशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१७॥

अष्टादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

वक्ष्ये साङ्गं महायोगं भुक्तिमुक्तिकरं परम् । सर्वपापप्रशमनं भक्त्यानुपठितं शृणु ॥ १ ॥
ममेति मूलं दुःखस्य न ममेति निवर्त्तते । दत्तात्रेयो ह्यलर्काय इममाह महामतिः ॥ २ ॥
अहमित्यङ्कुरोत्पन्नो ममेति स्कन्धवान्महान् । गृहक्षेत्राश्च शाखाश्च यत्र दाराभिपल्लवः ॥ ३ ॥
धनधान्ये महापात्रे पापमूलोऽतिदुर्गमः । विधिवत्सुखशान्त्यर्थं जातो ज्ञानमहातरुः ॥ ४ ॥
छिन्नो विद्याकुठारेण ते गता लयमीश्वरे । प्राप्य ब्रह्मरसं पीतं नीरजस्कमकण्टकम् ॥ ५ ॥

प्राप्नुवन्ति पराः प्राज्ञाः सुखनिर्वृतिमेव च। मूर्त्तेन्द्रियलयं नूनं न त्वं राजन् न चाप्यहम् ६ ॥
न तन्मात्रादिकं वाचा नैवान्तःकरणं तथा। कं वा पश्यसि राजेन्द्र प्रधानमिदमावयोः ७ ॥
मृतः परेऽह्नि क्षेत्रज्ञः संजातोऽयं गुणात्मकः। एकत्वेऽपि पृथग्भावस्तथा क्षेत्रात्मनो नृप ८ ॥
ज्ञानपूर्ववियोगोऽसौ ज्ञाने नष्टे च योगिनः। सा मुक्तिर्ब्रह्मणा चैक्यमनैक्यं पुत्र ते गुणैः ॥ ९ ॥
तद्गृहं यत्र वसति तद्भोज्यं येन जीवति। यन्मुक्तये तदेवोक्तं ज्ञानाज्ञानेन चान्यथा ॥१०॥
भवभोगेन पुण्यानामपुण्यानाञ्च पार्थिव। कर्त्तव्यानाञ्च नित्यानां क्षयं त्वकरणात्तथा ॥११॥
अहिंसा सत्यमस्तेयं ब्रह्मचर्य्यापरिग्रहौ। यमाः पञ्चाथ नियमाः शौचं द्विविधमीरितम् ॥१२॥
सन्तोषस्तपसा शान्तिर्वासुदेवार्चनं दमः। आसनं पद्मकाद्युक्तं प्राणायामो मरुज्जयः ॥१३॥
प्रत्येकं त्रिविधः सोऽपि पूरकुम्भकरेचकैः। लघुर्यो दशमात्रस्तु द्विगुणः स तु मध्यमः ॥१४॥
त्रिगुणाभिस्तु मात्राभिरुत्तमः स उदाहृतः। जपध्यानयुतो गर्भो विपरीतस्त्वभक्षकः ॥१५॥
प्रथमे जनयेत्स्वप्नं मध्यमेन च वेपथुः। विषादं हि तृतीयेन जाता दोषास्त्वनुक्रमात् ॥
आसनस्थं तु युञ्जीत कृत्वा च प्रणवं हृदि। पार्ष्णिभ्यां लिङ्गवृषणौ स्पर्शन्नेकाग्रमानसः ॥१७॥
रजसा तमसो वृत्तिं सत्त्वेन रजसस्तथा। निरुध्य निश्चलो वृत्तिं स्थितो युञ्जीत योगवित् ॥
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः प्राणादीन्मन एव च। निगृह्य समवायेन प्रत्याहारमुपक्रमात् ॥१९॥
प्राणायामा दशाष्टौ च धारणा सा विधीयते। द्वे धारणे स्मृतो योगो योगिभिस्तत्त्वदर्शिभिः ॥
प्राङ्नाड्यां हृदये चात्र तृतीया च तथोरसि। कण्ठे मुखे नासिकाग्रे नेत्रे भ्रूमध्यमूर्धसु ॥२१॥
किञ्चित्तस्मात्परस्मिंश्च धारणा दशधा स्मृता। दशैता धारणाः प्राप्य प्राप्नोत्यक्षररूपताम् २२॥
यथाग्निरग्नौ संक्षिप्तस्तथात्मा परमात्मनि। ब्रह्मरूपं महापुण्यमोमित्येकाक्षरं जपेत् ॥२३॥
अकारश्च तथोकारो मकारश्चाक्षरत्रयम्। इत्येतदक्षरं ब्रह्म परमोङ्कारसंज्ञितम् ॥ २४ ॥
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः स्थूलदेहविवर्जितम्। अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्जरामरणवर्जितम् ॥२५॥
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः पृथिव्या मलवर्जितम्। अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्वाय्वाकाशविवर्जितम् २६॥
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः सूक्ष्मदेहविवर्जितम्। अहं ब्रह्म परं ज्योतिः स्थानास्थानविवर्जितम् ॥
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्गन्धमात्रविवर्जितम्। अहं ब्रह्म परं ज्योतिः श्रोत्रत्वक्परिवर्जितम् २८॥
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्जिह्वाघ्राणविवर्जितम्। अहं ब्रह्म परं ज्योतिः प्राणापानविवर्जितम् २९॥
अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्व्यानोदानविवर्जितम्। अहं ब्रह्म परं ज्योतिरज्ञानपरिवर्जितम् ॥३०॥
अहं ब्रह्म परं ज्योतिस्त्रीष्वयं परमं पदम्। देहेन्द्रियमनोबुद्धिप्राणाहङ्कारवर्जितम् ॥३१॥
नित्यशुद्धबुद्धयुक्तमहमानन्दमद्वयम्। अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्ज्ञानरूपो विमुक्तये ॥३२॥

सूत उवाच

इत्यष्टाङ्गो मया योग उक्तः शौनक मुक्तिदः । नित्यनैमित्तिकं प्राप्त्वा लयं प्राकृतबन्धनाः ३३॥
उत्पद्यन्ते हि संसारे नैकं प्राप्त्वा परात्मनाम् । विमुच्यते विमुक्तश्च ज्ञानादज्ञानमोहितः ॥३४॥
ततो न म्रियते दुःखी न रोगी न च बन्धवान् । न पापैर्युज्यते योगी नरके न विपच्यते ॥३५॥
गर्भवासे स नो दुःखी स स्यान्नारायणोऽव्ययः ।
भक्त्या त्वनन्यया लभ्यो भगवान्भुक्तिमुक्तिदः ॥३६॥
ध्यानेन पूजया जप्यैः सम्यक्स्तोत्रैर्यतव्रतैः । यज्ञैर्दानैश्चित्तशुद्धिस्तया ज्ञानञ्च लभ्यते ॥३७॥
प्रणवादिकमन्त्रैश्च जप्यैर्मुक्तिं गता द्विजाः । इन्द्रोऽपि परमं स्थानं गन्धर्वाप्सरसो वराः ३८॥
प्राप्ता देवाश्च देवत्वं मुनित्वं मुनयो गताः । गन्धर्वत्वञ्च गन्धर्वा राजत्वञ्च नृपादयः ॥३९॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे अष्टाङ्गयोगकथनं नाम
अष्टादशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१८॥

ऊनविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

विष्णुभक्तिं प्रवक्ष्यामि यया सर्वमवाप्यते । यथा भक्त्या हरिस्तुष्येत्तथा नान्येन केनचित् ॥१॥
महतः श्रेयसो मूलं प्रसवः पुण्यसन्ततेः । जीवितस्य फलं स्वादु नियतिस्मरणं हरेः ॥ २ ॥
तस्मात्सेवा बुधैः प्रोक्ता भक्तिसाधनभूयसी । ते भक्ता लोकनाथस्य नामकर्मादिकीर्त्तने ॥ ३ ॥
मुञ्चन्त्यश्रूणि संहर्षाद्ये प्रहृष्टतनूरुहाः । जगद्धातुर्महेशस्य ज्ञानदं चरणद्वयम् ॥ ४ ॥
इह नित्यक्रियाः कुर्य्युः स्निग्धा ये वैष्णवास्तु ते । ब्रह्मादरं न शृण्वन्वै तथा भगवतेरितम् ॥
प्रणामपूर्वकं भक्त्या यो वदेद्वैष्णवो हि सः । तद्भक्तजनवात्सल्यं पूजयंश्चानुमोदनम् ॥ ६ ॥
तत्कथाश्रवणे प्रीतिः श्रवणं सफलं भवेत् । येन सर्वात्मना विष्णौ भक्त्या भावो निवेशितः ॥
विश्वेश्वरकृताद्विप्रान्महाभागवतो हि सः । स्वयमभ्यर्चनञ्चैव यो विष्णुञ्चोपजीवति ॥ ८ ॥
भक्तिरष्टविधा ह्येषा यस्मिन् म्लेच्छोऽपि वर्त्तते । स विप्रेन्द्रो मुनिः श्रीमान् स याति परमां गतिम्॥
तस्मै देयं ततो ग्राह्यं स च पूज्यो यथा हरिः । पुनाति भगवद्भक्तश्चण्डालोऽपि यदृच्छया १०॥
दयां कुरु प्रपन्नाय तवास्मीति च यो वदेत् । अभयं सर्वभूतेभ्यो दद्यादेतद् व्रतं हरेः ॥ ११ ॥
मन्त्रयाजिसहस्रेभ्यः सर्ववेदान्तपारगः । सर्ववेदान्तवित्कोट्या विष्णुभक्तो विशिष्यते ॥ १२ ॥

एकान्तिनः स्ववपुषा गच्छन्ति परमं पदम् । एकान्तेन समो विष्णुस्तस्मादेषां परायणः १३॥
यस्मादेकान्तिनः प्रोक्तास्तद्भागवतचेतसः । प्रियाणामपि सर्वेषां देवदेवस्य सुप्रियः ॥ १४ ॥
आपत्स्वपि सदा यस्य भक्तिरव्यभिचारिणी । या प्रीतिरधिका विष्णौ विप्रयेष्वनपायिनी ॥
विष्णुं संस्मरतः सा मे हृदयान्नोपसर्पति । दृढभक्तोऽपि वेदादिसर्वशास्त्रार्थपारगः ॥ १६ ॥
यो न सर्वेश्वरे भक्तस्तं विद्यात् पुरुषाधमम् । नाधीतवेदशास्त्रोऽपि न कृतोऽध्वरसम्भवः ।
यो भक्तिं वहते विष्णौ तेन सर्वं कृतं भवेत् ॥ १७ ॥
यज्वनः क्रतुमुख्यानां वेदानां पारगा अपि । न तां यान्ति गतिं भक्ता यां यान्ति मुनिसत्तमाः
यः कश्चिद् वैष्णवो लोके मिथ्याचारोऽप्यनाश्रमी । पुनाति सकलान् लोकान् सहस्रांशुरिवोदितः
ये नृशंसा दुरात्मानः पापाचाररतास्तथा । येऽपि यान्ति परं स्थानं नारायणपरायणाः ॥
दृढा जनार्दने भक्तिर्यदैवाव्यभिचारिणी । तदा कियत् स्वर्गसुखं सैव निर्वाणहेतुकी ॥ २१ ॥
भ्राम्यतां तत्र संसारे नराणां कर्मदुर्गमे । हस्तावलम्बने ह्येको दृष्टस्तुष्टो जनार्दनः ॥ २२ ॥
न शृणोति गुणान् दिव्यान् देवदेवस्य चक्रिणः । स नरो बधिरो ज्ञेयो सर्वधर्मबहिष्कृतः ।
नाम्नि संकीर्त्तिते विष्णोर्यस्य पुंसो न जायते । शरीरं पुलकोद्भासि तद्भवेत्कुणपोपमम् ॥
यस्मिन् भक्तिर्द्विजश्रेष्ठ मुक्तिरप्यचिराद्भवेत् । निविष्टमनसां पुंसां सर्वथा वृजिनक्षयम् ॥

स्वपुरुषमभिवीक्ष्य पाशहस्तं वदति यमः किल तस्य कर्णमूले ।
परिहर मधुसूदनप्रपन्नान् प्रभुरहमन्यनृणां न वैष्णवानाम् ॥२६॥

अपि चेत् सुदुराचारो भजते मामनन्यभाक् । साधुरेव स मन्तव्यः सम्यग्व्यवसितो हि सः ॥
क्षिप्रं भवति धर्मात्मा शश्वच्छान्तिं स गच्छति । विप्रेन्द्र प्रतिजानीहि विष्णुभक्तो न नश्यति ॥
धर्मार्थकामः किं तस्य मुक्तिस्तस्य करे स्थिता । समस्तजगतां मूले यस्य भक्तिः स्थिरा हरौ ॥
दैवी ह्येषा गुणमयी हरेमाया दुरत्यया । तमेव ये प्रपद्यन्ते मायामेतां तरन्ति ते ॥३०॥
किं यज्ञाराधने पुंसां सिध्यते हरिमेधसः । भक्त्यैवाराध्यते विष्णुर्नान्यत्तत्रापि कारणम् ॥३१॥
न दानैर्विविधैर्दत्तैः पुष्पैर्नैवानुलेपनैः । तोषमेति महात्मासौ यथा भक्त्या जनार्दनः ॥३२॥
संसारविषवृक्षस्य द्वे फले ह्यमृतोपमे । कदाचित्केशवे भक्तिस्तद्भक्तैर्वा समागमः ॥३३॥

पत्रेषु पुष्पेषु फलेषु तोयेष्वकष्टलभ्येषु सदैव सत्सु ।
भक्त्यैकलभ्ये पुरुषे पुराणे मुक्त्यैकलाभे क्रियते प्रयत्नः ॥३४॥

आस्फोटयन्ति पितरः प्रनृत्यन्ति पितामहाः । वैष्णवो मत्कुले जातः स नः सन्तारयिष्यति ॥३५॥

अज्ञानिनः सुरवरं समधिक्षिपन्तो यत्पापिनोऽपि शिशुपालसुयोधनाद्याः ।
मुक्तिं गताः स्मरणमात्रविधूतपापाः कः संशयः परमभक्तिमतां जनानाम् ॥३६॥

शरणं तं प्रपन्ना ये ध्यानयोगविवर्जिताः । तेऽपि मृत्युमतिक्रम्य यान्ति तद्वैष्णवं पदम् ॥३७॥

भवोद्भवक्लेशशतैर्हतस्तथा परिभ्रमन्निन्द्रियरन्ध्रकैर्हयैः ।
नियम्य मां माधव मे मनोहयस्त्वदङ्घ्रिशङ्कौ दृढभक्तिबन्धने ॥३८॥

विष्णुरेव परं ब्रह्म त्रिभेदमिह पठ्यते । वेदसिद्धान्तभानेषु तन्न जानन्ति मोहिताः ॥३९॥

इति गारुडे महापुराणे भगवद्भक्तिकथनं नाम ऊनविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२१९॥

विंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

मुक्तिहेतुमनाद्यन्तमजमव्ययमक्षयम् । यो नमेत् सर्वलोकस्य नमस्यो जायते नरः ॥ १ ॥
विष्णुमानन्दमद्वैतं विज्ञानं सर्वगं प्रभुम् । प्रणमामि सदा भक्त्या चेतसा हृदयालयम् ॥ २ ॥
योऽन्तस्तिष्ठन्नशेषस्य पश्यतीशः शुभाशुभम् । तं सर्वसाक्षिणं विष्णु नमस्ये परमेश्वरम् ॥ ३ ॥
शक्तौ नापि नमस्कारः प्रयुक्तश्चक्रपाणये । ससारतृणवर्गाणामुद्वेजनकरो हि सः ॥ ४ ॥

कृष्णे स्फुरजलधरोदरचारुकृष्णे लोकाधिकारपुरुषे परमप्रमेये ।
एको हि भावगुणमात्रदृढप्रणामः सद्यः श्वपाकमपि साधयितुं प्रशक्तः ॥ ५ ॥

प्रणम्य दण्डवद्भूमौ नमस्कारेण योऽर्चयेत् । स यां गतिमवाप्नोति न तां क्रतुशतैरपि ॥ ६ ॥
दुर्गसंसारकान्तारकूपारामेऽपि धावताम् । एकः कृष्णे नमस्कारो मुक्त्या तांस्तारयिष्यति॥ ७ ॥
आसीनो वा शयानो वा तिष्ठन् वा यत्र तत्र वा । नमो नाराणायेति मन्त्रैकशरणो भवेत्॥ ८ ॥
नारायणेति शब्दोऽस्ति वागस्ति वशवर्त्तिनी । तथापि नरके मूढाः पतन्तीति किमद्भुतम् ॥९॥

चतुर्मुखो वा यदि कोटिवक्त्रो भवेन्नरः कोऽपि विशुद्धचेताः ।
स वै गुणानामयुतैकदेशं वदेन्न वा देववरस्य विष्णोः ॥ १० ॥

व्यासाद्या मुनयः सर्वे स्तुवन्तो मधुसूदनम् । मतिक्षयान्निवर्त्तन्ते न गोविन्दगुणक्षमात् ॥११॥
अवशेनापि यन्नाम्नि कीर्त्तिते सर्वपातकैः । पुमान् विमुच्यते सद्यः सिंहस्तैर्मृगो यथा ॥
बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ॥१२॥

स्वप्नेऽपि नाम स्पृशतोऽपि पुंसः क्षयं करोत्यक्षयपापराशिम् ।
प्रत्यक्षतः किं पुनरत्र पुंसा प्रकीर्त्तिते नाम्नि जनार्दनस्य ॥१३॥

नमः कृष्णाच्युतानन्तवासुदेवेत्युदीरितम् । यैर्भावभावितैर्विप्र न ते यमपुरं ययुः ॥१४॥

क्षयो भवेद्यथा वह्नेस्तमसो भास्करोदये। तथैव कलुषौघस्य नामसंकीर्त्तनाद्धरेः ॥१५॥
क नाकपृष्ठगमनं पुनरायाति न क्षयम्। गच्छतां दूरमध्वानं कृष्णमूर्च्छितचेतसाम् ॥१६॥
पाथेयं पुण्डरीकाक्षनामसंकीर्त्तनं हरेः। संसारसर्पसंदष्टविषचेष्टैकभेषजम् ॥
कृष्णेति वैष्णवं नाम जप्त्वा मुक्तो भवेन्नरः ॥१७॥
ध्यायन्कृते जपेन्मन्त्रैस्त्रेतायां द्वापरेऽर्चयन्। यदाप्नोति तदाप्नोति कलौ संस्मृत्य केशवम् ॥१८॥
जिह्वाग्रे वर्त्तते यस्य हरिरित्यक्षरद्वयम्। संसारसागरं तीर्त्वा स गच्छेद्वैष्णवं पदम् ॥१९॥
विज्ञातदुष्कृतिसहस्रसमावृतोऽपि श्रेयः परं तु परिशुद्धिमभीप्समानः।
स्वप्नान्तरे न हि पुनश्च भवं स पश्येन्नारायणस्तुतिकथापरमो मनुष्यः ॥२०॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे नारायणभक्तिकथनं नाम
विंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२०॥

एकविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

अशेषलोकनाथस्य सारमाराधनं हरेः। दद्यात्पुरुषसूक्तेन यः पुष्पाण्यप एव च ॥ १ ॥
अर्चितं स्याज्जगदिदं तेन सर्वं चराचरम्। यो न पूजयते विष्णुं तं विद्याद् ब्रह्मघातकम् ॥ २ ॥
यतः प्रवृत्तिर्भूतानां येन सर्वमिदं ततम्। तं यो न ध्यायते विष्णुं स विष्ठायां क्रिमिर्भवेत् ॥३॥
नरके पच्यमानस्तु यमेन परिभाषितः। किं त्वया नार्चितो देवः केशवः क्लेशनाशनः ॥ ४ ॥
उदकेनाप्यभावेन द्रव्याणामर्चितः प्रभुः। यो ददाति स्वकं लोकं स त्वया किं न चार्चितः ॥
न तत्करोति सा माता न पिता नापि बान्धवः। यत्करोति हृषीकेशः सन्तुष्टः श्रद्धयार्चितः ६॥
वर्णाश्रमाचारवता पुरुषेण परः पुमान्। विष्णुराराध्यते पन्था नान्यस्तत्तोषकारकः ॥ ७ ॥
न दानैर्विविधैर्दत्तैर्न पुष्पैर्नानुलेपनैः। तोषमेति महात्मासौ यथा भक्त्या जनार्दनः ॥ ८ ॥
सम्पदैश्वर्य्यमाहात्म्यैः सन्तत्या न च कर्मणा। विमुक्तैश्चैकता लभ्या मूलमाराधनं हरेः ॥ ९ ॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे पूजास्तुतिकथनं नाम
एकविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२१॥

द्वाविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

आलोक्य सर्वशास्त्राणि विचार्य्य च पुनः पुनः । इदमेकं सुनिष्पन्नं ध्येयो नारायणः सदा ॥१॥
किं तस्य दानैः किं तीर्थैः किं तपोभिः किमध्वरैः । यो नित्यं ध्यायते देवं नारायणमनन्यधीः ॥
षष्टिस्तीर्थसहस्राणि षष्टिस्तीर्थशतानि च । नारायणप्रणामस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥ ३ ॥
प्रायश्चित्तान्यशेषाणि तपःकर्माणि यानि वै । यानि येषामशेषाणां कृष्णानुस्मरणं परम् ॥ ४ ॥
कृतपापेऽनुरक्तिश्च यस्य पुंसः प्रजायते । प्रायश्चित्तं तु तस्यैकं हरेः संस्मरणं परम् ॥ ५ ॥
मुहूर्त्तमपि यो ध्यायेन्नारायणमतन्द्रितः । सोऽपि स्वर्गतिमाप्नोति किं पुनस्तत्परायणः ॥ ६ ॥
जाग्रत्स्वप्नसुषुप्तेषु योगस्थस्य च योगिनः । या काचिन्मनसो वृत्तिः सा भवत्यच्युताश्रया ॥७॥
उत्तिष्ठन्निपतन्विष्णुं प्रलपन्विविशंस्तथा । भुञ्जन् जाग्रच्च गोविंदं माधवं यश्च संस्मरेत् ॥ ८ ॥
स्वे स्वे कर्मण्यभिरतः कुर्य्याच्चित्तं जनार्दने । एषा शास्त्रानुसारोक्तिः किमन्यैर्बहुभाषितैः ॥९॥
ध्यानमेव परो धर्मो ध्यानमेव परं तपः । ध्यानमेव परं शौचं तस्माद् ध्यानपरो भवेत् ॥१०॥
नास्ति विष्णोः परं ध्येयं तपो नानशनात्परम् । तस्मात्प्रधानमंत्रोक्तं वासुदेवस्य चिन्तनम् ॥
यद् दुर्लभं परं प्राप्यं मनसो यन्न गोचरम् । तदप्यप्रार्थितं ध्यातो ददाति मधुसूदनः ॥१२॥
प्रमादात्कुर्वतां पुंसां प्रच्यवेताध्वरेषु यत् । स्मरणादेव तद्विष्णोः संपूर्णं स्यादिति श्रुतिः ॥१३॥
ध्यानेन सदृशं नास्ति शोधनं पापकर्मणाम् । आगामिदेहहेतूनां दाहको योगपावकः ॥१४॥
विनिष्पन्नसमाधिस्तु मुक्तिमत्रैव जन्मनि । प्राप्नोति योगी योगाग्निदग्धकर्मा च योऽचिरात् ॥
यथाग्निरुद्यतशिखः कक्षं दहति वानिलः । तथा चित्तस्थिते विष्णौ योगिनां सर्वकिल्बिषम् १६॥
यथाग्नियोगात्कनकममलं संप्रजायते । संस्पृष्टो वासुदेवेन मनुष्याणां सदा मलः ॥१७॥
गङ्गास्नानसहस्रेषु पुष्करस्नानकोटिषु । यत्पापं विलयं याति स्मृते नश्यति तद्धरौ ॥१८॥
प्राणायामसहस्रैस्तु यत्पापं नश्यति ध्रुवम् । क्षणमात्रेण तत्पापं हरेर्ध्यानात्प्रणश्यति ॥१९॥
कलिप्रभावो दुष्टोक्तिः पाषण्डानां तथोक्तयः । न क्रामेन्मानसं तस्य यस्य चेतसि केशवः ॥२०॥
सा तिथिस्तदहोरात्रं स योगः स च चन्द्रमाः । लग्नं तदेव विख्यातं यत्र प्रस्मर्य्यते हरिः ॥२१॥
सा हानिस्तन्महच्छिद्रं सा चार्थजडमूकता । यन्मुहूर्त्तं क्षणो वापि वासुदेवं न चिन्तते ॥२२॥
कलौ कृतयुगस्तस्य कलिस्तस्य कृते युगे । हृदये यस्य गोविन्दो यस्य चेतसि नाच्युतः ॥२३॥
यस्याग्रतस्तथा पृष्ठे गच्छतस्तिष्ठतोऽपि वा । गोविन्दे नियतं चेतः कृतकृत्यः सदैव सः ॥२४॥
वासुदेवे मनो यस्य जपहोमार्चनादिषु । तस्यान्तरायो मैत्रेय देवेन्द्रत्वादिकं फलम् ॥२५॥

असंत्यज्य च गार्हस्थ्यं स तप्त्वा च महत्तपः। छिनत्ति पौरुषीं मायां केशवार्पितमानसः ॥२६॥
क्षमां कुर्वन्ति क्रुद्धेषु दयां मूर्खेषु मानवाः। मुदश्च धर्मशीलेषु गोविन्दे हृदयस्थिते ॥२७॥
ध्यायेन्नारायणं देवं स्नानदानादिकर्मसु। प्रायश्चित्तेषु सर्वेषु दुष्कृतेषु विशेषतः ॥२८॥
लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराभवः। येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥२९॥
कीटपक्षिगणानाञ्च हरौ संन्यस्तचेतसाम्। ऊर्ध्वा एव गतिश्चास्ति किं पुनर्ज्ञानिनां नृणाम् ॥
वासुदेवतरुच्छाया नातिशीतातितापदा। नरकद्वारशमनी सा किमर्थं न सेव्यते ॥३१॥
न च दुर्वाससः शापो राज्यञ्चापि शचीपतेः। हन्तुं समर्थं हि सखे हृत्कृते मधुसूदने ॥३२॥
वदतस्तिष्ठतोऽन्यद्वा स्वेच्छया कर्म कुर्वतः। नापयाति यदा चिन्ता सिद्धां मन्येत धारणाम् ॥

ध्येयः सदा सवितृमण्डलमध्यवर्त्ती नारायणः सरसिजासनसन्निविष्टः।
केयूरवान्कनककुण्डलवान्किरीटी हारी हिरण्मयवपुर्धृतशङ्खचक्रः ॥३४॥

न हि ध्यानेन सदृशं पवित्रमिह विद्यते। श्वपचान्नानि भुञ्जानो पापी नैवात्र लिप्यते ॥३५॥
सदा चित्तं समासक्तं जन्तोर्विषयगोचरे। यदि नारायणेऽप्येवं को न मुच्येत बन्धनात् ॥३६॥

सूत उवाच

विष्णुभक्तिर्यस्य चित्ते कं वा जोवो नमेत्सदा। स तारयति चात्मानं तथैव दुरितार्णवात् ॥
तज्ज्ञानं यत्र गोविन्दः स कथा यत्र केशवः। तत्कर्म यत्तदर्थाय किमन्यैर्बहुभाषितैः ॥३८॥
सा जिह्वा या हरिं स्तौति तच्चित्तं यत्तदर्पितम्। तावेव केवलौ श्लाघ्यौ यौ तत्पूजाकरौ करौ ॥

प्रणाममीशस्य शिरःफलं विदुस्तदर्चनं पाणिफलं दिवौकसः।
मनः फलं तद्गुणकर्मचिन्तनं वचस्तु गोविन्दगुणस्तुतिः फलम् ॥४०॥

मेरुमन्दारमात्रोऽपि राशिः पापस्य कर्मणः। केशवस्मरणादेव तस्य सर्वं विनश्यति ॥४१॥
यत्किञ्चित्कुरुते कर्म पुरुषः साध्वसाधु वा। सर्वं नारायणे न्यस्य कुर्वन्नपि न लिप्यते ॥४२॥
तृणादिचतुरास्यान्तं भूतग्रामं चतुर्विधम्। चराचरं जगत्सर्वं प्रसुप्तं मायया तव ॥४३॥

यस्मिन्न्यस्तमतिर्न याति नरकं स्वर्गोऽपि यच्चिन्तने
विघ्नो यत्र न वेशितात्ममनसो ब्राह्मोऽपि लोकोऽल्पकः।
मुक्तिश्चेतसि संस्थितो जड़धियां पुंसां ददात्यव्ययः
किञ्चित्तं यदयं प्रयाति विलयं तत्राच्युते कीर्त्तिते ॥४४॥

अग्निकार्य्यं जपः स्नानं विष्णोर्ध्यानञ्च पूजनम्। गन्तुं दुःखोदधेः कुर्य्युर्ये च तत्र तरन्ति ते ॥
राष्ट्रस्य शरणं राजा पितरो बालकस्य च। धर्मश्च सर्वमर्त्यानां सर्वस्य शरणं हरिः ॥४६॥

ये नमन्ति जगद्योनिं वासुदेवं सनातनम् । न तेभ्यो विद्यते तीर्थमधिकं मुनिसत्तम ॥४७॥
अनर्घ्यरत्नपूजाञ्च कुर्य्यात्स्वाध्यायमेव च । तमेवोद्दिश्य गोविन्दं ध्यानं नित्यमतन्द्रितः ॥४८॥
शूद्रं वा भगवद्भक्तं निषादं श्वपचं तथा । द्विजजातिं समं मन्ये न याति नरकं नरः ॥४९॥
आदरेण सदा स्तौति धनवन्तं धनेच्छया । तथा विश्वस्य कर्त्तारं को न मुच्येत बन्धनात् ॥
यथा जातवनो वह्निर्दहत्यार्द्रमपीन्धनम् । तथाविधः स्थितो विष्णुर्योगिनां सर्वकिल्बिषम् ॥
आदीप्तं पर्वतं यद्वन्नाश्रयन्ति मृगादयः । तद्वत्पापानि सर्वाणि योगाभ्यासरतो नरः ॥५२॥
यस्य यावांश्च विश्वासस्तस्य सिद्धिस्तु तावती । एतावानेव कृष्णस्य प्रभावः परिमीयते ॥५३॥
विद्वेषादपि गोविंदं दमघोषात्मजः स्मरन् । शिशुपालो गतस्तत्त्वं किं पुनस्तत्परायणः ॥५४॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे विष्णुमाहात्म्यकथन नाम
द्वाविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२२॥

त्रयोविंशाधिकशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

नारसिंहस्तुतिं वक्ष्ये शिवोक्तं शौनकाधुना । पूर्वं मातृगणाः सर्वं शङ्करं वाक्यमब्रुवन् ॥ १ ॥
भगवन् भक्षयिष्यामः सदेवासुरमानुषम् । त्वत्प्रसादाज्जगत्सर्वं तदनुज्ञातुमर्हसि ॥ २ ॥

शङ्कर उवाच

भवतीभिः प्रजाः सर्वा रक्षणीया न संशयः । तस्माद्घोरतरप्रायं मनः शीघ्रं निवर्त्त्यताम् ॥ ३ ॥
इत्येवं शङ्करेणोक्तमनादृत्य तु तद्वचः । भक्षयामासुरव्यग्रास्त्रैलोक्यं सचराचरम् ॥ ४ ॥
त्रैलोक्ये भक्ष्यमाणे तु तदा मातृगणेन वै । नृसिंहरूपिणं देवं प्रदध्यौ भगवान् शिवः ॥ ५ ॥
अनादिनिधनं देवं सर्वभूतभवोद्भवम् । विद्युज्जिह्वं महादंष्ट्रं स्फुरत्केशरमालिनम् ॥ ६ ॥
रत्नाङ्गदं सुमुकुटं हेमकेशरभूषितम् । श्रोणिसूत्रेण महता काञ्चनेन विराजितम् ॥ ७ ॥
नीलोत्पलदलश्यामं रत्ननूपुरभूषितम् । तेजसाक्रान्तसकलब्रह्माण्डोदरमण्डपम् ॥ ८ ॥
आवर्त्तसदृशाकारैः संयुक्तं देहरोमभिः । सर्वपुष्पविचित्राञ्च धारयंश्च महास्रजम् ॥ ९ ॥
स ध्यातमात्रो भगवान्प्रददौ तस्य दर्शनम् । यादृशेनैव रूपेण ध्यातो रुद्रैस्तु भक्तितः ॥१०॥
तादृशेनैव रूपेण दुर्निरीक्षेण दैवतैः । प्रणिपत्य तु देवेशं तदा तुष्टाव शङ्करः ॥११॥

शङ्कर उवाच

नमस्तेऽस्तु जगन्नाथ नरसिंहवपुर्धर । दैत्येश्वरेन्द्र संहारनखशुक्तिविराजित ॥१२॥
नखकमलसंलग्न हेमपिङ्गलविग्रह । नमोऽस्तु पद्मनाभाय शोभनाय जगद्गुरो ॥
कल्पान्तेऽम्भोदनिर्घोष सूर्य्यकोटिसमप्रभ ॥१३॥
सहस्रयमसंत्रास सहस्रेन्द्रपराक्रम । सहस्रधनदस्फीत सहस्रचरणात्मक ॥१४॥
सहस्रचन्द्रप्रतिम सहस्रांशुहरिक्रम । सहस्ररुद्रतेजस्क सहस्रब्रह्मसंस्तुत ॥१५॥
सहस्ररुद्रसंजप्त सहस्राक्षनिरीक्षण । सहस्रजन्ममथन सहस्रबन्धमोचन ॥१६॥
सहस्रवायुवेगाग्र सहस्राक्ष कृपाकर । स्तुत्वैवं देवदेवेशं नृसिंहवपुषं हरिम् ॥
विज्ञापयामास पुनर्विनयावनतः शिवः ॥१७॥
अन्धकस्य विनाशाय या सृष्टा मातरो मया । अनादृत्य तु मद्वाक्यं भक्षयन्त्यद्भुताः प्रजाः ॥१८॥
सृष्ट्वा ताश्च न शक्तोऽहं संहर्त्तुमपराजितः । पूर्वं कृत्वा कथं तासां विनाशमभिरोचये ॥१९॥
एवमुक्तः स रुद्रेण नरसिंहवपुर्हरिः । सहस्रदेवीर्जिह्वाग्रात्तदा वागीश्वरो हरिः ॥२०॥
तथा सुरगणान्सर्वान्रौद्रान्मातृगणान्विभुः । संहृत्य जगतः शर्म कृत्वा चान्तरधीयत ॥२१॥
नारसिंहमिदं स्तोत्रं यः पठेन्नियतेन्द्रियः । मनोरथप्रदस्तस्य रुद्रस्येव न संशयः ॥२२॥

ध्यायेन्नृसिंहं तरुणार्कनेत्रं सिताम्बुजातं ज्वलिताग्निवक्त्रम् ।
अनादिमध्यान्तमजं पुराणं परावरेशं जगतां निधानम् ॥२३॥
जपेदिदं सन्ततदुःखजालं जहाति नीहारमिवांशुमाली ।
समातृवर्गस्य करोति मूर्त्तिं यदा यदा तिष्ठति तत्समीपे ॥२४॥
देवेश्वरस्यापि नृसिंहमूर्त्तेः पूजां विधातुं त्रिपुरान्तकारी ।
प्रसाद्य तं देववरं स लब्ध्वा अव्याज्जगन्मातृगणेभ्य एव ॥२५॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे नृसिंहस्तवकथनं नाम
त्रयोविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२३॥

चतुर्विंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

कुलामृतं प्रवक्ष्यामि स्तोत्रं यत्तु हरोऽब्रवीत् । पृष्टः श्रीनारदेनैव नारदाय तथा शृणु ॥१॥

नारद उवाच

यः संसारे सदा द्वन्द्वैः कामक्रोधैः शुभाशुभैः । शब्दादिविषयैर्बद्धः पीड्यमानः स दुर्मतिः ॥२॥
क्षणं विमुच्यते जन्तुर्मृत्युसंसारसागरात् । भगवन् श्रोतुमिच्छामि त्वत्तो हि त्रिपुरान्तक ॥३॥
तस्य तद्वचनं श्रुत्वा नारदस्य त्रिलोचनः । उवाच तमृषिं शम्भुः प्रसन्नवदनो हरः ॥४॥

महेश्वर उवाच

ज्ञानामृतं परं गुह्यं रहस्यमृषिसत्तम । वक्ष्यामि शृणु दुःखघ्नं भवबन्धभयापहम् ॥५॥
तृणादिचतुरास्यान्तं भूतग्रामं चतुर्विधम् । चराचरं जगत् सर्वं प्रसुप्तं यस्य मायया ॥६॥
तस्य विष्णोः प्रसादेन यदि कश्चित् प्रबुध्यति । स निस्तरति संसारं देवानामपि दुस्तरम् ॥७॥
भोगैश्वर्यमदोन्मत्तस्तत्त्वज्ञानपराङ्मुखः । पुत्रदारकुटुम्बेषु मत्ताः सीदन्ति जन्तवः ॥८॥
सर्वं एकार्णवे मग्ना जीर्णा वनगजा इव । यस्त्वाननं निबध्नाति दुर्मतिः कोषकारवत् ॥
तस्य मुक्तिं न पश्यामि जन्मकोटिशतैरपि ॥९॥
तस्मान्नारद सर्वेषां देवानां देवमव्ययम् । आराधयेत् सदा सम्यग्ध्यायेद्विष्णुं मुदान्वितः ॥
यस्तु विश्वमनाद्यन्तमजमात्मनि संस्थितम् । सर्वज्ञमचलं विष्णुं सदा ध्यायेत् स मुच्यते ॥११॥
देवं गर्भोचितं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते । अशरीरं विधातारं सर्वज्ञानमनोरतिम् ॥
अचलं सर्वगं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥१२॥
निर्विकल्पं निराभासं निष्प्रपञ्चं निरामयम् । वासुदेवं गुरुं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥
सर्वात्मकस्य यावन्तमात्मचैतन्यरूपकम् । शुभमेकाक्षरं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥१४॥
वाक्यातीतं त्रिकालज्ञं विश्वेशं लोकसाक्षिणम् । सर्वस्मादुत्तमं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥
ब्रह्मादिदेवगन्धर्वैर्मुनिभिः सिद्धचारणैः । योगिभिः सेवितं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥१६॥
संसारबन्धनान्मुक्तिमिच्छन् लोको ह्यशेषतः । स्तुत्वैवं वरदं विष्णुं सदा ध्यायन् विमुच्यते ॥१७॥
संसारबन्धनात्कोऽपि मुक्तिमिच्छन्समाहितः । अनन्तमव्ययं देवं विष्णुं विश्वे प्रतिष्ठितम् ॥
विश्वेश्वरमजं विष्णुं सदा ध्यायन्विमुच्यते ॥१८॥

सूत उवाच

नारदेन पुरा पृष्ट एवं स वृषभध्वजः । यत्तेन तस्मै व्याख्यातं तन्मया कथितं तव ॥१९॥
तमेव सततं ध्यायन्निर्व्ययं ब्रह्म निष्कलम् । अवाप्स्यसि ध्रुवं तात शाश्वतं पदमव्ययम् ॥२०॥
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च । क्षणमेकाग्रचित्तस्य कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥२१॥
श्रुत्वा सुरऋषिर्विष्णोः प्राधान्यमिदमीश्वरात् । स विष्णुं सम्यगाराध्य सिद्धेः पदमवाप्तवान् ॥

यः पठेच्छृणुयाद्वापि नित्यमेव स्तवोत्तमम् । कोटिजन्मकृतं पापमपि तस्य प्रणश्यति ॥२३॥
विष्णोः स्तवमिदं दिव्यं महादेवेन कीर्त्तितम् । प्रयत्नाद्यः पठेन्नित्यममृतत्वं स गच्छति ॥२४॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे कुलामृतकथनं नाम
चतुर्विंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२४॥

पञ्चविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

स्तोत्रं सर्वं प्रवक्ष्यामि मार्कण्डेयेन भाषितम् । दामोदरं प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्युः करिष्यति ॥
शङ्खचक्रधरं देवं व्यक्तरूपिणमव्ययम् । अधोक्षजं प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्युः करिष्यति ॥२॥
वराहं वामनं विष्णुं नारसिंहं जनार्दनम् । माधवञ्च प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्युः करिष्यति ॥३॥
पुरुषं पुष्करक्षेत्रबीजं पुण्यं जगत्पतिम् । लोकनाथं प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्युः करिष्यति ॥४॥
सहस्रशिरसं देवं व्यक्ताव्यक्तं सनातनम् । महायोगं प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्युः करिष्यति ॥५॥
भूतात्मानं महात्मानं यज्ञयोनिमयोनिजम् । विश्वरूपं प्रपन्नोऽस्मि किन्नो मृत्युः करिष्यति ॥६॥
इत्युदीरितमाकर्ण्य स्तवं तस्य महात्मनः । अपयातस्ततो मृत्युर्विष्णुदूतैः प्रपीड़ितः ॥७॥
इति तेन जितो मृत्युर्मार्कण्डेयेन धीमता । प्रसन्ने पुण्डरीकाक्षे नृसिंहे नास्ति दुर्लभम् ॥८॥
मृत्यवष्टकमिदं पुण्यं मृष्युप्रशमनं शुभम् । मार्कण्डेयहितार्थाय स्वयं विष्णुरुवाच ह ॥९॥
इदं यः पठते भक्त्या त्रिकालं नियतं शुचिः । नाकाले तस्य मृत्युः स्यान्नरस्याच्युतचेतसः १०॥

हृत्पद्ममध्ये पुरुषं पुराणं नारायणं शाश्वतमप्रमेयम् ।
विचिन्त्य सूर्य्यादतिराजमानं मृत्युं स योगी जितवांस्तथैव ॥११॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे मृत्यवष्टकस्तोत्रकथनं नाम
पञ्चविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२५॥

षड्विंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

वक्ष्येऽहमच्युतस्तोत्रं शृणु शौनक सर्वदम् । ब्रह्मा पृष्टो नारदाय यथोवाच तथापरम् ॥ १ ॥

नारद उवाच

यथाऽक्षयोऽव्ययो विष्णुः स्तोतव्यो वरदो मया । प्रत्यहं चार्चनाकाले तथा त्वं वक्तुमर्हसि ॥२॥
ते धन्यास्ते सुजन्मानस्ते हि सर्वसुखप्रदाः । सफलं जीवितं तेषां ये स्तुवन्ति सदाच्युतम् ॥

ब्रह्मोवाच

मुने स्तोत्रं प्रवक्ष्यामि वासुदेवस्य मुक्तिदम् । शृणु येन स्तुतः सम्यक्पूजाकाले प्रसीदति ॥ ४ ॥
ॐ नमो भगवते वासुदेवाय नमः सर्वपापहारिणे । नमो यज्ञवराहाय गोविन्दाय नमो नमः ५.
नमस्ते परमानन्द नमस्ते परमाक्षर ॥ ६ ॥

नमस्ते ज्ञानसद्भाव नमस्ते ज्ञानदायक । नमस्ते परमाद्वैत नमस्ते पुरुषोत्तम ॥ ७ ॥
नमस्ते विश्वकृद्देव नमस्ते विश्वभावन । नमस्तेऽस्तु विश्वनाथ नमस्ते विश्वकारण ॥ ८ ॥
नमस्ते मधुदैत्यघ्न नमस्ते रावणान्तक । नमस्ते कंसकेशिघ्न नमस्ते कैटभार्दन ॥ ९ ॥
नमस्ते शतपत्राक्ष नमस्ते गरुडध्वज । नमस्ते कालनेमिघ्न नमस्ते गरुडासन ॥१०॥
नमस्ते देवकीपुत्र नमस्ते वृष्णिनन्दन । नमस्ते रुक्मिणीकान्त नमस्ते दितिनन्दन ॥
नमस्ते गोकुलावास नमस्ते गोकुलप्रिय ॥११॥

जय गोपवपुः कृष्ण जय गोपीजनप्रिय । जय गोवर्द्धनाधार जय गोकुलवर्द्धन ॥१२॥
जय रावणवीरघ्न जय चाणूरनाशन । जय वृष्णिकुलोद्योत जय कालीयमर्दन ॥१३॥
जय सत्यजगत्साक्षिन् जय सर्वार्थसाधक । जय वेदान्तविद्वेद्य जय सर्वद माधव ॥१४॥
जय सर्वाश्रयाव्यक्त जय सर्वद माधव । जय सूक्ष्मचिदानन्द जय चित्तनिरञ्जन ॥१५॥
जयस्तेऽस्तु निरालम्ब जय शान्त सनातन । जय नाथ जगत्पुष्ट जय विष्णो नमोऽस्तु ते ॥१६॥
त्वं गुरुस्त्वं हरे शिष्यस्त्वं दीक्षामन्त्रमण्डलम् । त्वं न्यासमुद्रासमयस्त्वञ्च पुष्पादि साधनम् ॥
त्वमाधारस्त्वमनन्तस्त्व कूर्मस्त्वं धराम्बुजः । धर्मज्ञानादयस्त्वं हि वेदिमण्डलशक्तयः ॥१८॥
त्वं प्रभो छलभृद्रामस्त्वं पुनः सवरान्तकः । त्व ब्रह्मर्षिश्च देवस्त्वं विष्णुः सत्यपराक्रमः ॥१९॥
त्वं नृसिंहः परानन्दो वराहस्त्वं धराधरः । त्वं सुवर्णस्तथा चक्रस्त्वं गदा शङ्ख एव च ॥

त्वं श्रीः प्रभो पुष्टिस्त्वं त्वं माला देव शाश्वती ।
श्रीवत्सः कौस्तुभस्त्वं हि शार्ङ्गी त्वञ्च तथेषुधि ॥२१॥
त्वं खड्गचर्मण सार्द्धं त्वं दिक्पालस्तथा प्रभो ।
त्वं रक्षोऽधिपतिः साध्यस्त्वं वायुस्त्वं निशाकरः ॥२२॥

आदित्या वसवो रुद्रास्त्वमश्विन्यौ मरुद्गणाः। त्वं दैत्या दानवा नागास्त्वं यक्षा राक्षसाः खगाः ॥
गन्धर्वाप्सरसः सिद्धाः पितरस्त्वं महामराः। भूतानि त्रिषयस्त्वं हि त्वमव्यक्तेन्द्रियाणि च २४॥
मनोबुद्धिरहङ्कारः क्षेत्रज्ञस्त्वं हृदीश्वरः। त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कारस्त्वमोङ्कारः समित्कुशः ॥२५॥
त्वं वेदी त्वं हरे दीक्षा त्वं यूपस्त्वं हुताशनः। त्वं होता यजमानस्त्वं त्वं धान्यः पशुयाजकः ॥
त्वमध्वर्य्युस्त्वमुद्गाता त्वं यज्ञः पुरुषोत्तमः। दिक्पातालमही व्योम द्यौस्त्वं नक्षत्रकारकः २७॥
देवतिर्य्यङ्मनुष्येषु जगदेतच्चराचरम्। यत्किञ्चिद्दृश्यते देव ब्रह्माण्डमखिलं जगत् ॥२८॥
तव रूपमिदं सर्वं दृष्ट्यर्थं संप्रकाशितम्। नाथ यत्ते परं ब्रह्म देवैरपि दुरासदम् ॥२९॥
कस्तज्जानाति विमलं योगिगम्यमतीन्द्रियम्। अव्ययं पुरुषं नित्यमव्यक्तमजमव्ययम् ॥३०॥
प्रलयोत्पत्तिरहितं सर्वव्यापिनमीश्वरम्। सर्वज्ञं निर्गुणं शुद्धमानन्दमजरं परम् ॥३१॥
बोधरूपं ध्रुवं शान्तं पूर्णमद्वैतमक्षयम्। अवतारेषु या मूर्त्तिर्विहरेद्देव दृश्यते ॥३२॥
परं भावमजानन्तस्त्वां भजन्ति दिवौकसः। कथं त्वामीदृशं सूक्ष्मं शक्नोमि पुरुषोत्तम ॥३३॥
पुष्पधूपादिभिर्यत्तत्तव सर्वविभूतयः। सङ्कर्षणादि हे देव तव यत्पूजितो मया ॥३४॥
क्षन्तुमर्हसि तत्सर्वं यत्कृतं न कृतं मया। न शक्नोमि विभो सम्यक्तव पूजां यथोदिताम्॥३५॥
यत्कृतं जपहोमादि असाध्यं पुरुषोत्तम। विनिष्पादयितुं भक्त्या अतस्त्वां क्षमयाम्यहम्॥३६॥
दिवारात्रौ च सन्ध्यायां सर्वावस्थासु चेष्टतः। अचला तु हरे भक्तिस्तवाङ्घ्रियुगले मम ॥३७॥
शरीरेण तथा प्रीतिर्न च धर्मादिकेषु च। यथा त्वयि जगन्नाथ प्रीतिरात्यन्तिकी मम ॥३८॥
किं तेन न कृतं कर्म स्वर्गमोक्षादिसाधनम्। यस्य विष्णौ दृढा भक्तिः सर्वकामफलप्रदे ॥३९॥
पूजां कर्त्तुं तथा स्तोत्रं कः शक्नोति तवाच्युत। स्तुतं तु पूजितं मेऽद्य तत्क्षमस्व नमोऽस्तु ते ॥
इति चक्रधरस्तोत्रं मया सम्यगुदाहृतम्। स्तौहि विष्णुं मुने भक्त्या यदीच्छसि परं पदम् ॥
स्तोत्रेणानेन यः स्तौति पूजाकाले जगद्गुरुम्। अचिराल्लभते मोक्षं छित्त्वा संसारबन्धनम् ॥
कल्येऽपि यो जपेद्भक्त्या त्रिसन्ध्यं नियतः शुचिः। इदं स्तोत्रं मुने सोऽपि सर्वकाममवाप्नुयात् ॥
पुत्रार्थी लभते पुत्रान्बद्धो मुच्येत बन्धनात्। रोगाद्विमुच्यते रोगी निर्धनो लभते धनम् ॥४४॥
विद्यार्थी लभते विद्यां यशः कीर्त्तिञ्च विन्दति। जातिस्मरत्वं मेधावी यद्यदिच्छति चेतसा ॥
अधन्यः सर्व्ववित्प्राज्ञस्त्वसाधुः सर्वकर्मकृत्। सत्यवाक्यः शुचिर्दाता यः स्तौति पुरुषोत्तमम् ॥
साधुशीला हि ते सर्वे सर्वधर्मबहिष्कृताः। येषां प्रवर्त्तनं नास्ति हरिमुद्दिश्य सत्क्रियाः ॥४७॥
नाशौचं विद्यते तस्य मनो वाक् च दुरात्मनः। यस्य सर्वार्थदे विष्णौ भक्तिर्नाव्यभिचारिणी॥
आराध्य विधिवद्देवं हरिं सर्वसुखप्रदम्। प्राप्नोति पुरुषः सम्यग्यद्यत्प्रार्थयते फलम् ॥४९॥

सकलमुनिभिराद्यश्चिन्त्यते यो हि सिद्धो निखिलहृदि निविष्टं वेत्ति यः सर्वसाक्षी।
तमजममृतमीशं वासुदेवं नतोऽस्मि त्वभयमरणहीनं नित्यमानन्दरूपम् ॥५०॥
निखिलभुवननाथं शाश्वतं सुप्रसन्नं अतिविमलविशुद्धं निर्गुणं भावपुष्पैः।
सुखमुदितसमस्तं पूजयाम्यात्मभावं विशतु हृदयपद्मे सर्वसाक्षी चिदात्मा ॥५१॥
एवं मयोक्तं परमप्रभावमाद्यन्तहीनस्य परस्य विष्णोः।
तस्माद्विचिन्त्यः परमेश्वरोऽसौ विमुक्तिमार्गेण नरेण सम्यक् ॥५२॥
बोधस्वरूपं पुरुषं पुराणमादित्यवर्णं विमलं विशुद्धम्।
सञ्चिन्त्य विष्णुं परमद्वितीयं कस्तत्र योगी न लयं प्रयाति ॥५३॥
इमं स्तवं यः सततं मनुष्यः पठेच्च तद्वत्प्रयतः प्रशान्तः।
स धौतपाप्मा विततप्रभावः प्रयाति लोकं विततं मुरारेः ॥५४॥
यः प्रार्थयत्यर्थमशेषसौख्यं धर्मञ्च कामञ्च तथैव मोक्षम्।
स सर्वमुत्सृज्य परं पुराणं प्रयाति विष्णुं शरणं वरेण्यम् ॥५५॥
विभुं प्रभुं विश्वधरं विशुद्धमशेषसंसारविनाशहेतुम्।
यो वासुदेवं विमलं प्रपन्नः स मोक्षमाप्नोति विमुक्तसङ्गः ॥५६॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे स्तोत्रकथनं नाम षड्विंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२६॥

सप्तविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

सूत उवाच

वेदान्तसाङ्ख्यसिद्धान्तब्रह्मज्ञानं वदाम्यहम्। अहं ब्रह्म परं ज्योतिर्विष्णुरित्येव चिन्तयन् ॥ १ ॥
सूर्येन्दुव्योम्नि वह्नौ च ज्योतिरेकं त्रिधा स्थितम्। यथा सर्पिः शरीरस्थं गवां न कुरुते बलम् ॥
निर्गतं कर्मसंयुक्तं दत्तं तासां महाबलम् ॥ २ ॥
तथा विष्णुः शरीरस्थो न करोति हितं नृणाम्। विनाराधनया देवः सर्वगः परमेश्वरः ॥ ३ ॥
आरुरुक्षुमतीनां तु कर्मज्ञानमुदाहृतम्। आरूढयोगवृक्षाणां ज्ञानं त्यागं परं मतम् ॥ ४ ॥
ज्ञातुमिच्छति शब्दादीन्रागद्वेषोऽथ जायते। लोभमोहः क्रोध एतैर्युक्तः पापं नरश्चरेत् ॥ ५ ॥
हस्तावुपस्थमुदरं वाक्चतुर्थी चतुष्टयम्। एतत्सुसंयतं यस्य स विप्रः कथ्यते बुधः ॥ ६ ॥

परवित्तं न गृह्णाति न हिंसां कुरुते तथा । नाक्षक्रीडारतो यस्तु हस्तौ तस्य सुसंयतौ ॥ ७ ॥
परस्त्रीवर्जनरतस्तस्योपस्थं सुसंयतम् । अलोलुपमिदं भुङ्क्ते जठरं तस्य संयतम् ॥ ८ ॥
सत्यं हितं मितं ब्रूते यस्माद्वाक्तस्य संयता । यस्य संयतान्येतानि तस्य किं तपसाध्वरैः ॥ ९ ॥
भ्रुवोर्मध्ये स्थितां बुद्धिं विषयेषु युनक्ति यः । जीवो जाग्रदवस्थायामेवमाहुर्विपश्चितः ॥१०॥
हृदि स्थितः स तमसा मोहितो न सरत्यपि । यदा तस्य कुतो वेति सुषुप्तिरिति कथ्यते ॥११॥
जाग्रतो तस्य न स्त्री न मोहो न भ्रमस्तथा । उत्पद्यते न जानाति शब्दार्थविषयान्वशी ॥१२॥
इन्द्रियाणि समाहृत्य विषयेभ्यो मनस्तथा । बुद्ध्याऽहङ्कारमपि च प्रकृत्या बुद्धिमेव च ॥१३॥
संयम्य प्रकृतिञ्चापि चिच्छक्त्या केवले स्थितः । पश्यत्यात्मनि चात्मानमात्मानमुपकारकम् ॥
चिद्रूपममृतं शुद्धं निष्क्रियं व्यापकं शिवम् । तुरीयायामवस्थायामास्थितोऽसौ न संशयः १५॥
पुर्य्यष्टकस्य पद्मस्य पत्राण्यष्टौ च तानि हि । साम्यावस्था गुणकृता प्रकृतिस्तत्र कर्णिका ॥१६॥
कर्णिकायां स्थितो देवो देहे चिद्रूप एव हि । पुर्य्यष्टकं परित्यज्य प्रकृतिञ्च गुणात्मिकाम् ॥
यदा याति तदा जीवो याति मुक्तिं न संशयः ॥१७॥

प्राणायामो जपश्चैव प्रत्याहारोऽथ धारणा । ध्यानं समाधिरित्येते षड्योगस्य प्रसाधकाः ॥१८॥
पापक्षये देवतानां प्रीतिरिन्द्रियसंयमः । जपध्यानयुतो गर्भे विपरीतस्त्वगर्भकः ॥१९॥
षट्त्रिंशन्मातृकः श्रेष्ठश्चतुर्विंशतिमातृकः । मध्यो द्वादशमात्रं तु ओङ्कारं सततं जपेत् ॥२०॥
वाचके प्रणवे ज्ञाते वाच्यं ब्रह्म प्रसीदति ।
ॐ नमो विष्णवे । षडाक्षरश्च जप्तव्यो गायत्री द्वादशाक्षरा ॥२१॥

सर्वेषामिन्द्रियाणां तु प्रवृत्तिर्विषयेषु च । निवृत्तिर्मनसां तस्यां प्रत्याहारः प्रकीर्त्तितः ॥२२॥
इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेभ्यः समाहृत्य हितो हि सः । सहसा सह बुद्ध्या च प्रत्याहारेषु संस्थितः ॥
प्राणायामैर्द्वादशभिर्यावत्कालकृतो भवेत् । यस्तावत्कालपर्य्यन्तं मनो ब्रह्मणि धारयेत् ॥२४॥
तस्यैव ब्रह्मणा प्रोक्तं ध्यानं द्वादश धारणाः । तुष्येत नियतो युक्तः समाधिः सोऽभिधीयते २५॥
ध्यायन्न चलते यस्य मनोऽभिध्यायते भृशम् । प्राप्तयावधिकृतं कालं यावत्सा धारणा स्मृता ॥
ध्येये सक्तं मनो यस्य ध्येयमेवानुपश्यति । नान्यं पदार्थं जानाति ध्यानमेतत्प्रकीर्त्तितम् २७॥
ध्येये मनो निश्चलतां याति ध्येयं विचिन्तयन् । यत्तद्ध्यानं परं प्रोक्तं मुनिभिर्ध्यानचिन्तकैः २८॥
ध्येयमेव हि सर्वत्र ध्येयस्तन्मयतां गतः । पश्यति द्वैतरहितं समाधिः सोऽभिधीयते ॥२९॥
मनः सङ्कल्परहितमिन्द्रियार्थान्न चिन्तयन् । यस्य ब्रह्मणि संलीनं समाधिस्थस्त्वमुच्यसे ॥३०॥
ध्यायतः परमात्मानमात्मस्थं यस्य योगिनः । मनस्तन्मयतां याति समाधिस्थः स कीर्त्तितः ॥

चित्तस्य स्थिरता भ्रान्तिर्दौर्मनस्यं प्रमादता । योगिनां कथिता दोषा योगविघ्नप्रवर्त्तकाः ॥३२॥
स्थित्यर्थं मनसः सर्वं स्थूलरूपं विचिन्तयेत् । तद्व्रतं निश्चलीभूतं सूर्य्यस्थं स्थिरतां व्रजेत् ॥३३॥
न विना परमात्मानं किञ्चिज्जगति विद्यते । विश्वरूपं तमेवेह इति ज्ञात्वा विमुञ्चति ॥३४॥
ओङ्कारं परमं ब्रह्म ध्यायेदब्जस्थितं विभुम् । क्षेत्राक्षेत्रज्ञरहितं जपेन्मन्त्रद्वयान्वितम् ॥३५॥
हृदि सञ्चिन्तयेत्पूर्वं प्रधानं तस्य चोपरि । तमो रजस्तथा सत्त्वं मण्डलं त्रितयं क्रमात् ॥३६॥
कृष्णरक्तसितं तस्मिन्पुरुषं जीवसंज्ञितम् । तस्योपरि गुणैश्वर्य्यमष्टपत्रं सरोरुहम् ॥३७॥
ज्ञानं तु कर्णिका तत्र विज्ञानं केशरं स्मृतम् । वैराग्यं नालं तत्कन्दो वैष्णवो धर्म उत्तमः ॥३८॥
कर्णिकायां स्थितं तत्र जीववन्निश्चलं ततः । ध्यायेदुरसि संयुक्तमोङ्कारं मुक्तिसाधकम् ॥३९॥

ध्यायन् यदि त्यजेत्प्राणान्याति ब्रह्मणः सन्निधिम् ।
हरिं संस्थाप्य देहाब्जे ध्यायन् योगी च भक्तिभाक् ॥४०॥

आत्मानमात्मना केचित्पश्यन्ति ध्यानचक्षुषा । सांख्यबुद्ध्या तथैवान्ये योगेनानेन योगिनः ॥
ब्रह्मप्रकाशकं ज्ञानं भवबन्धविभेदनम् । तत्रैकचित्तता योगो मुक्तिदो नात्र संशयः ॥४२॥
जितेन्द्रियात्मकरणो ज्ञानदत्तो हि यो भवेत् । स मुक्तः कथ्यते योगी परमात्मान्यवस्थितः ४३॥
आसनस्थानविषया न योगस्य प्रसाधकाः । विलम्बजनकाः सर्वे विस्तराः परिकीर्त्तिताः ॥४४॥
शिशुपालः सिद्धिमाप स्मरणाभ्यासगौरवात् । योगाभ्यासं प्रकुर्वन्तः पश्यन्त्यात्मानमात्मना ॥
सर्वभूतेषु कारुण्यं विद्वेषं विषमेषु च । लुप्तशिश्नोदरादिश्च कुर्वन् योगी विमुच्यते ॥४६॥
इन्द्रियैरिन्द्रियार्थांस्तु न जानाति नरो यदा । काष्ठवद् ब्रह्मसंलीनो योगी मुक्तस्तदा भवेत् ॥

सर्ववर्णाः स्त्रियः सर्वाः कृत्वा पापानि भस्मसात् ।
ध्यानाग्निना च मेधावी लभन्ते परमां गतिम् ॥४८॥

मन्थनाद् दृश्यते ह्यग्निस्तद्वद् ध्यानेन वै हरिः । ब्रह्मात्मनोर्यदैकत्वं स योगश्चोत्तमोत्तमः ॥४९॥
बाह्यरूपैर्न मुक्तिस्तु ह्यान्तस्थैः स्याद्यमादिभिः । साङ्ख्यज्ञानेन योगेन वेदान्तश्रवणेन च ॥५०॥
प्रत्यक्षतात्मनो या हि सा मुक्तिरभिधीयते । अनात्मन्यात्मरूपत्वमसतः सत्स्वरूपता ॥५१॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे ब्रह्मविज्ञानकथनं नाम
सप्तविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२७॥

अष्टाविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

आत्मज्ञानं प्रवक्ष्यामि शृणु नारद तत्त्वतः । अद्वैतं साङ्ख्यमित्याहुर्योगस्तत्रैकचित्तता ॥ १ ॥
अद्वैतयोगसम्पन्नास्ते मुच्यन्तेऽतिबन्धनात् । अतीतारब्धमागामि कर्म नश्यति बोधतः ॥ २ ॥
सद्विचारकुठारेण छिन्नसंसारपादपः । ज्ञानवैराग्यतीर्थेन लभते वैष्णवं पदम् ॥ ३ ॥
जाग्रत्स्वप्नप्रसुप्तञ्च माया त्रिपुरमुच्यते । अत्रैवान्तर्गतं सर्वं शाश्वतेनाद्वये पदे ॥ ४ ॥
नामरूपक्रियाहीनं सर्वं तत्परमं पदम् । जगत्कृत्वेश्वरोऽनन्तं स्वयमत्र प्रविष्टवान् ॥ ५ ॥
वेदाहमेतं पुरुषं चिद्रूपं तमसः परम् । सोऽहमस्मीति मोक्षाय नमः पन्था विमुक्तये ॥ ६ ॥
श्रवणं मननं ध्यानं ज्ञानानाञ्चैव साधनम् । यज्ञदानतपस्तीर्थवेदैर्मुक्तिर्न लभ्यते ॥ ७ ॥
त्यागेन केनचिद्ध्यानं पूजाकर्मादिभिर्यथा । द्विविधं वेदवचनं कुरु कर्म त्यजे विभौ ॥ ८ ॥
यज्ञादयो विमुक्तानां निष्कामानां विमुक्तये । अन्तःकरणशुद्ध्यर्थमूचुरेवात्र केचन ॥ ९ ॥
एकेन जन्मना ज्ञानान्मुक्तिर्न द्वैतभाविनाम् । योगभ्रष्टाः कुयोगाश्च विप्रा योगिकुलोद्भवाः ॥
कर्मणा बध्यते जन्तुर्ज्ञानान्मुक्तो भवाद्भवेत् । आत्मज्ञानमाश्रयेद्वै अज्ञानं यदतोऽन्यथा ॥११॥
यदा सर्वे विमुच्यन्ते कामा यस्य हृदि स्थिताः । तदामृतत्वमाप्नोति जीवन्नेव न संशयः १२॥

व्यापकत्वात्कथं याति को याति क्व स याति च ।
अनन्तत्वान्न देशोऽस्ति अमूर्त्तित्वाद्गतिः कुतः ॥१३॥

अद्वयत्वान्न कोऽप्यस्ति बोधत्वाज्जडता गतः । एकोद्दिष्टं यदन्यस्य मतिरागतिसंस्थितः ॥१४॥
अथवाकाशकल्पस्य गतिराकाशसंस्थितिः । जाग्रत्स्वप्नप्रसुप्तञ्च मायया परिकल्पितम् ॥१५॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे आत्मज्ञानकथनं नाम
अष्टाविंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२८॥

एकोनत्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

गीतासार प्रवक्ष्यामि अर्जुनायोदितं पुरा । अष्टाङ्गयोगयुक्तात्मा सर्ववेदान्तपारगः ॥ १ ॥
आत्मलाभः परो नान्य आत्मदेहादिवर्जितः । रूपादिहीनदेहान्तःकरणत्वादिलोचनम् ॥ २ ॥

विज्ञानरहितः प्राणः सुषुप्तोऽहं प्रतीयते । नाहमात्मा च दुःखादि संसारादिसमन्वयात् ॥ ३ ॥
विधूम इव दीप्तार्चिरादीप्त इव दीप्तिमान् । वैद्युतोऽग्निरिवाकाशे हृत्सङ्गे आत्मनात्मनि ॥ ४ ॥
श्रोत्रादीनि न पश्यन्ति स्वं स्वमात्मानमात्मना । सर्वज्ञः सर्वदर्शी च क्षेत्रज्ञस्तानि पश्यति ॥
यदा प्रकाशते ह्यात्मा पटे दीपो ज्वलन्निव । ज्ञानमुत्पद्यते पुंसां क्षयात्पापस्य कर्मणः ॥ ६ ॥
यथादर्शतलप्रख्ये पश्यत्यात्मानमात्मनि । इन्द्रियाणीन्द्रियार्थांश्च महाभूतानि पञ्चकम् ७ ॥
मनोबुद्धिरहङ्कारमव्यक्तं पुरुषं तथा । प्रसंख्याय पराव्यासौ विमुक्तो बन्धनैर्भवेत् ॥ ८ ॥
इन्द्रियग्राममखिलं मनसाभिनिवेश्य च । मनश्चैवाप्यहङ्कारे प्रतिष्ठाप्य च पाण्डव ॥ ९ ॥
अहङ्कारं तथा बुद्धौ बुद्धिञ्च प्रकृतावपि । प्रकृतिं पुरुषे स्थाप्य पुरुषं ब्रह्मणि न्यसेत् ॥
अहं ब्रह्म परं ज्योतिः प्रसंख्याय विमुच्यते ॥१०॥

नवद्वारमिदं गेहं तिसृणां पञ्चसाक्षिकम् । क्षेत्रज्ञाधिष्ठितं विद्वान् यो वेद स वरः कविः ॥११॥
अश्वमेधसहस्राणि वाजपेयशतानि च । ज्ञानयज्ञस्य सर्वाणि कलां नार्हन्ति षोडशीम् ॥१२॥

श्रीभगवानुवाच

यमश्च नियमः पार्थ आसनं प्राणसंयमः । प्रत्याहारस्तथा ध्यानं धारणार्जुन सप्तमी ॥
समाधिरिति चाष्टाङ्गो योग उक्तो विमुक्तये ॥१३॥

कर्मणा मनसा वाचा सर्वभूतेषु सर्वदा । हिंसाविरामको धर्मो ह्यहिंसा परमं सुखम् ॥१४॥
विधिना या भवेद्धिंसा सा त्वहिंसा प्रकीर्त्तिता । सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयान्न ब्रूयात् सत्यमप्रियम् ॥
प्रियञ्च नानृतं ब्रूयादेष धर्मः सनातनः ॥१५॥

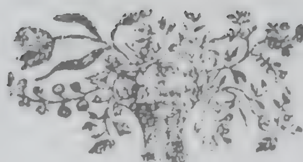
यच्च द्रव्यापहरणं चौर्य्याद्वाथ बलेन वा । स्तेयं तस्यानाचरणं अस्तेयं धर्मसाधनम् ॥१६॥
कर्मणा मनसा वाचा सर्वावस्थासु सर्वदा । सर्वत्र मैथुनत्यागं ब्रह्मचर्य्यं प्रचक्षते ॥१७॥
द्रव्याणामप्यनादानमापत्स्वपि तथेच्छया । अपरिग्रहमित्याहुस्तं प्रयत्नेन वर्जयेत् ॥१८॥
द्विधा शौचं मृज्जलाभ्यां बाह्य भावादथान्तरम् । यदृच्छालाभतस्तुष्टिः सन्तोषः सुखमक्षयम्१९॥
मनसश्चेन्द्रियाणाञ्च ऐकाग्र्यं परमं तपः । शरीरशोषणं वापि कृच्छ्रचान्द्रायणादिभिः ॥२०॥
वेदान्तशतरुद्रीयप्रणवादिजपं बुधाः । सत्त्वशुद्धिकरं पुंसां स्वाध्यायं परिचक्षते ॥२१॥
स्तुतिस्मरणपूजादिवाङ्मनःकायकर्मभिः । अनिश्चला हरौ भक्तिरेतदीश्वरचिन्तनम् ॥२२॥
आसनं स्वस्तिकं प्रोक्तं पद्ममर्द्धासनं तथा । प्राणः स्वदेहजो वायुरायामस्तन्निरोधनम् ॥२३॥
इन्द्रियाणां विचरतां विषयेषु स्वसत्स्विव । नियमं प्रोच्यते सद्भिः प्रत्याहारस्तु पाण्डव ॥२४॥

मूर्त्तामूर्त्तब्रह्मरूपचिन्तनं ध्यानमुच्यते । योगारम्भे मूर्त्तहरिममूर्त्तमपि चिन्तयेत् ॥२५॥
अग्निमण्डलमध्यस्थो वायुदेवश्चतुर्भुजः । शङ्खचक्रगदापद्मयुक्तः कौस्तुभसंयुतः ॥२६॥
वनमाली कौस्तुभेन यतोऽहं ब्रह्मसंज्ञकः । धारणेत्युच्यते चेयं धार्य्यते यन्मनोलये ॥२७॥
अहं ब्रह्मेत्यवस्थानं समाधिरभिधीयते । अहं ब्रह्मास्मि वाक्याच्च ज्ञानान्मोक्षो भवेन्नृणाम् २८॥
अद्वयानन्दचैतन्यं लब्धवित्वा स्थितस्य च । ब्रह्माहमस्म्यहं ब्रह्म अहं ब्रह्मपदार्थयोः ॥२९॥

हरिरुवाच

पुराणं गारुडं प्रोक्तं विधिनापि मया तव । यः पठेत् शृणुयाद्वापि सोऽपि मोक्षमवाप्नुयात् ॥३०॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे ऊनत्रिंशाधिकद्विशततमोऽध्यायः ॥२२९॥



श्रीगरुड़महापुराणम्

उत्तरार्धम्

(प्रेतकल्पः)

प्रथमोऽध्यायः

नारायणं नमस्कृत्य नरञ्चैव नरोत्तमम् । देवीं सरस्वतीं व्यासं ततो जयमुदीरयेत् ॥१॥
धर्मदृढबद्धमूलो वेदस्कन्धः पुराणशाखाढ्यः । क्रतुकुसुमो मोक्षफलः स जयति कल्पद्रुमो विष्णुः ॥

श्रीतार्क्ष्य उवाच

भवत्प्रसादाद्वैकुण्ठत्रैलोक्यं सचराचरम् । मया विलोकितं सर्वमुत्तमाधममध्यमम् ॥३॥
भूर्लोकात् सत्यपर्य्यन्तं पुरं याम्यं विना प्रभो । भूर्लोकः सर्वलोकानां प्रचुरः सर्वजन्तुभिः ॥४॥
मानुष्यं तत्र भूतानां भुक्तिमुक्त्यालयं शुभम् । अतः सुकृतिनां लोको न भूतो न भविष्यति ॥५॥
गायन्ति देवाः किल गीतकानि धन्यास्तु ये भारतभूमिभागे ।
स्वर्गापवर्गस्य फलार्जनाय भवन्ति भूयः पुरुषाः सुरत्वात् ॥६॥
मानुषत्वं लभेत् कस्मात् मृत्युं प्राप्नोति तत् कथम् । क्रियते कः सुरश्रेष्ठ देहमाश्रित्य कुत्रचित् ॥
मृते क्व यान्तीन्द्रियाणि ह्यस्पृश्यः स कथं भवेत् । स्वकर्माणि कृतानीह कथं भोक्तुं प्रसर्पति ॥
प्रसादं कुरु मे मोहं छेत्तुमर्हस्यशेषतः । विनतागर्भसम्भूतः काश्यपस्तव वाहनः ॥९॥
इति प्रीततरो भूत्वा कथयस्व यथातथम् । यमलोके कथं यान्ति विष्णुलोके च मानवाः ॥
प्रेतमुक्तिप्रदं मार्गं कथयस्व प्रसादतः ॥१०॥

श्रीकृष्ण उवाच

वैनतेय महाभाग शृणु सर्वं यथातथ्यम् । प्रीत्या कथयतो यस्मात् सुहृदस्ति भवान् मम ॥११॥
परस्य योषितं हृत्वा ब्रह्मस्वमपहृत्य वै । अरण्ये निर्जने देशे भवन्ति ब्रह्मराक्षसाः ॥१२॥

हीनजातौ प्रजायन्ते रत्नानामपहारकाः । यं यं काममभिध्यायेत् स तल्लिङ्गोऽभिजायते ॥१३॥
नैनं छिन्दन्ति शस्त्राणि नैनं दहति पावकः । न चैनं क्लेदयन्त्यापो न शोषयति मारुतः ॥१४॥
वाक्चक्षुर्नासिके कर्णौ गुदौ मूत्रपुरीषयोः । अण्डजादिकजन्तूनां छिद्राण्येतानि सर्वशः ॥१५॥
नाभेस्तु मूर्द्धपर्य्यन्तमूर्ध्वच्छिद्राणि चाष्ट वै । सन्तः सुकृतिनो मर्त्या ऊर्ध्वच्छिद्रेण यान्ति ते ॥
अधश्छिद्रेण ये यान्ति ते यान्ति विगतिं नराः । मृताहाद्वार्षिकं यावद्यथोक्तविधिना खग ॥१७॥
कार्य्याणि सर्वकर्माणि निर्धनैरपि मानुषैः ॥१८॥
देहे यत्र वसेज्जन्तुस्तत्र भुङ्क्ते शुभाशुभम् । मनोवाक्कायजं नित्यं तत्र तत्र खगेश्वर ॥१९॥
मृतः सुखमवाप्नोति मायापाशैर्न बध्यते । पाशबद्धनरस्येह विकर्मणि मनो भ्रमेत् ॥२०॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे प्रेतकल्पे सारोद्धारे प्रथमोऽध्यायः ॥१॥

द्वितीयोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

एवं ते कथितं तार्क्ष्य जीवितस्य विचेष्टितम् । मनुष्याणां हितार्थाय प्रेतत्वविनिवृत्तये ॥१॥
चतुरशीतिलक्षाणि चतुर्भेदैश्च जन्तवः । अण्डजाः स्वेदजाश्चैव ह्युद्भिज्जाश्च जरायुजाः ॥२॥
एकविंशतिलक्षाणि त्वण्डजाः परिकीर्त्तिताः । स्वेदजाश्च तथैवोक्ता उद्भिज्जाश्च क्रमेण तु ॥३॥
जरायुजास्तथाऽसंख्या मानुषाद्याः प्रचक्षते । सर्वेषामेव जन्तूनां मानुषत्वं हि दुर्लभम् ॥४॥
पञ्चेन्द्रियनिधानं तु बहुपुण्यैरवाप्यते । ब्राह्मणाः क्षत्रिया वैश्याः शूद्रा ह्यन्त्यजजातयः ॥५॥
रजकश्चर्मकारश्च नटो वरुड़ एव च । कैवर्त्तभेदभिल्लाश्च सप्तैताश्चान्त्यजातयः ॥६॥
म्लेच्छडुम्बविभेदेन जातिभेदास्त्रयोदश । जन्तूनामिह सर्वेषां भेदाश्चैव सहस्रशः ॥७॥
आहारो मैथुनं निद्रा भयं क्रोधस्तथैव च । सर्वेषामेव जन्तूनां विवेको दुर्लभः परः ॥८॥
एकपादादिरूपैश्च दश भेदा हि मानवाः । कृष्णसारो मृगो यत्र धर्मदेशः स उच्यते ॥९॥
ब्रह्माद्या देवताः सर्वे मुनयः पितरः खग । धर्मः सत्यञ्च विद्या च तत्र तिष्ठन्ति सर्वदा ॥१०॥
भूतानां प्राणिनः श्रेष्ठाः प्राणिनां मतिजीविनः । बुद्धिमत्सु नराः श्रेष्ठा नरेषु ब्राह्मणाः स्मृताः ॥
ब्राह्मणेषु च विद्वांसो विद्वत्सु कृतबुद्धयः । कृतबुद्धिषु कर्त्तारः कर्तृषु ब्रह्मवादिनः ॥१२॥
मानुष्यं यः समासाद्य स्वर्गमोक्षप्रसाधकम् । द्वयोर्न साधयेदेकं तेनात्मा वञ्चितो ध्रुवम् ॥१३॥
इच्छति शती सहस्रं सहस्री लक्षमीहते । कर्तुं लक्षाधिपती राज्यं राज्येऽपि सकलचक्रवर्त्तित्वम् ॥

चक्रधरोऽपि सुरत्वं सुरत्वलाभे सकलसुरपतित्वम् ।
भवितुं सुरपतिरूर्ध्वगतित्वं तथापि न निवर्त्तते तृष्णा ॥१५॥
तृष्णया चाभिभूतस्तु नरकं प्रतिपद्यते । तृष्णामुक्तास्तु ये केचित्स्वर्गवासं लभन्ति ते ॥१६॥
आत्माधीनः पुमान् लोके सुखी भवति निश्चितम् । शब्दः स्पर्शश्च रूपञ्च रसो गन्धश्च तद्गुणाः॥
तथा च विषयाधीनो दुःखी भवति निश्चितम् ॥१७॥
कुरङ्गमातङ्गपतङ्गभृङ्गमीनाहताः पञ्चभिरेव पञ्च
एकः प्रमादी स कथं न हन्यते यः सेवते पञ्चभिरेव पञ्च ॥१८॥
पितृमातृमयो बाल्ये यौवने दयितामयः । पुत्रपौत्रमयः पश्चान्मूढ़ो नात्ममयः क्वचित् ॥१९॥
लोहदारुमयैः पाशैः पुमान्बद्धो विमुच्यते । पुत्रदारमयैः पाशैर्बद्धो नैव प्रमुच्यते ॥२०॥
मृत्योर्न मुच्यते मूढ़ो बालो वृद्धो युवापि वा । सुखदुःखाधिको वापि पुनरायाति याति च २१॥
एकः प्रजायते जन्तुरेक एव प्रलीयते । एको हि भुङ्क्ते सुकृतमेक एव च दुष्कृतम् ॥२२॥
सर्वेषां पश्यतामेव मृतः सर्वं जहाति च । मृतं शरीरमुत्सृज्य काष्ठलोष्ठसमन्वितम् ॥२३॥
बान्धवा विमुखा यान्ति धर्मस्तमनुगच्छति । गृहेष्वर्था निवर्त्तन्ते श्मशाने मित्रबान्धवाः ॥२४॥
शरीरं वह्निरादत्ते सुकृतं दुष्कृतं व्रजेत् । शरीरं वह्निना दग्धं कृतं कर्म सहस्थितम् ॥२५॥
शुभं वा यदि वा पापं भुङ्क्ते सर्वत्र मानवः । अनस्तमित आदित्ये न दत्तं धनमर्थिनाम् ॥
न जानामीति तद्वित्तं प्रातः कस्य भविष्यति । रोरवीति धनं तस्य को मे भर्त्ता भविष्यति २७॥
न दत्तं द्विजमुख्यानां नाग्नौ तीर्थे सुहृज्जने । पूर्वजन्मकृतात्पुण्याद्यल्लब्धं बहु चाल्पकम् ॥२८॥
तदीदृशं परिज्ञाय धर्मार्थे दीयते धनम् । धनेन धार्य्यते धर्मः श्रद्धायुक्तेन चेतसा ॥२९॥
श्रद्धाविहीनो धर्मस्तु नेहामुत्र च वृद्धिभाक् । धर्मात्सञ्जायते ह्यर्थो धर्मात्कामोऽभिजायते ३०॥
धर्म एवापवर्गाय तस्माद्धर्मं समाचरेत् । श्रद्धया धार्य्यते धर्मो बहुभिर्नार्थराशिभिः ॥३१॥
अकिञ्चना हि मुनयः श्रद्धावन्तो दिवङ्गताः । अश्रद्धया हुतं दत्तं तपस्तप्तं कृतञ्च यत् ॥
असदित्युच्यते पक्षिन्प्रेत्य नेह न तत्फलम् ॥३२॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे प्रेतकल्पे सारोद्धारे द्वितीयोऽध्यायः ॥२॥

तृतीयोऽध्यायः

श्रीगरुड़ उवाच

कर्मणा केन देवेश प्रेतत्वं नैव जायते । पृथिव्यां सर्वजन्तूनां तन्मे ब्रूहि सुरेश्वर ॥ १ ॥

श्रीभगवानुवाच

शृणु वक्ष्यामि सङ्क्षेपात्क्रियाञ्चैवौर्ध्वदैहिकीम् । स्वहस्तेनैव सा कार्या मोक्षकामैस्तु मानवैः ॥
स्त्रीणामपि विशेषेण पञ्चवर्षाधिके शिशौ । वृषोत्सर्गादिकं कर्म प्रेतत्वविनिवृत्तये ॥३॥
वृषोत्सर्गादृते नान्यत्किञ्चिदस्ति महीतले । जीवन्वापि मृतो वापि वृषोत्सर्गं करोति यः ॥
प्रेतत्वं न भवेत्तस्य विना दानैर्विना मखैः ॥ ४ ॥

गरुड़ उवाच

कस्मिन्काले वृषोत्सर्गं जीवन्वापि मृतोऽपि वा । कुर्यात्सुरवरश्रेष्ठ ब्रूहि मे मधुसूदन ॥
किं फलं तु भवेज्जन्तोः कृतैः श्राद्धैस्तु षोडशैः ॥ ५ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

अकृत्वा तु वृषोत्सर्गं कुरुते पिण्डपातनम् । नोपतिष्ठति तच्छ्रेयो दत्तं प्रेतस्य निष्फलम् ॥ ६ ॥
एकादशाहे प्रेतस्य यस्य नोत्सृज्यते वृषः । प्रेतत्वं सुस्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि ॥ ७ ॥

गरुड़ उवाच

पुत्रा यस्य न विद्यन्ते न माता न च बान्धवाः ।
न पत्नी न च भर्त्ता च कथं स्यादौर्ध्वदैहिकम् ॥ ८ ॥
केन मुक्तिं प्रपद्यन्ते नरा नार्य्यो गतापदः । एतन्मे संशयं देव छेत्तुमर्हस्यशेषतः ॥ ९ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च । येन केनाप्युपायेन पुत्रस्य जननञ्चरेत् ॥१०॥
सपुत्रो वा ह्यपुत्रो वा नरो नारी पतिस्तथा । जीवन्नेव स्वयं कुर्य्यान्मृतो ह्यक्षयमाप्नुयात् ११॥
यानि कानि च दानानि स्वयं दत्तानि मानवैः । तानि तानि च सर्वाणि ह्युपतिष्ठन्ति चाग्रतः ॥
व्यञ्जनानि विचित्राणि भक्ष्यभोज्यानि यानि च । स्वयं हस्तेन दत्तानि देहान्ते चाक्षयं फलम् ॥
गोभूहिरण्यवासांसि भोजनानि पदानि च । यत्र तत्र वसेज्जन्तुस्तत्र तत्रोपतिष्ठति ॥१४॥
यावत्स्वास्थ्यं शरीरस्य तावद्धर्मं समाचरेत् । अस्वस्थः प्रेरितश्चान्यैर्न किंचित्कर्त्तुमुत्सहेत् १५॥
यावत्तस्य मृतस्येह न भूतं चौर्ध्वदेहिकम् । वायुभूतः क्षुधाविष्टो भ्रमते च दिवानिशम् १६॥
कृमिकीटपतङ्गो वा जायते म्रियतेऽपि सः । असद्गर्भे वसेत्सोऽपि जातः सद्यो विनश्यति १७॥
यावत्स्वस्थमिदं शरीरमरुजं यावज्जरा दूरतो
यावच्चेन्द्रियशक्तिरप्रतिहता यावत्क्षयो नायुषः ।

आत्मश्रेयसि तावदेव विदुषा कार्य्यः प्रयत्नो महान्
संदीप्ते भवने हि कूपखननं प्रत्युद्यमः कीदृशः ॥१८॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे प्रेतकल्पे औद्‌र्ध्वदेहिको नाम तृतीयोऽध्यायः ॥ ३ ॥

चतुर्थोऽध्यायः

गरुड़ उवाच

स्वहस्तैः किं फलं देव परहस्तैश्च तद्वद । स्वस्थावस्थैरसंज्ञैर्वा विधिहीनमथापि वा ॥ १ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

एका गौः स्वस्थचित्तस्य ह्यस्वस्थस्य च गोशतम् । सहस्रं म्रियमाणस्य दत्तं चित्तविवर्जितम् ॥
मृतस्यैव पुनर्लक्षं विधिहीनञ्च निष्फलम् । तीर्थपात्रसमायोगादेका वै लक्षपुण्यदा ॥ ३ ॥
पात्रे दत्तं खगश्रेष्ठ ह्यहन्यहनि वर्द्धते । दातुर्दानमपाराय ज्ञानिनां न प्रतिग्रहः ॥
विपश्शीतापहौ मन्त्रं वह्निः किं दोषभाजिनौ ॥ ४ ॥
दातव्यं प्रत्यहं पात्रे निमित्तेषु विशेषतः । नापात्रे विदुषा किञ्चिदात्मनः श्रेय इच्छता ॥ ५ ॥
अपात्रे सा च गौर्दत्ता दातारं नरकं नयेत् । कुलैकविंशतियुतं गृहीतारञ्च पातयेत् ॥
देहान्तरं यदावाप्य स्वहस्तसुकृतञ्च यत् ॥ ६ ॥
धनं भूमिगतं यद्वत्स्वहस्तेन निवेशितम् । तद्वत्फलमवाप्नोति ह्यहं वच्मि खगेश्वर ॥ ७ ॥
अपुत्रोऽपि विशेषेण क्रियाञ्चैवौर्ध्वदेहिकीम् । प्रकुर्य्यान्मोक्षकामश्च निर्धनश्च विशेषतः ॥ ८ ॥
स्वल्पेनापि हि वित्तेन स्वयं हस्तेन यत्कृतम् । अक्षयं याति तत्सर्वं यथाज्यञ्च हुताशने ॥ ९ ॥
एका एकस्य दातव्या शय्या कन्या पयस्विनी । सा विक्रीता विभक्ता वा दहत्यासप्तमं कुलम् ॥
तस्मात्सर्वं प्रकुर्वीत चञ्चले जीविते सति । गृहीतदानपाथेयः सुखं याति महाध्वनि ॥११॥
अन्यथा क्लिश्यते जन्तुः पाथेयरहितः पथि । एवं ज्ञात्वा खगश्रेष्ठ वृषयज्ञं समाचरेत् ॥१२॥
अकृत्वा म्रियते यस्तु सपुत्रोऽपि न मुक्तिभाक् । अपुत्रोऽपि हि यः कुर्यात्सुखं याति महापथे ॥
अग्निहोत्रादिभिर्यज्ञैर्दानैश्च विविधैरपि । न तां गतिमवाप्नोति वृषोत्सर्गेण या भवेत् ॥१४॥
सर्वेषामेव यज्ञानां वृषयज्ञस्तथोत्तमः । तस्मात्सर्वप्रयत्नेन वृषयज्ञं समाचरेत् ॥१५॥

गरुड़ उवाच

कथयस्व प्रसादेन वृषयज्ञक्रियां तथा । कस्मिन्काले तिथौ कस्यां विधिना केन तद्भवेत् ॥

कृत्वा किं फलमाप्नोति ह्येतन्मे वद साम्प्रतम् ॥ १६ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

कार्त्तिकादिषु मासेषु ह्युत्तरायणगे रवौ । शुक्लपक्षे तथा कृष्णे द्वादश्यादिशुभे तिथौ ॥
शुभे लग्ने मुहूर्त्ते वा शुचौ देशे समाहितः ॥ १७ ॥

ब्राह्मणन्तु समाहूय विधिज्ञं शुभलक्षणम् । जपहोमैस्तथा दानैः प्रकुर्य्याद्देहशोधनम् ॥१८॥
पूण्येऽह्नि शुभनक्षत्रे ग्रहान्देवान्समर्च्चयेत् । होमं कुर्य्याद्यथाशक्ति मन्त्रैश्च विविधैः शुभैः ॥१९॥
ग्रहाणां स्थापनं कुर्य्यात्पूजनञ्च खगेश्वर । मातृणां पूजनं कुर्य्याद्वसोर्धाराञ्च कारयेत् ॥२०॥
वह्निं संस्थाप्य तत्रैव पूर्णहोमञ्च कारयेत् । शालग्रामञ्च संस्थाप्य वैष्णवं श्राद्धमाचरेत् ॥२१॥
वृषं सम्पूज्य तत्रैव वस्त्रालङ्कारभूषणैः । चतस्रो वत्सतर्य्यस्ताः पूर्वं समधिवासयेत् ॥२२॥
प्रदक्षिणां प्रकुर्वीत होमान्ते तु विसर्जयेत् । इमं मन्त्रं समुच्चार्य्य ह्युत्तराभिमुखं स्थितः ॥२३॥
धर्मस्त्वं वृषरूपेण ब्रह्मणा निर्मितः पुरा । वृषोत्सर्गप्रभावेण मामुद्धर भवार्णवात् ॥२४॥
अनेनैव वृषोत्सर्गं रुद्रकुम्भोदकेन तु । दर्भमूले घटं स्थाप्य उदकं शिरसि न्यसेत् ॥२५॥
अभिषिच्य शुभैर्मन्त्रैः पावनैर्विधिपूर्वकम् । तेन क्रीड़ेति मन्त्रेण वृषोत्सर्गे कृते सति ॥२६॥
आत्मश्राद्धं ततः कुर्य्याद्दत्त्वा चान्नं द्विजोत्तमे । उदके चैव गन्तव्यं जलं तत्र प्रदापयेत् ॥
यदिष्टं जीवितस्यासीत्तद्दद्याच्च स्वशक्तितः । सुतृप्तो दुस्तरं मार्गं मृतो याति सुखेन हि ॥२८॥
यावन्न दीयते जन्तोः श्राद्धञ्चैकादशाह्निकम् । स्वदत्तं परदत्तं वा नेहामुत्रोपतिष्ठति ॥२९॥
त्रयोदश तथा सप्त पञ्च त्रीणि यथाक्रमम् । पददानानि कुर्वीत श्रद्धाभक्तिसमन्वितः ॥३०॥
तिलपात्राणि कुर्वीत त्रीणि पञ्च च सप्त वा । ब्राह्मणान्भोजयेत्पश्चाद्गामेकाञ्च प्रदापयेत् ॥३१॥
वामे चक्रं प्रकर्त्तव्यं त्रिशूलं दक्षिणे तथा । माल्यं दत्त्वा तथैवास्य वृषमेकं विसर्जयेत् ॥३२॥
एकोद्दिष्टविधानेन स्वाहाकारेण बुद्धिमान् । कुर्य्यादेकादशाहं तु द्वादशाहं प्रयत्नतः ॥३३॥
सपिण्डीकरणादर्वाकुर्य्याच्छ्राद्धानि षोड़श । ब्राह्मणान्भोजयित्वा तु पददानानि दापयेत् ॥३४॥
कार्पासोपरि संस्थाप्य ताम्रपात्रे तथाच्युतम् । वस्त्रेणाच्छाद्य तत्रस्थमर्घ्यं दद्याच्छुभैः फलैः ॥
नावमिक्षुमयीं कुर्य्यात्पट्टसूत्रेण वेष्टितम् । कांस्यपात्रे घृतं स्थाप्यं वैतरण्या निमित्तकम् ॥३६॥
नावमारोहयेद्गन्तुं पूजयेद्गरुड़ध्वजम् । आत्मवित्तानुसारेण तस्या दानमनन्तकम् ॥३७॥
भवसागरमग्नानां शोकतापोर्मिदुःखिनाम् । धर्मप्लवविहीनानां तारको हि जनार्दनः ॥३८॥
तिलं लौहं हिरण्यञ्च कार्पासं लवणं तथा । सप्तधान्यं क्षितिर्गाव एकैकं पावनं स्मृतम् ॥३९॥
तिलपात्राणि कुर्वीत शय्यादानञ्च कारयेत् । दीनानाथविशिष्टेभ्यो दद्याच्छक्त्या च दक्षिणाम् ॥

एवं यः कुरुते तार्क्ष्य पुत्रवानप्यपुत्रवान् । स सिद्धिं समवाप्नोति यथा ते ब्रह्मचारिणः ॥४१॥
नित्यं नैमित्तिकं कुर्याद्यावज्जीवति मानवः । यत्किञ्चित् कुरुते धर्ममक्षयं फलमाप्नुयात् ॥४२॥
तीर्थयात्राव्रतानाञ्च श्राद्धे सांवत्सरादिके । देवतानां गुरूणाञ्च मातापित्रोस्तथैव च ॥४३॥
पुण्यं देयं प्रयत्नेन प्रत्यहं वर्द्धते खग । अस्मिन्यज्ञे हि यः कश्चिद्भूरिदानं प्रयच्छति ॥४४॥
तत्तस्य चाक्षयं सर्वं वेदिकायां यथा किल । यथा पूज्यतमा लोके यतयो ब्रह्मचारिणः ॥४५॥
तथैव प्रतिपूज्यन्ते लोके सर्वे च नित्यशः । वरदोऽहं सदा तस्य चतुर्वक्त्रस्तथा हरः ॥४६॥
ते यान्ति परमान्लोकानिति सत्यं वचो मम । पौर्णमास्याञ्च रेवत्यां नीलमेकं प्रमुञ्चयेत् ॥४७॥
संक्रान्तीनां सहस्राणि सूर्य्यपर्वशतानि च । कृत्वा यत्फलमाप्नोति तद्वै नीलविसर्जने ॥४८॥
वत्सतरी प्रदातव्या ब्राह्मणेभ्यः पदानि च । तिलपात्राणि देयानि शिवभक्तद्विजेषु च ॥४९॥
उमा महेश्वरञ्चैव परिधाप्य प्रयत्नतः । अतसीपुष्पसंकाशं पीतवाससमच्युतम् ॥५०॥
ये नमस्यन्ति गोविन्दं न तेषां विद्यते भयम् । प्रेतत्वान्मोक्षमिच्छन्ति ये करिष्यन्ति स्वक्रियाम् ॥
एतत्ते सर्वमाख्यातं मया स्वञ्चौर्ध्वदैहिकम् । यच्छ्रुत्वा मुच्यते पापैर्विष्णुलोकं स गच्छति ५२॥
श्रुत्वा माहात्म्यमतुलं गरुड़ो हर्षमागतः । भूयः पप्रच्छ देवेशं कृत्वा चानतकन्धरम् ॥५३॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे प्रेतकल्पे और्ध्वदैहिको नाम चतुर्थोऽध्यायः ॥ ४ ॥

पञ्चमोऽध्यायः

गरुड़ उवाच

भगवन्ब्रूहि मे सर्वं यमलोकस्य निर्णयम् । प्रमाणं विस्तरं तस्य माहात्म्यञ्च सुविस्तरम् ॥१॥

श्रीभगवानुवाच

शृणु तार्क्ष्य प्रवक्ष्यामि यमलोकस्य निर्णयम् । प्रमाणकानि सर्वाणि भुवनानि च षोडश ॥२॥
षडशीतिसहस्राणि योजनानां प्रमाणतः । यमलोकस्य चाध्वा वै अन्तरो मानुषस्य च ॥३॥
सुकृतं दुष्कृतं वापि भुक्त्वा लोके यथार्जितम् । कर्मयोगात्तदा कश्चिद् व्याधिरुत्पद्यते खग ४॥
निमित्तमात्रः सर्वेषां कृतकर्मानुसारतः । यो यस्य विहितो मृत्यु· स तं ध्रुवमवाप्नुयात् ॥५॥
कर्मयोगात्तदा देही मुञ्चत्यत्र निजं वपुः । तदा भूमिगतं कुर्य्याद्गोमयेनोपलिप्य च ॥६॥
तिलान्दर्भा विकीर्य्याथ मुखे स्वर्णं विनिक्षिपेत् । तुलसीसन्निधौ कृत्वा शालग्रामशिलां तथा ॥
एवं सामादिसूक्तैश्च मरणं मुक्तिदायकम् । शलाकास्वर्णविक्षेपः प्रेतप्राणगृहेषु च ॥८॥

एका वक्त्रे तु दातव्या घ्राणयुग्मे तथा पुनः । अक्ष्णोश्च कर्णयोश्चैव द्वे द्वे देये यथाक्रमम् ॥९॥
अथ लिङ्गे तथा चैका चैका ब्रह्माण्डके क्षिपेत् । करयुग्मे च कण्ठे च तुलसीश्च प्रदापयेत् १०॥
वस्त्रयुग्मञ्च दातव्यं कुङ्कुमैश्चाक्षतैर्यजेत् । पुष्पमालायुतं कुर्यादन्यद्वारेण सन्नयेत् ॥११॥
पुत्रस्तु बान्धवैः सार्द्धं विप्रस्तु पुरवासिभिः । पितुः प्रेतगतं पुत्रः स्कन्धमारोप्य बान्धवैः ॥१२॥
गत्वा श्मशानदेशे तु प्राङ्मुखञ्चोत्तरामुखम् । अदग्धपूर्वा या भूमिश्चितां तत्रैव कारयेत् १३॥
श्रीखण्डतुलसीकाष्ठसमित्पालाशसम्भवाम् । एवं सामादिसूक्तैश्च मरणं मुक्तिदायकम् ॥१४॥
विमलेन्द्रियसङ्घाते चैतन्ये जड़ताङ्गते । प्रचलन्ति ततः प्राणा यामैर्निकटवर्त्तिभिः ॥१५॥
बीभत्सं दारुणं रूपं प्राणैः कण्ठसमाश्रितैः । फेनमुद्गिरते सोऽपि मुखं लालाकुलं भवेत् ॥१६॥
दुरात्मानश्च ताड्यन्ते किङ्करैः पाशवेष्टिताः । सुखेन कृतिनस्तत्र नीयन्ते नाकनायकैः ॥१७॥
दुःखेन पापिनो यान्ति यममार्गे सुदुर्गमम् । यमश्चतुर्भुजो भूत्वा शङ्खचक्रगदादिभृत् ॥१८॥
पुण्यकर्मरतान्सम्यक्स्नेहान्मित्रवदाचरेत् । आहूय पापिनः सर्वान्यमो दण्डेन तर्जयेत् ॥१९॥
प्रलयाम्बुदनिर्घोषो ह्यञ्जनाद्रिसमप्रभः । महिषस्थो दुराराध्यो विद्युत्तेजःसमद्युतिः ॥२०॥
योजनत्रयविस्तारदेहो रुद्रोऽतिभीषणः । लोहदण्डधरो भीमः पाशपाणिर्दुराकृतिः ॥२१॥
रक्तनेत्रोऽतिभयदो दर्शनं याति पापिनाम् । अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषो हाहा कुर्वन्कलेवरात् ॥२२॥
यदैव नीयते दूतैर्याम्यैर्वीक्षन् स्वकं गृहम् । निर्विचेष्टं शरीरं तु प्राणैर्मुक्तैर्जुगुप्सितम् ॥२३॥
अस्पृश्यं जायते तूर्णं दुर्गन्धं सर्वनिन्दितम् । त्रिधावस्थाऽस्य देहस्य क्रिमिविड्भस्मरूपतः २४॥
को गर्वः क्रियते तार्क्ष्य क्षणविध्वंसिभिर्नरैः । दानं वित्ताद्यो न कुर्यात्कीर्त्तिधर्मौ तथायुषः ॥
परोपकरणं कायादसारात्सारमुद्धरेत् । तस्यैवं नीयमानस्य दूताः सन्तर्जयन्ति हि ॥२६॥
दर्शयन्ति भयं तीव्रं नरकाणां पुनः पुनः । शीघ्रं प्रचल दुष्टात्मन् त्वं यास्यसि यमालयम् २७॥
कुम्भीपाकादिनरकान्त्वां नयिष्यामि माचिरम् । एवं वाचस्तदा शृण्वन्बन्धूनां रुदतं तथा ॥
उच्चैर्हाहेति विलपन्नीयते यमकिङ्करैः । मृतस्योत्क्रान्तिसमयात्षट्पिण्डान् क्रमतो ददेत् ॥२९॥
मृतस्थाने तथा द्वारे चत्वरे तार्क्ष्य कारयेत् । विश्रामे काष्ठचयने तथा सञ्चयने च षट् ॥३०॥
शृणु तत्कारणं तार्क्ष्य षट्पिण्डपरिकल्पने । मृतस्थाने शवो नाम तेन नाम्ना प्रदीयते ॥३१॥
तेन भूमिर्भवेत्तुष्टा तदधिष्ठातृदेवता । द्वारदेशे भवेत्पान्थस्तेन नाम्ना प्रदीयते ॥३२॥
तेन दत्तेन तुष्यन्ति गृहवास्त्वधिदेवताः । चत्वरे खेचरो नाम तमुद्दिश्य प्रदीयते ॥३३॥
तेन तत्रोपघाताय भूतकोटिः पलायते । विश्रामे भूतसंज्ञोऽयं तेन नाम्ना प्रदीयते ॥३४॥
पिशाचा राक्षसा यक्षा ये चान्ये दिशिवासिनः । तस्य होतव्यदेहस्य नैवायोग्यत्वकारकाः ॥३५॥

चितामोक्षप्रभृति च प्रेतत्वमुपजायते । चितायां साधकं नाम वदन्त्येके खगेश्वर ॥३६॥
केऽपि तं प्रेतमेवाहुर्यथा कल्पविदस्तथा । तदा हि तत्र तत्रापि प्रेतनाम्ना प्रदीयते ॥३७॥
इत्येवं पञ्चपिण्डैर्हि शवस्याहुतियोग्यता । अन्यथा चोपघाताय पूर्वोक्तास्ते भवन्ति हि ॥३८॥
उत्क्रामे प्रथमं पिण्डं तथा चार्द्धपथेन च । चितायां तु तृतीयं स्यात्त्रयः पिण्डाश्च कल्पिताः ॥
विधाता प्रथमे पिण्डे द्वितीये गरुडध्वजः । तृतीये यमदूताश्च प्रयोगः परिकीर्त्तितः ॥४०॥
दत्ते तृतीये पिण्डेऽस्मिन्देहदोषैः प्रमुच्यते । आधारभूतजीवस्य ज्वलनं ज्वालयेच्चिताम् ॥४१॥
संसृज्य चोपलिप्याथ उल्लिख्योद्धृत्य वेदिकाम् । अभ्युक्षीय समाधाय वह्निं तत्र विधानतः ४२॥
पुष्पाक्षतैः सुसम्पूज्य देवं क्रव्यादसंज्ञकम् । त्वं भूतकृज्जगद्योने त्वं लोकपरिपालकः ॥४३॥
संहारकारकस्तस्मादेनं स्वर्गं मृतं नय । एवं क्रव्यादमभ्यर्च्य शरीराहुतिमाचरेत् ॥४४॥
अर्द्धदेहे तथा दग्धे दद्यादाज्याहुतिं ततः । लोमभ्यस्त्वनुवाक्येन कुर्याद्धोमं यथाविधि ॥४५॥
चितामारोप्य तं प्रेतं हुनेदाज्याहुतिं ततः । यमाय चान्तकायेति मृत्यवे ब्रह्मणे तथा ॥४६॥
जातवेदोमुखे देया ह्येका प्रेतमुखे तथा । ऊर्ध्वं तु ज्वालयेद्वह्निं पूर्वभागे चितां पुनः ॥४७ ।
अस्मात्त्वमधिजातोऽसि त्वदयं जायतां पुनः । असौ स्वर्गाय लोकाय स्वाहा ज्वलति पावकः ॥
एवमाज्याहुतिं दत्त्वा तिलमिश्रां समन्त्रकाम् । ततो दाहः प्रकर्त्तव्यः पुत्रेण किल निश्चितम् ॥
रोदितव्यं ततो गाढं एवं तस्य सुखं भवेत् । दाहस्यानन्तरं तत्र कृत्वा सञ्चयनक्रियाम् ५०॥
प्रेतपिण्डं प्रदद्याच्च दाहार्त्तिशमनं खग । तेन दूताः प्रतीक्षन्ते तं प्रतं बान्धवार्थिनम् ॥५१॥
दद्यादनन्तरं कार्य्यं पुत्रैः स्नानं सचेलकम् । तिलोदकं ततो दद्यान्नामगोत्रेण चाश्मनि ॥५२॥
ततो जनपदैः सर्वैर्दातव्या करताड़नी । विष्णुर्विष्णुरिति ब्रूयाद्गुणैः प्रेतमुदीरयेत् ॥५३॥
जनाः सर्वे समास्तस्य गृहमागत्य सर्वशः । द्वारस्थ दक्षिणे भागे गोमयं गौरसर्षपान् ॥५४॥
निधाय वरुणं देवमन्तर्द्धाय स्ववेश्मनि । भक्षयेन्निम्बपत्राणि घृतं प्राश्य गृहं व्रजेत् ॥५५॥
केचिद्दुग्धेन सिञ्चन्ति चिन्तास्थानं खगेश्वर । अश्रुपातं न कुर्वीत दत्त्वा चाथ जलाञ्जलिम् ॥

श्लेष्माश्रु बान्धवैर्मुक्तं प्रेतो भुङ्क्ते यतोऽवशः ।
अतो न रोदितव्यं हि क्रिया कार्य्या स्वशक्तितः ॥५७॥

दुग्धञ्च मृन्मये पात्रे तोयं दद्याद्दिनत्रयम् । सूर्य्येऽस्तमागते तार्क्ष्य बलभ्याञ्चत्वरे तथा ॥५८॥
बद्धः संमूढहृदयो देहमिच्छन्कृतानुगः । श्मशानञ्चत्वरं गेहं वीक्षन्याम्यैः स नीयते ॥५९॥
गर्त्तपिण्डान्दशाहानि प्रदद्याच्च दिने दिने । जलाञ्जल्यः प्रदातव्याः प्रेतमुद्दिश्य प्रत्यहम्॥६०॥
तावद्वृद्धिश्च कर्त्तव्या यावत्पिण्डं दशाह्निकम् । पत्रेण हि क्रिया कार्य्या भार्य्यया तदभावतः ॥

तदभावे च शिष्येण शिष्याभावे सहोदरः । श्मशाने चान्यतीर्थे वा जलं पिण्डञ्च दापयेत् ॥
ओदनानि च सक्तूंश्च शाकमूलफलादि वा । प्रथमेऽहनि यद्दद्यात्तद्दद्यादुत्तरेऽहनि ॥६३॥
दिनानि दश पिण्डानि कुर्वन्त्यत्र सुतादयः । प्रत्यहं ते विभज्यन्ते चतुर्भागैः खगोत्तम ॥६४॥
भागद्वयं तु देहार्थे प्रीतिदं भूतपञ्चकम् । तृतीयं यमदूतानाञ्चतुर्थेनोपजीवति ॥६५॥
अहोरात्रैस्तु नवभिः प्रेतो निष्पत्तिमाप्नुयात् । जन्तोर्निष्पन्नदेहस्य दशमे तु भवेत्क्षुधा ॥६६॥
न द्विजो नैव मन्त्रश्च न स्वधा वाहनाशिषः । नामगोत्रे समुच्चार्य्य यद्दत्तञ्च दशाह्निकम् ६७॥
दग्धे देहे पुनर्देहं प्राप्नोत्येव खगेश्वर । प्रथमेऽहनि यः पिण्डस्तेन मूर्द्धा प्रजायते ॥६८॥
ग्रीवास्कन्धौ द्वितीये तु तृतीये हृदयं भवेत । चतुर्थेऽह्नि भवेत्पार्ष्णिर्नाभिर्वै पञ्चमे तथा ॥६९॥
षष्ठे च सप्तमे चैव कटिर्गुह्यं प्रजायते । ऊरू चाष्टमके चैव जान्वङ्घ्री नवमे तथा ॥७०॥
नवभिर्देहमासाद्य दशमेऽह्नि भवेत्क्षुधा । देहभूतः क्षुधाविष्टो गृहद्वारे स तिष्ठति ॥७१॥
दशमेऽहनि यः पिण्डस्तं दद्यादामिषेण तु । यतो देहः समुत्पन्नः प्रेतस्तीव्रक्षुधान्वितः ॥७२॥
अतस्त्वामिषवाह्यं तु क्षुधा तस्य न नश्यति । एकादशाहं द्वादशाहं प्रेतो भुङ्क्ते दिनद्वयम् ॥
योषितः पुरुषस्यापि प्रेतशब्दं समुच्चरेत् । दीपमन्नं जलं वस्त्रमन्यद्वा दीयते तु यत् ॥७४॥
प्रेतशब्देन यद्दत्तं मृतस्यानन्ददायकम् । त्रयोदशेऽह्नि वै प्रेतो नीयते च महापथे ॥७५॥
पिण्डजं देहमाश्रित्य दिवारात्रौ क्षुधान्वितः । मार्गे गच्छति स प्रेतो ह्यसिपत्रवनान्विते ॥७६॥
क्षुत्पिपासार्दितो नित्यं यमदूतैः प्रपीड़ितः । अहन्यहनि स प्रेतो योजनानां शतद्वयम् ॥७७॥
चत्वारिंशत्तथा सप्त अहोरात्रेण गच्छति । गृहीतो यमपाशैस्तु जनो हाहेति रोदिति ॥७८॥
स्वगृहं सम्परित्यज्य याम्यं पुरमनुव्रजेत् । क्रमेण गच्छति प्रेतः पुरं वैवस्वतं शुभम् ॥७९॥

याम्यं सौरिपुरं सुरेन्द्रभवनं गन्धर्वशैलागमं
क्रूरं क्रौञ्चपुरं विचित्रभवनं बह्वापदं दुःखदम् ।
नानाक्रन्दपुरं सुतप्तभवनं रौद्रं पयोवर्षणं
शीताढ्यं बहुभीति घर्मभवनं याम्यं पुरञ्चाग्रतः ॥८०॥

त्रयोदशेऽह्नि स प्रेतो नीयते यमकिङ्करैः । तस्मिन्मार्गे व्रजत्येको गृहीत इव कर्कटः ॥८१॥
तथैव स व्रजन्मार्गे पुत्र पुत्र इति ब्रुवन् । हाहेति क्रन्दते नित्यं कीदृशं तु मया कृतम् ॥८२॥
मानुषत्वं लभे कस्मादिति ब्रूते प्रसर्पति । महता पुण्ययोगेन मानुषं जन्म लभ्यते ॥८३॥
तच्च प्राप्य न प्रदत्तं याचकेभ्यः स्वकं धनम् । पराधीनमभूत्सर्वमिति ब्रूते स गद्गदः ॥
किङ्करैः पीड्यतेऽत्यर्थं स्मरते पूर्वदैहिकम् ॥८४॥

सुखस्य दुःखस्य न कोऽपि दाता परो ददातीति कुबुद्धिरेषा ।
पुराकृतं कर्म सदैव भुज्यते शरीर हे निस्तरय त्वया कृतम् ॥८५॥
मया न दत्तं न हुतं हुताशने तपो न तप्तं हिमशैलगह्वरे ।
न सेवितं गाङ्गमहो महाजलं शरीर हे निस्तरय त्वया कृतम् ॥८६॥
जलाश्रयो नैव कृतो हि निर्जले मनुष्यहेतोः पशुपक्षिहेतवे ।
गोतृप्तिहेतोर्न कृतं हि गोचरं शरीर हे निस्तरय त्वया कृतम् ॥८७॥
न नित्यदानं न गवाह्निकं कृतं न वेददानं न च शास्त्रपुस्तकम् ।
पुरा न इष्टो न च सेवितोऽध्वा शरीर हे निस्तरय त्वया कृतम् ॥८८॥
मासोपवासैर्न च शोधितं वपुश्चान्द्रायणैर्वा नियमैश्च सुव्रतैः ।
नारीशरीरं बहुदुःखभाजनं लब्धं मया पूर्वकृतैर्विकर्मभिः ॥८९॥
उक्तानि वाक्यानि मया नराणां मत्तः शृणुष्वावहितो हि पक्षिन् ।
स्त्रीणाञ्च देहं त्ववलम्ब्य देही ब्रवीति कर्माणि कृतानि पूर्वम् ॥९०॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे प्रेतकल्पे और्ध्वदैहिककर्मादिसंस्कारो
नाम पञ्चमोऽध्यायः ॥ ५ ॥

षष्ठोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

एवं प्रचलते प्रेतस्तत्र मार्गे खगेश्वर । क्रन्दितश्चैव दुःखार्त्तः श्रान्तश्चाकुललोचनः ॥१॥
सप्तदशदिनान्येको वायुमार्गेण गच्छति । अष्टादशे त्वहोरात्रे पूर्वं याम्यपुरं व्रजेत् ॥२॥
तस्मिन्पुरवरे रम्ये प्रेतानाञ्च गणो महान् । पुष्पभद्रा नदी तत्र न्यग्रोधः प्रियदर्शनः ॥३॥
पुरे तत्र स विश्रामं प्राप्यते यमकिङ्करैः । जायापुत्रादिकं सौख्यं स्मरते तत्र दुःखितः ॥४॥
क्रन्दते करुणैर्वाक्यैस्तृषार्त्तः श्रमपीडितः । स्वधनं स्वसुखानीह गृहपुत्रधनानि च ॥५॥
भृत्यमित्राणि धान्यञ्च सर्वं शोचति वै तदा । क्षुधार्त्तस्य पुरे तस्मिन्किङ्करैस्तस्य चोच्यते ॥६॥

किङ्करा ऊचुः

क्व धनं क्व सुता जाया क्व सुहृत्क्व त्वमीदृशः । स्वकर्मणार्जितं भुङ्क्ष्व मूढचेतश्चिरं पथि ॥७॥

जानासि सम्बलवशं बलमध्वगानां नो सम्बलाय पतितं परलोकपान्थ ।
गन्तव्यमस्ति तव निश्चितमेवमस्मिन्मार्गे हि चात्र भवतः क्रयविक्रयौ न ॥८॥
यमगीताभवं वाक्यं नैव मर्त्त्ये श्रुतं त्वया । एवमुक्तस्ततः सर्वैर्हन्यमानः स मुद्गरैः ॥९॥
अत्र दत्तं सुतैः पौत्रैः स्नेहाद्वा कृपयाथवा । मासिकं पिण्डमश्नाति ततः सौरिपुरं व्रजेत् ॥१०॥
तत्र नाम्ना तु राजा वै जङ्गमः कालरूपधृक् । तं दृष्ट्वा भयभीतस्तु विश्रामे कुरुते मतिम् ॥११॥
उदकञ्चान्नसंयुक्तं भुङ्क्ते तस्मिन्पुरे गतः । त्रिभिः पक्षैस्तथा पिण्डैस्तत्पुरं स व्यतिक्रमेत् ॥
सुरेन्द्रनगरे रम्ये प्रेतो याति दिवानिशम् । ततो वनानि रौद्राणि दृष्ट्वा क्रन्दति तत्र सः ॥१३॥
भीषणैः क्लिश्यमानश्च क्रन्दत्येव पुनः पुनः । मासद्वयावसाने तु तत्पुरं स व्यतिक्रमेत् ॥१४॥
तृतीये मासि सम्प्राप्ते गन्धर्वनगरे शुभे । तृतीयमासिकं पिण्डं तत्र भुङ्क्ते स गच्छति ॥१५॥
शैलागमे चतुर्थे च मासि याति खगेश्वर । पतन्ति तत्र पाषाणाः प्रेतस्योपरि पृष्ठतः ॥१६॥
चतुर्थमासिकं श्राद्धं भुक्त्वा तत्र सुखी भवेत् । स गच्छति ततः प्रेतः क्रूरं मासे तु पञ्चमे १७॥
पञ्चममासिकं पिण्डं भुङ्क्ते तत्र पुरे स्थितः । ऊनषाण्मासिकं क्रौञ्चैः पञ्चभिः सार्द्धमासिकैः ॥
तत्र दत्तेन पिण्डेन श्राद्धेनाप्यायितस्ततः । मुहूर्त्तार्द्धं तु विश्राम्य कम्पमानः सुदुःखितः ॥१९॥
तत्पुरं तु परित्यज्य तर्जितो यमकिङ्करैः । प्रयाति चित्रनगरं विचित्रो नाम पार्थिवः ॥२०॥
यमस्यैवानुजः सौरिर्यत्र राज्यं प्रशास्ति हि । तत्र षण्मासपिण्डेन तृप्तः सन्कृष्यते नरः ॥२१॥
मार्गे पुनः पुनस्तस्य बुभुक्षा जायते भृशम् । मदीयपुत्रः पौत्रो वा बान्धवः कोऽपि तिष्ठति ॥
ददाति कश्चिन्मां सौख्यं पतितः शोकसागरे । एवं विलपतो मार्गे वार्य्यमाणस्य किङ्करैः ॥२३॥
आयान्ति सम्मुखास्तत्र कैवर्त्तास्तु सहस्रशः । वयं त्वां तारयिष्यामो महावैतरणीं नदीम् ॥२४॥
शतयोजनविस्तीर्णां पूयशोणितपूरिताम् । नानापक्षिसमाकीर्णां नानाझषशतैर्वृताम् ॥२५॥
येन तत्र प्रदत्ता गौर्विष्णुलोकञ्च सा नयेत् । न दत्ता चेत्खगश्रेष्ठ वैतरण्यां स मज्जति ॥२६॥
स्वस्थावस्थे शरीरे तु वैतरण्या व्रतं चरेत् । देया च विदुषे धेनुस्तां नदीं तर्तुमिच्छता ॥२७॥
अदत्त्वा मज्जमानस्तु निन्दति स्वं स मूढधीः । पाथेयार्थं मया किञ्चिन्न प्रदत्तं द्विजातये ॥
न तप्तं न हुतं जप्तं न स्नानं न कृतं शुभम् ॥२८॥

किङ्करा ऊचुः

यादृशं कर्म चरितं मूढ भुङ्क्ष्वाद्य तादृशम् । हा दैव इति संमूढो भीषणैस्ताड्यते हृदि २९॥
षाण्मासिकञ्च यच्छ्राद्धं तत्र भुक्त्वा प्रसर्पति । तार्क्ष्य तत्र विशेषेण भोजयेच्च द्विजाञ्छुभान् ॥
चत्वारिंशत्तथा सप्तयोजनानां शतद्वयम् । प्रयाति प्रत्यहं तार्क्ष्य ह्यहोरात्रेण कर्षितः ॥३१॥

सप्तमे मासि सम्प्राप्ते पुरं बद्ध्वा पदं व्रजेत् । तत्र भुक्त्वा प्रदत्तं यत् सप्तमासिकसम्भवम् ३२॥
तत् पुरं स व्यतिक्रम्य दुःखदं पुरमाश्रयेत् । महद् दुःखमनुप्राप्य स्वमार्गे याति वै पुनः ॥३३॥
मास्यष्टमे प्रदत्तं यत् तत्र भुक्त्वा स गच्छति । नवमं मासिकं भुङ्क्ते नानाक्रन्दपुरे स्थितः ॥
नानाक्रन्दगणान्दृष्ट्वा क्रन्दमानान् सुदारुणान् । स्वयञ्च शून्यहृदयः समाक्रन्दति दुखितः ॥
विहाय तत् पुरं प्रेतो याति तमपुरं प्रति । सुतप्तनगरं प्राप्य दशमे मासि सोऽश्नुते ॥३६॥
भोजनैः पिण्डदानैस्तु दत्तैस्तत्र सुखी भवेत् । मासि चैकादशे पूर्णे रौद्रं स्थानं स गच्छति ३७॥
दशैकमासिकं भुक्त्वा पयोवर्षणमिच्छति । मेघास्तत्र प्रवर्षन्ति प्रेतानां दुःखदायकाः ॥३८॥
न्यूनाब्दिकं तु यच्छ्राद्धं तत्र भुङ्क्ते सुदुःखितः । सम्पूर्णे च ततो वर्षे प्रेतः शीतपुरं व्रजेत् ॥
शीताढ्यनगरं तत्र महाशीतं प्रवर्त्तते । शीतार्त्तः क्षुधितः सोऽपि वीक्षते हि दिशो दश ॥४०॥
अस्ति मे बान्धवः कोऽपि यो मे दुःखं व्यपोहति । किङ्करास्तं वदन्त्येवं क्व ते पुण्यं हि तादृशम् ॥
श्रुत्वा तेषां तु तद्वाक्यं हा दैव इति भाषते । दैवञ्च प्राकृतं कर्म यन्मया मानुषे कृतम् ॥४२॥
एवं सञ्चिन्त्य बहुशो धैर्य्यमालभते पुनः । चत्वारिंशद्योजनानि चतुर्युक्तानि वै तथा ॥४३॥
धर्मराजपुरं दिव्यं गन्धर्वाप्सरःसङ्कुलम् । चतुरशीतिलक्षैश्च मूर्त्तामूर्त्तैरधिष्ठितम् ॥४४॥
द्वादशैव प्रतीहारा धर्मराजपुरे स्थिताः । शुभाशुभं तु यत् कर्म ते विचार्य्य पुनः पुनः ॥४५॥
श्रवणा ब्रह्मणः पुत्रा मनुष्याणाञ्च चेष्टितम् । कथयन्ति तदा काले पूजताऽपूजिताः स्वयम् ॥
नरैस्तुष्टैश्च रुष्टैश्च यत् प्रोक्तञ्च कृतञ्च यत् । सर्वमावेदयन्ति स्म चित्रगुप्ते यमे यथा ॥४७॥
दूराच्छ्रवणविज्ञानं दूराद्दर्शनगोचरम् । एवञ्चेष्टास्तु ते सर्वे स्वर्भूःपातालचारिणः ॥४८॥
तेषां पत्न्यास्तथैवोग्राः श्रवणाः पृथगाह्वयाः । एवं तेषां शक्तिरस्ति मर्त्त्ये मर्त्त्योपकारिका ॥४९॥
व्रतैर्दानैश्च यस्तेषां पूजयेदिह मानवः । जायन्ते तस्य ते सौम्याः सुखमृत्युप्रदायकाः ५०॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे प्रेतकल्पे यममार्गगमनं नाम षष्ठोऽध्यायः ॥६॥

सप्तमोऽध्यायः

गरुड उवाच

एको मे संशयो देव हृदयेऽतीव वर्त्तते । श्रवणाः कस्य पुत्राश्च कथं यमपुरे स्थिताः ॥१॥
मानुषैश्च कृतं कर्म कस्माज्जानन्ति ते प्रभो । कथं शृण्वन्ति ते सर्वे कस्माज्ज्ञानं समागतम् ॥
कुत्र भुञ्जन्ति देवेश कथयस्व प्रसादतः । पक्षिराजवचः श्रुत्वा भगवान् वाक्यमब्रवीत् ॥३॥

श्रीकृष्ण उवाच

शृणुष्व वचनं सत्यं सर्वेषां सौख्यदायकम् । तदहं कथयिष्यामि श्रवणानां विचेष्टितम् ॥४॥
एकीभूतं यदा सर्वं जगत्स्थावरजङ्गमम् । क्षीरोदसागरे पूर्वं मयि सुप्ते जगत्पतौ ॥५॥
नाभिस्थोऽजस्तपस्तेपे वर्षाणि सुबहून्यपि । एकीभूतं जगत् सृष्टं भूतग्रामश्चतुर्विधम् ॥६॥
ब्रह्मणा निर्मितं पूर्वं विष्णुना पालितं तदा । रुद्रः संहारमूर्त्तिश्च निर्मितं ब्रह्मणा ततः ॥७॥
वायुः सर्वगतः सृष्टः सूर्य्यस्तेजोविवृद्धिमान् । धर्मराजस्ततः सृष्टश्चित्रगुप्तेन संयुतः ॥८॥
सृष्ट्वैवमादिकं सर्वं तपस्तेपे तु पद्मजः । गतानि बहुवर्षाणि ब्रह्मणो नाभिपङ्कजे ॥६॥
यो यो हि निर्मितः पूर्वं तत्तत्कर्म समाचरेत् । कस्मिंश्चित् समये तत्र ब्रह्मलोकसमन्वितः ॥१०॥
रुद्रो विष्णुस्तथा धर्मः शासयन्ति वसुन्धराम् । न जानीमो वयं किञ्चिल्लोककृत्यमिहोच्यताम् ॥
इति चिन्तापराः सर्वे देवा विममृशुस्तदा । सञ्चिन्त्य ब्रह्मणो मन्त्रं विबुधैः प्रेरितस्तदा ॥१२॥
गृहीत्वा कुशपत्राणि सोऽसृजद्द्वादशात्मजान् । तेजोराशीन् विशालाक्षान् ब्रह्मणो वचनात्तु ते॥
यो यं वदति लोकेऽस्मिन् शुभं वा यदि वाऽशुभम् । प्रापयन्ति ततः शीघ्रं ब्रह्मणः कर्णगोचरे ॥
दूराच्छ्रवणविज्ञानं दूराद्दर्शनगोचरम् । सर्वे शृण्वन्ति यत् पक्षिस्तेनैव श्रवणा मताः ॥१५॥
स्थित्वा चैव तथाकाशे जन्तूनाञ्चेष्टितं तु यत् । तज्ज्ञात्वा धर्मराजाग्रे मृत्युकाले वदन्ति च ॥
धर्मञ्चार्थञ्च कामञ्च मोक्षञ्च कथयन्ति ते ॥१६॥
एको हि धर्ममार्गश्च द्वितीयश्चार्थमार्गकः । अपरः काममार्गश्च मोक्षमार्गश्चतुर्थकः ॥१७॥
उत्तमाधममार्गेण वैनतेय प्रयान्ति हि । अर्थदाता विमानैस्तु अश्वैः कामप्रदायकः ॥१८॥
हंसयुक्तविमानैश्च मोक्षाकाङ्क्षी प्रसर्पति । इतरः पादचारेण ह्यसिपत्रवनानि च ॥१६॥
पाषाणैः कण्टकैः क्लिष्टः पाशबद्धोऽथ याति वै । यः कश्चिन्मानुषे लोके श्रवणान् पूजयेदिह ॥
वर्द्धनी जलसम्पूर्णा पक्वान्नपरिपूरिता । श्रवणान् पूजयेत्तत्र मया सह खगेश्वर ॥२१॥
तस्याहं तत्करिष्यामि यत्सुरैरपि दुर्लभम् । सम्भोज्य ब्राह्मणान्भक्त्या एकादश शुभाञ्छुचीन् ॥
द्वादशं सकलत्रञ्च मम प्रीत्यैव पूजयेत् । देवैः सर्वैश्च सम्पूज्याः स्वर्गं यान्ति सुखेप्सया ॥२३॥
तैः पूजितैरहं तुष्टश्चित्रगुप्तेन धर्मराट् । तैस्तुष्टैर्मत्पुरं यान्ति लोका धर्मपरायणाः ॥२४॥
श्रवणानाञ्च माहात्म्यमुत्पत्तिञ्चेष्टितं शुभम् । शृणोति पक्षिशार्दूल स च पापैर्न लिप्यते ॥
इह लोके सुखं भुक्त्वा स्वर्गलोके महीयते ॥२५॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे प्रेतकल्पे श्रवणोत्पत्तिर्नाम सप्तमोऽध्यायः ॥६॥

———

अष्टमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

श्रवणानां वचः श्रुत्वा क्षणं ध्यात्वा पुनर्यमः । यत्कृतञ्च मनुष्यैश्च पुण्यं पापमहर्निशम् ॥१॥
तत्सर्वञ्च परिज्ञाय चित्रगुप्तो निवेदयेत् । चित्रगुप्तस्ततः सर्वं कर्म तस्मै वदत्यथ ॥२॥
वाचैव यत्कृतं कर्म कृतञ्चैव तु कायिकम् । मानसञ्च तथा कर्म कृतं भुङ्क्ते शुभाशुभम् ॥
एवं ते कथितं तार्क्ष्य प्रेतमार्गस्य निर्णयम् । विश्रान्तकानि सर्वाणि स्थानानि कथितानि ते ॥
तमुद्दिश्य ददात्यन्नं सुखं याति महाध्वनि । दिवारात्रं तमुद्दिश्य स्थाने दीपप्रदो भवेत् ॥५॥
अन्धकारे महाघोरे स्वपूर्त्ते लक्षवर्जिते । दीप्तेऽध्वनि च ते यान्ति दीपो दत्तश्च यैर्नरैः ॥६॥
कार्त्तिके च चतुर्दश्यां दीपदानं सुखाय वै । अथ वक्ष्यामि संक्षेपाद्यममार्गस्य निष्कृतिम् ॥७॥
वृषोत्सर्गस्य पुण्येन पितृलोकं स गच्छति । एकादशाहपिण्डेन शुद्धदेहो भवेत्ततः ॥८॥
उदकुम्भप्रदानेन किङ्करास्तृप्तिमाप्नुयुः । शय्यादानैर्विमानस्थो याति मार्गे खगेश्वर ॥९॥
तद्दिने दीयते सर्वं द्वादशाहे विशेषतः । त्रयोदश वरिष्ठानि वस्तुवन्ति पदानि वै ॥१०॥
यो ददाति मृतस्येह जीवन्नेवात्महेतवे । तथाश्रितो महामार्गे वैनतेय स गच्छति ॥११॥
एक एवास्ति सर्वत्र व्यवहारः खगेश्वर । उत्तमाधममध्यानां तत्तदा वर्जनं भवेत् ॥१२॥
यावद्भाग्यं भवेद्यस्य तावन्मार्गः प्रकीर्त्यते । स्वयं स्वस्थेन यद्दत्तं तत्राधिक्यं करोति तत् ॥
मृते यद्बान्धवैर्दत्तं तदाश्रित्य सुखी भवेत् । इत्युक्तो वासुदेवेन गरुडस्तमथाब्रवीत् ॥१४॥

गरुड उवाच

कस्मात् पदानि यानि देकिंविधानि त्रयोदश । दीयन्ते देवदेवेश तद्वदस्व यथातथम् ॥१५॥

श्रीकृष्ण उवाच

छत्रोपानहवस्त्राणि मुद्रिका च कमण्डलुः । आसनं भाजनञ्चैव पदं सप्तविधं स्मृतम् ॥१६॥
आतपस्तत्र यो रौद्रो दह्यन्ते येन मानवाः । छत्रदानेन सुच्छाया जायते प्रेततुष्टिदा ॥१७॥
असिपत्रवने घोरे शर्कराकण्टकैर्युते । अश्वारूढास्तु ते यान्ति ददति ये ह्युपानहौ ॥१८॥
आसनं भाजनञ्चैव यो ददाति द्विजातये । सुखेन भुञ्जमानस्तु पथि गच्छेच्छनैरपि ॥१९॥
बहुधर्मसमाकीर्णे मार्गे वै तोयवर्जिते । कमण्डलुप्रदानेन सुखी भवति निश्चितम् ॥२०॥
मृतोद्देशेन यो दद्यादुदपात्रं तु ताम्रजम् । प्रपादानसहस्रस्य यत् फलं सोऽश्नुते फलम् ॥२१॥
यमदूता महारौद्राः करालाः कृष्णपिङ्गलाः । न पीडयन्ति दाक्षिण्याद्वस्त्राभरणदानतः ॥२२॥

सायुधा बहुरूपास्तु नामार्गे दृष्टिगोचरे । प्रयान्ति यमदूताश्च मुद्रिकायाः प्रदानतः ॥२३॥
भाजनासनदानेन ह्यामान्नैर्भोजनेन च । आज्ययज्ञोपवीताभ्यां पदं सम्पूर्णतां व्रजेत् ॥२४॥
एवं मार्गे गम्यमानस्तृषार्त्तः श्रमपीडितः । घटान्नदानयोगेन बन्धुदत्तेन नित्यशः ॥
महिषीरथगोदानात्सुखी भवति निश्चितम् ॥२५॥

गरुड उवाच

मृतोद्देशेन यत् किञ्चिद्दीयते स्वगृहे विभो । स गच्छति महामार्गे तद्दत्तं केन गृह्यते ॥२६॥

श्रीकृष्ण उवाच

गृह्णाति वरुणो दानं मम हस्ते प्रयच्छति । अहञ्च भास्करे देवे भास्करात्सोऽश्नुते फलम् ॥२७॥
विकर्मणः प्रभावेण वंशच्छेदः खितविह । सर्वे ते नरकं यान्ति यावत्पापस्य संक्षयः ॥२८॥
कस्मिंश्चित्सुखरूपेण महिषासनसंस्थितः । नरकान्वीक्ष्य धर्मात्मा नानाक्रन्दसमाकुलान् ॥२९॥
चतुरशीतिलक्षाणां नरकाणां स ईश्वरः । तेषां मध्ये श्रेष्ठतमन्धौरेयाँस्त्वेकविंशतिम् ॥३०॥
तामिस्रं लोहशङ्कुञ्च महारौरवशाल्मलीम् । रौरवं कुण्डलम्पूतिमृर्त्तिकं कालसूत्रकम् ॥३१॥
सन्ततं लोहतोदञ्च सविषं सप्रतापनम् । महानरककोकोलं सञ्जीवञ्च महापथम् ॥३२॥
अवीचिमन्धतामिस्रं कुम्भीपाकं तथैव च । असिपत्रवनञ्चैव पतनञ्चैकविंशकम् ॥३३॥
येषां तु नरके घोरे गतान्यब्दशतानि वै । सन्ततिर्नैव विद्येत दूतत्वं ते प्रयान्ति हि ॥३४॥
यमेन प्रेषितास्ते वै मानुषस्य मृतस्य च । दिने दिने प्रगृह्णन्ति दीपमन्नं घटादिकम् ॥३५॥
प्रेतस्यैव प्रयच्छन्ति ह्यन्नकामस्य सत्तषः । मासान्ते भोजनं पिण्डमेकमिच्छन्ति तत्र वै ॥३६॥
तृप्तिं प्रयान्ति ते सर्वे प्रत्यहञ्चैव वत्सरम् । एवमादिकृतैः पुण्यैः क्रमतो वत्सरं व्रजेत् ॥३७॥
ततः संवत्सरस्यान्ते प्रत्यासन्ने यमालये । बहुभीतिपुरे रम्ये हस्तमात्रं समुत्सृजेत् ॥३८॥
दशभिर्दिवसैर्जातं तं देहं दशपिण्डजम् । जामदग्न्येर्यथा रामं दृष्ट्वा तेजः प्रसर्पति ॥३९॥
कर्मजं देहमाश्रित्य पूर्वदेहं समुत्सृजेत् । अङ्गुष्ठमात्रः पुरुषः शमीपत्रं समारुहेत् ॥४०॥
व्रजंस्तिष्ठन् पदैकेन यथैवैकेन गच्छति । यथा तृणजलौकेयं देही कर्मानुगोऽवशः ॥४१॥

वासांसि जीर्णानि यथा विहाय नवानि गृह्णाति नरोऽपराणि ।
तथा शरीराणि विहाय जीर्णान्यन्यानि गृह्णाति नवानि देही ॥४२॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे प्रेतकल्पे पिण्डदेहनाम अष्टमोऽध्यायः ॥ ८ ॥

२४

नवमोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

वायुभूतः क्षुधाविष्टः कर्मजं देहमाश्रयेत् । तं देहं स समासाद्य यमेन सोऽपि गच्छति ॥ १ ॥
चित्रगुप्तपुरं तत्र योजनानां तु विंशतिः । कायस्थास्तत्र पश्यन्ति पापपुण्ये च सर्वशः ॥ २ ॥
महादानेषु दत्तेषु गतस्तत्र सुखी भवेत् । योजनानाञ्चतुर्विंशत्पुरं वैवस्वतं शुभम् ॥ ३ ॥
लोहं लवणकार्पासं तिलपात्रञ्च यैः कृतम् । तेन दत्तेन तृप्यन्ति यमस्य पुरवासिनः ॥ ४ ॥
तत्र गत्वा तु ते सर्वे प्रतिहारं वदन्ति हि । धर्मध्वजप्रतीहारस्तत्र तिष्ठति सर्वदा ॥ ५ ॥
सप्तधान्यस्य दानेन प्रीतो धर्मध्वजो भवेत् । तत्र गत्वा प्रतीहारो ब्रूते तस्य शुभाशुभम् ॥ ६ ॥
धर्मराजस्य यद्रूपं पश्यन्तः सुकृतिनो जनाः । पश्यन्ति च दुरात्मनो यमरूपं दुरासदम् ॥ ७ ॥
तं दृष्ट्वा भयभीतस्तु हाहेति वदते जनः । कृतं दानं तु यैर्मर्त्यैर्न भयं विद्यते क्वचित् ॥ ८ ॥
प्राप्तं सुकृतिनं दृष्ट्वा स्थानाच्चलति सूर्य्यजः । एष मे मण्डलं भित्त्वा ब्रह्मलोकं हि गच्छति ९ ॥
दानेन सुलभो धर्मो यममार्गे सुखावहः । एष मार्गो विशालोऽत्र न केनाप्यनुगम्यते ॥१०॥
दानपुण्यं विना सम्यङ् न गच्छेद्धर्ममन्दिरम् । अस्मिन्मार्गे तु रौद्रे च भीषणा यमकिङ्कराः ॥
पाशदण्डधरा घोराः सहस्राणि च षोडश । एकैकस्य पुरस्याग्रे सहस्रैकञ्च तिष्ठति ॥१२॥
पापिनं प्राप्य पाच्यन्ते उदके यातनाकराः । गृह्णन्ति मासमासान्ते पादशेषं तु यद्भवेत् ॥१३॥
और्ध्वदैहिकदानानि यैर्न दत्तानि काश्यप । महाकष्टेन ते यान्ति यस्माद्देयानि शक्तितः ॥१४॥
अदत्त्वा पशुवद्याति गृहीतो वधबन्धनैः । एवं कृते च संपश्येत न नरः कृतकर्मणः ॥१५॥
दैविकीं पैतृकीं योनिं मानुषीं वाथ नारकीम् । धर्मराजस्य वचनान्मुक्तिर्भवति वा ततः ॥१६॥
मानुष्यञ्च ततः प्राप्य सुपुत्रे पुत्रतां व्रजेत् । यथा यथा कृतं कर्म तां तां योनिं व्रजेन्नरः ॥१७॥
तत्तथैव हि भुञ्जानो विचरेत्सर्वलोकतः । अशाश्वतं परिज्ञाय सर्वं लोकान्तरं सुखम् ॥१८॥
यदा भवति मानुष्यं तदा धर्मं समाचरेत् । कृमयो भस्म विष्ठा वा देहानां प्रकृतिः सदा॥१९॥
अन्धकूपे महारौद्रे दीपहस्तः पतत्यपि । यदा पुण्यप्रभावेण मानुष्यं जन्म लभ्यते ॥२०॥
यस्तं प्राप्य चरेद्धर्मं स गच्छेत्परमां गतिम् । अपि जानन्वृथा धर्मं दुःखमायाति याति च २१॥

जातीशतेन लभते किल मानुषत्वं तत्रापि दुर्लभतरं खग भो द्विजत्वम् ।
यस्तन्न पालयति लालयतीन्द्रियाणि तस्यामृतं क्षरति हस्तगतं प्रमादात् ॥२२॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे प्रेतकल्पे यमलोकगमनं नाम नवमोऽध्यायः ॥ ९ ॥

दशमोऽध्यायः

गरुड़ उवाच

ये केचित्प्रेतरूपेण तत्र वासं लभन्ति ते । प्रेतलोकाद्विनिर्मुक्ताः कथं भुञ्जन्ति किल्बिषम् ॥१॥
चतुरशीतिलक्षैश्च नरकैः पर्य्युपासिताः । यमेन रक्षिताश्चैव दूतैश्चैव सहस्रधा ॥ २ ॥
विचरन्ति कथं लोके नरकाच्च विनिःसृताः । रक्षिता रक्षपालैश्च विचरन्ति दिवानिशम् ॥
पक्षीन्द्रेण त्विदं पृष्टो लक्ष्मीनाथोऽब्रवीदिदम् ॥ ३ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

पक्षिराज शृणुष्व त्वं यथा प्रेताश्चरन्ति वै । परस्वहरणार्था ये पत्न्यन्वेषणतत्पराः ॥ ४ ॥
तथैव सर्वपाविष्ठा आत्मजान्वेषणे रताः । विचरन्त्यशरीरास्ते क्षुत्पिपासार्दिता भृशम् ॥ ५ ॥
वन्दीगृहविनिर्मुक्ता यथा नश्यन्ति जन्तवः । तथा नश्यन्ति ते प्रेता वधं कृत्वा सहोदरे ॥ ६ ॥
पितृद्वाराणि रुन्धन्ति तन्मार्गच्छेदकास्तथा । पितृभागांश्च गृह्णन्ति पथिकांस्तस्करा इव ॥ ७ ॥
स्ववेश्म पुनरागत्य मूत्रोत्सर्गं विशन्ति ते । तत्र स्थिता निरीक्षन्ते रोगशोकादिना जनम् ८ ॥
ज्वररूपेण पीड्यन्ते ह्येकान्तरामिषेण तु । चिन्तयन्ति सदा तेषामुच्छिष्टादिस्थलस्थिताः ९ ॥
आत्मजानां छलं लोके भूतजातैश्च रक्षिताः । पिबन्ति तत्र पानीयं भोजनोच्छिष्टयोजितम् ॥
सदा पापरताः पापा एवं पीड़ां प्रकुर्वते ॥१०॥

गरुड़ उवाच

कथं कुर्वन्ति ते प्रेताः केन रूपेण कस्य किम् । ज्ञायन्ते केन विधिना जल्पंन्ति न वदन्ति वा॥
एवं छिन्धि मनोमोहं मम चेदिच्छसि प्रियम् । कलिकाले हृषीकेश प्रेतत्वं जायते बहु ॥१२॥

श्रीकृष्ण उवाच

स्वकुलं पीड़येत्प्रेतः परं छिद्रेण पीड़येत् । जीवंश्च कुरुते स्नेहं मृतो दुष्टत्वमाप्नुयात् ॥१३॥
रुद्रजापी धर्मरतो देवतातिथिपूजकः । सत्यवान्प्रियवादी च न स प्रेतैश्च पीड्यते ॥१४॥
गायत्रीजाप्यनिरतो वैश्वदेवरतो गृही । श्राद्धकृत्तीर्थसेवी च न स प्रेतैश्च पीड्यते ॥१५॥
सर्वक्रियापरिभ्रष्टो नास्तिको देवनिन्दकः । असत्यवादनिरतो नरः प्रेतैः प्रपीड्यते ॥१६॥
कलौ प्रेतत्वमाप्नोति तार्क्ष्याशुद्धक्रियापरः । कृतादौ द्वापरं यावन्न प्रेतो नैव पीड़नम् ॥१७॥
बहूनामेकजातीनामेकः सौख्यं समश्नुते । एको दुष्कृतकर्मा च ह्येकः सन्ततिवर्जितः ॥१८॥
एकः संपीड्यते प्रेतैरेकः पुत्रसमन्वितः । एकस्य पुत्रनाशः स्यात्पुत्रो न लभते सदा ॥१६॥
विरोधो बन्धुभिः सार्द्धं प्रेतदोषोऽस्ति तत्र वै । सन्ततिर्नैव दृश्येत समुत्पन्नो विनश्यति ॥

पशुद्रव्यविनाशश्च सा पीड़ा प्रेतसम्भवा ॥२०॥
प्रकृतिश्च विवर्त्तेत विद्वेषः सह बन्धुभिः । अकस्माद्व्यसनप्राप्तिः सा पीड़ा प्रेतसम्भवा ॥२१॥
नास्तिक्यं व्रतलोपश्च महालोभस्तथैव च । दम्भश्च कलहो नित्यं सा पीडा प्रेतसम्भवा ॥२२॥
मातापित्रोश्च हन्ता च देवब्राह्मणदूषकः । हत्यादोषमवाप्नोति सा पीडा प्रेतसम्भवा ॥२३॥
नित्यकर्मविमुक्तश्च जपहोमविवर्जितः । परद्रव्यापहर्त्ता च सा पीड़ा प्रेतसम्भवा ॥२४॥
तीर्थं गत्वा परासक्तः स्वकृत्यञ्च परित्यजेत् । धर्मकार्य्ये न सम्पत्तिः सा पीडा प्रेतसम्भवा २५॥
सुभिक्षे कृषिनाशः स्याद्व्यवहारो विनश्यति । लोके कलहकारी च सा पीड़ा प्रेतसम्भवा ॥२६॥
मार्गे तु गच्छतश्चैव पीड़येद्वाथ मण्डली । यत्र संपीड्यते प्रेतैरिति सत्यं वचो मम ॥२७॥
हीनजातिषु सम्बन्धो हीनकर्म करोति च । अधर्मे रमते नित्यं सा पीड़ा प्रेतसम्भवा ॥२८॥
व्यसनैर्द्रव्यनाशः स्यादुपक्रान्तञ्च नश्यति । चौराग्निराजभिर्हानिः सा पीड़ा प्रेतसम्भवा २६॥
महारोगोपपत्तिश्च स्वतनोः पीड़नं तु यत् । जाया संपीड्यते यत्र सा पीड़ा प्रेतसम्भवा ॥३०॥
श्रुतिस्मृतिपुराणेषु धर्मकार्य्येषु चैव हि । अभावो जायते येषां सा पीड़ा प्रेतसम्भवा ॥३१॥
देवतीर्थद्विजातीनां भावशुद्धया न मन्यते । प्रत्यक्षं वा परोक्षं वा दूषयेत्प्रेतभावतः ॥३२॥
स्त्रीणां गर्भविनाशः स्यान्न पुष्पं दृश्यते तथा । बालानां मरणं यत्र सा पीड़ा प्रेतसम्भवा ॥
पुष्पं प्रदृश्यते यत्र फलं नैव प्रदृश्यते । विरोधो भार्य्यया सार्द्धं सा पीड़ा प्रेतसम्भवा ॥३४॥
भावशुद्धया न कुरुते श्राद्धं सांवत्सरादिकम् । स्वयमेव न कुर्वीत सा पीड़ा प्रेतसम्भवा ॥३५॥
कलहो घातकाश्चैव पुत्राः शत्रुमिवात्मजाः । न प्रीतिर्न च सौख्यञ्च सा पीड़ा प्रेतसम्भवा ॥
गृहे दन्तकलिश्चैव भोजने कोपसंयुतः । परद्रोहमतिश्चैव सा पीड़ा प्रेतसम्भवा ॥३७॥
पित्रोर्वाक्यं न कुरुते स्वपत्नीं न च सेवते । परदारापकर्षी च सा पीड़ा प्रेतसम्भवा ॥३८॥
विकर्मणा भवेत्प्रेतो विधिहीनक्रियस्तथा । तत्काले दुष्टसंसर्गाद्वृषोत्सर्गादृते तथा ॥३९॥
दुष्टमृत्युवशाद्वापि ह्यदग्धवपुषस्तथा । प्रेतत्वं जायते तार्क्ष्य पीड्यन्ते येन जन्तवः ॥४०॥
दाहक्रियादिलोपश्च खट्वादिमृतिदोषतः । प्रेतत्वं सुस्थिरं तस्य वाक्चेष्टादिविवर्जितम् ॥४१॥
एवं ज्ञात्वा खगश्रेष्ठ प्रेतमुक्तिं समाचरेत् । यो वै न मन्यते प्रेतान्मृतः प्रेतत्वमाप्नुयात् ॥४२॥
प्रेतदोषः कुले यस्य सुखं तत्र न विद्यते । मतिः प्रीती रतिर्बुद्धिर्लक्ष्मीः पञ्चविनाशनम् ॥४३॥
तृतीये पञ्चमे पुंसि वंशच्छेदोऽभिजायते । दरिद्रो निर्धनश्चैव पापकर्मा भवे भवे ॥४४॥

ये केचित्प्रेतरूपा विकृतमुखदृशो रौद्रदंष्ट्राः कराला
मन्यन्ते नैव गोत्रं सुतदुहितृपितॄन्भ्रातृजायाश्च बन्धून् ।

कृत्वा काम्यञ्च रूपं सुखगतिरहिता भाषमाणा यथेष्टं
हा कष्टं भोक्तुकामा विधिवशपतिताः संस्मरन्ति स्वपापम् ॥४५॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे प्रेतकल्पे प्रेतपीड़ावर्णनं नाम दशमोऽध्यायः ॥१०॥

एकादशोऽध्यायः

गरुड़ उवाच

मुक्तिं यान्ति कथं प्रेतास्तदहं प्रष्टुमुत्सुकः । यन्मुक्तौ च मनुष्याणां न पीड़ा जायते तु सा ॥
एतैश्च लक्षणैर्देव पीड़ा प्रेतसमुद्भवा । तेषां कदा भवेन्मुक्तिः प्रेतत्वं न कथं भवेत् ॥ २ ॥
प्रेतत्वे हि प्रमाणञ्च कतिवर्षाणि सङ्ख्यया । चिरं प्रेतत्वमाप्नोति कथं मुक्तिमवाप्नुयात् ॥ ३ ॥

श्रीभगवानुवाच

मुक्तिं प्रयान्ति ते प्रेतास्तदहं कथयामि ते । यद्यत्कुर्वन्ति ते प्रेताः पिशाचत्वे व्यवस्थिताः ॥४॥
तेषां स्वरूपं वक्ष्यामि चिह्नं स्वप्नं यथातथम् । क्षुत्पिपासार्दितास्ते वै प्रविशेयुः स्ववेश्मनि॥५॥
प्रविश्य वायुदेहेन शयानान्स्वस्ववंशजान् । तत्र लिङ्गानि यच्छन्ति निर्दिशन्ति खगेश्वर ॥६॥
स्वपुत्रस्वकलत्राणि स्वबन्धूँस्ते प्रयान्ति वै । गजो हयो वृषो भूत्वा दृश्यन्ते विकृताननाः ॥
शयन विपरीतं वा आत्मानञ्च विपर्य्ययम् । उत्थितः पश्यति तु यः स प्रेतैः पीड्यते भृशम् ॥
निगडैर्बध्यते यस्तु बध्यते बहुधा यदि । अन्नञ्च याच्यते स्वप्ने कुरुते पापमात्मना ॥ ९ ॥
भुञ्जमानस्तु यः स्वप्ने गृहीत्वाऽन्नं पलायते । आत्मनस्तु परस्यापि तृषार्त्तस्तु जल पिबेत् ॥१०॥
वृषभारोहणं स्वप्ने वृषभैः सह गच्छति । उत्पत्य गगनं याति तीर्थे याति क्षुधातुरः ॥११॥
स्वकलत्रं स्वबन्धूंश्च स्वसुतं स्वपतिं विभुम् । विद्यमानं मृतं पश्येत्प्रेतदोषेण निश्चितम् ॥१२॥
यस्त्वपो याच्यते स्वप्ने क्षुत्तृषाभ्यां परिप्लुतः । तीर्थे गत्वा ददेत्पिण्डान्प्रेतदोषैर्न संशयः ॥१३॥
निर्गच्छतो गृहाद्रात्रौ स्वप्ने पुत्रांस्तथा पशून् । पितृभ्रातृकलत्राणि प्रेतदोषैः स पश्यति ॥१४॥
चिह्नान्येतानि पक्षीन्द्र गणकाय निवेदयेत् । कृत्वा स्नानं गृहे तीर्थे श्रीवृक्षे तर्पणञ्चरेत् ॥१५॥
कृष्णधान्यानि सम्पूज्य प्रदद्याद्वेदपारगे । सर्वविघ्नानि सन्त्यज्य मुक्त्युपायं करोति यः ॥१६॥
तस्य कर्मफलं साधु प्रेततृप्तिश्च शाश्वती । शृणु सत्यमिदं तार्क्ष्य यो ददाति स तृप्यति ॥१७॥
आत्मैव श्रेयसा युज्येत्प्रेतस्तृप्तिं व्रजेच्चिरम् । ते तृप्ताः शुभमिच्छन्ति स्वात्मबन्धुषु सर्वदा १८॥
अन्ये पापा दुरात्मानः क्लेशयन्ति स्ववंशजान् । निवारयन्ति तृप्तास्ते जायमानानुपद्रवान् १९॥

पश्चात्ते मुक्तिमायान्ति काले प्राप्ते तु पुत्रतः । सदा बन्धुषु यच्छन्ति ऋद्धिं वृद्धिं खगाधिप ॥२०॥
दर्शनाद्भाषणाद्यस्तु चेष्टनात्पीड़नाद्गतिम् । न प्रापयति मूढ़ात्मा प्रेतशापैः स लिप्यते ॥२१॥
अपुत्रकोऽपशुश्चैव दरिद्रो व्याधितस्तथा । वृत्तिहीनश्च दीनश्च भवेज्जन्मनि जन्मनि ॥२२॥
सर्वं कुर्वन्ति ते प्रेताः पुनर्याम्यं समाश्रिताः । तस्मात्स्थानाद्भवेन्मुक्तिः स्वकाले कर्मसंक्षये ॥२३॥

गरुड़ उवाच

नामगोत्रं न दृश्येत प्रतीतिर्नैव जायते । केचिद्वदन्ति दैवज्ञाः पीड़ां प्रेतसमुद्भवाम् ॥२४॥
न स्वप्नं चेष्टितं नैव दर्शनं न कदाचन । किं कर्त्तव्यं सुरश्रेष्ठ तत्र मे ब्रूहि निश्चितम् ॥२५॥

श्रीकृष्ण उवाच

सत्यमेवानृतं नैव वदन्ति क्षितिदेवताः । तदा सञ्चिन्त्य हृदये सत्यमेतद्द्विजेरितम् ॥२६॥
भावभक्तिं पुरस्कृत्य पितृभक्तिपरायणः । कृत्वा विष्णुबलिं तत्र पुरश्चरणपूर्वकम् ॥२७॥
जपैर्होमैस्तथा दानैः प्रकुर्य्याद्देहशोधनम् । कृतेन तेन विघ्नानि विनश्यन्ति खगेश्वर ॥२८॥
भूतप्रेतपिशाचैर्वा स तदान्यैर्न पीड्यते । पितॄनुद्दिश्य यः कुर्य्यान्नारायणबलिं शुभम् ॥२९॥
विमुक्तः सर्वपीड़ाभ्य इति सत्यं वचो मम । पितृपीड़ा भवेद्यत्र कृत्यैरन्यैर्न मुच्यते ॥३०॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन पितृभक्तिपरो भवेत् । नवमे दशमे वर्षे पित्रुद्देशेन यः पुमान् ॥३१॥
गायत्र्या ह्ययुतं जप्त्वा दशांशेनैव होमयेत् । कृत्वा विष्णुबलिं पूर्वं वृषोत्सर्गादिकाः क्रियाः ॥३२॥
सर्वोपद्रवहीनस्तु सर्वसौख्यमवाप्नुयात् । उत्तमं लोकमाप्नोति ज्ञातिप्राधान्यमेव च ॥३३॥
पितृमातृसमो लोके नास्त्यन्यद्दैवतं परम् । प्रभुः शरीरप्रभवः प्रत्यक्षदैवतं पिता ॥३४॥
हितानामुपदेष्टा च प्रत्यक्षो गुरुदेवता । अन्या या देवता लोके शरीरप्रभवा मताः ॥३५॥
शरीरमेव जन्तूनां नरकस्वर्गमोक्षदम् । शरीरं सम्पदो दाराः सुता लोकाः सनातनाः ॥३६॥
यस्य प्रसादात्प्राप्यन्ते कोऽन्यः पूज्यतमस्ततः । एवं सञ्चिन्त्य हृदये पितॄणां यः प्रयच्छति ॥
तत्सर्वमात्मना भुङ्क्ते दानं वेदविदो विदुः ॥३७॥
पुन्नाम्नो नरकाद्यस्मात्पितरं त्रायते तु यः । तस्मात्पुत्र इति प्रोक्तः स्वयमेकस्त्वहं ब्रुवे ॥३८॥
अपमृत्युमृतौ स्यातां पिता माता च कस्यचित् । धर्मं तीर्थं विवाहादि श्राद्धं सांवत्सरं त्यजेत् ॥३९॥
स्वप्नाध्यायमिमं यस्तु प्रेतलिङ्गेन दर्शितम् । यः पठेच्छृणुयाद्वापि प्रेतचिह्नं न पश्यति ॥४०॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे प्रेतकल्पे स्वप्नाध्यायो नाम एकादशोऽध्यायः ॥११॥

द्वादशोऽध्यायः

गरुड उवाच

सम्भवन्ति कथं प्रेताः केन मृत्युवशङ्गता । कीदृक्तेषां भवेद्रूपं भोजनं किं भवेद्विभो ॥ १ ॥
सुप्रीतास्ते कथं प्रेताः क्व तिष्ठन्ति सुरेश्वर । प्रसन्नः कृपया देव प्रश्नमेनं वदस्व मे ॥ २ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

ये केचित्पापकर्माणः पूर्वकर्मवशानुगाः । जायन्ते ते मृताः प्रेताः शृणुष्व त्वं वदाम्यहम् ॥ ३ ॥
वापीकूपतडागानि ह्यारामञ्च सुरालयम् । प्रपां सद्मः सुवृक्षांश्च तथा भोजनशालिकाः ॥ ४ ॥
पितृपैतामहं धर्मं विक्रीणाति स पापकृत् । मृतः प्रेतत्वमाप्नोति यावदाभूतसंप्लवम् ॥ ५ ॥
गोचरं ग्रामसीमाश्च तडागारामगह्वरम् । कर्षयन्ति च ये लोभात्प्रेतास्ते सम्भवन्ति हि ॥ ६ ॥
चाण्डालादुदकात्सर्पाद्ब्राह्मणाद्वैद्युतात्तथा । दंष्ट्रिभ्यश्च पशुभ्यश्च मरणं पापकर्मणाम् ॥ ७ ॥
उद्बन्धनमृता ये च विषशस्त्रहताश्च ये । आत्मोपघातिनो ये च विसूच्यग्निहताश्च ये ॥ ८ ॥
महारोगैर्मृता ये च पापरोगैश्च दस्युभिः । असंस्कृतप्रमृताश्च विहिताचारवर्जिताः ॥ ९ ॥
वृषोत्सर्गादिसंस्कारैर्ह्लसैः पिण्डैश्च मासिकैः । यस्यानयति शूद्रोऽग्निं तृणं काष्ठं हवींषि च ॥१०॥
पतनं पर्वतादिभ्यो भित्तिपातेन ये मृताः । रजस्वलादिदोषैस्तु न भूमौ म्रियते यदि ॥११॥
अन्तरिक्षे मृता ये च विष्णुस्मरणवर्जिताः । सूतकादिषु सम्पर्का दुष्टशल्यमृतास्तथा ॥१२॥
एवमादिभिरन्यैश्च कुमृत्युवशगास्तु ये । ते सर्वे प्रेतयोनिस्था विचरन्ति महीस्थलीम् ॥१३॥
अत्रैवोदाहरन्तीममितिहासं पुरातनम् । युधिष्ठिरस्य संवादं भीष्मेण सह सुव्रत ॥
तदहं कथयिष्यामि यच्छ्रुत्वा सौख्यमाप्नुयात् ॥१४॥

युधिष्ठिर उवाच

केन कर्मविपाकेन प्रेतत्वमुपजायते । केनोपायेन मुच्यन्ते तन्मे ब्रूहि पितामह ॥१५॥

भीष्म उवाच

अहं ते कथयिष्यामि सर्वमेतदशेषतः । यच्छ्रुत्वा न पुनर्मोहमेवं यास्यसि सुव्रत ॥१६॥
येन यो जायते प्रेतो येन चैव विमुच्यते । प्राप्नोति नरकं घोरं दुस्तरं दैवतैरपि ॥१७॥
सततं श्रवणाद्विष्णोः पुण्यतीर्थानुकीर्त्तनात् । प्रेतभावा विमुच्यन्ते आपत्सु प्रेतयोनिषु ॥१८॥
श्रूयते हि पुरा वत्स ब्राह्मणः संशितव्रतः । नाम्ना सन्तप्तकः ख्यातस्तपोऽर्थे वनमाश्रितः १९॥
स्वाध्याययुक्तो होमे च योगयुक्तो दयान्वितः । स यजेत्सकलान्यज्ञान्युक्त्या कालं क्षिपेन्निजम् ॥

ब्रह्मचर्य्ये सदा युक्तो युक्तस्तपसि मार्दवे । परलोकभये युक्तः सत्ये शौचे तु नित्यशः ॥२१॥
युक्तो हि गुरुवाक्ये च युक्तस्त्वतिथिपूजने । आत्मयोगेषु यो युक्तः सर्वद्वन्द्वविवर्जितः ॥२२॥
योगाभ्यासे सदा युक्तः संसारविजिगीषया । एवंवृत्तसमाचारो मोक्षाकाङ्क्षी जितेन्द्रियः ॥
बहून्यब्दानि विजने वने तस्य गतानि वै । तस्य बुद्धिस्ततो जाता तीर्थानुगमनं प्रति ॥२४॥
पुण्यैस्तीर्थजलैरेव शोषयिष्ये कलेवरम् । स तीर्थे त्वरितं स्नात्वा तपस्वी भास्करोदये ॥२५॥
कृतजाप्यनमस्कारो ध्यानञ्चक्रे जगद्गुरोः । एकस्मिन्दिवसे विप्रो मार्गभ्रष्टो महातपाः ॥२६॥
ददर्श त्वरितो गच्छन्पञ्च प्रेतान्सुदारुणान् । अरण्ये निर्जने देशे कण्टके वृक्षवर्जिते ॥२७॥
पञ्चैतान्विकृताकारान्दृष्ट्वा वै घोरदर्शनान् । दृष्ट्वा सन्त्रस्तहृदयस्तिष्ठन्मीलितलोचनः ॥२८॥
अवलम्ब्य ततो धैर्य्यं त्रासमुत्सृज्य दूरतः । पप्रच्छ मधुराभाषो के यूयं विकृता भृशम् ॥२९॥
किञ्चाशुभं कृतं कर्म येन प्राप्ताः स्म वैकृतम् । कथं वा एककर्माणः प्रस्थिताः कुत्र निश्चितम् ॥

प्रेता ऊचुः

स्वैः स्वैः कर्मभिरुत्पन्नं प्रेतत्वं नो द्विजोत्तम । परद्रोहरताः सर्वे पापमृत्युवशङ्गताः ॥३१ ।
क्षुत्पिपासार्दिता नित्यं प्रेतत्वं समुपागताः । हतवाक्या वयं सर्वे नष्टसंज्ञा विचेतसः ॥३२॥
न जानीमो दिशं तात विदिशञ्चातिदुःखिताः ।
गच्छामः कुत्र वै मूढाः पिशाचाः कर्मजा वयम् ॥३३॥
न माता न पितास्माकं प्रेतत्वं कर्मभिः स्वकैः । प्राप्ताः स्म सहसा तद्वै दुःखोद्वेगसमाकुलाः ॥
दर्शनेन च ते ब्रह्मन्ह्लादिताप्यायिता वयम् । मुहूर्त्तं तिष्ठ वक्ष्यामि वृत्तान्तं सर्वमादितः ॥३५॥
मम पर्य्युषितं नाम एष सूचीमुखः स्मृतः । शीघ्रगो रोहकश्चैव पञ्चमो लेखकस्तथा ॥
एवं नाम्ना च सर्वे वै सम्प्राप्ताः प्रेतता वयम् ॥३६॥

ब्राह्मण उवाच

प्रेतानां कर्मजातानां कथं वै नामसम्भवः । किञ्चित्कारणमुद्दिष्टं येन ब्रूत स्वनामकान् ॥३७॥

प्रेतराज उवाच

मया स्वादु सदा भुक्तं दत्तं पर्य्युषितं द्विजे । तेन पर्य्युषितं नाम जातं मे ब्राह्मणोत्तम ॥३८॥
सूचिता बहवोऽनेन विप्रा अन्नादिकाङ्क्षया । एतत्कारणमुद्दिश्य ह्येष सूचीमुखः स्मृतः ॥३९॥
शीघ्रं गच्छति विप्रेण याचितः क्षुधितेन वै । एतत्कारणमुद्दिश्य शीघ्रगोऽयं द्विजोत्तम ॥४०॥
एकाकी मिष्टमश्नाति दैवं पैत्र्यञ्च नित्यशः । ब्राह्मणानामभावेन रोहकस्तेन चोच्यते ॥४१॥
पुरायं मौनमास्थाय याचितो विलिखन्महीम् । तेन कर्मविपाकेन लेखको नाम नामतः ॥४२॥

प्रेतत्वं कर्मभावेन प्राप्य नामानि च द्विज । मेषाननो लेखकोऽयं रोहकः पर्वताननः ॥४३॥
शीघ्रगः पशुवक्त्रश्च सूचकः सूचिवक्त्रवान् । पर्युषितो बलग्रीवः पश्य रूपविपर्य्ययम् ॥४४॥
धृत्वा मायामयं रूपं विद्रुता नरकार्णवात् । सर्वे च विकृताकारा लम्बोष्ठा विकृताननाः ४५॥
बृहच्छरीरदशना वक्रास्याः स्वेन कर्मणा । एतत्ते सर्वमाख्यातं प्रेतत्वे कारणं मया ॥४६॥
ज्ञानिनो हि वयं सर्वे सञ्जाता दर्शनात्तव । यदि ते श्रवणे श्रद्धा पृच्छास्मान्यद्यदिच्छसि ४७॥

ब्राह्मण उवाच

ये जीवा भुवि जीवन्ति सर्वेऽप्याहारमूलकाः । युष्माकमपि चाहारं श्रोतुमिच्छामि तत्त्वतः ॥

प्रेता ऊचुः

यदि ते श्रवणे श्रद्धा आहारं श्रोतुमिच्छसि । अस्माकं तु महाभाग शृणुष्व सुसमाहितः ॥४६॥

ब्राह्मण उवाच

कथय प्रेतराज त्वमाहारञ्च पृथक् पृथक् । इत्युक्ता ब्राह्मणेनेदमूचुः प्रेताः पृथक् पृथक् ॥५०॥

प्रेता ऊचुः

शृणुष्वाहारमस्माकं सर्वसत्त्वविगर्हितम् । यच्छ्रुत्वा गर्हसे ब्रह्मन् भूयो भूयोऽपि कुत्सितम् ५१॥
श्लेष्ममूत्रपुरीषैश्च रेचकैः समलैः सह । उच्छिष्टैश्चैव पक्वान्नैः प्रेतानां भोजनं भवेत् ॥५२॥
गृहाणि त्यक्तशौचानि प्रकीर्णोपस्कराणि च । मलिनान्यपि भूतानि प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै ॥५३॥
नास्ति शौचं गृहे यस्य न सत्यं न च संयमः । पतितैर्दस्युभिर्भुङ्क्ते प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै ॥५४॥
बलिमन्त्रविहीनानि होमहीनानि यानि च । स्वाध्यायव्रतहीनानि प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै ॥५५॥
न लज्जा न च मर्य्यादा यत्र वै कुत्सितो गृही । सुराश्चैव न पूज्यन्ते प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै॥५६॥
यत्र लोभो ह्यतिक्रोधो निद्रा शोको भयं मदः । आलस्यं कलहो माया प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै ५७॥
भर्त्तृहीना च या नारी परवीर्य्यं निषेवते । वीर्य्यमूत्रसमायुक्तं प्रेता भुञ्जन्ति तत्र वै ॥५८॥
लज्जा मे जायते तात वदतो भोजनं स्वकम् । यत्स्त्रीरजो योनिगतं तल्लिहामो द्विजोत्तम ॥
निर्विण्णाः प्रेतभावेन पृच्छामि त्वां दृढव्रतम् । यथा च न भवेत्प्रेतस्तन्मे वद तपोधन ॥
नित्यं मृत्युर्वरं जन्तोः प्रेतत्वं मा भवेत्क्वचित् ॥६०॥

ब्राह्मण उवाच

उपवासरतो नित्यं कृच्छ्रचान्द्रायणे रतः । किमन्यैः सुकृतैः प्रेत न प्रेतो जायते नरः ॥६१॥
इष्ट्वा चैवाश्वमेधादीन् दानं दत्त्वा तु यो नरः । मठारामप्रपादीनां गोश्रयादेश्चैव कारकः ॥६२॥
कुमारीं ब्राह्मणांश्चैव विवाहयति शक्तितः । विद्यादोऽभयदश्चैव न प्रेतो जायते नरः ॥६३॥

पतितान्नेन भुक्तेन जठरस्थेन यो मृतः । पापमृत्युवशाद् यो वै स प्रेतो जायते नरः ॥६४॥
अयाज्ययाजकश्चैव याज्यानाञ्च विवर्जकः । कुत्सितैश्च रतो नित्यं स प्रेतो जायते नरः ॥६५॥
ब्रह्मस्वं देवद्रव्यञ्च गुरुद्रव्यं हरेत्तु यः । कन्यां ददाति शुल्केन स प्रेतो जायते नरः ॥६६॥
मातरं भगिनीं भार्या स्नुषां दुहितरं ततः । अदृष्टदोषात्त्यजति स प्रेतो जायते नरः ॥६७॥
न्यासापहर्ता मित्रध्रुक्परदाररतः सदा । विश्वासघाती कूटश्च स प्रेतो जायते नरः ॥६८॥
भ्रातृध्रुग्ब्रह्महा गोघ्नः सुरापो गुरुतल्पगः । कुलमार्गं परित्यज्य ह्यनृतेषु सदा रतः ॥
हर्त्ता हेम्नश्च भूमेश्च स प्रेतो जायते नरः ॥६९॥

श्रीभीष्म उवाच

एवं वदति विप्रे च आकाशे दुन्दुभिस्वनः । पपात पुष्पवृष्टिश्च देवैर्मुक्ता द्विजोपरि ॥७०॥
पश्च देवविमानानि प्रेतानामागतानि च । स्वर्गं गता विमानैस्ते पुण्यं सम्भाष्य तं मुनिम् ॥
तस्य विप्रस्य सम्भाषात्पुण्यसङ्कीर्त्तनेन च । प्रेताः पापविनिर्मुक्ताः परं पदमवाप्नुयुः ॥७२॥
इदमाख्यानकं श्रुत्वा कम्पितोऽश्वत्थपर्णवत् । मानुषाणां हितार्थाय पुनः पृच्छति पक्षिराट्॥७३॥
इति श्रीगारुडे महापुराणे प्रेतकल्पे प्रेतानां परमपदप्राप्तिर्नाम द्वादशोऽध्यायः ॥१२॥

त्रयोदशोऽध्यायः

गरुड़ उवाच

नाकाले म्रियते कश्चिदिति वेदानुशासनम् । कस्मान्मृत्युमवाप्नोति राजा वा श्रोत्रियोऽपि वा ॥
यदुक्तं ब्रह्मणा पूर्वमनृतं तत्प्रदृश्यते ॥ १ ॥
वेदैरुक्तं तु यद्वाक्यं शतञ्जीवति मानवः । तत्कलौ न च दृश्येत कस्मादेवं समादिश ॥२॥

श्रीभगवानुवाच

साधु साधु महाप्राज्ञ यत्त्वं भक्तोऽसि मे दृढः । श्रूयतां मम वाक्यन्तु नानापापविनाशनम् ॥३॥
विधातृविहितो मृत्युः शीघ्रमादाय गच्छति । तं प्रवक्ष्यामि पक्षीन्द्र काश्यपेय महाद्युते ॥४॥
मनुष्यः शतजीवी च पुरा वेदेन भाषितम् । विकर्मणः प्रभावेण शीघ्रञ्चापि विनश्यति ॥५॥
वेदानभ्यसते नैव कुलाचारं न सेवते । आलस्यात्कर्मणा त्यागं कुरुते पापमाचरन् ॥६॥
यत्र तत्र गृहेऽश्नाति परक्षेत्ररतो यदि । एतैरन्यैश्च बहुशो जायते ह्यायुषः क्षयः ॥७॥
अश्रद्दधानमशुचिमजपं त्यक्तमङ्गलम् । तं यति सुरासक्तं ब्राह्मणं यमशासनम् ॥८॥

अरक्षितारं राजानं नित्यं धर्मविवर्जितम्। क्रूरं व्यसनिनं मूर्खं वेदवादबहिष्कृतम् ॥९॥
प्रजापीड़कं सन्ततं राजानं यमशासनम्। प्रापयन्त्यपमृत्युं वै युद्धे चैव पराङ्मुखम् ॥१०॥
स्वकर्माणि परित्यज्य निषिद्धं वैश्य आचरेत्। परकर्मरतो नित्यं यमलोकं स गच्छति ॥११॥
शूद्रः करोति यत्किञ्चिद्द्विजसेवाविवर्जितम्। करोति कर्म यच्चान्यद्यमेनालोक्यते सदा ॥१२॥

स्नानं दानञ्जपो होमः स्वाध्यायो देवतार्चनम्।
यस्मिन्दिने न सेव्यन्ते वृथा स दिवसो नृणाम् ॥१३॥

अनित्यमध्रुवं देहमनाधारं रसोद्भवम्। अन्नपिण्डमये देहे गुणानेतान्वदाम्यहम् ॥१४॥
यत्प्रातः संस्कृतं सायं नूनमन्नं विनश्यति। तदीयरससंपुष्टे काये का नाम नित्यता ॥१५॥
गतं ज्ञात्वा तु पक्षीन्द्र स्वकर्मबन्धनं वपुः। पापनिर्दहनं पुंभिः कार्य्यं भवति नाशनम् ॥१६॥
अनेकजन्मसम्भूतं पातकं त्रिविधं कृतम्। यदा हि मानुषावाप्तिस्तदा सर्वं पतत्यपि ॥१७॥
मनुष्योदरवासी च यदा भवति पापभाक्। अण्डजादिषु भूतेषु यत्र तत्र प्रसर्पति ॥१८॥
मानुषे जन्मनि कृते तत्र तत्र समाप्नुयात्। अवेक्ष्य गर्भवासांश्च कर्मजा गतयस्तथा ॥१९॥
आधयो व्याधयः क्लेशा जरारूपविपर्य्ययः। गर्भवासे तु यज्ज्ञानं जातं मासात्तु सप्तमात् २०॥
तेन पश्यति सर्वं तु प्राक्कृतं यच्छुभाशुभम्। गर्भवासाद्विनिर्मुक्तो ह्यज्ञानतिमिरावृतः ॥२१॥
न पश्यति खगश्रेष्ठ बालभावं समाश्रितः। यौवने वनितान्धश्च यः पश्यति स मुक्तिभाक् २२॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे प्रेतकल्पे प्रेतोपाख्याने त्रयोदशोऽध्यायः ॥१३॥

चतुर्दशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

आधानान्मृत्युमाप्नोति बालो वा स्थविरो युवा। सधनो निर्धनश्चैव सुकुमारः कुरूपवान् ॥१॥
अविद्वांश्चैव विद्वांश्च ब्राह्मणस्त्वितरो जनः। तपोरतो योगशीलो महाज्ञानी च यो नरः ॥२॥
महादानरतः श्रीमान्धर्मात्माऽतुलविक्रमः। विना मनुष्यदेहं तु सुखञ्च न तु विन्दति ॥३॥
प्राक्तनैः कर्मपाकैस्तु सुखं प्राप्नोति मानवः। आधानात्पञ्चवर्षाणि स्वल्पपापैर्विपद्यते ॥४॥
पञ्चवर्षाधिको भूत्वा महापापैर्विपद्यते। योनिं-पूरयते यस्मान्मृतोऽप्यायाति याति च ॥५॥
व्रतदानप्रभावेण च्चिरञ्जीवति मानवः। कृष्णस्य वचनं श्रुत्वा गरुड़ो वाक्यमब्रवीत् ॥६॥

गरुड़ उवाच

मृते बाल्ये कथं कुर्य्यात्पिण्डदानादिकाः क्रियाः। गर्भेषु च प्रपन्नानामाचूड़ाकरणाच्छिशोः७॥

कृते चूड़े व्रतादर्वाक् मृतस्य को विधिः स्मृतः । गरुड़स्य वचः श्रुत्वा विष्णुर्वचनमब्रवीत् ॥८॥

श्रीकृष्ण उवाच

यदि गर्भो विपद्येत स्रवन्ते वापि योषितः । यावन्मासगतो गर्भस्तद्दिनानि च सूतकम् ॥९॥
तस्य किञ्चिन्न कर्त्तव्यमात्मनः श्रेय इच्छता । ततो जाते विपन्ने तु आचूड़ाद्भुवि निक्षिपेत् ॥
दुग्धं देयं यथाशक्ति बालानां तुष्टिहेतवे । आचूड़ात्पञ्चवर्षे तु देहदाहो यथाविधि ॥११॥
दुग्धं तस्य प्रदातव्यं बालानां भोजनं शुभम् । पञ्चवर्षस्य कर्माणि स्वजातिविहितानि च १२॥
कुर्य्यात्तस्मिन्मृते सर्वमुदकुम्भादिपायसम् । दातव्यञ्च खगश्रेष्ठ ऋणसम्बन्धकस्तु सः ॥१३॥
जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च । स्वल्पायुर्निर्धनो भूत्वा रतिभुक्तिविवर्जितः ॥१४॥
पुनर्जन्म विशेज्जन्तुस्तस्माद्देयं मृते शिशौ । कर्त्तव्यं पक्षिशार्दूल पुनर्देहक्षयाय वै ॥१५॥
एवं मे रोचतेऽदत्त्वा जायते निर्धने कुले । पुराणे गीयते गाथा सर्वथा प्रतिभाति मे ॥१६॥
मिष्टान्नं भोजनं देयं दानशक्तिः सुदुर्लभा । भोज्ये भोजनशक्तिस्तु रतिशक्तिर्वरस्त्रियाः ॥१७॥
विभवे दानशक्तिश्च नाल्पस्य तपसः फलम् । दानाद्भोगमवाप्नोति सौख्यं तीर्थस्य सेवनात् ॥
सुभाषणात्परे लोके विद्वांश्च धर्मवित्तमः ॥१८॥

अदत्तदानाच्च भवेद्दरिद्रो दरिद्रभावात्प्रकरोति पापम् ।
पापप्रभावान्नरकं प्रयाति पुनर्दरिद्रो पुनरेव पापी ॥१९॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे प्रेतकल्पे चतुर्दशोऽध्यायः ॥१४॥

पञ्चदशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

अतःपरं प्रवक्ष्यामि पुरुषस्य विनिर्णयम् । जीवन्वापि मृतो वापि पञ्चवर्षाधिको हि यः ॥१॥
पूर्णे तु पञ्चमे वर्षे पुमांश्चैव प्रतिष्ठितः । सर्वेन्द्रियाणि जानाति रूपारूपविनिर्णयम् ॥२॥
पूर्वकर्मविपाकेन प्राणिनां वधबन्धनम् । विप्राद्यानन्त्यजान्सर्वान्मापम्पारयति ध्रुवम् ॥३॥
गर्भे नष्टे क्रिया नास्ति दुग्धं देयं शिशौ मृते । घटांश्च पायसं क्षीरं दद्याद्बालविपत्तितः ॥४॥
एकादशाहे द्वादशाहे वृषोत्सर्गविधिं विना । महादानविहीनन्तु कुमारे कृत्यमाचरेत् ॥५॥
कुमाराणाञ्च बालानां भोजनं वस्त्रवेष्टनम् । बाले वा तरुणे वृद्धे घटो भवति देहिनाम् ॥६॥
भूमौ निक्षेपणं बालमावर्षद्वयमेव च । ततः परं खगश्रेष्ठ देहदाहो विधीयते ॥७॥

शिशुरादन्तजननाद्बालः स्याद्यावदाशिखम् । कथ्यते सर्वशास्त्रेषु कुमारो मौञ्जिबन्धनात् ॥८॥
मृतो हि पञ्चमे वर्षे अव्रतः सव्रतोऽपि वा । पूर्वोक्तमेव कर्त्तव्यमीहते दशपिण्डजम् ॥९॥
स्वल्पकर्मप्रसङ्गाच्च स्वल्पाद्विषयबन्धनात् । स्वल्पे वपुषि वासाच्च क्रियां स्वल्पामपीच्छति १०॥
यावच्च पञ्चवर्षे तु बालकस्य भवेन्मृतिः । यद्यद्यस्योपजीव्यं स्यात्तत्तद्देयमिहेच्छति ॥११॥
ब्रह्मवीर्योद्भवाः पुत्रा देवर्षीणाञ्च वल्लभाः । यमेन यमदूतैश्च मन्यन्ते निश्चितं खग ॥१२॥
बालो वृद्धो युवा वापि वयो भवति देहिनाम् । सुखं दुःखं समाप्नोति देही सर्वगतस्त्विह १३॥
परित्यज्य तदात्मानं जीर्णन्त्वचमिवोरगः । अङ्गुष्ठमात्रपुरुषो वायुभूतः क्षुधार्दितः ॥१४॥
तस्माद्देयानि दानानि मृते तस्मिन्सुनिश्चितम् । जन्मतः पञ्च वर्षाणि भुङ्क्ते दत्तमसंस्कृतम् १५॥
पञ्चवर्षाधिके बाले विपत्तिर्यदि जायते । वृषोत्सर्गादिकं कर्म सपिण्डीकरणं विना ॥१६॥
अहन्येकादशे पुत्रः कुर्याच्छ्राद्धानि षोडश । उदकुम्भप्रदानन्तु अन्यदानानि यानि च ॥१७॥
भोजनानि द्विजे दद्यान्महादानानि शक्तितः । दीपदानानि यत्किञ्चित्पञ्चवर्षाधिके सदा ॥१८॥
कर्त्तव्यं तु खगश्रेष्ठ क्रियादि प्रेततृप्तये । यदा न क्रियते सर्वं पिशाचत्वं स गच्छति ॥१९॥
एवं कृते तु स प्रेतस्ततो याति परां गतिम् । पुनश्चिरायुर्भूत्वा च कुले तस्य वसेद् ध्रुवम् २०॥
सर्वसौख्यप्रदः पुत्रः पित्रोः प्रीतिविवर्द्धनः । आत्मा वै जायते पुत्र इति वेदेषु निश्चितम् २१॥
आकाशमेकं हि यथा चन्द्रादित्यौ तथैव च । घटादिषु पृथक्सर्वं दृष्ट्वा रूपे च तत्समम् ॥२२॥
आत्मा तथैव सर्वेषु पुत्रेषु विचरेत्सदा । या यस्य प्रकृतिः पूर्वं शुक्रशोणितसङ्गमे ॥२३॥
तस्य तद्भावयोगेन पुत्रास्तत्कर्मकारिणः । पितृरूपं समादाय कस्यचिज्जायते सुतः ॥२४॥
पितृतः कामरूपश्च गुणज्ञो दानतत्परः । ईदृशः कोऽपि लोकेऽस्मिन्न भूतो न भविष्यति २५॥
अन्धादन्धो न भवति मूकान्मूको न जायते । बधिराद्बधिरो नैव मूर्खान्मूर्खो न जायते ॥२६॥

गरुड उवाच

औरसक्षेत्रजाद्याश्च पुत्रा दशविधाः स्मृताः । संगृहीतसुतो यश्च दासीपुत्रश्च तेन किम् ॥२७॥
कां कां गतिमवाप्नोति जातैर्मृत्युवशङ्गतैः । भवन्ति दुहितरो यस्य दौहित्री न भवेत्सुतः ॥
श्राद्धं तस्य तु कः कुर्याद्विधिना केन तद्भवेत् ॥२८॥

श्रीकृष्ण उवाच

मुखं दृष्ट्वा तु पुत्रस्य मुच्यते पैतृकादृणात् । अन्ये क्षेत्रादयः पुत्रा मुक्तिमात्रप्रदायकाः ॥२९॥
कुर्वीत पार्वणं श्राद्धमौरसो विधिवत्सुतः । कुर्वन्त्यन्ये तथा श्राद्धमेकोद्दिष्टं सुता नव ॥३०॥
पौत्रस्य दर्शनाज्जन्तुर्मुच्यते स ऋणत्रयात् । लोकान्ते च दिवः प्राप्तिः पुत्रपौत्रप्रपौत्रकैः ॥३१॥

ब्रह्मपुत्र उन्नयति संगृहीतस्त्वधो नयेत् । श्राद्धं सांवत्सरं कुर्वन्जायते नरकाय वै ॥३२॥
सर्वदानानि देयानि ह्यन्नदानानि वै खग । संगृहीसुतेनैव ह्येकोद्दिष्टं न पार्वणम् ॥३३॥
प्रत्यब्दं पितृमातृभ्यां श्राद्धं कृत्वा न लिप्यते । एकोद्दिष्टं परित्यज्य पार्वणं कुरुते यदि ॥३४॥
तदात्मानं पितृंश्चैव स नयेद्यमशासनम् । संगृहीताश्च ये केचिद्दासीपुत्रादयस्तथा ॥३५॥
तीर्थे गत्वा तु यः श्रद्धमामान्नश्च ददेद्द्विजे । संगृहीतसुतो भूत्वा पाकञ्चैव प्रयच्छति ॥३६॥
वृथा श्राद्धं विजानीयाच्छूद्रान्नेन यथा द्विजः । तेन दत्तं न गृह्णन्ति पितामहमुखाश्च ये ॥३७॥
एवं ज्ञात्वा खगश्रेष्ठ हीनजातिसुतान्त्यजेत् । यस्तु प्रव्रजिताज्जातो ब्राह्मण्यां शूद्रतश्च यः ॥३८॥
द्वाविमौ विद्धि चाण्डालौ स्वगोत्राद्यस्तु जायते । स्वजातिविहितान्पुत्रान्समुत्पाद्य खगेश्वर ॥३९॥
तैः सुवृत्तैः सुखं प्राप्तो दुर्वृत्तैर्नरकं व्रजेत् । हीनजातिसमुत्पन्नैः सुवृत्तैः सुखमेधते ॥४०॥

कलिकलुषविमुक्तः पूजितः सिद्धसङ्घैमरचमरमालावीज्यमानोऽप्सरोभिः ।
पितृशतमपि बन्धून् पुत्रपौत्रप्रपौत्रानपि नरकनिमग्नानुद्धरेदेक एव ॥४१॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे प्रेतकल्पे पुत्रनिर्णयो नाम पञ्चदशोऽध्यायः ॥१५॥

षोडशोऽध्यायः

गरुड उवाच

सत्यं ब्रूहि सुरश्रेष्ठ कृपां कृत्वा ममोपरि । मृतानाञ्चैव जन्तूनां कदा कुर्यात्सपिण्डनम् ॥१॥
सपिण्डत्वे कुतो यान्ति ह्यसपिण्डे कुतो गतिः । केन चैव सपिण्डत्वं स्त्रीपुंसां वक्तुमर्हसि ॥२॥
पतिपत्नी सपिण्डत्वं प्राप्नुतः कथमुत्तमम् । जीवद्भर्त्तरि नारीणां सपिण्डीकरणं कुतः ॥३॥
भर्त्तृलोके कथं याति स्वर्गलोके सुरेश्वर । अग्न्यारोहे कथं श्राद्धं वृषोत्सर्गन्तु तद्दिने ॥४॥
घटदानं कथं कार्य्यं सपिण्डीकरणे कृते । कथयस्व प्रसादेन हिताय जगतां प्रभो ॥५॥

श्रीभगवानुवाच

सत्यं हि कथयिष्यामि सपिण्डीकरणं यथा । वर्षं यावत्खगश्रेष्ठ मार्गे गच्छति मानवः ॥६॥
ततः पितृगणैः सार्द्धं पितृलोके स गच्छति । तस्मात्पुत्रैः कर्त्तव्यं सपिण्डीकरणं पितुः ॥७॥
संवत्सरेण तु सम्पूर्णे कुर्यात्पिण्डप्रवेशनम् । पिण्डप्रवेशविधिना तस्य नित्यं मृताह्निकम् ॥८॥
निश्चितं पक्षिशार्दूल वर्षान्ते पिण्डमेलनम् । सह पिण्डे कृते प्रेतस्ततो याति पराङ्गतिम् ॥९॥
तन्नाम संपरित्यज्य ततः पितृगणो भवेत् । त्रिपक्षे वाथ षण्मासे मेलयेच्च पितामहैः ॥१०॥

ज्ञात्वा वृद्धिविवाहादि स्वगोत्रविहितानि च । विवाहं नैव कुर्वीत मृते च गृहमेधिनि ॥
भिक्षुर्भिक्षां न गृह्णाति यावन्न कुर्य्यात्सपिण्डनम् ॥११॥
स्वगोत्रेष्वशुचिस्तावद्यावत्पिण्डं न मेलयेत् । मेलनात्प्रेतशब्दश्च निवर्त्तेत खगेश्वर ॥१२॥
आनन्त्यात्कुलधर्माणां पुंसां चैवायुषः क्षयात् । अस्थिरत्वाच्छरीरस्य द्वादशाहः प्रशस्यते ॥१३॥
निरग्निकः साग्निको वा द्वादशाहे सपिण्डयेत् । द्वादशाहे त्रिपक्षे वा षण्मासे वत्सरेऽपि वा ॥
सपिण्डीकरणं प्रोक्तं ऋषिभिस्तत्त्वदर्शिभिः । सपुत्रस्य न कर्त्तव्यमेकोद्दिष्टं कदाचन ॥१५॥
सपिण्डीकरणादूर्ध्वं यत्र यत्र प्रदीयते । तत्र तत्र त्रयं कार्य्यं वर्जयित्वा क्षयेऽहनि ॥१६॥
पिता पितामहश्चैव तथैव प्रपितामहः । एकोद्दिष्टं त्रयाणां स्यादन्यथा पितृघातकः ॥१७॥
त्रिभिः कुर्य्यादशक्तस्तु पार्वणं मुनिनोदितम् । तद्दिने तद्दिने कुर्यात्पितामहमुखान्यतः ॥१८॥
अज्ञानाद्दिनमासानां तस्मात्पार्वणमिष्यते । अनुत्पन्नशरीरस्य न दानं पितृभिः सह ॥१९॥
दत्तैः षोडशभिः श्राद्धैः पितृभिः सह मोदते । पितुः पुत्रेण कर्त्तव्यं सपिण्डीकरणं सदा ॥२०॥
पुत्राभावे तु पत्नी स्यात्पत्न्यभावे सहोदरः । भ्राता वा भ्रातृपुत्रो वा सपिण्डः शिष्य एव वा ॥
सपिण्डनक्रियां कृत्वा कुर्य्यादभ्युदयं ततः ॥२१॥

ज्येष्ठस्यैव कनिष्ठेन भ्रातृपुत्रेण भार्य्यया । सपिण्डीकरणं कार्य्यं पुत्रहीने खगेश्वर ॥२२॥
भ्रातृणामेकजातानां एकश्चेत्पुत्रवान्भवेत् । सर्वे वै तेन पुत्रेण पुत्रिणो मनुरब्रवीत् ॥२३॥
सर्वेषां पुत्रहीनानां पत्नी कुर्य्यात्सपिण्डनम् । ऋत्विजः कारयेद्वापि पुरोहितमथापि वा ॥२४॥
कृतचूडैः सुतैश्चापि पितृश्राद्धञ्च कारयेत् । उदाहरेत्स्वधाकारं न तु वेदाक्षराणि वै ॥
भर्त्तादिभिस्त्रिभिः कार्य्यं सपिण्डीकरणं स्त्रियाः ॥२५॥

पितृवद्भ्रातृपुत्रेण सोदरेण कनीयसा । अर्वाक्संवत्सरादूर्ध्वं पूर्णे संवत्सरेऽपि वा ॥२६॥
ये सपिण्डीकृताः प्रेतास्तेषां स्यान्न पृथक्क्रिया । सपिण्डने कृते वत्स पृथक्त्वन्तु विगर्हितम् २७॥
यस्तु कुर्य्यात्पृथक्पिण्डं पितृहा सोऽभिजायते । पृथक्त्वे तु कृते पश्चात्पुनः कुर्य्यात्सपिण्डताम् ॥२८॥
सपिण्डीकरणं कृत्वा ह्येकोद्दिष्टं करोति यः । आत्मानञ्च तथा प्रेतं स नयेद्यमशासनम् ॥२९॥
वर्षं यावत्क्रियाः सर्वाः प्रेतत्वविनिवृत्तये । ताः सर्वाश्चैकतः कुर्य्यान्नामगोत्रेण धीमता ॥३०॥
घटान्नं भोजनं नित्यं दीपदानानि यानि च । सपिण्डीकरणे वृत्ते एकस्यैव तु दापयेत् ॥३१॥
अन्नं पानीयसहितं संख्यां कृत्वाब्दिकस्य च । दातव्यं ब्राह्मणे पक्षिन्घटादेर्निष्क्रयं तथा ॥३२॥
पिण्डान्ते तस्य संकल्पो वर्षाद् वृत्तिः स्वशक्तितः । दिव्यदेहो विमानस्थः सुतृप्तो धर्मशासने ॥
जीवमाने च पितरि न हि पुत्रे सपिण्डता । स्त्रीणां सपिण्डनं नास्ति भर्तृमातरि जीवति ३४॥

मृता माता पिता तिष्ठेज्जीवेदपि पितामही । सपिण्डनं ततः कुर्य्यात्प्रपितामह्या सहैव च ३५॥
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं श्रूयतां वचनं मम । न पिण्डो मेलितो येषां मृतानां तु नृणां भुवि ॥
उपतिष्ठेन्न वै तेषां पुत्रैर्दत्तमनेकधा । हन्तकारस्तदुद्देशे श्राद्धं नैव जलाञ्जलिः ॥३७॥
हुताशं या समारूढ़ा चतुर्थेऽह्नि पतिव्रता । तस्या भर्तृदिने कार्य्यं वृषोत्सर्गादिसूतकम् ॥३८॥
पुत्रिका पतिगोत्रा स्यादधस्तात्पुत्रजन्मतः । पुत्रानुत्पाद्य पश्चात्तु सापि गोत्रे व्रजेत्पितुः ॥३९॥
पतिपत्न्योः सदैकत्वं हुताशं याधिरोहति । पुत्रेणैव पृथक्श्राद्धं क्षयाहे तस्य वासरे ॥४०॥
अपुत्रौ चेन्मृतौ स्यातां एकचित्यां समेऽहनि । पृथक्श्राद्धं न कुर्वीत सपिण्डं पतिना सह ४१॥
पृथक्पिण्डे तु संयोज्य दम्पती पतिना सह । स लिप्यति महादोषैरिति सत्यं वचो मम ॥४२॥
एकचित्यां समारूढ़ौ म्रियेते दम्पती यदि । एकपाकं प्रकुर्वीत पिण्डान्दद्यात्पृथक्पृथक् ॥४३॥
वृषोत्सर्गं नवश्राद्धं पृथक्श्राद्धानि षोडश । घटादिपददानानि महादानानि यानि च ॥
वर्षं यावत्पृथक्कुर्य्यात्प्रेतस्तृप्तिं व्रजेच्चिरम् ॥४४॥

एकगोत्रमृतानाञ्च स्त्रिया वा पुरुषस्य वा । स्थण्डिलञ्चैकतः कुर्य्याद्धोमं कुर्य्यात्पृथक्पृथक् ॥
एकादशेऽह्नि यच्छ्राद्धं पृथक्पिण्डांश्च भोजनम् । पाकैक्येन पतिस्त्रीणां अन्येषाञ्च विगर्हितम् ॥
एकेनैव तु पाकेन श्राद्धानि कुरुते बहु । विकिरं त्वेकतः कुर्यात्पिण्डान्दद्याद्बहून्यपि ॥
तीर्थे वाऽपरपक्षे वा चन्द्रसूर्य्यग्रहे तथा ॥४७॥

नारी भर्त्तारमासाद्य कुणपं दहते यदि । अग्निर्दहति गात्राणि ह्यात्मानं नैव पीड़येत् ॥४८॥
दह्यते धम्यमानानां धातूनां हि यथा मलम् । तथा नारी दहेद्देहं हुताशे ह्यमृतोपमे ॥४९॥
दिव्यादौ दिव्यदेहस्तु शुद्धो भवति ते यथा । तप्ततैलेन लोहेन वह्निना नावदह्यते ॥५०॥
तथा सा पतिसंयुक्ता दह्यते न कदाचन । अन्तरात्मा मृतस्तस्मिन्मृतेऽप्येकत्वमागतः ॥५१॥
भर्तृसङ्गं परित्यज्य याऽन्यत्र म्रियते यदि । पतिलोकं न सा याति यावदाभूतसंप्लवम् ॥५२॥
नारी सुतान्परित्यज्य मातरं पितरं तथा । मृतं पतिमनुव्रज्य सा चिरं सुखमाप्नुयात् ॥५३॥
दिव्यवर्षप्रमाणेन तिस्रः कोट्योऽर्द्धकोटयः । तावत्कालं वसेत्स्वर्गे नक्षत्रैः सह सर्वदा ॥५४॥
तदन्ते च मृते लोके कुले भवति भोगिनाम् । महाप्रीतिमवाप्नोति भर्त्रा सह पतिव्रता ॥५५॥
एवं न कुरुते नारी धर्मोढ़ा पतिसङ्गमम् । सप्तजन्मनि दुःखार्त्ता दुःशीलाऽप्रियवादिनी ॥५६॥
सा नारी गृहगोधा वा गोधा वा द्विमुखी भवेत् । स्वभर्त्तारं परित्यज्य परपुंसानुवर्त्तिनी ॥५७॥
तस्मात्सर्वप्रयत्नेन स्वपतिं सेवयेत्सदा । कर्मणा मनसा वाचा मृते जीवति तद्गता ॥५८॥
जीवमाने मृते वापि किल्विषं कुरुते तथा । तेन नाप्नोति भर्त्तारं पुनर्जन्मनि दुर्भगा ॥५९॥

यद्देवेभ्यो यत्पितृभ्योऽतिथिभ्यः कुर्य्याद्भर्त्ताभ्यर्चनं सत्क्रियाञ्च ।
तस्यात्यर्द्धं केवलानन्यचित्ता नारी भुङ्क्ते भर्तृशुश्रूषयैव ॥६०॥
एवं कृते तु सा नारी भर्तृलोके वसेच्चिरम् । यावदादित्यचन्द्रौ च तावद्देवोपमा दिवि ॥६१॥
पुनश्चिरायुषौ भूत्वा जायेते विपुले कुले । पतिव्रता तु सा नारी भर्तृदुःखं न विन्दति ॥६२॥
सर्वमेतद्धि कथितं मया तव खगेश्वर । विशेषं कथयिष्यामि मृतस्यैव सुखप्रदम् ॥६३॥
द्वादशाहे कृतं सर्वं वर्षं यावत्सपिण्डनम् । पुनः कुर्य्यात्तथा नित्यं घटान्नं प्रतिमासिकम् ॥६४॥
कृतस्य करणं नास्ति प्रेतकार्य्यादृते पुनः । चेत्करोति पुनः सम्यक्पूर्वकृत्यं विनश्यति ॥६५॥
मृतस्यैवं पुनः कुर्य्यात्प्रेतोऽप्यक्षयमाप्नुयात् । अर्वाग्वृद्धेश्च करणात्पक्षिराज सपिण्डताम् ॥६६॥
पूर्वोक्तकं सर्वविधिं सुयुक्तं सपिण्डनं यो हि करोति पुत्रः ।
तथापि मासं प्रति पिण्डमेकमन्नं सकुम्भं सजलञ्च दद्यात् ॥६७॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे प्रेतकल्पे षोडशोऽध्यायः ॥१६॥

सप्तदशोऽध्यायः

गरुड़ उवाच

कथं प्रेता वसन्त्यत्र कीदृग्रूपा भवन्ति च । महाप्रेताः पिशाचाश्च कैः कैः कर्मफलैः प्रभो॥१॥
सर्वेषामनुकम्पार्थं ब्रूहि मे मधुसूदन । प्रेतत्वान्मुच्यते येन दानेन सुकृतेन हि ॥
सर्वं कथय मे देव मम चेदिच्छसि प्रियम् ॥ २ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

साधु पृष्टं त्वया तार्क्ष्य मानुषाणां हिताय वै । शृणुष्वावहितो भूत्वा यद्वच्मि प्रेतलक्षणम् ॥३॥
गुह्याद्गुह्यतरं ह्येतन्नाख्येयं यस्य कस्यचित् । भक्तस्त्वं हि महाबाहो तेन ते कथयाम्यहम् ॥४॥
पुरा त्रेतायुगे तार्क्ष्य राजासीद्बभ्रुवाहनः । महोदयपुरे रम्ये धर्मनिष्ठो महाबलः ॥ ५ ॥
यज्वा दानपतिः श्रीमान्ब्रह्मण्यः साधुसम्मतः । शीलोदारगुणोपेतो दयादाक्षिण्यसंयुतः ॥ ६ ॥
प्रजाः पालयते नित्यं पुत्रानिव महाबलः । स कदाचिन्महाबाहुर्मृगयां गन्तुमुद्यतः ॥ ७ ॥
वनं विवेश गहनं नानावृक्षसमन्वितम् । शार्दूलशतसंजुष्टं नानापक्षिनिनादितम् ॥ ८ ॥
वनमध्ये तदा राजा मृगं दूराददृश्यत । तेन विद्धो मृगस्तीव्रो बाणेन सुदृढ़ेन च ॥ ९ ॥
बाणमादाय तं तस्य स वनेऽदर्शनं ययौ । शोणितस्रावमार्गेण स राजाऽनुजगाम ह ॥१०॥

ततो मृगप्रसङ्गेन वनमन्यद्विवेश सः। क्षुत्क्षामकण्ठो नृपतिः श्रमसन्तापमूर्च्छितः ॥११॥
जलस्थानं समासाद्य साश्व एव व्यगाहत। पीत्वा तदुदकं शीतं पद्मगन्धाधिवासितम् ॥१२॥
ततोऽवतीर्य्य सलिलाद्विमलाद्बभ्रुवाहनः। न्यग्रोधवृक्षमासाद्य शीतच्छायं मनोहरम् ॥१३॥
महाविटपिनं घूर्णपक्षिसंघातनादितम्। वनस्पतीनां सर्वेषां केतुभूतमवस्थितम् ॥१४॥
तं महातरुमासाद्य निषसाद महीपतिः। अथ प्रेतं ददर्शासौ क्षुत्तृषाव्याकुलेन्द्रियम् ॥१५॥
उत्कचं मलिनं रुक्षं निर्मांसं भीमदर्शनम्। स्नायुबद्धास्थिचरणं धावमानमितस्ततः ॥१६॥
अन्यैश्च बहुभिः प्रेतैः समन्तात्परिवारितम्। तं दृष्ट्वा त्वागतं घोरं विस्मितो बभ्रुवाहनः ॥१७॥
प्रेतोऽपि दृष्ट्वा तां घोरामटवीमागतं नृपम्। तदा हृष्टमना भूत्वा तस्यान्तिकमुपागमत् ॥१८॥
अब्रवीत्स तदा तार्क्ष्य प्रेतराजो नृपं वचः। प्रेतभावो मया त्यक्तः प्राप्तोऽस्मि परमां गतिम् ॥
त्वत्संयोगान्महाबाहो नास्ति धन्यतरो मम ॥१९॥

राजोवाच

कृष्णरूप करालाच्च त्वं प्रेत इव दृश्यसे। कथयस्व मम प्रीत्या यथार्थमतितत्त्वतः ॥२०॥

प्रेत उवाच

कथयामि नृपश्रेष्ठ सर्वमेवादितस्तव। प्रेतत्वे कारणं श्रुत्वा दयां कर्तुं ममार्हसि ॥२१॥
वैदिशं नाम नगरं सर्वसम्पत्समन्वितम्। नानाजनपदाकीर्णं नानारत्नसमाकुलम् ॥२२॥
नानापुण्यसमायुक्तं नानावृक्षसमाकुलम्। तत्राहं न्यवसं भूप देवार्चनरतस्तथा ॥२३॥
वैश्यजात्यां सुदेवोऽहं नाम्ना विदितमस्तु ते। हव्येन तर्पिता देवाः कव्येन पितरो मया ॥२४॥
विविधैर्दानयोगैश्च विप्राः सन्तर्पितास्तथा। आहाराश्च विहाराश्च मया वै सुनिवेशिताः ॥२५॥
दीनानाथविशिष्टेभ्यो मया दत्तमनेकधा। तत्सर्वं विफलं तात मम दैवादुपागतम् ॥२६॥
न मेऽस्ति सन्ततिस्तात न सुहृन्न च बान्धवः। न च मित्रं हि मे तादृग्यः करोत्यौर्ध्वदैहिकम् ॥
प्रेतत्वं सुस्थिरं तेन मम जातं नृपोत्तम। एकादशं त्रिपक्षञ्च षाण्मासिकमथाब्दिकम् ॥२८॥
प्रतिमास्यानि चान्यानि एवं श्राद्धानि षोशश। यस्यैतानि न दीयन्ते प्रेतश्राद्धानि षोशश २९॥
प्रेतत्वं सुस्थिरं तस्य दत्तैः श्राद्धशतैरपि। एवं ज्ञात्वा महाराज प्रेतत्वादुद्धरस्व माम् ॥३०॥
वर्णानाञ्चापि सर्वेषां राजा बन्धुरिहोच्यते। तन्मा तारय राजेन्द्र मणिरत्नं ददामि ते ॥३१॥
यथा मम शुभावाप्तिर्भवेन्नृपवरोत्तम। तथा कार्य्यं महावीर्य्य कृपा यदि ममोपरि ॥
आत्मनश्च कुरु क्षिप्रं सर्वमेवौर्ध्वदैहिकम् ॥३२॥

राजोवाच

कथं प्रेता भवन्तीह कृतैरप्यौर्ध्वदैहिकैः। पिशाचाश्च भवन्तीह कर्मभिः कैश्च तद्वद ॥३३॥

प्रेतराज उवाच

ब्रह्मस्वं देवद्रव्यञ्च स्त्रीणां बालधनं तथा । ये हरन्ति नृपश्रेष्ठ प्रेतयोनिं लभन्ति ते ॥३४॥
तापसीञ्च स्वगोत्राञ्च अगम्याञ्च भजन्ति ये । भवन्ति ते महाप्रेता अम्बुजानि हरन्ति ये ॥३५॥
प्रवालवज्रहर्त्तारो ये च वस्त्रापहारकाः । तथा हिरण्यहर्त्तारः संयुगेऽसम्मुखे हताः ॥३६॥
कृतघ्ना नास्तिका रौद्रास्तथा साहसिकाः शठाः। पञ्चयज्ञविनिर्मुक्ता महादानरताश्च ये ॥
एवमाद्यैर्महाराज जायन्ते प्रेतयोनयः ॥३७॥

राजोवाच

कथं मुक्ता भवन्तीह प्रेतत्वात्कृपया वद । कथं चापि मया कार्य्यमौर्ध्वदैहिकमात्मनः ॥
विधिना केन तत्कार्य्यं सर्वमेतद्वदस्व मे ॥३८॥

प्रेत उवाच

श्रृणु राजेन्द्र संक्षेपाद्विधिं नारायणात्मकम् । सुवर्णद्वयमाहृत्य मूर्त्तिं तत्र प्रकल्पयेत् ॥३९॥
नारायणस्य देवस्य सर्वाभरणभूषिताम् । पीतवस्त्रयुगच्छन्नां चन्दनागुरुचर्चिताम् ॥४०॥
स्नापितां विविधैस्तोयैरधिवास्य प्रयत्नतः । पूर्वे च श्रीधरं देवं दक्षिणे मधुसूदनम् ॥४१॥
पश्चिमे वामनं देवमुत्तरे च गदाधरम् । मध्ये पितामहं पूज्य तथा देवं महेश्वरम् ॥४२॥
ततः प्रदक्षिणीकृत्य अग्नौ सन्तर्प्य देवताः । घृतेन दध्ना क्षीरेण विश्वेदेवास्तथा नृप ॥४३॥
ततः स्नातो विनीतात्मा जपमानः समाहितः । नारायणाग्रे विधिवत्स्वां क्रियामौर्ध्वदैहिकीम् ॥
आरभेत विनीतात्मा क्रोधलोभविवर्जितः । कृत्वा श्राद्धानि सर्वाणि वृषस्योत्सर्जनं तथा ४५॥
त्रयोदशानां विप्राणां दद्याच्छत्राण्युपानहौ । अङ्गुलीयकरत्नानि भाजनासनभोजनैः ॥४६॥
सान्नाश्च सोदका देया घटाः प्रेतहिताय वै । शय्यादानमथो दत्त्वा घटं प्रेतस्य निर्वपेत् ॥४७॥
नारायणेति स्वं नाम संपुटस्थं समुच्चरेत् । एवं कृत्वाथ विधिवत्सदा शुभफलं लभेत् ॥४८॥
एवं सञ्जल्पतस्तस्य प्रेतस्य विनतात्मज । सेनाऽऽजगामानुपदं हस्त्यश्वरथसङ्कुला ॥४९॥
ततो बले समायाते प्रेतोऽदर्शनतां ययौ । तस्माद्वनाद्विनिःसृत्य राजापि स्वपुरं ययौ ॥५०॥
स्वपुरं स समासाद्य सर्वं तत्प्रेतभाषितम् । चकार विधिवच्चैव ऊर्ध्वदेहादिकं विधिम् ॥५१॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे प्रेतकल्पे सप्तदशोऽध्यायः ॥१७॥

अष्टादशोऽध्यायः

गरुड उवाच

सर्वेषामनुकम्पार्थं ब्रूहि मे मधुसूदन । प्रेतत्वान्मुच्यते येन दानेन सुकृतेन वा ॥ १ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु दानं प्रवक्ष्यामि सर्वाशुभविनाशनम् ॥ २ ॥

सन्तप्तहाटकमयं घटकं विधाय ब्रह्मेशकेशवयुतं सह लोकपालैः ।
क्षीराज्यपूर्णविवरं प्रणिपत्य भक्त्या विप्राय देहि तव दानशतैः किमन्यैः ॥ ३ ॥

गरुड उवाच

किमेतत्कथितं देव विस्तरेण वदस्व मे । भूम्यां प्रक्षिप्यते कस्मात्पञ्चरत्नं कुतो मुखे ॥ ४ ॥
अधस्तादास्तृतदर्भाः पादौ याम्यां व्यवस्थितौ । किमर्थं मण्डलं भूम्यां गोमयेनोपलिप्यते ॥५॥
किमर्थं स्मर्य्यते विष्णुर्विष्णुसूक्तञ्च पठ्यते । किमर्थं पुत्रपौत्राश्च तिष्ठन्ति तस्य चाग्रतः ॥६॥
किमर्थं दीपदानं स्यात्किमर्थं विष्णुपूजनम् । किमर्थमातुरे दानं ददाति द्विजपुङ्गवे ॥ ७ ॥
बन्धुमित्राण्यमित्राणि क्षमापयति तत्कथम् । तिला लोहं सुवर्णञ्च कार्पासं लवणं तथा ॥ ८ ॥
सप्तधान्यं क्षितिर्गावो दीयन्ते केन हेतुना । कथञ्च म्रियते जन्तुर्मृते तस्य कुतो गतिः ॥ ९ ॥
अतिवाहं शरीरञ्च कथं विश्रमते तदा । सर्वमेतन्मया पृष्टो ब्रूहि लोकहिताय वै ॥१०॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे प्रेतकल्पे अष्टादशोऽध्यायः ॥१८॥

ऊनविंशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

साधु पृष्टं त्वया भद्र मानुषाणां हिताय वै । शृणुष्वावहितो भूत्वा सर्वमेवौर्ध्वदैहिकम् ॥ १ ॥
सम्यग्विभेदरहितं श्रुतिस्मृतिसमुद्धृतम् । यन्न दृष्टं सुरैः सेन्द्रैर्योगिभिर्योगचिन्तकैः ॥ २ ॥
गुह्याद्गुह्यतरं वत्स नाख्यातं कस्यचित्क्वचित् । भक्तस्त्वं हि महाभाग तेन ते कथयाम्यहम् ३॥
अपुत्रस्य गतिर्नास्ति स्वर्गो नैव च नैव च । येन केनाप्युपायेन कार्यं जन्म सुतस्य च ॥ ४ ।
तारयेन्नरकात्पुत्रो यदि मोक्षो न विद्यते । दाहः पुत्रेण कर्त्तव्यो ह्यग्निदाता च पौत्रकः ॥५॥
तिलैर्दर्भैश्च भूम्यां वैकुण्ठे तत्र मतिर्भवेत् । पञ्चरत्नानि वक्त्रे तु तेन जीवः प्ररोहति ॥६॥
सुलेप्या गोमयैर्भूमिस्तिलान्दर्भांश्च निक्षिपेत् । तस्यामेवातुरो मुक्तः सर्वं दहति दुष्कृतम् ॥७॥

दर्भतूली नयेत्स्वर्गं आतुरं तु न संशयः । तिलांस्तत्र क्षिपेद्वाथ दर्भे पूलकमध्यतः ॥८॥
सर्वत्र वसुधा पूता यत्र लेपो न विद्यते । यत्र लेपः स्थितस्तत्र पुनर्लेपेन शुध्यति ॥९॥
यातुधानाः पिशाचाश्च राक्षसाः क्रूरकर्मगाः । अलिप्ते ह्यातुरं मुक्तं विशन्त्येते वियोनयः ॥१०॥
नित्यहोमं तथा श्राद्धं पादशौचं द्विजे तथा । मण्डलेन विना भूम्यां कृतमप्यकृतं भवेत् ॥११॥
आतुरो मुच्यते नैव मण्डलेन विना भुवि । ब्रह्मा विष्णुश्च रुद्रश्च श्रीर्हुताशन एव च ॥१२॥
मण्डले चोपतिष्ठन्ति तस्मात्कुर्वीत मण्डलम् । अन्यथा म्रियते यस्तु वृद्धो बालो युवापि वा ॥
योन्यन्तरं न गच्छेत् स क्रीडते वायुना सह । तस्यैवं वायुभूतस्य नो श्राद्धं नोदकक्रिया ॥१४॥
मम स्वेदसमुत्पन्नास्तिलास्तार्क्ष्य पवित्रकाः । असुरा दानवा दैत्या विद्रवन्ति तिलैः स्थितैः ॥
एक एव तिलो दत्तो हेमद्रोणतिलैः समः । तर्पणे च तथा होमे दत्तो भवति चाक्षयः ॥१६॥
दर्भा रोमसमुत्पन्नाः तिलाः स्वेदेषु नान्यथा । प्रयोगविधिना ब्रह्मा विश्वं वाप्युपजीवनात् १७॥
सव्ययज्ञोपवीतेन ब्रह्माद्यास्तृप्तिमाप्नुयुः । अपसव्येन तृप्यन्ति पितरो देवदेवताः ॥१८॥
दर्भमूले स्थितो ब्रह्मा दर्भमध्ये तु केशवः । दर्भाग्रे शङ्करं विद्यात्त्रयो देवाः कुशे स्थिताः ॥
विप्रा मन्त्राः कुशा वह्निस्तुलसी च खगेश्वर । नैते निर्माल्यतां यान्ति भोग्यमानाः पुनः पुनः ॥
कुशाः पिण्डेषु निर्माल्या ब्राह्मणाः प्रेतभोजने । मन्त्राः शूद्रेषु पतिताश्चितायाञ्च हुताशनः ॥
तुलसी ब्राह्मणा गावो विष्णुरेकादशी खग । पञ्चप्रवाहणान्येव भवाब्धौ मज्जतां सताम् २२॥
विष्णुरेकादशी गङ्गातुलसीविप्रधेनवः । असारे दुर्गसंसारे षट्पदी मुक्तिदायनी ॥२३॥
तिलाः पवित्रमतुलं दर्भाश्चापि तुलस्यपि । निवारयन्ति चैतानि दुर्गतिं प्राप्तमातुरम् ॥२४॥
हस्ताभ्याञ्च धृतैर्दर्भैस्तोयेन प्रोक्षयेद्भुवम् । मृत्युकाले क्षिपेद्दर्भान्कारयेदातुरस्य च ॥२५॥
दर्भेषु क्षिप्यते योऽसौ दर्भैस्तु परिवेष्टितः । विष्णुलोकं स वै याति मन्त्रहीनोऽपि मानवः ॥
दर्भतूलीगतः प्राणी संस्थितो भूमिपृष्ठतः । प्रायश्चित्तविशुद्धोऽसौ संसारे सारसागरे ॥२७॥
गोमयेनोपलिप्ते च दर्भस्यास्तरणे स्थिते । तत्र दत्तेन दानेन सर्वं पापं व्यपोहति ॥२८॥
लवणं सदृशं दिव्यं सर्वकामप्रदं नृणाम् । यस्मादन्नरसाः सर्वे नोत्कटा लवणं विना ॥२९॥
पितृणाञ्च प्रियं भाव्यं तस्मात्सर्वप्रदं भवेत् । विष्णुदेहसमुत्पन्नो यतोऽयं लवणो रसः ॥३०॥
एतत्सलवणं दानं तेन शंसन्ति योगिनः । ब्राह्मणः क्षत्रियो वैश्यः स्त्रीणां शूद्रजनस्य च ३१॥
आतुरस्य यदा प्राणान्नयन्ति वसुधातले । लवणं तु तदा देयं द्वारस्योद्घाटनं दिवः ॥३२॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे प्रेतकल्पे एकोनविंशोऽध्यायः ॥१९॥

———

विंशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु तार्क्ष्य प्रवक्ष्यामि दानानां दानमुत्तमम् । येन दत्तेन प्रीणन्ति भूर्भुवःस्वरिति क्रमात् ॥१॥
ब्रह्माद्या ऋषयः सर्वे शङ्कराद्यमरास्तथा । इन्द्राद्या देवताः सर्वे दानाद्वै प्रीतिमाप्नुयुः ॥२॥
देयमेतन्महादानं प्रेतोद्धरणहेतवे । रुद्रलोके चिरं वासस्ततो राजा भवेदिह ॥३॥
रूपवान्सुभगो वाग्मी श्रीमानतुलविक्रमः । विहाय यमलोकं सः स्वर्गं तार्क्ष्य प्रगच्छति ॥४॥
तिलांश्च गां क्षितिं हेम यो ददाति द्विजोत्तमे । तस्य जन्मार्जितं पापं तत्क्षणादेव नश्यति ॥५॥
तिला गावो महादानं महापातकनाशनम् । तद्द्वयं दीयते विप्रे नान्यवर्णे कदाचन ॥६॥
कल्पितं दीयते विप्रे तिला गावश्च मेदिनी । अन्येषु नैव वर्णेषु पोष्यवर्गे कदाचन ॥७॥
पोष्यवर्गे तथा स्त्रीषु दानं देयमकल्पितम् । आतुरे चोपरागे तु दानं देयमशेषतः ॥८॥
आतुरे दीयते दानं यावद्देहोपतिष्ठति । जीवता च पुनर्दत्तमुपतिष्ठत्यसंवृतम् ॥९॥
सत्यं सत्यं पुनः सत्यं तद्दत्तं विकलेन्द्रिये । यच्चानुमोदते पुत्र तच्च दानमनन्तकम् ॥१०॥
अतो दद्यात्सुपुत्रेण यावज्जीवत्यसौ चिरम् । अतिवाहस्तथा प्रेतो भोगांश्च लभते यतः ॥११॥
अस्वस्थातुरकाले तु देहपाते क्षितिस्थिते । देहे तथातिवाहस्य परतः प्रीणनं भवेत् ॥१२॥
तिलं लोहं हिरण्यञ्च कार्पासं लवणं तथा । सप्तधान्यं क्षितिर्गाव एकैकं पावनं स्मृतम् ॥१३॥
तारयन्ति नरं गावस्त्रिविधाच्चैव पातकात् । हेमदानात्सुखं स्वर्गे भूमिदानान्नृपो भवेत् ॥
हेमभूमिप्रदानाच्च न पीड़ा नरके भवेत् ॥१४॥
सर्वेऽपि यमदूताश्च यमरूपातिभीषणाः । सर्वे ते वरदा यान्ति सप्तधान्येन प्रीणिताः १५॥
विष्णोः स्मरणमात्रेण प्राप्यते परमाङ्गतिम् । भूमिस्थं पितरं दृष्ट्वा अर्द्धोन्मीलितलोचनम् ॥१६॥
तस्मिन्काले सुतो यस्तु सर्वदानानि दापयेत् । स्वस्थानाच्चलिते श्वासे दानं यच्चातुरे ददेत् ॥
अश्वमेधो महायज्ञो कलां नार्हति षोडशीम् । धर्मात्मा स च पुत्रोऽपि देवताभिः प्रपूज्यते ॥१८॥
दापयेद्यस्तु दानानि ह्यातुरं पितरं प्रति । लोहदानञ्च दातव्यं भूमियुक्तेन पाणिना ॥१९॥
यमं भीमं स नाप्नोति न गच्छेत्तस्य वेश्मनि । कुठारं मुसलं दण्डः खड्गश्च छुरिका तथा ॥२०॥
एतानि ५महस्तेषु निग्रहे पापकर्मणाम् । तस्माल्लोहस्य दानं तु आतुरे सततं ददेत् ॥२१॥
यमायुधानां सन्तुष्टै दानमेतदुदीरितम् । गर्भस्थाः शिशवो ये तु युवानः स्थविरास्तथा ॥
एभिर्दानविशेषैस्तु निर्दहेयुः स्वपातकम् । कुरिणाः सार्वसूत्रापाः शण्डा मर्कास्त्वनुर्वराः ॥
शबलाः श्यामदूताश्च लोहदानेन प्रीणिताः ॥२३॥

पुत्राः पौत्रास्तथा बन्धुः सगोत्रः सुहृदः स्त्रियः । ददन्ति नातुरे दानं ब्रह्मघ्नाः सुसमाहितम् ॥
पञ्चत्वे भूमियुक्तस्य शृणु तस्य च या गतिः । अतिवाहः पुनः प्रेतो वर्षस्य सुकृतं लभेत् ॥२५॥
पादादूर्ध्वं कटी यावत् तावद् ब्रह्माधितिष्ठति । ग्रीवा यावद्धरिर्नाभेः शरीरे मनुजस्य तु ॥२६॥
मस्तके तिष्ठते रुद्रो व्यक्ताव्यक्तो महेश्वरः । एकमूर्त्तेस्त्रयो भेदा ब्रह्मविष्णुमहेश्वराः ॥२७॥
अहं प्राणिशरीरस्थो भूतग्रामचतुष्टये । धर्माधर्मे मतिं दद्यात्सुखदुःखे कृताकृते ॥२८॥
जन्तोर्बुद्धिं समास्थाय पूर्वकर्माधिवासिताम् । अहमेव तथा जीवान्प्रेरयामि च कर्मसु ॥२९॥
स्वर्गं मोक्षञ्च नरकं यान्ति च प्राणिनस्तथा । स्वर्गस्थनरकस्थानां श्राद्धैराप्यायनं भवेत् ॥
तस्माच्छ्राद्धानि कुर्वीत विविधानि विचक्षणः ॥३०॥

मत्स्यः कूर्मो वराहश्च नरसिंहोऽथ वामनः । रामो रामश्च कृष्णश्च बुद्धः कल्किस्तथैव च ॥३१॥
एतानि दश नामानि स्मर्त्तव्यानि सदा बुधैः । स्वर्गञ्चैव स वै याति च्युतः स्वर्गाच्च मानवः ॥
लब्ध्वा सुखञ्च वित्तञ्च दयादाक्षिण्यसंयुतः । पुत्रपौत्रसमायुक्तो जीवेत् स शरदां शतम् ॥३३॥
आतुरे च ददेन्न्यासं विष्णुपूजाञ्च कारयेत् । अष्टाक्षरं महामन्त्रं जपेद्वा द्वादशाक्षरम् ॥३४॥
पूजयेच्छुक्लपुष्पैश्च नैवेद्यैर्घृतपाचितैः । तथा गन्धैश्च धूपैश्च श्रुतिसूक्तैरनेकशः ॥३५॥
विष्णुर्माता पिता विष्णुर्विष्णुः स्वजनबान्धवाः । यत्र विष्णुं न पश्यामि तत्र मे किं प्रयोजनम् ॥
जले विष्णुः स्थले विष्णुर्विष्णुः पर्वतमस्तके । ज्वालामालाकुले विष्णुः सर्वं विष्णुमयं जगत् ॥
वयमापो वयं पृथ्वी वयं दर्भा वयं तिलाः । वयं गावो वयं राजा वयं वायुर्वयं प्रजाः ॥३८॥
वयं हेम वयं धान्यं वयं मधु वयं घृतम् । वयं विप्रा वयं देवा वयञ्चैव स्वर्भूर्भुवः ॥३९॥
अहं दाता अहं ग्राही अहं याजी अहं क्रतुः । अहं कर्त्ता ह्यहं हर्त्ता अहं धर्मो अहङ्गुरुः ॥४०॥
धर्माधर्मे मतिं दद्यां कर्मभिस्तु शुभाशुभैः । यत्कर्म कुरुते क्वापि पूर्वजन्मार्जितं खग ॥४१॥
धर्मे चिन्तामहं कर्त्ता ह्यधर्मे यम एव च । यतीनां कुरुते सोऽपि धर्मे मुक्तिं ददाम्यहम् ४२॥
मनुजानां हितं तार्क्ष्य अन्ते वैतरणी नदी । तया निहत्य पापौघं विष्णुलोकं स गच्छति ॥४३॥
बाल्यत्वे यच्च कौमारे वयःपरिणतौ तथा । पूर्वावस्थाकृतं यच्च यच्च जन्मान्तरेष्वपि ॥४४॥
यन्निशायां तथा प्रातर्यन्मध्याह्नापराह्णयोः । सन्ध्ययोर्यत्कृतं पापं कर्मणा मनसा गिरा ॥४५॥
दत्त्वा वरं सकृदपि कपिलां सर्वकामिकाम् । उद्धरेदन्तकाले सा ह्यात्मानं पापसञ्चयात् ॥४६॥
गावो ममाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः । गावो मे हृदये नित्यं गवां मध्ये वसाम्यहम् ॥
या लक्ष्मीः सर्वभूतानां या च देवे व्यवस्थिता । धेनुरूपेण सा देवी मम पापं व्यपोहतु ४८॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे प्रेतकल्पे विंशोऽध्यायः ॥२०॥

एकविंशोऽध्यायः

श्रीभगवानुवाच

ये नराः पापसंयुक्तास्ते गच्छन्ति यमालयम् । अन्तकाले च गौर्दत्ता ह्यनन्तफलदा भवेत्-॥ १ ॥
पादक्रमप्रमाणाब्दं स्वर्गे वसति भूमिदः । अश्वारूढाश्च ते यान्ति ददते ये ह्युपानहौ ॥ २ ॥
अत्यातपश्रमयुता दह्यन्ते यत्र मानवाः । छत्रदानेन वै प्रेता विचरन्ति यथासुखम् ॥ ३ ॥
तमुद्दिश्य ददेदन्नं तेन चाप्यायितो भवेत् । अन्धकारे महाघोरे अमूर्त्ते लक्ष्यवर्जिते ॥
उद्योतेनैव ते यान्ति दीपदानेन मानवाः ॥ ४ ॥
आश्विने कार्त्तिके मासि माघे मासि मृताश्च ये । चतुर्दश्याञ्च दीयेत दीपदानं सुखाय वै ५ ॥
प्रत्यहञ्च प्रदातव्यं मार्गेषु विषमे नरैः । यावत्संवत्सरं वापि प्रेतस्य सुखलिप्सया ॥ ६ ॥
कुले मार्गे च शुद्धात्मा प्रकाशत्वञ्च गच्छति । ज्योतिषामपि पूज्योऽसौ दीपदानरतो नरः ॥७॥
प्राङ्मुखोदङ्मुखो दीपो देवागारे द्विजालये । यो ददाति मृतस्येह जीवन्नप्यात्महेतवे ॥
स गच्छति महामार्गे सर्वक्लेशविवर्जितः ॥ ८ ॥
आसनं भाजनं भोज्यं दीयते च द्विजातये । सुखेन भुञ्जमानस्तु सुखं गच्छति वै पथि ॥ ९ ॥
कमण्डलुप्रदानेन तृषितः पिबते जलम् । भाजनं चान्नदानञ्च कुसुमं चाङ्गुलीयकम् ॥१०॥
एकादशाहे दातव्यं प्रेतो याति पराङ्गतिम् । त्रयोदशपदानीत्थं प्रेतस्य शुभमिच्छता ॥११॥
दातव्यानि यथाशक्ति प्रेतोऽसौ प्रीणितो भवेत् । भाजनानि पदञ्चैव कुम्भाँश्चैव त्रयोदश १२॥
मुद्रिका वस्त्रयुग्मञ्च तथा छत्रमुपानहौ । एतावन्तः पदार्था हि प्रेतोद्देशेन दापयेत् ॥१३॥
वृषोत्सर्गे कृते तार्क्ष्य प्रेतो याति पराङ्गतिम् । योऽश्वं रथं गजं वापि ब्राह्मणे यदि दापयेत् ॥
स्वमहिम्नोऽनुसारेण तत्तत्सुखमवाप्नुयात् । नानालोकान्विचरति महिषीं यो ददाति च १५॥
यमवाहस्य जननी महिषी सुगतिप्रदा । ताम्बूलं पुष्पदानेन याम्यानां प्रीतिवर्द्धनम् १६॥
तेन संप्रीणिताः सर्वे तस्मिन्क्लेशं न कुर्वते । गोभूतिलहिरण्यादिदानानि निजशक्तितः ॥१७॥
मृतोद्देशेन यो दद्याज्जलपात्रञ्च मृण्मयम् । उदपात्रसहस्रस्य फलमाप्नोति मानवः ॥१८॥
यमदूता महारौद्राः करालाः कृष्णपिङ्गलाः । न भीषयन्ति तं तार्क्ष्य वस्त्रदाने कृते सति ॥१९॥
मार्गे वै गम्यमानस्तु तृषार्त्तः श्रमपीडितः । घटान्नदानयोगेन सुखी भवति निश्चितम् ॥२०॥
शय्यातूलीपट्टयुता दद्याद्देवद्विजातये । तया प्रेतत्वमुक्तोऽसौ मोदते सह दैवतैः ॥२१॥
एतत्ते कथितं तार्क्ष्य दानमन्त्येष्टिकर्मजम् । अधुना कथयिष्येऽहं देहे मृत्युप्रवेशनम् ॥२२॥

जातस्य मर्त्यलोकेऽस्मिन्प्राणिनो मरणं ध्रुवम्। पूर्वकाले मृतानां तु प्राणिनाञ्च खगेश्वर २३॥
सूक्ष्मो भूत्वा त्वसौ वायुर्निर्गच्छत्यस्य तद्गलात्। नवद्वारै रोमभिश्च जातानां तालुरन्ध्रकात्॥
पापिष्ठानामपानेन जीवो निष्क्रामति ध्रुवम्। कुणपं पतते पश्चान्निर्गते मरुदीश्वरे ॥२५॥
कालाहतः पतत्येव निराधारो यथा द्रुमः। पृथिव्यां लीयते पृथ्वी आपश्चैव तथाप्सु च ॥२६॥
तेजस्तेजसि लीयेत समीरे च समीरणः। आकाशे च तथाकाशं सर्वव्यापी तु शङ्करे ॥२७॥
तत्र कामादयः पञ्च काये पञ्चेन्द्रियाणि च। एते तार्क्ष्य समाख्याता देहे तिष्ठन्ति तस्कराः॥
कामक्रोधौ ह्यहङ्कारो मनस्तत्रैव नायकः। संहारकश्च कालोऽसौ पुण्यपापेन संयुतः ॥२९॥
जगतश्च स्वरूपञ्च निर्मितं स्वेन कर्मणा। गच्छेद्देहं पुनः सोऽपि सुकृतैर्दुष्कृतैर्युतम् ॥३०॥
पञ्चेन्द्रियसमायुक्तं सकलैर्विषयैः सह। प्रविवेश नवे गेहे गृहे दग्धे यथा गृही ॥३१॥
शरीरे ये समासीनाः सम्भवे सर्वधातवः। मूत्रं पुरीषं तद्योगाद्ये चान्ये धातवस्तथा ॥३२॥
पित्तं श्लेष्मा तथा मज्जा मांसं मेदस्तथैव च। अस्थि शुक्रञ्च स्नायुश्च देहेन सह दह्यते ॥३३॥
एतेषां कथिता तार्क्ष्य संस्थितिः सर्वदेहिनाम्। कथयामि पुनस्तेषां शरीरञ्च यथा भवेत् ३४॥
एकस्तम्भस्नायुबद्धं स्थूणाद्वयविभूषितम्। इन्द्रियैश्च समायुक्तं नवद्वारं शरीरकम् ॥३५॥
विषयैश्च समाक्रान्तं कामक्रोधसमाकुलम्। रागद्वेषसमाकीर्णं तृष्णादुर्गतिसंयुतम् ॥३६॥
लोभजालपरिच्छिन्नं मोहवस्त्रेण वेष्टितम्। सुबद्धं मायया चैव चेतनाधिष्ठितं पुरम् ॥३७॥
षाट्कौशिकसमुत्पन्नं पुरं पुरुषसंश्रितम्। एतद्गुणसमायुक्तं शरीरं सर्वदेहिनाम् ॥३८॥
तिष्ठन्ति देवताः सर्वा भुवनानि चतुर्दश। आत्मानं ये न जानन्ति ते नराः पशवः स्मृताः॥
एवमेव समाख्यातं शरीरं ते चतुर्विधम्। चतुरशीतिलक्षाणि निर्मितानि मया पुरा ॥४०॥
स्वेदजा उद्भिजाश्चैव अण्डजाश्च जरायुजाः। एतत्ते सर्वमाख्यातं यत्पृष्टोऽहं त्वयानघ ॥४१॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे प्रेतकल्पे एकविंशोऽध्यायः ॥२१॥

द्वाविंशोऽध्यायः

गरुड उवाच

कथमुत्पद्यते जन्तुर्भूतग्रामचतुष्टये। त्वचा रक्तं तथा मांसं मेदो मज्जास्थि जीवितम् ॥१॥
पाणिपादौ तथा जिह्वा गुह्यं केशा नखास्तथा। सन्धिमार्गाश्च बहुशो रेखानानाविधा तथा ॥२॥
कामक्रोधौ भयं लज्जा मनो हर्षः सुखासुखम्। चित्रितं छिद्रितं वापि वसाजालेन वेष्टितम् ॥३॥

इन्द्रजालमहं मन्ये संसारेऽसारसागरे । कर्त्ता कोऽत्र महाबाहो सर्वं वद मम प्रभो ॥ ४ ॥

श्रीभगवानुवाच

कथयामि परं गुह्यं कालोद्धारविनिर्णयम् । येन विज्ञातमात्रेण सर्वज्ञत्वं प्रजायते ॥ ५ ॥
साधु पृष्टं त्वया लोके यदिदं जीवकारणम् । वैनतेय शृणुष्व त्वमेकाग्रकृतमानसः ॥ ६ ॥
ऋतुकाले तु नारीणां त्यजेद्दिनचतुष्टयम् । तिष्ठत्यस्मिन्ब्रह्महत्या पुराकृतसमुद्भवा ॥ ७ ॥
वेधाः शक्रात्समुत्सार्य्य चतुर्थांशेन दत्तवान् । तावन्नालोक्यते वक्त्रं यावत्पापश्चतिष्ठति ॥ ८ ॥
प्रथमेऽहनि चाण्डाली द्वितीये ब्रह्मघातिनी । तृतीये रजकी प्रोक्ता चतुर्थेऽहनि शुध्यति ॥ ९ ॥
सप्ताहात्पितृदेवानां भवेद्योग्या व्रतार्चने । सप्ताहमध्ये यो गर्भस्तत्सम्भूतिर्मलिम्लुचा ॥१०॥
युग्मासु पुत्रा जायन्ते स्त्रियोऽयुग्मासु रात्रिषु । पूर्वसप्तकमुत्सृज्य ततो युग्मेषु संविशेत् ॥११॥
षोडशर्तुनिशाः स्त्रीणां सामान्यात्समुदाहृताः । या चतुर्दशमी रात्रिर्गर्भस्तिष्ठति तत्र चेत् १२॥
गुणभाग्यनिधिस्तत्र पुत्रो जायेत धार्मिकः । सा निशा तत्र सामान्यैर्न लभ्येत कदाचन ॥१३॥
प्रायशः सम्भवन्त्यत्र गर्भास्त्वष्टाहमध्यतः । पञ्चमेऽहनि नारीणां गौल्ममाधुर्य्यभोजनम् ॥१४॥
कटुकारश्च तीक्ष्णश्च त्याज्यं युवतिभोजनम् । स्त्री क्षेत्रमौषधी पात्रं बीजं वाप्यमृताशनम् ॥१५॥
तत्र वप्ता नरः सम्यग्जन्तुस्तत्र निषिच्यते । तस्याश्चैवातपो वर्ज्यः शीतलं केवलं चरेत् ॥१६॥
ताम्बूलगन्धश्रीखण्डैः समं सङ्गः शुभेऽहनि । निषेकसमये यादृङ् नरचित्ते विकल्पना ॥१७॥
तादृक्स्वभावसम्भूतिर्जन्तुर्वसति कुक्षिगः । शुक्रशोणितसंयोगे पिण्डोत्पत्तिः प्रजायते ॥१८॥
वर्द्धते जठरे जन्तुस्तारापतिरिवाम्बरे । चैतन्यं बीजरूपे हि शुक्रे नित्यं व्यवस्थितम् ॥१९॥
कामं चित्तञ्च शुक्रञ्च यदा ह्येकत्वमाप्नुयुः । तदा द्रवमवाप्नोति योषागर्भाशये नरः ॥२०॥
रक्ताधिक्ये भवेन्नारी शुक्राधिक्ये भवेन्नरः । शुक्रशोणितयोः साम्ये गर्भः षण्डत्वमाप्नुयात् २१॥
अहोरात्रेण कलिलं बुद्बुदं पञ्चभिर्दिनैः । दशमेऽह्नि भवेन्मांसमिश्रधातुसमन्वितम् ॥२२॥
घनमांसञ्च विंशाहे गर्भस्थो वर्द्धते क्रमात् । पञ्चविंशतिपूर्णाहे बलं पुष्टिश्च जायते ॥२३॥
तथा मासे तु सम्पूर्णे पञ्च तत्त्वानि धारयेत् । मासद्वये तु सम्पूर्णे त्वचा मेदश्च जायते ॥२४॥
मज्जास्थीनि त्रिभिर्मासैः केशा गुल्फश्चतुर्थके । कर्णौ च नासिकाकुक्षी जायेते मासि पञ्चके ॥
कण्ठरन्ध्रं तथा पृष्ठं गुह्याख्यं मासि सप्तमे । अङ्गप्रत्यङ्गसम्पूर्णो गर्भो मासैरथाष्टभिः ॥२६॥
नवमे मासि सम्प्राप्ते गर्भस्थस्य रतिः स्वयम् । इच्छा सञ्जायते तस्य गर्भवासविनिःसृतौ ॥२७॥
नारी वाथ नरो वाथ नपुंस्कं वाभिजायते । नवमे दशमे वापि जायते यश्च भौतिकः ॥२८॥
प्रसूतवायुनाऽऽकृष्टः पीडया विह्वलीकृतः । क्षितिर्वारि हविर्भोक्ता पवनाकाशमेव च ॥२९॥
एभिर्भूतैः पीडितस्तु निबद्धः स्नायुबन्धनैः । त्वचास्थिनाड्यो रोमाणि मांसञ्चैवात्र पञ्चमम् ॥

एते पञ्च गुणाः प्रोक्ताः मया भूमेः खगेश्वर । यथा पञ्च गुणा आपस्तथा शृणु च काश्यप ॥३१॥
लाला मूत्रं तथा शुक्रं मज्जा रक्तञ्च पञ्चमम् । अपां पञ्च गुणाः प्रोक्ता ज्ञातव्यास्ते प्रयत्नतः ॥
क्षुधा निद्रा च तृष्णा च आलस्यं कान्तिरेव च । तेजः पञ्चगुणं तार्क्ष्य प्रोक्तं सर्वत्र योगिभिः ॥
धावनं श्वसनञ्चैव आकुञ्चनप्रसारणम् । निरोधः पञ्चमः प्रोक्तो वायोः पञ्च गुणाः स्मृताः ॥
रागद्वेषौ तथा लज्जा भयं मोहस्तथैव च । इत्येतत्कथितं तार्क्ष्य वायुजं गुणपञ्चकम् ॥३५॥
घोषश्छिद्राणि गाम्भीर्यं श्रवणं सर्वसंश्रयः । आकाशस्य गुणाः पञ्च ज्ञातव्यास्तार्क्ष्य यत्नतः ॥
श्रोत्रं त्वक्चक्षुषी जिह्वा नासा बुद्धीन्द्रियाणि च । पाणिपादौ गुदं वाक्चोपस्थं कर्मेन्द्रियाणि च ॥
इड़ा च पिङ्गला चैव सुषुम्ना च तृतीयका । गान्धारी गजजिह्वा च पूषा चैव यशा तथा ३८॥
अलम्बुषा कुहूश्चैव शङ्खिनी दशमी तथा । पिण्डमध्ये स्थिता ह्येताः प्रधाना दश नाड़यः ३९॥
प्राणोऽपानः समानश्च उदानो व्यान एव च । नागः कूर्मश्च कृकरो देवदत्तो धनञ्जयः ॥४०॥
इत्येते वायवः प्रोक्ता दश देहेषु संस्थिताः । केवलं भुक्तमन्नञ्च पुष्टिदं सर्वदेहिनाम् ॥४१॥
नयति प्राणदो वायुः शरीरे सर्वसन्धिषु । आहारो भुक्तमात्रस्तु वायुना क्रियते द्विधा ॥४२॥
सम्प्रविश्य गुदे याति पृथगन्नं पृथग्जलम् । ऊर्ध्वमग्नेर्जलं कृत्वा तदन्नञ्च जलोपरि ॥४३॥
अग्नेश्चाधः स्थितः प्राणो ह्यग्निं तं तु धमेच्छनैः । वायुना धम्यमानोऽग्निः पृथक्किट्टं पृथग्रसम् ॥
मलैर्द्वादशभिः किट्टं भिन्नं देहात्पृथग्भवेत् । कर्णाक्षि नासिका जिह्वा दन्ता नाभिर्गुदं वपुः ॥
नखा मलाश्रयश्चेदं विण्मूत्रं वेत्यनन्तरम् । शुक्रशोणितसंयोगाद्देहः षाट्कौशिकः स्मृतः ॥४६॥
रोमकोटिस्तथा तिस्रो ह्यर्द्धकोटिसमन्विता । द्वात्रिंशद्दशनास्तत्र सामान्याद्विनतासुत ॥४७॥
विंशतिस्तु नखाः केशास्त्रिलक्षं मुखमूर्ध्वजाः । मांसं पलसहस्रैकं सामान्याद्देहसंस्थितम् ॥४८॥
रक्तं पलशतं तार्क्ष्य बद्धमेतत्पुरातनैः । पलानि दश मेदश्च त्वचा चैव तु तत्समः ॥४९॥
पलं द्वादशकं मज्जा महारक्तं पलत्रयम् । शुक्रं द्विकुडवं ज्ञेयं शोणितं कुड़वं स्मृतम् ॥५०॥
श्लेष्मणश्च षडर्द्धञ्च विण्मूत्रं तत्प्रमाणतः । एष पिण्डः समाख्यातो वैभवं सम्प्रचक्ष्महे ॥५१॥
ब्रह्माण्डे ये गुणाः सन्ति शरीरे ते व्यवस्थिताः । पातालभूधरा लोकास्तथा द्वीपाः ससागराः ॥
आदित्याद्या ग्रहाः सर्वे पिण्डमध्ये व्यवस्थिताः ॥५२॥
पादाधस्तु तलं ज्ञेयं पादोर्ध्वं वितलं तथा । जानुभ्यां सुतलं विद्धि जङ्घासु च तलातलम् ५३॥
तथा रसातलञ्चोर्वोर्गुह्यदेशे महातलम् । पातालं कटिसंस्थं तु पादतो लक्षयेद्बुधः ॥५४॥
भूर्लोकं नाभिमध्ये तु भुवर्लोकं तदूर्द्धतः । स्वर्लोकं हृदये विन्द्यात्कण्ठदेशे महस्तथा ॥५५॥
जनलोकं वक्त्रदेशे तपोलोकं ललाटके । सत्यलोकं महारन्ध्रे भुवनानि चतुर्दश ॥५६॥
त्रिकोणे संस्थितो मेरुरधःकोणे च मन्दरः । दक्षिणे चैव कैलासो वामकोणे हिमाचलः ॥५७॥

निषधश्चोर्ध्वभागे तु दक्षिणे गन्धमादनः । रमणो वामरेखायां सप्तैते कुलपर्वताः ॥५८॥
अस्थिस्थाने स्थितो जम्बुः शाकं मज्जासु संस्थितम् ।
कुशद्वीपः स्थितो मांसे क्रौञ्चद्वीपः शिरःस्थितः ॥५९॥
त्वचायां शाल्मलीद्वीपो गोमेदो रोमसञ्चये । नखस्थं पुष्करद्वीपं सागरास्तदनन्तरम् ॥६०॥
क्षीरोदश्च तथा मूत्रे क्षीरे क्षीरोदसागरः । सुरोदधि श्लेष्मसंस्थो मज्जायां घृतसागरः ॥६१॥
रसोदधिं रसे विन्द्याच्छोणिते दधिसागरम् । स्वादूदकञ्च विट्स्थाने गर्भोदं शुक्रसंस्थितम् ६२॥
नादचक्रे स्थितः सूर्यो बिन्दुचक्रे तु चन्द्रमाः ।
लोचनाभ्यां कुजो ज्ञेयो हृदये च बुधः स्मृतः ॥६३॥
विष्णुस्थाने गुरुं विन्द्याच्छुक्रे शुक्रो व्यवस्थितः ॥६४॥
नाभिस्थाने स्मृतो मन्दो मुखे राहुः स्मृतः सदा। पादस्थाने स्मृतः केतुः शरीरे ग्रहमण्डलम् ॥
विभक्तञ्च समाख्यातं आपादतलमस्तका । उत्पन्ना ये हि संसारे म्रियन्ते ते न संशयः ॥६६॥
बुभुक्षा च तृषा रौद्रादाद्योद्भूता च मूर्च्छना । यत्र पीडास्त्विमा रौद्राः सर्पवृश्चिकदंशजाः ६७॥
तप्तवालुकमध्येन प्रज्वलद्वह्निमध्यतः । केशग्राहैः समाक्रान्ता नीयन्ते यमकिङ्करैः ॥६८॥
पापिष्ठास्त्वधमास्तार्क्ष्य दयाधर्मविवर्जिताः । यमलोके वसन्त्येव कुक्ष्यां जन्म च विद्यते ६९॥
एवं सञ्जायते तार्क्ष्य मर्त्ये जन्तुः स्वकर्मभिः । आयुः कर्म च वित्तञ्च विद्या निधनमेव च ॥
पञ्चैतानि हि सृज्यन्ते गर्भस्थस्यैव देहिनः ॥७०॥
कर्मणा जायते जन्तुः कर्मणैव प्रलीयते । सुखं दुःखं भयं क्षेमं कर्मणैवाभिपद्यते ॥७१॥
अधोमुखं चोर्ध्वपादं गर्भाद्वायुः प्रकर्षति । जन्मतो वैष्णवी माया सम्मोहयति सत्वरम् ॥७२॥
स्वकर्मकृतसम्बन्धो जन्तुर्जन्म प्रपद्यते । सुकृतादुत्तमो भोगी भाग्यवान्सुकुले भवेत् ॥७३॥
यथा दुष्कृतकर्मा हि कुले हीने प्रजायते । दरिद्रो व्याधितो मूर्खः पापकृद्दुःखभाजनः ॥
उत्पत्तेर्लक्षणं जन्तोः कथितं ऋषिपुत्रक ॥७४॥
इति श्रीगारुडे महापुराणे प्रेतकल्पे द्वाविंशोऽध्यायः ॥२२॥

त्रयोविंशोऽध्यायः

तार्क्ष्य उवाच

यमलोकं कियन्मात्रं त्रैलोक्ये सचराचरे । विस्तारं तस्य मे ब्रूहि अध्वा चैव कियान्स्मृतः ॥१॥
कैः कैः पापैः कृतैर्देव केन वा शुभकर्मणा । गच्छन्ति मानवास्तत्र कथयस्व जनार्दन ॥२॥

श्रीभगवानुवाच

षडशीतिसहस्राणि योजनानां प्रमाणतः । यमलोकस्य चाध्वानं ह्यन्तरा मानुषस्य च ॥३॥
ध्मातताम्रमिवातप्तो ज्वलन्दुर्गो महापथः । तत्र गच्छन्ति पापिष्ठा मानवा मूढचेतसः ॥४॥
कण्टकास्तीक्ष्णकाश्चैव विविधा घोरदारुणाः । तत्तु वर्त्म क्षितिर्व्याप्तं हुताशश्च तथोल्वणः ५॥
वृक्षच्छाया न तत्रास्ति यत्र विश्रमते नरः । गृहीतकालपाशैस्तु कृतैः कर्मभिरुल्वणैः ॥६॥
तस्मिन्मार्गे न चान्नाद्यं येन प्राणान्प्रपोषयेत् । जलं न दृश्यते तत्र तृषा येन विलीयते ॥७॥
क्षुधया पीड़ितो याति तृषया च महापथि । शीतेन कम्पितः क्वापि यममार्गेऽतिदुर्गमे ॥८॥
यद्यस्य यादृशं पापं स पन्थास्तस्य तादृशः । सुदीनाः कृपणा मूढ़ा दुखैर्व्याप्तास्तरन्ति वै ॥९॥
रुदन्ति करुणं केचित्केचिद्रौद्रं वदन्ति वै । आत्मकर्मकृतैर्दोषैस्तप्यमाना मुहुर्मुहुः ॥१०॥
ईदृग्विधः स वै पन्था विज्ञेयो दारुणः खग । वितृष्णा ये नरा लोके सुखं तस्मिन्व्रजन्ति ते ॥
यानि यानि च दानानि दत्तानि भुवि मानवैः । तानि तान्युपतिष्ठन्ति यमलोके पुरःसरम् ॥
पापिनां नोपतिष्ठन्ति दत्ता श्राद्धजलाञ्जलिः । भ्रमन्ति वायुभूताश्च ये क्षुद्राः पापकर्मिणः १३॥
ईदृशं वर्त्म वै रौद्रं कथितं तव सुव्रत । पुनश्च कथयिष्यामि यमलोकस्य या गतिः ॥१४॥
याम्यनैर्ऋतयोर्मध्ये पुरं वैवस्वतस्य च । सर्वं वज्रमयं दिव्यमभेद्यं यत्सुरासुरैः ॥१५॥
चतुरस्रं चतुर्द्वारं सप्तप्राकारतोरणम् । स्वयं तिष्ठति तस्यान्तर्यमो दूतैः समन्वितः ॥१६॥
योजनानां सहस्रं हि प्रमाणेन तु दृश्यते । सर्वं रत्नमयं दिव्यं विद्युज्ज्वालार्कवर्चसम् ॥१७॥
तद् गृहं धर्मराजस्य विस्तीर्णं काञ्चनप्रभम् । पञ्चविंशप्रमाणेन योजनानि समुच्छ्रितम् ॥१८॥
वृतं स्तम्भसहस्रैस्तु वैदूर्यमणिमण्डितम् । मुक्ताजालं गवाक्षं तु पताकाशतभूषितम् ॥१९॥
घण्टाशतनिनादाढ्यं तोरणानां शतैर्वृतम् । एवमादिभिरन्यैश्च भूषणैर्भूषितं सदा ॥२०॥
तत्रस्थो भगवान्धर्म आसने नियमे शुभे । दशयोजनविस्तीर्णे नीलजीमूतसन्निभे ॥२१॥
धर्मज्ञो धर्मशीलश्च धर्मयुक्तहितो यमः । भयदः पापयुक्तानां धर्मिणाञ्च सुखप्रदः ॥२२॥
मन्दमारुतसंयोगैर्विविधैरुत्सवैस्तथा । व्याख्याभिर्बहुभियुक्तः शङ्खवादित्रनिस्वनैः ॥२३॥
पुरमध्ये प्रवेशे तु चित्रगुप्तस्य वै गृहम् । पञ्चविंशतिसंख्यानां योजनानां प्रमाणतः ॥२४॥
दशोच्छ्रितं महादिव्यं लोहप्राकारवेष्टितम् । प्रतोलीशतसञ्चारं पताकाशतशोभितम् ॥२५॥
दीपिकाशतसंकीर्णं गीतध्वनिसमाकुलम् । चित्रितं चित्रकुशलैश्चित्रगुप्तस्य वै गृहम् ॥२६॥
मणिमुक्तामये दिव्ये आसने परमाद्भुते । तत्रस्थो गणयत्यायुर्मानुषेष्वितरेषु च ॥२७॥
न मुह्यति कथञ्चित्सः सुकृते दुष्कृतेऽपि च । जन्मनोपार्जितं यावत्सदसद्वेति तस्य तत् ॥२८॥

दशाष्टदोषरहितं कृतं कर्म लिखत्यसौ । चित्रगुप्तगृहात्प्राच्यां ज्वरस्यास्ति महागृहम् ॥२९॥
दक्षिणे चापि शूलस्य लूताविस्फोटकस्य च । पश्चिमे कालपाशस्य अजीर्णस्यारुचेस्तथा ॥३०॥
मध्यपीठोत्तरे ज्ञेया तथा चान्या विसूचिका । ऐशान्यां वै शिरोऽर्त्तिः स्यादाग्नेय्यां चैव मूर्च्छना ॥
अतिसारस्तु नैर्ऋत्यां वायव्यां दाहसंज्ञकः । एभिः परिवृतो नित्यं चित्रगुप्तः स तिष्ठति ॥
यत्कर्म क्रियते यैश्च तत्सर्वं तु लिखत्यसौ ॥३२॥
धर्मराजगृहद्वारि दूतास्ताक्ष्र्य तथा दिशि । तिष्ठन्ति पापकर्माणः पीड़यन्तो नराधमान् ॥३३॥
यमदूतैर्महापाशैस्ताड्यमानाश्च मुद्गरैः । बध्यन्ते विविधैः पाशैः पूर्वकर्मकृतैर्नराः ॥३४॥
नानाप्रहरणैश्चैव नानायन्त्रैस्तथापरैः । पीड्यन्ते पापकर्माणः क्रकचैः काष्ठवद्द्विधा ॥३५॥
अन्ये च ज्वलमानैस्तु अङ्गारैः परितो भृशम् । पूर्वकर्मविपाकेन श्रायन्ते लोहपिण्डवत् ॥३६॥
क्षिप्ताश्चान्ये धरापृष्ठे कुठारेण च कर्त्तिताः । क्रन्दमानाश्च दृश्यन्ते पूर्वकर्मविपाकतः ॥३७॥
केचिन्निगड़पाशैश्च तैलपाकैस्तथापरे । हन्यन्ते यमदूतैश्च पापिष्ठाः सुभृशं नराः ॥३८॥
ऋणानि प्रार्थयन्त्यन्ये देहि देहीति कोटिशः । यमलोके मया दृष्टाः स्वमांसं भक्षयन्ति हि ३९॥
इत्येवं बहवस्ताक्ष्र्य नरकाः पापिनां स्मृताः । किमेभिर्विस्तरप्रोक्तैः सर्वशास्त्रेपु भापितैः ॥
दानोपकारं वक्ष्यामि यथा तत्र सुखं भवेत् ॥४०॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे प्रेतकल्पे त्रयोविंशोऽध्यायः ॥२३॥

चतुर्विंशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

शृणु ताक्ष्र्य यथान्यायं धर्माधर्मस्य लक्षणम् । सुकृतं दुष्कृतं नृणामग्रे धावति धावति ॥ १ ॥
कृते तपः प्रशंसन्ति त्रेतायां ज्ञानसाधनम् । द्वापरे यज्ञदानञ्च दानमेकं कलौ युगे ॥ २ ॥
गृहस्थानां स्मृतौ प्रोक्तान्धर्मानालपतां तथा । इष्टापूर्त्तं स्वया शक्त्या कुर्वतां नास्ति पातकम् ॥
वृक्षास्तु रोपिता येन तड़ागादि जलाशयाः । कृता येन हि मार्गेऽस्मिन्सुखं याति स मानवः ॥
हिमे तुषारशीताभ्यां पीड्यते न यमालये । तप्यमानः सुखं याति इन्धनानि ददाति यः ॥ ५ ॥
तृप्ता विभूषिताश्चैव गन्धपुष्पसमन्विताः । भूमिदानैः सुखं यान्ति सर्वकामैश्च पूरिताः ॥ ६ ॥
सुवर्णमणिमुक्तादिवस्त्राण्याभरणानि च । तेन सर्वमिदं दत्तं येन दत्ता वसुन्धरा ॥ ७ ॥
यानि यानि च दानानि कृतानि भुवि मानवैः । यमलोकपथे तानि तिष्ठन्त्यग्रे समीपतः ॥ ८ ॥

व्यञ्जनानि विचित्राणि भक्ष्यभोज्यानि यानि च । विधिना ददते पुत्रैः पित्रे तदुपतिष्ठति ॥ ९ ॥
आत्मा वै पुत्रनामा हि पुत्रस्त्राता यमालये । नरकात्पितरं त्रायेत्तेन पुत्र इति स्मृतः ॥१०॥
अतो देयञ्च पुत्रेण श्राद्धमाजीवितावधि । अतिवाहस्तदा प्रेतो भोगांश्च लभते हि सः ॥११॥
दह्यमानस्य प्रेतस्य स्वजनैर्यैर्जलाञ्जलिः । दीयते प्रीतरूपोऽसौ प्रेतो याति यमालयम् ॥१२॥
अपक्वे मृण्मये पात्रे दुग्धं दद्याद्दिनत्रयम् । काष्ठत्रयं गुणैर्बद्ध्वा प्रेतप्रीत्यै चतुष्पथे ॥१३॥
प्रथमेऽह्नि द्वितीये च तृतीये च तथा खग । आकाशस्थः पिबेद्दुग्धं प्रेतो वायुवपुर्धरः ॥१४॥
चतुर्थे सञ्चयः कार्य्यः सर्वैस्तु सह गोत्रजैः । ततः सञ्चयनादूर्ध्वं गङ्गास्पर्शो विधीयते ॥१५॥
द्वितीये च तृतीये च चतुर्थे वापि साग्निकैः । अस्थिसञ्चयनादूर्ध्वं दद्याज्जलाञ्जलिं ततः ॥१६॥
न पूर्वाह्ने न मध्याह्ने नापराह्ने च सन्धिषु । प्रातः प्रथमयामेषु दद्यादाद्यजलाञ्जलिम् ॥१७॥
पुत्रेण दत्तैस्तैः सर्वैर्गोत्रजैः सह बान्धवैः । स्वजात्यैः परजात्यैश्च देय आद्यजलाञ्जलिः ॥१८॥
गन्तव्यं नैव विप्रेण दातुं शूद्रे जलाञ्जलिम् । निवृत्ताश्च यदा तीराल्लोकाचारस्ततो भवेत् १९॥
पञ्चत्वञ्च गते शूद्रे यः काष्ठं नयते चिताम् । अनुव्रजेत्तथा विप्रस्त्रिरात्रमशुचिर्भवेत् ॥२०॥
त्रिरात्रे तु ततः पूर्णे नदीं गत्वा समुद्रगाम् । प्राणायामशतं कृत्वा घृतं प्राश्य विशुध्यति ॥२१॥
शूद्रो गच्छति सर्वेषु वैश्यस्त्रिषु द्वयेऽपरः । गच्छति स्वेषु वर्णेषु विप्रो दातुं जलाञ्जलिम् २२॥
अधरोत्तरवस्त्राभ्यां वस्त्रग्रन्थिञ्च दापयेत् । एकवस्त्रः प्रदद्यात्तु सदर्भश्च तिलाञ्जलिम् ॥२३॥
यदा दातुञ्च गच्छन्ति दन्तधावनपूर्वकम् । त्यजन्ति गोत्रजाः सर्वे दिनानि नव काश्यप २४॥
जलाञ्जलिं यदा दातुं गच्छति द्विजसत्तम । यस्मिन्स्थाने मिलेद्यस्तु अध्वन्यपि गृहेऽपि वा २५॥
विश्लेषस्तु ततः स्थानादादाहाद्विहितो बुधैः । स्त्रीजनश्चाग्रतो गच्छेत्पृष्ठतो नरसञ्चयः ॥२६॥
तत आचमनं कार्यं पाषाणोपरि संस्थितैः । यावांश्च सर्षपान्दूर्वां पूर्णपात्रे विलोकयेत् ॥२७॥
प्राशयेन्निम्बपत्राणि स्नेहस्नानं समाचरेत् । गोत्रजेन च कर्त्तव्यं गृहान्नं नैव भोजयेत् ॥२८॥
भुञ्जीत मृण्मये पात्रे उत्तानञ्च विवर्जयेत् । मृतकस्य गुणा ग्राह्या यमगाथां समुद्गिरेत् २९॥
शुभाशुभौ च ध्यायन्तः पूर्वकर्मोपसञ्चितौ । अलब्धेन च देहेन भुङ्क्ते सुकृतदुष्कृते ॥३०॥
वायुरूपो भ्रमत्येव वायुः कुट्यां स गच्छति । दशाहे कर्म क्रियते जायते तेन सा कुटी ॥३१॥
क्षुधाविभ्रममापन्नो दशाहे यो न तर्पितः । पिण्डैस्तस्य तदाऽन्नञ्च आकाशे भ्रमते तु सः ३२॥
दिनत्रयं वसेत्तोये अग्नौ चापि दिनत्रयम् । आकाशे च वसेत्त्रीणि दिनमेकञ्च वासवे ॥३३॥
गृहद्वारे श्मशाने वा तीर्थे देवालये तथा । यत्रादौ दीयते पिण्डस्तत्र सर्वान्समापयेत् ॥३४॥
एकादशाहे यच्छ्राद्धं तत्सामान्यमुदाहृतम् । चतुर्णामपि वर्णानां शुद्धये स्नानमिष्यते ॥३५॥

कृत्वा चैकादशाहं तु पुनः स्नात्वा शुचिर्भवेत् । न भवेच्च यदा गोत्री परोऽपि विधिमाचरेत् ॥
स्त्री वापि पुरुषः कश्चिदिष्टये कुरुते क्रियाम् । श्राद्धं कृतं तु यैर्वस्त्रैस्तानि त्यक्त्वा गृहं विशेत् ॥
अगोत्रश्च सगोत्रो वा नरो नार्य्यप्यथापि च । प्रथमेऽहनि यः कुर्य्यात् स दशाहं समापयेत् ॥
अशौचं यावदेव स्यात्तावत्पिण्डोदकक्रिया । चतुर्णामपि वर्णानामेष एव विधिः स्मृतः ॥३९॥
एकादशाहे प्रेतस्य दद्यात्पिण्डं समन्त्रकम् । सिद्धान्नं तस्य दातव्यं शर्करापूपकादयः ॥४०॥
द्वादशप्रतिमास्यानि श्राद्धान्येकादशे तथा । त्रिपक्षं सञ्चयञ्चैव द्वे रिक्ते खग षोडश ॥४१॥
मासं प्रति प्रदातव्यं मृताहे या तिथिः स्मृता । स मासः प्रथमो ज्ञेय अहरेकादशं तु यः ॥४२॥
सा तिथिर्मासिके श्राद्धे मृतो यस्मिन्दिने नरः । रिक्तासु च त्रिपक्षे च तां तिथिं नाचरेद्बुधः ॥
पूर्णमास्यां मृतो योऽसौ चतुर्थी तस्य ऊनका । चतुर्थ्याञ्च मृतो योऽसौ तिथिरूना चतुर्दशी ॥
नवम्याञ्च मृतो योऽसौ तिथिरूना चतुर्दशी । एता रिक्ताश्च विज्ञेया अन्त्येष्टौ कुशलेन च ४५॥
एकादशाहोद्धरितं प्रेतोद्देशेन पाचितम् । चतुष्पथे त्यजेदन्नं पुनः स्नानं समाचरेत् ॥४६॥
शय्यादानं प्रशंसन्ति सर्वे देवा द्विजोत्तम । अनित्यं जीवितं यस्मात्पश्चात्कोऽनु प्रदास्यति ॥
तावद्बन्धुः पिता तावद्यावज्जीवति मानवः । मृतानामन्तरं ज्ञात्वा क्षणात्स्नेहो निवर्त्तते ॥४८॥
आत्मा वै ह्यात्मनो बन्धुरात्मा चैवात्मनो रिपुः । जीवन्नपीति सञ्चिन्त्य पूर्वं धर्ममनुस्मरेत् ॥
मृतानां कः सुतो यच्चेच्छुभशय्यां सतूलिकाम् । एवं जीवति सर्वस्वं स्वहस्तेनैव दापयेत् ५०॥
तस्माच्छय्यां समासाद्य सारदारुमयीं शुभाम् । दन्तपत्रचितां रम्यां हेमपट्टैरलङ्कृताम् ॥५१॥
रक्ततूलिप्रतिच्छन्नां शुभशीर्षोपधानकाम् । प्रच्छादनपटीयुक्तां गन्धधूपाधिवासिताम् ॥५२॥
तस्यां संस्थाप्य हैमञ्च हरिं लक्ष्म्या समन्वितम् । घृतपूर्णञ्च कलशं तत्रैव परिकल्पयेत् ॥५३॥
ताम्बूलं कुङ्कुमाक्षोदं कर्पूरागुरुचन्दनम् । दीपकोपानहौ छत्रं चामरासनभाजनम् ॥५४॥
पार्श्वेषु स्थापयेद्भक्त्या सप्त धान्यानि चैव हि । शयनस्थञ्च भवति यच्च स्यादुपकारकम् ॥५५॥
भृङ्गारकादर्शपञ्चवर्णवितानशोभितम् । शय्यामेवंविधां कृत्वा ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥५६॥
सपत्नीकाय सम्पूज्य स्वर्लोकसुखदायिनी । वस्त्रैः सुशोभनैः पूज्य चोलकं परिधापयेत् ॥५७॥
ततोऽर्घ्यश्च प्रदातव्यः पञ्चरत्नजलाक्षतैः । यथा कृष्ण त्वदीया हि अशून्या क्षीरसागरे ॥५८॥
शय्या भूयान्ममापीयं तथा जन्मनि जन्मनि । एवं तल्पं तथा कृष्णं क्षमाप्य च विसर्जयेत् ॥
एकादशाहे सम्प्राप्ते विधिरेषः प्रकीर्त्तितः । ददाति यदि धर्मार्थे बान्धवो बान्धवे मृते ॥६०॥
तैस्तैराप्यायितः प्रेतः परलोके सुखी भवेत् । विशेषमत्र पक्षीन्द्र कथ्यमानं मया शृणु ॥६१॥
उपयुक्तं तु तस्यासीद्यत्किञ्चिद्धि गृहे पुरा । तस्या गात्रे च यल्लग्नं वस्त्रं भाजनवाहनम् ॥६२॥

अभीष्टं यच्च तस्यासीत् तत्सर्वं परिकल्पयेत् । पुरन्दरपुरे चैव सूर्य्यपुत्रालये तथा ॥६३॥
उपतिष्ठेत्सुखं जन्तुः शय्यादानप्रभावतः । पीड़यन्ति न तं याम्याः पुरुषा भीषणाननाः ६४॥
न घर्मेण न शीतेन बाध्यते स नरः क्वचित् । शय्यादानप्रभावेण प्रेतो मुच्येत बन्धनात् ॥६५॥
अपि पापसमायुक्तः स्वर्गलोकं स गच्छति । विमानवरमारूढः सेव्यमानोऽप्सरोगणैः ॥६६॥
आभूतसंप्लवं यावत्तिष्ठेत्पातकवर्जितः । नवकं षोडशश्राद्धं शय्यां संवत्सरक्रियाम् ॥६७॥
भर्तुर्या कुरुते नारी तस्याः श्रेयो भवेदिह । उपकाराय सा भर्त्तुर्जीवन्ती च मृता तथा ॥६८॥
उद्धरेज्जीवमाना सा पतिं सत्यवती सती । स्त्रियो दद्याच्च शयने पुत्रो वापि गुणान्वितः ॥६९॥
प्रेतस्य प्रतिमां हैमीं कुङ्कुमञ्चैवमञ्जनम् । वस्त्रं भूषां तथा शय्यामेवं कृत्वा च दापयेत् ॥
उपकारकरं स्त्रीणां यद्भवेदिह किञ्चन । भूषणं तत्र संलग्नं वस्त्रभोगादिकञ्च यत् ॥७१॥
तत्सर्वं मेलयित्वा तु स्वे स्वे स्थाने निधापयेत् । पूजयेल्लोकपालांश्च ग्रहदेवान्विनायकम् ॥७२॥
ततः शुक्लाम्बरः स्नात्वा गृहीतकुसुमाञ्जलिः । इममुच्चारयेन्मन्त्रं विप्रस्य पुरतो बुधः ॥७३॥
प्रेतस्य प्रतिमा ह्येषा सर्वोपकरणैर्युता । सर्वरत्नसमायुक्ता तव विप्र निवेदिता ॥७४॥
आत्मा शम्भुः शिवा गौरी शक्रः सुरगणैः सह । तस्माच्छय्या प्रदातव्या एव आत्मा प्रसीदतु ॥
आचार्य्याय प्रदातव्या ब्राह्मणाय कुटुम्बिने । गृहीत्वा ब्राह्मणः शय्यां कोऽदादिति च कीर्त्तयेत्॥
बहुभ्यो न प्रदेयानि गौर्गृहं शयनं स्त्रियः । विभक्तदक्षिणा ह्येते दातारं पातयन्ति ते ॥७७॥
एवं यो वितरेत्तार्क्ष्य शृणु तस्य च यत्फलम् । साग्रं वर्षशतं दिव्यं स्वर्गलोके महीयते ७८॥
यत्पुण्यञ्च व्यतीपाते कार्त्तिक्यामयने तथा । द्वारकायाञ्च यत्पुण्यञ्चन्द्रसूर्य्यग्रहे तथा ॥७९॥
प्रयागे नैमिषे यच्च कुरुक्षेत्रे तथार्बुदे । गङ्गायां यमुनायाञ्च सिन्धुसागरसङ्गमे ॥८०॥
शय्यादानप्रभावेण तत्तत्फलमवाप्नुयात् । यत्रासौ जायते जन्तुर्भुङ्क्ते तत्रैव तत्फलम् ॥८१॥
कर्मक्षये क्षितौ जातो मानुषः शुभदर्शनः । महाधनी च धर्मज्ञः सर्वशास्त्रविशारदः ॥८२॥
पुनः स याति वैकुण्ठं मृतोऽसौ नरपुङ्गवः । दिव्यं विमानमारुह्य अप्सरोभिः समावृतः ॥
अर्होऽसौ हव्यकव्येषु पितृभिः सह मोदते ॥८३॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे प्रेतकल्पे चतुर्विंशोऽध्यायः ॥२४॥

पञ्चविंशोऽध्यायः

गरुड़ उवाच

अपरं मम सन्देहं कथयस्व जनार्दन । पुरुषस्य च दृष्ट्वा वै मातरं मृतिमागताम् ॥ १ ॥

पितामही जीवति च तथैव प्रपितामही । वृद्धप्रपितामही तद्वन्मातृसक्तः पिता तथा ॥ २ ॥
पितामहप्रपितामहौ वृद्धश्च प्रपितामहः । केन सा मेल्यते माता एतत्कथय मे प्रभो ॥ ३ ॥

श्रीकृष्ण उवाच

पुनरुक्तं प्रवक्ष्यामि सपिण्डीकरणं खग । उमा लक्ष्मीर्महावाणी सैवाभिर्मेलयेद्ध्रुवम् ॥ ४ ॥
त्रयः पिण्डभुजो ज्ञेयास्त्याजकाश्च त्रयः स्मृताः । त्रयः पिण्डानुलेपाश्च दशमः पंक्तिसन्निधौ ॥५॥
इत्येते पुरुषाः ख्याता पितृमातृकुलेषु च । तारयेद्यजमानस्तु दशपूर्वान्दशापरान् ॥ ६ ॥
सपिण्डः स भवेदादौ सपिण्डीकरणे कृते । अन्त्यस्तु त्याजको ज्ञेयो वृद्धस्तत्प्रपितामहः ॥ ७ ॥
अन्त्यस्तु त्याजको यस्तु लेपकः प्रथमो भवेत् । लेपकस्त्वन्तिमो यस्तु स भवेत्पंक्तिसन्निधौ ८ ॥
यजमानो भवेदेको दशपूर्वे दशापरे । इत्येते पितरो ज्ञेया एकविंशतिशाश्वताः ॥ ९ ॥
विधिना कुरुते यस्तु संसारे श्राद्धमुत्तमम् । ददते नात्र सन्देहः शृणु तस्यापि तत्फलम् ॥१०॥
पिता ददाति पुत्रान्वै गोधनञ्च पितामहः । हेमदाता भवेत्सोऽपि यस्तस्य प्रपितामहः ॥११॥
कृते श्राद्धे गुणा ह्येते पितॄणां तर्पणे स्मृताः । दद्याद्विपुलमन्नाद्यं वृद्धस्तु प्रपितामहः ॥१२॥
यस्य पुंसश्च मर्त्ये वै विच्छिन्ना सन्ततिः खग । स वसेन्नरके नित्यं पङ्के मग्नः करी यथा ॥१३॥
योन्यन्तरे हि यो जातो वृक्षः पक्षी सरीसृपः । न सन्ततिविनाशेऽपि मुच्यते नरकाद्ध्रुवम् १४॥
आचार्य्यस्तस्य शिष्यो वा दूरतोऽपि हि गोत्रजः । नारायणबलिं कुर्यात्तस्योद्देशेन भक्तितः १५॥
विमुक्तः सर्वपापेभ्यो मुक्तः स नरकाद्ध्रुवम् । स्वर्गे च स वसेन्नित्यं नात्र कार्या विचारणा ॥
आदौ कृत्वा धनिष्ठाञ्च एतन्नक्षत्रपञ्चकम् । रेवत्यन्तं सदा तस्य अशुभं सर्वदा भवेत् ॥१७॥
दाहस्तत्र न कर्त्तव्यो विप्रादिसर्वजातिषु । दीयते न जलं तत्र अशुभं सर्वदा भवेत् ॥१८॥
लोकयात्रा न कर्त्तव्या दुःखार्त्तः स्वजनो यदि । पञ्चकानन्तरं तस्य कर्त्तव्यं सर्वमन्यथा ॥१९॥
पुत्राणां गोत्रिणां तस्य सन्तापो ह्युपजायते । गृहे हानिर्भवेत्तस्य ऋक्षेष्वेषु मृतस्य च ॥२०॥
तथापि ऋक्षमध्ये तु दाहश्च विधिपूर्वकः । मानुषाणां हितार्थाय सद्य आहुतिकारणात् २१॥
सद्य आहुतिदं पुण्यं तीर्थं तद्दाह्यमुत्तमम् । विप्रैर्नियमितः कार्यो मन्त्रैस्तु विधिपूर्वकम् २२॥
शवस्य तु समीपे च क्षिप्यन्ते पुत्तलास्ततः । दर्भमयाश्च चत्वार ऋक्षमन्त्राभिपूजिताः ॥२३॥
ततो दाहश्च कर्त्तव्यः तैश्च पुत्तलकैः सह । सूतकान्ते ततः पुत्रः कुर्य्याच्छान्तिकमुत्तमम् ॥
पञ्चकेषु मृतो योऽसौ न गतिं लभते नरः । तिलान्गाञ्च हिरण्यञ्च तस्योद्देशे घृतं ददेत् ॥२५॥
विप्राणां दीयते दानं सर्वोपद्रवनाशनम् । सूतकान्ते सुतैरेवं स प्रेतो लभते गतिम् ॥२६॥
भोजनोपानहौ छत्रं हेम मुद्रा च वाससी । दक्षिणा दीयते विप्रे भवपातकमोचनी ॥२७॥

यूनो वृद्धस्य बालस्य पञ्चकेषु मृतस्य च । विधानं यो न कुर्वीत विघ्नस्तस्य प्रजायते ॥२८॥
अष्टादशैव वस्तूनि प्रेतश्राद्धे विवर्जयेत् । आशिषो द्विगुणा दर्भाः स्वस्त्यस्तु प्रणवस्तथा ॥
अग्नौकरणमुच्छिष्टं श्राद्धं वै वैश्वदैविकम् । विकिरश्च स्वधाकारः पितृशब्दो न चोच्यते ३०॥
अनुशब्दं न कुर्वीत नावाहनमथोल्मुकम् । आसीमान्तं न कुर्वीत प्रदक्षिणविसर्जनम् ॥३१॥
न कुर्य्यात्तिलहोमञ्च द्विजः पूर्णाहुतिं तथा । न कार्य्यो वैश्वदेवश्च कर्त्ता गच्छत्यधोगतिम् ॥
मलिनश्राद्ध एतानि पूर्वं षोडश काश्यप ॥ ३२ ॥

स्थाने चार्द्धपथेऽतीते चितायां शवहस्तके । श्मशानवासिभूतेभ्यः पञ्चमः प्रातिवेश्यकः ३३॥
षष्ठः सञ्चयने प्रोक्तो दशपिण्डा दशाह्नि च । श्राद्धं षोडशकञ्चैव प्रथमं परिकीर्त्तितम् ॥३४॥
अन्यत् षोडशकं तत्र द्वितीयं तार्क्ष्य मे शृणु। कर्त्तव्यानीह विधिना श्राद्धान्येकादशैव तु ॥३५॥
ब्रह्मविष्णुशिवाद्यञ्च तथान्यच्छ्राद्धपञ्चकम् । एवं षोड़शश्राद्धानि विदुस्तत्त्वविदो जनाः ॥३६॥
द्वादशप्रतिमास्यानि श्राद्धान्येकादशे तथा । त्रिपक्षसम्भवञ्चैव द्वे रिक्ते खग षोडश ॥३७॥
आद्यं शवविशुद्ध्यर्थं कृत्वान्यच्च तु षोडश । पितृपंक्तिविशुद्ध्यर्थं शतार्द्धेन च योजयेत् ॥३८॥
शतार्द्धश्राद्धहीनश्च मेलितः पितृभाङ् न हि । चत्वारिंशद्भिरष्टाभिः श्राद्धैः प्रेतत्वसाधनम् ॥३९॥
सकृदूनशतार्द्धेन न भवेत् पितृसन्निधिः । मेलनीयः शतार्द्धेन सद्भिः श्राद्धेन तत्त्वतः ॥४०॥

अथ शवविधिः ।

शवस्य शिविकायाः करच्छेदेन सहितं करचरणयोर्बन्धनं तत्र कर्त्तव्यम् ॥४१॥
एवञ्चेन्न विधानं विधीयते तत्र पिशाचपरिभवम् । सञ्जायते रजन्यां शवनिर्गमने खेचरादिभयम्।
शून्यं शवं न मुच्येत संस्पर्शाद् दुर्गतिर्भवेत् ॥४३॥

ग्राममध्ये स्थिते प्रेते ह्यन्नं भुङ्क्ते यदिच्छया । तदन्नं मांसवत् ज्ञेयं तोयञ्च रुधिरोपमम् ॥४४॥
ताम्बूलं दन्तकाष्ठञ्च भोजनं ऋतुसेवनम् । ग्राममध्ये स्थिते प्रेते वर्जयेत् पिण्डपातनम् ४५॥
स्नानं दानं जपो होमस्तर्पणं सुरपूजनम् । ग्राममध्ये स्थिते प्रेते तद्वद्यर्थं ज्ञातिधर्मतः ॥४६॥
ज्ञातिसम्बन्धिनामेवं व्यवहारः खगेश्वर । विलुप्य ज्ञातिधर्मञ्च प्रेतः पापेन लिप्यते ॥४७॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे प्रेतकल्पे पञ्चविंशोऽध्यायः ॥२५॥

———

षड्विंशोऽध्यायः ।

गरुड़ उवाच

कस्मादनशनं पुण्यमक्षयं गतिदायकम् । स्वगृहन्तु परित्यज्य तीर्थे वै म्रियते तु यः ॥ १ ॥

अप्राप्य तीर्थं म्रियेत गृहे मृत्युवशङ्गतः । भूत्वा कुटीचरो यस्तु स कां गतिमवाप्नुयात् २ ॥
संन्यासं कुरुते यस्तु तीर्थे वापि गृहेऽपि वा । कथं तस्य प्रकर्त्तव्यं अप्राप्ते निधने तथा ॥ ३ ॥
नियमे यत्कृते देव चित्तभङ्गो हि जायते । केन तस्य भवेत् सिद्धिर्यत्कृतैरन्यथाकृतैः ॥ ४ ॥

श्रीभगवानुवाच

कृत्वा निरशनं यो वै मृत्युमाप्नोति कोऽपि चेत् । मानुषीं तनुमुत्सृज्य मया तुल्यो विराजते ॥
यावन्त्यहानि जीवेत व्रते निरशने कृते । क्रतुभिस्तानि तुल्यानि समग्रवरदक्षिणैः ॥ ६ ॥
तीर्थे गृहे वा संन्यासं नीत्वा चेन्म्रियते यदि । प्रत्यहं लभते सोऽपि पूर्वोक्ताद्द्विगुणं फलम् ॥
महारोगोपपत्तौ च गृहीतेऽनशने मृतः । पुनर्न जायते रोगो देववद्दिवि मोदते ॥८॥
आतुरः सन्स सन्न्यासं गृह्णाति यदि मानवः । पुनर्जातश्च संयुक्तो भवेद्रोगैश्च पातकैः ॥९॥
अहन्यहनि दातव्यं ब्राह्मणानाञ्च भोजनम् । तिलपात्रं यथाशक्ति दीपदानं सुरार्चनम् ॥१०॥
एवं दत्तस्य दह्यन्ते पापान्युच्चावचानि च । मृतोऽमृतत्वमाप्नोति यथा सर्वे महर्षयः ॥११॥
तस्मादनशनं नृणां वैकुण्ठपददायकम् । स्वस्थावस्थेन देहेन साधनं मोक्षलक्षणम् ॥१२॥
पुत्रद्रव्यादि सन्त्यज्य तीर्थं व्रजति यो नरः । ब्रह्माद्या देवतास्तस्य तुष्टिपुष्टिप्रदायकाः ॥१३॥
यस्तीर्थसम्मुखो भूत्वा व्रते ह्यनशने कृते । स म्रियेदन्तरालेऽपि ऋषीणां मण्डले वसेत् ॥१४॥
व्रतं निरशनं कृत्वा स्वगृहे म्रियते यदि । स्वकुलानि परित्यज्य एकाकी विचरेद्दिवि ॥१५॥
अन्नं चैव तथा तोयं परित्यज्य नरो यदा । पीत्वा मत्पादतोयं स न पुनर्जायते क्षितौ ॥१६॥
त्यक्ताशनं तीर्थगतं रक्षन्ति कुलदेवताः । यमदूता विशेषेण न याम्यास्तस्य यातनाः ॥१७॥
तीर्थसेवी सदा यस्तु सर्वकिल्विषनाशनः । म्रियते तत्र दह्येत स तीर्थफलभाग्भवेत् ॥१८॥
तीर्थसेवी सदा तीर्थादन्यत्र म्रियते यदि । शुभे देशे कुले धीमान्स भवेद्वेदविद्द्विजः ॥१९॥
कृत्वा निरशनं तार्क्ष्य पुनर्जीवति यः पुमान् । ब्राह्मणान्स समाहूय सर्वस्वञ्च परित्यजेत् ॥२०॥
चान्द्रायणञ्चरेत्कृच्छ्रमनुज्ञातश्च तैर्द्विजैः । अनृतं न वदेत्पश्चात्सर्वतो धर्ममाचरेत् ॥२१॥
तीर्थे गत्वा तु यः कोऽपि पुनरायाति वै गृहे । अनुज्ञातः शुभैर्विप्रैः प्रायश्चित्तमथाचरेत् ॥२२॥
दत्त्वा सुवर्णदानानि गोमहीगजवाजिनः । तीर्थं यदि लभेद्यस्तु मृत्युकाले स भाग्यभाक् ॥२३॥
गृहात्प्रचलितस्तीर्थं मरणे समुपस्थिते । पदे पदे तु गोदानं हिंसा नो वर्त्तते यदि ॥२४॥
स्वगृहे यत्कृतं पापं तीर्थस्नानैर्विशुध्यति । तत्र देयानि दानानि ह्यक्षयानि सदा खग ॥२५॥
कुरुते तत्र चेत्पापं वज्रलेपसमं हि तत् । क्लिश्येत्पापैर्न संदेहो यावच्चन्द्रार्कतारकम् ॥२६॥
आतुरे सति देयानि निर्धनैरपि मानवैः । गावस्तिला हिरण्यञ्च सप्तधान्यं विशेषतः ॥२७॥

दानवन्तं नरं दृष्ट्वा हृष्टाः सर्वे दिवौकसः । ऋषिभिः सह धर्मेण चित्रगुप्तेन वै तथा ॥२८॥
स्वतन्त्रं हि धनं यावत्तावद्विप्रे समर्पयेत् । पराधीनं मृते सर्वं कृपया को हि दास्यति ॥२९॥
पित्रुद्देशेन यैः पुत्रैर्धनं विप्रकरेऽर्पितम् । आत्मनः साधनं तैस्तु कृतं पुत्रप्रपौत्रकैः ॥३०॥
पितुः शतगुणं पुण्यं सहस्रं मातुरुच्यते । भगिन्यै शतसाहस्रं सोदर्य्ये दत्तमक्षयम् ॥३१॥
यदि लोभान्न यच्छन्ति काले ह्यातुरसंज्ञके । मृताः शोचन्ति ते सर्वे कदर्य्याः पापिनस्तथा ॥
अतिक्लेशेन लब्धस्य प्रकृत्या चञ्चलस्य च । गतिरेकैव वित्तस्य दानमन्या विपत्तयः ॥३३॥
मृत्युः शरीरगोप्तारं वसुरक्षं वसुन्धरा । दुश्चरित्रेव हसति स्वपतिं पुत्रवत्सलम् ॥३४॥
उदारो धार्मिकः सौम्यः प्राप्यापि विपुलं धनम् । तृणवन्मन्यते तार्क्ष्य आत्मानं वित्तमित्यपि ॥
न चैवोपद्रवस्तस्य मोहजालं न चैव हि । मृत्युकाले न च भयं यमदूतसमुद्भवम् ॥३६॥

समाः सहस्राणि च सप्त वै जले दशैकमग्नौ तपने च षोडश ।
महाहवे षष्टिरशीतिगोग्रहे अनाशके भारत चाक्षया गतिः ॥३७॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे प्रेतकल्पे षड्विंशोऽध्यायः ॥२६॥

सप्तविंशोऽध्यायः

गरुड़ उवाच

उदकुम्भप्रदानं मे कथयस्व यथातथम् । विधिना केन दातव्याः कुम्भास्ते कतिसंख्यया ॥१॥
किंलक्षणाः केन पूर्णाः कस्मै देया जनार्दन । कस्मिन्काले प्रदातव्याः प्रेततृप्तिप्रदायकाः ॥२॥

श्रीभगवानुवाच

सत्यं तार्क्ष्य प्रवक्ष्यामि उदकुम्भप्रदानकम् । प्रेतोद्देशेन दातव्यमन्नपानीयसंयुतम् ॥३॥
मानुषस्य शरीरे तु अस्थ्नामेव तु सञ्चयः । संख्यातः सर्वदेहेषु षष्ट्यधिकशतत्रयम् ॥४॥
उदकुम्भेन पुष्टानि तान्यस्थीनि भवन्ति हि । एतस्माद्दीयते कुम्भः प्रीतिः प्रेतस्य जायते ॥५॥
द्वादशाहे च षण्मासे त्रिपक्षे वाथ वत्सरे । उदकुम्भाः प्रदातव्या मार्गे तस्य सुखाय वै ॥६॥
सुखिमे भूमिभागे तु पक्वान्नजलपूरिताः । प्रेतस्य तत्र दातव्यं भोजनञ्च यदृच्छया ॥७॥
सुप्रीतस्तेन दानेन प्रेतो याम्यैः सह व्रजेत् । द्वादशाहे विशेषेण घटान्द्वादशसंख्यकान् ॥८॥
एकापि वर्धनी तत्र पक्वान्नजलपूरिता । विष्णुमुद्दिश्य दातव्या सङ्कल्प्य ब्राह्मणाय वै ॥९॥
एका वै धर्मराजाय तेन दत्तेन मुक्तिभाक् । चित्रगुप्ताय चैकां तु गतस्तत्र सुखी भवेत् ॥१०॥

षोडशार्घ्याः प्रदातव्या माषान्नजलपूरिताः । उत्क्रान्तिश्राद्धमारभ्य श्राद्धे षोडशके कृते ॥११॥
षोडश ब्राह्मणांश्चैव एकैकं विनिवेदयेत् । एकादशाहात्प्रभृति देयो नित्यं घटाब्दकः ॥१२॥
पक्वान्नजलसम्पूर्णा यावत्संवत्सरं दिनम् । एकाञ्च वर्द्धनीं तत्र वंशपात्रोपरिस्थिताम् ॥१३॥
वस्त्रैराच्छादिताञ्चैव संयुक्ताञ्च सुगन्धिभिः । ब्राह्मणाय विशेषेण जलपूर्णां प्रदापयेत् ॥१४॥
अहन्यहनि सङ्कल्प्य विधिपूर्वं घटं खग । ब्राह्मणाय कुलीनाय वेदव्रतयुताय च ॥१५॥
सत्पात्राय प्रदातव्या न मूर्खाय कदाचन । समर्थो वेदवित्ताढ्यस्तरणे तारणेऽपि च ॥१६॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे प्रेतकल्पे सप्तविंशोऽध्यायः ॥२७॥

अष्टाविंशोऽध्यायः

तार्क्ष्य उवाच

दानतीर्थाश्रितं मोक्षं स्वर्गञ्च वद मे प्रभो । केन मोक्षमवाप्नोति केन स्वर्गे वसेच्चिरम् ॥
केनासौ च्यवते जन्तुः स्वर्लोकात्सप्तलोकतः ॥१॥

श्रीभगवानुवाच

मानुष्यं भारते वर्षे त्रयोदशसु जातिषु । सम्प्राप्य म्रियते तीर्थे पुनर्जन्म न विद्यते ॥ २ ॥
अयोध्या मथुरा माया काशी काञ्ची अवन्तिका । पुरी द्वारावती ज्ञेयाः सप्तैता मोक्षदायिकाः ॥
सन्न्यस्तमिति यो ब्रूयात्प्राणैः कण्ठगतैरपि । मृतो विष्णुपुरं याति पुनर्जन्म न विद्यते ॥ ४ ॥
सकृदुच्चरितं येन हरिरित्यक्षरद्वयम् । बद्धः परिकरस्तेन मोक्षाय गमनं प्रति ॥ ५ ॥
कृष्ण कृष्णेति कृष्णेति यो मां स्मरति नित्यशः । जलं भित्त्वा यथा पद्मं नरकादुद्धराम्यहम् ॥
शालग्रामशिला यत्र पापदोषक्षयावहा । तत्सन्निधानमरणान्मुक्तिस्तत्र न संशयः ॥ ७ ॥
शालग्रामशिला यत्र यत्र द्वारावती शिला । उभयोः सङ्गमो यत्र मुक्तिस्तत्र न संशयः ॥ ८ ॥
रोपणात्पालनात्सेकान्नमःस्पर्शनकीर्त्तनात् । तुलसी दहते पापं नृणां जन्मार्जितं खग ॥ ९ ॥
ज्ञानह्रदे सत्यजले रागद्वेषमलापहे । यः स्नातो मानसे तीर्थे न स लिप्येत पातकैः ॥१०॥
न काष्ठे विद्यते देवो न शिलायां न मृत्सु च । भावे हि वसते देवस्तस्माद्भावो हि कारणम् ॥
प्रातः प्रातः प्रपश्यन्ति नर्मदां मत्स्यघातिनः । न तेषां शुद्धिमायाति चित्तवृत्तिर्गरीयसी ॥१२॥
यादृशी चित्तवृत्तिः स्यात्तादृक्कर्मफलं नृणाम् । परलोके गतिस्तादृक्प्रतीतिः फलदायिका ॥१३॥
गुर्वर्थे ब्राह्मणार्थे च स्त्रीणां बालवधेषु च । प्राणत्यागपरो यस्तु स वै मोक्षमवाप्नुयात् ॥१४॥

अनशने मृतो यस्तु विमुक्तः सर्वबन्धनैः । दत्त्वा दानानि विप्रेभ्यः स वै मोक्षमवाप्नुयात् ॥
एते वै मोक्षमार्गाश्च स्वर्गमार्गास्तथैव च । गोग्रहे देशविध्वंसे देवतीर्थविपत्सु च ॥१६॥
जीवितं मरणञ्चैव उभयोः श्रेष्ठमुच्यते । जीवितं दानभोगाभ्यां मरणं रणतीर्थयोः ॥१७॥
उत्तमाधममध्याश्च वध्यमानाश्च प्राणिनः । आत्मानं सम्परित्यज्य स्वर्गवासं लभन्ति ते ॥१८॥
हरिक्षेत्रे कुरुक्षेत्रे भृगुक्षेत्रे तथैव च । प्रभासे श्रीफले चैव अर्बुदे च त्रिपुष्करे ॥१९॥
भूतेश्वरे मृतो यस्तु स्वर्गे वसति मानवः । ब्रह्मणो दिवसं यावत्ततः पतति भूतले ॥२०॥
वर्षवृत्तिञ्च यो दद्याद्ब्राह्मणे व्रतसंयुते । स सर्वं कुलमुद्धृत्य स्वर्गलोके महीयते ॥२१॥
कन्यां विवाहयेद्यस्तु ब्राह्मणे वेदवित्तमे । इन्द्रलोके वसेत्सोऽपि स्वकुलैः परिवेष्टितः ॥२२॥
महादानानि दत्त्वा च नरस्तत्फलमाप्नुयात् । वापीकूपतडागानामारामसुरसद्मनाम् ॥२३॥
जीर्णोद्धारं प्रकुर्वाणः पूर्वकर्त्तुः फलं हि यत् । तस्यैव द्विगुणं पुण्यं लभते नात्र संशयः ॥२४॥
कर्णकण्ठाङ्गुलीबाहुं भूषणैश्चित्रवर्णकैः । गृहोपकरणैर्युक्तं गृहं धेनुसमन्वितम् ॥२५॥
शीतवातातपहरमपि यत्र कुटीरकम् । कृत्वा विप्राय विदुषे प्रददाति कुटुम्बिने ॥२६॥
तिस्रः कोट्यर्द्धकोटीश्च समाः स्वर्गे महीयते । या स्त्री सवर्णा संशुद्धा मृतं पतिमनुव्रजेत् ॥
सा मृता स्वर्गमाप्नोति वर्षाणां पूर्वसंख्यया ॥२७॥
पुत्रपौत्रादिकं हित्वा स्वपतिं याधिरोहति । स्वर्गं लभते तौ चोभौ कुलैस्त्रिभिः समन्वितौ ॥
कृत्वा पापान्यनेकानि भर्त्तृद्रोहे मतिः सदा । प्रक्षालयति सर्वाणि या स्वं पतिमनुव्रजेत् ॥२९॥
महापापसमाचारो भर्त्ता चेद्दुष्कृती भवेत् । तस्याप्यनुव्रता नारी नाशयेत्सर्वकिल्बिषम् ॥३०॥
ग्राममात्रं तु यच्चान्नं नित्यदानं करोति यः । छत्रचामरसंयुक्ते स विमानेऽधिगच्छति ॥३१॥
यत्कृतं हि मनुष्येण पापञ्च मरणान्तिकम् । तत्सर्वं नाशमायाति वर्षवृत्तिप्रदानतः ॥३२॥
भूतं भावि वर्त्तमानं पापं जन्मत्रयार्जितम् । प्रक्षालयति तत्सर्वं विप्रकन्याविवाहनात् ॥३३॥
दशकूपसमा वापी दशवापीसमं सरः । दशानां सरसां साम्यं प्रपा तार्क्ष्य विनिर्जले ॥३४॥
प्रपापि निर्जले देशे यद्दानं निर्धने द्विजे । प्राणिनां यो दयां धत्ते स भवेल्लोकनायकः ॥३५॥
एवमादिभिरन्यैश्च सुकृतैः स्वर्गभाग्भवेत् । सर्वधर्मफलं प्राप्य प्रतिष्ठां परमां लभेत् ॥३६॥
फल्गु कार्य्यं परित्यज्य सततं धर्मवान्भवेत् । दानं सत्यं दया चेति सारमेतज्जगत्त्रये ॥३७॥
दानं साधु दरिद्रस्य शून्ये लिङ्गस्य पूजनम् । अनाथप्रेतसंस्कारः कोटियज्ञफलं लभेत् ॥३८॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे प्रेतकल्पे अष्टाविंशोऽध्यायः ॥२८॥

———

ऊनत्रिंशोऽध्यायः

गरुड़ उवाच

सूतकानां विधिं ब्रूहि दयां कृत्वा ममोपरि । विवेकाय हि चित्तस्य मानवानां हिताय च ॥१॥

श्रीभगवानुवाच

मृते जन्मनि पक्षीन्द्र सपिण्डानां हि सूतकम् । चतुर्णामपि वर्णानां सर्वकर्मविवर्जनम् ॥ २ ॥
उभयत्र दशाहानि कुलस्याशु विवर्जयेत् । दानं प्रतिग्रहं होमं स्वाध्यायञ्च निवर्त्तयेत् ॥ ३ ॥
देशकालं तथात्मानं द्रव्यं द्रव्यप्रयोजनम् । उपपत्तिमथावस्थां ज्ञात्वा शौचं प्रकल्पयेत् ॥ ४ ॥
मृते पतौ वनस्थे च देशान्तरमृतेषु च । स्नानं सचैलं कर्त्तव्यं सद्यः शौचं विधीयते ॥ ५ ॥
स्रावगर्भाश्च ये जीवा ये च गर्भाद्विनिःसृता । न तेषामग्निसंस्कारो नाशौचं नोदकक्रिया ॥६॥
कारवः शिल्पिनो वैद्या दासीदासास्तथैव च । राजानो राजभृत्याश्च सद्यः शौचानुकारिणः ॥
सव्रती मन्त्रपूतश्च आहिताग्निर्नृपस्तथा । एतेषां सूतकं नास्ति यस्य चेच्छन्ति ब्राह्मणाः ॥ ८ ॥
प्रसवेन गृहस्थानां न कुर्यात्सङ्करं द्विजः । दशाहाच्छुध्यते माता अवगाह्य पिता शुचिः ॥ ९ ॥
विवाहोत्सवयज्ञेषु अन्तरा मृतसूतके । पूर्वसङ्कल्पितं द्रव्यं भोज्यं तन्मनुरब्रवीत् ॥१०॥
सर्वेषामेवमाशौचं मातापित्रोस्तु सूतकम् । सूतकं मातुरेव स्यादुपस्पृश्य पिता शुचिः ॥११॥
अन्तर्दशाहे चेत्स्यातां पुनर्मरणजन्मनी । तावत्स्यादशुचिर्विप्रो यावत्तस्य दशाह्निकम् ॥१२॥
क्षुधिते नियमादानं आर्त्ते विप्रे निवेदयेत्॰। तथैव ऋषिभिः प्रोक्तं यथाकालं न दुष्यति ॥१३॥
दानं परिषदे दद्यात्सुवर्णं गां वृषं द्विजः । क्षत्रियो द्विगुणं दद्याद्वैश्यस्तु त्रिगुणं तथा ॥१४॥
चतुर्गुणं तु शूद्रेण दातव्यं ब्राह्मणे धनम् । एवञ्चानुक्रमेणैव चातुर्वर्ण्यं विशुध्यति ॥१५॥
सप्ताष्टमन्तरे शीर्णो व्रतसंस्कारवर्जिते । अहानि सूतकं तस्य अब्दानां संख्यया स्मृतम् ॥१६॥
ब्राह्मणार्थे विपन्ना ये नारीणां गोगृहेषु च । आहवेषु विपन्नानामेकरात्रं हि सूतकम् ॥१७॥
अनाथप्रेतसंस्कारं ये कुर्वन्ति नरोत्तमाः । न तेषामशुभं किञ्चिद्विप्रेण सहकारिणा ॥
जलावगाहनात्तेषां सद्यः शुद्धिरुदाहृता ॥१८॥
विनिवृत्ता यदा शूद्रा उदकान्तमुपस्थिताः । तदा विप्रेण द्रष्टव्या इति वेदविदो विदुः ॥१९॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे प्रेतकल्पे एकोनत्रिंशोऽध्यायः ॥२९॥

त्रिंशोऽध्यायः

तार्क्ष्य उवाच

भगवन् ब्राह्मणाः केचिदपमृत्युवशङ्गताः । कथं तेषां भवेन्मार्गः किं स्थानं का गतिर्भवेत् ॥
किञ्च युक्तं भवेत्तेषां विधानञ्चापि कीदृशम् । तदहं श्रोतुमिच्छामि ब्रूहि मे मधुसूदन ॥
प्रेतीभूते द्विजातीनां संभूते मृत्युवैकृते ॥२॥

श्रीभगवानुवाच

तेषां मार्गं विधिं स्थानं विविधं कथयाम्यहम् । शृणु तार्क्ष्य परं गोप्यं कृतं दुर्मरणे तु यत् ॥३॥
लंघनैर्ये मृता विप्रा दंष्ट्रिभिर्घातिताश्च ये । कण्ठग्राहिविलग्नाश्च क्षीणाश्च गुरुघातिनः ॥४॥
वृकाग्निविषविप्रेभ्यो विसूच्या चात्मघातकाः । पतनोद्बन्धनजले मृताश्च शृणु संस्थितिम् ॥५॥
यान्ति ते नरके घोरे ये च म्लेच्छादिभिर्हताः । श्वशृगालादिभिः स्पृष्टा अदग्धाः कृमिसङ्कुलाः ॥
उल्लङ्घितमृता ये च महारोगैश्च ये मृताः । लोकेऽसत्यास्तथा व्यङ्गा युक्ताः पापेन योषितः ॥
चाण्डालादुदकात्सर्पाद् ब्राह्मणाद्वैद्युतादपि । दंष्ट्रिभ्यश्च पशुभ्यश्च वृक्षादिपतनान्मृताः ॥८॥
उदक्यासूतकशूद्ररजकादिविदूषिताः । तेन पापेन नरकान्मुक्ताः प्रेतत्वभागिनः ॥९॥
न तेषां कारयेद्दाहं सूतकं नोदकक्रियाम् । न विधानं मृताद्यञ्च न कुर्यादौर्ध्वदैहिकम् ॥१०॥
तेषां तार्क्ष्य प्रकुर्वीत नारायणबलिक्रियाम् । सर्वलोकहितार्थाय शृणु पापभयापहाम् ॥११॥
षण्मासं ब्राह्मणस्याथ त्रिमासं क्षत्रियस्य च । सार्द्धमासं तु वैश्यस्य सद्यः शूद्रस्य सा भवेत् ॥
गङ्गायां यमुनायाञ्च नैमिषे पुष्करेषु च । तड़ागे जलपूर्णे वा ह्रदे वा विमले जले ॥१३॥
वाप्यां कूपे गवां गोष्ठे गृहे वा प्रतिमालये । कृष्णाग्रे कारयेद्विप्रैर्विधिं नारायणात्मकम् ॥१४॥
पूर्णे तु तर्पणं कार्य्यं मन्त्रैः पौराणवैदिकैः । सर्वौषधिकृतैश्चैव विष्णुमुद्दिश्य तर्पयेत् ॥१५॥
कार्य्यं पुरुषसूक्तेन मन्त्रैर्वा वैष्णवैरपि । दक्षिणाभिमुखो भूत्वा प्रेतं विष्णुमिति स्मरेत् ॥१६॥
अनादिनिधनो देवः शङ्खचक्रगदाधरः । अव्ययः पुण्डरीकाक्षः प्रेतमोक्षप्रदो भवेत् ॥१७॥
तर्पणस्यावसाने तु वीतरागो विमत्सरः । जितेन्द्रियमना भूत्वा शुचिमान्धर्मतत्परः ॥१८॥
दानधर्मरतश्चैव प्रणम्य वाग्यतः शुचिः । यजमानो भवेत्तार्क्ष्य शुचिर्बन्धुसमन्वितः ॥१९॥
भक्त्या तत्र प्रकुर्वीत श्राद्धान्येकादशैव तु । सर्वकर्मविधानेन एककार्य्यसमाहितः ॥२०॥
तोयव्रीहिपदान्दद्याद्गोधूमांश्च प्रियङ्गवान् । हविष्यान्नं शुभां मुद्रां छत्रोष्णीषञ्च चेलकम् २१॥
दापयेत्सर्वशस्यानि क्षीरक्षौद्रसमन्वितम् । वस्त्रोपानहसंयुक्तं दद्यादष्टविधं पदम् ॥२२॥

दापयेत्सर्वविप्रेभ्यो न कुर्यात्पंक्तिवञ्चनम् । भूमौ स्थितेषु पिण्डेषु गन्धपुष्पाक्षतान्वितम् ॥२३॥
दातव्यं सर्वविप्रेभ्यो वेदशास्त्रप्रमाणतः । शङ्खे पात्रेऽथवा ताम्रे तर्पणञ्च पृथक् पृथक् ॥
वाताधारेण संयुक्तो जानुभ्यामवनीं गतः । स चादौ दापयेदर्घ्यं एकोद्दिष्टं पृथक् पृथक ॥२५॥
आपो देवी मधुमती आदिपिण्डे प्रकल्पिता । उपयामगृहीतोऽसि द्वितीये च निवेदयेत् ॥२६॥
येनापावकवामत्क तृतीये पिण्डकल्पना । ये देवा स चतुर्थे तु समुद्रं गच्छ पञ्चमे ॥२७॥
अग्निर्ज्योतिस्तथा षष्ठे हिरण्यगर्भश्च सप्तमे । यमाय त्वष्टमे ज्ञेयं यज्जाग्रन्नवमे तथा ॥२८॥
दशमे याः फलिनीति पिण्डे चैकादशे ततः । भद्रं कर्णेभिरिति च कुर्यात्पिण्डविसर्जनम् २६॥
कृत्वैकादशदैवत्यं श्राद्धं कुर्यात्परेऽहनि । विप्रानावाहयेत्पश्चादर्घ्यं दद्याद्विशारदः ॥३०॥
विद्याशीलगुणोपेतान्स्वकीयसुकुलोत्तमान् । अव्यङ्गांश्च प्रशस्तांश्च न हि वर्ज्यान्कदाचन ॥
विष्णुः स्वर्णमयः कार्यो रुद्रस्ताम्रमयस्तथा । ब्रह्मा रौप्यमयस्तत्र यमो लोहमयो भवेत् ॥३२॥
सीसकं तु भवेत्प्रेते अथवा दर्भकं तथा । यमाय त्वेति मन्त्रेण सहितं सामवेदिनम् ॥३३॥
अग्न आयाहि मन्त्रेण गोविन्दं पश्चिमे न्यसेत् । अग्निमीलेति मन्त्रेण पूर्वेणैव प्रजापतिम् ३४॥
इषे त्वा इति मन्त्रेण दक्षिणे स्थापयेद्यमम् । मध्ये च मण्डलं कृत्वा स्थाप्यो दर्भमयो नरः ॥
ब्रह्मा विष्णुस्तथा रुद्रो यमः प्रेतस्तु पञ्चमः । पृथक्कुम्भे ततः स्थाप्यं पञ्चरत्नसमन्विते ॥३६॥
वस्त्रयज्ञोपवीतानि पृथङ्मुद्रायुतानि च । जपं कुर्यात्पृथक्तत्र ब्रह्मादौ देवतासु च ॥३७॥
पञ्च श्राद्धानि कुर्वीत देवतानां यथाविधि । जलधारां ततः कुर्यात्पिण्डे पिण्डे पृथक् पृथक् ॥
शङ्खे वा ताम्रपात्रे वा अलाभे मृण्मयेऽपि वा । तिलोदकं समादाय सर्वौषधिसमन्वितम् ३९॥
आसनोपानहौ छत्रं मुद्रिकाञ्च कमण्डलुम् । भाजनं भोज्यधान्यञ्च वस्त्राण्यष्टविधं पदम् ॥४०॥
ताम्रपात्रं तिलैः पूर्णं सहिरण्यं सदक्षिणम् । दद्याद्ब्राह्मणमुख्याय विधियुक्तं खगेश्वर ॥४१॥
ऋग्वेदपाठके दद्याज्जातशस्यां वसुन्धराम् । यजुर्वेदमये विप्रे गाञ्च दद्यात्पयस्विनीम् ॥४२॥
सामगाय शिवोद्देशे प्रदद्याद्वस्त्रधौतकम् । यमोद्देशे तिलान् लोहं ततो दद्याच्च दक्षिणाम् ॥
पश्चात्पुत्तलकः कार्य्यः सर्वौषधिसमन्वितः । पलाशस्य च वृन्तानां भागं कृत्वा च काश्यप ॥
कृष्णाजिनं समास्तीर्य्य कुशैश्च पुरुषाकृतिम् । शतत्रयषष्टियुतैर्वृतैः प्रोक्तोऽस्थिसञ्चयः ॥४५॥
विन्यस्य तानि बध्नीयात् कुशै रङ्गे पृथक् पृथक् । चत्वारिंशच्छिरोभागे ग्रीवायाञ्च दश न्यसेत् ॥४६॥
विंशत्युरःस्थले देयं विंशतिर्जठरे तथा । ऊरुद्वये शतं दद्यात् कटिदेशे च विंशतिः ॥४७॥
दद्याच्चतुष्टयं शिश्ने षड् दद्याद् वृषणद्वये । दश पादाङ्गुलीभागे एवमस्थीनि विन्यसेत् ॥४८॥
नारिकेलं शिरःस्थाने तारं दद्याच्च तालुके । पञ्चरत्नं मुखे दद्याज्जिह्वायां कदलीफलम् ॥४९॥

अन्त्रेषु वालुकां दद्याद् वाह्लीकं घ्राणे चैव हि । वसायां मृत्तिकां दद्याद्गोमूत्रं मूत्रके तथा ॥५०॥
गन्धकं धातवे देयं हरितालं मनःशिलाम् । यवपिष्टं तथा मांसे मधु शोणिते चैव हि ॥५१॥
केशेषु च जटाजूटं त्वचायाञ्च मृगत्वचम् । पारदं रेतसः स्थाने पुरीषे पित्तल तथा ॥५२॥
मनःशिलां तथा गात्रे तिलकल्कञ्च सन्धिषु । कर्णयोस्ताड़पत्रञ्च स्तनयोश्चैव गुञ्जकौ ॥५३॥
नासायां शतपत्रञ्च कमलं नाभिमण्डले । वृन्ताकं वृषणे दद्याल्लिङ्गे स्याद् गृञ्जनं शुभम् ५४॥
घृतं नाभ्यां प्रदेयं स्यात् कौपीने च त्रपु स्मृतम् । मौक्तिकं स्तनयोर्मूर्ध्नि कुङ्कुमेन विलेपनम् ५५॥
कर्पूरागुरुधूपैश्च शुभैर्माल्यैः सुगन्धिभिः । परिधाने पट्टसूत्रं हृदये रुक्मकं न्यसेत् ॥५६॥
ऋद्धिवृद्धिभुजौ द्वौ च नेत्रयोश्च कपर्दिकाम् । सिन्दूरं नेत्रकोणेषु ताम्बूलाद्युपहारकैः ॥५७॥
सर्वौषधियुतां प्रेतपूजां कृत्वा यथोदिताम् । साग्निकैश्चापि विधिना यज्ञपात्राणि विन्यसेत् ५८॥
शन्नोदेवी पुनन्तु मे इमं मे वरुणेति च । प्रेतस्य पावनं कृत्वा शालग्रामशिलोदकैः ॥५६॥
विष्णुमुद्दिश्य दातव्या सुशीला गौः पयस्विनी । महादानानि देयानि तिलपात्रं तथैव च ६०॥
ततो वैतरणी देया सर्वाभरणभूषिता । कर्त्तव्यं वैष्णवं श्राद्धं प्रेतमुक्त्यर्थमात्मना ॥६१॥
प्रेतमोक्षं ततः कुर्य्याद्धरिं विष्णुं प्रकल्पयेत् । त्वं विष्णुरिति संस्मृत्य प्रेतं तं मृतमेव च ॥६२॥
अग्निदाहं ततः कुर्य्यात् सूतकं तु दिनत्रयम् । दशाहं गतपिण्डाश्च कर्त्तव्या विधिपूर्वकम् ॥
सर्वं वर्षावधि कुर्य्यादेवं प्रेतः स मुक्तिभाक् ॥६३॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे प्रेतकल्पे त्रिंशोऽध्यायः ॥३०॥

एकत्रिंशोऽध्यायः ।

श्रीकृष्ण उवाच

यथा धेनुसहस्रेषु वत्सो विन्दति मातरम् । एवं पूर्वकृतं कर्म कर्त्तारमनुगच्छति ॥ १ ॥
आदित्यो वरुणो विष्णुर्ब्रह्मा सोमो हुताशनः । शूलपाणिश्च भगवानभिनन्दति भूमिदम् २ ॥
नास्ति भूमिसमं दानं नास्ति भूमिसमो निधिः । नास्ति सत्यसमो धर्मो नानृतात्पातकं परम् ॥
अग्नेरपत्यं प्रथमं हिरण्यं भूर्वैष्णवी सूर्य्यसुताश्च गावः ।
लोकत्रयं तेन भवेत्प्रदत्तं यः काञ्चनञ्चाञ्च महीं प्रदद्यात् ॥ ४ ॥
त्रीण्याहरति दानानि गावः पृथ्वी सरस्वती । नरकादुद्धरन्त्येते जयवापनदोहनात् ॥ ५ ॥

कृत्वा बहूनि पापानि रौद्राणि विपुलान्यपि । अपि गोदानमात्रेण भूमिदानेन शुध्यति ॥ ६ ॥
अकर्त्तव्यं न कर्त्तव्यं प्राणैः कण्ठगतैरपि । कर्त्तव्यमेव कर्त्तव्यमिति वेदविदो विदुः ॥ ७ ॥
अधर्मप्रवर्त्तने वै पापं गोसहस्रवधतुल्यम् । वृत्तिच्छेदेऽपि तथा वृत्तिकरणे लक्षधेनुफलम् ॥ ८ ॥
वरमेकापि सा दत्ता न तु दत्तं गवां शतम् । एकां हृत्वा शतं दत्त्वा न तेन समता भवेत् ॥
स्वयमेव तु यो दद्यात्स्वयमेव तथा हरेत् । स पापी नरकं याति यावदाभूतसंप्लवम् ॥१०॥
न चाश्वमेधेन तथा पूतः स्याद्दक्षिणावता । अवृत्तिकर्शिते दीने ब्राह्मणे रक्षिते यथा ॥११॥
न तद्भवति वेदेषु यज्ञे च बहुदक्षिणे । यत्पुण्यं दुर्बले विप्रे ब्राह्मणे परिरक्षिते ॥१२॥
ब्रह्मस्वरसपुष्टानि वाहनानि बलानि च । युद्धकाले विशीर्य्यन्ति सिकतासेतवो यथा ॥१३॥
स्वदत्तां परदत्तां वा यो हरेत वसुन्धराम् । षष्टिवर्षसहस्राणि विष्ठायां जायते कृमिः ॥१४॥
ब्रह्मस्वं प्रणयाद्भुक्तं दहत्यासप्तमं कुलम् । तदेव चौर्य्यरूपेण दहत्याचन्द्रतारकम् ॥१५॥
लोहचूर्णाश्मचूर्णञ्च विषञ्च जरयेद्बुधः । ब्रह्मस्वं त्रिषु लोकेषु कः पुमाञ्जरयिष्यति ॥१६॥
देवद्रव्यविनाशेन ब्रह्मस्वहरणेन च । कुलान्यकुलतां यान्ति ब्राह्मणातिक्रमेण च ॥१७॥
ब्राह्मणातिक्रमो नास्ति विप्रे विद्याविवर्जिते । ज्वलन्तमग्निमुत्सृज्य भस्मन्यपि न हूयते ॥१८॥
संक्रान्तौ यानि दानानि हव्यकव्यानि यानि च । सप्तकल्पक्षयं यावत्तावत्स्वर्गे महीयते ॥१९॥

प्रतिग्रहाध्यापनयाजनेषु प्रतिग्रहं श्रेष्ठतमं वदन्ति ।
प्रतिग्रहाच्छुध्यति जाप्यहोमैर्न याजकं कर्म पुनन्ति वेदाः ॥२०॥

नित्यजापी सदा होमी परपाकविवर्जितः । रत्नपूर्णामपि महीं प्रतिगृह्य न लिप्यते ॥२१॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे प्रेतकल्पे एकत्रिंशोऽध्यायः ॥३१॥

द्वात्रिंशोऽध्यायः

श्रीकृष्ण उवाच

जलाग्निविधिना भ्रष्टाः प्रव्रज्यानाशकच्युताः । इन्द्रियाणां विशुध्यर्थं दत्त्वा धेनुं तथा वृषम् ॥
ऊनद्वादशवर्षस्य चतुर्वर्षाधिकस्य च । प्रायश्चित्तं चरेन्माता तथान्योऽपि च बान्धवः ॥ २ ॥
अतो बालतरस्यास्ति नापराधो न पातकम् । राजदण्डो न तस्यास्ति प्रायश्चित्तं न विद्यते ॥
रक्तस्य दर्शने जाते आतुरा स्त्री भवेद्यदि । चतुर्थे हविषं स्पृष्ट्वा वस्त्रं त्यक्त्वा विशुध्यति ॥४॥
आतुरे स्नानमुत्पन्नं दश कृत्वा ह्यनातुरः । स्नात्वा स्नात्वा स्पृशेदेनं ततः शुद्धः स आतुरः ॥
प्रत्यब्दं श्राद्धमथ ते कथयामि खगोत्तम । प्रत्यब्दं पार्वणेनैव कुर्य्यातां क्षेत्रजौरसौ ॥ ६ ॥

एकोद्दिष्टं प्रकुर्य्यातां प्रत्यब्दं प्रति केन तु । यदयं हि मृतः साग्निः पुत्रो वापि तथाविधः ॥७॥
प्रत्यब्दं पार्वणं तत्र कुर्य्यातां क्षेत्रजौरसौ । अनग्नयः साग्निका वा पितरोऽपि तथा मृताः ॥८॥
एकोद्दिष्टं तथा कार्य्यं क्षयाह इति केचन । दर्शकाले क्षयो यस्य प्रेतपक्षेऽथवा पुनः ॥९॥
प्रत्यब्दं पार्वणं कार्य्यं तेषां सर्वैः सुतैरपि । एकोद्दिष्टमपुत्राणां पुंसां स्याद्योषितामपि ॥१०॥
कर्त्तव्ये पार्वणे श्राद्धे अशौचं जायते यदि । आशौचगमने प्राप्ते कुर्य्याच्छ्राद्धं ततः परम् ११॥
एकोद्दिष्टे च सम्प्राप्ते यदि विघ्नः प्रजायते । मासेऽन्यस्मिंस्तिथौ तस्यां कुर्य्याच्छ्राद्धं तथैव हि ॥
तूष्णीं श्राद्धञ्च शूद्राणां भार्य्यायास्तत्सुतेन वा । कन्यायाश्च द्विजातीनां मनुरेतद्विचक्षते १३॥
एककाले गतासूनां बहूनामथवा द्वयोः । मन्त्रेण स्नपनं कुर्य्याच्छ्राद्धं कुर्य्यात्पृथक् पृथक् ॥१४॥
पूर्वकस्य मृतस्यादौ द्वितीयस्य ततः पुनः । तृतीयस्य ततः पश्चात्सन्निपातेष्वयं क्रमः ॥१५॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे प्रेतकल्पे प्रत्यब्दप्रकरणं नाम द्वात्रिंशोऽध्यायः ॥३२॥

त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः

(अथ नित्यानि श्राद्धानि)

श्रीभगवानुवाच

नित्यश्राद्धे हि गन्धाद्यैर्द्विजानभ्यर्च्य शक्तितः । सर्वान्पितृगणान्सम्यक्सदैवोद्दिश्य पूजयेत् ॥१॥
आवाहनं स्वधाकारं पिण्डाग्नौ करणादिकम् । ब्रह्मचर्य्यादिनियमान्विश्वेदेवांस्तथैव च ॥ २ ॥
नित्यश्राद्धे त्यजेदेतान्भोज्यमन्नञ्च कल्पयेत् । न दद्याद्दक्षिणाञ्चैव नमस्कारैर्विसर्जयेत् ॥ ३ ॥
देवानुद्दिश्य विश्वादीन्दद्याच्च द्विजभोजनम् । नित्यश्राद्धं तदेवेति देवश्राद्धं तदुच्यते ॥ ४ ॥
मातुः श्राद्धं तु पूर्वं स्यात्कर्माहन्येव पैतृकम् । उत्तरेऽहनि वृद्धस्य मातामहगणस्य च ॥ ५ ॥
पृथग्दिने न शक्तश्चेदेकस्मिन्नेव वासरे । श्राद्धत्रयं प्रकुर्वीत वैश्वदेवव्रतत्रिकम् ॥ ६ ॥
पितृभ्यः कल्पयेत्पूर्वं मातृभ्यस्तदनन्तरम् । मातामहेभ्यश्च ततो दद्यादित्थं क्रमेण तु ॥ ७ ॥
मातृश्राद्धे तु विप्राणामलाभे तु कुलान्विताः । पतिपुत्रान्विताः साध्व्यो योषितोऽष्टौ च भोजयेत् ॥
इष्टापूर्त्तादिकारम्भे तदा श्राद्धं समाचरेत् । उत्पातादिनिमित्तेषु नित्यश्राद्धवदेव तु ॥ ९ ॥
नित्यं दैवं तथा वृद्धं काम्यं नैमित्तिकं तथा । श्राद्धान्युक्तप्रकारेण कुर्वन्सिद्धिमवाप्नुयात् ॥१०॥

इति श्रीगारुडे महापुराणे प्रेतकल्पे त्रयस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३३॥

चतुस्त्रिंशोऽध्यायः

गरुड़ उवाच

सुकृतस्य प्रभावेण स्वर्गो नानाविधो नृणाम् । भोगसौख्यादिरूपञ्च बलं पुष्टिः पराक्रमः ॥१॥
सत्यं पुण्यवतां देव जायतेऽत्र परत्र च । सत्यं सत्यं पुनः सत्यं देववाक्यं तु नान्यथा ॥२॥
धर्मो जयति नाधर्मः सत्यं जयति नानृतम् । क्षमा जयति न क्रोधो विष्णुर्जयति नासुरः ॥३॥
एतत्सत्यं मया ज्ञातं सुकृताच्छोभनं भवेत् । यथोत्कृष्टतमं पुण्यं तथा कृष्णपरो भवेत् ॥४॥
एकञ्च श्रोतुमिच्छामि पापयोनिश्च जायते । येन कर्मविपाकेन यथा निरयभाग्भवेत् ॥५॥
यां यां योनिमवाप्नोति यथारूपः प्रजायते । तन्मे वद सुरश्रेष्ठ समासेनापि कांक्षितम् ॥६॥

श्रीकृष्ण उवाच

शुभाशुभफलैस्तार्क्ष्य मुक्तभोगा नरास्त्विह । जायन्ते लक्षणैर्यैस्तु तानि मे शृणु काश्यप ॥७॥
गुरुरात्मवतां शास्ता राजा शास्ता दुरात्मनाम् । इह प्रच्छन्नपापानां शास्ता वैवस्वतो यमः ॥
प्रायश्चित्तेष्वजीर्णेषु यमलोके ह्यनेकधा । यातनान्ते विमुक्तास्ते अनेकां जीवसन्ततिम् ॥९॥
गत्वा मानुषयोनौ तु पापचिह्ना भवन्ति ते । तान्यहं तव चिह्नानि कथयिष्ये खगोत्तम ॥१०॥
गद्गदोऽनृतवादी स्यान्मूकश्चैव गवानृते । ब्रह्महा च क्षयी कुष्ठी श्यावदन्तस्तु मद्यपः ॥११॥
कुनखी स्वर्णहारी च दुश्चर्मा गुरुतल्पगः । संयोगी हीनवर्णः स्यात्काकोऽनिमन्त्रभोजनात् ॥
दिगम्बरा दुराचारा सर्वदेवावनिन्दकाः । यान्ति ते नरके घोरे ये च मिथ्या वदन्ति हि १३॥
अन्नं पर्य्युषितं विप्रे प्रयच्छन्कुब्जतां व्रजेत् । मात्सर्य्यादपि जात्यन्धो जन्मान्धः पुस्तकं हरन् ॥
फलानि हि हरन्नित्यं म्रियते नात्र संशयः । मृतो वानरतां याति तन्मुक्तो गलगण्डवान् ॥१५॥
अदत्तभक्षमश्नाति अनपत्यो भवेन्नरः । बणिक्चैव महामूढ़ः सर्वदर्शननिन्दकः ॥१६॥
न जानाति धर्मतत्त्वं स पतेद्घोरसागरे । हरन्स्वर्णं भवेद्गोधा गरदः पवनाशनः ॥१७॥
प्रव्रज्यागमनात्पक्षिन्भवेन्नरपिशाचकः । चातको जलहर्त्ता च धान्यहर्त्ता च मूषकः ॥१८॥
अप्राप्तयौवनां सेव्य भवेत्सर्प इति श्रुतिः । गुरुदाराभिलाषी च कृकलासो भवेद्ध्रुवम् ॥१९॥
जलप्रस्रवणं यस्तु भिन्द्यान्मत्स्यो भवेन्नरः । अविक्रेयान्विक्रयन्वै विकटाक्षो भवेन्नरः ॥२०॥
कुयोनिनिन्दको हि स्यादुलूकः स्त्रीप्रवञ्चनात् । मृतस्यैकादशाहे तु भुञ्जानः श्वाभिजायते २१॥
प्रतिश्रुत्य द्विजेभ्योऽर्थमददन्जम्बुको भवेत् । सर्पं हत्वा भवेद्दुष्टः शूकरो विड्वराहकः ॥२२॥
परिवादाद्द्विजातीनां लभते काच्छपीं तनुम् । लभेद्देवलकस्तार्क्ष्य योनिं चाण्डालसंज्ञकाम् ॥
दुर्भगः फलविक्रेता वृषश्च वृषलीपतिः । मार्जारोऽग्निं पदा स्पृष्ट्वा रोगवान्परमांसभुक् ॥२४॥

सोदर्य्यागमनात्षण्ढो दुर्गन्धश्च सुगन्धहृत् । यद्वा तद्वापि पारक्यं स्वल्पं वा यदि वा बहु ॥
हृत्वा वै योनिमाप्नोति तैत्तिरीं नात्र संशयः ॥२५॥
एवमादीनि चिह्नानि अन्यान्यपि खगेश्वर । स्वकर्मविहितान्येव दृश्यन्ते मानवादिषु ॥२६॥
एवं दुष्कृतकर्त्ता हि भुक्त्वा च नरकान्क्रमात् । जायते कर्मशेषेण ह्युक्तास्वेतासु योनिषु ॥२७॥
ततो जन्मशतं मर्त्यः सर्वजन्तुषु काश्यप । जायते नात्र सन्देहः समीभूते शुभाशुभे ॥२८॥
स्त्रीपुंसयोः प्रसङ्गे च विशुद्धे शुक्रशोणिते । पञ्चभूतसमोपेतः सुपुष्टः परमः पुमान् ॥२९॥
धारणा प्रेरणं दुःखमिच्छा संहार एव च । प्रयत्नाकृतिवर्णाश्च रागद्वेषौ भवाभवौ ॥३०॥
तस्येदमात्मनः सर्वमनादेरादिमिच्छतः । स्वकर्मबद्धस्य तदा गर्भे वृद्धिं हि विन्दति ॥३१॥
पुरा मया यथा प्रोक्तं तव जन्तोर्हि लक्षणम् । एवं प्रवर्त्तते चक्रं भूतग्रामे चतुर्विधे ॥३२॥
समुत्पत्तिर्विनाशश्च जायते तार्क्ष्य देहिनाम् । ऊर्ध्वा गतिस्तु धर्मेण अधर्मेण ह्यधोगतिः ॥३३॥
जायते सर्ववर्णानां स्वकर्माचरणात्खग । देवत्वे मानुषत्वे च दानभोगादिकाः क्रियाः ॥३४॥
यद्यद्दृश्यं वैनतेय तत्सर्वं कर्मजं फलम् । कुकर्मविहितो घोरे कामक्रियार्जितेऽशुभे ॥
नरके पतितो भूयो यस्योत्तारो न विद्यते ॥३५॥
इति श्रीगारुडे महापुराणे प्रेतकल्पे चतुस्त्रिंशोऽध्यायः ॥३४॥

पञ्चत्रिंशोऽध्यायः

गरुड़ उवाच

भगवन्देवदेवेश कृपया परया वद । दानं दानस्य माहात्म्यं वैतरण्याः प्रमाणकम् ॥१॥

श्रीभगवानुवाच

या सा वैतरणीनाम्नी यमद्वारे महासरित् । यत्प्रमाणा च सा देवी शृणु तां मे भयावहाम् २॥
शतयोजनविस्तीर्णा पृथुत्वे सा महानदी । दुर्गन्धा दुस्तरा पापैर्दृष्टमात्रभयावहा ॥३॥
पूयशोणिततोयाढ्या मांसकर्दमसङ्कुला । पापिनं ह्यागतं दृष्ट्वा नानाभयसमागतम् ॥४॥
दृश्यते सत्वरं तोयं पात्रमध्ये यथा घृतम् । कृमिभिः सङ्कुलं पूयं वज्रतुण्डैः समाहृतम् ॥५॥
शिशुमारैश्च मत्स्याद्यैर्वज्रकर्त्तरिकायुतैः । अन्यैश्च जलजीवैश्च हिंसकैर्मांसभेदिभिः ॥६॥
तपन्ते द्वादशादित्याः प्रलयान्ते यथा हि ते । पतन्ति तत्र वै मर्त्या क्रन्दमानास्तु पापिनः ७॥
हा भ्रातः पुत्र मातेति प्रलपन्ति मुहुर्मुहुः । प्रतरन्ति निमज्जन्ति तत्र गच्छन्ति जन्तवः ॥८॥
चतुर्विधैः प्राणिगणैर्द्रष्टव्या सा महानदी । तरन्ति तत्र दानेन चान्यथा ते पतन्ति वै ॥९॥

मातरं येऽवमन्यन्ते आचार्य्यं गुरुमेव च । अवमन्यन्ति ये मूढ़ास्तेषां वासोऽत्र सन्ततम् ॥१०॥
पतिव्रतां धर्मशीलां व्यूढ़ां धर्मे विनिश्चिताम् । परित्यजन्ति ये मूढ़ास्तेषां वासोऽत्र सन्ततम् ॥
विश्वासप्रतिपन्नानां स्वामिमित्रतपस्विनाम् । स्त्रीबालविकलादीनां छिद्रमन्वेषयन्ति हि ॥
पच्यन्ते पूयमध्ये तु क्रन्दमानास्तु पापिनः ॥१२॥
प्राप्तं बुभुक्षितं विप्रं यो विघ्नायोपसर्पति । कृमिभिर्भक्ष्यते तत्र यावदाभूतसंप्लवम् ॥१३॥
ब्राह्मणाय प्रतिश्रुत्य यथार्थं न ददाति यः । यज्ञविध्वंसकश्चैव राज्ञीगामी च पैशुनी ॥१४॥
कथाभङ्गकरश्चैव कूटसाक्षी च मद्यपः । आहूय नास्ति यो ब्रूते तस्य वासोऽत्र सन्ततम् ॥
अग्निदो गरदश्चैव स्वयं दत्तापहारकः । क्षेत्रसेतुविभेदी च परदारप्रधर्षकः ॥१६॥
ब्राह्मणो रसविक्रेता तथा च वृषलीपतिः । गोधनस्य तृषार्त्तस्य विभेदं कुरुते तु यः ॥१७॥
कन्याविदूषकश्चैव दानं दत्त्वा तु तापकः । शूद्रस्तु कपिलापानो ब्राह्मणो मांसभोजकः ॥
एते वसन्ति सततं मा विचारं कृथाः क्वचित् ॥ १८ ॥
कृपणो नास्तिकः क्षुद्रः स तस्यां निवसेत्खग । सदामर्षी सदा क्रोधी निजवाक्यप्रमाणकृत् ॥
परोक्तच्छेदको नित्यं वैतरण्यां वसेच्चिरम् । यस्त्वहङ्कारवान्पापः स्वविकत्थनकारकः ॥
कृतघ्नो विश्वासघाती वैतरण्यां वसेच्चिरम् ॥ २० ॥
कदाचिद्भाग्ययोगेन तरणेच्छा भवेद्यदि । सानुकूला भवेद् येन तदाकर्णय काश्यप ॥२१॥
अयने विषुवे पुण्ये व्यतीपाते दिनक्षये । चन्द्रसूर्य्योपरागे च संक्रान्तौ दर्शवासरे ॥२२॥
अयने पुण्यकालेषु दीयते दानमुत्तमम् । यदा कदा भवेद्वापि श्रद्धा दानं प्रति ध्रुवम् ॥
तदैव दानकालः स्याज्जाता सम्पत्तिरस्थिरा ॥ २३ ॥
अस्थिराणि शरीराणि विभवो नैव शाश्वतः । नित्यं सन्निहितो मृत्युः कर्त्तव्यो धर्मसञ्चयः २४॥
कृष्णां वा पाटलां वापि दद्याद्वैतरणीं शुभाम् । हेमश्रृङ्गीं रौप्यखुरीं कांस्यपात्रोपदोहनीम् ॥
कृष्णवस्त्रयुगच्छन्नां सप्तधान्यसमन्विताम् । कार्पासद्रोणशिखरे आसीनं ताम्रभाजने ॥२६॥
यमं हैमं प्रकुर्वीत लोहदण्डसमन्वितम् । इक्षुदण्डमयं बद्ध्वा तूडुपं दृढ़बन्धनैः ॥२७॥
उडुपोपरि तां धेनुं सूर्य्यदेहसमुद्भवाम् । कृत्वा विकल्पयेद्विद्वान्छत्रोपानत्समन्विताम् २८॥
अङ्गुरीयकवासांसि ब्राह्मणाय निवेदयेत् । इममुच्चारयेन्मन्त्रं संगृह्य सजलान्कुशान् ॥२९॥
यमद्वारे महाघोरे श्रुत्वा वैतरणीं नदीम् । तर्त्तुकामो ददाम्येनां तुभ्यं वैतरणीञ्च गाम् ३०॥
विष्णुरूप द्विजश्रेष्ठ भूदेव पङ्क्तिपावन । सदक्षिणा मया तुभ्यं दत्ता वैतरणी च गौः ॥३१॥
गावो ममाग्रतः सन्तु गावो मे सन्तु पृष्ठतः । गावो मे हृदये सन्तु गवां मध्ये वसाम्यहम् ३२॥
धर्मराजञ्च सर्वेशं वैतरण्याख्यकां तु गाम् । सर्वं प्रदक्षिणीकृत्य ब्राह्मणाय निवेदयेत् ॥३३॥

पुच्छं संगृह्य धेनोश्च अग्रे कृत्वा तु वै द्विजम्। धेनुके त्वं प्रतीक्षस्व यमद्वारे महाभये ॥३४॥
उत्तारणार्थं देवेशि वैतरण्यै नमो नमः। अनुव्रजेद्द्विजं यातं सर्वं तस्य गृहं नयेत् ॥३५॥
एवं कृते वैनतेय सा सरित्सुखदा भवेत्। सर्वान्कामानाप्नुवन्ति ददते ये च मानवाः ॥३६॥
सुकृतस्य प्रभावेण सुखञ्चेह परत्र च। स्वस्थे सहस्रगुणितं आतुरे शतसम्मितम् ॥३७॥
मृतस्यैव तु यद्दानं परोक्षे तत्समं स्मृतम्। स्वहस्तेन ततो देयं मृते कः कस्य दास्यति ॥३८॥
दानधर्मविहीनानां कृपणं जीवितं क्षितौ। अस्थिरेण शरीरेण स्थिरं कर्म समाचरेत् ॥
अवश्यमेव यास्यन्ति प्राणाः प्राघूर्णिका इव ॥ ३९ ॥

इतीदमुक्तं तव पक्षिराज विडम्बनं जन्तुगणस्य सर्वम्।
प्रेतस्य मोक्षाय तदौर्ध्वदैहिकं हिताय लोकस्य शुभार्थबोधन ॥ ४० ॥

सूत उवाच

एवं विप्राः समादिष्टं विष्णुना प्रभविष्णुना। गरुड़ः प्रेतचरितं श्रुत्वा सन्तुष्टमानसः ॥४१॥
व्रततीर्थादिकं पुण्यं पुनः पप्रच्छ केशवम्। ध्यात्वा मनसि सर्वेशं सर्वकारणकारणम् ॥४२॥
ऋषयः सर्वमेतत्तु जन्तूनां प्रभवादिकम्। मया प्रोक्तं हि वै मुक्त्यै प्रेतस्य चौर्ध्वदैहिकम् ॥
निदानं वच्मि लोकानां हिताय परमौषधम् ॥ ४३ ॥
लाभस्तेषां जयस्तेषां कुतस्तेषां पराजयः। येषामिन्दीवरश्यामो हृदयस्थो जनार्दनः ॥४४॥
विष्णुर्माता पिता विष्णुर्विष्णुः स्वजनबान्धवः। येषामेवं स्थिरा बुद्धिर्न तेषां दुर्गतिर्भवेत् ४५॥
मङ्गलं भगवान्विष्णुर्मङ्गलं गरुड़ध्वजः। मङ्गलं पुण्डरीकाक्षो मङ्गलायतनं हरिः ॥४६॥
हरिर्भागीरथी विप्रा विप्रा भागीरथी हरिः। भागीरथी हरिर्विप्राः सारमेतज्जगत्त्रये ॥४७॥
अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा। यः स्मरेत्पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः ॥

श्रीभगवानुवाच

इति सूतमुखोद्गीर्णां सर्वशास्त्रार्थमण्डनीम्। वैष्णवीं वाक्सुधां पीत्वा ऋषयस्तुष्टिमाप्नुयुः ॥
प्रशशंसुस्तथान्योन्यं सूतं सर्वार्थदर्शिनम्। प्रहर्षमतुलञ्चापुः शौनकाद्या महर्षयः ॥५०॥
सर्वेषां मङ्गलं भूयात्सर्वे सन्तु निरामयाः। सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग्भवेत् ॥

इति गरुड़पुराणे प्रेतकल्पे प्रजानां हितमभिहितमादौ सूतपुत्रेण पुण्यम्।
क्रतुकरणगतानां नैमिषे सन्मुनीनां श्रवणगतमकुर्वन् किं विजानाति मर्त्यः ॥५२॥

इति श्रीगारुड़े महापुराणे प्रेतकल्पे पञ्चत्रिंशोऽध्यायः ॥ ३५ ॥

समाप्तमिदमुत्तरखण्डम्।

समाप्तोऽयं ग्रन्थः

With Best Compliments From
Sri Gokuldas Prabhu (writer)
Mangaluru


KONKANI BHAS ANI SAN
PRATISHTAN

S.N. SARKAR